

दूसरी वलि है और तीसरी वलि भी डेढ़ अंगुलके प्रमाणही है ।

कहा भी है कि—“गुदाका ओठ आधे अंगुलका है और उस ओठके ऊपर एक अंगुलकी पहिली वलि है, उसके ऊपर डेढ़ अंगुलकी दूसरी वलि है और उसके ऊपर डेढ़ अंगुलकी तीसरी वलि है” ॥ २ ॥

**अथ वाताशोविप्रकृष्टनिदानम् ।**

कपायकटुतिक्तानि रुक्षशीतलघूनि च ॥  
प्रमितात्यशनं तीक्ष्णं मद्यं भैथुनसेव-  
नम् ॥ ३ ॥ लघनं देशकालौ च शीतौ  
व्यायामकर्म च ॥ शोको वातातपस्पर्शो  
हेतुर्वातार्शसां मतः ॥ ४ ॥

प्रमितं परिमितं, तीक्ष्णमिति मद्यविशेष-  
णम् । पिष्टादिमृदुमद्यस्य वातशमक-  
त्वात् । आतपस्तूष्णवीर्योद्भूतरौक्ष्याद्वात-  
प्रकोपे हेतुः, वातार्शसाम् । ननु अर्शासि  
सर्वाणि त्रिदोषजानि यत आह—

पश्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलि-  
त्रये ॥ सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां  
समुद्रव ॥ ५ ॥

तथा कथं वातार्शसामिति ? उच्यते ।  
तत्तदाधिक्याद्यपदेशभेद इति न दोषः ।  
अत एव अग्रे वक्ष्यते वातोल्बणानामिति ।  
तथा च चरकः—

अर्शासि नाम जायन्ते नासन्निपतितै-  
स्त्रिभिः ॥ दोषदोषविशेषास्तु विशेषः  
कथ्यतेऽर्शसाम् ॥ ६ ॥ इति ॥

कर्मणः, चरपरे, कटवे, रुग्ने, शीतल और हल्के ऐसे भोजन करनेसे, बहुत थोड़ा भोजन करनेसे, अधिक भोजन करनेसे, तीक्ष्ण मदिग पीनेसे, अन्यत भैथुन करनेसे, शीत करनेसे शीतदेश ( हिमालय, मानसरोवर, काष्मी-  
मांस ) और शीतमाल ( उष्णत मित्रिगादि ) के होनेसे, ठण्ड पसल करनेसे, शोक करनेसे, अत्यंत वायु और गरम भोजन करनेसे वातकी वनासीर उत्पन्न होती है ।

( जो आदिके नृनते स्नाई हुई मृदु नम्र तो वायुको शान्त करनेवाला है, उष्णतम तीक्ष्ण नम्र शरीर पीनेसे

वातकी ववासीर प्रगट होती है । धृपादिका उष्ण वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण रुक्षयनसे वातज अर्शका निदान होता है ) ।

शका—‘गुदाकी तीन वलियोंमें पाँचों प्रकारकी वायु, पित्त और कफ, इन तीनोंके कुपित होनेसे ववासीर उत्पन्न होती है’ ऐसा कहा है, ये प्राचीन ग्रंथोंके वचन हैं, अत एव सब प्रकारकी ववासीर तीनों दोषोंसे उत्पन्न होती है ऐसा सिद्ध होता है, फिर वातज ववासीर, पित्तकी ववासीर और कफकी ववासीर अलग अलग क्यों कही ?

समाधान—यद्यपि अर्श ( ववासीर ) तीनों दोषोंके प्रकोपसे होती है, तथापि जिस अर्शमें जिस दोषकी अधिकता हो वह अर्श उसी दोषसम्बन्धी जाना जायगा, इसलिये आगे वायु संबंधी अर्शको ‘वातोल्बण’ कहेंगे, चरकमें भी कहा है कि—“जो ववासीर तीनों दोषोंके सन्निपातसे होती है तो भी उसमें दोषकी अधिकतासे वात पित्त आदिके साथ अर्शका नाम कहाजाता है” ॥ ३-६ ॥

**अथ पित्ताशोविप्रकृष्टनिदानम् ।**

कटुम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपप्र-  
भाः ॥ देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्य-  
मसूयनम् ॥ ७ ॥ विदाहि तीक्ष्णमुष्णञ्च  
सर्वं पानान्नभोजनम् ॥ पित्तोल्बणानां  
विज्ञेयः प्रकोपे हेतुर्शसाम् ॥ ८ ॥

उष्णद्रवस्य स्पर्शनादि बोद्धव्यम् । उष्ण-  
पानभोजनस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात् । अग्न्या-  
तपप्रभा अग्न्यातपयोः प्रभा तेजः अथ वा  
अग्न्यातपतद्रव्यस्य तेजः दीप्तिः प्रभा ।  
अशिशिरो देशो मरुच्छरद्रीष्मश्च कालः ।  
क्रोधः कोपः । असूयनं परसम्पत्तौ द्वेषः ।  
प्रकोपे उत्पत्तौ ॥

चरपरे, खट्टे और खारे पदार्थोंको खवन करनेसे, उष्ण पदार्थोंका स्पर्शादि करनेसे, कसरन करनेसे, अग्नि और सूर्यके आतपसे, उष्णदेश और उष्ण कालके होनेसे, क्रोध करनेसे, मदिगको पीनेसे, पराई सम्पदाको देखकर जलनेमें और सर्वप्रकारके दाहकारक तीक्ष्ण और उष्ण अन्नपानोंके खवन करनेसे पित्तोल्बण ववासीर उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

मरुदेश ( निर्जलदेश, मारवाट ) को उष्णदेश जानना शरद् और ग्रीष्म, इन दो ऋतुओंको उष्ण काल कहते हैं ।

अथ कफाशौविप्रकृष्टनिदानम् ।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च ॥

अव्यायामादिवास्वप्रशय्यासनसुखे रतिः ॥

॥ ९ ॥ प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकाला-  
वचिन्तनम् ॥ श्लेष्मिकाणां सद्दिष्टमे-  
तत्कारणमर्शसाम् ॥ १० ॥

मधुर, चिकने, शीतल, खारी, खट्टे और भारी, ऐसे पदार्थोंके भोजन करनेसे, कसरत नहीं करनेसे, दिनमें सोनेसे, सुखपूर्वक नित्य सेज, गद्दी, तकिया आदिपै बैठे रहनेसे या सोते रहनेसे, पुरवाई पवनको सेवन करनेसे, शीतदेशके निवाससे, शीतकालके रहनेसे और चिता नहीं करनेसे कफ स्रग्धी बवासीर उत्पन्न होती है ॥ ९ ॥ १० ॥

त्रिदोषजाशौविप्रकृष्टनिदानम् ।

हेतुर्लक्षणसंसर्गाद्विद्याहृन्दोल्वणानि च ॥

सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणं सम-  
म् ॥ ११ ॥

जनकत्वेन त्रयो दोषाः येषां तानि त्रि-  
दोषजानि । अर्शसां सर्वो हेतुः पृथग्वातपि-  
तकफाशौहेतुः । त्रिदोषाशौलक्षणं श्वासरु-  
जाविबन्धैः सहजाशौभिः समम् । ननु  
त्रिदोषाणामिति विशेषणं व्यर्थम् । यतः  
सर्व एव व्याधयस्त्रिदोषजाः—

द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदो-  
षजः ॥ एकस्तु कुपितो दोष इतरानपि  
कोपयेत् ॥ १२ ॥ इति ॥

युक्तिमप्याह—स्वकारणाद् वृद्धो वायुः  
शैत्यात्कफं द्रवत्वात्पित्तं वर्धयते इति ।  
उच्यते । यत्र स्वस्वकारणात्त्रयो दोषाः  
कुप्यन्ति तत्र त्रिदोषजव्यपदेश इति न दोषः ।

जिसमें दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलते हों उसको द्वन्द्वज बवासीर कहते हैं । अलग अलग वातादि दोष सम्बन्धी बवासीरके जो कारण ओर लक्षण होते हैं वह सब जिसमें हो उसको सन्निपातकी बवासीर कहते हैं और उसमें स्वाभाविक बवासीरके श्वास मलरोध आदि लक्षण भी होते हैं ।

शंका—बवासीरको 'त्रिदोषज' यह जो विशेषण दिया है सो व्यर्थ है, क्योंकि सम्पूर्ण व्याधि तीनों दोषोंसे प्रगट होती है । कहा है कि—'जैसे कोई द्रव्य एक रसवाला नहीं है' उसीप्रकार कोई रोग भी एक दोषसे उत्पन्न नहीं होता है, कारण यह है कि—कोपको प्राप्त हुआ कोई एक दोष दूसरे दोषको भी कुपित करे है, इस विषयमें युक्ति भी कही है कि "अपने कारणोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु शीतलतासे कफको और द्रवपनसे पित्तको बढ़ाती है " इस युक्तिसे प्रकोप हुए एक दोषसे दूसरे दोषका कुपित होना सम्भव है ?

समाधान—जिस रोगमें तीनों दोष एक दूसरेसे नहीं किन्तु अपने अपने कारणोंसे अलग अलग कुपित हुए हों तो उसी रोगको तीनों दोषोंसे कुपित हुआ कहा जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथार्शःपूर्वरूपम् ।

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव  
च ॥ काश्यसुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादो-  
ऽल्पविट्कता ॥ १३ ॥ ग्रहणीदोषपार्श्वा-  
र्तिराशंका चोदरस्य च ॥ पूर्वरूपं विनि-  
र्दिष्टमर्शसामभिवृद्धये ॥ १४ ॥

पेटमें अन्नका विष्टा होकर नहीं निकलना, दुर्बलता, कोखमें अफारा, कृशता, डकारोंकी अधिकता, जाघोंमें पीडा, मल थोडा उतरे, ग्रहणी और पार्श्वशूल, तथा उदर रोगकी आशंका, यह बवासीरके पूर्वरूप है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथार्शःसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संद्रूप्य विविधा-  
कृतान् ॥ मांसांकुरानपानादौ कुर्वन्त्य-  
र्शांसि ताञ्जगुः ॥ १५ ॥

त्वङ्मांसपदेन त्वङ्मांसमाश्रितं रक्तमपि  
गृह्यते किञ्चित्साधारणरक्तस्रावणोपदेशात् ।  
आदिशब्देन नासानेत्रनाभिमेढ्रादिषु अपि  
कुर्वन्ति ॥

दोष, त्वचा, नास और मेदको दूषित करके गुदा, नासिका, नेत्र, नाभि और लिङ्ग इत्यादि स्थानोंमें अनेक प्रकारके पूर्णाकारवाले मांसके अंकुरोंको उत्पन्न करते हैं उन अंकुरोंको अर्श कहते हैं ।



‘त्वचाको और मांसको’ इन वचनोंसे त्वचामे और मांसमें रहनेवाले रुधिरका भी ग्रहण होता है, अत एव टोप रुधिरको भी दूषित करके बवासीरको उत्पन्न करते हैं ऐसा जानना, क्योंकि—बवासीरकी पीड़ामें कुछ साधारण रीतिसे रुधिरत्वाव भी कहा है ॥ १५ ॥

अथ वाताशौलक्षणम् ।

गुदांकुरा वह्ननिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः ॥ म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः ॥ मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥ १६ ॥ विवीकर्कन्धुखर्जूरकर्कोटीफलसन्निभाः ॥ केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ॥ १७ ॥ शिरःपार्श्वसकटचूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः ॥ क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्रोगारोचकप्रदाः ॥ १८ ॥ कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ॥ तैरातो ग्रथितं स्तोके सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ १९ ॥ रुक्फेनपिच्छानुगतं विवद्धमुपवेश्यते ॥ कृष्णत्वङ्मूत्रविण्मूत्रनेत्रवक्रश्च जायते ॥ गुल्मप्लीहोदराष्टीलासम्भवस्तत एव च ॥ २० ॥

वह्ननिलाः वातोल्बणाः गुदांकुरा अर्शासि । चिमिचिमान्विताः चिमिचिमा व्यथाविशेषः चडचडा इति लोके तदन्विताः । श्यावारुणाः श्यावा धूम्रवर्णाः, अरुणवर्णा वा । स्तब्धाः कठिनाः । विशदाः पिच्छिलाः । परुषाः गोजिह्वावत्खरस्पर्शाः । कर्कशाः खराः कर्कोटीफलवत्सूक्ष्मानेककण्टकचिताः । विम्व्यादिफलसन्निभाः । आवृत्त्या अत्र विकल्पबोधकं वक्ष्यमाणं केचित्केचिदिति पदं प्रति सम्बन्धनीयम् । कदम्बपुष्पाभाः स्थिरानेकमृदमशिखराः । सिद्धार्थकोपमाः पीतसूक्ष्मपिडकाचिताः । तैरात इत्यशौभिः पीडितः । तैरातो विवद्धमुपवेश्यत इति आर्तस्य प्रयोज्यकर्तुः कर्मता आर्पत्वात् ।

ग्रथितं मलगुठिकाग्रन्थितविद्वर्तिरूपम् । पिच्छा पिच्छिलो द्वभागः । बद्धं संहतम् । विद्वशब्दो नपुंसकेऽप्यस्ति । उपवेश्यते त्याज्यते । तत एव वातार्शस एव गुल्मादीनां सम्भवः । अष्टीला नाभेरधोभागे पाषाणपिण्डिकावद्वातव्याधिविशेषः ॥

वातकी उत्पणतावाली बवासीरके अंकुर ( मस्ते ) सूत्रे, चिमचिमानेवाले, कुम्हलायेसे, धुएँके रंगके या लाल रंगके, कठिन, विगद, कठोर, खरखरे, आपसमें बराबर न हो, टेढे, तीक्ष्ण, फटेमुखवाले, कन्दूरी, बेर, खजूर और ककोडेके फलकी समान हो, एव मस्तकमें, पसलियोंमें, कंधेमें, कमरमें, जाँघ और जाघकी सधियोंमें अत्यंत पीडा होतीहो, छोक, डकार, मलब्रध, छातीमें पीडा, अरुचि, खासी, श्वास, अग्निकी विपमता, कानोंमें शब्द और भ्रम होताहै । इस अर्शरोगसे पीडित मनुष्योंका मल गाढदार-थोडा थोडा, शब्दसहित, प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त, पीडा सहित, झागो सयुक्त और पतला तथा बँधाहुआ सा उतरता है ।

त्वचा, नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र और मुख, ये सब काले होजातेहैं, गुल्म ( वायगोला ), प्लीहा, उदररोग और अष्टीला ( नाभीके नीचे लम्बे पत्थरकी समान एक वात-सम्बन्धी रोग होताहै उसको अष्टीला कहते हैं ) ये सब लक्षण होतेहैं ॥ १६-२० ॥

अथ पित्ताशौलक्षणम् ।

पित्तोत्तरा नोलमुखा रक्तपीतसितप्रभाः ॥ तन्वस्त्राविणो विस्त्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥ २१ ॥ शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकोवक्रसन्निभाः ॥ दाहपाकज्वरस्वेदतृष्णामूर्च्छारतिप्रदाः ॥ २२ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ॥ यवमध्याहरिपीतहारिद्रवङ्मुखादयः ॥ २३ ॥ तनु अघनम् । श्लथा लम्बिनः । सन्निभा आकृत्या । पाको गुदस्य । सोष्माणः उष्णस्पर्शाः । हरिच्छाकवर्णम् । पीतं हरितालवर्णम् । हारिद्रं हरिद्रावर्णम् । आदिशब्दा-न्मलमत्रपुरीषाणां ग्रहणम् ॥

पित्तोत्वण ववासीरमे गुदाके अंकुर नीलमुखवाले, लाल, पाले और काले होतेहैं, उनमेसे पतला रुधिर टपकता रहै, दुर्गन्ध आवै, वारीक, मृदु, लटकते हों, कोई तोतेकी जीभकी समान, कोई कलेजेके टुकडेकी समान, कोई जोंकके मुखकी समान हो, इस ववासीरमे दाह, गुदाका पकना, ज्वर, पसीनेका आना, तृषा, मूर्च्छा और बेकली होवै, इसका स्पर्श गरम हो, मल पतला, नीला, गरम, पीला, लाल और आमसंयुक्त हो जाँके मध्यभागकी समान हो, इसमे त्वचा ( चमडी ) और नखादि शाककी समान हरितवर्ण, हरतालकी समान और हलदीकी समान रंग-वाले होतेहैं ॥ २१-२३ ॥

अथ पित्तोत्तररुधिराशौलक्षणम् ।

रक्तोत्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥ वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ॥ २४ ॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः ॥ स्रवन्ति सहस्रारक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ २५ ॥ भेकाभः पीडयते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः ॥ हीनवर्णवलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥ २६ ॥ विट्श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न वर्तते ॥ तनु चारुणवर्णं च फेनिलं वासृगर्शसाम् ॥ २७ ॥ कट्यू-रुगुदशूलश्च दौर्बल्यं यदि वाधिकम् ॥ तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ॥ २८ ॥ शिथिलं श्वेतपीतं च विट्स्निग्धं गुरु शीतलम् ॥ यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम् ॥ २९ ॥ गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् ॥ श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ ३० ॥

गुदे कीलाः अर्शासि । पित्ताकृतिसमन्विताः पित्ताशौलक्षणयुक्ताः । आकारेण च वटप्ररोहसदृशाः । २६ श्लोके दुःखै रोगैः त्वक्पारुष्याम्बुशीतप्रार्थनादिभिः कलुषेन्द्रियः व्याकुलसर्वेन्द्रियः । असृगर्शसां रक्तार्शसाम् । २७ श्लोके तत्र रक्तार्शसि

अनुबन्धः उत्वणम् । रूक्षं रूक्षयतीति रूक्षणम् रूक्षद्रव्यम् । पित्तोत्वणस्य तु लक्षणम्, “रक्तोत्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः” । इत्यादिनैवोक्तं रक्तपित्तयोः समानलिङ्गत्वात् ॥

रक्तोत्वण ववासीरके अंकुर पित्तकी ववासीरके आकृतिवाले होते हैं, बडके अंकुरकी समान, गुंजाकी समान, भूँगेकी समान, वह कडे मलके आनेसे दबकर दूषित और गरम रुधिरको छोडतेहैं । रक्तके अधिकतर निकलनेसे ववासीरवाला रोगी मेंडककी समान पीला पडजाताहै, त्वचा कठोर होजातीहै, जलकी प्रार्थना और शीतकी इच्छा आदि दुःखोसे पीडित होजाताहै उस मनुष्यका वर्ण, बल और उत्साह हीन होजाताहै ओजक्षय होजाताहै और सम्पूर्ण इन्द्रिये व्याकुल होजातीहैं, विष्टा काला कठिन और रूक्ष उतरताहै, अधोवायुका अवरोध होताहै, इसमे रुधिर पतला, लाल और झागोंदार निकलताहै ॥ २४-२७ ॥

जो रुधिरकी ववासीर रूक्ष कारणोंसे उत्पन्न हुई हो, तथा कमर, जाघ और गुदामे शूल होय और अत्यन्त निर्वलता होय तो रुधिरमे वायुका अनुबन्ध होताहै ॥

जिस रुधिरकी ववासीरमे विष्टा ( मल ) शिथिल, सुफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल हो, रुधिर गाढा, तन्तुयुक्त, पाण्डुवर्ण और चिकना हो, गुदा चिकनी और स्तब्ध हो, भारी और स्निग्ध कारणोंसे उत्पन्न हुई हो, तो रुधिरमे कफका अनुबन्ध जानना । रक्तानुबन्धी रुधिरकी ववासीरके लक्षण तो पित्तकी ववासीरकेही समान होतेहैं सो पहिले कहती चुके हैं, क्योंकि पित्त और रुधिरके लक्षण समान हैं, इस कारण दुबारा कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २८-३० ॥

अथ कफोत्वणाशौलक्षणम् ।

श्लेष्मोत्वणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः ॥ उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ ३१ ॥ पिच्छिलाः स्तिमिता श्लक्ष्णाः कण्ठादद्याः स्पर्शनप्रियाः ॥ करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ ३२ ॥ वड्क्षणानाहिनः पायुवस्तिनाभिविकर्षिणः ॥ सकासश्वासहृल्लासप्रसेका-

रुचिपीनसाः ॥ ३३ ॥ मेहकृच्छ्रशिरोजा-  
अशिशिरज्वरकारिणः ॥ क्लैव्याभिमारदव-  
च्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ ३४ ॥ वसाभाः  
सकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥ न  
स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्तिग्धत्वगा-  
दयः ॥ ३५ ॥

उत्सन्नाः उन्नताः । उपचिताः स्थूलाः ।  
स्निग्धाः स्नेहाभ्यक्ताः । स्थिरा निश्चलाः ।  
पिच्छिलाः कफोल्बणत्वात् । स्तिमिताः  
आर्द्रचर्मावगुण्ठिता इव । श्लक्ष्णाः मणिव-  
न्मसृणाः । करीरो वंशांकुरः । पनसास्थिगो-  
स्तनाः तदाकृतयः वंक्षणानाहिनः वडूक्ष-  
णयोरानाहकारिणः पाय्वादिषु आकर्षणवत्पी-  
डाकारिणः । कृच्छ्रं सूत्रकृच्छ्रम् । शिरो-  
जाड्यं शिरोभागे शीताक्रान्तमिव । क्लैव्यं  
स्त्रीषु अनिच्छा । अत्र छर्दिशब्दः सान्त  
आर्पत्वात् । आमप्रायकविकारदाः आम-  
बहुला व्याधयोऽस्तीसारग्रहण्यादयस्तान्  
ददति ॥

कफकी ववासीरमे गुदाके अरुण बहुत गहरी जटवाले,  
वन, अप पीडायुक्त, नफेद, ऊंचे, मोटे, चिकने, लव्ध,  
गोल, भारी, कठिन, पिच्छिल, गीले चमड़ेमें लिपटे हुए ऐसे  
गर्णिकी समान चिकने, बुजलीवाले और स्वर्गमें प्रिय  
हो, कर्गल, कटहर और गायके यनकी समान हो, तथा  
लक्षणमानमें पीडा, गुदा मृदागव और नाभिमें आक-  
षणकी समान वेदना हो, गामी क्षाम, उवकार, मुखमें  
गानीया गिग्ना, अन्वि, पीनम, प्रमेह, सूत्रकृच्छ्र,  
शिरमें जडता और शीतचरको करनेवाले हो, नष्टमना  
प्रायः स्त्रीप्रसवमें दुःश्रमा नहीं होना, चट्गमिकी  
रुग्ना, वमन, आर्द्र आनसले अतीमार, स्रवणी  
आदि रोगों का प्रसव होना, चर्दिशी नमान कानिवाले,  
प्रायः आम मारता उत्सन्ना और प्रसविकाका होना ये  
लक्षण हैं । इस ववासीरके मन्मथमें न रोग रहता  
है, न मन्मथ दृष्ट हो, मन्मथ शरीरकी मन्मादि पाण्डुवर्ण  
होते हैं । ३३-३५ ॥

अथ द्वन्द्वजाशौलक्षणम् ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वोल्बणानि च ३६ ॥  
जिसमें दो दोपोंके कारण और द्वन्द्वोके लक्षण  
मिलते हो उसको द्वन्द्वोल्बण कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ त्रिदोषोल्बणस्वाभाविकाशौ-  
लक्षणम् ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि  
च ॥ ३७ ॥

सर्वलक्षणैर्वातपित्तकफाशौलक्षणैः प्रा-  
गुक्तैः सर्वात्मकानि सन्ति तानि अर्शासि  
अतस्तथा तैरेव लक्षणैः सहजानि अर्शासि  
आहुः ॥

जिसमें वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके लक्षण  
दिखाई दें उसको त्रिदोषोल्बण कहते हैं और सहज  
अर्थात् स्वाभाविक अर्शके भी येही लक्षण होते हैं ॥ ३७ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तस्वाभाविकाशौ-  
लक्षणम् ।

अर्शासि सहजातानि दारुणानि भवन्ति  
हि ॥ दुर्दर्शनानि पाण्डूनि परुषाण्यरु-  
णानि च ॥ ३८ ॥ अन्तर्मुखानि तैरार्तः  
क्षीणः क्षीणस्वरो भवेत् ॥ क्षीणानलः  
क्षीणरेताः शिरासन्ततविड्वग्रहः ॥ ३९ ॥  
अल्पप्रजः क्रोधशीलो भयकांस्यस्वना-  
न्वितः ॥ शिरोद्वक्कर्णनासासु रोगी  
हृष्टपसेकवान् ॥ ४० ॥

स्वाभाविक अर्थात् शरीरके साथ उत्पन्नहुई ववासीर  
अत्यन्त दारुण होती है, भयकर, पाण्डुवर्ण, खरखरे,  
लाल और भीतरको मुख किये मस्ते होते हैं, इससे  
पीडित मनुष्य क्षीण, क्षीण स्वरवाला, क्षीण अग्निवाला,  
क्षीण वीर्यवाला और नखसे व्याप्त शरीरवाला होता है,  
उसके सर्वत्र मलका अवरोध रहता है, सन्तान थोड़ी  
होती है, क्रोधी, पृष्ठे कासेके शब्दकी समान उसका  
शब्द होता है, मन्मथ, नेत्र, कान और नाभिकामें  
पीडा होती है, हृदन कफसे लिपसा रहता है  
और उसके मुखसे बारबार पानी निकलता  
है ॥ ३८-४० ॥

अथ सुखसाध्याशौलक्षणम् ।

बाह्यायां तु बलौ जातान्येकदोषोल्ब-  
णानि च ॥ अर्शासि सुखसाध्यानि न  
चिरोत्पतितानि च ॥ ४१ ॥

बाह्यायां बलौ संवरण्याम् । न चिरोत्प-  
तितानि अतिक्रान्तसंवत्सराणि एतानि  
लक्षणानि मिलितानि सुखसाध्यत्वबोध-  
कानि ॥

गुदाकी सवरणीनामक बलिमें उत्पन्नहुई, एक दोपो-  
ल्वण और थोड़े कालसे उत्पन्न हुई ऐसी बवासीर सुख-  
साध्य होती है । ( जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष नहीं बीता  
हो उसको थोड़े कालसे उत्पन्नहुआ जानना ) ॥ ४१ ॥

अथ कष्टसाध्याशौलक्षणम् ।

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां बलौ यान्याश्रि-  
तानि च ॥ कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः  
परिसंवत्सराणि च ॥ ४२ ॥

द्वितीयायां बलौ विसर्जन्याम् । परिसं-  
वत्सराणि परिगतः संवत्सरो येषां तानि  
अतीतसंवत्सराणीति यावत् । एतानि प्रत्येकं  
कष्टसाध्यलक्षणानि ॥

जिस बवासीरको उत्पन्नहुए एक वर्ष बीतगया हो जो  
दो दोपोल्वण हो और जो गुदाकी विसर्जनी दूसरी बलिमें  
उत्पन्नहुई हो उसको कष्टसाध्य जानना ॥ ४२ ॥

अथासाध्याशौलक्षणम् ।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां  
बलिम् ॥ जायन्तेऽर्शासि संश्रित्य तान्य-  
साध्यानि निर्दिशेत् ॥ ४३ ॥

अभ्यन्तरां बलि प्रवाहिणीम् । एतान्यपि  
प्रत्येकमसाध्यानि लक्षणानि ॥

जो बवासीर जन्मसेही शरीरके साथ उत्पन्न हुई हो  
अथवा त्रिदोषोल्बण हो किवा गुदाकी प्रवाहनी नामक  
भीतरकी तीसरी बलिमें उत्पन्न हुई हो उसको असाध्य  
जानना ॥ ४३ ॥

अथ याप्याशौलक्षणम् ।

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्वये ॥

याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतो-  
ऽन्यथा ॥ ४४ ॥

यदि आयुःशेषो वर्तते चिकित्सायाः  
चत्वारः पादास्ते यथा-वैद्यवचनकारी  
धनवानुदारो जितेन्द्रियो रोगी । शस्त्रक-  
र्मणि कुशलो वैद्यः । अनलसः आप्तः प्रियः  
परिचारकः । नवरसवीर्यादिकमौषधम् ।  
एषां समन्वये समागमे । अतिदीप्तकायाग्नेः  
पुरुषस्य तानि अर्शासि याप्यन्ते चिकित्सा-  
याम् । अतोऽन्यथा प्रत्याख्येयानि चिकि-  
त्साहीनानीत्यर्थः ॥

जिस रोगीकी आयु बाकी हो, चिकित्साके चारोपाद  
ठीकहो और रोगीकी जठराग्नि अत्यत दीपनहो, तो उस-  
को याप्य जानना और जो यह सब सामग्री नहीं हो तो  
उसकी वैद्य चिकित्सा नहीं करै, क्योंकि वह असाध्य  
है ॥ ४४ ॥

रोगी-वैद्यके वचनको माननेवाला, धनवान, उदारचित्त  
और जितेन्द्रिय होना चाहिये । वैद्य-शस्त्रकर्ममें कुशल होना  
चाहिये । परिचारक ( सेवक )-आलस्यरहित, यथार्थ  
कहनेवाला और प्रियहोना चाहिये । औषधि-नवीन रस  
और वीर्ययुक्त होनी चाहिये, यह चिकित्साके चार पाद है ॥

अथाशौऽरिष्टकथनम् ।

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा ॥  
शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो  
हि सः ॥ ४५ ॥

असाध्यः सन्निहितमरणो बोध्यः । अर्शसः  
अशौऽरोगयुक्तः ॥

हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्णवरः ॥  
तृष्णा गुदास्यपाकश्च निहन्त्युर्गुदजातु-  
रम् ॥ ४६ ॥

गुदस्य आस्यमोष्ठदेशस्तस्य पाकः । हृत्पा-  
र्श्वशूलादि समस्तं चारिष्टलक्षणम् ॥  
तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रसृतशोणितम् ॥  
शोथातीसारसंयुक्तमर्शासि क्षपयन्ति  
हि ॥ ४७ ॥



जिस ब्यासीवाले रोगीके हाथ, पाँव, मुख, नाभि, गुदा और अटकोंगंमं सृजन हो, छाती और पसलियोंमें शूलकी पीडा हो, उसको मृत्युके समीप हुआ जानो ॥ ४५ ॥

हृदय और पसलियोंमें शूल, मोह, वमन, अगममें पीडा, ज्वर, तृषा और गुदाका पकना, अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोटा होना यह सब लक्षण जिस अर्शरोगमें हो उसको मृत्युके निकट जानना ॥ ४६ ॥

तृषा, अरुचि, और शूल इनसे पीडित अथवा सृजन और अतीसारमें पीडित, कि वा जिसका रुधिर बहुत निकल गया हो, ऐसा अर्शरोगी मर जाता है ॥ ४७ ॥

अथ लिंगाद्यशौलक्षणम् ।

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि च ॥ गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥ ४८ ॥

यथास्वं यथात्मीयलक्षणम् । न च अत्रोक्तनिदानपूर्व सम्प्राप्तिलक्षणं युक्तम् । तत्रार्शसपदन्तु मांसांकुरसाम्यात् । गण्डूपदः कंचुलकः ॥

लिंग आदि अवयवोंमें और नाभिमें भी अलग अलग प्रकारकी ब्यागीर होती है, उसके अंकुर कंचुएके मुखकी समान चिकन और नरम होते हैं ॥ ४८ ॥

अथ चर्मकीललक्षणम् ।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो वहिः ॥ कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः ॥ ४९ ॥

खरं कर्कशम् ॥

चर्मकील नामके अंकुरकी समान होते हैं इस लिये अर्शरोगमें उसकी सम्प्राप्तिपूर्वक लक्षण कहते हैं । जब व्यान वायु कफको ग्रहण करके त्वचाके बाहर कीलकी समान, स्थिर और कठोर अर्शको उत्पन्न करती है उसको चर्मकील कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ चर्मकीलवातादिलक्षणम् ।

वातेन तौदपाक्यं पित्तादसितरक्तता ॥ श्लेष्मणा म्लिग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ५० ॥

सवर्णता शरीरममानवर्णता ।

वातके चर्मकीलमें व्यथा ( पीडा ) और कठोरपन होता है, पित्तके चर्मकीलमें कालापन और लाली होती है और कफके चर्मकीलमें चिकनापन, गांठदार और शरीरके रंगकी समान वर्ण होता है ॥ ५० ॥

अथार्शः सामान्यचिकित्सा ।

यद्वातस्यानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये ॥ अन्नपानौषधं सर्वं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ ५१ ॥

अर्शसैः अर्शरोगयुक्तैः ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवान्नानि घृतैः सह ॥ अजाक्षीरेण वा निम्बपटोलानां रसेन वा ॥ ५२ ॥ कान्दैर्वातार्कुमूलांशै रसैर्मांसरसेन वा ॥ जीवन्त्युपोदिकाशकैस्तण्डुलीयकवास्तुकैः ॥ ५३ ॥ अन्यैश्च सृष्टविष्णून्मरुद्भिर्वह्निदीपनैः । अर्शासि भिन्नवर्चासि हन्याद्वातातिसारवत् ॥ ५४ ॥ सतक्रं लवणं दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम् ॥ न प्ररोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः ॥ ५५ ॥ तक्राभ्यासोऽर्शसैः कार्यो बलवर्णोऽग्निवृद्धये ॥ स्रोतःसु तक्रगुद्धेषु सम्यक् चरति तद्रसः ॥ ५६ ॥ तेन पुष्टिस्तथा तुष्टिर्वलं वर्णश्च जायते ॥ वातश्लेष्मविकाराणां शतञ्च विनिवर्तते ॥ ५७ ॥

जो अन्न पानी और औषधि वायुको अनुलोमन करनेवाले हैं तथा अग्निके बलको बढ़ानेवाले हैं वह सब अर्शरोगमें सदैव सेवन करने चाहिये ॥

शालिधानके चावल, साठीके चावल, गेहूँ और जी इनका भोजन व्रीके साथ, या बकरीके दूधके साथ, नीम अथवा कड़वे परचलके रसके साथ, जमीकन्द, बैंगन, मूली या मांसरसके साथ सेवन करें ॥

जिस ब्यासीमें विष्टाका भेदन नहीं होता हो ऐसी ब्यागीरको चीरनी, पोंडे, चान्दाई और बबुआ, इन यात्रीय तथा अन्यान्य विष्टा, मूत्र और वायुको प्रवर्तन करनेवाले और अग्निको दीपन करनेवाले, द्रव्योंमें जीते

और जिसमे विषाका भेदन ( दस्त ) होताहो ऐसी बवा-  
सीरकी वातातीसारकी समान चिकित्सा करै ॥

सैधानिमिक तक्रमे डालकर पीनेसे वायु और विषाको  
अनुलोमन करैहै । तक्रसे नष्ट किये हुए बवासीरके  
मस्से फिर उत्पन्न नहीं होतेहैं । बवासीर वाले मनुष्यको  
बल-वर्ण-और जठराग्निको बढ़ानेके लिये तक्र ( मद्य )  
पीनेका अभ्यास करना-उचित है । तक्रके अभ्याससे  
शरीरके खोत ( छिद्र ) शुद्ध होकर अन्नादिकका रस  
अच्छेप्रकारसे संचार करताहै और उससे पुष्टि, तुष्टि,  
बल और वर्ण उत्तम होताहै, वायु और कफके सैंकड़ो  
विकार नष्ट होजातेहैं ॥ ५१-५७ ॥

अथ करंजादिचूर्णम् ।

चिरविल्वान्निसिन्धूत्थनागरेन्द्रयवारलु ॥

तत्रेण पिवतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ५८

चिरविल्वः करञ्जः तस्य फलस्य अत्र  
मज्जा ग्राह्या । अरलुः शोणकः ॥

करजके फलका बक्कल, चीता, सैधानिमिक, सोंठ-  
इन्द्रजौ, और अरलू, इनका चूर्ण करके तक्रके साथ पिये  
तो रुधिरके साथ बवासीरके अंकुर गिरजाते हैं ॥ ५८ ॥

अथ रजनीलेपः ।

लेपं रजनिचूर्णेन सुधादुग्धयुतेन च ॥

अशोऽरोगनिवृत्त्यर्थं कारयेत्तु चिकि-  
त्सकः ॥ ५९ ॥

वैद्य अशोरोगकी निवृत्तिके लिये हलदीके चूर्णको  
थूहरके दूधमें मिलाकर लेप करै ॥ ५९ ॥

अथ पिप्पल्यादिलेपः ।

पिप्पली सैन्धवं कुष्ठं शिरोषस्य फलं  
तथा ॥ सुधादुग्धार्कदुग्धं वा लेपोऽयं  
गुदजान्दरेत् ॥ ६० ॥

पीपल, सैधानिमिक, कूठ और सिरसके बीज, इन-  
को थूहरके दूधमें अथवा आकके दूधमें पीसकर लेप  
करनेसे बवासीर नष्ट होजाताहै ॥ ६० ॥

अथ हरिद्रादिलेपः ।

हरिद्रा जालिनीचूर्णं कटुतैलसमन्वि-  
तम् ॥ एष लेपो वरः प्रोक्तो हर्षसाम-  
न्तकारकः ॥ ६१ ॥

जालिनी कटुतोरई इति ।

हलदी और कडवी तोरईका चूर्ण करके सरसोंके  
तेलमें मिलाकर लेप करै, यह लेप अशोको नष्ट करनेके  
लिये उत्तम है ॥ ६१ ॥

अथ तिलभक्षणम् ।

असितानां तिलानान्तु पलं शीतजलेन  
च ॥ खादतोऽर्शांसि शाम्यन्ति दृढा  
दन्ता भवन्ति च ॥ ६२ ॥

चार तोले काले तिललेकर शीतल जलके साथ भक्षण  
करै तो बवासीर दूर होजातीहै और दांत दृढ होजाते  
हैं ॥ ६२ ॥

अथ रुधिरस्रावणम् ।

शस्त्रैर्वाथ जलौकोभिः प्रच्छन्नं कठिना-  
र्शसः ॥ शोणितं सञ्चितं दृष्ट्वा हरेत्प्राज्ञः  
पुनःपुनः ॥ ६३ ॥

जो बवासीरके मस्से भीतरको दवेसे और कठिन होयें  
तो शस्त्र अथवा जोकसे रुधिर निकलवादेवै और जब जब  
रुधिर इकट्ठा होजाय तबही रुधिर निकलवा देवै ॥ ६३ ॥

अथ बृहत्काशीसाद्यतैलम् ।

काशीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठञ्च  
लाङ्गली ॥ शिलाभिदश्वमारश्च दन्ती-  
जन्तुघ्नचित्रकम् ॥ ६४ ॥ तालकं कुनटी  
स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेद्भिषक् ॥ तैलं स्नुह-  
र्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ६५ ॥  
एतदभ्यंगतोऽर्शांसि क्षारेणैव पतन्ति हि ॥  
क्षारकर्मकरं हेतन्न च सन्दूषयेंद्र-  
लिम् ॥ ६६ ॥

काशीसं कसीस इति लोके । लांगली  
करिहारीति लोके । शिलाभिप्पाषाणभेदः  
अश्वमारः कनेर इति लोके । स्वर्णक्षीरी  
चोक इति लोके ॥

हरिकसीस, सैधानमक, पीपल, सोंठ, कूठ, कलिहारी,  
पाखानभेद, कनेर, दन्ती ( जमालगोटेकी जड़ ), वायवि-  
डंग, चीता, हरिताल, मैनागिल और सत्यानागी कटेरी  
( जिसकी जड़को चोक कहतेहैं ) इनका कल्क बनाकर  
थूहरके दूध और आकके दूधके द्वारा चौगुके गोमूत्रमें

तेलको सिद्ध करें । जैसे धारसे बवासीरसे मस्से गिरजाते हैं उसी प्रकार इस तेलके लगानेसे बवासीरके मस्से नष्ट होजातेहैं, यह तेल क्षाणिक कर्म करताहै और बलिको भी दूषित नहीं करताहै ॥ ६४-६६ ॥

अथ समशर्करचूर्णम् ।

शुण्ठीकगामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमृद्धमन्त्यात् ॥ खादेदिदं समसितं गुदजाग्रिमान्द्यगुल्मारुचिश्चसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ६७ ॥

तद्यथा एलावीजमत्र सूक्ष्मं ग्राह्यम् । यत आह मदनपालः—“एला सूक्ष्मा कफश्वास-कासाशोमूत्रकृच्छ्रनुदित्यादि” । तस्या बीजं भागः १ त्वग्भागः २ दलं पत्रकम् ३ नागं नागकेशरं यत आह निघण्टौ धन्वन्तरिः—“नागपुष्पं मतं नागं केशरं नागकेशरम्” । इत्यादि । तस्य भागाः ४, मरिचम् ५, पिप्पली ६, शुण्ठी ७, शर्करा भागः २८, समशर्करचूर्णम् ॥

उल्लयची १ भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, मरिच ५ भाग, पीपल ६ भाग और मोठ ७ भाग, इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करने से सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलायें । इस चूर्णका भक्षण करें तो बवासीर, भदानी, गुल्म (गोला), अरुचि, श्वास, रुग्णता और हृदयरोग दूर होजातेहैं ।

इस चूर्णमें छाट्टी इल्लयचीके दांत डालने चाहिये, क्योंकि मदनपाल निघट्टने कहते हैं “छाट्टी उल्लयची-तप्त, नाग गौरी, बवासीर और मूत्रकृच्छ्रको दूर करें” ॥ ६७ ॥

अथ विजयचूर्णम् ।

त्रिकत्रयं वचा हिशु पाठाक्षरौ निशाद्वय-म् ॥ चव्यतिक्ताकलिंगानि शक्राह्वो लवणानि च ॥ ६८ ॥ ग्रन्थिविल्वा-ज्जमोदाश्च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कार-येत् ॥ ६९ ॥ चूर्णं विडालपदकं पिबेदु-

ष्णेन वारिणा ॥ ऐरण्डतैलयुक्तं वा लि-ह्याच्चूर्णमिदं नरः ॥ ७० ॥

हन्त्यादर्शांसि सर्वाणि श्वासशोषभगन्दरान् ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलश्च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ७१ ॥ हिककां कासं प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ आमवातमुदावर्तमन्त्रवृद्धि-गुदकिमीन् ॥ ७२ ॥ अन्ये च ग्रहणीदोषा-भिषग्भिर्भेदं प्रकीर्तिताः ॥ विजयो नाम चूर्णोऽयं तान्सर्वानाशु नाशयेत् ॥ ७३ ॥ महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ अप्रजानाश्च नारीणां हितमेतद्धि भेषजम् ७४

त्रिकत्रयं त्रिफला त्रिकटु त्रिसुगन्धीनि । क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च । लवणानि पञ्च । ग्रन्थि पिप्पलीमूलम् । विडालपदकं कर्षम् ।

त्रिफला ( हरड बहेडा, आमला, ) त्रिकटु ( सोठ, मिरच, पीपल, ) त्रिसुगन्धि ( दालचीनी, इलायची, तेज-पात ), वच, हींग, पाट, सजी, जवाखार, हल्दी, दारु-हल्दी चव्य, कुटकी कुडेकी, छाल, इन्द्रजी, पोंचो निमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद, ये अष्टाईस (२८) औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले, इस चूर्णको गरम जलके साथ, अथवा अडीके तेलमें मिलाकर एक तोलाभर भक्षण करें इससे सब प्रकारकी बवासीर, श्वास, शोष, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, वातगुल्म, उदररोग हिचकी खोसी, प्रमेह, पाण्डु, कामला, आमवात, उदावर्त, आमवृद्धि, गुदाकी कृमि और जो रोगोंने सग्रहणी आदि, रोग कहेहैं वे सब तत्काल नष्ट होजातेहैं । जो मनुष्य महाज्वरसे पीड़ित हैं और जो भूतबाधासे व्याकुल हैं और जिन त्रियोंके सन्तान उत्पन्न नहीं होती है उनके लिये यह विजय चूर्ण अन्यत-द्विगुणहै ॥ ६८-७८ ॥

अथ लघुसूरणमोदकः ।

मरिचमहोपधचित्रकशूरणभागा यथो-त्तरं द्विगुणाः ॥ सर्वसमो गुडभागः

सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ ७५ ॥  
ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयतीह  
शूलगुल्मगदान् ॥ निःशेषयति श्लीपदम-  
र्शांसि विनाशयत्याशु ॥ ७६ ॥

तद्यथा । मरिचभागः १ । शुण्ठीभागौ २ ।  
चित्रकभागाः ४ । सूरणभागाः ८ ।  
गुडभागाः १५ ।

मिरच १ भाग, सोंठ २ भाग, चीता ४ भाग और  
जिमीकंद ८ भाग लेवै, सबको एकत्र पीस लेवै और  
सबकी समान गुडभिलाकर लड्डू बना लेवै । इन प्रसिद्ध  
फलवाले मोदकोको सेवन करनेसे जठराग्नि दीपन होतीहै  
शूल और गुल्मकी पीडा नष्ट होतीहै, श्लीपद रोग आर  
बवासीर दूर होजातीहै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अथ बृहत्सूरणमोदकः ।

षोडश सूरणभागा बहेरष्टौ महौषधस्या-  
स्य ॥ अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि  
चाद्धेन ॥ ७७ ॥ त्रिफला कणा समूला  
तालीसारुष्करकिमिघानाम् ॥ भागा  
महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥  
॥ ७८ ॥ भागाः सूरणतुल्या दातव्या  
वृद्धदारकस्यापि ॥ भृङ्गैले मरिचांशे  
सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ७९ ॥  
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः  
प्रकामधनैः ॥ गुरुवृष्यभोजनरतैरितरे-  
षूपद्रवं कुर्यात् ॥ ८० ॥ भस्मकमनेन  
जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ॥  
भीमस्य मारुतेरपि महाशनौ तेन तौ  
यातौ ॥ ८१ ॥ अग्निबलवर्णहेतुर्न केवलं  
सूरणो महावीर्यः ॥ हन्ता शस्त्रक्षारानलै-  
र्विनाप्यर्शसामेषः ॥ ८२ ॥ श्वयथुश्लीप-  
दगदहद्रहणीं च कफानिलोद्धूताम् ॥  
नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते जराश्च  
हरेत् ॥ ८३ ॥ हिक्कां कासं श्वासं च  
राजरोगं प्रमेहांश्च ॥ प्लीहानं च तथोग्रं  
हन्त्याशु रसायनं पुंसाम् ॥ ८४ ॥

७९ श्लोकस्थस्य एषां भागा यथा । सूर-  
णभाग १६ । चीताभाग ८ । शुण्ठीभाग ४ ।  
मरिचभाग २ । हरडै । बहेडा आमला ।  
पीपरि । पीपरामूल । तालीश । भिलौवाँ  
तदसत्त्वे रक्तचन्दनम् । विडंग प्रत्येकं भाग  
४ । तालमूलीभाग ८ । विधारा भाग १६ ।  
तजभाग १ । इलायची छोटी बीजभाग १ ।  
गुडभाग १७६ ॥

जमीकंद १६ भाग, चीता ८ आठभाग, सोंठ ४  
भाग, मिरच २ भाग, त्रिफला ४ भाग, पीपल ४ भाग,  
पीपलामूल ४ भाग, तालीसपत्र ४ भाग, भिलावे ४ भाग,  
वायविडंग ४ भाग, कालीमुसली तीन भाग, विधारा १६  
भाग, दालचीनी १ भाग, और छोटी इलायची १ भाग,  
सबको एकत्र पीसलेवै और सबसे दुगुना गुड मिलाकर  
लड्डू बनालेवै, यह मोदक मैथुनशक्तिको बढ़ानेवाले हैं,  
ऐसे पदार्थ धनवान् मनुष्योंको भारी और पुष्टिकारक  
पदार्थ खाने वालोंको सेवन करने चाहिये । उनके ऊपर  
घृतादिक उत्तम भोजन करना उचित है । इन उत्तम  
पदार्थोंको नहीं सेवन करनेवाले मनुष्योंके ये मोदक  
उपद्रव करतेहैं । पूर्वकालमें इन मोदकोको सेवन करनेसे  
अगस्त्य ऋषि और मारुतनन्दन, भीमसेनको भस्मक  
रोग होगया था, इस कारण वह अधिक भोजन करने लगे  
थे । यह महाशक्तियुक्त बृहत्सूरण मोदक—केवल अग्नि,  
बल और उत्तम वर्णकोही करता है ऐसा न समझना,  
परन्तु ये शस्त्र क्षार और बिना अग्निके ही बवासीरको  
नष्ट करतेहैं । सृजन, श्लीपद, हृदयरोग, कफसे और  
वायुसे उत्पन्न हुई ग्रहणी और वलीपलितको भी नष्ट करैहै  
तथा बुद्धिको बढ़ानेवाले और बुढापा, हिचकी, श्वास,  
क्षयरोग, प्रमेह, तथा अत्यत उग्र प्लीहाको नष्ट करैहैं ।  
और पुरुषोंके लिये उत्तम रसायनहै ॥ ७७-८४ ॥

श्रीबाहुशालगुडः ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं  
शटी ॥ गवाक्षी मुस्तविश्वाब्दविडंगानि  
हरीतकी ॥ ८५ ॥ पलोन्मितानि  
चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात् ॥ वृद्धदा-  
रापलान्यष्टौ सूरणस्य तु षोडश ॥ ८६ ॥



जलद्राणद्वये काथ्यं चतुर्भागांशेषितम् ॥  
 पृतं पृतं रसं भूयः काथ्येभ्यस्त्रिगुणं गुडम् ॥  
 ॥ ८७ ॥ मेलयित्वा पचेत्तावद्यावद्द्वीप्र-  
 लेपनम् ॥ अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानी-  
 मानि दापयेत् ॥ ८८ ॥ त्रिवृत्तेजोवती-  
 कन्दचित्रकान्द्रिपलांशिकान् ॥ एलात्व-  
 ड्मरिचं चापि नागकञ्चापि षट्पलम् ॥  
 ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशच्च पलान्यत्र चूर्णयित्वा  
 निधापयेत् ॥ ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जोर्णे  
 क्षीररसाशिनः ॥ ९० ॥ हन्यादर्शासि  
 सर्वाणि तथा सर्वोदराण्यपि ॥ गुल्मानपि  
 प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ९१ ॥  
 दीपयेदनलं मन्दं यक्ष्माणं चापकर्षति ॥  
 आढ्यवाते प्रतिश्याये पीनसे च हितो  
 मतः ॥ ९२ ॥ भवन्त्यनेन पुरुषाः शतं  
 वर्षाण्यनामयाः ॥ दीर्घायुषः प्रजनना  
 वलीपलितवर्जिताः ॥ ९३ ॥ गुडः श्री-  
 बाहुशालांऽयं रसायनवरो मतः ॥ दुर्ना-  
 मान्तकरो ह्येष दृष्टो वारसहस्रशः ॥  
 ॥ ९४ ॥ यावद्द्वीप्रलेपः स्याद्गुडो वा  
 तन्तुमान्भवेत् ॥ तोयधर्मे यदा पात्रे क्षिप्तो  
 न प्लवते गुडः ॥ ९५ ॥ क्षिप्तस्तु निश्चल-  
 म्तिष्ठेत्पतितस्तु न शीयति ॥ एष पाकः  
 समस्तानां गुडानां परिकीर्तितः ॥ ९६ ॥  
 सार्द्धं पलं पलं चार्द्धं भक्षयेद्गुडखण्डयोः ॥  
 श्रेष्ठा तु मध्यमा हीना मात्रोक्ता मुनिभि-  
 स्त्रिधा ॥ ९७ ॥

निघात ८ तोले, तेजवल ८ तोले, जमालगोटा ८ तोले,  
 चीता ८ तोले, कन्नूर ४ तोले, इन्द्रा-  
 गन् ८ तोले, नागकञ्चा ८ तोले, गोंड ८ तोले, मोथा  
 ४ तोले, मरिच ४ तोले, गुड ८ तोले, मिलावे  
 ३० तोले, तिप्ता ३० तोले, जीरा जमीकट ३० तोले,  
 इन मरिच ३० ८८ तोले जलम पचावे, जब जलने २  
 तोले १०० तोले १०० तोले, उन्मरिच जल, लै, फिर  
 २० १०० तोले १०० तोले गुड मिलावे १०० तोले, जब वद

करछीसे चिपकने लगजाय तब उतार लेवे, फिर उसमें  
 निसोत ८ तोले, तेजवल ८ तोले, जमीकट ८ तोले,  
 चीता ८ तोले, इलायची २४ तोले, दालचीनी २४ तोले,  
 कालीमिरच २४ तोले और नागकेसर २४ तोले, इनका  
 चूर्ण करके मिलादेवे, इसको बाहुशालगुड कहते हैं ।  
 रोगीका बलाबल विचार कर इसको भक्षण करावे । यह  
 गुड—सर्वप्रकारकी बवासीर, सर्वप्रकारके उदररोग, गुल्म,  
 प्रमेह, पाण्डुरोग और हलीमक रोगको नष्ट करे है, मन्दाग्नि-  
 को दीपन करे है और क्षयरोगको नष्ट करे है, आढ्यवात  
 प्रतिश्याय और पीनस रोगको दूर करे है । इस गुडको  
 सेवन करनेसे मनुष्य अधिक आयुवाले होते हैं, बहुत  
 सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं, वलीपलीत रोगसे निवृत्त होकर  
 सौ वर्षपर्यन्त रोगरहित जीते हैं । यह बाहुशाल गुड—सर्व  
 रसायनोंमें श्रेष्ठ है, यह निश्चय बवासीरको नष्ट करदेता है,  
 ऐसा हजारों बार देखा है । गुडपाककी परीक्षा—गुडका  
 पाक करछीसे चिपटने लगे, अथवा गुडमें तार निकलने  
 लगे और जलसे भरे हुए पात्रमें डालनेसे गुड तरे नहीं  
 किन्तु स्थिर रहे और ऊपरसे डालनेसे बिखरे नहीं तो गुड-  
 का पाक उत्तम बना जानना । सर्व प्रकारके गुडका पाक  
 इसीप्रकार जानना, गुड तथा खोंडकी उत्तम, मध्यम और  
 कनिष्ठ ये तीनप्रकारकी मात्रा हैं, इनमें छः रुपये भरकी उत्तम,  
 चार रुपये भरकी मध्यम और दो रुपये भरकी कनिष्ठ मात्रा  
 जाननी ॥ ८५-९७ ॥

अथ तिलादिमोदकः ।

तिलभल्लातकैः पथ्या गुडश्चेति समांशकैः ॥  
 दुर्नामश्वासकासघ्नं ग्रीहपाण्डुज्वराप-  
 हम् ॥ ९८ ॥

तिल, मिलावे, हरद और गुड, इन सबको समान भाग  
 लफ्फ लड्डू बनावे । ये बवासीर, श्वास, ग्यासी, ग्रीहा,  
 पाण्डुरोग और ज्वरको नष्ट करे है ॥ ९८ ॥

अथ सगुडाभया ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कण्टकुक्षिरुजापहा ॥  
 गुडजान्नाशयन्यायु भक्षिता सगुडा-  
 भया ॥ ९९ ॥

हरडके चूर्णमे गुड मिलाकर गोली बनावै, यह गोली पित्त, कफ, खुजली और कोखके दर्दको नष्ट करैहै । इन गोलीयोको भक्षण करते ही बवासीर नष्ट होजातीहै९९

अथ शंकरलोहः ।

प्रणम्य शंकरं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरम् ॥  
जीवितारोग्यमन्विच्छन्नारदोऽपृच्छदोऽव-  
रम् ॥ १०० ॥ सुखोपायेन हे नाथ शस्त्र-  
क्षाराग्निभिर्विना ॥ चिकित्सामर्शसां नृणां  
कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥ १०१ ॥ नारदस्य  
वचः श्रुत्वा नराणां हितकाम्यया ॥ अर्शसां  
नाशनं श्रेष्ठं भैषज्यं शंकरोऽवदत् ॥ १०२ ॥  
पाण्ड्यवज्रादिलोहानामादायान्यतमं शु-  
भम् ॥ कृत्वा निर्मलमादौ तु कुनट्या  
माक्षिकेण च ॥ १०३ ॥ पत्तूरमूलकल्केन  
लिम्पेद्रसयुतेन च ॥ बह्वौ निक्षिप्य विधि-  
वत्साराङ्गरेण निर्द्धमेत् ॥ १०४ ॥

कुनटी मनःशिला । माक्षिकं सुवर्णमाक्षि-  
कम् । पत्तूर पटकार इति लोके । रसः पारदः  
सारः काष्ठसारः ॥

ज्वाला च तस्य रोद्धव्या त्रिफलाया रसेन  
च ॥ ततो विज्ञाय गलितं शंकुनोद्ध ससु-  
च्छ्रयेत् ॥ १०५ ॥ त्रिफलाया रसे पूते  
तदाकृष्य तु निर्द्धमेत् ॥ न सम्यग्गालितं  
यत्तु तेनैव विधिना पुनः ॥ १०६ ॥ ध्मातं  
निर्वापयेत्तस्मिंल्लोहं तत्रिफलारसे ॥ यल्लोहं  
न मृतं तत्र पाच्यं भूयोऽपि पूर्ववत् १०७ ॥  
मारणान्न मृतं यच्च तत्पक्तव्यमलोहवत् ॥  
ततः संशोष्य विधिवच्चूर्णयेल्लोहभाजने ॥  
॥ १०८ ॥ लोहेन च तथा पिण्याहृषदा  
सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ कृत्वा लोहमये पात्रे मृत्ति-  
कालिप्तरन्ध्रके ॥ १०९ ॥ रसैः पंकोपमं  
कृत्वा तं पचेद्गोमयाम्बिना ॥ पुटानि  
क्रमशो दद्यात्पृथगेभिर्विधानतः ॥ ११० ॥  
त्रिफलार्द्रकभृङ्गाणां केशराजस्य बुद्धि-

मान् ॥ मानकन्दकभल्लातवह्नीनां सूर-  
णस्य च ॥ १११ ॥

भृङ्गः भङ्गरिआ । केशराजः केशराग इति ॥  
हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य तथैव च ॥  
पुटे पुटे चूर्णयित्वा लोहात्षोडशिकं पलम्  
॥ ११२ ॥ तन्मात्रं त्रिफलायाश्च पलेना-  
धिकमाहरेत् ॥ अष्टभागावशेषे तु रसे  
तस्याः पचेद् बुधः ॥ ११३ ॥ अष्टौ  
पलानि दत्त्वा च सर्पिषो लौहभाजने ॥  
ताम्रे वा लोहदर्व्या तु चालयेद्विधिपूर्व-  
कम् ॥ ११४ ॥ ततः पाकविधानज्ञः  
स्वच्छे चोद्ध्वं च सर्पिषि ॥ मृदुमध्या-  
दिभेदेन गृह्णीयात्पाकमन्यतः ॥ ११५ ॥  
आरम्भे तद्विधानज्ञः कृतकौतुकमङ्गलः ॥  
भ्रामरं घृतसंयुक्तं विलिह्याद्रातिकाक-  
मात् ॥ ११६ ॥

द्वादशरातिकापर्यन्तं यथाम्बिलं खादेत् ॥  
वर्द्धमानानुपानश्च गव्यक्षीरेण संयुतम् ॥  
गव्याभावे त्वजायाश्च स्निग्धवृष्यादिभोज-  
नम् ॥ ११७ ॥ सद्यो वह्निकरश्चैव भस्म-  
कश्च नियच्छति ॥ हन्ति वातं तथा पित्तं  
कुष्ठानि विषमज्वरम् ॥ ११८ ॥ गुल्माक्षिपा-  
ण्डुरोगांश्च निद्रालस्यमरोचकम् ॥ शूलश्च  
परिणामश्च प्रमेहमपवाहुकम् ॥ ११९ ॥  
श्वयथुं रुधिरस्त्रावं दुर्नामानं विशेषतः ॥  
बलकृद् बृंहणश्चैव कान्तिदं स्वरबोधनम्  
॥ १२० ॥ शरीरलाघवकरमारोग्यपुष्टि-  
वर्द्धनम् ॥ आयुष्यं श्रीकरश्चैव बलतेजस्करं  
शुभम् ॥ १२१ ॥ सश्रीकं पुत्रजननं वली-  
पलितनाशनम् ॥ दुर्नामारिरयं नाम्ना दृष्टो  
वारसहस्रशः ॥ १२२ ॥ अनेनार्शासि दह्य-  
न्ते यथा तूलश्च वह्निना ॥ सौकुमार्याल्प-  
कायत्वान्मद्यसेवी यदा नरः ॥ १२३ ॥

जीर्णमद्यादियुक्तादिभोजनैः सह दाप-  
येत् ॥ लावतित्तिरवर्तीरमयूरशशकादयः  
॥ १२४ ॥ चटकः कलविकश्च वर्तका  
हरितालकः ॥ श्येनकश्च बृहल्लावो वन-  
विष्किरकादयः ॥ पारावतमृगादीनां  
मांसं जांगलकं शुभम् ॥ १२५ ॥

वर्तीरः वगेरीति लोके । वनचटकः । कल  
विको गृहचटकः । वर्तका वटेरी इति लोके ।  
हरितालकः हरिलः हारिल इति लोके ।  
विष्किरा वर्तकादयः ॥

मद्गुरो रोहितः श्रेष्ठः शकुलश्च विशेषतः ॥  
मत्स्यराजा इति प्रोक्ता हितमत्स्याय देहि-  
ने ॥ १२६ ॥ वृन्ताकस्य फलं शस्तं पटोलं  
बृहतीफलम् ॥ प्रलम्बा भीरुवेत्राग्रताडकं  
तण्डुलीयकम् ॥ १२७ ॥

प्रलम्बा लम्बालावूः । भीरुः शतावरी ।  
पत्रम् पत्रशाकम् । ताडकं देवदाली अकर-  
क्रेति लोके । तथा च निषण्ठौ धन्वन्तरिः-  
“जीमूतको देवताडः कृतकोशो गरागरी ।  
प्रोक्ताखुविषहृष्टेणी देवदाली च ताडकः ॥  
देवदाली रसं तिक्ता कफार्शः शोथपाण्डुताः ।  
नाशयेत्” इत्यादि ॥

वास्तुकं धान्यशाकश्च चित्रकं चक्रमर्द-  
कम् ॥ नालिकेरश्च खर्जूरं दाडिमं लवली-  
फलम् ॥ १२८ ॥  
चक्रमर्दकं चकवडशाकम् ॥

शृङ्गाटकश्च पक्वाम्रं द्राक्षातालफलानि च ॥  
हितान्येतानि वस्तूनि लोहमेतत्समभ्रताम् ॥  
नाश्रीयाल्लघुचं कोलकर्कन्धुवदराणि च ॥  
॥ १२९ ॥ जम्बीरं बीजपूरश्च तिलिन्ती  
करमर्दकम् ॥

कोलं क्षुद्रवदरम् । कर्कन्धु बृहद्वदरम् ॥

आनूपानि च मांसानि क्रकरं पुण्ड्रकाणि  
च ॥ १३० ॥

क्रकरं करकरम् ॥

हंससारसदात्यूहचाषकौश्वलाकिकाः । मा-  
नकन्दं कसेरूणि कतकश्च कलिङ्गकम् १३१ ॥  
दात्यूहः नीलकण्ठः, चाषः [डाकु], कलि-  
ङ्गकम् [ तरबूज ] ॥

कूष्माण्डकश्च कर्कोटं क्रमुकश्च विशेषतः ॥  
कटुकं कालशाकश्च कुण्डुरुः कर्कटी तथा ॥  
ककारादीनि सर्वाणि द्विदलानि च वर्जये-  
त् ॥ १३२ ॥ शंकरेण समाख्यातो यक्षराजा-  
नुकम्पया ॥ जगतामुपकाराय दुर्नामारिरयं  
ध्रुवम् ॥ १३३ ॥ स्थानाच्चलति मेरुश्च  
पृथ्वी पयति वायुना ॥ पतन्ति चन्द्रताराश्च  
मिथ्या चेदहमध्रुवम् ॥ १३४ ॥ ब्रह्मघ्नाश्च  
कृतघ्नाश्च क्रूरा येऽसत्यवादिनः ॥ वर्ज-  
नीयाः सधर्मेण भिषजा गुरुनिन्दकाः ॥  
॥ १३५ ॥ मुनिरसपिष्ठविडंगं मुनिरसलीढं  
चिरस्थितं धर्मे ॥ द्रावयति लोहदोषान्व-  
ह्निर्ववनीतपिण्डमिव ॥ १३६ ॥

मुनिरत्रागस्त्यः ॥

काले मलप्रवृत्तिर्लाघवमुदरं विशुद्धिरुद्गारे ।  
अगेपु नावसादो मनःप्रसादोऽस्य परिणके  
॥ १३७ ॥ क्रिमिरिपुचूर्णं लीढं सहितं  
स्वरसेन वंगसेनस्य ॥ क्षपयत्यचिरात्रियतं  
लोहोऽजीर्णोद्भवं शूलम् ॥ १३८ ॥

वंगसेनस्य अगस्तेः ॥

भवेद्यद्यतिसारस्तु दुग्धं पीत्वा तु तं जयेत् ॥  
गुञ्जाद्वादशकादूर्द्ध्वं वृद्धिरस्य भयप्रदा १३९ ॥  
शंकरप्रणीतं लोहम् ॥

एक समय जीवोंके जीवन और आगेवकी इच्छा  
कग्नेवाले नान्दगुनि सम्पूर्ण विषयके कव्याणरूप

रुद्र, हाथमें दण्डको धारण करनेवाले, जगत्प्रभु श्रीमहादे-  
वजीको प्रमाण करके पूछने लगे कि—हे विश्वनाथ ! ऐसा  
कोई सहज उपाय है जो शस्त्र क्षारकर्म और अग्निके बिना  
अर्श ( बवासीर ) रोगवाले मनुष्योंकी चिकित्सा होजाय  
वह आप कृपा करके कहिये, इसप्रकार नारदजीकी,  
प्रार्थनाको सुनकर महादेवजी मनुष्योंके हित करनेकी इ-  
च्छासे अर्शरोगको दूरकरनेवाली यह परमोत्तम औषधि  
बताने लगे, कि—हे नारद ! पाण्ड्य अथवा वज्रादि लोहोंमेंसे  
कोई उत्तम लोहा देकर पत्र करावै, उनको प्रथम शुद्ध  
करके पश्चात् मैनाशिल, सोनामाखी और पत्तूर (शालिच )  
की जड़का कल्क और पारा इनका लेप करै, फिर विधिपूर्-  
वक बेरीके कोयलोंमें उस लोहेको रखकर धमावै, जब उस-  
मेंसे आगकी लपटें निकलने लगे तब उसको त्रिफलेके  
रसमें बुझादेवै, पश्चात् लोहेको गलाजानकर सडासीसे उस  
लोहेके पत्रोंको उठाकर छनेहुए त्रिफलेके रसमें छोड़ देवे,  
लोहेका जितना भाग अच्छे प्रकारसे न गला हो उसको  
फिर उपरोक्त विधिसे अग्निके तपाकर त्रिफलेके रसमें  
बुझावै, फिर भी जो उसमेंसे जितना नहीं गले उसको  
दुबारा उक्त विधिसे अग्निके तपाकर त्रिफलेके रसमें बुझा-  
देवै, इसप्रकार बारंबार तपानेसे भी जो न गले तो अन्य-  
थातुओंकी तरह पकाकर त्रिफलेके रसमें बुझावै, पश्चात्  
इस लोहेको त्रिफलेके रसमें बुझाकर धूपमें सुखावै,  
पश्चात् इसको लोहेके वासनमें डालकर चूर्ण कर लेवै,  
फिर लोहेकी मूसलीसे सिलपर महीन पीसलेवै, फिर इस  
चूर्णको लोहेके वासनमें डालकर त्रिफलेके रसकी कीचसी  
बनाकर वासनपर कपरमट्टी करके मुख बदकर अन्ने  
उपलोंकी अग्निके गजपुटमें पकावै, पश्चात् अनुक्रमसे  
त्रिफला, अदरक, भांगरा, कालाभांगरा, मानकद, भिलावे,  
चीता, जमीकद, हस्तिकर्ण, पलाश ( टाक ), शूहर इन-  
के रसके द्वारा गजपुटमें पकावै । प्रत्येक पुटमें इस लोहेका  
चूर्ण ६४ तोले और त्रिफलेका रस ६८ तोले डालना  
चाहिये । यहां त्रिफलेका रस ऐसा लेना चाहिये कि, जो  
अठगुने जलमें पकाकर एक भाग जल शेष रहा हो, फिर  
लोहेके अथवा तांबेके बरतनमें ३२ तोले घी और वह द्वाथ

एक एक पुट देकर कमसे कम पच्चीस ( २५ ) पुट देवै  
अर्थात् ढाईसौ ( २५० ) दिनमें यह लोहा सिद्ध करै यह बृद्ध  
वैद्योंका मत है इसप्रकार करनेसे लोहा पानीमें तैरने लगता है।

छोड़कर उसमें वह लोहा डालकर विधिपूर्वक पकावै और  
लोहेकी करछीसे चलाता रहै, पाकको जाननेवाला वैद्य दे-  
खता रहै जब कि, स्वच्छ घी तैरकर ऊपर आ जावै तब  
मृदु, मध्य और तीक्ष्ण जैसा पाक करना हो वैसा पकाकर  
उतारलेवै । इस शंकरलोहेके प्रयोगके आरम्भमें उत्सव  
और मंगल कार्य करने चाहिये, इस लोहेको सहत तथा  
घीमें मिलाकर पहिले दिन एक रत्ती, दूसरे दिन दो रत्ती  
इस प्रकार एक एक रत्ती बढ़ाताहुआ अग्निके बलानुसार  
१२ रत्तीतक सेवनकरै, वर्द्धमान पिप्पलीकी समान इसके  
ऊपर गायके दूधका और जो गायका दूध न मिले तो बक-  
रीके दूधका अनुपान करै, तथा स्निग्ध और वृष्य पदार्थोंका  
भोजन करै । यह शंकरलोह जठाराग्निको तत्काल उत्पन्न  
करैहै, भस्मकरोगको नष्ट करैहै, वात, पित्त, कोढ़, विष-  
मज्वर, गुल्म, नेत्ररोग, पाण्डुरोग, निद्रा, आलस्य, अरु-  
चि, शूल, परिणामशूल, प्रमेह, अपवाहुक, सूजन और  
रुधिरस्त्रावको दूर करैहै, विशेष करके बवासीरको नष्ट करै  
है, इस उत्तम लोहेको सेवन करनेसे बलकी वृद्धि होतीहै,  
पुष्टि होताहै, काति बढ़तीहै, स्वर सुन्दर होताहै, शरीर-  
में लघुता उत्पन्न होतीहै, आरोग्यता और पुष्टिकी वृद्धि  
होतीहै, आयुकी वृद्धि होतीहै, लक्ष्मीकी प्राप्ति होतीहै,  
प्रताप और शोभा बढ़तीहै, सर्व गुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न  
होतेहैं, बली ( शरीरमें बलोका पडना ) पलित ( बिना  
समय वालोंका सफेद होजाना ) नाशक है । इस शंकर-  
लोहका नाम दुर्नामारि भी है इससे बवासीर शान्त होजा-  
तीहै, ऐसा हजारों बार देखा है कि—जिसप्रकार अग्निके  
रुई जलजातीहै, उसी प्रकार इस लोहसे बवासीर दूर  
होजातीहै । जो रोगी सुकुमार और कोमल शरीरवाले हैं  
और मदिराको सेवन करतेहैं, उनको पुरानी मदिरा आदि  
सयुक्त भोजनके साथ देवै । इस लोहको सेवन करने-  
वाले मनुष्योंको लवा, तीतर, बगेरा, मोर, खरगोश, चि-  
डा, जगली चिडा, बत्तक, हरियल, सिकरा, बड़ा लवा और  
वनमें रहनेवाले विष्किरादि परेवा, कबूतर और जगली  
हिरन आदि पशुपक्षियोंका मांस हितकारी है, जिन मनु-  
ष्योंको मछली खानेका अभ्यास है, उनके लिये मद्गुर,  
रोहू, और शकुल, ये सब बड़ी मछली हितकारी हैं ।  
वैगन, परवल, कटेरीके फल, लम्बी तोम्बी, सतावरके पत्ते,  
बेतके अग्रभागका शाक, देवदाली ( वदाल ), चौलाई  
बथुआ, धनियेका शाक, चीता, चकवड ( पमाड ),



नारियल, खजूर ( छहारे ), अनार, हरफारेवडी, सिगाडे, पपे आम, दाख और तांडके फल, ये सब पदार्थ यह लोह सेवन करनेवाले मनुष्योंको हितकारी हैं । इस लोहको सेवन करनेवाला मनुष्य—बड़हल, बेर, बड़े बेर, जम्भीरी-नींबू, चित्री नींबू, दमली, करौंदा, अनूपदेशके जीवोंका मांस, ककर ( कंकडा ), पुट्क, हस, सारम, दाल्यूह ( पपैया ), नीलकण्ठ, कौंच ( कुज ) और बगला, इन सबका मांस मानकन्द, कसेरु, निर्मलीफल, तरबूज, पेठा, ककौठा, सुपारी, कटवे परवल, नाईका शाक, कुण्टुब, ककड़ी और समस्त ककुरादि पदार्थ और द्विदल अन्न, ( चना आदि ) इन सबका त्याग करना चाहिये । ये दुर्नामागि लोह श्रीमहादेवजीने जगत्के उपकारके लिये और कुम्भके ऊपर दया करके कहाई, इससे बवासीर अवश्य नष्ट होताई । महादेवजी कहतेहैं कि—जो मैं यह असत्य कहताहूँ तो अपने स्थानसे सुमेरु पर्वत हटजाय, पृथ्वी लौट जाय, चन्द्रमा और तारागण आकाशसे पतित होजायें, ब्रह्मचाती, कृतघ्नी, क्रूर, असत्यवादी और गुणनिन्दक, ऐसे मनुष्योंको यह लोहा कदापि नहीं देना चाहिये । इस लोहके सेवन करनेसे जो शरीरमें कोई विकार उत्पन्न होय तो अगस्तिकाके रसमें वायुविटगको पीनकर बहुत देरतक धूपमें रखदेव, जब सूखजाय तब चूर्णकरके अगस्तिकाके रसके साथ चाट । जिसप्रकार अग्नि मांसनके पिंड ( लौंदा ), को पिघला देतीहै उसीप्रकार यह लोहेके दोषोंको पिघला देताई । पेटमें इस चूर्णके पकनेके समय मल ठीक समय पर उतर्गताई, पेटमें हल्कापन होताई, उकार शुद्ध आतीहै, अग्नमें ग्लानि नहीं रहती और मनमें प्रमत्तता होतीहै । वायुजिह्वा चूर्ण करके अगस्तिकाके रसमें मिलाकर चाटता लोहक प्रतीर्षने उत्पन्न हुआ शूल तत्काल अवश्य नष्ट होताई । यदि इस लोहके सेवन करनेमें अतीव उत्पन्न होय तो दूध पीना चाहिये, इसमें अर्नामर नष्ट होजाता है । इस लोहको रात्रि ग्नीस अधिक भक्षण करें तो भय उत्पन्न होताई, इसकाग्न रात्रि ग्नीस अधिक नहीं खाना चाहिये ॥ १८०—१८१ ॥

अथ रक्तांशश्चिकित्सा ।

रक्तांशमापेक्षेत रक्तमादौ स्रवद्रिपक ॥  
दुष्टांशे निःशृते न रयुः शूलानाहामृगामयाः ॥ १८० ॥ चन्दनकिराततित्तकध-

न्वयवासाः सनागराः कथिताः ॥  
रक्तांशसां प्रशमना दार्वात्वगुशीरानि-  
निम्बाश्च ॥ १८१ ॥

चन्दनमत्र रक्तम् । नागरमत्र मुस्तकम् ॥

रुधिरकी बवासीरमें वैद्य निकलते हुए रुधिरको पहिन्हे ही नहीं रोकै, क्योंकि दूषित रुधिरको रोकनेसे शूल, अकारा और रक्तके विकार उत्पन्न होतेहैं ॥ १४० ॥

लालचन्दन, चिरायता, धमासा, नागरमोथा, दारु हलदी, दालचीनी, खस और नीम, इनका काथ बनाकर पीनेसे रुधिरकी बवासीर नष्ट होजातीहै इसको चन्दनादिकाथ कहतेहैं ॥ १४१ ॥

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्करा-  
भ्यासात् ॥ दधिसरमथिताभ्यासाद्बुद्धजाः  
शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥ १४२ ॥ दध्नस्तूप-  
रि यो भागो घनस्तेहयुतः सरः ॥ मथितं  
सररहितं निर्जलं वस्त्रपूतं दधि ॥ १४३ ॥

नैनी घी और तिल मिलाकर नित्य खानेसे, नागकेशर, नैनीघी और मिश्री इनको एकत्र मिलाकर भक्षण करनेसे अथवा दहीकी मलाई और मलाई रहित मथाहुआ दही, इनको सेवन करनेसे खुनी बवासीर दूर होजातीहै, दहीके ऊपरका जो चिकना भाग रहताहै उसको 'सर' कहतेहैं सररहित और कपड़ेमें छनाहुआ निर्जल दहीको 'मथित' कहतेहैं ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

सपञ्चकेशरं क्षौद्रं नवनीतं नवं लिहन् ॥  
सिताकेशरसंयुक्तं रक्तांशसि सुखी  
भवेत् ॥ १४४ ॥

कमलकी केशर, सहत, नवीन नैनी घी, मिश्री और नागकेशर, इनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे रुधिरकी बवासीरवाला रोगी सुखी होताहै ॥ ४४ ॥

पयसा शृतेन यूपः सतीनमुद्राढकी-  
ममूराणाम् ॥ ओदनमद्यादम्लैः शालि-

श्यामाककोद्वजम् ॥ शशहरिणलावमांसैः  
कपिञ्जलैरेणमांसैश्च ॥ १४५ ॥  
ओदनमद्यादम्लैरीषत्सुगन्धैश्च ॥

मटर, मूग, अरहर और मसूर, इनका किञ्चित् खट्टे और सुगन्धियुक्त किये हुए यूपके साथ, औटाये हुए दूधके साथ और खरगोश, हिरन, लवा, तीतर और काले हिरनके मासके साथ शाली चावलेंका, समेका और कोदोका भात खाय तो रुधिरसंबन्धी बवासीर नष्ट होजाती है ॥ १४५ ॥

अथ समंगादिदुग्धम् ।

समंगोत्पलमोचाकतिरीटोत्पलचन्दनैः ॥  
सिद्धं छागीपयो दद्याद्बुद्धज शोणिता-  
त्मके ॥ १४६ ॥

समंगा लज्जालूः । मोचाको मोचरसः ।  
तिरीटो लोधः । चन्दनं रक्तम् । इति समंगा-  
दिदुग्धम् ॥

लज्जावती, कमल, मोचरस, लोध और लालचन्दन, इनको बकरीके दूधमें औटाकर उस दूधको पीनेसे रुधिरकी बवासीर दूर होती है ॥ १४६ ॥

अथ क्षारसूत्रम् ।

भावितं रजनीचूर्णं स्नुहीक्षीरैः पुनःपुनः ॥  
बन्धनात्सदृढं सूत्रं छिनत्त्यशौ भगन्द-  
रम् ॥ १४७ ॥

हलदीके चूर्ण और शूहरके दूधमें सूतको बारंबार भावना देकर उस सूतसे गुदाके अंकुरोंको दृढ बाधनेसे बवासीर और भगदर नष्ट होजाते हैं ॥ १४७ ॥

अथ नासिकाद्यर्शश्चिकित्सा ।

नासानाभिसमुत्थेषु तथा मेढ्रादिजेष्वपि ॥  
त्रिष्वप्यर्शः सु कुर्वीत तत्रतत्र यथो-  
चितम् ॥ १४८ ॥

नाक, नाभि और लिग आदिमें उत्पन्न हुई बवासीरकी चिकित्सा यथायोग्य करनी चाहिये ॥ १४८ ॥

अथ चर्मकीलचिकित्सा ।

चर्मकीलन्तु संछिद्य दहेक्षारेण चाग्निना ॥

चर्मकीलको प्रथम काटकर क्षार अथवा अग्निसे जलादेना चाहिये ॥

अथाशौऽपथ्यानि ।

वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठयानान्युत्कटकासनम् ॥  
॥ १४९ ॥ यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः  
परिवर्जयेत् ॥ १५० ॥

इत्यशौधिकारः ।

मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, स्त्रीका स्पर्श, ह्याथी घोड़े आदिकी सवारी, उकरू बैठना और जिस जिस दोषकी अधिकतावाली बवासीर हो उस उस दोषको बढ़ा-  
नेवाला अन्न, इन सबको त्यागदेवै ॥ १४९ ॥ १५० ॥

इति अशौऽधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ जठराग्निविकाराऽधिकारः ।

तत्र सन्निकृष्टनिदानपूर्वकजठराग्नि-  
विकारसमस्थिती ।

कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरो-  
ऽनलः ॥ मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति  
चतुर्विधः ॥ १ ॥

जठराग्नि कफकी अधिकतासे मंद होती है, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्ण होती है, वातकी अधिकतासे विषम होती है और तीनों दोषोंकी समतासे समहोती है, इस प्रकार जठराग्नि चार प्रकारकी होती है ॥ १ ॥

अथ मदाग्निलक्षणम् ।

स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्मात्रा भुक्ता विप-  
च्यते ॥ छर्दिः सादः प्रसेकः स्याच्छिरो-  
जठरगौरवम् ॥ २ ॥

मन्दाग्निवाले मनुष्यको थोड़ा भोजन किया हुआ भी नहीं पचता है, वमन होती है, ग्लानि रहती है, लार गिरती है, शिर और पेटमें भारीपन रहता है ॥ २ ॥

अथ तीक्ष्णाग्निलक्षणम् ।

मात्रातिमात्राप्यशिता तीक्ष्णाग्नेः पच्यते  
सुखम् ॥ अत एव हि केनापि मतस्ती-  
क्ष्णाग्निरुत्तमः ॥ ३ ॥

तीक्ष्ण अग्निवाले मनुष्यको बहुत भोजन किया हुआ भी सहजमें पच जाता है, इसकारण कोई वैद्य तीक्ष्ण अग्निको उत्तम मानते हैं ॥ ३ ॥

अथ विषमामिलक्षणम् ।

अशिता खलु मात्रापि विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥ कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचित् विपच्यते ॥ ४ ॥ तस्याध्मानगुदावर्तं शूलं जठरगौरवम् ॥ प्रवाहणमतीसारस्तथा स्यादन्त्रकूजनम् ॥ ५ ॥

विषम अग्निवाले मनुष्यको किया हुआ भोजन कभी अच्छे प्रकारसे पचजाता है और कभी नहीं पचजाता है, विषमाम्निमें अफरा, उदावर्त, शूल, पेटमें भारीपन, अघोवायुके त्यागते समय कफयुक्त विष्टाका गिरना, अतीसार और आँतोंका गडगडाहट, यह सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ समामिलक्षणम् ।

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ॥ सोऽग्निरुत्तम एतेषु न तीक्ष्णस्तूत्तमो मतः ॥ ६ ॥

समाम्निवाले मनुष्यको परिमाणका किया हुआ भोजन अच्छे प्रकारसे पच जाता है, चारों प्रकारकी अग्निमें समाग्नि उत्तम और तीक्ष्णाग्नि उत्तम नहीं है ॥ ६ ॥

स मधुरन्निग्धादिभोज्यः समाग्निः उत्तमः । तर्हि कथं तीक्ष्णाग्नेर्विकारमध्ये गणना ? उच्यते, समोऽग्निः क्षुधाविघातात् आशु एव तथा विकारं न करोति । तीक्ष्णस्तु स्वल्पकालमपि क्षुधाविघातादाश्वेव पित्तिकान् विकारान् कुरुते ॥

तीक्ष्णः पित्तसमुत्थानान्विषमो वातहेतुकान् ॥ तथा करोति मन्दाग्निर्विकारान् कफसम्भवान् ॥ ७ ॥

गुरु और निम्न आदि भोजन करनेपर भी जो अग्नि समान रहता है उसको भी उत्तम जानना ।

तीक्ष्ण-अग्निमें क्षुधा हुआ भोजन अच्छे प्रकारसे पचजाता है उद्योग उत्तम कहते हैं, तब तीक्ष्ण अग्निको विकारोंमें नगण्य कहा है ।

समाधान—समान अग्निवाला मनुष्य भूख लगनेपर यदि थोड़ी देरतक भोजन नहीं करे तो वह कुछ विकार नहीं करती और तीक्ष्ण अग्नि तो भूखके समय भोजन न मिलनेपर तत्काल पित्तके विकारोंको उत्पन्न करती है, इसकारण तीक्ष्ण अग्निको विकारोंमें कहा है । कहा भी है कि—“तीक्ष्ण अग्नि पित्तसम्बन्धी और विषम अग्नि वात-सम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करे है और मन्दाग्नि कफके विकारोंको उत्पन्न करे है” ॥ ७ ॥

अथ भस्मकरोगनिदानम् ।

वह्निर्तिरूक्षान्नभुजां नराणां क्षीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ ॥ अतिप्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्निर्भुक्तं क्षणाद्भस्म करोति यस्मात् ॥ तस्मादसौ भस्मकसंज्ञकोऽभूदुपेक्षितोऽयं पचते च धातून् ॥ ८ ॥

अत्यंत तीक्ष्ण और रूक्ष अन्नको भोजन करनेवाले मनुष्योंके कफ क्षीण होकर वात और पित्तकी वृद्धि होकर जठराग्नि अत्यंत बढ़कर वातके साथ मिलकर जो कुछ भोजन किया जाता है उसको क्षणमात्रमें भस्म कर देती है, इसीलिये इस अग्निरूप रोगको भस्मक कहते हैं, इसमें भूख लगनेपर जो भोजन न मिले तो रस रक्तादि धातुओंको भस्म करने लगता है ॥ ८ ॥

अथ भस्मकोपद्रवारिष्ठे ।

तृट्स्वेददाहमूर्च्छादीन्कृत्वैषोऽत्यग्निसम्भवात् ॥ पक्त्वान्नमाशु धात्वादीन्स क्षिप्रं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ९ ॥

यह भस्मक रोग अग्निकी अत्यंत अधिकतासे तृप्ता, पसीना, दाह और मूर्च्छा आदिको उत्पन्न करके अन्नको तत्काल पचाकर शीघ्रही धातुओंका नाश करे है ॥ ९ ॥

अथाजीर्णविप्रकृष्टनिदानम् ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ कालेऽपि सात्त्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ १० ॥

सन्धारणात् क्षुधामूत्रपुरीषादीनाम् । स्वप्नविपर्ययात् दिवाशयनादात्रौ जागरणात्

लघु चापि इति अपिशब्दात् स्निग्धोष्णा-  
दिगुणयुक्तमपि । अन्यच्च—

तृष्णाभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुदैन्य-  
निपीडितेन॥प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं  
न सम्यक् परिपाकमेति ॥ ११ ॥

परिप्लुतेन व्याप्तेन ॥

अत्यन्त जल पीनेसे, विषम (कभी कम, कभी ज्यादा)  
भोजन करनेसे, धुधा, मूत्र और मलादिके वेगोको रोकनेसे,  
दिनभे सोनेसे और रातमें जागनेसे, मनुष्योंके समयपर,  
स्वभावके अनुसार, हलका और स्निग्ध, उष्ण भोजन  
किया हुआ भी अन्न पचता नहीं है ॥ १० ॥

और भी कारण कहते हैं कि—तृषासे, भयसे और  
क्रोधसे तथा लोभसे, रोग और दीनतासे पीडित अथवा  
द्वेषसे संयुक्त मनुष्योंके किया हुआ भोजन अच्छे प्रकार  
नहीं पचता है ॥ ११ ॥

अथ बहुभोजनमेवाजीर्णहेतुस्तच्चाने-  
करोगकारणमित्याह ।

अनात्मवन्तः पशुवद्भुज्यन्ते येऽप्रमाणतः ॥  
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति  
हि ॥ १२ ॥

अनात्मवन्तः अबुद्धिमन्तः । रोगानीकस्य  
विषूच्यादेर्मूलं कारणम् ॥

प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणा-  
म् ॥ तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्दिन-  
श्यति ॥ १३ ॥

अजीर्णविनाशाद्दिनश्यति । रोगसंघातः  
रोगसमूहः ॥

जो मूर्ख मनुष्य पशुओंकी समान अप्रमाण (अन्धा-  
धुन्ध) भोजन करतेहैं उनके विषूचिकादि रोगोंका मूल  
कारणरूप अजीर्ण उत्पन्न होता है । और भी लिखा है  
कि—प्रायः आहारकी विषमतासे मनुष्योंके अजीर्ण रोग  
उत्पन्न होता है, उस अजीर्णके होनेसे रोगोंका समूह उत्पन्न  
होता है और उस अजीर्णके नष्ट होनेसे वे सब रोग नष्ट  
होजातेहैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथाजीर्णसामान्यलक्षणम् ।

ग्लानिगौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढताः ॥  
विवन्धो वा प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्ण-  
लक्षणम् ॥ १४ ॥

मारुतमूढतावायोरवरोधः विवन्धः मला-  
प्रवृत्तिः ॥

ग्लानि, भारीपन, विष्टम्भ, भ्रम, अधोवायुका रुकना  
और मलका अवरोध अथवा प्रवृत्ति, यह अजीर्णके  
सामान्य लक्षण है ॥ १४ ॥

अथसन्निकृष्टकारणसहिताजीर्णभेदाः ।  
आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलै-  
स्त्रिभिः ॥ अजीर्णं केचिदीक्षन्ते चतुर्थं  
रसशेषतः ॥ १५ ॥

त्रिभिरित्येकशो न तु मिलितैः । केचित्तु  
सुश्रुतादयः । रसशेषतः भुक्तस्य पक्वस्य सार-  
भूतो यो द्रवः स रसः सोपि पच्यते भुक्तस्य  
सारभूतो यो द्रवः स चापक्वः सारः रसशेषः  
तस्माच्चतुर्थमजीर्णम् । ननु आमाजीर्णाद्रस-  
शेषस्य को भेदः ? उच्यते—आमं मधुरतां  
गतमपक्वमन्नमेव । रसशेषस्तु भुक्तस्य पक्वस्य  
सारभूतो यो द्रवः स चापक्व इति भेदः ॥

अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि  
च ॥ वदन्ति षष्ठश्चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवा-  
सरम् ॥ १६ ॥

निर्दोषं गौरवभ्रमगूलादिदोषाऽजनकम् ।  
दिनपाकि च अहोरात्रेण पाकं यातीति  
स्वभावः । यत्तु मात्राकालसात्म्यादिदोषादि-  
नान्तरे पाकं याति तद्दिनपाकि । अत एव  
याममध्ये न भोक्तव्यमिति वचनम् ॥



प्राकृतमविकारकम् । प्रतिवासरं प्रतिदि-  
नभावि । भुक्तं यावन्न जीर्णं तावदजीर्णमि-  
त्युच्यते । एतदभिधानस्य प्रयोजनं पाकार्थं  
वामपार्श्वे शयनं प्रियशब्दसेवनादिकम् । न  
चात्राहारस्य निषेधः । “प्रातराशं त्वजीर्णं तु  
सायमाशो न दुष्यति” इति वचनेन साय-  
माशस्यावश्यं कर्तव्यत्वात् ॥

कफसे आमार्जीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण और वातकी  
अधिकतासे विष्टब्धाजीर्ण होता है, कितनेक मुश्रुतादि  
आचार्य कहते हैं कि—“क्रियेहुए भोजनका पका हुआ  
अन्नादिकका जो साररूप द्रव भाग है, उस द्रवभागमें  
भी पकते पकते जो अपक्व ( कच्चा ) भाग जेप रहजाता है  
उसको रसशेष कहते हैं और उस रसशेषमें चौथा रसा-  
जीर्ण होता है” ।

शका—फिर आमार्जीर्ण और रसशेषार्जीर्णम भेदही  
क्या है ? ।

समाधान—मधुरतासे युक्त जो अपक्व अन्न है उसने  
उत्पन्न हुए अजीर्णको आमार्जीर्ण कहते हैं, भोजन क्रिये  
पश्चात् पकेहुए अन्नका साररूप द्रवभाग अपक्व रहगया हो  
उससे उत्पन्न हुए अजीर्णको रसशेषार्जीर्ण कहते हैं, इस  
कारण आमार्जीर्ण और रसशेषार्जीर्ण परस्पर भिन्न हैं ।

कितनेक आचार्य कहते हैं कि—“भारीपन, भ्रम और  
शूल इत्यादि दोषोंको नहीं उत्पन्न करनेवाला जो अन्न  
मात्रा काल तथा सात्म्य आदि दोषोंसे उस दिन नहीं पचै,  
किन्तु दूसरे दिन पचै, यह दिनपाकी पाचवॉ अजीर्ण है”  
इसलिये इस अजीर्णमें भोजनके बाद एक प्रहरतक भोजन  
नहीं करना चाहिये ऐसा कहा है ।

कितनेक वैया कहते हैं कि—“विकारोंको उत्पन्न नहीं  
करनेवाला जो अजीर्ण है वह प्रतिदिन रहता है अर्थात्  
कियाहुआ भोजन जयतक पचै तबतक उसकी अजीर्ण  
संज्ञा है यह छटा अजीर्ण है । इस छटे अजीर्ण कहनेका  
प्रयोजन यही है कि—इसके पचानेको वाई करवट लेकर  
छटना, छोटपोटकर सोना और मिष्ट गायन कथा आदि  
प्रिय शब्द सुनना चाहिये । क्योंकि प्रातःकाल भोजन  
करनेसे उत्पन्न हुए अजीर्णमें सध्याके समय भोजन करना  
कुछ हानिकारक नहीं है इस वचनानुसार रात्रिमें अवश्य  
भोजन करना चाहिये ॥ १५॥१६ ॥

अथामार्जीर्णलक्षणम् ।

तत्रामं गुरुतांत्लेशः शोथो गण्डाक्षिकू-  
टगः ॥ उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धं  
प्रवर्तते ॥ १७ ॥

गुरुता उदराद्गयाः । उत्लेशः उपस्थितव-  
मनमिव । अक्षिकूटोऽक्षिपुटकः ॥

आमार्जीर्णमें पेट और अगोम भारीपन होता है,  
पमन कीली उन्नी होती है, गाल और आर्षोके पल्लोंपर  
गूजन और जेमा भोजन किया है उर्मीके अनुसार टकार  
आती है ॥ १७ ॥

अथ विदग्धाजीर्णलक्षणम् ।

विदग्धे भ्रमतृणमूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा  
रुजः ॥ उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च  
जायते ॥ १८ ॥

विविधा रुजः उपचोषदाहादयः ॥

विदग्धाजीर्णमें भ्रम होता है, तृषा लगती है, मूर्च्छा  
होती है, पित्तके कारण मनाप, चोप और दाहादिक अनेक  
प्रकारकी व्या होती है, बुद्धे युक्त नष्टी टकार आती है,  
पसीना और दाह होता है ॥ १८ ॥

अथ विष्टब्धाजीर्णलक्षणम् ।

विष्टब्धशूलमाध्मानं विविधा वातवेद-  
नाः ॥ मलवाताऽप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहो-  
द्गपीडनम् ॥ १९ ॥

वातवेदनाः तोदभेदादयः । स्तम्भोऽङ्गाना-  
नाम् । मोहो मूर्च्छा ॥

विष्टब्धाजीर्णमें शूल, अफारा, तोडने भेदने ( छेदने )  
सरीखी अनेक वायुकी पीडा होती है, मल और वायुका  
अवरोध, शरीरका जकडना, अगोम पीडा और मूर्च्छा  
होती है ॥ १९ ॥

अथ रसशेषार्जीर्णलक्षणम् ।

रसशेषेऽन्नविदग्ध हृदयाशुद्धिगौरवे ॥ २० ॥

रसशेषार्जीर्णमें हृदयके अशुद्ध होनेसे और भारापन  
होनेसे अन्नमें अरुचि होती है ॥ २० ॥

अथाजीर्णोपद्रवाः ।

मूच्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं  
भ्रमः ॥ उपद्रवा भवन्त्येते मरणश्चाप्य-  
जीर्णतः ॥ २१ ॥

अजीर्णसे मूच्छा, प्रलाप, वमन, लारका गिरना,  
ग्लानि और भ्रम, ये सब उपद्रव होतेहैं और मरण भी  
होताहै ॥ २१ ॥

अथोक्ताजीर्णे विषूच्यादिरोगाः ।

आमं विदग्धं विष्टब्धमित्यजीर्णं यदी-  
रितम् ॥ विषूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि  
विलम्बिका ॥ २२ ॥

नात्र यथासंख्यम् । तदा विष्टब्धाद्वि-  
लम्बिका भवितुमर्हति । सा च कफवा-  
ताभ्यां भवतीति एकैकतोऽजीर्णाद्विषूच्या-  
दित्रयोत्पत्तिः ॥

आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण, ये जो  
तीन प्रकारके अजीर्ण कहेहैं, इनसे विपुचिका, अलसक  
और विलम्बिका महारोग होतेहैं । इनमें आमाजीर्णसे  
विपुचिका, विदग्धाजीर्णसे अलसक और विष्टब्धाजीर्णसे  
विलम्बिका होतीहै, यह अनुक्रम नहीं मानना चाहिये  
परन्तु एक एक अजीर्णसे विसूची आदि तीनों रोग होते-  
हैं, यदि अनुक्रम लियाजाय तो पित्तसम्यन्धी विष्टब्धा-  
जीर्णसे विलम्बिका होनी चाहिये सो ठीक नहीं, क्योंकि  
विलम्बिका कफ और वायुसे होतीहै, इस कारण यह  
अनुक्रम नहीं लेना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ विसूचिकार्थः ।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्सन्तिष्ठतेऽनि-  
लः ॥ यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति नि-  
गद्यते ॥ २३ ॥

जिस रोगमें अजीर्णके कारण वायु शरीरमें सुई  
छेदनेके सी पीडा करतीहै उस रोगको वैद्य विसू-  
चिका ( हैजा ) कहतेहैं ( सूची नाम सुईका है ) ॥ २३ ॥

अथ विसूचिकानिदानम् ।

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदिता-  
गमाः ॥ मूढास्तामजितात्मानो लभन्ते-  
ऽशनलोलुपाः ॥ २४ ॥

विदितागमाः ज्ञातायुर्वेदाः ॥

परिमाणका भोजन करनेवाले और आयुर्वेदको ज्ञान-  
नेवाले मनुष्योंको विसूचिका रोग नहीं उत्पन्न होताहै।  
किन्तु जिन मूर्ख मनुष्योंके मन और इन्द्रियें वशमें नहीं  
हैं और भोजनमें अत्यन्त आशक्त हैं उनको यह विसू-  
चिका उत्पन्न होतीहै ॥ २४ ॥

अथ विसूचिकालक्षणम् ।

मूच्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलं  
भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः ॥ वैवर्ण्यकम्पौ  
हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च  
भेदः ॥ २५ ॥

उद्वेष्टनं हस्तपादयोः । शिरसो भेदः  
शिरःशूलम् ॥

विसूचिकामें मूच्छा अतिसार ( दस्तोका होना )  
वमन, तृषा, शूल, हाथ पावोंका जकडना, जृम्भाई, दाह,  
शरीरके वर्णका बदलजाना, कम्प, हृदयमें पीडा और  
शिरमें पीडा होतीहै ॥ २५ ॥

अथ विसूचिकोपद्रवाः ।

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसं-  
ज्ञता ॥ अमी उपद्रवा घोरा विसूच्या  
पञ्च दारुणाः ॥ २६ ॥

अमी निद्रानाशादयः उपद्रवाः । सर्वे-  
षामेव रोगाणां घोरा भयंकराः । विसूच्याः  
पञ्च दारुणाः विसूच्यास्तु पञ्चापि यदि  
स्युस्तदा दारुणाः प्राणभयंकराः ॥

निद्राका नाश, बेकली, कम्प, मूत्राघात ( मूत्रका  
अवरोध ) और मूच्छा, ये पाँचों उपद्रव सब रोगोंमें भयकर  
हैं, परन्तु विसूचिकामें उत्पन्न होय तो अत्यन्त दारुण  
हैं, अर्थात् ये पाँचों होजायें तो प्राण जानेका भय होता  
है ॥ २६ ॥

अथालसकलक्षणम् ।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्यत्यथ कूजति ॥  
निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति ॥  
॥ २७ ॥ वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं

भवेदपि ॥ तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्धारो  
च यस्य तु ॥ २८ ॥

आनह्यते आध्मायते । प्रताम्यति ताड-  
यति । कुजति आर्तनादं करोति । कुक्षौ  
अजीर्णं न निरुद्धो मारुत उपरि धावति  
हृदयकण्ठादिकं गच्छतीत्यर्थः । काश्यप-  
स्त्वाह—

नाथो याति न चाप्यूर्द्धमाहारो यत्र पच्य-  
ते ॥ कोष्ठे स्थितोऽलसीभूतस्ततोऽसा-  
वलसः स्मृतः ॥ २९ ॥

पेट अत्यन्त अफरजाय, अगोंको पटके, पीडाके मारे  
चिल्लावै, पेटमें अजीर्णसे रुकी हुई वायु छाती और कंठ  
आदि ऊपरके भागोंमें जावै, मल और वायुका अत्यन्त  
अवरोध हो, तृप्ता हो और डकार आवै, ये सब लक्षण जिसके  
हो उसके अलसकरोग उत्पन्न हुआ जानना ॥ २७ ॥ २८ ॥

काश्यपमुनि कहते हैं कि—“किया हुआ भोजन न तो  
ऊपरको वमनद्वारा निकले, न नीचे दस्तोंके द्वारा निकले  
और जठराग्निसे पके भी नहीं, किन्तु कोठेमें स्थिर  
होकर रहता है, इसकारण इस रोगको अलसक कहते-  
हैं” ॥ २९ ॥

अथ विमृचिकालसकारिष्ठे ।

यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दि-  
तोऽभ्यन्तरयातनेत्रः ॥ क्षामस्वरः सर्ववि-  
मुक्तसन्धिर्यायात्ररोऽसौ पुनरागमाय ३० ॥

सर्वा विमुक्ताः शिथिलीभूताः सन्धयो  
यस्य सः ॥

जिसके दात, होंठ और नख काले पड़गये हों,  
सजा नष्ट होगई हो, वमनसे पीडित हो, आँखें  
गाढ़गई हों, स्वर शीघ्र होगयाहो और सम्पूर्ण सन्धि-  
बन्धन ढीले पड़गयेहों, वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त  
होता है ॥ ३० ॥

अथ विलम्बिकालक्षणम् ।

दुष्टन्तुभुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्द्ध-  
मधश्च यत्र ॥ विलम्बिकां तां भृशदुश्चि-  
कित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥ ३१ ॥

भृशदुश्चिकित्स्यां प्रत्याख्येयामनुपचर-  
णीयाम् । इदमसाध्यञ्चेति जैयटः ॥

जिसमें भोजन किया हुआ दुष्ट आहार, कफ और  
वायुके कारण मुगके द्राग और गुदाके द्राग नहीं निकले  
उसको विद्वान् वैद्य विलम्बिका कहते हैं, यह विलम्बिका  
रोग चिकित्सा करनेमें अत्यन्त कठिन है इस लिये  
इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ जीर्णाहारलक्षणम् ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वगोत्सर्गो यथोचितः ॥  
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य  
लक्षणम् ॥ ३२ ॥

डकार शुद्ध आवै, चित्तमें उत्साह हो, मल  
मूत्रादिक ठीक उत्तर, शरीरमें दृढकाय हो, भूख  
और व्यास ठीक लगे, यह जीर्ण आहारके लक्षण  
है ॥ ३२ ॥

अथाजीर्णचिकित्सा ।

हरीतकी तथा शुण्ठी भक्ष्यमाणा गुडे-  
न च ॥ सैन्धवेन युता वा स्यात्सातत्ये-  
नाग्निदीपनी ॥ ३३ ॥ गुडेन शुण्ठीमथ-  
चोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं  
वा ॥ आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्चो-  
विवन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ ३४ ॥  
व्योषं दन्ती त्रिवृच्चित्रं कृष्णामूलं विचू-  
र्णितम् ॥ तच्चूर्णं गुडसम्मिश्रं भक्ष्यं व्या-  
तरुत्थितः ॥ ३५ ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम  
बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ शोथोदावर्तशूलघ्नं  
प्लीहाण्डामयापहम् ॥ ३६ ॥

सर्वचूर्णसमो गुडो देयः ॥

दहनाजमोदसैन्धवनागरमारिचानि चाम्ल-  
तक्रेण ॥ सप्ताहादधिकरं पाण्डुशोनाशनं  
परमम् ॥ ३७ ॥ तत्रामे वमनं कार्यं  
विदग्धे लघनं हितम् ॥ विष्टब्धे स्वेदनं  
शस्तं रसशेषे शयीत च ॥ ३८ ॥  
वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ॥  
कणासिन्धुवचाकल्कं पीत्वा च शिशि-  
राम्भसा ॥ ३९ ॥

जलमत्र शरावमात्रम् । वचा कर्षार्द्ध-  
मिता । द्वयोश्चूर्णमुष्णेन जलेन पिबेत् ।  
कणादिकल्कं वा पीत्वा वान्तिरामे प्रश-  
स्यते । इत्यनेनान्वयः ॥

धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः ॥  
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधन-  
म् ॥ ४० ॥ भवेद्यदा प्रातरजीर्णशङ्का  
तदाभयां नागरसैन्धवाभ्याम् ॥ विचू-  
र्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुङ्ग्यादशंकं  
मितमन्नकाले ॥ ४१ ॥ विदह्यते यस्य  
तु भुक्तमात्रं दन्दह्यते हृच्च गलश्च यस्य ॥  
द्राक्षां सितामाक्षिकसम्प्रयुक्तां लीढ्वाभयां  
चापि सुखं लभेत ॥ ४२ ॥

हरड और सोठ, इन दोनोंको पीसकर गुडमें  
मिलाकर भक्षण करनेसे, अथवा सैन्धेनमकके  
साथ भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यन्त दीपन  
होती है ॥ ३३ ॥

आमाजीर्ण, बवासीर और मलवन्धमें नित्य गुडके  
साथ सोठ, पीपल, हरड, अथवा अनारका सेवन  
करना चाहिये ॥ ३४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, जमालगोटकी जड, निसोत,  
चीता और पीपलामूल, इन सबको समानभाग लेकर  
कूट पीसकर चूर्ण करै और सब चूर्णकी बराबर गुड  
मिलावै इस गुडाष्टकको प्रातःकाल उठकर भक्षण करै  
यह बल, वर्ण और अग्निको दीपन करै है, तथा  
सूजन, उदावर्त, शूल शोहा और पाडुरोगको नष्ट  
करै है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चीता, अजमोद, सैधानिमक, सोंठ और मिरच,  
इनका चूर्ण करके खट्टे मट्टेके साथ पियै तो सात  
दिनमें अग्निकी वृद्धि होती है, पाडुरोग और बवासीरको  
नष्ट करै है ॥ ३७ ॥

आमाजीर्णमें वमन करानी चाहिये, विदग्धाजीर्ण-  
में लघन कराने चाहिये, विष्टग्धाजीर्णमें सेक आदि-  
से स्वेदन कराना चाहिये और रसशोषाजीर्णमें शयन  
कराना चाहिये ॥ ३८ ॥

आमाजीर्णमें आधा तोल वच और यथायोग्य सैधा-  
नोन दोनोंको पीसकर ३२ तोले गरम जलमें डालकर  
पियै और वमन करै तो आमाजीर्ण दूर होय ॥

पीपल, सैधानिमक और वच इनका कल्क बनाकर  
शीतल जलमें मिलाकर पियै, इससे वमन होगी, यह  
आमाजीर्णमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ३९ ॥

जो चतुर वैद्य आमाजीर्णमें धनियों और सोठका काथ  
पिलाता है, उससे आमाजीर्ण शांत होजाता है यह प्रयोग  
शूलको नष्ट करै है और आमाशयको शुद्ध करै है ॥ ४० ॥

जो प्रातःकाल अजीर्णकी शका होय तो हरड, सोठ  
और सैधानिमक इनका चूर्ण करके शीतल जलके साथ  
पिये और जब भोजनका समय होय तब शकाको छोड़कर  
परिमाणका भोजन करै ॥ ४१ ॥

जिसके भोजन करतेही अन्नका विदग्धपाक होकर हृदय  
और कण्ठमें दाह होय तो वह सहत और मिश्रीके साथ  
दाख और हरडको चाटे, इससे सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥

अथ हिङ्गवष्टकम् ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे  
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ॥  
प्रथमकवलमुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतज्जन-  
यति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ॥ ४३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, सैधानिमक, जीरा और  
कालाजीरा, यह सब समान भाग और आठवाँ भाग  
मुनी हींग लेवै, सबका एकत्र चूर्ण करके घीमें मिलाकर  
भोजनके प्रथम ग्रासमें खानेसे जठराग्नि दीपन होती है  
और वात सबधी रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥

अथ बृहदग्निमुखचूर्णम् ।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि  
च ॥ सूक्ष्मैलापत्रकं भार्ङ्गी किमिघ्नं हिङ्गु-  
पौष्करम् ॥ ४४ ॥ शटी दावी त्रिवृन्मुस्तं  
वचा चेन्द्रयवास्तथा ॥ वृक्षाम्लं जीरकं  
धात्री श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ४५ ॥  
अम्लवेतसमम्लीका यवानी देव-  
दारु च ॥ अभयातिविषा श्यामा  
हपुषारग्वधं समम् ॥ ४६ ॥ तिलमुष्क-

कशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ॥ क्षा-  
राणि लौहकिट्टश्च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥  
॥ ४७ ॥ सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा तु सम-  
भागानि कारयेत् ॥ मातुलुङ्गरसेनैव  
भावयेद्विषसत्रयम् ॥ ४८ ॥ दिनत्रयन्तु  
शुक्तेन तथार्द्रकरसेन च ॥ अत्यग्निकारकं  
चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ४९ ॥  
उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिराद्गदान् ॥  
अजीर्णमथ गुल्मश्च प्लीहानं गुदजानि  
च ॥ ५० ॥ उदराण्यन्त्रवृद्धिश्च अष्टीलां  
वातशोणितम् ॥ प्रणुदत्युल्वणान्दोषान्न-  
ष्टाग्निं च प्रदीपयेत् ॥ ५१ ॥

द्वौ क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च । लवणानि  
पञ्च । वृक्षाम्लं वृषाम्बिल इति लोके । श्रेय-  
सी हरीतकी । उपकुञ्चिका मगरैला इति  
लोके । अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यम् ।  
श्यामा भ्रियंगुः । मुष्ककः घण्टापारुल् इति  
लोके । कोकिलाक्षः कोइलपा इति लोक ॥

जवाखार, सजी, चीता, पाट, करज, पांचो निमक,  
तेजपात, भारगी, वायविडग, हींग, पोहकगमूल, कचूर,  
दारुहलदी, निसोत, नागरमोथा, वच, इन्द्रजौ, विषंभिल.  
जोरा, आमले, हरड, कलौजी, अमलवेत, इमली, अज-  
वायन, टेवदारु, छोटी हरड, अतीस, फूलप्रियगु, हाऊवेर  
और अमलतास ये सब समान भाग ले, तिल, मोरवा,  
सहजना तालमखाना और ढाक, इन सबका खार और  
अग्निम तपाकर गोमूत्रमे बुझाया हुआ लोहेका मैल, इन  
सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके विजौरेके  
रसकी तीन दिनतक भावना देवै, पश्चात् तीन दिन तक  
सिक्केमे और तीन दिन तक अदरखके रसमे खरल करै  
तो अग्निमुख चूर्ण तैयार हो । यह अग्निमुख चूर्ण अत्यन्त  
अग्निप्रदीपक दीप्ताग्निके समान है । इसको विधिपूर्वक  
सेवन करनेसे बहुत दिनके अजोर्ण, गुल्म, प्लीहा, बवा-  
सीर, उदररोग, अत्रवृद्धि, अष्टीला और वात रक्त रोग  
नष्ट होतेहैं । यह चूर्ण उल्वण हुए दोषोको शमन करैहै  
और नष्ट हुई अग्निको दीपन करैहै ॥ ४४-५१ ॥ ~

अथ वैश्वानरक्षारः ।

स्तुल्यैर्कचित्रैर्कैरण्डवरुणं सप्तनवम् ॥  
तिलापामार्गकदलोपलाशं तिलिन्तिडी  
तथा ॥ ५२ ॥ गृहीत्वा ज्वालयेदतत्प्रस्थं  
भस्माखिलं यथा ॥ जलाढके विपक्षव्यं  
यावत्पादावशेषितम् ॥ ५३ ॥ गुप्ससत्रं  
विनिस्ताव्य लवणप्रस्थसंयुतम् ॥ पक्वं  
निर्धूमकटिनं सूक्ष्मचूर्णाकृतं पुनः ॥ ५४ ॥  
यवानीजीरकव्योपस्थूलजीरकहिगुभिः ॥  
शीतोदकेन तच्चूर्णं पिवेत्प्रातर्हि मात्रया ॥  
॥ ५५ ॥ तस्मिन्जीर्णेत्रमश्रोयाद्यूपैर्जा-  
ड्लजं रसैः ॥ ईषदम्लैः सलवणैः  
सुखोष्णैर्वह्निदीपनैः ॥ ५६ ॥ एतेनाग्नि-  
विवर्द्धेत बलमारोग्यमेव च ॥ तत्रानुपानं  
शस्तं हि तक्रं वा भोजने हितम् ॥ ५७ ॥  
मन्दाग्न्यशोविकारेषु वातश्लेष्मामयेषु  
च ॥ सर्वागशोथरोगेषु शूलगुल्मोदरेषु  
च ॥ अश्मर्या शर्करायाश्च विण्मूत्रानि-  
लरोगिषु ॥ ५८ ॥

शूहर, आक, चीता, अड, वरना, पुनर्नवा, तिल,  
चिरचिटा, केला, ढाक और इमलो, इन सबकी लकटि-  
योंको लेकर विधिपूर्वक जलाकर ६४ तोले भस्मको ग्रहण  
करै, फिर इस भस्मको २५६ तोले जलमे डालकर पकावै  
जब चौथाई भाग जल शेष रहै तब उतारकर बन्धसे छान लेवै  
फिर उस निर्मल क्षार जलमे १२८ तोले मैधानिमक  
डालकर पकावै, जब पकते पकते निर्धूम और कटिन  
होजाय तब उतार लेवै, फिर उसका बारीक चूर्ण  
करके उसमे अजवायन, जोरा, सोड, मिरच, पीपल,  
कलौजी और हींग, इनका चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल  
शीतल जलके साथ खाय, जब इसकी मात्रा पचजाय  
तब कुछेक खट्टा, नमकीन, कुछेक गरम और अग्निको  
दीपन करनेवाले द्रव्यके साथ और जगली जीवोंके मासके  
रसके साथ भोजन करै । इस प्रकार करनेसे अग्निकी  
वृद्धि होतीहै, बल और आयु बढ़तीहै, भोजन कर-  
नेके पश्चात् तक्र ( छाछ ) का पीना अथवा भोजनके  
साथ तक्रका पीना, इस प्रयोगमे हितकारी है । यह वैश्वा-



नरधार मन्दाग्नि, बवासीर, वात और कफसंबंधी रोग, सम्पूर्ण शरीरगत सूजन, शूल, गुल्म, उदररोग, पथरी, शर्करा, विष्टा और मूत्रके रोग तथा वातके रोगोंमें हितकारी है ॥ ५२-५८ ॥

अथ लवणभास्करः ।

सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः ॥  
सौवर्चलं पञ्चकर्षं विडसैन्धवधान्यकम् ५९ ॥  
पिप्पली पिप्पलीमूलं पत्रकं कृष्णजी-  
रकम् ॥ तालीशं केशरं चव्यमम्लवेतसकं  
तथा ॥ ६० ॥ द्विकर्षमात्राण्येतानि  
प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥ मरिचं जीरकं  
विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ ६१ ॥  
दाडिमं स्याच्चतुष्कर्षं त्वगेला चार्द्धि-  
र्षिका ॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्क-  
राभिधम् ॥ ६२ ॥ भक्षयेच्छाणमानन्तु  
तक्रमस्तुककाञ्जिकैः ॥ वातश्लेष्मभवं  
गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम् ॥ ६३ ॥  
अर्शासि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धश्च भगन्द-  
रम् ॥ शूलं शोथं श्वासकासामदोषां-  
श्चापि हृद्भुजम् ॥ ६४ ॥ अश्मरीं शर्क-  
राश्चापि पाण्डुरोगं क्रिमीनपि ॥  
मन्दाग्निं नाशयेदतदीपनं पाचनं परम् ॥  
॥ ६५ ॥ हिताय सर्वलोकानां भास्करेण  
विनिर्मितम् ॥ हन्यात्सर्वाण्यजीर्णानि  
भुक्तमात्रमसंशयम् ॥ ६६ ॥

अत्र दाडिमस्य बीजानां कर्षचतुष्टयं  
देयम् ॥

समुद्रलवण ८ तोले, कालानिमक ५ तोले, विरियास-  
चरनिमक २ तोले, सैधानिमक २ तोले, धनिया २ तोले,  
पीपल २ तोले, पीपलामूल २ तोले, तेजपात २ तोले,  
काला जीरा २ तोले, तालीसपत्र २ तोले, नागकेशर २  
तोले, चव्य २ तोले, अमल वेत २ तोले, कालीमिरच १  
तोला, जीरा १ तोला, सोठ १ तोला, अनारके बीज ४  
तोले, दालचीनी ६ मासे और इलायचीके दाने ६ मासे  
लेवै, इन सबको एकत्र पीसकर, चूर्ण कर लेवै, इसको  
'लवणभास्कर' कहतेहैं । इस लवणभास्कर चूर्णको तक्र

दहोकी मलाई और कौजीके साथ २४ रत्ती प्रमाण खाना  
चाहिये । इस लवणको खानेसे बवासीर, सग्रहणी, कोढ़,  
मलबध, भगन्दर, वात और कफजनित गुल्म, प्लीहा,  
उदररोग, क्षयरोग, शूल, सूजन, श्वास, खोंसो, आम सबधी  
दोष, हृदयके रोग, पथरी, शर्करा, पाण्डुरोग, कृमि और  
अग्निकी मन्दता, नष्ट होतीहै । यह निमक-पाचन करनेमें  
और अग्निको दीपन करनेमें अत्यंत उत्तम है । और सब  
लोकोके हितके लिये श्रीसूर्यनारायणने बनाया है । इस लव-  
णको भक्षण करनेसे तत्काल अजीर्ण नष्ट होजाताहै,  
सन्देह नहीं ॥ ५९-६६ ॥

अथ वडवानलचूर्णम् ।

सैन्धवसमूलमगधाचव्यानलनागरं पथ्या ॥  
क्रमवृद्धमभिवृद्धौ वडवानलनाम चूर्णं  
स्यात् ॥ ६७ ॥

सैधानिमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३  
भाग, चव्य ४ भाग, चीता ५ भाग, सोठ ६ भाग,  
हरड सात ७ भाग लेव, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण  
करलेवै, इस चूर्णको वडवानलचूर्ण कहतेहैं, इसको भक्षण  
करनेसे जठराग्नि अत्यंत दीपन होतीहै ॥ ६७ ॥

अथ द्वितीयवडवानलचूर्णम् ।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जबिल्वाग्निभिः सि-  
तातुल्यः ॥ वडवानल इव जरयति बहु  
गुर्वतिभोजनं चूर्णम् ॥ ६८ ॥

हरड, सोठ, पीपल, करज, वेलगिरी और चीता इन  
सबका एकत्र चूर्णकरके और सब चूर्णकी समान खोंड  
मिलाकर भक्षण करै तो यह वडवानल(समुद्रकी अग्निकी)  
समान बहुत भोजन किये हुएको भी शीघ्र पचादेता  
है ॥ ६८ ॥

अथ समशर्करचूर्णम् ।

एलात्वङ्नागपुष्पाणां मात्रोत्तरविवर्द्धि-  
ता ॥ मरिचं पिप्पली शुण्ठी चतुष्पञ्चोत्तरो  
त्तरा ॥ ६९ ॥ द्रव्याण्येतानि यावन्ति  
तावती सितशर्करा ॥ चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्य-  
मभिसन्दीपनं परम् ॥ ७० ॥

दालचीनी एकभाग, दालचीनी २ भाग, नागकेसर ३ भाग, काली मिर्च ४ भाग, पीपल ५ भाग और सोंठ ६ भाग लेवें, सबका एकत्र चूर्णकरके सब चूर्णकी बराबर खोंट मिलावें, इसको भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यंत दीपन होतीहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथाजीर्णे ।

रसेन्द्रचिंतामणिरसरत्नप्रदीपोक्त-

क्रव्यादरसः ।

द्विपलं गन्धकं शुद्धं पलमेकन्तु पारदम् ॥  
मृतलोहं तथा ताम्रं कर्षद्वयमितं पृथक् ॥  
॥ ७१ ॥ संचूर्ण्य सर्वं सम्मिश्रं द्रावयि-  
त्वाऽग्नियोगतः ॥ सम्यग् द्रुतं समस्तं  
तत्पश्चांगुलदले क्षिपेत् ॥ ७२ ॥ पुनः  
सञ्चूर्ण्य तत्सर्वं लोहपात्रे निधापयेत् ॥  
जम्बीरस्य रसं तत्र पूतं पलशतं क्षिपेत्  
॥ ७३ ॥ चुल्ल्यां निवेश्य तद्यत्नान्मृ-  
दुना वह्निना पचेत् ॥ रसे तस्मिन्धनी-  
भूते तत्सशोष्य विचूर्णयेत् ॥ ७४ ॥  
पञ्चकोलकषायस्य कुक्रेण सहितस्य च ॥  
भावना तत्र दातव्या पश्चात्संशोषये-  
च्छनैः ॥ ७५ ॥ भृष्टटंकणचूर्णेन तुल्येन  
सह मेलयेत् ॥ मरिचेनापि तुल्येन तद-  
र्द्धेन विडेन च ॥ ७६ ॥ भावयेत्सप्तकृत्व-  
स्तु चणकाम्लजलेन च ॥ ततः संशोष्य  
संपिष्य कूप्यमध्ये निधापयेत् ॥ ७७ ॥  
रसः क्रव्यादनामायं भैरवानन्दयोगिना ॥  
उक्तः सिंहलराजाय बहुमांसाशिने पुरा ॥  
॥ ७८ ॥ भक्षयेद्रोजनस्यान्ते माषद्वय-  
मितं रसम् ॥ भक्षयित्वा रसं पश्चात्पिबे-  
त्तत्र ससैन्यवम् ॥ ७९ ॥ अत्यर्थं गुरु  
यद्भुक्तमतिमात्रमथापि च ॥ तत्सर्वं जी-  
र्यति क्षिप्रं रसस्यैतस्य भक्षणात् ॥ ८० ॥  
शूलं गुल्मश्च विष्टम्भं ग्रीहानमुदरं तथा ॥  
रसः क्रव्यादनामाऽयं विनिहन्ति न  
संशयः ॥ ८१ ॥

इति क्रव्यादरसोऽजीर्णे रसेन्द्रचिन्तामणौ  
रसरत्नप्रदीपे च ॥

शुद्ध गंधक ८ तोले, शुद्धपाग ४ तोले, मागधुआ लोहा २ तोले और माराहुआ तौया २ तोले लेवें, इन सबको एकत्र करके अग्निसे योगसे पिपट्याकर उसके परेपे दाल देंगे पश्चात् उसका चूर्णकरके लोहपात्रे ताम्रं पारद ४०० तोले नीबूका रस डालेंगे, फिर उसको चूर्णये चढ़ाकर यत्न पूर्वक मद्ध मद्ध आगसे पकावें, जब पकने पकने रस गाढा होजाय तब उसको सुपाकर चूर्ण करलेंगे । इस चूर्णको पचकोल (पीपल, पीपलामर, चव्य, चीता और सोंठ ) के काथकी और चूकेके रसकी भावना देकर धीरे धीरे सुखालेंगे, फिर इस चूर्णमें बराबर धुना मुहागा. मुहागेकी बराबर मरिचेका चूर्ण और मिर्चोंके चूर्णसे आधा पिटलवणका चूर्ण मिलायें पश्चात् इस चूर्णको चनेके रसार्क सात भावना देकर सुखावेंगे, फिर पीपल नीबूमें भरकर रख देंगे, इसको क्रव्याद रस कहेंगे । यह क्रव्याद रस पूर्वकालमें भैरवानन्द योगीने बहुत मात्रा में खानेवाले सिंहल-द्वीपके राजाके लिये कहाथा, भोजन करनेके पश्चात् बारह (१२) रस्तीप्रमाण इसको खाना चाहिये और ऊपरमें सैन्य-निमकके साथ तक्रको पिये, अन्यतः भारी और अधिक भोजन किया हुआ इस रसको भक्षण करनेसे तत्काल पच जाताहै, यह क्रव्यादरस-शूल, गुल्म, मलवन्ध, ग्रीह और उदरके समस्त रोगोंको नि मदेह दूर करेहै ॥ ७१-८१ ॥

अथ ज्वालानलरसः ।

भारत्रयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम् ॥  
सर्वैस्तुल्या जया भृष्टा तदर्द्धा शिशुजा  
जटा ॥ ८२ ॥ एतत्सर्वं जयाशिशुवह्नीनां  
केवलैर्द्रवैः ॥ भावयेत्त्रिदिनं घर्मे ततो लघु  
पुटे पचेत् ॥ ८३ ॥ मार्कवस्य द्रवैर्वृष्टो  
रसो ज्वालानलो भवेत् ॥ निष्कोऽस्य मधु-  
ना लीढोऽनुपानं गुडनागरम् ॥ ८४ ॥ हन्त्य-  
जीर्णमतीसारं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ॥ श्लेष्म-  
ह्लासवमनमालस्यमरुचिं जयेत् ॥ ८५ ॥

अथ पञ्चकोलम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ८६  
जया अत्र विजया । मार्कवः भृङ्गराजः ॥

जवाखार, सजीखार, सुहागा, पारा, गंधक और पंचकोल, ये सब समान भाग लेवै और सबकी समान भुनी हुई भोंग लेवै और भोंगसे आधाभाग सैजिनेकी जड़ लेवै, इन सबको तीनदिनतक भोंग, सैजिना और चीता इनके रसोंकी तीनदिनतक धूपमें भावना देवै, पश्चात् लघुपुटमें पकावै, फिर निकालकर भोंगरेके रसमें पीसलेवै तो ज्वालानलनामक रस सिद्ध होताहै, इसको २४ रत्तीप्रमाण सहतके साथ चाटै और ऊपरसे गुड़ तथा सोठका अनुपान करै, इससे अजीर्ण, अतीसार, संग्रहणी, अग्निकी मदता, कफ, उबकाई, वमन, आलस्य और अरुचि नष्ट होजातीहै ॥ ऊपर जो पंचकोल कहा है वह पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोठ, इन पाँचोंको समझना ॥ ८२-८६ ॥

अथाग्निकुमाररसः ।

टंकणं रसगन्धौ च समं भागत्रयं विषात् ॥  
कपर्दः स्वर्जिकाक्षारो मागधी विश्वभे-  
षजम् ॥ ८७ ॥ पृथक्पृथक्कर्षमात्रं  
वसुभागमिहोषणम् ॥ जम्बीराम्लैर्दिनं  
वृष्टं भवेदग्निकुमारकः ॥ विषूचीशूलवा-  
तादिवह्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ८८ ॥

क्षारो यवक्षारः । अग्निकुमारो विसूच्या-  
मजीर्णे रसरत्नप्रदीपे, रसेन्द्रचिन्तामणौ च ॥

सुहागा १ तोला, पारा १ तोला, गंधक १ तोला, वत्सनाभ ३ तोला, कौडी एक तोला, सजी १ तोला, पीपल १ तोला, सोठ १ तोला और कालीमिर्च ८ तोले लेवै, इन सबको एकत्र करके एकदिनतक नींबूके रसमें खरल करै तो 'अग्निकुमार' रस, सिद्ध होताहै । यह रस विसूचिका, शूल, वायु आदि और अग्निकी मदताको नष्ट करै है ॥ यह रसरत्नप्रदीपमें तथा रसेन्द्रचिन्तामणिमें विसूचिका और अजीर्णपर कहा है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ रामबाणरसः ।

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन  
मिश्रितम् ॥ तत्र जातिफलमर्द्धभागिकं

तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥ ८९ ॥  
वह्निमान्द्यदशवक्रनाशनो रामबाण इति  
विश्रुतो रसः ॥ संग्रहग्रहणिकुम्भकर्ण-  
कमामवातखरदूषणं जयेत् ॥ ९० ॥  
दीयते तु मरिचानुपानतः सद्य एव जठ-  
रग्निदीपनः ॥ रोचनः कफकुलान्तकारकः  
श्वासकासवमिजन्तुनाशनः ॥ ९१ ॥

पारदभागः १ । विषभागः १ । लवङ्ग-  
भागः १ । गन्धकभागः १ । मरिचभागः २ ।  
जातीफलार्धभागः ॥

पारा १ भाग, वत्सनाभ १, भाग, लोंग १ भाग, गंधक १ भाग, कालीमिर्च २ भाग और जायफल आधा-  
भाग लेवै, इन सबको एकत्र करके इमलीके रसमें खरल-  
करै तो 'रामबाण' रस सिद्ध होताहै । यह रामबाण नाम-  
वाला रस अग्निकी मदतारूप रावणको नष्ट करैहै, संग्रहणी  
तथा ग्रहणीरूप कुम्भकर्णको जीतैहै और आमवातरूपी  
खरदूषणका नाश करैहै, यह मिर्चके अनुपानसे सेवन  
किया हुआ तत्काल जठराग्निको दीपन करैहै, रुचिको  
उत्पन्न करैहै, कफके समूहको नष्ट करैहै और श्वास,  
खोसी, वमन तथा कृमिको भी दूरकरैहै ॥ ८९-९१ ॥

अथ शंखवटी ।

पलं चिश्वासारं पलमितमिदं पञ्चलवणं  
द्रव्यं सम्यक्पिष्टं भवति लघुनिम्बूफलरसैः ॥  
ततः पिष्टे तस्मिन्पलपरिमितं शङ्खशकलं  
क्षिपेद्वारान्सप्त द्रवमिह च तेनैव विधिना ॥  
॥ ९२ ॥ पलप्रमाणं कटुकत्रयञ्च  
पलार्द्धमानं वचाहिंशुभागः ॥ विषं  
पलद्वादशभागयुक्तं तावद्रसो गन्धक एष  
चोक्तः ॥ ९३ ॥ बदरास्थिप्रमाणेन  
वटीमेतस्य कारयेत् ॥ भक्षयेत्सेवया  
साम्यात्सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ९४ ॥  
सर्वोदरेषु शूलेषु विसूच्यां विविधेषु च ॥  
अग्निमान्द्येषु गुल्मेषु सदा शङ्खवटी  
हिता ॥ ९५ ॥

इति शंखवटीरसः । रसरत्नप्रदीपे ॥

इमलीका खार ४ तोले और पौंचों नमक ४ तोले लेकर कागजी नीबूके रसमें पीस लेवै, फिर इस रसमें चार तोले शखका टुकड़ा सातवार तथा तपाकर नीबूके रसमें बुझाकर मिला देवै, पश्चात् इसमें चार तोले त्रिकुटा, दो तोले वच और हींग, वत्सनाभ १२ पल, वत्सनाभकी बराबर पारा और पारेकी बराबर गन्धक लेवै, इन सबको एकत्र मिलाकर घेरकी गुठलीकी समान गोली बनावे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे सब प्रकारके अजीर्ण शांत होतेहैं । यह शखवटी सर्वप्रकारके उदररोगोंपर शूलपर, विसूचिकापर, अग्निकी विविधप्रकारकी मदतापर और गुल्म रोगपर सदैव हितकारी है ॥ ९२-९५ ॥

### अथ बृहच्छंखवटी ।

स्तुह्यर्कचिश्चापामार्गरम्भातिलपलाशजान् ॥ लवणानाददीतैषां प्रत्येकं कर्षमात्रया ॥ ९६ ॥ लवणानि पृथक्पञ्च ग्राह्याणि पलमात्रया ॥ स्वर्जिका च यवक्षारष्टकं त्रितयं पलम् ॥ ९७ ॥ सर्वं त्रयोदशपलं सूक्ष्मं चूर्णं विधाय च ॥ निम्बूफलरसे प्रस्थसम्मिमे तत्परिक्षिपेत् ॥ ९८ ॥ तत्र शङ्खस्य शकलं पलं बह्वै प्रताप्य तु ॥ वारान्निर्वापयेत्सप्त सर्वं द्रवति तद्यथा ॥ ९९ ॥ नागरं त्रिपलं ग्राह्यं मरिचन्तु पलद्वयम् ॥ पिप्पली पलमाना स्यात्पलाद् भृष्टाहंशुतः ॥ १०० ॥ ग्रन्थिकं चित्रकश्चापि यवानी जीरकं तथा ॥ जातीफलं लवङ्गञ्च पृथक्कर्षद्वयोन्मितम् ॥ १०१ ॥ रसो गन्धो विषं चापि टंकणञ्च मनःशिला ॥ एतानि कर्षमात्राणि सर्वं संचूर्ण्य मिश्रयेत् ॥ १०२ ॥ शरावाद्धेन चुक्रेण वटिकां तस्य कारयेत् ॥ माषप्रमाणा सदैवैर्बृहच्छंखवटी स्मृता ॥ १०३ ॥ सर्वाजीर्णप्रशमनो सर्वशूलनिवारिणी ॥ विसूच्यलसकादीनां यो भवति नाशनी ॥ १०४ ॥

शूहरका खार ४ तोले, इमलीका खार ४ तोले, आकका खार ४ तोले, चिरन्चिटेका खार ४ तोले, केलेका

गार ४ तोले, तिलका गार ८ तोले, दावका गार ४ तोले, पौंचों नमक २० तोले, जवागार, मर्जीगार और सुहागा, ये तीनों ४ तोले, इसप्रकार ५२ तोले ड्रय लेकर चारिक चूर्ण करके १८ तोले नीबूके रसमें डालदेवै, पश्चात् ८ तोले भर शखके टुकड़ोंको अग्निके तथा तपाकर सातवार इस रसमें बुझा देवै, फिर जिसमें यह द्रवरूप होजावै, फिर सोंठ १२ तोले, काली मिर्च ८ तोले, पीपल ४ तोले, भुनी हींग २ तोले, पीपत्रामूल २ तोले, चीता २ तोले, अजवायन २ तोले, जीरा २ तोले, जायफल २ तोले, लोंग २ तोले, पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, सुहागा १ तोला, और एक तोला मैनशिल, सबको एकत्र पीसकर पूर्वोक्तप्रमाणमें मिलादेवै, फिर १६ तोले चुक्रेकारस मिलाकर उटदकी समान गोलियाँ बनावे । इन गोलियोंको बृहत् शखवटी कहतेहैं । यह गोली सब प्रकारके अजीर्णको शांत करेहै । सब प्रकारके शूलोंको नष्ट करेहै और विसूची तथा अल्मक आदि रोगोंको तत्काल दूर करेहै ॥ ९६-१०४ ॥

### अथाजीर्णकंटकरसः ।

टंकणकणामृतानां सहिगुलानां समं भागम् ॥ मरिचस्य भागयुगलं निम्बूनीरैर्वटी कार्या ॥ १०५ ॥ वटिकां कलायसदृशीमेकां द्वे वा समश्नीयात् ॥ सत्यमजीर्णे शान्त्यै बह्वैर्बृहच्छंखवटी स्तये ॥ १०६ ॥

सुहागा, पीपल, वत्सनाभ और सिप्रफ, इन सबको समान भाग ले और कालीमिर्च दो भाग डालकर नीबूके रससे मटरकी समान गोलियाँ बना लेवै । इनमेंसे एक अथवा दो गोली खानेसे अजीर्ण शांत होताहै, अग्निकी वृद्धि होतीहै और कफका नाश होताहै यह सत्य है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

### अथ विसूचिकाचिकित्सा ।

जलपीतमपामार्गं शूलं हन्याद्विसूचिकाम् ॥ सतैलं कारवेह्यम्बु नाशयेद्धि विसूचिकाम् ॥ १०७ ॥ बालमूल-



स्य तु काथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ विसू-  
चीनाशनः श्रेष्ठोजठरात्रिविवर्द्धनः ॥ १०८ ॥  
विल्वनागरनिकाथो हन्याच्छर्दि विसूचि-  
काम् ॥ विल्वनागरकैट्यकाथस्तदधिको  
गुणः ॥ १०९ ॥

कैट्यः कटुफलः ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रे मूलं समावा-  
प्य च मातुलुङ्गयाः ॥ छायाविशुष्का  
वटिका कृता सा हन्याद्विसूचीं नयना-  
ञ्जनेन ॥ ११० ॥

अनुभूतमिदम् ॥

अपामार्गस्य पत्राणि मरिचानि समानि  
च ॥ अश्वस्य लालया पिष्ट्वाऽञ्जनाद्धन्ति  
विसूचिकाम् ॥ १११ ॥ विसूच्यामति-  
वृद्धायां तक्रं दधिसमं जलम् ॥ नारिके-  
लाम्बु पेयं वा प्राणत्राणाय योजयेत् ॥  
॥ ११२ ॥ त्वक्पत्रकैरण्डकशिग्रुकुष्ठैर-  
म्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः ॥ उद्धर्तनं खल्वि  
विसूचिकाग्रं तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि ॥  
॥ ११३ ॥ कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रं  
तैले तु साधितम् ॥ विसूच्यां मर्दनं  
तेन खल्वी शूलनिवारणम् ॥ ११४ ॥  
पिपासायां तथोत्क्लेशे लवंगस्याम्बु श-  
स्यते ॥ जातीफलस्य वा पीतं शृतं  
भद्रघनस्य वा ॥ ११५ ॥

चिरचिट्टेको जलमें घोटकर पीनेसे विसूचिकाका शूल  
दूर होता है ।

करेलेके रसमें तेल मिलाकर पीनेसे विसूचिका नष्ट  
होती है ।

छोटी मूलीके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे  
विसूचिका नष्ट होती है और जठराग्नि दीपन होती है ।

बेलगिरी और सोठका काथ बनाकर पीनेसे वमन  
और विसूचिका दूर होती है । बेलगिरी, सोठ और जाय-  
फल, इनका काथ ऊपरके काथसे अधिक गुणोंवाला है ।  
सोठ, मिर्च, पीपल, करजके फल, हलदी, दारुहलदी और

विजौरे नींबूकी जड़, इन सबको एकत्र पीसकर गोली  
बनाकर छायामें सुखादेवै, इस गोलीको नेत्रोंमें आँजनेसे  
विसूचिका नष्ट होजाती है, यह हमने अपने आप अनुभव  
किया है ।

चिरचिट्टेके पत्ते और काली मिर्च समान भाग लेकर  
घोडेकी लारमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे विसूचिका नष्ट  
होजाती है ।

विसूचिका अत्यंत बढगई होय तो उसकी प्राणरक्षाके  
लिये दही छाछमें बराबरका जल मिलाकर अथवा नारि-  
यलका जल मिलाकर पिलावै ।

दालचीनी, तेजपात, अड, सैजिना, कूठ, वच और  
सोया, इनको नींबूके रसमें पीसकर शरीरमें लगानेसे खल्वी  
और विसूचिका नष्ट होजाती है और इन्ही पदार्थोंके द्वारा  
तेलको पकाकर लेप करनेसे भी खल्वी तथा विसूचिका नष्ट  
होजाती है ।

कूठ और सैधानिमक इनका कल्क बनाकर चूकेके रसमें  
तेलको सिद्ध करै, इस तेलका मर्दन ( मालिश ) करनेसे  
खल्वी और विसूचिका ( हैजा ) एव शूल नष्ट होजाता है ।

जो विसूचिकामें तृप्ता होय तो अथवा उत्क्लेश होय तो  
लौंगका पानी पिलावै, अथवा जायफलका काथ पिलावै,  
किवा भद्रमोथेका काथ पिलावै ॥ १०७-११५ ॥

### अथोत्क्लेशलक्षणम् ।

उत्क्लिश्यान्नश्च निर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरि-  
तम् ॥ हृदयं पीडयते चास्य तमुत्क्लेशं  
विनिर्दिशेत् ॥ ११६ ॥

जिस मनुष्यको उबकाई आवै और अन्न न निकलै  
और मुखसे पानी बहै वा थूकनेके साथ उत्क्लेशित हो, अन्न  
न निकलै और हृदयमें पीडा होने लगे उसको उत्क्लेशरोग  
कहते हैं ॥ ११६ ॥

### अथ दारुषट्कम् ।

सरुग्वानद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥  
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिगुसैन्धवैः ॥ ११७ ॥  
हैमवती श्वेतवचा ॥

तत्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्तिं  
जठरे निह्न्यात् । स्वेदो घटैर्वाप्यथ वाष्प-  
पूर्णैरुष्णैस्तथान्यैरपि पिण्डतापैः ॥ ११८ ॥

देवदारु, सफेद वच, कूट, सोंफ, हींग और भैंधानिमक इन सब औषधियोंको काजीमें पीसकर जिस मनुष्यके उदरमें पीटा होय अथवा पेट फूल गया हो उसपर लेप करना चाहिये ॥ ११७ ॥

जौंका आटा और जवारसार मिलाकर मट्टेमें पकावै, उसको गरम गरम लेकर उदरपर लेप करै, अथवा स्वेदन करै तो उदरकी पीटा शान्त होतीहै । वाफसे भरेहुए घड़ेके स्वेद लेनेसे अथवा अन्य उष्ण पदार्थके भेकनेसे उदरपीडाकी शान्ति होतीहै ॥ ११८ ॥

### अथालसकविलम्बिकयोश्चिकित्सा ।

विलम्बिकालसकयोरयमेव क्रियाक्रमः ॥

अत एव तयोरुक्तं पृथङ् नहि चिकित्सितम् ॥ ११९ ॥

जो चिकित्सा विलम्बिकाकी कही है, वही चिकित्सा विलम्बिका और अलसक रोगमें करनी चाहिये, इसी लिये हमने उनकी अलग अलग औषधि नहीं लिखी ॥ ११९ ॥

### अथ भस्मकरोगचिकित्सा ।

तंभस्मकं गरुक्षिग्धसान्द्रमन्दहिमस्थिरैः ॥

अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं पित्तत्रैश्च विरेचनैः ॥

॥ १२० ॥ अत्युद्धताग्निशान्त्यै माहिषद-

धिदुग्धसर्पिषि ॥ संसेवेत यवागूं सम-

पिष्टे पयसि सर्पिषा सिद्धाम् ॥ १२१ ॥

असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ॥

श्यामात्रिवृद्धिपक्वश्च पयो दद्याद्विरेच-

नम् ॥ १२२ ॥ यत्किञ्चिन्मधुरं मेध्यं

श्लेष्मलं गुरु भोजनम् ॥ सर्वं तदत्यग्नि-

हितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ १२३ ॥

सिततण्डुलसितकमलं छागक्षीरेण पायसं

सिद्धम् ॥ भुक्त्वा च तेन पुरुषो दशदिव-

सात्तुच्छभोजनो भवति ॥ १२४ ॥

भारी, क्षिग्ध, कठोर, मन्द, शीतल और स्थिर, इस प्रकारके गुणयुक्त अन्न तथा पानीसे और पित्तनाशक पदार्थ अथवा विरेचन ( जुलाब ) करानेसे भस्मक रोग शान्त होताहै । अत्यत बढीहुई जठराग्निको शमन करनेके लिये भैंसका दूध, दही और घृत परमोत्तम है । अथवा घृत और

सहृत मिलाकर यवागुंका सेवन करनेसे भस्मक रोग शान्त होताहै । अथवा चावलका चूर्ण और दूध गम भाग लेकर घृतमें पाक करी हुई वस्तुका भोजन करै, अथवा मधुन पित्तनाशक द्रव्योंका देना और नीर आदिका गाना अत्यन्त हितकारी है । काली निघातका दूधमें पकाकर विरेचनके लिये पिलावै तो सर्व दुःखहारी है । मधुर पदार्थ पानि, कफकारी और भारी भोजन भस्माग्निवायेका परम हितकारी है और भोजन करनेके उपरान्त दिनमें सोना भी सुगुणसाधक है । सफेद चावल और सफेद कमलका चूर्ण शीके दूधमें रीर बनाकर रानेसे दशदिनमें अन्नभोजन करने लगेगा ॥ १२०-१२४ ॥

### अथ द्रव्यविशेषाजीर्णं पाचनद्रव्यम् ।

अलं पनसपाकाय फलं कन्दलसम्भवम् ॥

कन्दलस्य तु पाकाय बुधैरपि वृतं हितम् ॥

वृतस्य परिपाकाय जम्बीरस्य रसो हितः ॥

॥ १२५ ॥ नारिकेलफलतालवीजयोः

पाचकं सपादि तण्डुलं विदुः ॥ क्षीरमेव

सहकारपाचनं क्षारमज्जनि हरीतकी हिता

॥ १२६ ॥ मधूकमालूरनृपादनानां परुष-

खर्जूरकपित्थकानाम् ॥ पाकाय पेयं पित्रु-

मन्दबीजं वृतेऽपि तत्रेऽपि तदेव पथ्यम् ॥

॥ १२७ ॥ खर्जूरशृंगाटकयोः प्रशस्तं

विश्वौषधं कुत्र च भद्रमुत्तमम् ॥ यज्ञांग-

वोधिद्रुफलेषु शस्तं प्लक्षे तथा पर्युषितं

प्रपीतम् ॥ १२८ ॥ तण्डुलेषु च पयः

स्वस्थो दीपकन्तु चिपिटे कणायुतम् ॥

षष्टिका दधिजलेन जीर्यते कर्कटी च

सुमनेषु जीर्यति ॥ १२९ ॥

सुमनेषु गोधूमेषु जीर्यति ॥

गोधूममाषहरिमन्थसतीनमुद्रपाको भवे-

ज्ज्ञादिति मातुलुचकेण ॥ खर्जूरिका-

विसकशेरुसितासु शस्तं शृंगाटके

मधुफलेष्वपि भद्रमुस्तम् ॥ १३० ॥  
 मातुलपुत्रकं धतूरफलम् ॥  
 कंगुश्यामाकनीवाराः कुलत्थाश्चाविलम्बि-  
 तम् ॥ दध्नो जलेन जीर्यन्ति वैदलः का-  
 झिकेन तु ॥ १३१ ॥ पिष्टान्नं शीतलं  
 वारि कृशरां सैन्धवं पचेत् ॥ माषेण्डरीं  
 निम्बुफलं पायसं मुद्गयूषकः ॥ १३२ ॥  
 वटो वेसवाराँल्लवङ्गेन फेनः समं पर्पटः  
 शिशुबीजेन याति ॥ कणामूलतो लङ्-  
 डुकापूपसट्टादिपाको भवेच्छकुलीमण्ड-  
 योश्च ॥ १३३ ॥

वेसवारो वगस इति लोके । तद्यथा-  
 स्नेहो निशा हिंगुलवंगकैलाधान्याकजीरार्द्रक-  
 नागराणि ॥ अम्लोषणं सैन्धवचूर्णमन्ने यथो-  
 चितं संस्कृतये प्रणीतम् ॥ इति । सट्टा सट्ट-  
 कपानविशेषः । मण्डं माण्डेति लोके ॥

किमत्र चित्रं बहुमत्स्यमांसभोजी सुखी  
 काञ्जिकपानतः स्यात् ॥ इत्यद्भुतं केवल-  
 वह्निपक्वो मांसेन मत्स्यः परिपाकमेति ॥  
 ॥ १३४ ॥ आममाम्रफलं मत्स्यं तद्बीजं  
 पिशिते हितम् ॥ कूर्ममांसं यवक्षारः शीघ्रं  
 पाकमुपैति हि ॥ १३५ ॥ कपोतपाराव-  
 तनीलकण्ठकपिञ्जलानां पिशितानि भुक्त्वा ॥  
 काशस्य मूलं परिपिष्यपीतं सुखी भवेत्त्रा  
 बहुशो हि दृष्टम् ॥ १३६ ॥  
 कपोतो धवलः पाण्डुः ॥

मांसानि सर्वाण्यपि यान्ति पाकं क्षारेण  
 सद्यस्तिलनालजेन ॥ चञ्चूकसिद्धा-  
 र्थकवास्तुकानां गायत्रिसारक्वथितेन  
 पाकः ॥ १३७ ॥

चञ्चूकः चेचू इति लोके । गायत्री  
 खदिरः ॥

पालङ्गिकाकेबुककारवल्लीवातार्कुवंशांकुर-  
 मूलकानाम् ॥ उपैति कालाम्बु पटोल-  
 कानां सिद्धार्थको मेघरवश्च पक्ता ॥ १३८ ॥  
 मेघरवः चौरा इति लोके ॥

विपच्यते शूरणकं गुडेन तथालुकं तण्डु-  
 लधावनेन ॥ पिण्डालुकं जीर्यति कोरदू-  
 षात्कशेरुपाकः किल नागरेण ॥ १३९ ॥  
 लवणस्तण्डुलतोयात्सर्पिर्जम्बीरकाद्यम्लात्  
 मरिचादपि तच्छीघ्रं पाकं यात्येव काञ्जि-  
 कात्तैलम् ॥ १४० ॥ क्षीरं जीर्यति तक्रेण  
 तद्रव्यं कोष्णमण्डकात् ॥ माहिषं मणिम-  
 न्थेन शंखचूर्णेन तदधि ॥ १४१ ॥

मण्डकः मांड इति लोके ॥

रसालं जीर्यति व्योषात्खण्डं नागरभक्ष-  
 णात् ॥ सिता नागरमुस्तेन तथेक्षुश्चार्द्रि-  
 काद्रसात् ॥ १४२ ॥ जरामिरा गैरिक-  
 चन्दनाभ्यामभ्योति शीघ्रं मुनिभिः प्रदि-  
 ष्टम् ॥ उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्णं  
 जीर्णं भवेत्क्षारगणस्तथाम्लैः ॥ १४३ ॥  
 इरा मदिरा ॥

तप्तंतप्तं हेमवा तारमग्नौ तोये क्षिप्तं सप्त-  
 कृत्वस्तदम्भः ॥ पीत्वाजीर्णं तोयजातं  
 निहन्यात्तत्र क्षौद्रं भद्रमुस्तं विशेषात् १४४ ॥  
 तत्र तोयाजीर्णं ॥

इति जठराग्निविकाराधिकारः ।

कटहरके अजीर्णमे केलेकी फली खानी उत्तम है और  
 केलेके अजीर्णमें घृत खाना हितकारी है, घृतके अजीर्णमें  
 जम्भीरी नींबूका रस श्रेष्ठ है, नारियल और तालके बीजो-  
 के परिपाकके लिये चावल अच्छे हैं, आमके पचानेके लिये  
 दूध श्रेष्ठ है, चिरौंजीके पचानेको हरड ठीक है, महुआ,  
 बेल, खिरनी, फालसे, खजूर और कैय, इनके परिपाकके  
 लिये नीमकी निबौलियोको घोटकर पीना परमोत्तम है, घी  
 और मट्टेके अजीर्णमें भी नीमकी निबौलियोका रस फल-

दायक है, खजूर और सिंघाटोंके अजीर्णके लिये मीठ और नागरमोथा भी किसी वैद्यने उत्तम लिखा है, गूलर, पीपल और पाखरके अजीर्णको जीर्ण करनेके लिये सोंठका वासी क्वाथ पीना परमोत्तम है, चावलके अजीर्णमें दूध पीना श्रेष्ठ है और दूधके अजीर्णमें अजवायन ही रसायन है, चावलके अजीर्णमें अजवायन और पीपल घोटकर पीनी गुणदायक है, सोंठके चावल दहीका पानी पीनेमें पच जाते हैं और ककडियोंका अजीर्ण गेहूँसे पचता है । गेहूँ, उडद, चने और मटरका अजीर्ण, धतूरेके खानेसे दूर होता है । कगनी, समा, खजूर, कमलकी डडी, कसेर, सिता ( मिश्री ) सिंघाडे और महुएके अजीर्णमें मोथेका क्वाथ हितकारी है । कगनी, समा, तथा कुलथीके अजीर्णमें दहीका पानी पीना श्रेष्ठ है और दालवाली वस्तुके अजीर्ण को काँजी दूर करती है । पिठ्टीके पदार्थों ( कचौरी, पकौरी दही बडे और बड़ी आदि ) का अजीर्ण शीतल जलसे दूर होता है और खिचडीका अजीर्ण सेंधानिमक पचाता है । मापेण्डरी ( अमृती ) को नींबूका रस, खीरको मूगका यूप फलदायक है । बडेका अजीर्ण बेसवार ( तैलादिक स्नेह, हल्दी, हींग, टोंग, मिरच, इलायची, जीरा, धनिया, अदरक, सोंठ, खटाई और सेंधानिमक, ये सम्पूर्ण वस्तु यथायोग्य अन्नादिकके सुधारनेके लिये डाली जाय उसको बेसवार कहते हैं ) से पचता है । लोंगसे केनीका अजीर्ण पचता है, पापडके अजीर्णको सेंजनेके बीज दूर करते हैं, लड्डू—मालपुए—और सट्टक ( पन्नाविशेष ) आदिको पीपलामूल पचाता है और पूरी माडसे पचती है, छलियोंका खानेवाला काँजी पीनेसे सुख पाता है, इसमें क्वचित् मात्र भी आश्चर्य नहीं है, परन्तु यह बात महा-आश्चर्यकी है कि—केवल अग्निसे पकाई हुई मछलियों, मास खानेसे तुरन्त पचजाती हैं, कच्चे आमका फल मछलीके अजीर्णको दूर करै है । कछुएके मांसका अजीर्ण जवाखार-से बहुत शीघ्र पचता है । कपोत ( पाण्डुक ), कबूतर, नीलकण्ठ और तीतर इनके मांसका अजीर्ण कांसकी जड जडसे खोदेती है । मैंने बहुत बार विचार कर देखा कि, तिलकी नालका खार सम्पूर्ण मांसके अजीर्णको पचाता है चट्ट, सरसों और वयुएके शाकका अजीर्ण खैरसारके क्वाथ पीनेसे दूर होता है, पालक, केवुक, करेला, बैंगन, बोंसका कट्ठा, मूली, पोई, लौकी, चौलाई, और परवल इन सबका अजीर्ण सफेदसरसोंके शाक खानेसे शान्त होता है, गुडका अजीर्ण जमीकन्दसे दूर होता है । आलू चाँवलके बोधन-

से ठीक पचते हैं, पिण्डाट्ट कोटों अग्निसे खानेसे शान्त होता है । कनेरका अजीर्ण गोंटस दूर होता है, नमकका अजीर्ण चावलके पानीमें, या जम्भीरी नींबूके रसमें अथवा काली मिर्चसे बहुत शीघ्र शान्त होता है । जोंग वन्यका परिपाक काँजीसे होता है, दूधका अजीर्ण मट्टेमें, गोंटका धी उष्ण माटसे, मैसका दूध गेहूँ नमकसे, जोंग मैसका दही शक्के चूर्णसे पचता है । पीठिका अजीर्ण त्रिकुट्टेसे, गोंट सोंठके चूर्णमें, चीनी, गोंट और मोयेम, और ईगका रस अदरकके रससे पचता है । मींदरा ( शगव ), गेन और चन्दनको घोटकर पीनेसे, शीतल वस्तुका अजीर्ण गरम वस्तुके खानेसे पचता है, उष्ण पदार्थ, शीतल पदार्थोंमें, और नमकीन पदार्थ खटाई अन्नादिसे शीण होते हैं, जिन प्राणीको पानीका अजीर्ण होजाय तो सोनेको अथवा चाँदी-को बारम्बार अग्निमें तपाकर पानीमें बुझावे, इसीप्रकार सातवारका बुझाया हुआ पानी पिये तो पानीका अजीर्ण शान्त होता है और जो गरम पानीसे अजीर्ण होय तो उसके लिये महत और नागरमोथा विशेष कच्चे परमो-त्तम है ॥ १२५ ॥ १४८ ॥

इति जठगन्धिविकाराधिकारः समाप्तः ।

## अथ कृमिरोगाधिकारः ।

तत्र कृमिभेदाः ।

क्रिमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तर-भेदतः ॥

बाहर और भीतरके भेदोंसे कृमि ( कीड़े ) दो प्रकारके हैं ॥

कृमिनिदानम् ।

बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥  
नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलो-  
द्भवाः ॥ १ ॥

तत्र तेषु बाह्याः क्रिमयः मलोद्भवाः ।  
त्वग्लभबहिर्मलस्वेदसंभवाः ॥

बाहरके मल ( प्रस्वेदादि ), कफ, रुधिर और विष्टा, इनसे शरीरमें कृमि ( कीड़े ) उत्पन्न होते हैं इन कारणोंके भेदसे बाहरके कृमिरोग चार प्रकारके

हैं और नामभेदसे बीस प्रकारके होतेहैं, उनमेंसे मल अर्थात् पसीनेसे उत्पन्न हुए कृमि बाहरी कहलाते हैं ॥ १ ॥

अथ बाह्यकृमिरूपम् ।

तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥  
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूकालिक्षाश्च ना-  
मतः ॥ २ ॥

तिलानामिव परिणाहावयवसन्निवेशवर्णा  
येषां ते, द्विधा तत्र यूका बहुपादाः कृष्णाः  
केशाश्रयाः लिक्षाः सूक्ष्माः श्वेता व-  
स्त्राश्रयाः ॥

बाह्यकृमि तिलकी समान प्रमाणवाले, तिलकी आकृति और तिलके वर्णवाले होतेहैं । यह कृमि अधिक पाँववाले और सूक्ष्म होतेहैं, उनमें कितनी जूँ और कितनी लीखें होतीहैं, तथा केश और वस्त्रोंके आश्रयसे रहती-हैं ॥ ( इनमें जो काले और बहुत पाँववाले कृमि होते-हैं उनको जूँ कहतेहैं, और सूक्ष्म सफेद वर्णवाले होतेहैं उनको लीख कहतेहैं ) ॥ २ ॥

अथ बाह्यकृमिविकारः ।

द्विधा ते कोठपिटिकाः कण्डूगण्डान्प्रकुर्वते ॥

वह दोनो प्रकारकी कृमि कोठ ( गाठ ), पिटिका ( फुसी ), खुजली और गलगण्ड रोगोंको उत्पन्न करैहै ॥

अथान्तःकृमिविप्रकृष्टनिदानम् ।

अजीर्णभोजी मधुराम्लसेवी द्रवप्रियः  
पिष्टगुडोपभोक्ता ॥ व्यायामवर्जी च  
दिवाशयी च विरुद्धभोजी लभते  
क्रिमींश्च ॥ ३ ॥

अजीर्णमें भोजन करना, मधुर तथा खट्टे पदार्थोंका सेवन, द्रव ( पतले ) पदार्थोंपर रुचि, पिष्ट ( पिसे हुए ) तथा गुडसे बने पदार्थोंका भोजन, व्यायाम ( परिश्रम ) नहीं करना, दिनमें सोना और विरुद्ध पदार्थोंका भोजन करना इनसे भीतरके कृमि उत्पन्न होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ जातकृमिलक्षणम् ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्दोगः सदनं  
भ्रमः ॥ भुक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्ज्ञातक्रि-  
मिलक्षणम् ॥ ४ ॥

ज्वर, वर्णका बिगडना, शूल, हृदयमें पीडा, ग्लानि, भ्रम, भोजनसे द्वेष और अतीसार ( दस्तोका होना ) इन लक्षणोंसे शरीरके भीतर कृमि उत्पन्नहुए जानना ॥ ४ ॥

अथ कफोत्पन्नक्रिमिविप्रकृष्ट-

निदानम् ।

मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥ ५ ॥  
शुक्तं कालान्तरेण अम्लीभूत इक्षुरस-  
विकारः ॥

कफसम्बन्धी कृमि—मांस, माष ( उडद ), गुड, दूध, दही और शिरका, इनके विकारोंसे होतेहैं ॥ ५ ॥

अथ कफजक्रिमिसम्प्राप्तिपूर्वक-

लक्षणम् ।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति  
सर्वतः ॥ पृथुब्रध्निभाः केचित्केचिद्रण्डू-  
पदोपमाः ॥ ६ ॥ रूढधान्यांकुराकारा-  
स्तनुदीर्घास्तथाणवः ॥ श्वेतास्ताम्रावभा-  
साश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥ ७ ॥  
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः ॥  
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते  
॥ ८ ॥ हल्लासमास्यस्रवणमविपाकम-  
रोचकम् ॥ मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकास-  
क्षवथुपीनसान् ॥ ९ ॥

ब्रध्नश्चर्मलता । रूढोंऽकुरितः । तनवः  
परिणाहेन तथा दीर्घास्तनुदीर्घाः । चुरवश्चु-  
रवनामानः । तत्कर्तव्यविकारा हल्ला-  
सादयः ॥

कफसे आमाशयमें उत्पन्नहुए कृमि वृद्धिको प्राप्त होकर चारों ओर विचरतेहैं, इनमें कितने एक मोटे चर्मलताकी समान, कितने एक गेंडुए ( केचुए ) की समान, कितने एक घान्यके उत्पन्न हुए अंकुरके सदृश, कितने एक सूक्ष्म लंबे तथा बारीक होतेहैं, यह कृमि—सफेद और लाल वर्णवाले होतेहैं । अन्त्राद, उदरावेष्ट, हृद-याद, महागुह, चुरव, दर्भकुसुम और सुगन्ध, इन नामोंसे ये कृमि सात प्रकारके हैं । कफसे कृमि हुए होय तो



हृद्भास, मुखसे लारका गिरना, खायेहुए अन्नका न पचना, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, अफारा, रौमी, छोक और पीनस ये रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ ६-९ ॥

अथ रक्तोत्पन्नकृमिलक्षणम् ।

रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवो-  
ऽणवः ॥ प्रपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्या-  
त्केचिददर्शनाः ॥ १० ॥ केशादा  
लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ॥  
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमा-  
तरः ॥ ११ ॥

सौरसमातृभ्यां सह वर्तत इति सहसौ-  
रसमातरः ॥

रधिरसे उत्पन्न हुए कृमि-रधिरको, बहानेवाली  
शिराओंमें रहतेहैं । सूक्ष्म, बहुत पौँवोंवाले, गोल तथा  
लाल होतेहैं और सूक्ष्मताके कारण कितने एक नहीं भी  
दीखते । केशाद, लोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस  
और मातर, इन नामोंसे ये कृमि छह प्रकारके हैं, इन  
कृमियोंसे कोढ़ उत्पन्न होताहै ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ पुरीषजक्रिमिलक्षणम् ।

पकाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविस-  
र्पिणः ॥ वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदामा-  
शयोन्मुखाः ॥ १२ ॥ तदास्योद्गारनिः-  
श्वासा विड्गन्धानुविधायिनः ॥ पृथुवृ-  
त्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥  
॥ १३ ॥ ते पञ्च नाम्ना क्रिमयः  
ककेरुकमकेरुकाः ॥ सौसुरादा मलूना-  
ख्या लेलिहा जनयन्ति च ॥ १४ ॥  
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डु-  
ताः ॥ रोमहर्षामिसदनगुदकण्डूर्विमा-  
र्गगाः ॥ १५ ॥

वृद्धास्तेऽधोविसर्पिणः स्युः यदा ते आमा-  
शयोन्मुखा भवेयुरित्यन्वयः । ते विमार्गगाः  
सन्तो विड्भेदादीन् जनयन्तीत्यर्थः ॥

विष्टासे उत्पन्न हुए कृमि पकाशयमें होतेहैं व कृमि  
नीचको चलतेहैं, जब वृद्धिको प्राप्त होनेहैं तब आमामाशयमें  
विचरतेहैं, फिर उकार और श्वास लेनेमें मलकी मट्टा  
दुर्गन्ध आताहै । वे बड़े, गोल, सूक्ष्म, मोटे, रंगमें काले,  
पीले, सफेद और अत्यन्त काले भी होतेहैं । ककेरुक, मकेरुक,  
सौसुराद, मलून और लेलिहा, इन नामोंसे ये कृमि पांच  
प्रकारके हैं । जब ये कृमि उलटे मार्गमें गमन करनेहैं तब  
दस्त, शूल, मलवध, क्रमता, कटोमता, पीलापन,  
रोमांच, मदाग्नि और गुदामें गुजली, ये सब उद्वेग  
होतेहैं ॥ १२-१५ ॥

अथ क्रिमिचिकित्सा ।

विडङ्गयोपसंयुक्तमन्नमण्डं पिवन्नरः ॥  
दीपनं क्रिमिनाशाय जठराग्निविवृद्धये ॥  
॥ १६ ॥ प्रत्यहं कटुकं तिक्तं भोजनं  
कफनाशनम् ॥ क्रिमीणां नाशनं रुच्यम-  
ग्निसन्दीपनं परम् ॥ १७ ॥ विडङ्गशृत-  
पानाय विडङ्गेनावधूलितम् ॥ पीतं  
क्रिमिहरं दृष्टं क्रिमिजांश्च गदा-  
जयेत् ॥ १८ ॥ लिह्याद्विडङ्गचूर्णं वा  
मधुना क्रिमिनाशनम् ॥ पलाशबीजस्य  
रसं पिवेन्माक्षिकसंयुतम् ॥ १९ ॥ पिवे-  
त्तद्वीजकल्कं वा मधुना क्रिमिनाशनम् ॥  
॥ २० ॥ कम्पिल्लचूर्णकर्पाद्धं गुडेन सह  
भक्षितम् ॥ पातयेत्तत्क्रिमीन्सर्वानुदर-  
स्थान्न संशयः ॥ २१ ॥ विडङ्गं कौटजं  
बीजं तथा बीजं पलाशजम् ॥ सञ्चूर्ण्य  
खादेत्खण्डेन क्रिमीन्नाशयितुं नरः ॥ २२ ॥  
निम्बपत्रसमुद्रूतं रसं क्षौद्रयुतं पिवेत् ॥  
धत्तूरपत्रजं वापि क्रिमिनाशनमुत्तमम् ॥  
॥ २३ ॥ रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तू-  
रपत्रजः ॥ ताम्बूलपत्रजो वापि लेपो  
यूकाविनाशनः ॥ धत्तूरपत्रकल्केन तद्रसे-  
नैव पाचितम् ॥ २४ ॥ तैलमभ्यंगमा-  
त्रेण सूका नाशयति क्षणात् ॥ क्रिमीणां  
विट्कफोत्थानामेतदुक्तं चिकित्सितम् ॥

रक्तजानान्तु संहारं कुर्यात्कुष्ठचिकि-  
त्सया ॥ २५ ॥

वायविडग, सोठ, मिर्च और पीपल, इनका चूर्ण माडमे मिलाकर पिये तो अग्निदीपन होती है और पेटके कीड़े नष्ट होते हैं । सदैव चरपरा और कडवा भोजन करना—कफ तथा कृमियोंका नाशक है, रुचिको उत्पन्न करनेवाला है और जठराग्निको अत्यन्त दीपन करै है ॥ वायविडगका काथ करके फिर उसमे और वायविडगका चूर्ण डालकर पिये तो कृमियोंका नाश होता है और क्रिमियोंसे उत्पन्न हुए रोगोका भी नाश होता है । वायविडगका चूर्ण सहतमे मिलाकर चाटै तो कृमि दूर होते हैं ॥ ढाकके बीजोके रसमे सहत मिलाकर पिये, अथवा ढाकके बीजोका कल्क बनाकर सहत डालकै पिये तो कृमि नष्ट होते हैं । आधा तोला कबीलेका चूर्ण गुडके साथ खाय तो उससे उदरमें रहनेवाले सम्पूर्ण कृमि निःसदेह निकलजाते हैं । वायविडग, इन्द्रजौ और ढाकके बीज, इनका महीन चूर्णकरके खाडके साथ खाय तो इससे कृमि नष्ट होते हैं । नींबूके अथवा धतूरेके पत्तोका रस सहतके साथ पिये तो उससे सब प्रकारके कृमि दूर होते हैं । धतूरेके पत्तोके रसमे अथवा पानोके रसमें पारा संयुक्त करके लेपकरै तो उससे यूक ( जू लीख ) नष्ट होती है । धतूरेके पत्तोके कल्कसे अथवा धतूरेके पत्तोके रससे पकाये हुए तेलका अभ्यग ( मालिस ) करै तो क्षणमात्रमे जूँओका नाश होता है । विष्टासे तथा कफसे उत्पन्न हुए कृमियोंकी तथा यूक-नामक कृमियोंकी ये चिकित्सा कही, परन्तु रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमियोंको नष्ट करना होय तो कुष्ठकी सदृश चिकित्सा करै ॥ १६-२५ ॥

अथ क्रिमिरोगिणोऽपथ्यानि ।

क्षीराणि मांसानि घृतानि चापि दधीनि  
शाकानि च पर्णवन्ति ॥ अम्लश्च मिष्टश्च  
रसं विशेषात्क्रिमींश्चिघांसुः परिवर्जयेद्वि २६

कृमियोंको नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य दूध, मास, घी, दही, पत्तोंवाला चने आदिका शाक और विशेष करके खट्टे मीठे रस, इनका त्याग करै ॥ २६ ॥

इति कृमिरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

पाण्डुरोगकामलाहलीमकाधिकारः ।

तत्र पाण्डुरोगसंख्यापूर्वकसन्निकृष्ट-  
निदानम् ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पंच वातपित्तकफै-  
स्त्रयः ॥ चतुर्थः सन्निपातेन पंचमो भक्ष-  
णान्मृदः ॥ १ ॥

पंचमो भक्षणान्मृद इति—ननु मृत्तिकापि दूषितदोषद्वारेणैव पाण्डुरोगं जनयतीति मृद्भक्षणजः पाण्डुरोगो दोषजादभिन्न एव कथं पंचम इति ? उच्यते—अपरकारणकुपिता वातादयोऽन्यानपि रोगान्कुर्वन्ति, मृत्तिकाभक्षणात्कुपितास्तु वातादयो विशेषतः पाण्डुरोगमेव जनयन्त्येवेति विशेषः चिकित्साविशेषाच्च पंचमः चरकेणोक्तः । तच्चिकित्सा अपरकारणकुपितदोषजनितपाण्डुरोगचिकित्सा भवतीति सुश्रुतेन मृत्तिकाजः पृथक् न पठितः ॥

वायुसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे अर्थात् तीनों दोषोंसे और मृद्दीके खानेसे उत्पन्न हुआ, इसप्रकार पाण्डुरोग पांच प्रकारका है ॥ १ ॥

शंका—मृद्दी भी स्वयं दूषित हुए दोषद्वारा पाण्डुरोगको उत्पन्न करै है, इसकारण मृद्दीके भक्षणसे उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग दोषसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगसे पृथक् नहीं होता तो पांच प्रकारके पाण्डुरोग क्यों कहे ?

समाधान—अन्य कारणोंसे कुपित हुए वातादि दोष अन्यरोगोंको भी उत्पन्न करै हैं, परन्तु मृद्दीके भक्षणसे कुपित हुए होयें तो विशेष करके पाण्डुरोगको ही उत्पन्न करते हैं, इसकारण मृद्दीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगकी चिकित्सा भी भिन्न प्रकारकी है, इसीसे चरक मुनिने मृद्दीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको पाचवौ कहा है और सुश्रुतने 'मृद्दीके भक्षणसे हुए पाण्डुरोगकी चिकित्सा अन्यकारणों द्वारा कुपित हुए दोषोंसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगकी चिकित्सा करनेसे होजाती है' ऐसा जानकर मृद्दीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको पृथक् नहीं कहा ।

अथ पाण्डुरोगविप्रकृष्टनिदान-  
पूर्वकसंप्राप्तिः ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवा-  
स्वप्नमतीव तीक्ष्णम् ॥ निषेव्यमाणस्य  
विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां  
नयन्ति ॥ २ ॥

तीक्ष्णं राजिकादि ॥

अत्यन्त मैथुनसे, खट्टे तथा नमकीन पदार्थोंसे, मद्य  
( शराब ) से, मट्टी खानेसे, दिनमें सोनेसे और अत्यन्त  
तीक्ष्ण राई आदि पदार्थोंका सेवन करनेसे मनुष्योंका  
रुधिर दूषित होकर वातादिदोष त्वचाको पाण्डुरण कर-  
देतेहैं ॥ २ ॥

अथ पाण्डुरोगपूर्वरूपम् ।

त्वक्स्फोटनिष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षण-  
कूटशोथाः ॥ विण्मूत्रपीतत्वमथाविपा-  
को भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

प्रेक्षणकूटशोथः अक्षिगोलकशोथः ॥

पाण्डुरोगका आरम्भ होनेसे प्रथमही त्वचाका फटना,  
थूकना, शरीरमें ग्लानि, मट्टीके खानेकी इच्छा, नेत्रोंके  
गोलोंपर सूजन, विष्टा तथा मूत्रका पीला होना और अन्नका  
न पचना, ये लक्षण प्रथमसे ही होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ वातोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रुक्षकृष्णारुणा-  
भता ॥ वातपाण्डुमये कम्पस्तोदानाह-  
भ्रमादयः ॥ ४ ॥

कृष्णारुणाभता पाण्डुत्वं न अतिक्रामति  
अत एव सुश्रुते—“सर्वेषु चैतेष्वपि पाण्डु-  
भावो यतोऽधिकोऽतः खलु पाण्डुरोगः” इति ।  
भ्रमादय इति आदिशब्दाद्भेदशूलादयः ॥

वायुसे उत्पन्न हुए पाण्डु रोगमें त्वचा ( चमडी ), मूत्र  
तथा नेत्रादि रुखे, काले और लाली लिये होतेहैं, कंप,  
अंगोंमें पीडा, अफारा और भ्रमादिक ( भेदन और  
शूलादिक ) होतेहैं । त्वचा आदिमें ‘काला और लाल’  
जो मिश्रित रंग होताहै वह बिना पीलेपनके नहीं होता,  
क्योंकि सुश्रुतमें कहा है कि—“पाण्डुरोगके सब भेदोंमें

पाण्डुता ( पीलापन ) अधिक होताहै इसीलिये ही इस  
रोगको पाण्डुरोग कहतेहैं ॥ ४ ॥

अथ पित्तोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

पीतत्वङ्मूत्रविण्मूत्रां दाहवृष्णाज्वरा-  
न्वितः ॥ भिन्नविट्कांतिपीताभः पित्त-  
पाण्डुमये नरः ॥ ५ ॥

भिन्नविट्कः सद्रवमलः ॥

पित्तसे पाण्डुरोग हुआ होय तो मनुष्योंका त्वचा, नर,  
विष्टा तथा मूत्र, पीला होजाताहै । दाह, तृषा,  
ज्वर, विष्टा पतला और शरीरकी कान्ति अत्यन्त पीली  
पड़जातीहै ॥ ५ ॥

अथ कफोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

कफप्रसेकः श्वयथुस्तन्द्रालस्यातिगौरवैः ॥  
पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लस्त्वङ्मूत्रनयना-  
नैः ॥ ६ ॥

अत्रोपलक्षणे तृतीया ॥

कफसे पाण्डुरोग हुआ होय तो श्रुक्नेमें कफका आना,  
सूजन, तन्द्रा, आलस्य, तथा अत्यन्त भारीपन होताहै और  
त्वचा, मूत्र, नेत्र तथा मुख, ये सफेद होजातेहैं ॥ ६ ॥

अथ सन्निपातोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोष-  
जम् ॥ त्रिदोषलिङ्गं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं  
सुदुःसहम् ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण अन्नको सेवन करनेवाले मनुष्यके दूषित हुए  
तीनों दोषोंसे उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला अत्यन्त  
असह्य पाण्डुरोग होताहै ॥ ७ ॥

अथ मृद्भक्षणजनितपाण्डुरोग-  
संप्राप्तिः ।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो-  
मलः ॥ कषाया मारुतं पित्तमूषरा  
मधुरा कफम् ॥ ८ ॥ कोपयेन्मृद्भा-  
दींश्च रौक्ष्याद्भुक्तश्च रुक्षयेत् ॥ पूरयत्य-  
विपक्वैव सोतांसि निरुणद्धापि ॥ ९ ॥

इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी  
तथा ॥ पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्नि-  
नाशनम् ॥ १० ॥

स्रोतांसि शिरामुखानि । तेजो दीप्तिः ।  
ओजः सर्वधातुरसः ॥

जिस मनुष्यको मट्टी खानेका अभ्यास होय, उसके तीनों दोषोंमेंसे एक कुपित होता है । कसैली मट्टीसे वायु कुपित होता है, खारी मट्टीसे पित्त कुपित होता है और मीठी मट्टीसे कफ कुपित होता है । ये मट्टी—अपनी रूक्षतासे रसादिकको तथा खाये हुए अन्नको रूक्ष करै हैं तब ये कच्चे ही रस सम्पूर्ण शरीरकी नसोंके स्रोतोंको भरके रोक देती है और सम्पूर्ण इन्द्रियोंका बल, तेज वीर्य तथा ओज ( सब धातुओंका रस ) का विनाश करके तुरत ही बल वर्ण और जटराग्निके मन्द करनेवाले पाण्डुरोगको उत्पन्न करै हैं ॥ ८-१० ॥

अथ मृद्भक्षणोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

मृद्भक्षणाद्भवेत्पाण्डुस्तन्द्रालस्यनिपीडितः ॥  
सकासश्वासशूलार्तः सदाऽरुचिसमन्वितः ॥  
॥ ११ ॥ शूनाक्षिकूटगण्डभूः शूनपान्त्रौ-  
भिमेहनः ॥ कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं  
सासृक्कफान्वितम् ॥ १२ ॥

क्रिमिकोष्ठः उदराभ्यन्तरस्थकृमिर्भवेदित्यनेन सम्बध्यते । अतिसार्येत मलमिति कर्मकर्तृ तत्कर्मवन्मन्तव्यम् । तस्मिन्कर्मण्यर्थेऽत्र लिङ् प्रत्ययः ॥

मट्टी खानेसे पाण्डुरोगवालेके लक्षण, तन्द्रा, आलस्य-खोसी, श्वास, शूल और अरुचि बनी रहती है पेटमें कीड़े रहते हैं, जिसकी आँखोंके गोलक, कपोल, भ्रुकुटी, पाँव, नाभि और लिंगपर सूजन होती है और कफ सयुक्त अनेक दस्त आते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ पाण्डुरोगिणोऽसाध्यलक्षणानि ।

ज्वरारोचकहृत्तासच्छर्दिमृणाक्लमान्वितः  
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हते-  
न्द्रियः ॥ १३ ॥ पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः ख-

रीभूतो न सिध्यति ॥ कालप्रकर्षाच्छूनाङ्गो  
यो वा पीतानि पश्यति ॥ १४ ॥

खरीभूतः अतिरूक्षितसर्वधातुः ॥

बद्धाल्पविट् सहरितं सकफं योऽतिसार्यते ॥  
दीनः स्वेदातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूच्छातृषा-  
न्वितः ॥ १५ ॥ पाण्डुदन्तनखो यस्तु  
पाण्डुनेत्रश्च यो भवेत् ॥ पाण्डुसंघातदर्शी  
च पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ १६ ॥

पाण्डुसंघातदर्शी यः पीतवर्णस्य राशिं  
पश्यति ॥

अन्तेषु शूनं परिहीणमध्यं म्लानं तथान्ते-  
षु च मध्यशूनम् ॥ गुदे मुखे शेफसि मुष्क-  
योश्च शूनं प्रताम्यन्तमसंज्ञकल्पम् ॥ विव-  
र्जयेत्पाण्डुकिनं यशोऽर्थी तथातिसारज्वर-  
पीडितश्च ॥ १७ ॥

अन्तेषु हस्तपादादिषु । म्लानं क्षीणम् ।  
प्रताम्यन्तं ग्लानि गच्छन्तम् । असंज्ञकल्पं  
मृतसदृशम् ॥

ज्वर, अरुचि, हृत्तास, छर्दि, तृषा, क्लम ( ग्लानि ) और इन्द्रियोंमें सामर्थ्य न रही हो, तथा त्रिदोषग्रसित हो, तो चतुर वैद्यको चाहिये कि—उस पाण्डुरोग वाले रोगीको त्यागदे । अथवा जो पाण्डुरोग बहुत पुराना हो और उसकी सम्पूर्ण धातुओंमें अत्यन्त रूखापन आगया हो और थोड़े ही समयके उपरान्त पाण्डुरोगवाले मनुष्यके शरीरपर सूजन हो तथा उसको सब वस्तु पीली ही दिखाई देती हों तो उस रोगीका अच्छा होना कठिन है । अथवा जिस पाण्डुरोगवाले रोगीका बँधा हुआ मल हरे रंग सयुक्त और अत्यन्त थोड़ा थोड़ा उत्तरै, दीनता आगई हो, पसीना बहुत आता हो और वमन, मूच्छा तथा तृषासे चित्त व्याकुल हो वह रोगी असाध्य है किसी प्रकार बच नहीं सक्ता । अथवा जिस पाण्डुरोगवाले प्राणीके दांत, नख और नेत्रोंमें पीलापन आगया हो और सब वस्तु पीली ही पीली दिखाई दें, वह रोगी अवश्य यमलोकको सिधारेगा । अथवा जिस पाण्डुरोगवालेके हाथ, पावोंपर सूजन आजाय और मध्य भागपर सूजन न आवै, अथवा उसके मध्यभागपर सूजन

आगया हो और हाथ पाँव सजनरहित हों, तथा गुदा, मुख, लिंग और अङ्कुरोंपर सजन हो, चित्तपर ग्लानि हो, सजा न रहकर मृतकके सदृश हो, अतीसार और ज्वरकी पीडा हो, ऐसे पाण्डुरोगीको यशस्वी वैद्य त्याग-देव ॥ १३-१७ ॥

**अथ पाण्डुरोगभेदकामलानिदान-  
पूर्वकसम्प्राप्तिः ।**

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषे-  
वते ॥ तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगा-  
य कल्पते ॥ १८ ॥

पित्तं कर्तुं, दग्ध्वा सन्दूष्य रोगाय कामला-  
रूपाय । पाण्डुरोगिण एव अतिशयितपित्त-  
लसेवया कामला भवति नायं नियमः, किंतु  
कामला स्वतन्त्रापि भवति । यथा राजय-  
क्ष्मा कासादुपेक्षिताद्भवति नायं नियमः,  
किन्तु राजयक्ष्मा स्वतन्त्रोऽपि भवति तद्वदेव ॥

जो पाण्डुरोगवाले मनुष्य अधिक पित्तकारी पदार्थोंका अधिक सेवन करते हैं उनका पित्त कोपको प्राप्त हो रुधिर और मांसको दूषित करके कामला रोगको उत्पन्न करता-है । ऐसा मत समझना कि, पाण्डुरोगवाले ही रोगीको पित्त-कारी पदार्थोंके ग्रहणसे कामला रोग होता है, यह कामला रोग आपसे आप भी होजाता है । जैसे खोंखीका उपाय न करनेसे राजयक्ष्मा रोग होजाता है ऐसा नियम नहीं है किन्तु राजयक्ष्मा आपसे आप भी उत्पन्न होजाता है, इसी प्रकार कामलाका भेद समझना चाहिये ॥ १८ ॥

**अथ कामलाक्षणम् ।**

हारिद्रनेत्रः सुभृशं हारिद्रत्वङ्मखाननः ॥  
पीतरक्तशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥  
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः १९ ॥  
हारिद्रं हरिद्रावर्णम् । पीतरक्तशकृन्मूत्रः  
पीते रक्ते वा शकृन्मूत्रे यस्य सः । भेकवर्णः  
बृहद्वेकवर्णः ॥

कामलरोगमें रोगीके नेत्र, त्वक्, नख और मुखका रंग हल्दीके सदृश पीले हों, मल, मूत्र पीला वा लाल हो बड़े मैडकके समान शरीरका वर्ण होजाय इन्द्रियें शक्ति हीन होजाय, हृदयमें दाह, भोजनका न पचना, शरीरका

दुर्बल और मिथिल होजाना, अन्नमें अन्नचि, यह लक्षण होजाते हैं ॥ १९ ॥

**अथ कामलाभेदः ।**

कामला बहुपित्तेपा कोष्ठाश्रया मता ॥  
एका कोष्ठाश्रया । अपरा शाखाश्रया ॥

अधिक पित्तवाला कामला रोग यह एक कोष्ठाश्रय होता है और दूसरा शाखाश्रय होता है ॥

**अथ कोष्ठाश्रयकामलावर्णनम् ।**

कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भ-  
कामला ॥ २० ॥

यह कामला रोग जब बहुत पुराना होजाता है तब नख अर्थात् खरीभूत होकर जटारामिकां रंग लेता है जैसे बटका मुख छोटा और पेट बड़ा होता है इसी प्रकार रोगीका उदर समझना, कुम्भकी गमान आकार कोष्ठके आश्रय जानना, इसीसे यह कुम्भकामला रोग कहलाता है ॥ २० ॥

**अथ कुम्भकामलारिष्टलक्षणम् ।**

छर्द्यरोचकहृत्तासज्वरक्लमनिपीडितः ॥  
नश्यति श्वासकासातो विड्भेदी कुम्भ-  
कामला ॥ २१ ॥

वमन, अरुचि, हृत्तास, ( मूवीरद् ) ज्वर, क्लम, श्वास, खोंखी और मल फटाहुआपतला होता है, जब कुम्भ-कामला रोगमें यह लक्षण होय तो वह रोगी शीघ्र ही यम-पुरमें वास करना चाहता है ॥ २१ ॥

**अथ कामलाद्वयारिष्टम् ।**

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः ॥  
सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्य-  
ति ॥ २२ ॥ दाहारुचितृषानाहतन्द्रामो-  
हसमन्वितः ॥ नष्टामिसंज्ञः क्षिप्रं हि का-  
मलावान्विपद्यते ॥ २३ ॥

जिस कामलावाले रोगीका मल मूत्र काला पीला मि-लाहुआ हरे रंगका हो और लाल नेत्र तथा लाल वर्णही मुखका हो वमन भी लाल रंगकी हो, सब शरीरपर सूज-न हो, कफ रक्त युक्त हो, चित्तमें ग्लानि रहे, दाह, अरु-चि, अफारा, तन्द्रा, मोह, मन्दाग्नि और सजा जाती रहे, ऐसा रोगी किसी प्रकार बच नहीं सक्ता ॥ २२ ॥ २३ ॥



अथ पाण्डुरोगभेदो हलीमकः ।

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितश्यावपी-  
तकः ॥ वलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं  
मृदुज्वरः ॥ २४ ॥ स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च  
श्वासतृष्णारुचिभ्रमाः ॥ हलीमकं तदा  
तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥

पाण्डोः पाण्डुरोगिणः ॥

जब पाण्डुरोगवालेके शरीरमे वात, पित्त वढजाताहै  
तब उसकी त्वचाका रंग हरा, काला और पीला पडजा-  
ताहै, बल और उत्साहकी क्षीणता, तन्द्रा, मन्दाग्नि, कुछ  
थोडासा ज्वर, स्त्रीप्रसगमे अरुचि, अंग अगमे पीडा,  
श्वास तृप्ता, अरुचि और भ्रम होय तो हलीमक रोग  
समझना चाहिये, यह रोग वात पित्तसे प्रगट होता  
है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ पाण्डुरोगचिकित्सा ।

सप्तरात्रं गवां मूत्रैर्भावितश्चायसो रजः ॥  
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रपिबेन्नरः ॥  
॥ २६ ॥ गोमूत्रसिद्धं मण्डूरचूर्णं सगुड-  
मश्नतः ॥ पाण्डुरोगः क्षयं याति पंक्ति-  
शूलश्च दारुणम् ॥ २७ ॥ अयोमलं  
सुसन्तप्तं भूयो गोमूत्रसाधितम् ॥ मधुस-  
पिर्युतं लीढा पाण्डुरोगी सुखी भवेत् ॥ २८ ॥

अथ पुनर्नवादिमण्डूरः ।

पुनर्नवा त्रिवृद्योषं विडङ्गं दारु चित्रकम् ॥  
कुष्ठं हरिद्रा त्रिफला दन्ती चव्यं कलिं-  
गकम् ॥ २९ ॥ कटुका पिप्पलीमूलं मुस्तं  
शृङ्गी च कारवी ॥ यवानी कटुफलश्चेति  
पृथक्पलमितं समम् ॥ ३० ॥ मण्डूरं  
द्विगुणं चूर्णाद्रोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥  
गुडेन वटकान्कृत्वा तक्त्रेणालोडय  
तान्पिबेत् ॥ ३१ ॥ पुनर्नवादिमण्डूर-  
वटकोऽश्विविनिर्मितः ॥ पाण्डुरोगं  
निहन्त्याशु कामलाश्च हलीमकम् ॥  
श्वासं कासश्च यक्ष्माणं ज्वरं शोथं  
तथोदरम् ॥ ३२ ॥ शूलं प्लीहानमाध्मान-

मर्शासि ग्रहणीकिमीन् ॥ वातरक्तश्च कुष्ठ-  
श्च सेवनान्नाशयेद्भुवम् ॥ ३३ ॥

अत्र पुनर्नवादिमण्डूरम् २४ । प्रत्येक-  
पलम् १ । लोहकिट्टचूर्णपलानि ४८ । गोमूत्र-  
पलानि १९२ ॥

लोहसारकी भस्मको सात दिनतक गोमूत्रमें भावना  
देकर फिर पीछे इसको दूधके साथ खाय तो पाण्डुरोग नष्ट  
होताहै । अथवा गोमूत्रसे बनाहुआ मण्डूर गुडमे मिला-  
कर खानेसे पाण्डुरोग और महाकठिन परिणामशूलका वि-  
नाश होताहै । अथवा मण्डूरको बारबार आगमे तपा तपा-  
कर गोमूत्रमे बुझावे, जब भलेप्रकार भस्म होजाय तब घी  
और सहतमे मिलाकर चाटनेसे पाण्डुरोग नष्ट होताहै ॥

पुनर्नवादि मण्डूर ॥ पुनर्नवा, निसोत, सोठ, मिरच,  
पीपल, वायविडग, देवदारु, चीता, कूट, हलदी, हरड,  
बहेडा, आमला, दन्ती ( जमालगोटेकी जड ), चव्य,  
इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल, मोथा, काकडासिगी, काला-  
जीरा, अजवायन और कायफल, ये सब औषधि एक  
एक पल लेकर चूर्ण करै और चूर्णसे दूना मण्डूर लेवे,  
फिर इनसे अठगुना गोमूत्र लेकर उसमें पचावे, फिर  
उसमें गुड डालकर गोली बनावे, उन गोलियोंको छौंछमें  
घोलकर पिये, यह पुनर्नवादिमण्डूर अश्विनीकुमारने बनाया  
है, यह पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, श्वास, खौसी, राज-  
यक्ष्मा, ज्वर, सूजन, उदरशूल, प्लीहा, अफारा, बवासीर,  
सग्रहणी, कृमिरोग, वातरक्त और कुष्ठका नाशक होता-  
है ॥ २६-३३ ॥

अथ नवायसचूर्णम् ।

त्र्युषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं  
तथा ॥ एतानि नवभागानि नवभागा  
हतायसः ॥ एकदैकीकृतं चूर्णं नरोऽष्टा-  
दशरत्तिकम् ॥ ३४ ॥ प्रलिह्यान्मधुसर्पि-  
भ्यां पिबेत्तक्त्रेण वासह ॥ गोमूत्रेण पिबे-  
द्वापि पाण्डुरोगं विनाशयेत् ॥ ३५ ॥  
शोथं हृद्रोगमुदरकिमिकुष्ठं भगन्दरम् ॥  
नाशयेदग्निमान्द्यश्च दुर्नामकमरोचकम् ॥  
॥ ३६ ॥ आर्द्रकस्य रसेनापि लिह्यात्कफ-  
समृद्धिमान् ॥ ३७ ॥

अत्र नवायसलोहं नवरत्तिकापरिमितं  
भक्षणीयम् । यतः उक्तं रसप्रदीपे-  
गुल्लामंकां समारभ्य यावत्स्युर्नवरत्ति-  
काः ॥ तावल्लोहं समश्रोयाद्यथादोषानलं  
नरः ॥ ३८ ॥

एवं सति प्रथमदिने ऽयूषणादिसहितं  
रत्तिकाद्वयमितं प्रतिदिनं रत्तिकाद्वयंद्वयं वर्द्ध-  
येत् । यावत् ऽयूषणादिसहिता दश रत्तिकाः  
स्युः । ततस्ताः प्रतिदिनं खादेत् । इति नवा-  
यसं चूर्णम् ॥

खोंट, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमले, नागर-  
मोथा, वायविडग और चीता ये सब औषधि एक एक  
तोला और लोहभस्म नौ ९ तोले, सबको पीसकर एकत्र  
करले इसमेंसे अठारह १८ रत्ती, घी और सहतमें मिला-  
कर चाटे, वा छेंछके साथ अथवा गोमूत्रके साथ पिये  
इसके खानेकी यह रीति है, पहिले दिन दो रत्ती खाय,  
दूसरे दिन चार ४ रत्ती खाय, तीसरे दिन छः रत्ती, इस  
प्रकार नित्य प्रति दो दो २ रत्ती अधिक करे, जिसमें  
चूर्णके साथ मिलाकर अठारह १८ रत्ती पूरी होजावे, रस-  
प्रदीपमें इसका प्रमाण लिखा है, इस चूर्णके खानेसे  
पांडुरोग, सृजन, हृद्रोग, उदर, कृमि, कुष्ठ, भगन्दर,  
मंदाग्नि, बवासीर और अरुचिको दूर करताहै ॥ ३४-३८ ॥

अथ कामलाचिकित्सा ।

त्रिफलाया गुडूच्या वा दाव्या मरिचक-  
स्य वा ॥ काथो माक्षिकसंयुक्तः शीतलः  
कामलापहः ॥ ३९ ॥ अञ्जने कामला-  
र्तानां द्रोणपुष्पीरसो हितः ॥ गुडूची-  
पत्रकल्कं वा पिवेतत्त्रेण कामली ॥  
॥ ४० ॥ धात्रीलोहरजोव्योपनिशाक्षौ-  
द्राज्यशर्कराः ॥ लीढा निवारयन्त्याशु  
कामलामुद्धतामपि ॥ ४१ ॥ कुम्भाख्य-  
कामलायां तु हितः कामलिको विविधः ॥  
गोमूत्रेण पिवेत्कुम्भकामलावाञ्छिलाज-  
तम् ॥ ४२ ॥ दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसन्तु  
गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ॥ विचूर्ण्य

लीढं मधुनाचिरेण कुम्भाद्वयं पाण्डुगदं  
निहन्ति ॥ अपहरति कामलार्तं नम्येन  
कुमारिकाजलं सद्यः ॥ ४३ ॥

त्रिफलेके, वा गिन्देयके अथवा दाण्डहल्लीके कि वा  
नीमके काथको शीतलकरके उसमें सहत मिलाकर पिये तो  
कामलाका विनाश होताहै, गुमेके रसका अञ्जन रनाकर  
लगावे तो कामलारोगवालेको परम हितकारी है, गिन्देयके  
पत्तोंको पीसकर उसका रस छेंछमें मिलाकर पीनेसे कामला  
रोग दूर होताहै, आमले, लोहभस्म, त्रिकुट्टा (मोठ,  
मिरच पीपल) हलदी, घी और चूरा, इन सबको मिलाकर  
चाटनेसे महाप्रबल कामलारोगका विनाश होताहै, कुम्भ-  
कामलारोगमें भी सब विधि कामलाही रोगनी करनी  
चाहिये, उत्तम शिलाजीतको गोमूत्रके साथ पिये तो कुम्भ-  
कामलारोग दूर होताहै, लोहभस्मको बहेडेकी लकड़ि-  
योंमें फूँक कर आठ ८ बार गोमूत्रमें बुझावे, फिर इस-  
का चूर्ण कर सहतके साथ चाटे तो शीघ्रही कुम्भकाम-  
लाको दूर करे, घीकुवारके रसका नाम लेवे तो तत्कालही  
कामला रोग दूर होताहै ॥ ३९-४३ ॥

अथ हलीमकचिकित्सा ।

मारितं चायसं चूर्णमुस्ताचूर्णेन संयुतम् ॥  
खदिरस्य कषायेण पिवेद्धन्तुं हलीमकम् ॥  
॥ ४४ ॥ सितातिलबलायष्टोत्रिफलारज-  
नीयुगेः ॥ लोहं लिह्यात्समध्वाज्यं हली-  
मकनिवृत्तये ॥ ४५ ॥

लोहसारकी भस्म और मोथेका चूर्ण लेकर खिरसारके  
काथके साथ पिये तो हलीमकरोग दूर होताहै, खाड़,  
तिल, खैरंटी, मुलेठी, त्रिफला, हलदी और दाण्डहल्लीके  
चूर्णके साथ लोहेकी भस्ममें सहत और घी मिलाकर चाटे  
तो हलीमकरोग नष्ट होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथामृततलतादिघृतम् ।

अमृततलतारसकल्कं प्रसाधितं तुरगवि-  
द्विषः सर्पिः ॥ क्षीरं चतुर्गुणमेतद्वितरेच्च  
हलीमकार्तेभ्यः ॥ ४६ ॥

मधुरैरन्नपानैस्तं वातपित्तहरैर्हरेत् ॥

कामलापाण्डुरोगोक्तां क्रियां चान्नोप-  
योजयेत् ॥ ४७ ॥

गिलेयका रस और उसका कल्क भैसका घृत डाल-  
कर बनावै, फिर उसमें चौगुना दूध डालकर पकावै, उस  
अमृतलतादि घृतको हलीमकरोगवाला सेवन करे तो  
हलीमकरोग समूल नष्ट हो । इस हलीमकरोगको मधुर  
और वातपित्त हरनेवाले अन्न पानोसे और पाण्डुरोग तथा  
कामलारोगमें कहीहुई औषधियोंसे शमनकरै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ पाण्डुकामलाहलीमकयोः

सामान्यचिकित्सा ।

फलत्रिकामृतावासातित्ताभूनिम्बनिवजः  
काथः ॥ क्षौद्रयुतोऽयं हन्यादहलीमकं  
पाण्डुकामलारोगम् ॥ ४८ ॥

त्रिफला, गिलेय, अडूसा ( बसौटा ), कुटकी,  
चिरायता और नीसकी छालका काथ बनाकर उसमें  
सहत मिलाकर पिये तो हलीमक, पाण्डु और कामलारोग  
विनष्ट होताहै ॥ ४८ ॥

अथ ऽयूषणादिमंडूरवटकः ।

ऽयूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्र-  
कम् ॥ दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिको  
देवदारु च ॥ ४९ ॥ एषां द्विपलिका-  
न्भागान्कृत्वा चूर्णं पृथक्पृथक् ॥ मण्डूरचूर्णं  
द्विगुणं शुद्धमज्जनसन्निभम् ॥ ५० ॥  
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेन्नरः ॥  
उदुम्बरसमाकारान्वटकास्तान्यथानि च  
॥ ५१ ॥ उपयुञ्जीत तत्रेण जर्णि  
सात्म्यश्च भोजनम् ॥ मंडूरवटिका  
हेताः प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ५२ ॥  
कुष्ठानि जठरं शोथमूरुस्तम्भं कफाम-  
यान् ॥ अर्शांसि कामलां मेहं प्लीहानं  
शमयन्ति च ॥ ५३ ॥

सोठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नाग-  
रमोथा, वायविडंग, चव्य, चीता, दारुहलदी, दारु-  
चीनी, सोनामाखी, पीपलामूल और देवदारु इन सब

को चार चार तोले लेकर अलग अलग पीस चूर्ण करै,  
इन सबसे दूने मंडूरके चूर्णको अठगुने गोमूत्रमें पकाकर  
ऊपर कहेहुए चूर्णको उसमें डालकर गूलरकी समान  
गोली बनाकर मट्टेके साथ अपनी शक्त्यनुसार भक्षण करै  
और जब वह पचजाय तो भोजन करै, यह मांडूरवटिका  
पांडुरोगवालेके लिये प्राणदायक है और कुष्ठ, उदररोग,  
सूजन, जघाओंका जकडना, कफरोग, बवासीर, कामला,  
प्रमेह और प्लीहादिक सब रोगोंको शान्त करैहै ॥ ४९-५३ ॥

अथाष्टादशांगलौहः ।

किराततित्तः सुरदारु दार्वी मुस्ता  
गुडूची कटुका पटोलम् ॥ दुरालभा  
पर्पटकं सनिम्बं कटुत्रिकं वह्निफलत्रि-  
कश्च ॥ ५४ ॥ फलं विडंगस्य समांश-  
कानि सर्वैः समं चर्णमथायसश्च । सर्पि-  
र्मधुभ्यां वटिका विधेया तक्रानुपाना-  
द्विषजा प्रयोज्या ॥ ५५ ॥ निहन्ति  
पाण्डुश्च हलीमकं च शोथं प्रमेहं ग्रहणी-  
रुजश्च ॥ श्वासश्च कासश्च सरक्तपित्तम-  
र्शास्यथो वाग्ग्रहमामवातम् ॥ व्रणांश्च  
गुल्मान्कफविद्रधिश्च चित्रश्च कुष्ठश्च ततः  
प्रयोगात् ॥ ५६ ॥

चिरायता, देवदारु, दारुहलदी, मोथा, गिलेय, कुट-  
की, परवल, जवासा, पित्तपापडा, नीम, त्रिकुटा ( सोठ,  
मिर्च, पीपल ), चीता, हरड, बहेडा, आमला और वायवि-  
डंग, ये सब औषधि समभाग लेकर और सबकी बराबर  
लोहमस मिलाकर घी और सहतके साथ मोदक बनाकर  
मट्टेके साथ सेवन करे तो पाण्डु, हलीमक, सूजन, प्रमेह,  
संग्रहणी, श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, अर्श, जीभका लठरा  
जाना, आमवात, व्रण, वायगोला, कफरोग, विद्रधि, श्वेत-  
कुष्ठ और प्रकारके कुष्ठादिक जो हैं वे सम्पूर्ण शान्त  
होतेहैं ॥ ५४-५६ ॥

यवगोधूमशाल्यत्रै रसैर्जागलजैर्हितैः ॥

मुद्गाढकीमसूराद्यैरेषु भोजनमिष्यते ॥ ५७ ॥

एषु पाण्डुरोगकामलाहलीमकेषु ॥

इति पाण्डुरोगकामलाहलीमकाधिकारः ।

जौ, गेहूँ, शालिधानोंके चावलोका भात, जगली जीवों-  
के मासका रस, मूँग, अरहर और मगूर आदिक भोजन  
पाण्डु, कामला और हलीमक रोगमें देना उचित है ५७॥

इति पाण्डुकामलाहलीमकरोगाधिकारः ।

## अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

तत्र रक्तपित्तनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

वर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः॥  
तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥  
पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणि-  
तम् ॥ १ ॥

तीक्ष्णं मरिचादि । उष्णमग्नितापादि ।  
क्षारो यवक्षारादिः । विदग्धं दूषितम् ।  
स्वगुणैः स्वकारणैः । गुणैः तीक्ष्णादिभिः ।  
गुणैरिति बहुत्वेन तीक्ष्णाम्ललवणकटुष्ण-  
वर्मादयो गृह्यन्ते । विदहति दूषयति ॥

धूप, व्यायाम ( दड कसरत ), शोक, मार्गगमन और  
मैथुन इनका अधिकतर सेवन करनेसे तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार  
तथा लवण पदार्थ इनको अत्यंत प्रयोग करनेसे, खट्टे और  
चरपरे पदार्थोंको अधिक खानेसे दूषित हुआ पित्त अपने  
गुणोंसे शीघ्रही रुधिरको दूषित करताहै । तीक्ष्ण अर्थात्  
मरिचादि पदार्थ, उष्ण अर्थात् अग्निका सेवन आदि,  
क्षार अर्थात् जवाखारादि पदार्थ अपने गुणोंसे अर्थात्  
अपने कारण रूप तीक्ष्ण, खट्टे, खारी, तीखे, और गरम,  
आदि गुणोंसे जानना ॥ १ ॥

अथ रक्तपित्तसामान्यलक्षणम् ।

ततः प्रवर्तते रक्तमूर्च्छं चाधो द्विधापि वा ॥ २ ॥

अत्र रक्तमित्युपलक्षणम् । तेन संसृष्टं  
पित्तञ्च । अत एव रक्तञ्च पित्तञ्च रक्तपित्तमिति  
द्वन्द्व इति सुश्रुतः । रक्तञ्च तत्पित्तं चेति रक्त-  
पित्तं रागप्राप्तं पित्तरक्तमित्युच्यते रक्तपित्तं  
कर्मधारयश्च । रक्तपित्तं मनीषिभिरिति उभ-

यत्रापि न दोषः कारणत्रयादृक्तम्यापि  
समाख्यानम् ॥

संयोगादुपणात्तच्च सामान्याद्वन्धवर्णयोः ॥

इस प्रकार पित्तमें दूषित होनेके कारण रुधिर और  
उसके साथ पित्त मिलकर ऊर्ध्व मार्गमें अथवा अधोमा-  
गासे वा दोनों मार्गोंसे बहने लगताहै उसको रक्तपित्त  
कहतेहैं ।

यहां सुश्रुत कहताहै कि, रुधिर और पित्त ये दोनों  
बहने लगतेहैं इस कारण यह रोग रक्तपित्त कहाजाना-  
है “अन्य ग्रन्थकार कहतेहैं कि, लाल रंगका पित्त होकर  
बहनेलगताहै इसकारण यह रोग रक्तपित्त कहाजाना-  
है” तीनों कारणोंमें पित्त रजित ( लाल ) होकर रक्तपित्त  
कहाजाताहै, अत एव दोनों पथोंमें किसी प्रकारका दोग  
नहीं आता, रुधिरका और पित्तका संयोग होताहै, पित्तमें  
रुधिर दूषित होताहै और रुधिर तथा पित्तकी गंध और  
वर्ण समान होतेहैं, इन तीनों कारणोंसे रजित हुआ जो  
पित्त उसको विद्वान् लोग रक्तपित्त कहतेहैं ॥ २ ॥

अथ रक्तपित्तप्रवृत्तिमार्गः ।

ऊर्ध्व नासाक्षिकर्णस्यैर्मह्योनिगुदैरथः ॥

कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ॥ ३ ॥

कोपको प्राप्त हुआ यह पित्त—नाक, आँख, कान और  
मुख इन ऊँचे मार्गोंसे बहताहै, तथा लिङ्ग, योनि और  
गुदा इन नीचे मार्गोंसे बहताहै और सम्पूर्ण रोमकूपोंसे  
भी बहताहै ॥ ३ ॥

अथ रक्तपित्तपूर्वरूपम् ।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः॥

लोहगन्धश्च निश्वासो भवंत्यस्मिन्भवि-  
ष्यति ॥ ४ ॥

जब रक्तपित्त होनेको होताहै तब उससे कुछ पाहिले  
ग्लानि, शीतकी इच्छा, गलेमें बुयेकासा घुटना, वमनका  
होना, रुधिरकी समान गंधका निकलना और बारबार  
श्वासोंका आना ये सब लक्षण होतेहैं ॥ ४ ॥

अथ कफजवातजरक्तपित्तरूपम् ।

सांद्रं सपाण्डु सज्जेहं पिच्छिलं च कफा-

न्वितम् ॥ श्यावारुणं सफेनं च तनु  
रूक्षञ्च वातिकम् ॥ ५ ॥

कफज रक्तपित्तका रुधिर—गाढा, पांडुवर्ण, स्नेहयुक्त  
और पिच्छिल होता है । वातसम्बन्धी रक्तपित्त—काला,  
लाल, आगो युक्त पतला और रूखा बहता है ॥ ५ ॥

अथ पित्तजरक्तपित्तस्वरूपम् ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम् ॥  
मेचकाङ्गारधूमाभमञ्जनाभञ्च पैत्तिकम् ॥ ६ ॥

मेचकम् चिकणं कृष्णवर्णम् । अञ्जनं  
स्रोतोञ्जनं तदाभम् ॥

पित्तज रक्तपित्तका रुधिर—धाथकी सदृश काला,  
गोमूत्रकी तुल्य चिकने काले रंगका, कोयलेकी धुँवेकी  
समान और अंजनकी समान प्रवर्तन होता है ॥ ६ ॥

अथ संसर्गविशेषेण मार्गभेदाः ।

संसृष्टलिंगं संसर्गात्रिलिंगं सान्निपाति-  
कम् ॥ ऊर्ध्वं कफसंसृष्टमधोगं मारुता-  
नुगम् ॥ द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यां  
तत्प्रवर्तते ॥ ७ ॥

कफके संसर्गवाला रक्तपित्त—ऊर्ध्व मार्गसे बहता है, वात  
सम्बन्धी रक्तपित्त—अधोमार्गसे बहता है, कफ और वायुके  
संसर्गवाला रक्तपित्त—दोनों मार्गोंसे बहता है और जो तीनों  
दोषोंसे संसर्गज सान्निपातिक रक्तपित्त होता है उसमें तीनों  
दोषोंके लक्षण देखे जाते हैं ॥ ७ ॥

अथ रक्तपित्तोपद्रवाः ।

दौर्बल्यं श्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डु-  
तादाहमूर्च्छा भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि  
सदा हृद्यतुल्या च पीडा ॥ तृष्णा कोष्ठस्य  
भेदः शिरसि च तपनं पूयनिष्ठीवनञ्च  
द्वेषो भुक्तेऽविपाको विकृतिरपि भवेद्रक्त-  
पित्तोपसर्गात् ॥ ८ ॥

विकृतिः मांसप्रक्षालनाभतादिः ॥

दुर्बलता, श्वास, खोंसी, ज्वर, वमन, मद, पाण्डुता,  
दाह, मूर्च्छा, भोजन करनेके पश्चात् घोर दाह, अधीर्य-  
पन, सदैव हृदयमे असाधारण पीडा, पियास, दस्तोंका  
होना, मस्तकमे सताप, थूकनेमें दुर्गन्धता, अन्नमें अरुचि,

भोजनका न पचना और मांसके धोवनकी समान रुधिरका  
बहना ये सब रक्तपित्तके उपद्रव हैं अर्थात् रक्तपित्तमे यह  
उन्नीस उपद्रव होते हैं ॥ ८ ॥

अथ रक्तपित्तसाध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ॥  
यत्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत्  
॥ ९ ॥ ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं  
युगपद्गतम् ॥ व्याधिभिः क्षीणदेहस्य  
वृद्धस्याऽनश्वतस्तु यत् ॥ १० ॥

जो रक्तपित्त एक दोषज होय तो साध्य समझना, जो  
दो दोषोंवाला होय तो याप्य जानना और जो तीनों  
दोषोंवाला होय, तथा मदान्निवाले मनुष्यके उत्पन्न हुआ  
होय और अत्यन्त वेगवाला होय तो असाध्य जानना, जो  
रक्तपित्त ऊर्ध्व मार्गसे निकलता होय तो साध्य समझना,  
अधोमार्गसे बहता होय तो याप्य जानना और जो दोनों  
मार्गोंसे बहता होय तथा व्याधियोंसे क्षीण हुये, वृद्ध-  
मनुष्यके और भोजनसे थके हुए मनुष्यके उत्पन्न हुआ  
रक्तपित्त असाध्य जानना ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ साध्यरक्तपित्तविवेचनम् ।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् ॥  
रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुप-  
द्रवम् ॥ ११ ॥

जो रक्तपित्त एक मार्गसे बहता होय, बलवान्के उत्पन्न  
हुआ, अत्यन्त वेगरहित, तत्कालका, हेमत् और शिशिर  
ऋतुमें उत्पन्न हुआ और उपद्रवरहित होय तो साध्य  
जानना ॥ ११ ॥

अथासाध्यरक्तपित्तम् ।

मांसप्रक्षालनाभं कथितमिव च यत्कर्दमा-  
म्भोनिभं वा मेदःपूयास्रकल्पं यत्कृदिव  
यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् ॥ यत्कृष्णं यच्च  
नीलं भृशमपि कुणपं यत्र चोक्ता विका-  
रास्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च  
तुल्यं विभाति ॥ १२ ॥



उक्ता विकारा दोर्वल्यादयः । मुरपति-  
धनुषा तुल्यं नानावर्णम् ॥

जो रक्तपित्तका रुधिर मासके धोवनकी समान अथवा काढेकी समान, वा कीचके भिलेहुए पानीकी समान, वा मेद, राध अथवा रुधिरकी समान, वा कलेजेके टुकडेके रगका, किवा पकी जामुनकी समान, या काला अथवा मोरके गलेकी समान नीला, अथवा मुरदेकी समान गध-  
चाला, अथवा प्रथम कहे हुए विकारोंवाला और इन्द्रधनुष-  
की समान अनेक प्रकारके रगवाला होय तो असाध्य  
जानना ॥ १२ ॥

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः ॥  
पश्येदृश्यं वियञ्चापि तदसाध्यमसंश-  
यम् ॥ १३ ॥

येन रक्तपित्तेन उपहतः मनुष्यः दृश्यं घट-  
पटादिकं रक्तं पश्यति स नश्यति वियञ्चापि  
अदृश्यमपीत्यर्थः ॥

जो रक्तपित्तसे पीडित मनुष्य घटपटादि दृश्य पदार्थोंको  
और आकाशादि अदृश्य पदार्थोंको अत्यंत रक्त वर्ण देखै  
वह रक्तपित्त रोगी निश्चय असाध्य है ॥ १३ ॥

अथ रक्तपित्तारिष्टम् ।

लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥  
लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपै-  
त्तिकः ॥ १४ ॥

लोहितोद्गारदर्शी व्याधिमहिम्ना उद्गार-  
मपि लोहितं पश्यतीत्यर्थः ॥

जो रक्तपित्तवाला रोगी बारबार रुधिरकी वमन करे,  
नेत्र लाल लाल होजाय और उसको बारबार डकारमें भी  
रुधिर आवै वह अवश्य मरजाता है ॥ १४ ॥

अथ रक्तपित्तचिकित्सा ।

पित्तासंस्तम्भयेन्नादौ प्रवृत्तं बलिनो यतः ॥

हृत्पाण्डुरहणरोगप्लीहगुल्मज्वरादिकृत् १५

बलवान् मनुष्यके उत्पन्न हुए रक्तपित्तको प्रथम कदापि  
स्तम्भन औषधियोंके द्वारा नहीं रोकना चाहिये क्योंकि  
प्रथम रक्तपित्तको बढ़ करनेसे हृदयरोग, पाण्डुरोग,  
सप्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वरादि रोग उत्पन्न होते  
हैं ॥ १५ ॥

शालिपष्टिकनीवारकोरूपप्रसाधिकाः ॥  
श्यामाकाश्च प्रियंगुश्च भोजनं रक्तपित्ति-  
नाम् ॥ १६ ॥

शालिधान, साठीधान, नीवार, कोदो, प्रसाधिका,  
समा और कगुनी इनका भान रक्तपित्त रोगीको भोजनके  
लिये देवे ॥ १६ ॥

मसूरमुद्गचणकाः समकुष्ठाटकीफलाः ॥  
प्रशस्ताः सूपयूपार्थे कल्पिता रक्तपित्ति-  
नाम् ॥ १७ ॥

रक्तपित्त रोगीको दालके लिये और यूपके लिये मसूर,  
मूंग, चने, मोठ और अउरकी योजना करनी  
चाहिये ॥ १७ ॥

दाडिमामलकं विद्वानम्लार्थं चापि दापये-  
त् ॥ पटोलनिम्बन्यग्रोधप्लक्षवेतसपल्लवान् ॥  
॥ १८ ॥ शाकार्थं शाकसात्म्यानां तण्डु-  
लीयादयो हिताः ॥ पारावतान्कपोतांश्च  
लावात्रकाक्षवर्तकान् ॥ १९ ॥ शशान्क-  
पिञ्जलानेणान्हरिणान्कालपुच्छकान् ॥  
रक्तपित्तहरान्विद्यादसांस्तेषां प्रयोजयेत् ॥  
ईषदम्लानमम्लांश्च वृत्तभृष्टान्ससैन्धवान् ॥  
॥ २० ॥ कफानुगे यूपशाकान्दद्याद्वाता-  
नुगे रसम् ॥ पथ्यं सतीनयूपेण ससितै-  
र्लाजसक्तुभिः ॥ २१ ॥

रक्तपित्त रोगीको खट्वाईके लिये वैद्य अनार और  
आमले देवे । जिनको शाक अनुकूल होय तो ऐसे रक्त-  
पित्त रोगियोंको शाकके लिये परवल नीम बडके अकुर  
अथवा कोमल पत्ते, पाखर और वेतके कोमल पत्ते और  
चौलाई आदि हितकारक शाक होने चाहिये रक्त-  
पित्तरोगीको मासके लिये कवूतर, परेवा, लवा,  
चकोर, वत्तक, खरगोस, तीतर, एण हरिण, हिरन  
और कालपुच्छ हरिण इनके मासका रस रक्तपित्तको  
नष्ट करनेके लिये देवे । कफज रक्तपित्तमें किंचित्  
अम्ल, अथवा अम्ल नहीं घोंमें भुना हुआ और सैधा  
निमक मिलाहुआ शाक और यूप देवे । वातज रक्तपित्त-

में मटरके दूधके साथ और खीलेके सत्तूमें मिश्री मिलाकर मांसरस पच्य देवे ॥ १८-२१ ॥

### अथ धान्यकादेहिमः ।

धान्याकधान्त्रीवासानां द्राक्षापपटयोर्हिमः ॥  
रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषश्च नाश-  
येत् ॥ २२ ॥

धनिया, आमला, अडूसा, दाख और पित्तपापडा इन सबका हिम बनाकर पीनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृष्णा और शोष नष्ट होता है यह धान्यकादि नामसे प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥

हीवेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं यष्टिकाऽमृता ॥  
उशीरश्च त्रिवृच्चैषां काथं समधुशर्करम् ॥  
॥ २३ ॥ पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तपित्तं  
प्रणश्यति ॥ रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं  
ज्वरं तथा ॥ २४ ॥ पद्मोत्पलानां किञ्च-  
ल्कः पृष्णिपर्णी प्रियंगुका ॥ जले साध्या  
रसे तस्मिन्पेया स्याद्रक्तपित्तिनाम् ॥ वासा-  
पत्रसमुद्भूतो रसः समधुशर्करः ॥ २५ ॥  
काथो वा हरते पीतो रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥  
पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ॥  
॥ २६ ॥ समधुर्हरते रक्तपित्तं कासज्वर-  
क्षयान् ॥ उत्पलं कुमुदं पद्मं कल्लारं लोहि-  
तोत्पलम् ॥ २७ ॥ मधुकञ्चेति पित्ता-  
सुक्त्वृष्णाच्छर्दिहरो गणः ॥ वासायां  
विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ॥  
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति  
॥ २८ ॥ आटरूषकमृद्धीकापथ्याकाथः  
सशर्करः ॥ क्षौद्राढ्यः सकलश्वासरक्त-  
पित्तनिवर्हणः ॥ २९ ॥

सुगन्धवाला, कमल, धनिया, चन्दन, मुलेठी, गिलोय, खस और निसोत इनका काथ बनाकर सहत और बूरा मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त तत्काल नष्ट होजाता है । कमल अथवा उत्पल कमलकी केसर—उग्र रक्तपित्त, तृष्णा, दाह और ज्वरको दूर करै है । पिठवन और फूलप्रियंगु इनका काथ बनाकर उसमें पकी हुई पेया ( दूधपानी ) मिलाकर

रक्तपित्त रोगीको पीनेको देवे । अडूसेके पत्तोंका स्वरस अथवा काथ बनाकर उसमें सहत अथवा मिश्री मिलाकर पीनेसे दारुण रक्तपित्त भी नष्ट होजाता है । अडूसेके पत्तोंको पीसकर पुटपाक करे, फिर उनका रस निकालकर उसमें सहत मिलाकर पियै अथवा अडूसेके पत्तोंका हिम बनाकर उसमें सहत मिलाकर पियै तो रक्तपित्त, खोंसी, ज्वर और क्षयरोग नष्ट हो. उत्पल, कुमुद, कमल, लाल कमोदिनी और लाल कमल, ये पांचो तथा मुल्हठी, इन सब औषधियोंका समूह रक्तपित्त, तृष्णा और वमनको दूर करै है । अडूसेके विद्यमान होनेपर जीवनकी आशा करनेवाले रक्त पित्त, क्षय और खाँसाके रोगी क्यो व्यर्थ दुःख पाते हैं । अडूसा, दाख और हरड इनके काथमें मिश्री और सहत डालकर पीनेसे सर्व प्रकारके श्वास और रक्तपित्त रोग नष्टहोते हैं ॥ २३-२९ ॥

### अथ दूर्वाद्यधृतम् ।

दूर्वा सोत्पलकिञ्चल्कमाञ्जिष्ठासैलवालु-  
का ॥ सिता शीतमुशीरश्च मुस्तं चन्दन-  
पद्मकम् ॥ ३० ॥ विपचेत्कार्षिकैरेतैराजं  
प्रस्थमितं धृतम् ॥ तण्डुलानां जलं छा-  
गीक्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥ तत्पानं  
वमतो रक्तं नावनं नासिकागते ॥ कर्णा-  
भ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत्  
॥ ३२ ॥ चक्षुः स्रवति रक्तञ्चेत्पूरयेत्तेन  
चक्षुषी ॥ मेढूपायुप्रवृत्ते तु वस्तिकर्मसु  
योजयेत् ॥ ३३ ॥ रोमकूपप्रवृत्ते तु तद-  
भ्यंगं प्रयोजयेत् ॥ सर्वेषु रक्तपित्तेषु  
तस्माच्छ्रेष्ठमिदं धृतम् ॥ ३४ ॥

दूर्व, कमल, कमलकी केसर, भेंजीठ, एलुआ, मिश्री, शीतलचीनी, या कपूर, खस, नागरमोथा, चन्दन लाल और पद्माख प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बनावै, इस कल्कको चौगुने चावलके जलमें और बकरीके दूधमें ६४ चौंसठ तोले बकरीका घी विधिपूर्वक पकाना चाहिये । जो रुधिरकी वमन होती होय तो इस धृतको पीना उत्तम है । जो नाकमेंसे रुधिर निकलता होय तो इस धृतका नास देना हितकारी है । जो कानमेंसे रुधिर बहता होय तो इस धृतको कानमें डालना शुभ है । जो

नेत्रोंमेंसे रुधिर गिरता होय तो इस घृतको नेत्रोंमें लगाना श्रेष्ठ है । जो लिंगमेंसे अथवा गुदामेंसे रुधिर बहता होय तो इस घृतकी पिचकारी लगानी सुखद है । जो रोमग्रन्थोंमेंसे रुधिर निकलता होय तो इस घृतकी मालिस अत्यन्त फलदायक है । यह दूर्वाय घृत सर्व प्रकारके रक्तपित्तोंमें उपयोगी होनेके कारण श्रेष्ठ है ॥ ३०-३४ ॥

मृद्धीकां चन्दनं लोधं प्रियंगुञ्च विचूर्णयेत् ॥  
चूर्णमेतत्पिवेक्षौद्रवासारससमन्वितम् ॥  
॥ ३५ ॥ नासिकामुखपायुभ्यो योनिमेद्वा-  
दिवेगिनम् ॥ रक्तपित्तं स्वद्वन्ति सिद्ध  
एष प्रयोगराट् ॥ ३६ ॥ यच्च शस्त्रक्षते-  
नेव रक्तं स्वति वेगतः ॥ तदप्येतन  
चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम् ॥ ३७ ॥

दाख, चन्दन, लोध, और फूलप्रियंगु इन सबका चूर्ण करके सहत और अट्टसेके रसके साथ सेवन करे तो ये उत्तम प्रयोग नाकमेंसे, मुखसे, गुदामेंसे, योनिमेंसे और लिंग आदिसे वेगपूर्वक गिरते रुधिरको तत्काल बंद कर- देता है, जो शस्त्रके लगनेसे घाव होकर उसमें रुधिर बह- ता हो और वह रुधिर बंद नहीं होसके तो उस घावके ऊपर इस चूर्णको बुरकानेसे तत्काल रुधिरका बहना बन्द होजाता है ॥ ३५-३७ ॥

इक्षूणां मध्यकाण्डानि सकन्दं नीलमुपल-  
म् ॥ केशरं पुण्डरीकस्य मोचामधुकपद्मकैः  
॥ ३८ ॥ वटप्ररोहशुंगाश्च द्राक्षा खर्जूरमेव-  
च ॥ एतानि समभागानि कपायं सम्प्रकल्प-  
येत् ॥ ३९ ॥ उपितं मधुसंयुक्तं पायये-  
च्छर्करान्वितम् ॥ सप्रमेहं रक्तपित्तं क्षिप्रमे-  
तन्नियच्छति ॥ ४० ॥ द्राक्षया फलिनीभिर्वा  
प्रियालमधुकेन वा ॥ श्वदंष्ट्रया शतावर्या  
रक्तजित्साधितं पयः ॥ ४१ ॥

ईखके बीचका कांड (गन्नेकी गाठ) जड़ समेत नील कमल, कमलकी केसर, केला, मुलेठी, पन्नाख, बड़के अकुर, अथवा कोमल पत्ते, दाख और खजूर इन सबको समानभाग लेकर हिम बनावे, इस हिममें मिश्री और सहत मिलाकर पिये तो रक्तपित्त और प्रमेह तत्काल नष्ट हो जाते हैं ।

दाखस तथा फूलप्रियंगुं अथवा चिरंजीमं तथा भु-  
लंठीसे, अथवा गोगुन्धोंमें किवा सतावरंगे पन्नाख दूर्वा  
दूध रक्तपित्तको दूर करना है ॥ ३८-४१ ॥

पकोदुम्बरकाश्मर्यः पथ्याग्वर्जूरगोस्त-  
नाः । मधुना व्रन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथ-  
क्पृथक् ॥ ४२ ॥

अत्र काश्मर्याः फलमेव ग्राह्यं फलसाह-  
चर्यात् ।

अतिनिःसृतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिवेदसृ-  
क् ॥ सकृद्वा भक्षयेदाज्यं मांसं वा पित्त-  
संयुतम् ॥ ४३ ॥ नासाप्रवृत्तरुधिरं घृत-  
भृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् ॥ सेतुरिव  
तोयवेगं रुणाद्धि मूर्ध्नि प्रलेपन ॥ ४४ ॥  
घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु पेयं सशर्करं नासि-  
कया च यो वा ॥ द्राक्षारसं क्षीरघृतं  
पिवेद्वा सशर्करञ्चक्षुरसं हिताय ॥ ४५ ॥  
नस्ये दाडिमपुष्पस्य रसो दूर्वाभवोऽपि  
वा ॥ आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासि-  
कास्याविरक्तजित् ॥ ४६ ॥

पके गूलरके फल, अथवा कुम्भेरके फल अथवा हरड़ या खजूर किवा दाख इनको सहतमें मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है ।

जिस मनुष्यके शरीरमेंसे अत्यन्त रुधिर निकल चुका होय वह मनुष्य बकरेके रुधिरमें सहत मिलाकर पिये अथ- वा एक बार सहतके साथ घी खाय । अथवा पित्तसहित मांसको खाय ।

जो नाकमें रुधिर गिरताहो अर्थात् नकसीर छूटती होय तो आमलोको महीन पीसकर घीमें भूनकर माथेपे लेप करदेवे, जिस प्रकार वाधसे जलका वेग रुकजाताहै उसी- प्रकार इस लेपसे रुधिरका गिरना बंद होजाताहै । अथवा शीतलजलमें बूरा मिलाकर सरबत बनाकर नाकके द्वारा पीनेसे या नाकके द्वाग दूध पीनेसे अथवा दूधके साथ दाखका रस पीनेसे किवा ईखके रसमें खाड़ मिलाकर पीनेसे नकधीर बंद होजाताहै ।

अनारके फूल, वा दाखका रस अथवा आमकी गुठलीका रस, किंवा प्याजके रसका नास देनेसे नाकमेंसे रुधिरका गिरना बन्द होजाताहै ॥ ४२-४६ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डावलेहः ।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं बृहत् ॥  
तद्बीजाधारबीजत्वक्छिराशून्यं समाचरेत् ॥ ४७ ॥ ततस्तस्य तुलां नीत्वा पचेज्जल-  
तुलाद्वये ॥ तस्मिन्नीरेऽर्द्धशिष्टे तु यत्नतः  
शीतलीकृते ॥ तानि कूष्माण्डखण्डानि  
पीडयेद्दृढवाससा ॥ ४८ ॥ यत्नतस्तज्जलं  
नीत्वा पुनः पाकाय धारयेत् ॥ कूष्माण्डं  
शोषयेद्धर्मे ताम्रपात्रे ततः क्षिपेत् ॥ ४९ ॥  
क्षिप्त्वा तत्र घृतं प्रस्थं कूष्माण्डं तेन भर्ज-  
येत् ॥ मधुवर्णं तदालोक्य तज्जलं तत्र नि-  
क्षिपेत् ॥ ५० ॥ सितायाश्च तुलां तत्र  
क्षिप्त्वा तल्लेहवत्पचेत् ॥ सुपके पिप्पली-  
शुण्ठीजीराणां द्विपले पृथक् ॥ ५१ ॥  
पृथक्पलार्द्धं धान्याकं पत्रैलामरिचत्वचम् ॥  
चूर्णमेषां क्षिपेत्तत्र घृतार्द्धं क्षौद्रमावपेत् ॥  
एतत्पलमितं खादेदथ वाऽग्निबलं यथा ॥  
॥ ५२ ॥ खण्डकूष्माण्डलेहोऽयं रक्तपित्त-  
श्च नाशयेत् ॥ पित्तज्वरं तृषां दाहं प्रदरं  
कृशतां वमिम् ॥ ५३ ॥ कासं श्वासश्च  
हृद्दोगं स्वरभेदं क्षतं क्षयम् ॥ नाशयत्येव  
वृद्धिश्च बृंहणो बलवर्द्धनः ॥ ५४ ॥

उत्तम पुराना, बड़ा, और मोटा पेठा लेकर छील बनाकर उसके बीज और बीजोंके रहनेके स्थान निकालकर बगेल देवै फिर उसमेंसे सौ १०० पल गूदा लेकर ८०० अठसौ तोले जलमे पकावै, जब पकते २ जल आधा बाकी रहजाय तब उतारकर यत्नपूर्वक शीतल करै, फिर उसमेंसे पेठेके टुकड़ोंको निकालकर उत्तम मोटे वस्त्रमें खूब खँच-कर बाँधे और दबाकर जल निचोड देवै और निचुडेहुए जलको फिर पकानेके लिये अलग रख देवै, फिर उन पेठेके

टुकड़ोंको धूपमे सुखाकर ताँबेके बासनमें डालकर ६४ चौसठ तोले घी मिलाकर भूने, जब भुनते भुनते सहतकी समान होजाय तब पूर्वोक्त पेठेके निचोडे हुए जलमे डालकर और उसमें १०० सौ पल उत्तम मिश्री डालकर अवलेहकी तरह पकावै, जब अच्छे प्रकारसे पककर तैयार होजाय तब उसमे ८ आठ तोले पीपल, ८ आठ तोले सोठ, ८ आठ तोले जीरा, २ तोले घनिया, २ दो तोले तेजपात, २ तोले इलायची, २ दो तोले काली मिरच और दो तोले दालचीनी इन सबका चूर्ण करके मिला-देवै और ३२ बत्तीस तोले सहत मिला देवे तो यह 'खण्डकूष्माण्ड' अवलेह तैयार होताहै । इसमेंसे ४ चार तोले प्रमाण खाय अथवा अपनी अग्निके बलानुसार इस-मेंसे सेवन करै । यह अवलेह—रक्तपित्त, पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रदर, कृशता, वमन, खोंसी, श्वास, हृदयरोग, स्वरभेद, क्षत, क्षय और अन्नवृद्धिको नष्ट करै है । यह पुष्टिकारक और बलको बढ़ानेवाला है ॥ ४७-५४ ॥

अथ बृहत्कूष्माण्डावलेहः ।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं दृढ-  
म् ॥ तद्बीजाधारबीजत्वक्छिराशून्यं समा-  
चरेत् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिमूक्ष्मखण्डानि  
कृत्वा तस्य तुलां पचेत् ॥ गोदुग्धस्य तुला-  
मध्ये मन्देऽग्नौ वा पचेच्छनैः ॥ ५६ ॥  
शर्करायास्तुलां सार्द्धां गोघृतं प्रस्थमात्र-  
कम् ॥ प्रस्थार्द्धं माक्षिकश्चापि कुडवं नारि-  
केलतः ॥ ५७ ॥ प्रियालफलमज्जानं द्वि-  
पलं तिखुरीपलम् ॥ क्षिपेदेकं च विपचे-  
ल्लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ५८ ॥ भिषक्सु-  
पक्कमालोक्य ज्वलनादवतारयेत् ॥ कोष्णे  
तत्र क्षिपेदेषां चूर्णं तानि वदाम्यहम् ॥  
॥ ५९ ॥ एकोऽक्षः शतपुष्पाया अथ क्षीरी  
यवानिका ॥ गोक्षुरः क्षुरकः पथ्या कपि-  
कच्छुफलानि च ॥ ६० ॥ सप्तमी त्वक्च  
सर्वेषामक्षयुग्मं पृथक्पृथक् ॥ धान्याकं  
पिप्पली मुस्तमश्वगन्धा शतावरी ॥ ६१ ॥

तालमूली नागवला बालकं पत्रकं शटी ॥  
जातीफलं लवङ्गञ्च सूक्ष्मैला बृहदेलिका ॥  
॥ ६२ ॥ शृंगाटकं पर्पटकं सर्वं पलमितं  
पृथक् ॥ चन्दनं नागरं धात्रीफलञ्चापि  
कशेरुकम् ॥ ६३ ॥ प्रत्येकं पञ्च कर्पाणि  
चत्वार्येतानि निक्षिपेत् ॥ पलद्वयमुशोरस्य  
मषाणस्योषणस्य च ॥ ६४ ॥ कूष्माण्ड-  
स्यावलेहोऽयं भक्षितः पलमात्रया ॥ किं  
वा यथावह्निबलं भुक्त्वा रोगान्विनाशयेत् ॥  
॥ ६५ ॥ रक्तपित्तं शीतपित्तमम्लपित्तम-  
रोचकम् ॥ वह्निमान्द्यं सदाहञ्च तृष्णां  
प्रदरमेव च ॥ ६६ ॥ रक्ताशोऽपि तथा  
छार्दि पाण्डुरोगञ्च कामलाम् ॥ उपदंशं  
विसर्पञ्च जीर्णञ्च विषमं ज्वरम् ॥ ६७ ॥  
लेहोऽयं परमो वृष्यो बृंहणो बलवर्द्धनः ॥  
स्थापनीयः प्रयत्नेन भाजने मृन्मये  
नवे ॥ ६८ ॥

पुराना, कठिन, उत्तम पकाहुआ और बड़ा पेटा लेकर उसको छील बनाकर बीजोंको और बीजोंके रहनेके स्थान-  
को निकालकर फेंकदेवे, फिर उसके छोटे छोटे टुकड़े करके  
उसमेंसे ४०० चारसौ तोले लेकर ४०० चारसौ तोले  
उत्तम गायके दूधमे धीरे धीरे मंद मंद अग्निसे पकावे,  
फिर उसमें उत्तम सुफेद घृता १५० डेढसौ पल गायका  
घी ६४ चौंसठ तोले, सहत ३२ बत्तीस तोले, नारियलकी  
गिरी १६ सोलह तोले, चिरंजीकी मींग ८ आठ तोले,  
और तवाखीर ४ चार तोले, डालकर विधिपूर्वक अवले-  
हकी समान पकावे जब अच्छेप्रकारसे पककर तैयार होजाय  
तब उसको अग्निमेंसे उतार लेवे, जब कुछ कुछ गरम रहे  
तब नीचे लिखी औषधियोंको मिलादेवे । जैसे, सौंफ १  
एक तोला, वज्र लोचन २ दो तोले, अजवायन २ दो  
तोले, गोगुर २ दो तोले, तालमखाना, २ तोले, हरड  
२ दो तोले, कौंधके बीज २ दो तोले, दालचीनी २  
तोले, धनिया ४ चार तोले, पीपल ४ तोले, नागरमोथा ४  
चार तोले, असगंध ४ चार तोले, सतावर ४ चार तोले,  
काली मुसली ४ चार तोले, गगेरन ४ तोले, सुगंधवाला ४  
ताले, तेजपात ४ चार तोले, कचूर ४ चार तोले, जाय-

फल ४ चार तोले, लौंग ४ चार तोले, छोटी उज्जयिनी  
४ चार तोले, बड़ी उज्जयिनी ४ चार तोले, गिगांड ४  
चार तोले, पित्तपापटा ४ तोले, चन्दन ५ पांच तोले, गाट  
५ पांच तोले, आमले ५ पांच तोले, केमर ५ पांच तोले,  
खम ८ आठ तोले, मजाने ८ आठ तोले, और काली-  
मिर्च ८ आठ तोले, इन सबका चूर्ण करके मिला देवे  
तो यह 'बृहत्कूष्माण्डावलेह' सिद्ध होता है । इस अवलेह-  
हको ४ चार तोले प्रमाण अथवा अपनी अग्निके बलानु-  
सार सेवन करे तो रक्तपित्त, शीतपित्त, अम्लपित्त, अग्नि,  
मन्दाग्नि, दाह, तृषा, प्रदर, रुक्मिकी बवासीर, तमन,  
पाण्डुरोग, कामला, उपदंश, विसर्प, जीर्णज्वर और विर-  
मज्वर नष्ट होता है । यह अवलेह मधुनशक्तिको अन्यत्र  
बढानेवाला, धातुको पुष्ट करनेवाला और बलको बढाने-  
वाला है । इस अवलेहको मद्यीके उत्तम नवीन वासनमें  
भरकर रखना चाहिये ॥ ५५-६८ ॥

### अथ खण्डकूष्माण्डकम् ।

कूष्माण्डकस्य स्वरसं पलानां शतमात्रया ।

रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥

॥ ६९ ॥ मृद्वग्निना पचेत्तावद्यावद्भवति  
पिण्डवत् ॥ ७० ॥ धात्रीतुल्या सिता यो-  
ज्या पलाहं लेहयेदनु ॥ खण्डकूष्माण्डकं  
ह्येतदुक्तमभ्यासतो हरेत् ॥ रक्तपित्तमम्ल-  
पित्तं दाहं तृष्णाञ्च कामलाम् ॥ ७१ ॥

उत्तम पेटेका स्वरस ४०० चारसौ तोले, गायका दूध  
४०० चारसौ तोले, और आमलोंका चूर्ण ३२ बत्तीस  
तोले सबको एकत्र मिलाकर धीरे २ मंद मंद अग्निसे  
तबतक पकावे जबतक पिंड न बंधे, जब पिंड बंधजाय तब  
इसमें ३२ बत्तीस तोले उत्तम घृता मिलादेवे तो 'खण्ड-  
कूष्माण्डक' नामवाला अवलेह तैयार होता है । इस अव-  
लेहमेंसे नित्य २ दो तोले प्रमाण खाना चाहिये । इस  
अवलेहको सेवन करनेसे रक्तपित्त, अम्लपित्त दाह, तृषा,  
और कामलारोग नष्ट होजाता है ॥ ६९-७१ ॥



अथ खंडखाद्यलौहः ।

शतावरी छिन्नरुहा वृषो मुण्डतिका  
बला ॥ तालमूली च गायत्री त्रिफला-  
यास्त्वचस्तथा ॥ ७२ ॥ भाङ्गी पुष्कर-  
मूलश्च पृथक्पञ्च पलानि च ॥ जलद्रोणे  
विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ७३ ॥  
दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य  
वा ॥ पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य  
चूर्णितम् ॥ ७४ ॥ खण्डतुल्यं वृत दयं  
पलं षोडशकं बुधैः ॥ पचेत्ताम्रमये पात्रे  
गुडपाको मतो यथा ॥ ७५ ॥ प्रस्थार्धं  
मधुना देयं शुभाश्मजतुकस्य च ॥ शृङ्गी  
कृष्णा विडंगश्च शुण्ठ्यजाजी पलं-  
पलम् ॥ ७६ ॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं  
कणा मरिचकेशरम् ॥ चूर्णं दत्त्वा सुम-  
थितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ७७ ॥  
यथाकालं प्रयुञ्जीत विडालपदमात्रकम् ॥  
गव्यक्षीरानुपानश्च सेव्यो मांसरसः  
पयः ॥ ७८ ॥ गुरुवृष्यान्नपानानि  
स्निग्धमांसादिबृंहणम् ॥ रक्तपित्तं क्षयं  
कासं पार्श्वशूलं विशेषतः ॥ ७९ ॥ वात-  
रक्तं प्रमेहश्च शीतपित्तं वमिं क्लमम् ॥  
श्वयथुं पाण्डुरोगश्च कुष्ठं ग्रीहोदरं  
तथा ॥ ८० ॥ आनाहं मूत्रसंस्त्रावमम्ल-  
पित्तं निहन्ति च ॥ चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं  
मंगल्यं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ८१ ॥ आरोग्यं  
पुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्द्धनम् ॥ श्रीकरं  
लाघवश्चैव खण्डखाद्यं प्रकीर्तितम् ॥  
॥ ८२ ॥ छागं पारावतं मांसं तित्तिरः  
क्रकरः शशः ॥ कुरंगः कृष्णसारश्च  
मांसमेषां प्रयोजयेत् ॥ ८३ ॥ नारिके-  
लपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम् ॥  
शुष्कमूलकजीवाण्यं पटोलं बृहतीफलम् ॥

॥ ८४ ॥ वार्ताकुं पक्वमात्रश्च खर्जूरं  
स्वादु दाडिमम् ॥ ककारपूर्वकं यच्च  
मांसश्चानूपसम्भवम् ॥ वर्जनीयं विशेषेण  
खण्डखाद्यं समश्नता ॥ ८५ ॥ लोहान्त-  
रवदत्रापि पुटनादिक्रियेष्पते ॥ न पुन-  
र्माक्षिकेणैव शिलयैव हि मारणम् ॥ ८६ ॥

भाङ्गी [ वामन्हाटी ] दिव्यौषधी मनः-  
शिला । रुक्मलौहं गजवेली इति लोके ।  
सुनिषण्णं चतुष्पत्री शाकविशेषः । जीवन्ती  
जीव इति शाकविशेषः । ककारपूर्वकं  
कटुकः कालशाकं कूष्माण्डं कर्कटी कर्को-  
टक कलिंग कर्कन्धु करमर्दक करीर कतक  
कशेरु काञ्जिक इति वर्जनीयम् । इति  
खण्डखाद्यं लोहम् ।

सतावर, गिलेय, अड्डसा, गोरखमुंडी, खिरैटी, मुसली,  
खैर, त्रिफला, भारंगी और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि  
२० बीस २० बीस तोले लेकर १०२४ एक हजार  
चौबीस तोले भर जलमें पकावै जब पकते २ आठवां भाग  
काढा शेष रहजाय तब मैनशिल अथवा सोनामाखीसे  
माराहुआ तक्षिण लोहा ४८ अरतालीस तोले, खोंड ६४  
तोले, घृत ६४ चौसठ तोले, फिर सबको मिलाकर तांबेके  
बासनमें जिसप्रकार गुडका पाक बनताहै उसी प्रकार  
इसको पकावै, शीतल होनेपर ३२ तोले सहत मिलोदेवै,  
वशलोचन, शिलाजीत, काकडाशिगी, पीपल, वायविडंग,  
सोंठ, जीरा, त्रिफला, धनिया, तेजपात, कालाजीरा मिरच  
और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले लेकर  
सबको मिलाकर खूब हाथोंसे मथकर चिकने बासनमें  
भरके रखदेवे, इसको खंडखाद्यलोह कहतेहैं । समयानुसार  
इस औषधिमेंसे एक तोला प्रमाण लेकर गायके दूधके  
साथ सेवन करना चाहिये । इस लोहेपर मासका रस,  
(सुखा) दूध, भारी और वृष्य अन्नपान, स्निग्ध, मां-  
सादि पुष्टिकारक पदार्थ, ये सब सेवन करने चाहिये, इस  
लोहको भक्षण करनेसे रक्तपित्त, क्षय, खोंसी, पार्श्वशूल,  
वातरक्त, प्रमेह शीतपित्त, वमन, ग्लानि, सूजन, पाण्डुरोग,  
कोढ, ग्रीहा, उदररोग, अफारा, मूत्रका लवना और  
अम्लपित्त ये सब रोग नष्ट होतेहैं । यह खंडखाद्य लोह

नेत्रोंको हितकारी पुष्टिका करनेवाला, भैयुनशक्तिको बढ़ानेवाला, मङ्गलरूप, प्रीतिवर्द्धक, आरोग्यदायक, पुत्र उत्पादक, परमोत्तम, कामाग्निबलवर्द्धन, लघ्मजिनक और शरीरमें लघुता ( हलकापन ) करनेवाला है । इस लोहे-पर बकरेका मांस, कबूतरका मांस, तीतरका मांस, ककर ( केकडा ) का मांस, खरगोसका मांस, कुरग और कृष्णसारादि जीवोंका मांस खाना चाहिये । इस लोहको सेवन करनेवाला मनुष्य नारियलका जल, शिरिआरी, ( चौपतिया ) का शाक, बथुआ, सूखी मूली, जीवतीका-शाक, परवल, कटेरीके फल, बैंगन, पके आम, खजूर और मधुर अनार इन सबको त्याग देवे । जिन पदार्थोंके नामोंमें प्रथम 'कै' आवे ऐसे ककारादि नामवाले समस्त पदार्थ और अन्तर्देशके जीवोंका मांस, इनको भी विशेष करके त्यागदेवे । इस लोहमें तीक्ष्ण लोहको मैनाशिल और सोनामाखीसे ही केवल मारना ऐसा नहीं समझना चाहिये परन्तु अन्य लोहोंकी समान इसमें भी पुष्टपाक आदि सम्पूर्ण किया करनी चाहिये ॥ ७२-८६ ॥

### अथ शतावरीपाकः ।

शतावरीमूलकल्कं कल्काक्षीरं चतुर्गु-  
णम् ॥ क्षीरतुल्यं घृतं गव्यं सितया  
कल्कतुल्यया ॥ ८७ ॥ घृतशेषं पचेत्तत्तु  
पलार्द्धं लेहयेत्सदा ॥ रक्तपित्तं हृम्लपित्तं  
क्षयं श्वासञ्च नाशयेत् ॥ ८८ ॥

इति रक्तपित्ताधिकारः ।

शतावरका कल्क ८ आठ तोले, दूध ३२ वत्तीस तोले, गायका घी ३२ तोले और मिथी ८ आठ तोले लेवे सबको विधिपूर्वक मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । जब पकते पकते घृतमात्र बाकी रहजाय तब उतारलेवे, इसमेंसे, नित्य दो तोले प्रमाण सेवनकरे तो रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षय और श्वास ये नष्ट होतेहैं ॥ ८७ ॥ ८८

इति रक्तपित्ताधिकारः सम्पूर्णः ।

( १ ) कटुक, कडवे परवल, कालशाक, कूष्माण्ड ( पेठा ), ककडी, करेला, कलिंग ( तरबूज ), कर्कन्धु ( बेर ), कांदा, कतकफल, केला और कांजी इत्यादि जानने ।

### अथाम्लपित्तश्लेष्मपित्ताधिकारः ।

तत्राम्लपित्तविप्रकृष्टनिदानम् ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्न-  
भुजो विदग्धम् ॥ पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा  
यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

दुष्टं व्यापन्नमन्नम् । पित्तप्रकोपि इत्यु-  
क्तेऽपि अम्लविदाहि इति विशेषार्थम् ।  
पित्तप्रकोपि पानं तक्रमुरादि । अन्नं  
मापादि स्वहेतूपचितं पुरा यत् वर्षास्व-  
म्लविपाकैः जलैः औषधीभिश्च तादृशी-  
भिरुपचितम् सञ्चितम् अम्लपित्तम् ।  
तदम्लपित्तं वदन्ति अम्लपित्ताख्यं रोगं  
वदन्ति ॥

विरुद्ध ( संयोग विरुद्ध जैसे दूध मछली ), दुष्ट ( वि-  
गटा हुआ भोजन ), खट्टा, दाहकारक और पित्तको कुपित  
करनेवाले अन्न पानोंको जो मनुष्य खाता पीताहै उसके  
अम्लपाकको प्राप्त हुआ पित्त प्रथम वर्षादि ऋतुओंमें अम्ल-  
पाकी जलोंसे तथा ऐसी औषधियोंसे संचित हुआ पित्त  
कुपित होताहै उसको महात्मा वैद्य अम्लपित्तरोग  
कहतेहैं ।

यद्यपि पित्तको कुपित करनेवाले, इतना ही कहनेसे  
खट्टे और दाहकारकका समावेश होताहै तथापि खट्टे  
और दाहकारक, यह अलग कहेहैं, इस कहनेका अभि-  
प्राय यह है कि पित्तका विशेष प्रकोप होताहै, छँछ तथा  
मदिरा आदि पान पदार्थ और उडद आदि अन्न पित्तको  
कुपित करनेवाले जानने ॥ १ ॥

### अथाम्लपित्तरोगलक्षणम् ।

अविपाकः कृमोत्क्लेशस्तिकांम्लोद्गारगौ-  
रवैः ॥ हृत्कण्ठदाहाऽरुचिभिरम्लपित्तं  
वदेद्विषक् ॥ अम्लपित्तं द्विधा प्रोक्तम-  
धोगं च तथोर्द्धगम् ॥ २ ॥

अन्नादिकका नहीं पचना, ग्लानि, वमन कीसी  
दृच्छाका होना, कडवी और खट्टी डकारोंका आना

शरीरमें भारीपन, हृदय और गलेमें दाह और अरुचि इन लक्षणोंके होनेसे अम्लपित्तरोग कहना चाहिये ।

**अम्लपित्तके दो भेद ।**

ऊर्ध्वग ( ऊंची गतिवाला ) और अधोग ( नीची गतिवाला ) ऐसे अम्लपित्त रोग दो प्रकारका है ॥ २ ॥

**अथोर्ध्वगाम्लपित्तलक्षणम् ।**

वान्तं हरित्पीतमनीलकृष्णमारक्तक्ता-  
ममतीव चाच्छम् ॥ मत्स्योदकाभं त्वति-  
पिच्छिलाभं श्लेष्मानुजातं सहितं  
रसेन ॥ ३ ॥

आरक्तम् ईषल्लोहितम् रक्ताभं वा ।  
अतीव चाच्छं निर्मलम् । रसेन लवणकटु-  
तिक्तरूपेण ॥

हरे, पीले, नीले, काले, किंचित् लाल, लाल, अत्यन्त निर्मल, मछलीके धोवनकी समान, अत्यन्त चिकने पिच्छिल, कफसयुक्त और खारे तीखे तथा कडवे रसवाले ऐसे पित्त चमनमें गिरते होंयें तो ऊर्ध्वग अम्लपित्त जानना ॥ ३ ॥

**अथाधोगाम्लपित्तलक्षणम् ।**

तृट्टदाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो  
वा विविधप्रकारम् ॥ हल्लासकोठानलसाद-  
हर्षस्वेदांगपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ४ ॥

मूर्च्छा सर्वदा ज्ञानशून्यता । मोहो  
विपरीतं ज्ञानम् । अधो वेति वा शब्द  
ऊर्ध्वगापेक्षया । विविधप्रकारम् हरिद्रावर्ण-  
योगात् । कदाचिद्धृल्लासादिकरं च भवति ॥

तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम और मोहको करनेवाला, उबकाई, मन्दाग्नि, रोमाचोका होना, पसीना, अगोंमें पीलापन इत्यादि विकारोंको करनेवाला जो अम्लपित्त गुदाके मार्गसे बहताहै उसको अधोग अम्लपित्त कहतेहैं ॥ ४ ॥

**अथाम्लपित्तविशेषावस्था ।**

भुक्ते विदग्धेऽप्यथ वाप्यभुक्ते करोति  
तिक्ताम्लवमिं कदाचित् ॥ उद्गारमेवंवि-  
धमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजश्च ॥  
॥ ५ ॥ करचरणदाहमौण्यं महतीमरु-

त्तञ्च ज्वरं च कफपित्तम् ॥ जनयति कण्डू-  
मण्डलपिडिकाशतनिचितरोगचयम् ॥ ६ ॥

भुक्ते विदग्धे तिक्ताम्लवमिं करोति ।  
तथा उद्गारम् एवंविधमेव तिक्ताम्लमेव  
करोति । अथ वा कदाचिद्भुक्तेऽपि तिक्ताम्लं  
वान्तिं करोति । तथा कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरो-  
रुजश्च करोति । तथा करचरणदाहादिकं  
जनयति । तथा कच्छूमण्डलपिडिकाव्या-  
प्तगात्रे रोगचयं करोति । अन्नविपाककृमा-  
दिकं जनयति ॥

भोजन करनेपर जब अन्नका विदग्ध पाक होताहै  
अथवा कदाचित् विनाही भोजन करनेपर कडवी और  
खट्टी वमन आवैहै, तथा कडवी और खट्टी डकार आवै  
है, कंठमें हृदयमें और कोखमें दाह होतीहै शिरमें पीडा,  
हाथ और पावोंमें दाह, सताप होतीहै, भयकर अरुचिको  
उत्पन्न करैहै, कफ और पित्तजनित ज्वर होताहै, तथा  
खुजली मण्डलाकार चकत्ते और कुडियोसे व्याप्त देहमें  
अन्नका विदग्ध पाक एव ग्लानि आदि रोगोंके समूहको  
उत्पन्न करैहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

**अथाम्लपित्ते दोषससर्गः ।**

सानिलं सानिलकफंसकफं तच्च लक्षयेत् ॥  
दोषालिंगेन मतिमद्भिषङ्मोहकरं हितत् ॥  
ऊर्द्धाधः प्रवृत्त्या छर्द्यतीसाराभ्यां तुल्यत-  
या वैद्यभ्रान्तिकृत् ।

बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके चिह्नोंसे जाने कि, यह अम्ल-  
पित्त वातसम्बन्धी है अथवा वात और कफ इन दोनोंके  
संसर्गवाला है, या कफसम्बन्धी है, यह अवश्य जानना  
चाहिये क्यों कि, यदि यह अम्लपित्त ऊर्ध्वगतिसे होय तो  
वमनकी शान्ति होतीहै और अधोगतिसे होय तो  
अतिसार प्रतीत होताहै यहां वैद्यको भ्रम उत्पन्न होताहै ।  
इसलिये खूब विचारकर निदान करै जिसमें किसी प्रका-  
रका सन्देह न रहै ॥ ७ ॥

**अथ दोषभेदेन लक्षणभेदः ।**

कंपप्रलापमूर्च्छाश्चिमिचिमिगात्रावसादशू-

लानि ॥ तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षा-  
स्तथानिलेन युतेन ॥ कफनिष्ठीवनगौर-  
वजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः ॥ दहन-  
बलहानिकण्डूनिद्राचिह्नं कफानुगे भवति  
उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवेऽम्ल-  
पित्ते स्यात् ॥ ८ ॥

चिमिचिमि झिनिझिनीति लोक । हर्षो  
रोमाञ्चः ॥

वातज अम्लपित्तमे कफ, प्रलाप ( वक्त्रवाद ), मूर्च्छा,  
सर्व शरीरमें झनझनाहट, ग्लानि, अन्धकारदर्शन, विभ्रम,  
मोह रोमांचका होना ये सब लक्षण होते हैं । कफज अम्ल-  
पित्तमें कफका थूकना, शरीरमें भारीपन, जडता, अरुचि,  
शीत, ग्लानि, वमन, मुखमें और छातीमें कफ लिसासा  
रहने जठराग्निके बलका नाश, खुजली और निद्राका अधिक  
आना ये सब लक्षण होते हैं । वात और कफ दोनों दोषोंसे  
जो अम्लपित्त उत्पन्न हुआ होय तो उसमें उपरोक्त दोनों  
दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

अथाम्लपित्तसाध्यासाध्यविचारः ।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते-  
नवः ॥ चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्र-  
साध्यः स कस्यचित् ॥ ९ ॥

कस्यचिद्धोनाहाराचारशीलस्य ॥

यह अम्लपित्त रोग जो थोड़े ही दिनोंसे उत्पन्न हुआ  
होय तो औषधि करनेसे साध्य होता है । बहुत दिनोंसे  
उत्पन्न हुआ होय तो याप्य जानना और अयोग्य आहार  
विहारवाले मनुष्यको तो थोड़े ही दिनोंका उत्पन्न हुआ  
कष्टसाध्य जानना ॥ ९ ॥

अथ कफपित्तलक्षणम् ।

तमो मूर्च्छारुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरो-  
रुजा ॥ प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य  
लक्षणम् ॥ १० ॥

अन्धकारदर्शन, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य,  
मस्तकमें पीडा, मुखसे लारका गिरना और मुखमें मधुर-  
ताका होना, ये कफपित्तके लक्षण जानने ॥ १० ॥

अथाम्लपित्तचिकित्सा ।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ॥

कारयेन्मदनः क्षौद्रैः सन्धर्वैश्च तथा भि-  
पक ॥ ११ ॥ विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधु-  
धात्रीफलद्रवैः ॥ ऊर्ध्वगं वमनं विद्रान-  
धोगं रेचनैर्हरत् ॥ १२ ॥

अम्लपित्तमिति शेषः ॥

यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥  
यथास्वं लाजसक्तृन्वा सितामधुयुता-  
न्पिवेत् ॥ १३ ॥ निस्तुपयववृषधात्री-  
कथितं सलिलं त्रिगन्धमधुयुक्तम् ॥  
द्रुततरमपहरति वमि सञ्जनितामम्ल-  
पित्तेन ॥ १४ ॥ छिन्नोद्वानिम्बपटो-  
लपत्रं क्षौद्रान्वितं पोतमनैकरूपम् ॥  
सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तं यथाशनिस्ता-  
लतरुं प्रवृद्धम् ॥ १५ ॥ वासामृतापर्पट-  
कनिम्बभूनिम्बमार्कवैः ॥ त्रिफलाकुलकैः  
काथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥ १६ ॥  
पाठापटोलयवचन्दनधान्यधात्रीवासाव-  
रांगदलनागकणाभयाभिः ॥ लेहः सिता-  
ज्यमधुभिः शिलपालपिण्डी हन्त्यम्लपि-  
तमरुचिज्वरदाहशोषान् ॥ १७ ॥ हन्त्य-  
म्लपित्तवमनारुचिदाहमोहखालित्यमेह-  
शिशिरव्रणशुक्रदोषान् ॥ भुक्त्वा नरः  
सततमामलकीरसेन वृद्धोऽप्यनेन हि भवे-  
त्तरुणो रिरंसुः ॥ १८ ॥

अम्लपित्तरोगमें प्रथम वैद्य पटोल ( कडवे परवल ),  
नीम, अडूसा, भैरफल, सहत और सेंधे निमकके काथसे  
वमन करावे तथा निसेतका चूर्ण, सहत और आमलोंका  
रस इनके द्वारा विरेचन करावे । ऊर्ध्वगत अम्लपित्तको  
वमन कराकर दूर करे और अधोगत अम्लपित्तको विरेचन  
( दस्त ) कराकर दूर करे ।

जौ अथवा गेहूँके बनाये हुए यूप्रादि पदार्थ और  
उनमें मिरचादिक तीक्ष्ण वस्तु न पड़ी होय ऐसे  
पदार्थ पीने चाहिये अथवा भक्षण करने चाहिये,

तथा खीलेके सत्तुओंमें मिश्री और सहत मिलाकर दो-पोको विचारकर पियै ।

तुपरहित जौ, अडूसा और आमला इनका काथ बनाकर उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और सहत डालकर पियै तो अम्लपित्तसे उत्पन्न हुई वमन तत्काल नष्ट होजातीहै ।

गिलेय, नीमके पत्ते और कडवे परवलके पत्ते इनको एकत्र पीसकर सहत मिलाकर पीनेसे जिसप्रकार वज्रसे बड़े बड़े ताडके वृक्ष नष्ट होजाते हैं उसी प्रकार इससे अनेक रूपवाले महादारुण रक्तपित्त नष्ट होजाते हैं ॥

अडूसा, गिलेय, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चिरायता, भागरा, हरड, बहेडा, आमले और कडवे परवल इनका काथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त नष्ट होजाताहै ॥

पाट, पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनिया, आमला, अडूसा, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेशर, पीपल, हरड, खाड, कमल और सहत इनका अवलेह बनावै, इस अवलेहको 'शिवपालपिडी' कहतेहैं । यह अवलेह अम्लपित्त, अरुचि, ज्वर, दाह और शोषको नष्ट करैहै ॥

जो मनुष्य नित्य आमलोंके रसके साथ भोजन करता है तो उसके अम्लपित्त, वमन, अरुचि, दाह, मोह, खालित्य, प्रमेह, शीत, व्रण और समस्त वीर्यके विकार नष्ट होजातेहैं, इसके प्रतापसे वृद्ध मनुष्य भी स्त्रियोंके साथ गमन करनेकी इच्छा करताहै ॥ ११-१८ ॥

### अथ खण्डकूष्माण्डकावलेहः ।

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्र-  
कम् ॥ रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पला-  
ष्टकम् ॥ १९ ॥ धात्रीतुल्या सिता योज्या  
गव्यमाज्यं पलद्वयम् ॥ मन्दाग्निना पचे-  
त्सर्वं यावद्भवति पिण्डितम् ॥ २० ॥ पला-  
र्द्धं पलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम् ॥ ख-  
ण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं पर-  
म् ॥ २१ ॥

उत्तम पेठेका रस ४०० चारसौ तोले, गायका दूध ४०० चारसौ तोले, आमलोका चूर्ण ३२ बत्तीस तोले, खाड ३२ बत्तीस तोले आर गायका घी ८ आठ तोले

लेवे सबको एकत्र करके तबतक पकावै जयतक पिंड बँधे, यह 'खडकूष्माण्डक' इस नामसे प्रसिद्ध है । इस अवलेहमेंसे प्रतिदिन दो तोले अथवा चार तोले खाय तो अम्लपित्त अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाताहै ॥ १९-२१ ॥

### अथ नारिकेलखंडः ।

कुडवं नारिकेलस्य जले मृद्वाग्निना पचेत् ॥  
नारिकेलजलालाभे गव्ये पयसि तत्पचेत् ॥  
॥ २२ ॥ धान्यकं पिप्पली मुस्तं चातु-  
र्जातं विचूर्णितम् ॥ प्रत्येकं टंकमात्रं तु  
शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ २३ ॥ पल-  
मात्रस्तदद्धोऽपि भक्षितः प्रत्यहं नरैः ॥ ना-  
रिकेलकखण्डोऽयं पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः २४ ॥  
अम्लपित्तं रक्तपित्तं शूलश्च परिणामजम् ॥  
क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शुष्कं दावानलो  
यथा ॥ २५ ॥

पलमात्रगव्यघृतेन नारिकेलस्य भर्जनं  
कर्तव्यमिति सम्प्रदायः ॥

नारियलकी गिरी १६ सोलह तोले, लेकर नारियलके जलमें अथवा नारियलका जल न मिले तो गायके दूधमें पकावै, जब पकते पकते गाढा होजाय तब उसमें धनिया, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण २४ चौबीस २४ चौबीस रत्तीभर मिला देवे तो "नारिकेलखंड" सिद्ध होताहै । प्रतिदिन इस औषधिमेंसे ४ चार तोले अथवा २ दो तोलेभर नित्य खाय तो इससे पुरुषत्व, निद्रा और बलकी प्राप्ति होतीहै । अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षय और परिणाम शूल ये सब नष्ट होजातेहैं जिसप्रकार दावानलसे सूखे वनका नाश होताहै । इस औषधिमें प्रथम चार तोले गायके घीमें नारियलकी गिरीको भूनना चाहिये ॥ २२-२५ ॥

### अथ बृहन्नारिकेलखंडः ।

प्रस्थन्तु नारिकेलस्य सूक्ष्मं दृषदि पेपि-  
तम् ॥ निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डानाम-  
र्द्धमाढकम् ॥ २६ ॥ तद्वयं भर्जयेद्रव्ये



घृते तु कुडवोन्मिते॥ततस्तत्र क्षिपेच्छुद्धं  
गोदुग्धश्चाटकोन्मितम् ॥ २७ ॥ तत्रैव  
निक्षिपेद्रव्यांसितां प्रस्थद्वयोन्मिताम् ॥  
पचेत्सर्वाणि चैकत्र मृदुना वह्निना भिष-  
क् ॥ २८ ॥ सुपके शीतले तत्र चूर्णीकृ-  
त्य विनिक्षिपेत्॥सूक्ष्मैलां धान्यकं धात्री  
पर्पटं जलदं जलम् ॥ २९ ॥ उशीरं  
चन्दनं द्राक्षां शृङ्गादश्च कशेरुकम् ॥ त्वक्प-  
त्रकं सकर्पूरं कर्पयुग्मं पृथक्पृथक् ॥  
॥ ३० ॥ सर्वं संमिश्रयेद्रक्षेद्राजने मृन्मये  
नवे॥पलमात्रमिदं प्रातर्भक्षयेद्वा यथान-  
लम् ॥ ३१ ॥ एतन्निपेवितं हन्ति रोगाने-  
तान्न संशयः॥ अम्लपित्तं ज्वरं पित्तं रक्त-  
पित्तमरोचकम् ॥ ३२ ॥ वातरक्तं तृषां दाहं  
पाण्डुरोगश्च कामलाम् ॥ क्षयं क्षपयति  
क्षिप्रं शूलश्च परिणामजम् ॥ ३३ ॥ नारि-  
केलस्य खण्डाऽयमश्विभ्यां भाषितः पुरा॥  
वर्णदो वृंहणो वृष्यः पुंस्त्वनिद्रावल-  
प्रदः ॥ ३४ ॥

पत्थरपर बारीक पिसा हुआ नारियल ६४ चाँसठ तोले  
लुकले और बीजोंसे रहित पेटेके टुकड़े १२८ एकसौ  
अट्ठाईस तोले लेवे, सबको १६ सोलह तोले गायके  
बीमें भूनकर पश्चात् उसमें २५६ दोसौ छप्पन तोले उत्तम  
गायका दूध और १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले उत्तम  
स्वच्छ खाड डाले, फिर सबको मद मद अग्निसे धीरे धीरे  
पकावे जब उत्तम विधिसे पककर तैयार होजाय तब उस-  
को शीतल करके उसमें छोटी इलायची, धनियाँ, आमले,  
पित्तपापडा, नागरमोथा, सुगंधवाला, खस, चदन, दाख,  
सिवाडे, कसेरु, तज, तेजपत्र और भीमसेनी कपूर ये  
प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर सबका चूर्ण करके मि-  
लादेवे, तो यह 'वृहन्नारिकेल खड' सिद्ध होताहै । इस  
औषधिको मट्टीके नवीन वासनमें रखना चाहिये । इस  
औषधिमेंसे चार तोले भर अथवा अपनी अग्निके बलानु-  
सार प्रातःकाल खाय । इसको सेवन करनेसे—अम्लपित्त,  
ज्वर, पित्त, रक्तपित्त, अरोचक, वातरक्त, तृषा, दाह,

पाण्डुरोग, कामला, क्षय और परिणामशूल इन सबका  
तत्काल नाश होजाताहै । पूर्वकालमें श्रीमान् अश्विनीकु-  
मारोंका कदा हुआ यह नारिकेल गूठ शरीरके वर्णको  
सुन्दर करताहै वातुको पुष्ट करताहै, कामी मनुष्योंके  
लिङ्गे परम हितकारी है और पुष्टपत्र, निद्रा तथा बन्धको  
बढानेवाला है ॥ २८-३४ ॥

### अथ कफपित्तत्रिकित्सा ।

अभया पिप्पली द्राक्षा सिताधान्ययवास-  
कम् ॥ मधुना कण्टदाह्वं पित्तश्लेष्महरं  
परम् ॥ ३५ ॥ पटोलयवधान्याकपिप्प-  
ल्यामलकानि च ॥ एषां क्षौद्रयुतः काथः  
पित्तश्लेष्महरः परः ॥ ३६ ॥ पित्तश्लेष्मव-  
मीकण्डूकोठविस्फोटदाहनुत् ॥ दीपनः  
पाचनः काथः शृङ्गेवरपटोलयोः ॥ ३७ ॥  
पिप्पलीखण्डपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृ-  
तः ॥ पित्तश्लेष्महरो भुक्तो वह्निमान्यं च  
नाशयेत् ॥ ३८ ॥

हरड, पीपल, दाख, खोंड, धनिया और जवासा  
इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफपित्त  
और कटका दाह दूर होताहै ॥

कडवे परवल, इन्द्रजौ, धनिया पीपल और आमला  
इनका काथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे श्लेष्मपित्त नष्ट  
होजाताहै ॥

अदरख और परवल इनका काथ बनाकर पिये तो यह  
अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन और कफ पित्त, वमन,  
खुजली, चकत्ते, फोडे और दाहको नष्ट करेहै ॥

पीपल, खाड और हरड इनको समान भाग लेकर  
लड्डू बनाकर खानेसे कफपित्त और अग्निकी मदता दूर  
होतीहै ॥ ३५-३८ ॥

इति अम्लपित्तश्लेष्मपित्ताधिकारः सम्पूर्णः ।

### अथ क्षयरोगाधिकारः ।

तत्र क्षयरोगविप्रकृष्टसंनिकृष्ट-  
निदानम् ।

वेगरोधाक्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्॥

त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्ट-  
यात् ॥ १ ॥

वेगोत्र—“वातमूत्रपुरीषाणि निगृह्णाति  
यदा नरः” । इति चरकवचनात् । क्षयात्क्षी-  
यतेऽनेनेति क्षयः । तेन अतिव्यवायानशने-  
र्ष्यादयो धातुक्षयहेतवः क्षयशब्देन उच्यन्ते ।  
साहसालवता समं मल्लयुद्धादितः । विष-  
माशनात् “बहुस्तोकमकालं वा भुक्तं तद्वि-  
षमाशनम्” । तस्मात् । त्रिदोषः सान्नि-  
पातिकः । हेतुचतुष्टयात् अन्येऽपि हेतवो  
हेतुचतुष्टय एव अन्तर्भवन्ति । यक्ष्मणः  
पर्याया राजयक्ष्मक्षयशोषाः ।

अधोवायु आदिके वेगोको रोकनेसे क्षयरोग उत्पन्न  
होताहै, चरकमे भी कहा है कि “मनुष्य लजा अथवा  
भय आदि किसी कारणसे जब वायु, मूत्र और मलादि-  
कके वेगोंको रोकताहै तब उसके रोगोंकी उत्पत्ति होतीहै” ।  
अत्यत मैथुन, अत्यत उपवास और अत्यंत ईर्ष्यादि जो  
धातुओके क्षय होनेके कारण हैं उनसे भी क्षयरोग उत्पन्न  
होताहै । बलवान्के साथ मल्ल युद्धादिक अथवा द्वेषा-  
दिक साहसके कार्य करनेसे भी क्षयरोग उत्पन्न होताहै ।  
बहुत भोजन, बहुत थोडा भोजन अथवा विना समय  
भोजन करनेसे भी क्षयरोग उत्पन्न होताहै । यह क्षयरोग  
सान्निपातिक है अर्थात् यह तीनो दोषोंसे होताहै । क्षय,  
रोगके और भी बहुतसे कारण हैं वह सब इन चार हेतु-  
ओके ही अन्तर्भूत हैं ऐसा जानना । यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, क्षय  
और शोष ये चारों इस रोगके नाम हैं ॥ १ ॥

अथ यक्ष्मादिशब्दनिरुक्तिः ।

वेद्यो व्याधिमता यस्माद्व्याधेर्यत्नेन यक्ष्यते ॥  
स यक्ष्मा प्रोच्यते लोके शब्दशास्त्रविशा-  
रदैः ॥ २ ॥

यक्ष्यते पूज्यते,

राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः ॥  
तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

क्रियाक्षयकरत्वात्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः ॥  
संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ३ ॥

वैद्य रोगीसे अच्छे प्रकारसे यत्नपूर्वक पूजन अर्थात्  
पालन कियाजाता है इसकारण शब्दशास्त्रको जान-  
नेवाले विद्वान् इसको ‘यक्ष्मा’ कहते हैं । प्रथम राजा चन्द्र-  
माके यह रोग उत्पन्नहुआ था इसकारण इसको विद्वान्  
‘राजयक्ष्मा’ कहते हैं ।

यह सम्पूर्ण क्रियाओका क्षय करताहै इस कारण इसको  
पडितलोग क्षय कहतेहै । यह रोग रसादि धातुओको  
शोषण करताहै इस कारण इसको ‘शोष’ ऐसा  
कहतेहैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ क्षयरोगसम्प्राप्तिः ।

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ॥ अ-  
तिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः ॥  
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मा-  
नवः ॥ ४ ॥

कफप्रधानैर्दोषैः रसवर्त्मसु रुद्धेषु अनन्त-  
राः सर्वे धातवः क्षीयन्ते ततो मानवः शुष्य-  
ति कारणभूतस्य रसस्य क्षये कार्याणां रक्ता-  
दीनामनुक्रमेण क्षीयमाणत्वात् । मार्गावरोधे  
रसक्षयहेतुमाह चरकः—

रसः स्रोतःसु रुद्धेषु स्वस्थानस्थो विद-  
ह्यते ॥ स ऊर्ध्वं कासवेगेन बहुरूपः प्रव-  
र्तते ॥ ५ ॥

स्वस्थानस्थः हृदयस्थः । कासं विनापि  
रसक्षयो भवति । मार्गावरोधकुपितवातेन  
रसस्य शोषणात् ॥

कफप्रधान वातादि तीनो दोष जब कुपित होते हैं, तब  
उनसे रसके वहनेवाली नाडियोंके मार्ग रुक जातेहै, तब  
सम्पूर्ण धातु क्षीण होने लगती हैं और धातुओके क्षीण होनेसे  
मनुष्य भी क्षीण होजाता है । समस्त धातुओके कारण भूत  
रसके क्षय होनेसे कार्य रूप रुधिर आदि धातुओंका भी अनु-  
क्रमसे क्षय होजाताहै, जब धातु क्षय होने लगतीहैं तो

मनुष्यके शरीरका क्षीण होना भी सम्भव है । मागोंके रुकनेसे रसके क्षय होनेमें चरक कहतेहैं कि, नोतो अर्थात् छिद्रोंके रुक जानेपर हृदयमें रहनेवाले रसका विदाह होजाता है इस प्रकार विदाहको प्राप्तहुआ रस ऊपरसे खासीके वेगसे मुखद्वारा अनेक प्रकारका होकर निकलता है इसको देखकर ऐसा मत समझना कि, खासीके होनेसे ही रसका क्षय होताहै किन्तु खासीके बिना भी मागोंके अवरोधसे कुपित वायुसे रसका क्षय होताहै कहा भी है कि, मागोंके रुकनेपर वायुके कोपसे भी वातुओंका क्षय होताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ रसक्षयहेतुः ।

वायोर्धातुक्षयात्कोपान्मार्गस्यावरणेन च ॥  
अनुलोमक्षयं दृष्ट्वा प्रतिलोमक्षयावहः ॥ ६ ॥

अति व्यवायिनो वा रेतसि क्षीणे प्रति-  
लोमक्रमेण अनन्तराः सर्वे धातवो रसप-  
र्यन्ताः क्षीयते । तद्यथा-शुक्रे क्षीणे मज्जा  
क्षीयते मज्जायां क्षीणायामस्थि क्षीयते एवं  
पूर्वपूर्व क्षीयते । ननु कार्यस्य शुक्रस्य क्षये  
कथं कारणभूतानां मज्जादीनां क्षयः ?  
उच्यते-शुक्रक्षयात् वायुः कुप्यति । स  
वायुः सान्निध्यात् क्रमेण मज्जादीन् सर्वान्  
धातून् शोषयति । ततस्तदनन्तरं मानवः  
शुप्यति ॥

जिस प्रकार कारणभूत रसके क्षयसे कार्यभूत वातुओंका सीधे क्रमसे क्षय होताहै उसी प्रकार उलटे क्रमसे कार्य-  
भूत वीर्यके क्षयसे कारणभूत धातुओंका भा क्षय होताहै, जैसे अत्यन्त मैथुन करनेवाले पुरुषके वीर्य क्षीण होनेपर वीर्यसे ऊपरकी सम्पूर्ण रस पर्यन्त वातु उलटे क्रमसे क्षीण होतीहैं जैसे कि, वीर्यके क्षीण होनेसे मज्जा क्षीण होतीहै, मज्जाके क्षीण होनेसे अस्थि (हड्डी) क्षीण होतीहै, अस्थिके क्षीण होनेपर मेढ क्षीण होतीहै, मेढके क्षीण होनेसे मांस क्षीण होताहै, मांसके क्षीण होनेपर रुधिर क्षीण होताहै और रुधिरके क्षीण होनेसे रस क्षीण होताहै ।

शंका-कार्यरूप वीर्यके क्षय होनेसे कारणरूप मज्जा आदिका क्षय किस प्रकार होसकताहै ? ।

समाधान-वीर्यके क्षय होनेमें वायु कुपित होताहै और वह वायु समीप होनेके कारण अनुक्रमसे मज्जा आदि समस्त वातुओंको शोषण करेहै तो मनुष्य क्षीण होजा-  
ताहै ॥ ६ ॥

अथ क्षयरोगपूर्वरूपम् ।

श्वासाद्भ्रूसादकफसंस्त्रवतालुशोषवम्यग्नि-  
सादमदपीनसकासनिद्राः ॥ शोषं भवि-  
ष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लक्षणां  
भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ ७ ॥ स्वप्नेषु  
काकशुकशल्लकिनीलकण्ठगृध्रास्तथैव क-  
पयः कृकलासकाश्च ॥ तं वाहयन्ति सन-  
नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरुन्पवन-  
धूमदवार्दितांश्च ॥ ८ ॥

जब क्षय रोग होनेको होताहै तब उससे पहिले श्वास, अगोंमें ग्लानि, कफका गिरना, तालुका सूखना, वमन, अग्निकी भदता, मद ( नगा ), नाकसे पानीका गिरना ( पीनस ), खासी और निद्रा ये सब लक्षण होतेंहैं । और वह मनुष्य मांसके खानेकी और त्रीप्रसंगकी भी अभि-  
लाषा करताहै और उनके नेत्र मुफेद होजातेहैं और वह सुपनेमें कौआ तोता, शल्लकि ( सेई ), नीलकण्ठ, गिद्ध, बन्दर और करकैदा इनपर अपनेको बैठा देखताहै और जल रहित सूखी नदियोंको देखताहै, सुखेहुए तथा पवनसे, धुयेसे और दावानलमें पीडित वृक्ष उसको दिग्वार्ई देते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ क्षयरोगलक्षणम् ।

अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपाद-  
योः ॥ ज्वरः सर्वाङ्गिकश्चेति लक्षणं राज-  
यक्ष्मणः ॥ ९ ॥

अंसयोः पार्श्वयोश्चाभितापः पीडा । अत्र  
सकलधातुक्षयपूर्वकः सकलशरीरशोषो वो-  
द्भव्यः । एतानि त्रीणि लक्षणानि प्रायोभा-  
वित्वेन चरकेण उक्तानि । सुश्रुतेन यक्ष्मणि  
षडलक्षणानि उक्तानि ॥

भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणित-

दर्शनम् ॥ स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राज-  
यक्ष्मणि ॥ १० ॥

कधे और पसलियोमे पीडा, हाथ और पावोमे सताप और सम्पूर्ण अगोमे ज्वर, ये तीन क्षय रोगके लक्षण हैं । इस रोगमें सम्पूर्ण धातुओका क्षय होकर सम्पूर्ण शरीरका शोषण होताहै ऐसा जानना कधे और पसलियोमे पीडा आदि जो तीन लक्षण चरकमे कहेहैं वह तो होनहारके कहे हैं परंतु सुश्रुतमे और छः लक्षण कहेहैं जैसे अन्नमें अरुचि, ज्वर, श्वास, खाँसी, रुधिरका दर्शन और स्वरभेद ये छः लक्षण क्षय रोगमें होतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ दोषोल्बणताविशेषेण लक्षणम् ।  
स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्व-  
योः ॥ ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य  
चागमः ॥ ११ ॥ शिरसः परिपूर्णत्वम-  
भक्तच्छन्द एव च ॥ कासः कण्ठस्य च  
ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ १२ ॥

अनिलादुल्बणात् । एवं पित्तात्कफान्च ।  
यत आह सुश्रुतः—

एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको गदः ।  
उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि दोषाणां निपतन्ति  
हि ॥ १३ ॥

वायुकी उल्बणता होय तो स्वरभेद, शूल, कधे और पसलियोमे सकोच होताहै । पित्तकी उल्बणता होय तो ज्वर, दाह, अतिसार और रुधिर निकलताहै । कफकी उल्बणता होय तो शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, खाँसी और कठका जडकना ये सब लक्षण होतेहैं । सुश्रुत कहताहै कि, यह क्षय रोग तीनों दोषोंका सन्निपात रूप होनेसे एकही प्रकारका मानाजाताहै तो भी उसमे दोषोकी उल्बणता होनेसे उनही उन दोषोंके चिह्न देखे-जातेहैं ॥ ११-१३ ॥

अथ क्षयरोगासाध्यता ।

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वापि समन्वि-  
तम् ॥ त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासास-  
गामयैः ॥ जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छ-  
न्सुविमलं यशः ॥ १४ ॥

निर्मल कीर्तिकी इच्छा करनेवाले वैद्य उक्त ग्यारह,

अथवा छः अथवा ज्वर, खाँसी और रुधिरकी वमन ये तीन लक्षणोसे पीडित क्षयरोगीको छोडदेतेहैं ॥ १४ ॥

अथ विशेषता ।

सर्वे रङ्गैस्त्रिभिर्वापि लिंगैर्मांसबलक्षये ॥  
युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतो-  
न्यथा ॥ १५ ॥

सर्वैर्लिंगैरेकादशभिः । अर्द्धैः षड्भिः ।  
त्रिभिर्ज्वरकासरुधिरवमनैः । अतोऽन्यथा  
मांसबले सति सर्वरूपोऽपि न प्रत्याख्येयः  
किंतु चिकित्स्यः ॥

महाशन क्षीयमाणमरोचकनिपीडितम् ॥  
शूनमुष्कोदरश्चैव यक्ष्मिणं परिवर्ज-  
येत् ॥ १६ ॥

महाशनं क्षीयमाणमित्येकमसाध्यं लक्ष-  
णम् । अतीसारनिपीडितमिति द्वितीयम् ॥  
मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तश्च जीवि-  
तम् ॥ तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणां मल-  
रेतसी ॥ १७ ॥

शूनमुष्कोदरमिति तृतीयम् ॥

परन्तु जिस रोगीके मांस और बलका क्षय होगया हो उसको इन ग्यारह लक्षणों अथवा छः लक्षणों किवा तीन लक्षणोयुक्त जानकर छोडदेवे किंतु जिनका मांस और बल-क्षय नहीं हुआ होय उसको सपूर्ण लक्षणोयुक्त होनेपर नहीं छोडना चाहिये, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

जो क्षयरोगी अधिक भोजन करनेपर भी क्षीण होता-जाय तो उसको असाध्य समझकर वैद्य त्यागदेवे अर्थात् उसकी चिकित्सा न करे ।

जो क्षयरोगी अतीसारसे पीडित होय उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, कहा भी है कि, मनुष्योंका बल मलके अधीन है और जीवन वीर्यके अधीन है, इस लिये क्षयरोगीके मल और वीर्यकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये ।

जिस क्षयरोगीके वृषण ( अण्डकोश ) और उदर सूजगया हो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १५-१७ ॥

अथ क्षयरोगारिष्टम् ।

शुक्लाक्षमन्त्रेष्टारमूर्द्धन्वासनिपीडितम् ॥  
कृच्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मान-  
वम् ॥ १८ ॥

मेहन्तं शुक्रं क्षरन्तम् । शुक्लाक्षत्वाद्ये-  
कैकशोऽरिष्टलक्षणम् ॥

जिस क्षयरोगीकी आँखें मफेद होगई हों अन्नमें अरुचि हो, ऊर्ध्वन्वाससे पीडितहो, अथवा कष्टसे बहुत सा वीर्य गिरता होय, उस रोगीको अवश्य यह क्षयरोग मारदेताहै ॥ १८ ॥

अथ क्षयरोगिणो जीवनावधिः ।

परं दिनसहस्रन्तु यदि जीवति मानवः ॥  
सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपी-  
डितः ॥ १९ ॥

शोषपीडितो मानवश्चेत्तरुणो भवति सुभि-  
षग्भिरुपक्रान्तो भवति तदा परं दिनसहस्रं  
द्वितीयं दिनसहस्रं यदि जीवति तत्र जीवन-  
विकल्प इत्यर्थः । एतेन शोषपीडितो मानव-  
श्चेत्तरुणो भवति सदैवैश्विकित्सितो भवति  
तदा प्रथमदिनसहस्रं जीवेदेवेत्युक्तम् ॥

क्षयरोगसे पीडित मनुष्य जो तरुण हो और उत्तम  
वैद्यके द्वारा चिकित्सा कीजाय तो एक हजार दिन तक  
जीताहै, यह परम अवधि कही है ॥ १९ ॥

अथ क्षयरोगिचिकित्सा ।

ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम् ॥  
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् २० ॥  
आत्मवन्तं यत्नवन्तं धृतिवन्तं वा ॥

जो क्षयरोगी ज्वरकी पीडासे रहित, बलवान्, चिकित्सा  
सम्बन्धी क्रियाओंको सहसके, यत्नवाला, धीरजवान्, प्रदी-  
प्त अग्निवाला और जो कृश न हो ऐसे यक्ष्मरोगीकी चि-  
कित्सा करनी चाहिये ॥ २० ॥

अथ निदानविशेषेण शोषविशेषः ।  
व्यवायशोकवार्द्धक्यन्यायामाध्वप्रशोषि-

तान् ॥ व्रणोरःक्षतमंजो च शोषिणो लक्षणैः  
शृणु ॥ २१ ॥

व्रणशोषी उरःक्षतशोषी च ॥

अत्यन्त भैशुन करनेमें जो शोष होताहै उसको 'व्यवा-  
यशोप' कहते हैं । शोकमें उत्पन्न हुए शोषको 'शोक-  
शोप' कहते हैं । वृद्ध अवस्थामें उत्पन्न हुए शोषको 'वार्द्ध-  
क्यशोप' कहते हैं वण्टकमरन आदिके करनेमें उत्पन्न हुए  
शोषको 'व्यायामशोप' कहते हैं । अधिक मार्गके चलनेमें  
उत्पन्न हुए शोषको 'अध्वशोप' कहते हैं । मण होनेके  
कारण उत्पन्न हुए शोषको 'व्रणशोप' कहते हैं । और  
छातीमें क्षतके होनेमें उत्पन्न हुए शोषको 'उरःक्षतशोप'  
कहते हैं । अब इनके अलग अलग लक्षण कहते हैं सो  
सुनो ॥ २१ ॥

अथ व्यवायशोपलक्षणम् ।

व्यवायशोपी शुक्रस्य क्षयलिङ्गेरुपद्रुतः ॥  
पाण्डुरेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य  
धातवः ॥ २२ ॥

शुक्रस्य क्षयलिङ्गैः सुश्रुतौक्तैः । तानि  
यथाशुक्रक्षयं मेदवृषणवेदना, व्यवाये चा-  
शक्तिः । चिराद्वा प्रसेकः, प्रसेके अल्पशुक्र-  
दर्शनमिति । यथापूर्वं क्षीयन्ते च अस्य  
धातवः प्रथमं शुक्रं क्षीयते पश्चाच्छुक्रक्षय-  
जनितवायुना मज्जादयोऽपि धातवो यथा-  
पूर्वं क्षीयन्ते ॥

व्यवायशोपमें सुश्रुतमें कहेहुए सम्पूर्ण वीर्यक्षयके चिह्न  
होतेहैं अर्थात् निग और अट्कोपोंमें पीडा होतीहै, भैशुन  
करनेमें अशक्तता, अथवा भैशुन करते समय अनेक बार  
वीर्य स्खलित होताहै और बहुत थोडा वीर्य निकलताहै,  
और उस रोगीका शरीर पाण्डुवर्ण होजाताहै, तथा प्रथम  
वीर्यके क्षीण होनेसे फिर उसकी क्षीणतासे वायुके कुपित  
होनेके कारण ऊपरकी मज्जादि वातुएँ भी अनुक्रमसे क्षीण  
होजातीहैं ॥ २२ ॥

अथ शोकशोषलक्षणम् ।

प्रधानशूलः सस्तांगः शोकशोष्यपि  
तादृशः ॥ विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुप-  
लक्षितः ॥ २३ ॥



प्रधानशीलः यस्याभावेन शोको जनित-  
स्तद्ध्यानपरः । सस्ताङ्गः शिथिलाङ्गः । ता-  
दृशः व्यवायशोषिसदृशः । तेन शुक्रादिस-  
र्वधातुक्षययुक्तो भवति । परं शुक्रक्षयकृतै-  
र्विकारैर्महवृषणवेदनादिभिर्वर्जितो भवति  
व्याधिस्वभावात् ॥

शोकशोषमें रोगीके जिस वस्तुके अभावसे शोक हुआ  
होय उसी वस्तुका सदैव ध्यान करताहै, उसके अग  
शिथिल होजातेहैं और व्यवायशोपवाले रोगीकी समान  
शुक्रादि सम्पूर्ण धातुओंके क्षयसे युक्त होजाताहै किंतु  
व्याधिके स्वभावसे उसके लिंगमें और अंडकोषोंमें पीडा  
आदि उपद्रव नहीं होते ॥ २३ ॥

अथ वार्द्धक्यशोषलक्षणम् ।

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ॥  
कम्पनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ॥  
॥ २४ ॥ ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारु-  
चिपीडितः ॥ संप्रस्रतास्यनासाक्षः शुष्करू-  
क्षमलच्छविः ॥ प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्क-  
क्लोमगलाननः ॥ २५ ॥

मन्दशब्दः स्वल्पार्थः शुष्करूक्षमलच्छ-  
विः शुष्के रूक्षे मलच्छवी यस्य सः । प्रसुप्त-  
गात्रावयवः प्रसुप्तः स्पर्शज्ञः । क्लोम पिपा-  
सास्थानम् ॥

वार्द्धक्यशोपवाले मनुष्यका शरीर कृश ( दुबला )  
होजाताहै, वीर्य, बल, बुद्धि और इन्द्रियें मन्द होजाती  
हैं, कम्प होताहै, शरीरकी गोभा नष्ट होजातीहै, कासेके  
फूटे वासनके शब्दकी समान स्वर होजाताहै, थूकनेमें  
कफ नहीं आता, भारीपन और अरुचिसे पीडित होता-  
है । मुख, नाक और आखोंमेंसे पानी बहता रहताहै,  
विग्रह और शरीरका रंग सूखा और रूखा होजाता-  
है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथाध्वशोषलक्षणम् ।

अध्वप्रशोषी सस्ताङ्गः सम्भृष्टपरुषच्छविः ॥

सम्भृष्टपरुषच्छविः सम्भृष्टस्येव परुषा-  
च्छविः यस्य सः ॥

अध्वशोषमें मनुष्यके अग शिथिल होजातेहैं, शरीरकी  
काति अग्निमें भुने हुए पदार्थकी समान और खरदरी  
होजातीहै शरीरके अवयवोंको स्पर्श करनेसे स्पर्शका ज्ञान  
नष्ट होजाताहै और तृषा लगनेका स्थान, गला और मुख ये  
सूख जाते हैं ॥

अथ व्यायामशोषिलक्षणम् ।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ॥  
लिंगैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ २६ ॥  
एभिरेव सस्ताङ्गत्वादिभिरध्वशोषिलक्षणै-  
रेव भूयिष्ठम् अत्यर्थम् ॥

व्यायामशोपमें विशेष करके अध्वशोषके लक्षण मिलते  
हैं और क्षतके न होनेपर भी उरःक्षत शोपके लक्षण  
होतेहैं ॥ २६ ॥

अथ व्रणशोषनिदानासाध्यलक्षणे ।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ॥  
व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमः  
स्मृतः ॥ २७ ॥

रुधिरके क्षय होनेसे, घावकी पीडासे और आहारके  
घटनेसे व्रणवाले मनुष्यके शोष होताहै वह तीनोंप्रकारका  
व्रणशोप अत्यंत असाध्यहै ॥ २७ ॥

अथोरःक्षतशोषनिदानम् ।

धनुषाऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्धहतो गुरुम् ॥  
युद्धयमानस्य बलिभिः पततो विषमो-  
च्चतः ॥ २८ ॥ वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं  
चान्यं निगृह्यतः ॥ शिलाकाष्ठाश्मनिर्घा-  
तान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २९ ॥  
अधीयानस्य चात्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् ॥  
महानदीं वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥  
॥ ३० ॥ सहस्रोत्पततो दूरं तूर्णश्चापि  
प्रनृत्यतः ॥ तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशम-  
भ्याहतस्य वा ॥ ३१ ॥ स्त्रीषु चातिप्रस-  
क्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ विक्षते  
वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते ॥ ३२ ॥

आयस्यतः आयासं कुर्वतः । हयं वृषा-  
दिकम् । अन्यं गजोष्ठादिकम् । शिला दीर्घ-  
पाषाणः । अश्मा प्रस्तरखण्डः । निर्घातोऽत्र  
विशेषः । व्याधिः उरःक्षताख्यः ॥

बहुत धनुष्याण अर्थात् तीरकमान चलानेसे, बेट  
भारी बोझको उठानेसे, बलवानके साथ युद्ध करनेसे,  
विषम अथवा ऊचे स्थानसे गिरनेसे, दौड़ते हुए पैल,  
घोड़े, हाथी, ऊट आदिको रोकनेसे, शिला, लकड़ी,  
पत्थर और शलादिकको जोरसे फेंकनेसे, दूसरोंको मारनेसे  
बहुत ऊचे स्तरसे बोलने अथवा वेद शान्त्रोंके पढ़नेसे,  
वेगपूर्वक दूर जानेसे, बड़ी गम्भीर नदियोंको तैरनेसे  
घोड़ेके साथ दौड़नेसे, एक साथ अकस्मात् उछलने  
कूदनेसे, अथवा कला खानेसे, जल्दी जल्दी नानेनेसे,  
तथा इसीप्रकार अन्यान्य साहसके काम करनेसे, जिसके  
अत्यंत चोटलगी हो ऐसे, मनुष्यको स्त्रियोंमें अत्यंत आसक्ति  
रखनेवाले और रुखा बहुत थोड़ा तथा अमानका भोजन  
करनेवाले मनुष्यकी छाती फटकर बलवान् उर क्षत रोग  
उत्पन्न होताहै ॥ २८-३२ ॥

### अथोरःक्षतशोपलक्षणम् ।

उरो विरुज्यतेत्यर्थं भिद्यतेऽथ विभज्यते ॥  
प्रपीडयते ततः पार्श्वे शुष्यत्यंगं प्रकम्पते ॥  
॥ ३३ ॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णं रुचिर-  
ग्निश्च हीयते ॥ ज्वरो व्यथा मनोदैर्न्यं  
विद्भेदोऽग्निवधस्तथा ॥ ३४ ॥ दुष्टश्यावः  
सदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहु ॥ कास-  
मानस्य चाभीक्ष्णं कफः सास्रकृ प्रवर्तते ॥  
स क्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः  
क्षयात् ॥ ३५ ॥

विरुज्यते पीडयते । भिद्यते विदार्यते इव  
विभज्यते द्विधा क्रियते इव । स क्षती स  
पुरुषः क्षती उरःक्षतवान् । अत्यर्थं क्षीयते  
क्षीणो भवति ॥

उरःक्षत रोगवाले मनुष्यकी छाती अत्यंत दुखतीहै,  
ऐसा जान पड़ताहै कोई छातीको चीरे डालताहै अथवा  
दो टुकड़े करे डालताहै, पसलियोंमें पीडा होतीहै, सम्पूर्ण

अंग मृगने लगतहै देह कापने लगतीहै, अनुक्रममें वीर्य  
बल, वर्ण, कांति और अग्नि श्रोण होतीजातीहै, -रक्की  
अथवा, मनमें दीनता, मलका भेद अर्थात् दन्ताका पीना,  
अग्निहीन मदता, साँसेके आने समय दूँपित, काले रगका,  
दुर्गन्धित, पीला, गाठदार, बहुतसा और रुधिर युक्त कफ  
बारबार निकलताहै और उरःजनरोगी वीर्यके तथा ओजके  
क्षयसे अत्यंत श्रोण हाजाताहै ॥ ३३-३५ ॥

### अथोरःक्षतविशेषलक्षणम् ।

उरोरुक्छोणितच्छादिः कासो वैशेषिकः  
क्षते ॥ क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटि-  
ग्रहः ॥ ३६ ॥

क्षते उरःक्षतवति । उरोरुक् शोणितच्छादिः  
कासो वैशेषिकः विशेषतः भवत्येवास्मिन्  
उरःक्षतवति सास्रकफशुक्रौजसां क्षयात् क्षीणे  
स रक्तमूत्रत्वं पार्श्वं पृष्ठकटिग्रहश्च भवति ॥

उरःक्षत रोगवाले मनुष्यकी छातीमें अन्यत पीडा  
होतीहै, रुधिरकी वमन और खासी अधिकतर आतीहै  
और रुधिर सहित कफका, वीर्यका, तथा ओजका क्षय  
होनेसे लोहित रगका रुधिर सहित मूत्र उतरताहै और  
पसली, पीठ तथा कमरमें महा वेदना होतीहै ॥ ३६ ॥

### अथ निदानविशेषेणोरःक्षतलक्षणम् ।

त्रणरोधाक्षयश्चैव कोष्ठात्प्रतिमलात्तथा ॥  
क्षतोरस्कस्यान्नपाके निःश्वासो वाति पू-  
तिकः ॥ ३७ ॥

क्षयाद्वातुक्षयहेतोरतिव्यवायोदितात्को-  
ष्ठात्प्रतिमलात्कोष्ठात्प्रतिलोममलात् । पूतिकः  
पूतिगन्धः ।

त्रणके अवरोधसे, धातुको क्षय करनेवाले अत्यंत मैथु-  
नादिकसे और कोठेमें वायुकी प्रतिलोमतासे प्रतिलोम हुए  
मलसे जिसकी छाती फटगई होय उस मनुष्यका श्वास  
अन्नके पचते समयमें दुर्गन्धित निकलता है ॥ ३७ ॥

### अथोरःक्षतसाध्यासाध्यलक्षणम् ।

अल्पलिगस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो

नवः ॥ परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिंगं तु  
वर्जयेत् ॥ ३८ ॥

जो उरःश्वतरोगमें अल्प लक्षण हो, अग्निप्रदीप्त हो, अरीरम बल हो और यह रोग थोड़े ही दिनोंसे हुआ होय तो साध्य होता है । जिसको उत्पन्न हुए एक वर्षसे अधिक बीत गया हो वह याप्य है और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हैं उसको असाध्य समझकर छोड़ देना चाहिये, अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करना चाहिये ॥ ३८ ॥

अथ राजयक्ष्मचिकित्सा ।

बलिनो बहुदोषस्य पञ्च कर्माणि कारयेत् ॥  
यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपम-  
म् ॥ ३९ ॥ मलायत्तं बलं पुंसां शुक्राय-  
त्तञ्च जीवितम् ॥ ४० ॥ तस्माद्यत्नेन  
संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसो ॥ शालिषष्टिक  
गोधूमयवमुद्रादयो हिताः ॥ ४१ ॥  
मद्यानि जांगलाः पक्षिमृगाः पथ्या  
विशुष्यताम् ॥

बलवान् और बहुत दोषोंसे युक्त राजयक्ष्मावाले रोगी-  
को वमन, विरेचन ( दस्त ), नस्य, निरुहवस्ति और  
अनुवासनवस्ति ये पंचकर्म कराने चाहिये, परन्तु क्षीण  
देहवाले मनुष्यको यह पंचकर्म विषकी समान अपकारी  
होते हैं, कारण यह कि, मनुष्योंका बल मलके अधीन है  
और जीवन वीर्यके अधीन है इस कारण क्षयरोगवाले  
मनुष्योंके वीर्यकी और मलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी  
चाहिये ।

क्षयरोगवाले मनुष्योंके लिये शालिचावल, साठीचावल,  
गेहूँ, जौ और मूँग आदि अन्न, मदिरा और जगल प्रदे-  
शके पशु पक्षियोंका मांस पथ्य ( हित ) है ॥ ३९-४१ ॥

अथ षडंगयूषः ।

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् ॥  
॥ ४२ ॥ दाडिसामलकोपेतं स्निग्धमाजं  
रसं पिबेत् ॥ तेन षड्विनिवर्तन्ते विकाराः  
पीनसादयः ॥ ४३ ॥ द्रव्यतो द्विगुणं मांसं

सर्वतोऽष्टगुणं जलम् ॥ पादस्थं संस्कृत-  
श्वाज्ये षडंगो यूष उच्यते ॥ ४४ ॥

तथा यवपलम् १ । कुलत्थपलम् १ ।  
छागमांसपलानि ४ । जलपलानि ४८ ।  
शेषपलानि १२ । ततः पलमिते वृते संस्क-  
रणीयम् । तत्र कर्षमितं सैन्धवं देयम् ।  
सौरभार्थं हिगु देयम् । पिप्पली नागरश्च  
पृथङ् माषमितं कल्कीकृत्य देयम् । इति  
षडंगयूषः ।

ककुभत्वङ्नागबला वानरिवीजं विचूर्णि-  
तम्पयसा ॥ पीतं मधुघृतयुक्तं ससितं  
यक्ष्मादिकासहरम् ॥ ४५ ॥ छागमांसं  
पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम् ॥  
छागोपसेवी शयनं छागमध्ये तु यक्ष्म-  
नुत् ॥ ४६ ॥ मधुताप्यविडंगाश्मजतु-  
लोहघृताभयाः ॥ घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं  
सेव्यमाना हिताशिनः ॥ ४७ ॥  
ताप्यं सुवर्णमाक्षिकम् ॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन्क्षयी ॥  
क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमा-  
क्षिके ॥ ४८ ॥

जौ ४ तोले, कुलथी ४ तोले और बकरेका स्निग्ध  
मांस १६ तोले, इन सबको अठगुने जलमें पकावै जब  
पकते पकते चौथा भाग जल बाकी रहजाय तब उससे चार  
४ तोले घी डालकर बघार देवै सैधानिमक १ तोला डाले,  
सुगंधिके लिये हींग डाले तथा अनार और आमलेका रस  
डाले, पीपल और मोठका कल्क छ. छ. रत्ती डाले । इस  
मांसरसको षडंगयूष कहते हैं । यह क्षयरोगवाले मनुष्यों-  
को पिलाना चाहिये । इसके पीनेसे राजयक्ष्मागत पीनस  
आदि समस्त विकार निवृत्त होजाते हैं ।

अर्जुनकी छाल, गंगेरन ( गुल्मकरी ) और कौछके  
बीज इनको दूधमें पीसकर सहत घी और घूरा मिलाकर  
पिये तो राजयक्ष्मादि रोग और खोसी दूर होजाती है ।

यथमारोगी बकरेके मासको खाय, बकरेके दूधको पिय सोंठ मिलाकर बकरेका घी खाय, बकरेकी मेवाकरे और बकरे बकरियोंके रहनेके स्थानमें सोवे, इन उपायोंके करनेसे धयरोग नष्ट होजाताहै ।

सहत, सोनामाखी, वायविडग, गिलाजीत, लोहा, ची और हरड इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे और इसपर पथ्य भोजन करनेसे अत्यंत उग्र क्षय रोग नष्ट होजाताहै ।

क्षय रोगवाला मनुष्य खाड और सहत मिलाकर ननी-घी खाय और इसपर दूध युक्त भोजन करे अथवा सहत और घीको विषम ( ज्यादेकम ) भाग लेकर चाटे तो पुष्टि होतीहै ॥ ४२-४८ ॥

अथ सितोपलाद्यवलेहः ।

सितांपला तुगाक्षीरी पिप्पली बहुलात्व-चः ॥ अन्त्यादूर्द्ध्वं द्विगुणिताश्चूर्णिता मधुसर्पिषा ॥ ४९ ॥ लेहयेद्राजरोगार्त कासश्वासज्वरातुरम् ॥ पार्श्वशूलिनम-ल्पाग्नि सुप्तजिह्वं रुचिच्युतम् ॥ हस्तपा-दंगदाहे च ज्वरे रक्ते तथाद्ध्वगे ॥ ५० ॥  
सितोपला [ मिश्री ] बहुला सूक्ष्मैला ॥

दालचीनी १ भाग, छोटी इलायची २ भाग पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग और मिश्री १६ भाग, इन सबका चूर्ण करके सहतके तथा घीके साथ क्षय रोगवालेको चढावे । खोंसी, श्वास, क्षय, पार्श्वशूल, मंदाग्नि, जिह्वाकी जडता और अरुचि तथा हाथ, पाव और सम्पूर्ण शरीरका दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तको भी यह सितोपलादि चूर्ण दूर करदेताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ जातीफलाद्यचूर्णम् ।

जातीफलं विडंगानि चित्रकं तगरं ति-लाः ॥ तालीसं चन्दनं शुण्ठी लवंगमुप-कुश्विका ॥ ५१ ॥ कर्पूरश्चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा ॥ एषां त्र्यक्षसमा भागाश्चातुर्जातकसंयुताः ॥ ५२ ॥ पलानि सप्त भृंगायाः सिता सवसमा मता ॥ चूर्णमेतत्क्षयं कासं श्वासश्च ग्रहणीगदम् ॥ ५३ ॥ अरोचकं प्रति-

श्यायं तथा चानलमन्दताम् ॥ एतात्रो-गात्रिहन्त्येव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ५४ ॥

जायफल, वायविडग, चीता, तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन, गोंठ, लौंग, कालाजीग, भीममंतीकपूर, हरड, आमले, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकमर ये प्रत्येक पदार्थ तीन तीन तोले-भर लें, भाग २८ तोले लें और सबकी बराबर मिश्री लें, सबको एकत्र कूट पीस कर चूर्ण बनाय । जिस प्रकार दन्तका वज्र वृक्षोंको नष्ट करताहै उसी प्रकार यह चूर्ण क्षय खोंसी, श्वास, ग्रहणी, अरुचि, प्रतिश्याय ( बुकाम ) और अग्निकी मदताको नष्ट करेहै । इसका जातीफलान्द चूर्ण कहतेहैं ॥ ५१-५४ ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

वालरोगाधिकारोक्तं तैलं लाक्षादि यांज-येत् ॥ अभ्यंगे यक्षिणो नित्यं वृद्धवैद्यो विशेषतः ॥ ५५ ॥

वालरोगाधिकारमें जो लाक्षादितैल कहाहै उस तेलको वृद्ध वंशके उपदेशसे क्षयरोगीके शरीरमें मर्दन ( मा-लिज ) करे ॥ ५५ ॥

अथ वासावलेहः ।

वासकस्य रसप्रस्थं मानिका सितशर्करा ॥ पिप्पल्या द्विपलं तावत्सर्पिषश्च शनैः पचेत् ॥ ५६ ॥ तस्मिँल्लेहत्वमायाते शीते क्षौद्र-पलाष्टकम् ॥ दत्त्वावतारयेद्वैद्यो लीढो लेहोऽयमुत्तमः ॥ ५७ ॥ हन्त्येव राजय-क्ष्माणं कासं श्वासश्च दारुणम् ॥ पार्श्वशू-लश्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा ॥ ५८ ॥

अडूसेका रस ६४ तोले, उत्तम सफेद खांड ३२ तोले, पीपल ८ तोले और घी ८ तोले लें, सबको एकत्र मिलाकर धीरे धीरे मद अग्निके पकावै, जब लेहकी समान होकर शीतल होजाय तब ३२ तोले सहत मिलादेवे तो उत्तम वासावलेह तैयार होताहै । यह वासावलेह-राज-यक्ष्मा, दारुण खोंसी, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करेहै ॥ ५६-५८ ॥

अथ व्यवायशोषचिकित्सा ।

व्यवायशोषिणं क्षीणं रसमांसाज्यभोजनैः॥

सुकूलैर्मधुरैर्हृद्यैर्जीवनीयैरुपाचरेत्॥५९॥

रसः मांसरसः । सुकूलैर्हितैः ॥

व्यवायशोषसे क्षीण हुए मनुष्यको मांसका रस मांस और वृतसयुक्त भोजन और अनुकूल मधुर तथा जो अपनेको प्रिय लगे ऐसे जीवनीय पदार्थोंके द्वारा उपचार करै ॥ ५९ ॥

अथ शोकशोषचिकित्सा ।

हर्षणैः श्वसनैः क्षीरैः स्निग्धैर्मधुरशीतलैः ॥

दीपनैर्लघुभिश्चात्रैः शोषरोगमुपाचरेत्॥६०॥

शोकशोषवाले मनुष्यका हर्षको बढ़ानेवाले पदार्थोंसे उपचार करे, धीरज बंधावै, दूधका उपयोग करै और स्निग्ध, ( चिकन ) मधुर, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाले और हलके अन्न भोजनके लिये देवै ॥ ६० ॥

अथ व्यायामशोषचिकित्सा ।

व्यायामशोषिणं स्निग्धैः क्षतक्षयहितैर्हिमैः॥

उपाचरेज्जीवनीयैर्विधिना श्लैष्मिकेण तु ६१

व्यायामशोषवाले मनुष्यको स्निग्ध, उरःक्षतशोषकी चिकित्साके कहेहुए शीतल और जीवनीय पदार्थ तथा कफको करनेवाले पदार्थोंसे वृहण चिकित्सा करे ॥ ६१ ॥

अथाध्वशोषचिकित्सा ।

आस्यासुखैर्दिवास्वप्नैः शीतैर्मधुरबृंहणैः ॥

अन्नमांसरसाहारैरध्वशोषमुपाचरेत् ॥३२॥

अध्वशोषवाले मनुष्यको उत्तम मुलायम आसन, गद्दी-शय्यापै बिठलावै, दिनमें सुलावै और शीतल मधुर और पुष्टिको करनेवाले अन्न और मांसके रस तथा ऐसे भोजनोंसे उपचार करै ॥ ६२ ॥

अथ व्रणशोषचिकित्सा ।

व्रणशोषं जयेत्स्निग्धैर्दीपनैः स्वादुशीतलैः॥

ईषदम्लैरनम्लैर्वा यूषमांसरसादिभिः॥६३॥

स्निग्ध, अग्निको दीपन करनेवाले, मधुर, शीतल और किंचित् अम्ल अथवा अम्लरहित यूषोंसे और मांसके रस आदिसे व्रणशोषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

अथोरःक्षतचिकित्सा ।

तत्र बलादिचूर्णम् ।

बलाश्वगन्धा श्रीपणीं बहुपुत्री पुनर्नवा ॥

पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षतक्षयम् ॥ ६४ ॥

श्रीपणीं गम्भारी । बहुपुत्री शतावरी ॥

खिरैठी, असगध, कुम्भेरके फल, सतावर और पुनर्नवा इनको दूधमें पीसकर नित्य पीनेसे उरःक्षतशोष नष्ट होताहै ॥ ६४ ॥

अथैलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं पृथक् ॥

सितामधुकखर्जूरमृद्धीकाश्च पलोन्मिताः ॥

॥ ६५ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्ता वटिकाः

सम्प्रकल्पयेत् ॥ अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षये-

त्तु दिनेदिने ॥ ६६ ॥ क्षतं क्षयं ज्वरं कासं

श्वासं हिककां वमिं भ्रमम् ॥ मूच्छां मदं

तृषां शोषं पार्श्वगूलमरोचकम् ॥ ६७ ॥

प्लीहानमाह्ववातश्च रक्तपित्तं स्वरक्षयम् ॥

एलादिगुटिका हन्ति वृष्या सन्तर्पणी

परा ॥ ६८ ॥

इलायची छः मासे, तेजपात छः मासे, दालचीनी छः मासे, पीपल दो तोले, मिश्री ४ तोले, मुलैठी ४ तोले, खजूर, छोहारे ४ तोले और दाख ४ तोले, इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियां बनावै इनमेंसे एक गोली नित्य खाय तो उरःक्षत, शोष, ज्वर, खाँसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूच्छा, मद, तृषा, शोष, पॅसलियोंकी पीडा, अरुचि, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त और स्वरभग ये सब रोग नष्ट होजाते हैं । ये गोली कामी पुरुषोंके लिये अत्यंत हितकारी हैं और वृषिको करनेवाली हैं ॥ ६५-६८ ॥



अथ द्राक्षादिवृतम् ।

द्राक्षायाः प्रस्थमेकन्तु मधुकस्य पलाष्टक-  
म् ॥ पचेत्तोयाढके शुद्धे पादशेषेण तेन  
तु ॥ ६९ ॥ पलिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णा-  
पलद्वयम् ॥ आदाय सर्पिपः प्रस्थं पचे-  
क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ७० ॥ सिद्धे शीते पला-  
न्यष्टौ शर्करायाः प्रदापयेत् ॥ एतद्राक्षाघृतं  
सिद्धं क्षतक्षीणसुखावहम् ॥ ७१ ॥ वातं पित्तं  
ज्वरं श्वासं विस्फोटकहलीमकान् ॥ प्रदरं  
रक्तपित्तञ्च हन्यान्मांसवलपदम् ॥ ७२ ॥

उत्तम बड़ी बड़ी काली दाख ६४ तोले, मुलहठी, ३२  
तोले स्वच्छ जलमें पकावै, जब पकते २ चौथा भाग काथ  
शेप रहनाय, तब उसमें मुलहठीका चूर्ण ४ तोले, पिसी-  
हुई दाख ४ तोले, पीपलका चूर्ण ८ तोले और धी ६४  
तोले भर डालकर चौगुने दूधमें पकावै, जब पकते पकते  
केवल धी बाकी रहजाय तब उतारलेय, शीतल होनेपर ३२  
तोले खाड मिलादेवे तो द्राक्षादिवृत सिद्ध होता है । यह  
घृत उरःक्षतगोप, वायु, पित्त, ज्वर, श्वास, विस्फोटक,  
हलीमक, प्रदर और रक्तपित्तको नष्ट करे है । तथा मांस  
और बलको बढाता है ॥ ६९-७२ ॥

अथामृतप्राशावलेहः ।

क्षीरे धात्री च मल्लिष्ठा क्षीरिणाश्च तथा  
रसैः ॥ पचेत्समैर्घृतप्रस्थं मधुरैः कर्षसम्मि-  
तैः ॥ ७३ ॥ द्राक्षाद्विचन्दनोशीरैः शर्करो-  
त्पलपद्मकैः ॥ मधूककुसुमानन्ताकाश्मरी-  
तृणसंज्ञकैः ॥ ७४ ॥ प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते  
शर्करार्द्धतुलां तथा ॥ पलार्द्धिकांश्च संचूर्ण्य  
त्वगेलापद्मकेसरान् ॥ ७५ ॥ विनीय तत्र  
संलिह्यान्मात्रां नित्यं सुयन्त्रितः ॥ अमृत-  
प्राशमित्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ क्षीर-  
मांसाशिनां हन्ति रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥  
॥ ७६ ॥ तृष्णारुचिश्वासकासच्छर्दि-  
मूर्च्छाप्रमर्दनम् ॥ मूत्रकृच्छ्रज्वरघ्नश्च वल्यं  
स्त्रीरतिवर्द्धनम् ॥ ७७ ॥

उत्तम गायके घीमें आमले, मंजीठ और विदारीक-  
न्दका रस इनको समान भाग मिलाकर पचाव जीवनीय-  
गणकी समस्त औषधि एक २ तोला, दाग, चन्दन,  
लालचन्दन, रम, ग्याट, कमल, पत्राय, महुयेके फूट,  
मारिवा, कुम्भरके फल और सुगन्ध रोहिणितृण इनका बन्क  
बनाकर धीको दूधमें पकावै जब पककर शीतल होजाय  
तब उसमें सहत ३२ तोले, पाट २०० तोले, दालची-  
नीका चूर्ण २ तोले, इलायचीका चूर्ण २ तोले और कम-  
लकी केसरका चूर्ण २ तोले इनको मिलादेवे तो अश्विनी-  
कुमारोंका बनायाहुआ यह 'अमृतप्राश' नामवाला अव-  
लेह सिद्ध होता है । जितेन्द्रिय होकर इस अवलेहका नित्य  
सेवन करे, इसपर दूध और मांसके साथ भोजन करे ।  
इस प्रकार करनेसे उरःक्षतक्षय, रक्तपित्त, तृषा, अग्नि,  
वात, खासी, वमन, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरका नाश  
होता है । त्रिष्योमें प्रीति उत्पन्न होनी है तथा बलकी वृद्धि  
होती है ॥ ७३-७७ ॥

अथोरःक्षतरोगपथ्यापथ्यानि ।

यद्यच्च तर्पणं शीतमविदाहि हितं लघु ॥  
अन्नपानं निषेव्यं स्यात्क्षतक्षीणैः सुखार्थि-  
भिः ॥ ७८ ॥ शोकं स्त्रियः क्रोधमसूयता-  
श्च त्यजेदुदारान्विषयान्भजेच्च ॥ तथा द्वि-  
जातीस्त्रिदशान्युरुंश्च वाचश्च पुण्याः शृणु-  
याद्द्विजेभ्यः ॥ ७९ ॥

उरःक्षतगोपवालेको जो मुखकी दृच्छ होय तो जो जो  
अन्नपान तृप्तिदायक हैं शीतल, दाहरहित हितकारक और  
हल्के, उन सबका सेवन करे, तथा शोक, स्त्रीप्रसंग, क्रोध  
और परनिन्दा, द्वेषवृद्धि आदिको त्यागदेवे, उत्तम ज्ञाति  
सन्तोषादि विषयोंको सेवन करे, ब्राह्मण, देवता और गुरु-  
जनोंकी भक्ति करे और ब्राह्मणोंसे पवित्र कथाओंको श्रवण  
करे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ राजयक्ष्मणि रसः ।

तत्रामृतेश्वरो रसः ।

रसभस्मामृतासत्त्वं लोहं मधुघृतान्वि-

तम् ॥ अमृतेश्वरनामायं षड्गुञ्जो राज-  
यक्ष्मणि ॥ ८० ॥

रसभस्म मारितो रसः । अमृतासत्त्वं  
गुडूचीसत्त्वम् । लोहं मारितम् । अमृतेश्वर-  
रसो राजयक्ष्मणि रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

पारेकी भस्म, गिलेयका सत्त्व और माराहुआ लोह  
इनको एकत्र करके सहत और धीमे मिलाकर प्रतिदिन  
छै रत्तीभर चाटे । यह अमृतेश्वररस राजयक्ष्मा रोगको  
शमन करे है यह रस रसेन्द्रचिन्तामणिमे लिखा है ॥ ८० ॥

अथ राजमृगांकरसः ।

त्रयोऽंशा मारितात्सूतादेकोऽंशो हेमभ-  
स्मतः ॥ एकोऽंशो मृतताम्रस्य शिला ग-  
न्धश्च तालकम् ॥ ८१ ॥ प्रत्येकं भाग-  
युग्मं स्यादेतत्सर्वं विचूर्णयेत् ॥ वराटीः  
पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टंकणम् ॥ ८२ ॥  
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे ताश्च  
धारयेत् ॥ कुप्यां पचेद्भजपुटे स्वांग-  
शीतं समुद्धरेत् ॥ ८३ ॥ रसो राजमृ-  
गांकोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः ॥ मरिचैरु-  
नविंशत्या कणाभिर्दशभिस्तथा ॥ ८४ ॥  
मधुना सर्पिषा चापि दद्यादेतं रसं  
भिषक् ॥ अनेन नश्यति क्षिप्रं वातश्ले-  
ष्मभवः क्षयः ॥ ८५ ॥

इति राजमृगाङ्गो रसो राजयक्ष्मणि रसे-  
न्द्रचिन्तामणौ ॥

माराहुआ पारा ३ भाग, सोनेकी भस्म १ भाग,  
तावेकी भस्म १ भाग, मैनशिल, २ भाग, गन्धक २  
भाग और हरिताल २ भाग, इन सबका एकत्र चूर्ण  
करके एक बड़ी पीली कौडीमें भरलेवे, फिर बकरीके  
दूधमें पिसेहुए सुहागेसे कौडीका मुख बन्द करके उस  
कौडीको मट्टीके पात्रमें रखे, फिर वासनपर कपरौटी  
कर गजपुटमें फूँकदेवे, स्वागशीतल होनेपर इसको निका-  
लकर मट्टीको अलग करके रस निकाललेवे इसको, 'राज-  
मृगाकरस, कहतेहैं । इस रसको प्रतिदिन चार रत्तीभर

खानेसे क्षयरोग नष्ट होजाताहै । वैद्य १९ कालीमिरच,  
दश पीपल, सहत और घीके साथ इस रसको देवे । इस  
रसको सेवन करनेसे वायु और कफसम्बन्धी क्षयरोग  
तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ८१-८५ ॥

अथाग्निरसः ।

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुर्यात्खत्वेन कज्ज-  
लीम् ॥ तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्क-  
न्यकाद्रवैः ॥ ८६ ॥ द्वियाममातपे  
गोलं ताम्रपात्रे निधापयेत् ॥ आच्छाद्यै-  
रंडपत्रेण स्यादुष्णं यामयुग्मतः ॥ ८७ ॥  
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चादष्टरात्रात्तदुद्धरेत् ॥  
संचूर्ण्य गालयेद्वस्त्रैः सत्यं वारितरं  
भवेत् ॥ ८८ ॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जा-  
तीफललवंगकैः ॥ नवभागोन्मितैरभिः  
समैरेष रसो भवेत् ॥ ८९ ॥ निष्कद्वय-  
मितं नित्यं मधुना सह लेहयेत् ॥ अयम-  
ग्निरसो नाम्ना कासक्षयहरः परः ॥ ९० ॥  
इति अग्निरसः शार्ङ्गधरे ॥

शुद्धपारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग इन  
दोनोंकी एकत्र खरलमे कजली बनावै, फिर इस कज-  
लीकी बराबर तीक्ष्ण लोहेका चूर्ण लेकर इस कजलीमें  
मिलादेवे, फिर इसको घीकारके रसमे दो प्रहरतक खरल  
करै, फिर इसका गोला बनाकर ताँवेके पात्रमें रखकर  
अंडके पत्तोंसे ढककर उस ताँवेके पात्रको धूपमें धरदेवे,  
जब दो प्रहरतक गरम होजाय तब पीछे वानोके ढेरमें  
गाढदेवे, पश्चात् आठ दिनमें निकाले, फिर इस गोलेका  
चूर्ण करके कपड़ेमें छानलेवे तो यह चूर्ण अवश्य जलमें  
तैरने लगेगा, तत्पश्चात् त्रिकुटा ३ भाग, त्रिफला ३  
भाग, इलायची १ भाग, जायफल १ भाग, और  
लौंग १ भाग सबको एकत्र पीसकर नवभाग रस इसमे  
मिलादेवे तो यह 'अग्निरस' सिद्ध होताहै । सहतके साथ  
इसमेंसे नित्य ४८ रत्तीभर चाटे तो खांसी और क्षयका  
नाश होताहै ॥ ८६-९० ॥

इति क्षयरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ कासरोगाधिकारः ।

तत्र कासनिदानसंप्राप्तिपूर्वक-  
सामान्यलक्षणम् ।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरुक्षा-  
न्ननिषेवणाच्च ॥ विमार्गगत्वादपि भोज-  
नस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥  
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः सम्भिन्नकां-  
स्यस्वनतुल्यघोषः ॥ निरेति वक्रात्स-  
हसा सदोषो मनीषिभिः कास इति  
प्रदिष्टः ॥ २ ॥

सदोषः तादृक् प्राणानिलरूपः ॥

मुख अथवा नाकमें धुआँ और धूल जाकर उसकी  
थसके लगनेसे, अत्यन्त कसरत करनेसे, अधिकतर रुखे  
अन्नको भक्षण करनेसे, भोजन करतेसमय नासिकादि  
छिद्र अथवा अन्यान्यके मार्गोंमें भोजन जानेसे मल दस्त  
पेशावके वेगोको और छींकको रोकनेसे प्राणवायु दूषित  
होकर उदान वायुके साथ मिलकर फूटे कासेके वासनकी  
समान शब्द करती हुई एक साथ मुखसे बाहर निक-  
लती है इस रोगको विद्वान् लोग खांसी ( कास )  
ऐसा कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

## अथ काससंख्या ।

पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षत-  
क्षयैः ॥ क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चो-  
त्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

क्षयाय राजयक्ष्मणे ॥

वातज, पित्तज, कफज, छातीमें अतके होनेसे उत्पन्न  
और क्षयसे उत्पन्न हुई ऐसे खांसी पांच प्रकारकी जाननी,  
इनकी उपेक्षा अर्थात् चिकित्सा न करनेसे यह पांचों  
प्रकारकी खांसी राजयक्ष्मा रोगको उत्पन्न करतीहैं, इन  
पांचों प्रकारकी खांसियोंमें उत्तरोत्तर बलवान् हैं अर्थात्  
वातकी खांसीसे पित्तकी, पित्तकी खांसीसे कफकी, कफकी  
खांसीसे अतकी और अतकी खांसीसे क्षयकी खांसी  
बलवान् है ॥ ३ ॥

## अथ कासपूर्वरूपम् ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपर्णगलास्यता ॥  
कण्ठे कण्ठश्च भोज्यानामवरोधश्च  
जायते ॥ ४ ॥

भोज्यानामवरोधः कवलगिलने कण्ठ-  
व्यथा ॥

जब ग्रासी उत्पन्न होनेको होताहै तब उनमें कुछ  
काल पहिले गले और मुखमें फावसी लगने लगतीहै,  
कण्ठमें गुजलीसी होतीहै और भोजनके ग्रामको निगलने  
समय गलेमें व्यथा होतीहै ॥ ४ ॥

## अथ वातकासलक्षणम् ।

हृच्छ्वापाश्चांदरमूर्द्धगूली क्षामाननः क्षीण-  
बलस्वरौजाः ॥ प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन  
भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ५ ॥

शंखो ललाटेकदेशः । शुष्कं श्लेष्मादिर-  
हितम् ॥

वातकी खांसीमें हृदय, कनपटी, पसली, उदर और  
मस्तक इनमें शूल होता है, मुखकी कान्ति हीन होजाती  
है बल, स्वर और ओज क्षीण होजाता है, तथा बारबार  
बड़े वेगसे खांसी उठती है, स्वर बँटजाता है और कफ  
नहीं गिरता अर्थात् सूखी खांसी होती है ॥ ५ ॥

## अथ पित्तकासलक्षणम् ।

उरोविदाहज्वरवक्रशोषैरभ्यर्दितस्तित्त-  
मुखस्तृषार्तः ॥ पित्तेन पीतानि वमेत्क-  
टूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥ ६ ॥  
सपाण्डुः पाण्डुरोगयुक्तः ॥

पित्तकी खांसीमें, हृदयमें दाह, ज्वरकी व्यथा, मुख  
ओपकी पीडा होती है, मुखमें कड़वापन, तृप्ता, पीली  
और चरपरी वमन, पाण्डुरोग और दाह होकर खांसी  
उठती है ॥ ६ ॥

## अथ कफकासलक्षणम् ।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरु-  
जार्तः कफपूर्णदेहः ॥ अभक्तरुद्धगौर-  
वकण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः  
कफेन ॥ ७ ॥

प्रलिप्यमानेन मुखेन श्लेष्मलिप्तेन मुखेन

उपलक्षितः । अभक्तरुक् न भक्ते रुक् रुचि-  
र्यस्य सः । कण्डूः कण्ठ एव च ॥

कफकी खोंसीमे मुख कफसे लिसासा रहताहै, मस्तक-  
मे पीडा हो, शरीर कफसे पूर्ण रहै, खानेमे रुचि नहीं  
हो, देह भारी हो, गलेमे खुजली चले और खोंसीमे बार  
बार बहुत गाढा कफ निकला करे ॥ ७ ॥

अथ क्षतजकासनिदानपूर्वक-  
सम्प्राप्तिः ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः ॥  
रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमाव-  
हेत् ॥ ८ ॥

अश्वगजयोर्निग्रहो दमनम् ॥

अत्यंत मैथुन करनेसे, अत्यंत भारको उठानेसे,  
अधिक तर मार्गके चलनेसे, अत्यंत युद्ध करनेसे और  
भागते हुए घोड़े हाथी आदिको बलपूर्वक रोकनेसे, रूक्ष  
मनुष्यका हृदय फटकर कुपित हुई वायु खोंसीको उत्पन्न  
करतीहै ॥ ८ ॥

अथ क्षतजकासलक्षणम् ।

स पूर्व कासते शुष्कं ततः घृष्वेत्सशो-  
णितम् ॥ कण्ठेन कूजत्यत्यर्थं विभमेनेव  
चोरसा ॥ ९ ॥ सूचीभिरेव तीक्ष्णाभिस्तु-  
द्यमानेन शूलिना ॥ दुःखस्पर्शनं शूलेन भेद-  
पीडाभितापिना ॥ १० ॥ पर्वभेदज्वर-  
श्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ॥ पारावत इवा-  
कूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥

कण्ठेन इति उपलक्षणे तृतीया । एवमुरसेति ।

क्षतज खोंसीवाला रोगी प्रथम सूखा खोंसताहै, फिर  
खखारमें रुधिर आवै, गला निरंतर कूजता रहताहै और  
हृदय फटेकी समान मालूम हो, तथा तीक्ष्ण सूइओंसे  
छेदागया सा मालूम हो, छातीमें शूलकी पीडाहोती  
हो, हृदयका स्पर्श पीडाके मारे नहीं सहसके, संताप,  
भेदने सरीखी पीडा, सम्पूर्ण शरीरकी सधियोंमें वेदना  
हो, श्वास, ज्वर और तृष्णा उत्पन्न होतीहो ( पीडा )  
स्वर बैठजाय और खोंसीके वेगसे कबूतरकी समान बुट  
बुट करताहै गुटर गुटर शब्द निकलै ॥ ९-११ ॥

अथ क्षतजकासनिदान-  
पूर्वकसम्प्राप्तिः ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्र-  
हात् ॥ घृणिनां शोचतां नणां व्यापन्नेभ्यो  
त्रयो मलाः ॥ कुपिताः क्षयजं कासं कुर्यु-  
र्देहक्षयप्रदम् ॥ १२ ॥

घृणिनां विचिकित्सायुक्तानाम् ॥

विषम ( कभी थोडा कभी बहुत ) भोजन अहित  
भोजन करनेसे, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करनेसे, मूत्र मलादिके  
वेगोको रोकनेसे घृणा अर्थात् पराये गुणोंमे दोषोंको आरो-  
पण करनेसे और अत्यन्त शोक करनेसे मनुष्योंकी जठराग्नि  
मद होकर तीनो दोषोंको कुपित करके शरीरको क्षय करने  
वाली ऐसी क्षयकी खोंसीको उत्पन्न करेहै ॥ १२ ॥

अथ क्षयजकासलक्षणम् ।

सगात्रशूलज्वरमोहदाहप्राणक्षयं चोपलभे-  
तकासो ॥ शुष्कं विनिष्ठीवति निर्वलस्तु  
प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥ तं सर्वलिंगं  
भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं  
वदन्ति ॥ १३ ॥

क्षयकी खोंसीमें रोगीके शरीरमे शूल, ज्वर तथा मोह  
होताहै, दाह इन्द्रियोंकी क्षीणता होतीहै, सूखा थूकताहै  
और बलकी तथा मांसकी क्षीणता होनेसे अत्यंत राधयुक्त  
रुधिर खोंसीमें थूकताहै, यह क्षयसे उत्पन्न हुई जो खोंसी  
सम्पूर्णलक्षण युक्त होय तो चिकित्सा करनेमे अत्यंत  
कठिन है ॥ १३ ॥

अथ काससाध्यासाध्यता ।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ॥  
साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं  
क्षतोत्थितः ॥ १४ ॥

एवं क्षतोत्थितः क्षीणानामसाध्यः । बल-  
वतां साध्यो याप्यो वा स्यात् ॥

नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वि-  
तौ ॥ स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः  
प्रकीर्तितः ॥ १५ ॥

सिध्येतां क्षतजक्षयजौ सदैद्यसद्रेषजस-  
त्परिचारकयुक्तस्य सदातुरस्य जातौ । स्थवि-  
राणां जराकासः वृद्धानां यः कासो भवति स  
जराकाससंज्ञः स सर्व एव वातजादिरपि  
याप्यः ॥

त्रीनपूर्वासाधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यांस्तु,  
यापयेत् ॥ १६ ॥

अतसे अथवा क्षयसे उत्पन्न हुई खोंसी जो क्षीण मनु-  
ष्योंको उत्पन्न होये तो असाध्य होतीहै और बलवान् मनु-  
ष्योंको उत्पन्न हुई होय तो साध्य होतीहै अथवा याप्य  
होतीहै, यदि चिकित्साके चारो पाद ( उत्तम वैद्य उत्तम  
औषधि, उत्तम परिचारक, उत्तम रोगी ) ठीक होय और  
क्षतज अथवा क्षयज खोंसी थोड़े दिनोंसे उत्पन्न हुई  
होय तो यह खोंसी क्षीण मनुष्योंके उत्पन्न हुई भी कदाचित्  
साध्य होतीहै । वृद्ध मनुष्योंके उत्पन्न हुई जो खोंसी है  
जिसको जराकास कहतेहैं, वह किसी प्रकारकी भी होय  
सब याप्य जाननी, वातज, पित्तज और कफज इन तीन  
प्रकारकी खोंसीको साध्य समझकर चिकित्सा करके नष्ट  
करें और अतसे तथा क्षयसे उत्पन्न हुई खोंसीको याप्य  
समझ कर पथ्य देकर कालक्षेप करावे ॥ १४-१६ ॥

अथ कासोपेक्षादोषः ।

ज्वरारोचकहृल्लासस्वरभेदक्षयादयः ॥  
भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात् त्वरया  
जयेत् ॥ १७ ॥

खोंसीकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् कि, यह है ही क्या  
अपने आप आराम होजायगा ऐसा समझकर जो लोग  
खासीकी चिकित्सा नहीं करतेहैं उनके ज्वर, अरुचि,  
उबकाई, स्वरभेद और श्रयादिक रोग उत्पन्न होतेहैं । इस  
कारण खोंसीकी अत्रही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

अथ कासचिकित्सा ।

तत्र प्रथमं वातजकासचिकित्सा ।

वास्तूको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्ण-

कम् ॥ त्रेहास्तैलादयो भव्यास्तथेक्षुरस-  
गौडिकाः ॥ १८ ॥ दध्यारनालाम्लफलं  
प्रसन्नापानमेव च ॥ शस्यते वातकासेषु  
स्वादम्ललवणानि च ॥ १९ ॥

वायसीशाकं काकोदुम्बारिका इति लोके ।  
सुनिषण्णकं सुपुणि इति लोक शाकविशेषः ।  
चांगरीसदृशः पत्रैः सुनिषण्णं चतुर्दलम् ॥  
शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रोति  
चोच्यते ॥ २० ॥

चौपतिया इति लोक ॥

ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगंधूमपाष्टिकान् ॥  
रसैर्मापात्मगुप्तानां यूपैर्वा भोजयेद्विषकृ २१  
ग्राम्यानूपोदकः रसरित्यन्वयः । आत्म-  
गुप्ता आल्फुषी इति लोके ॥

दशमूलीकृता श्वासकासहिवकारुजापहा ॥  
यवागूर्दीपनी वृष्या वातरोगविनाशिनी ॥  
॥ २२ ॥ रसः ककोटकानां वा घृतभृष्टः  
सनागरः ॥ वातकासप्रशमनः शृंगीमत्स्य-  
स्य वा पुनः ॥ २३ ॥

वातकी खोंसीमें-वथुयेका शाक, मकोयका शाक, मूली,  
गिरिआरी अथवा चौपतियाका शाक, तैलादिक स्नेह  
पदार्थ, इसका रस, गुडके वनेहुए पदार्थ, दही, काँजी,  
खट्टे फल, मीठे, खट्टे तथा खारी अथवा नमकीन पदार्थ  
और प्रसन्ना(मदिराका भेद)का पीना यह सब हितकारी है ।  
(गिरिआरीका स्वरूप । इसके पत्ते चागेरी अर्थात्  
लोनियाकी समान होते हैं, एक एक शाखामें चार चार  
पत्ते होते हैं प्राय इसका शाक सजल भूमिमें उत्पन्न होता  
है, इसको गिरिआरी अथवा चौपतिया कहते हैं ) ॥

वैद्य, वातकी खोंसीमें-ग्राम, जलप्राय देश और जलमें  
रहनेवाले जीवोंके मासके रसके साथ अथवा उडद या  
कौछके यूपके साथ चावल, जौ, गेहूँ और सोंठीके चावल  
खाने को देवे ।



दशमूलके द्वारा बनाई हुई यवागू श्वास, खोंसी हिच-  
की और वातके रोगोको नष्ट करैहै । अग्निको दीपन करैहै  
और मैथुनशक्तिको बढ़ावेहै ।

केकडेका अथवा शृगमछलीका रस घीमे भूनकर सोठ  
डालकर पीनेसे वातकी खोंसी नष्ट होजातीहै ॥ १८-२३ ॥

अथ पित्तकासचिकित्सा ।

कण्टकारीयुगं द्राक्षा वासाकर्चूरबालकैः ॥  
नागरेण च पिप्पल्या कथितं सलिलं पिबे-  
त् ॥ शर्करामधुसंयुक्तं पित्तकासहरं पर-  
म् ॥ २४ ॥

कटेरी, बड़ी कटेरी, दाख, अडूसा, कचूर, सुगंधना-  
ला, सोठ और पीपल इनका काथ बनाकर मिश्री और  
सहत मिलाकर पीनेसे पित्तकी खोंसी दूर होतीहै ॥ २४ ॥

अथ कफकासचिकित्सा ।

पिप्पली कटफलं शुण्ठी शृङ्गी भार्ज्जी त-  
थोषणम् ॥ कारवी कण्टकारी च सिन्दु-  
वारो यवानिका ॥ २५ ॥ चित्रको वासक-  
श्चैषां कषायं विधिवत्कृतम् ॥ कफकास-  
विनाशाय पिबेत्कृष्णारजोयुतम् ॥ २६ ॥

पीपल, कायफल, सोठ, काकडाशिगी, भारंगी, काली-  
मिर्च, कालाजीरा या कलौजी, कटेरी, सन्हालू, अजवायन,  
चीता और अडूसा इनका विधिपूर्वक काथ बनाकर पीप-  
लका चूर्ण डालकर पीनेसे कफकी खोंसी दूर होजातीहै  
इसको पिप्पल्यादि काथ कहतेहै ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ क्षतजकासचिकित्सा ।

इक्षुबालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनम् ॥  
मधुकं पिप्पली द्राक्षा लाक्षा शृङ्गी शता-  
वरी ॥ २७ ॥ द्विगुणा च तुगाक्षीरी सिता  
सर्वचतुर्गुणा ॥ लिह्यात्तन्मधुसर्पिभ्यां  
क्षतकासनिवृत्तये ॥ २८ ॥

इक्षुबालिका इक्षुभेदः । चन्द्र इति लोके ।  
पद्मं पद्मकाष्ठम् । मृणालं विसम् । उत्पलं  
कमलम् । चन्दनमत्र धवलं चूर्णत्वात् । शृङ्गी  
कर्कटशृङ्गी । तुगाक्षीरी वंशरोचना सा च  
इक्षोर्द्विगुणा ॥

ईख, इक्षुबालिका ( एकप्रकारका तृण अथवा ईख )  
पद्माख, कमलकी नाल, कमल, चदन, मुलैठी, पीपल,  
दाख, लाख, काकडाशिगी, सतावर, ईखसे दुगुना वगलो-  
चन और सबसे चौगुनी मिश्री लेवे, सबका एकत्र चूर्ण  
करके सहत और घीके साथ चाटनेसे क्षतजन्य खोंसी नष्ट  
होजातीहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ क्षयजकासचिकित्सा ।

चूर्णं काकुभमिष्टं वासकरसभावितं बहू-  
न्वारान् ॥ मधुघृतसितोपलाभिलेहं क्षय-  
कासरक्तहरम् ॥ २९ ॥

काकुभं चूर्णं ककुभचूर्णम् ॥

लोहके चूर्णको अडूसेके रसमे बारबार भावना देकर  
सहत, घी और मिश्रीके साथ चाटे तो क्षयजन्य खोंसी  
दूर होजातीहै ॥ २९ ॥

अथ कासरोगसामान्यचिकित्सा ।

ताप्यमानस्य कासेन नासास्त्रावे स्वरे जडे ॥  
क्षयथौ गन्धनाशे च धूमपानं प्रयोजयेत्  
॥ ३० ॥ मनःशिलालमरिचमांसीमुस्ते-  
गुदैः पिबेत् ॥ धूमं त्र्यहश्च तस्यानुपयश्च  
सगुडं पिबेत् ॥ ३१ ॥

आलं हरितालम् ॥

एष कासान्पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुद्भवान् ॥  
शतैरपि प्रयोगाणामसाध्यान्साधयेद् ध्रुव-  
म् ॥ ३२ ॥ बदरीदलमालिसं शिलयाऽऽ-  
तपशोषितम् ॥ तद्धूमपानं सक्षीरं महा-  
कासनिवारणम् ॥ ३३ ॥ कण्टकारीकृतः  
काथः सकृष्णः सर्वकासहा ॥ कण्टकार्याः  
कणायाश्च चूर्णं समधु कासहत् ॥ ३४ ॥  
लवंगजातीफलपिप्पलीनां भागान्प्रक-  
ल्प्याक्षसमानमेषाम् ॥ पलाईमानं मरिचं  
प्रदेयं पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥  
॥ ३५ ॥ सिता समस्तेन समाऽथ चूर्णं  
रोगानिमानाशु बलान्निहन्ति ॥ कासज्व-

रारोचकमेहगुल्मश्वासान्निमान्द्यग्रहणीवि-  
कारान् ॥ ३६ ॥ कुन्टी सैन्धवं व्योषं  
विडंगामयहिगुभिः ॥ लेहः साज्यमधुः  
कासश्वासहिकानिवारणः ॥ ३७ ॥  
हरीतकी कृणा शुण्ठी मरिचं गुडसंयु-  
तम् ॥ कासंश्लेष्मापहं प्रोक्तं परं वह्नेः  
प्रदीपनम् ॥ ३८ ॥ कर्षः कर्षाशपलं  
पलद्वयं स्यात्ततोऽर्द्धकर्षश्च ॥ मरिच-  
स्य पिप्पलीनाश्च दाडिमगुडयावशूकाना-  
म् ॥ ३९ ॥

कर्षाशोऽत्र कर्षद्वयम् ॥

सर्वौषधिभिरसाध्याः कासा ये वैद्यनि-  
र्मुक्ताः ॥ अपि पूयञ्छुर्दयतां तेषामिद-  
मौषधं परमम् ॥ ४० ॥

नौसीके सताप होनेसे नाकमेंसे पानी गिरता हो, स्वर  
बैठ गया हो, छीक आती हो और गध लेनेकी शक्ति  
नष्ट होगई होय तो धूम पान करे । भैनशिल, हरिताल,  
मिरच, वालछड ( जयमासी ), नागरमोथा तथा हिगोट  
इन सबका चूर्ण करके बीडी बनाकर चिलममें रखकर  
धूम पान करे और उसके ऊपर गुड मिलाकर दूध पिये  
तो एक दोपसे, दो दोपोंसे, अथवा सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न  
हुई खोंसी और सँकड़ों औषधियोंके सेवन करनेसे जो  
नौसी अच्छी नहीं हुई होय वह भी इस धूम पानसे अवश्य  
नष्ट होजातीहै ।

भैनशिलको जलमें पीसकर बेरीके पत्ता पें लेप करके  
धूमसे सुखा देवे, फिर इसको चिलममें रखकर पिये तो  
भयकर खासी दूर होजातीहै ।

कटेरीके काथभ पीपलका चूर्ण डाल करके पीनेसे सर्व  
प्रकारकी खासी दूर होजातीहै, कटेरी और पीपल इन  
दोनोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे खासी  
दूर होजातीहै ।

नौंग १ तोला, जायफल १ तोला, पीपल १ तोला,  
मिरच २ तोले नौठ १६ तोले और सबकी बराबर  
उत्तम नपेठ धूरा में, इन सबका चूर्ण अथवा गोली  
बनाकर रोजनेसे खासी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास,  
मन्दग्राहि और ग्रहणीविकार तत्काल नष्ट होतेहैं ।

भैनशिल, सैधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग,  
कठ और हींग भूनी इन सबका चूर्ण करके चाटनेसे  
खासी, स्वास और हिचकी दूर होजातीहैं ।

हरड, पीपल, सोंठ और मिरच इनका चूर्ण करके  
गुडमें मिलाकर खानेसे खासी और कफ नष्ट होजाताहै  
और अग्नि अत्यंत दीपन होतीहै ।

मिरच १ तोला, पीपल २ तोले, अनार ४ तोले, गुड  
८ तोले और जवाखार आधा तोला इन सबको एकत्र  
मिलाकर चाटनेसे भयकर खोंसी नष्ट होजातीहै, जो  
खोंसी अनेक प्रकारकी औषधियोंके करनेसे आरोग्य नहीं  
होय तथा जिसको वैद्योंने भी त्याग दिया हो वह खासी  
इससे शीघ्र नष्ट होजातीहै, तथा जिस खासीमें रुधि-  
रकी वमन होतीहोय उसके लिये यह औषधि पर-  
मोत्तम है ॥ ३०-४० ॥

अथ मरिचादिगुटिका ।

मरिचं कर्षमात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसम्मि-  
ता ॥ अर्द्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मश्च दाडि-  
मम् ॥ ४१ ॥ एतच्चूर्णीकृतं गुंज्यादष्टक-  
र्षगुडेन हि ॥ शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा  
वक्त्रे विधारयेत् ॥ अस्याः प्रभावात्सर्वे-  
ऽपिकासायान्त्येव संक्षयम् ॥ ४२ ॥

कालीमिरच १ तोला, पीपल १ तोला, जवाखार ६  
मासे और अनारके फलकी छाल २ तोले, इन सबको  
चूर्ण करके आठ तोले गुडमें मिलाकर २४ चौबीस २४  
चौबीस रस्तीकी गोलियां बनावे, एक गोलीको मुखमें रख-  
नेसे सर्व प्रकारकी खासी नष्ट होजातीहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ भृगुहरीतकी ।

समूलवलकच्छदकण्टकार्यास्तुलां ततो द्रो-  
णमितं जलञ्च ॥ हरीतकीनां शतमेकपा-  
त्रे विपाच्य कुर्याच्चरणाम्बुशेषम् ॥ ४३ ॥  
तस्मिन्कषाये तनुवस्त्रपूते हरीतकीभिः  
सहितं गुडस्य ॥ तुलां विनिक्षिप्य पचे-  
त्सुपक्रमेत्समुत्तार्य सुशीतलञ्च ॥ ४४ ॥  
पलं पलञ्चापि कटुत्रयश्च तथा चतुर्जात-  
पलं विचूर्ण्य ॥ पलानि षट्पुष्परसस्य

चापि विनिःक्षिपेत्तत्र विमिश्रयेच्च ॥४५॥  
 प्रयुज्यमानो विधिनैषलेहो यथाबलश्चापि  
 यथानलश्च ॥ वातात्मकं पित्तकृतं कफोत्थं  
 त्रिदोषजातान्यपि च त्रिदोषम् ॥४६॥  
 क्षतोद्भवश्च क्षयजश्च कासं श्वासश्च हन्या-  
 त्सह पीनसेन ॥ यक्ष्माणमेकादशरूपमुग्रं  
 हरीतकी या भृगुणोपदिष्टा ॥ ४७ ॥

पुष्परसो मधु ॥

जड़, छाल और पत्ते समेत कटेरीका सर्वोत्तम ४००  
 चारसौ तोले और हरड १०० सौ तोले लेवै, दोनोको  
 एक पात्रमें डालकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले  
 जलमें पकावै, पकते पकते जब चौथाई भाग काथ  
 बाकी रहजाय तब उसको उतारकर बारीक बल्लसे छानकर  
 रखदेवै, फिर उस छनेहुए काथमें पूर्वोक्त पकाई हुई १००  
 सौ हरड और गुड ४०० चारसौ तोले डालकर पकावै,  
 जब अच्छे प्रकारसे पककर अवलेहकी समान तैयार हो-  
 जाय तब उसको उतारकर शीतल कर लेवै, पश्चात् उसमें  
 सोठ ४ तोले, काली मिरच ४ तोले, पीपल ४ तोले,  
 इलायची ४ तोले, दालचीना ४ तोले, तेजपात ४ तोले,  
 नागकेसर ४ तोले और सहत २४ तोले इन सबको  
 मिला देवै । इस अवलेहको विधिपूर्वक शरीरके बलके  
 अनुसार और अग्निके बलानुसार सेवन करे तो वातज,  
 पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, क्षतज, क्षयज-श्वास,  
 पीनस और एकादश लक्षणोंवाला महाभयंकर राजयक्ष्मा  
 रोग नष्ट हो, यह भृगुऋषिकी कही हुई 'भृगुहरीतकी'  
 नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४३-४७ ॥

अथ कण्टकार्यवलेहः ।

कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्ता कषाय-  
 कम् ॥ पादशेषं गृहीत्वा च तत्र चूर्णानि  
 दापयेत् ॥ ४८ ॥ पृथक्पलांशान्येतानि  
 गुडूची चव्यचित्रकौ ॥ मुस्तं कर्कटशृङ्गी  
 च व्यूषणं धन्वयासकः ॥ ४९ ॥ भार्ङ्गी  
 रास्ता शटी चैव शर्करापलविंशतिः ॥  
 प्रत्येकश्च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् वृततैलयोः ॥  
 ॥ ५० ॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधु  
 पलाष्टकम् ॥ चतुर्भागं तुगाक्षीर्याः पिप्प-

ल्याश्च चतुःपलम् ॥ ५१ ॥ क्षिप्त्वा  
 निदध्यात्सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे ॥  
 लेहोऽयं हन्ति हिकार्तिकासश्वासानशे-  
 षतः ॥ ५२ ॥

इति कासाधिकारः ।

कटेरीका पचाङ्ग ४०० चारसौ तोले लेकर १०२४  
 एक हजार चौबीस तोले भर जलमें पकावै जब पकते  
 पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उता-  
 रकर छान लेवै, फिर इस काथमें गिलोयका चूर्ण ४  
 तोले, चव्य ४ तोले, चीता ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले,  
 काकडाशिगी ४ तोले, सेंठ ४ तोले, मिरच ४ तोले,  
 पीपल ४ तोले, धमासा ४ तोले, भारगी ४ तोले, रासना  
 ४ तोले, कचूर ४ तोले, खाड ८० तोले, घी ३२ तोले  
 और ३२ तोले तेल, इन सबको डालकर उत्तम विधिसे  
 पकावै, जब पकते २ अवलेहकी समान होजाय तब शीतल  
 करके उसमें ३२ तोले सहत, वगलोचन ८ तोले और  
 पीपल १६ तोले मिलादेवे । इस अवलेहको उत्तम  
 चिकने मट्टीके वासनमें भरके रखदेवे । इसको सेवन  
 करनेसे हिचकी, खोसी और श्वास रोग नष्ट होजाता  
 है ॥ ४८-५२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैद्यकृत-  
 वैद्यसंजीवनीभाषाटीकाया कास-  
 रोगाधिकारः सपूर्णः ।

अथ हिकारोगाधिकारः ।

तत्र हिकारोगविप्रकृष्टनिदानम् ।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः ॥  
 शीतपानाशनस्नानरजोभूमात्तथानिलैः ॥ १ ॥  
 व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ॥  
 हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥

विदाह करनेवाले, भारी, मलरोधक, रुखे और अभि-  
 ष्यन्दी ऐसे पदार्थ खानेसे, शीतल जल पीनेसे, शीतल अन्न  
 खानेसे, शीतल जलमें नहानेसे, धूल और धुंयेको मुख  
 नासिकामें जानेसे, अत्यत पवन लगनेसे, अत्यत परिश्रमके

काम करनेसे, भारी वीथको उठानेसे, अधिकतर मार्ग चलनेसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और उपवास आदिसे तृप्तिको नष्ट करनेसे मनुष्योंको हिचकी, वास और खाँसी उत्पन्न होतीहै ॥ १ ॥ २ ॥

अथ हिक्कासंख्यारूपसम्प्राप्तिः ।

वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि॥ अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ॥ ३ ॥

वायु कफसे मिलकर अन्नजा १, यमला २, क्षुद्रा ३, गम्भीरा ४ और महती ५ इन पांच प्रकारकी हिचकियोंको उत्पन्न करताहै ॥ ३ ॥

अथ हिक्कासामान्यलक्षणम् ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्रिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन् ॥ सदोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ४ ॥

वायुरत्र सोदानप्राणो बोद्धव्यः । उदेति ऊर्ध्वं याति । सस्वनः हिगिति शब्दवान् । ऊर्ध्वगमनं विशिनाष्टि यकृदित्यादि । प्रिह इति शब्दोऽपि अस्ति दीर्घत्वविकल्पात् । मुखादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी तेन यकृत्प्रिहान्त्राणि मुखमानीय आक्षिपन् निःसारयन् इव इत्यर्थः । वायुः दोषवान् दोषोऽत्र कफः तद्वान् वायुः कफेन अनुगत इति सम्प्राप्तिः । हिनस्तीति हिक्का पृषोदरादित्वात् रूपसिद्धिः । हिगिति शब्दं करोति ॥

गरम्भार हिक् हिक् ऐसा शब्द करती हुई और यकृत् ( कलेजा ), ग्रीहा ( निह्नी ) तथा आंतोंको खींचकर मुखमें लाती हुई ऐसी जो उदान वायु प्राण वायुके साथ मिला कर ऊंची गतिसे चलतीहै । और कफके अनुसरण होकर प्राणियोंके जीवनका तत्काल नाश करतीहै । इसमें हिक् हिक्, ऐसा जो शब्द होताहै इसलिये पंडित लोग इसको हिक्का कहतेहैं ॥ ४ ॥

अथ हिक्कापूर्वरूपम् ।

कण्ठोरमेगुरुत्वञ्च वदनस्य कषायता ॥

हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ५ ॥ वदनस्य कषायता वातात् ॥

कठमे और छातीमें भारीपन, वातको अधिकताके कारण मुखमें कसैलापन और पेटका फूलना ये हिचकीके पूर्व लक्षण हैं । अर्थात् जब हिक्का रोग उत्पन्न होनेको होताहै तब उससे कुछ काल पहिले यह लक्षण होने हैं ॥ ५ ॥

अथान्नजाहिकालक्षणम् ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ॥ हिक्कयेदूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ६ ॥

अनिलः प्राणो वायुः ॥

अत्यंत अन्न पानीके सेवन करनेसे एक साथ प्राण वायु उठकर ऊर्ध्वगति होकर ( हिक् हिक् ) ऐसा शब्द करतीहै उसको वैद्य अन्नजा हिक्का कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ यमलाहिकालक्षणम् ।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का सम्प्रवर्तते ॥ कम्पयन्ती शिरोग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

बहुत देरमें वेगसे, एक साथ दो दो हिचकी आँध, तथा शिर और गरदनको कंपाँध उमको वैद्य यमला हिक्का कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ क्षुद्राहिकालक्षणम् ।

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ॥ क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जडुमलात्प्रधावति ॥ ८ ॥

विकृष्टकालैः चिरेण । जडुः कक्षोरसोः सन्धिः ॥

जो हिचकी बहुत देरमें बारबार कट हृदयकी संधिसे चलती है उसको क्षुद्रा हिचकी कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ गम्भीराहिकालक्षणम् ।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी ॥ अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥

अनेकोपद्रववती तृष्णाज्वरादियुक्ता ॥

जो हिचकी नाभिमे उत्पन्न होकर भयकर रूप धारण करके गम्भीर शब्द करतीहै, तथा जिसमे तृषा और ज्वरादि उपद्रव होतेहैं उसको गभीरा हिचकी कहतेहैं ॥ ९ ॥

अथ महतीहिक्कालक्षणम् ।

मर्माणि पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते ॥  
महाहिक्कति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी ॥ १० ॥

मर्माणि वस्तिहृदयशिरःप्रभृतीनि ॥

जो हिचकी सम्पूर्ण गात्रोको कम्पायमान करतीहै, तथा वस्ति, हृदय और मस्तक आदि मर्मस्थानोंको पीडित करती हुई निरंतर प्रवर्तन होती है उसको महती अथवा 'महाहिक्का' कहतेहैं ॥ १० ॥

अथ हिक्काऽसाध्यता ।

आकम्पते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्द्ध  
ताम्यते नित्यमेव ॥ क्षीणोऽन्नद्विद् क्षौति  
यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्वि-  
क्कमानौ ॥ ११ ॥

आकम्पते विस्फार्यत इव । तौ द्वाविति ।  
आकम्पत इत्यादिना नित्यमेव इत्यनेनैको  
हिक्कमानः । क्षीण इत्यादिना अतिमात्र-  
मित्यन्तेन अपरः । तौ द्वौ अन्त्यौ च  
गम्भीरया महत्या हिक्कया हिक्कमानौ वर्ज-  
येत् । अपरश्च ।

हिचकीके आते समय जिस मनुष्यका शरीर पसरजाय और दृष्टि ऊपरको ग्लानि युक्त होकर फैल जावै, उसको वैद्य त्यागदेवे तथा जिस मनुष्यका शरीर क्षीण होगया हो, अन्नमें अरुचि हो और छीकें अधिक आवैं उसको भी वैद्य त्यागदेवे । तैसेही जिसको गम्भीरा हिचकी अथवा महती हिचकी होय उसकी चिकित्सा वैद्यको नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अथ यमलाहिक्काऽसाध्यता ।

अतिसञ्चितदोषस्य भक्तद्वेषकृशस्य च ॥  
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवा-  
यिनः ॥ १२ ॥ आयासाच्च समुत्पन्ना  
हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ॥ यमिका च  
प्रलापार्तिमोहवृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यके अत्यंत दोषोका संचय हो, जिसके अन्नपर अरुचि होनेके कारण दुर्बलता उत्पन्न हुई हो, जिसका शरीर व्याधियोंसे क्षीण होगया हो, जिसका शरीर वृद्ध हो और जो अत्यंत स्त्रीप्रसंग करताहो, उसके उत्पन्न हुई हिचकी तत्काल जीवनको नष्ट करदेतीहै । तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुई हिचकी भी तत्काल मारदेतीहै, यमला नामवाली हिचकी जो प्रलापसे, पीडासे, मोहसे और तृषासे संयुक्त होय तो वह तत्काल रोगीके प्राणोको नष्ट करतीहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अक्षीणस्याप्यदीनस्य स्थिरधात्विन्द्रि-  
यस्य च ॥ तस्य साधयितुं शक्या यमि-  
का हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

बलवान्, प्रसन्नचेष्टा और जिसकी धातु इन्द्रिये स्थिर है ऐसे मनुष्यको उत्पन्न हुई यमला हिक्का साध्य है । और जो क्षीण है, दीन होगया है और जिसकी धातु और इन्द्रिये स्थिर हैं ऐसे मनुष्यको उत्पन्न हुई यमला हिचकी मारदेतीहै ॥ १४ ॥

अथ हिक्काचिकित्सा ।

यत्किञ्चित्कफवातघ्रमुष्णं वातानुलोमन-  
म् ॥ भेषजं पानमन्नं वा हिक्काश्वासेषु  
तद्वितम् ॥ १५ ॥

जो औषधि अथवा अन्नपान कफको और वायुको हरने वाली हैं, उष्ण हैं और वायुको अनुलोमन करनेवाली हैं वे सब औषधि और अन्नपान हिक्कारोगमें और श्वासमें हितकारी हैं ॥ १५ ॥

हिक्काश्वासादुरे पूर्वतैलाक्ते स्वेद इष्यते ॥  
ऊर्द्धाधःशोधनं शस्तं दुर्बले शमनं  
मतम् ॥ १६ ॥

हिक्का और श्वाससे पीडित मनुष्यको प्रथम तेलकी मालिस करके पश्चात् स्वेदन क्रिया करे और वमन तथा विरेचन देवे, यह हितकारी है । जो हिक्का अथवा श्वासवाला रोगी दुर्बल होय तो उसको शमन औषधि देवे ॥ १६ ॥

प्राणावरोधतर्जनविस्मापनशीतवारिपरि-  
षेकैः ॥ चित्रैः कथाप्रयोगैः शमयेद्विक्कां  
मनोऽभिघातैश्च ॥ १७ ॥



वासको रोकना, तिरस्कार करना, आश्चर्यजनक बातोंको कहना, शरीरपर शीतल जलको छिड़कना, चित्रविचित्र कथा वार्ता कहना और मनको खेदित करनेवाले प्रयोगोंको करना, इन सबमें हिक्काको शात करना चाहिये ॥ १७ ॥

हिक्कार्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधि-  
तम् ॥ मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुंगरसं  
पिवेत् ॥ १८ ॥ मधुकं मधुसंयुक्तं  
पिप्पली शर्करान्विता ॥ नागरं गुडसं-  
युक्तं हिक्काघ्नं नावनं त्रयम् ॥ १९ ॥

सोंट डालकर औटाया हुआ बकरीका दूध हिचकी वाले मनुष्यको हितकारी है । सहत और काला नमक इनको विजौरेके रसमें मिलाकर पीनेसे हिचकी नष्ट हो जाती है । मुलैठी और सहत ( १ ) पीपल और मिथ्री ( २ ) सोंट और गुड ( ३ ) इन तीनों नस्योंमेंसे किसी एक नासको देनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १८ ॥ १९ ॥

प्रवालशङ्खत्रिफलाचूर्णं मधुघृतप्लुतम् ॥  
पिप्पली गेरिकञ्चेति लेहो हिक्कानिवा-  
रणः ॥ २० ॥ नैपाल्या गोविषाणाद्वा  
कुष्ठात्सर्जरसस्य वा ॥ धूपं कुशस्य वा  
कार्यं पिवेद्विक्कोपशान्तये ॥ २१ ॥

मृगा, शख, हरट, बहेडा, आमला, पीपल और गेरू इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे हिचकी दूर होती है ॥ २० ॥ हिक्काको शात करनेके लिये भैरविल नायके सींगका, अथवा कूटका वा रालका, अथवा कुशाका धुआँ पीना चाहिये ॥ २१ ॥

निर्धूमांगारनिक्षिप्तहिगुमापरजोभवः ॥  
हिक्काः पश्चापि हन्त्याशु धूमः पीतो न  
संशयः ॥ २२ ॥

नीम और उरदोंका चूर्ण करके निर्धूम अगारोंपर डालकर उनका धुआँ पीये, तो उससे निश्चय पांचों प्रकारकी हिचकी शीघ्र शमन होजाती है ॥ २२ ॥

हरेणुककणानाञ्च काथो हिगुसमन्वितः ॥  
हिक्काप्रशमनः श्रेष्ठो धन्वन्तरिवचो  
यथा ॥ २३ ॥

रेणुका और पीपल इनका काथ बनाकर हींग डालकर पीनेसे निस्सदेह हिचकी शात होजाती है, यह धन्वन्तरिका वाक्य है ॥ २३ ॥

चन्द्रसूरस्य बीजानि क्षिपेदष्टगुणे जले ॥  
यदा मृदूनि मृदूनीयात्ततो वाससि गाल-  
येत् ॥ २४ ॥ हिक्कातिवेगविकलस्तज्जलं  
पलमात्रया ॥ पिवेत्पिवेत्पुनश्चापि हिक्का-  
वश्यं प्रशाम्यति ॥ २५ ॥

इति चन्द्रसूरसः । इति हिक्काविकारः ।

हालौके बीजोंको लेकर अठगुने जलमें पकावे जब वह पकते पकते गाढ़े और नरम होजायें तब उनको खूब अच्छे प्रकारसे बलमें छान लेवे, इस जलमेंसे हिक्कारोगी बारबार चार चार तोले पीये, इस जलको पीनेसे अत्यन्त वेगसे उत्पन्न हुई हिचकी अवश्य शात होजाती है । इसको 'चन्द्रसूरस' कहते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति हिक्काविकारः सपूर्णः ।

## अथ श्वासरोगाधिकारः ।

तत्र श्वासनिदानम् ।

यैरेव कारणैर्हिक्का देहिनां सम्प्रवर्तते ॥  
तैरेव बहुभिः श्वासो व्याधिर्घोरः प्रजा-  
यते ॥ १ ॥

मनुष्योंको जिन कारणोंसे हिक्कारोग उत्पन्न होता है उन्हीं बहुतसे कारणोंसे भयकर श्वास रोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अथ श्वासभेदः ।

महोर्द्धच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ॥  
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको  
विशेषतः ॥ २ ॥

विशेष करके यह श्वासनामक एक महाव्याधि महाश्वास ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तम्कश्वास और क्षुद्रश्वास ये पांच भेदोंमें पांच प्रकारका श्वासरोग गिना जाता है ॥ २ ॥

अथ श्वासपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव  
च ॥ आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद  
एव च ॥ ३ ॥

हृदयमें पीडाका होना, शूल, अफारा, पेटका फूलना, मुखमें विरसता और कनपट्टियोंमें तोड़ने सरीखी पीडाका होना ये सब श्वासके पूर्वलक्षण हैं ॥ ३ ॥

अथ श्वाससम्प्राप्तिः ।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः॥  
विष्वग्ब्रजति संरुद्धस्तदा श्वासं करोति  
सः ॥ ४ ॥

विष्वक् ब्रजति सर्वतो विमार्गान् याति  
संरुद्धः कफेन रुद्धमार्गः ॥

जब वायु कफयुक्त होकर उस कफसे प्राण, अन्न और जलके बहानेवाले मार्गोंको रोकलेतीहै और अपने आप उस कफसे विचरण करनेसे चारों ओरको रुककर पश्चात् श्वासको उत्पन्न करतीहै ॥ ४ ॥

अथ महाश्वासलक्षणम् ।

ऊर्ध्वायमानवातो यः शब्दवदुःखितो  
नरः ॥ उच्चैः श्वसिति सन्नद्धो मत्तर्षभ  
इवानिशम् ॥ ५ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा  
विभ्रान्तलोचनः ॥ विवृताक्ष्याननो बद्ध-  
मूत्रवचा विशीर्णवाक् ॥ ६ ॥ दीनस्य  
श्वसितश्चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् ॥  
महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ७ ॥

ऊर्ध्वायमानवातः ऊर्ध्वं नीयमानो वातो  
यस्य सः । शब्दवत् सशब्दं यथा स्यात् ।  
कीटक् सशब्दः तद्वोधयितुमाह । मत्तर्षभ  
इव उच्चैः श्वसिति इति अन्वयः । सन्नद्धः  
आनद्धः आनाहयुक्त इति यावत् । ज्ञानं  
शास्त्रम् । विज्ञानं तदर्थविनिश्चयः । विशी-  
र्णवाक् स्खलितवचनः । दीनः म्लानः ।  
मारकश्चायं महाश्वासः ॥

जिस मनुष्यको महाश्वास होताहै उसके प्राण वायु शब्द करतीहुई ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होतीहै तब वह मनुष्य उससे महादुःखित होताहै, जिस प्रकार भागनेसे रोकाहुआ मस्त बैल ( साड ) श्वास लेताहै उसीप्रकार यह मनुष्य निरंतर श्वास लेताहै, उसका ज्ञान विज्ञान सब भ्रष्ट होजाताहै, नेत्र भ्रमयुक्त होजातेहैं, आँखें और मुख फैलजाताहै, मूत्र और मल रुकजाताहै, जीभ तुतल-

जातीहै, दीन होजाताहै और इसके श्वासका शब्द दूरसेही सुनाई देताहै, इस महाश्वाससे पीडित रोगी तत्काल मरजाताहै, यह श्वास मनुष्योंके मारनेके लियेही उत्पन्न होताहै ॥ ५-७ ॥

अथोर्ध्वश्वासलक्षणम् ।

ऊर्द्ध्वश्वसिति योऽत्यर्थं न च प्रत्याहरत्यधः॥  
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः॥  
॥ ८ ॥ ऊर्द्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष  
इतस्ततः॥ प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽर-  
तिपीडितः ॥ ९ ॥ ऊर्द्ध्वश्वासे प्रकुपिते  
ह्यधःश्वासो निरुद्धयते ॥ मुह्यतस्ताम्यत-  
श्चोर्द्ध्वश्वासस्तस्य निहन्त्यसून् ॥ १० ॥

सर्वेषु श्वासेषु ऊर्द्ध्वश्वासोऽत्र अत्यर्थ-  
मिति विशेषः । न च प्रत्याहरत्यधः न श्वास-  
मधः करोति । श्लेष्मावृतेत्यादिश्लेष्मणा वृतं  
यन्मुखं स्रोतांसि च तैः क्रुद्धो यो गन्धवह-  
स्तेन अर्दितः । विपश्यन् इतस्ततो विकृतं  
यथा स्यादेवं पश्यन् । अधःश्वासो निरु-  
द्धयते श्वासो नाधः प्रवर्तत इत्यर्थः । मुह्यतो  
मोहं प्राप्नुवतस्ताम्यतो ग्लानिं प्राप्नुवतश्च  
ऊर्द्ध्वश्वासः असून् प्राणान्हन्ति ॥

जिस मनुष्यके ऊर्ध्वश्वास उत्पन्न होताहै उस मनुष्यका बहुत ऊँचा श्वास चलताहै, उसका कभी नीचेको श्वास नहीं जाता, मुख और सम्पूर्ण शरीरके स्रोत ( छिद्र ) कफसे घिर जानेके कारण वायु कुपित होकर तीव्र पीडाको करतीहै, उसकी दृष्टि सदैव ऊपरको रहतीहै, आँखोंको चारों ओरको चकराकर विकृति रूपसे देखताहै, मूर्च्छित होताहै, वेदनासे पीडित होताहै, मुख सूखजाताहै और अत्यन्त बेकली होतीहै ऊर्ध्वश्वासके कुपित होनेपर नीचेका श्वास प्रवर्त नहीं होताहै और वह ऊर्ध्वश्वास मोहको प्राप्त हुए और ग्लानिको प्राप्तहुए उस मनुष्यके जीवनको नष्ट करताहै, सर्व प्रकारके श्वासोंमें यह ऊर्ध्व-  
श्वास बहुत ऊँचेसे चलताहै, यह विशेष है ॥ ८-१० ॥

अथ छिन्नश्वासलक्षणम् ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ॥ न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुजार्दितः ॥ ११ ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन वस्तिना ॥ विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्नक्तैकलोचनः ॥ १२ ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ॥ छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १३ ॥

विच्छिन्नं सविच्छेदम्, सर्वप्राणेन सर्ववलेन । मर्मच्छेदरुजार्दितः हृदयशिरश्छेदवेदनयैव पीडितः । दह्यमानेन वस्तिना उपलक्षितः । विप्लुताक्षः अश्रुपूर्णनेत्रः । विचेताः उद्विग्नचित्तः । छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः । यस्तु श्वसिति विच्छिन्नमित्यादिलक्षणयुक्तो यः स नरः छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः पीडितो बोद्धव्यः । मारकश्चायं छिन्नश्वासः ॥

जिसके छिन्नश्वास उत्पन्न होताहै, वह दुःखित होकर रह रहकर अपने सम्पूर्ण बलसे श्वासको त्यागताहै, मर्मस्थानोंमें छेदने सरीखी पीडा होतीहै, तथा हृदय और मत्तकके छेदन सरीखी पीडा होतीहै, समयपर श्वास लेनेको असमर्थ होताहै, पेटके अफरनेसे, पछीनेसे, मूर्च्छासे और मूत्राशयकी दाहसे दुःखी होताहै, नेत्र जलसे डूबे डूबेसे रहतेहैं, शरीर अत्यन्त क्षीण होजाताहै, निरन्तर हाँफता रहताहै, चित्तमें उद्वेग होताहै, वृथा बकवाद करताहै, मुँस सूज जाताहै, शरीरका रंग बदल जाताहै अथवा बिगडजाताहै और एक आँख लाल हो जातीहै इन लक्षणोंवाला छिन्नश्वाससे पीडित मनुष्य तत्काल प्राणोंको त्यागदेताहै यह छिन्नश्वास मारनेके लिये ही उत्पन्न होताहै ॥ ११-१३ ॥

अथ तमकश्वासलक्षणम् ।

प्रतिलोभो यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्य-

ते ॥ ग्रीवांशिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १४ ॥ करोति पीनसं तेन कण्ठे घुर्घुरकं तथा ॥ अतीव तीव्रवेगश्च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १५ ॥ प्रताम्यति स वेगेन अस्यते सन्निरुध्यते ॥ प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्महुः ॥ १६ ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः ॥ तस्य च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ १७ ॥ तथास्योद्धंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्रोति भाषितुम् ॥ न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ १८ ॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ॥ आसीनो लभते सौख्यमुष्णश्चैवाभिनन्दति ॥ १९ ॥ उच्छिद्रताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् ॥ विशुष्कास्यो मुहुःश्वासी मुहुश्चैवावधम्यते ॥ २० ॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ॥ स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २१ ॥

संगृह्य व्यथया । समुदीर्य वर्द्धयित्वा । पीनसं नासास्त्रावम् । तेन श्लेष्मणा घुर्घुरं घुर्घुरशब्दम् । प्राणप्रपीडकं प्राणाधिष्ठानहृदयप्रपीडकम् । प्रताम्यति तमसि प्रविशतीव । वेगेन श्वासवेगेन सन्निरुध्यते निश्चेष्टो भवति इति चरकः । सन्निरुध्यते श्वास इति जयटः श्लेष्मणा मुच्यमानेन सुखं सुखमिव । उद्धंसते व्यथितो भवति । शयानः शयननिहितांगः । अवगृह्णाति पीडयति । उष्णश्चैवाभिनन्दति इत्यनेन तमको वातकफारब्ध इति बोद्धव्यः । उच्छिद्रताक्षोऽशूनाक्षः । ललाटेन स्विद्यता उपलक्षितः । अवधम्यते गजारूढस्यैव सर्वं गात्रं चाल्यते । तमकस्यैव पित्तानुबन्धजनितज्वरादियोगेन ॥

जब वायु अपने मार्गको छोड़कर कुमार्गी होकर नाडि-योमे प्राप्त होतीहै तब गरदनको और शिरको जड़कर कफको बढ़ाकर उस कफसे नाकमें पीनस, कंठमें घुरघुर गन्धको और हृदयको पीडित करनेवाले तीव्र श्वासको उत्पन्न करताहै, यह श्वास जिस मनुष्यको होताहै वह मनुष्य अपनेको घोर अन्धकारमें पड़ाहुआ देखताहै, त्रासको गत होताहै, श्वासके वेगसे चेधरहित होजाताहै खोंसीके बारबार आनेसे मूर्च्छित होजाताहै, कफके निकलते समय अत्यन्त दुःख होताहै, जब कफ निकल जाताहै तो थोड़ी दूरके लिये धैन पड़जाताहै कंठमें पीडा होतीहै बोलते समय कष्ट होताहै, सोते समय लेटने पर वायुके कारण सलियोमें अत्यन्त पीडा होतीहै, उठ बैठनेपर कुछ आ-राम मालूम होताहै, निरंतर उष्ण पदार्थोंकी इच्छा कर-ताहै, नेत्र ऊंचे सूजेसे रहतेहैं, मस्तकमें पसीना आताहै, अत्यन्त पीडा होतीहै, मुख बारबार सूखा करता है, बारबार श्वास ले लेकर हाथी पै बैठे हुए मनुष्यकी समान हिलताहै, यह श्वास भेद्योके उदय होनेमें, वर्षासे, शीतसे, पूर्वकी तबनसे और कफको करनेवाले पदार्थोंको सेवन करनेसे इन्द्रिको प्राप्त होताहै । यह तमक श्वास याप्य है, जो नवीन हो तो कदाचित् साध्य भी होताहै ।

‘श्वासके वेगसे चेधरहित होजाताहै’ ऐसा जो लक्ष-णोंमें कहा है सो चरकके मतानुसार कहा है किंतु जैयट ने ऐसा कहताहै कि ‘उस मनुष्यका श्वास रुकजाताहै’ तमक श्वासवाले मनुष्यके उष्ण वस्तुओंकी अभिलाषा उत्पन्न होतीहै’ ऐसा जो लक्षणोंमें कहा है सो ऊपरसे जानना कारण तमक श्वास वात और कफसे उत्पन्न होता है ॥ १४-२१ ॥

### अथ प्रतमकश्वासलक्षणम् ।

ज्वरमूर्च्छापरीतश्च विद्यात्प्रतमकं भिषक् २२

जो तमक श्वास ज्वर और मूर्च्छासे अत्यन्त युक्त होय तो उसको प्रतमक श्वास कहतेहैं ॥ २२ ॥

### अथ मतान्तरम् ।

उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥

तमसा वर्द्धतेत्यर्थं शीतलैश्च प्रशाम्यति ॥

मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकन्तुतम् २३

उदावर्तो रोगविशेषः । रजो धूलिः । अन्न

अजीर्णमामादि क्लिन्नं विदग्धम् । कायनि-  
रोधः अंगयोगानां निरोधः तस्मादुत्पन्नः ।  
अथ वा क्लिन्नकायः वृद्धनरः निरोधः वेगाना-  
न्तु सप्तदशविधः ॥

उदावर्त, रज, आम आदि अजीर्ण और योगका निरोध करनेसे, वृद्ध अवस्थाके होनेसे और मूत्रादि सत-रह वेगोंके रोकनेसे उत्पन्न हुआ, तथा अंधकारसे बढ़ने-वाला और शीतल पदार्थोंसे शांत होनेवाला ऐसा जो श्वास होताहै, उसको प्रतमक कहतेहैं इसमें रोगीको ऐसा प्रतीत होताहै कि, मैं घोर अंधकारमें पड़ाहूँ ॥ २३ ॥

### अथ क्षुद्रश्वासलक्षणम् ।

रूक्षायामसोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रवातमुदीरयन् ॥  
क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखो नांगप्रबाध-  
कः ॥ २४ ॥ हिनस्ति न च गात्राणि न  
च दुःखं यथेतरे ॥ न च भोजनपानानां  
निरुणद्धयुचितां गतिम् ॥ २५ ॥ नेन्द्रि-  
याणां व्यथाश्चापि काश्चिदुत्पादयेद्रुजम् ॥  
स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्त-  
लक्षणाः ॥ २६ ॥

क्षुद्रः अल्पनिदानलिंगः । उदीरयन्तूर्द्ध  
गच्छन् । दुःखः दुःखप्रदः । इतरे चत्वारः  
श्वासाः तथा नायम् । सर्वे महाश्वासादयोऽपि  
अव्यक्तलक्षणाः सन्तः साध्याः ॥

रूक्षतासे और अत्यन्त परिश्रम करनेसे उत्पन्न हुआ जो श्वास उसको क्षुद्र श्वास कहतेहैं, वह वायुको बढ़ाताहै, किंतु अत्यन्त दुःख नहीं देताहै तथा अन्यान्य दूसरे श्वा-सोंकी समान शरीरको पीडित करनेवाला और दुःखदायक भी नहीं है, अन्न पानोकी योग्य गतिको नहीं रोकताहै, इन्द्रियोंको व्यथित भी नहीं करताहै और वेदनाको भी नहीं करताहै, यह क्षुद्र श्वास साध्य है और दूसरे महा-श्वासादि जो चार प्रकारके श्वास हैं उनके यदि लक्षण प्रकट नहीं हुए होय तो वह भी साध्य हैं ॥ २४-२६ ॥

अथ श्वाससाध्यासाध्यता ।

क्षुद्रःसाध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्य-  
ते ॥ त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको  
दुर्बलस्य च ॥ २७ ॥ कामं प्राणहरा  
रोगा बहवो न तु ते यथा ॥ यथा श्वासश्च  
हिका च हरतः प्राणमाशु वै ॥ २८ ॥

बहवो ज्वरादयः ॥

तथा यथा श्वासहिके हरतो जीवमाशु ते २९ ॥

इन पाचों श्वासोंमें क्षुद्र श्वास सुखसाध्य है, तमक श्वास  
कष्ट साध्य है और वाकीके तीनों श्वास असाध्य हैं । तमक  
श्वास भी जो दुर्बल मनुष्यको उत्पन्न हुआ होय तो असा-  
ध्य है । ज्वरादिरोग प्रायः प्राणोंको हरनेवाले हैं, परन्तु  
श्वास और हिचकीकी समान तत्काल प्राणोंको हरनेवाला  
कोई भी रोग नहीं है ॥ २७-२९ ॥

अथ श्वासचिकित्सा ।

श्वासहिकातुरं प्रायः स्निग्धैः स्वेदैरुपाच-  
रेत् ॥ युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः  
कफः ॥ ३० ॥ श्वासो विलयमायाति  
मारुतश्चोपशाम्यति ॥ स्विन्नं ज्ञात्वा  
ततश्चैनं भोजयेच्च रसौदनम् ॥ ३१ ॥  
स्वरसं शृंगवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् ॥  
पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफाप-  
हम् ॥ ३२ ॥

शृंगवेरमार्द्रकम् ॥

श्वास और हिकासे पीडित मनुष्यको विशेष करके  
निमक और तेल संयुक्त स्निग्ध स्वेदन क्रियाओंसे उपचार  
करे, इस उपचार करनेसे कफ टूट जाता है और श्वास  
नष्ट होजाता है और वात भी शांत होजाती है, स्वेदन  
क्रियासे जल पसीना निकल चुके तब उस रोगीको मासके  
रसके साथ भात दें, तथा सहतके साथ अदरकका रस  
मिलावे तो श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, जुलाम और कफ दूर  
होता है ॥ ३०-३२ ॥

प्रस्थं विभीतकानामस्थि विना साधयेद-  
जामूत्रे ॥ अयमवलेहो लीढो मधुसहितः  
श्वासकासघ्नः ॥ ३३ ॥

बहेडे ६४ चौंसठ तोले लेकर उनकी गुठली निकाल  
डाले, फिर उनको बकरेके मूत्रमें पकावे उसमें सहत मि-  
लाकर चाटनेसे श्वास और खाँसी दूर होजाती है ॥ ३३ ॥

देवदारुबलामांसीः पिष्ट्वा वर्ति प्रकल्पयेत् ॥  
तां घृताक्तां पिबेद्धूमं श्वासं हन्ति सुदा-  
रुणम् ॥ ३४ ॥

देवदारु, खिरौटी और बालछड ( जटामांसी ) इनको  
एकत्र पीसकर बत्ती बनावे, उस बत्तीको घीमें सानकर  
उसका धुआँ पान करनेसे महादारुण श्वास भी दूर हो-  
जाता है ॥ ३४ ॥

दशमूलीशटीरास्त्रापिप्पलीविश्वपौष्करैः ॥  
शृंगीतामलकीभार्ङ्गीगुडूचीनागराम्भिभिः ॥  
॥ ३५ ॥ यवागूं विधिना सिद्धां कषायं  
वा पिबेन्नरः ॥ श्वासहृद्ग्रहपाश्वर्तिहिका-  
कासप्रशान्तये ॥ ३६ ॥

दशमूल, कचूर, रासना, पीपल, अतीस, अंडकी जड़,  
काकडाशिंगी, भुई आमला, भारंगी, गिलोय, सोठ और  
चीता, इनकी विधिपूर्वक बनाई हुई यवागू अथवा काथको  
पीनेसे श्वास, हृदयकी जड़ता, पसलीकी पीडा, हिचकी  
और खाँसी दूर होजाती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

दशमूलस्य वा काथः पौष्करेणावचूर्णितः ॥  
श्वासकासप्रशमनः पार्श्वशूलनिवारणः ३७ ॥

दशमूलका काथ बनाकर उसमें अंडकी जड़का  
( अथवा पोहकर मूलका चूर्ण ) डालकर पान करनेसे श्वास  
खाँसी और पसलीकी पीडा दूर होती है ॥ ३७ ॥

रम्भाकुन्दशिरीषाणां कुसुमं पिप्पलीयु-  
तम् ॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पीत्वा श्वास-  
मपोहति ॥ ३८ ॥



केला, कुन्द और सिरस इन सबके फूलोंको पीपलके साथ पीसकर चावलोके जलके साथ पीनेसे श्वास दूर होजाताहै ॥ ३८ ॥

शृंगीमहौषधकणाघनपौष्कराणां चूर्णं शटी-  
मरिचयोश्च सिताविभिश्चम् ॥ काथेन  
पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः श्वासं व्यहेण  
विनिहन्ति हि घोररूपम् ॥ ३९ ॥ पञ्च-  
मूली तु सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी ॥  
महती मारुते देया सैव देया कफाधिके ॥  
॥ ४० ॥ कूष्माण्डकशिफाचूर्णं पीतं को-  
ष्णेन वारिणा ॥ शीघ्रं शमयति श्वासं  
कासश्चापि सुदारुणम् ॥ ४१ ॥

काकडाशिगी, सोठ, पीपल, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर और कालीभिर्च इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे, फिर उस चूर्णको खांडमें मिलाकर गिलोय, अड्डसा तथा पंचमूलके काथमें मिलाकर पिये तो भयकर श्वास भी तीन दिनमें नष्ट होजाताहै. जहा 'पंचमूली' शब्द साधारण है तहा पित्तपर लघु पंचमूली और वातपर तथा कफाधिक्य वातपर बृहत्पंचमूली लेना चाहिये । पेटकी जडके चूर्णको कुछ कुछ गरम जलके साथ पीनेसे श्वास और दारुण खोंसी दूर होजाती है ॥ ३९-४१ ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां कणां रास्नां शटीं  
गुडम् ॥ कटुतैलं लिहन्हन्याच्छ्वासान्प्रा-  
णहरानपि ॥ ४२ ॥

हलदी, मिर्च, दाख, पीपल, रास्ना, कचूर और गुड इन सबको सरसोंके तेलमें मिलाकर चाटनेसे भयकर प्राणोंको हरनेवाला भी श्वास नष्ट होजाताहै ॥ ४२ ॥

अथ भार्ङ्गीगुडः ।

शतं संगृह्य भार्ङ्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा  
शतम् ॥ शतं हरीतकीनाश्च पचेत्तोये च-  
तुर्गुणे ॥ ४३ ॥ पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे  
वस्त्रनिपीडिते ॥ आलोडय च तुलां पूतां  
गुडस्य त्वभयास्ततः ॥ ४४ ॥ पुनः पचेत्तु  
मृद्वभौ यावलेहत्वमेति तत् ॥ शीते च

मधुनस्तत्र षट्पलानि विनिक्षिपेत् ॥ ४५ ॥  
त्रिकटु त्रिसुगन्धश्च पलमात्रं पृथक्पृथक् ॥  
यवक्षारं कर्षयुग्मं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ॥  
॥ ४६ ॥ भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्द्धपलं  
तथा ॥ श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्च-  
विधं तथा ॥ ४७ ॥ अर्शास्यरोचकं गुल्मं  
शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ स्वरवर्णप्रदो ह्येष  
जठराग्नेश्च दापनः ॥ नाम्ना भार्ङ्गीगुडः  
ख्यातो भिषग्भिः सकलैर्मतः ॥ ४८ ॥

भारङ्गी ४०० चारसौ तोले, दशमूलकी औषधि ४०० चारसौ तोले और हरड ४०० चारसौ तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उतारकर वस्त्रमें छानलेवे, फिर उसमें ४०० चारसौ तोले गुड और उसी काथमें की हरड डालकर मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावे, जब पकते २ सीरेकी समान होजाय तब उसमें, शीतल होनेपर २४ चौबीस तोले सहत, मिलादेवे तथा सोंठ ४ तोले, मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले, इलायची ४ तोले और जवाखार २ तोले, इनका चूर्ण करके मिलादेवे फिर इसमेंसे प्रतिदिन १ हरड और दो तोले इस अवलेहको सेवनकरे तो इससे महादारुण श्वास, पाचप्रकारकी खोंसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, अतिसार और क्षयरोग नष्ट होताहै । यह 'भार्ङ्गी गुड' इस नामसे प्रसिद्ध है । भार्ङ्गीगुड अवलेह—स्वर और वर्णको उत्तम करनेवाला और जठराग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ४३-४८ ॥

अथ महाकटुफलादियोगः ।

अष्टांगचूर्णसंयुक्तं द्वागक्षीरं प्रयोजयेत् ॥  
श्वासं कासान्वितं घोरं हन्यादेतन्न  
संशयः ॥ ४९ ॥

कायफल, अडकी जड, काकडाशिगी, अजवायन, कलौजी, सोठ, मिरच और पीपल इन आठ पदार्थोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके बकरीके दूधके साथ पीनेसे घोर खोंसी युक्त भी श्वास अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ४९ ॥

अथ दशमूलरसः ।

दशमूलरसो देयः श्वासनिर्मूलशान्तये ॥  
अवश्यं मरणीयो यो जीवेद्वर्षशतं  
नरः ॥ ५० ॥

श्वासको जड़से नष्ट करनेके लिये दशमूलका रस सेवन करना चाहिये, जो मनुष्य श्वाससे अवश्य मरनेवाला हो वह मनुष्य भी इसके प्रसादसे सौ वर्षतक जीता है ॥ ५० ॥

अथ श्वासकुठाररसः ।

रसो गन्धो विषश्चापि टंकणश्च मनःशिला ॥  
एतानि कर्षमात्राणि मरिचं चाष्टकर्षकम्  
॥ ५१ ॥ कटुत्रयं कर्षयुग्मं पृथगत्र विनि-  
क्षिपेत् ॥ रसः श्वासकुठारोऽयं सवश्वास-  
निवारणः ॥ ५२ ॥

इति श्वासाधिकारः ।

पारा १ तोला, गंधक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, मुहागा १ तोला, मैनशिल १ तोला और काली मिर्च ८ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके उसमें दो तोले सोंठका चूर्ण, दो तोले मिर्चका चूर्ण और दो तोले पीपलका चूर्ण अलग अलग मिलादेवे तो यह 'श्वासकुठार' नामवाला रस सिद्ध होता है । इस रसमेंसे दो रस्तीभर पानमें रखकर खाय इससे सब प्रकारके श्वास नष्ट होते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैद्यकृतवैद्य-

सर्जीवनीभाषाटीकाया श्वासाधि-

कारः संपूर्णः ।

अथ स्वरभेदाधिकारः ।

तत्र स्वरभेदनिदानसम्प्राप्तिपूर्वक-  
सामान्यलक्षणम् ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसन्दूष-  
णैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ॥ स्रोतःसु ते  
स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति  
चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥

अध्ययनमुच्चैर्वेदादिपाठः । अभिघातः  
कण्ठादिदेशं लगुडादिभिः । एतैरत्युच्चभाषणा-

दिभिश्चतुर्भिःसंदूषणैरन्यैरपि निजैर्दुष्टहेतुभिः  
स्रोतःसु स्वरवहेषु चतुर्षु प्रतिष्ठां स्थितिं गताः  
स्वरं हन्युरिति लक्षणम् । स स्वरभेदः षड्विधः ।  
वातपित्तकफसन्निपातमेदोभवभेदैः ॥

अत्यंत ऊँचे स्वरसे बोलनेसे, विषको भक्षण करनेसे, स्वरसे वेद शास्त्रादिकके पाठ करनेसे, कंठ आदि प्रदेशमें लकड़ी इत्यादिकी चोटके लगनेसे और अन्यान्य अपने अपने दुष्ट कारणोंसे कोपको प्राप्त हुए वातादि दोष स्वरके बहनेवाले स्रोतों ( छिद्रों ) में स्थित होकर स्वरको नष्ट करते हैं उस रोगको स्वरभेद कहते हैं । वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, ध्वज और मेदज इस रीतिसे स्वरभेद छे प्रकारका है ॥ १ ॥

अथ वातजस्वरभेदलक्षणम् ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्व-  
दति गर्दभवत्स्वरञ्च ॥

वातसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें दृढ़े फूटे धीरे धीरे गंधेके स्वरकी समान वचन बोलता है, तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्टा ये काले पड़ जाते हैं ।

अथ पित्तजस्वरभेदलक्षणम् ।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्गलेन  
स च दाहसमन्वितेन ॥ २ ॥

गलदाहः वचनसमय एव बोद्धव्यः ॥

पित्तज स्वरभेदमें वह मनुष्य दाह युक्त गलेसे बोलता है, तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्टा वे सब पीले पड़ जाते हैं ॥ २ ॥

अथ कफजस्वरभेदलक्षणम् ।

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः स्वल्पं  
शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ॥

दिवा सूर्यरश्मिभिः कफस्य अल्पीभावात् ।

कफज स्वरभेदमें निरंतर कफसे गला रुकासा रहता है धीरे धीरे थोड़ा बोलता है और दिनमें सूर्यकी किरणोंके निकलनेसे कफ कटकर कुछ अविक बोलता है ।

अथ सन्निपातजस्वरभेदलक्षणम् ।

सर्वात्मिके भवति सर्वविकारसम्पत्तं-  
चाप्यस्ताध्यमृपयः स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होतेहैं, यह स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषियोंने कहा है ॥ ३ ॥

अथ क्षयजस्वरभेदलक्षणम् ।

धूम्येतवाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च स्यादेव चापि हतवाक्परिवर्जनीयः ॥

वाक् धूम्येत सधूमेव निःसरति । क्षयं वाप्नुयात् वागेव ॥

क्षयज स्वरभेदमें बोलते समय मुखमेंसे धुआँसा निकलताहै, अथवा बोलते समय शब्द नष्ट होजातेहैं, इस प्रकार नष्ट वाणीवाले मनुष्यको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥

अथ भेदोजन्यस्वरभेदलक्षणम् ।

अन्तर्गलं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण भेदोन्वयाद्ददति दिग्धगलस्तृषार्तः ॥ ४ ॥

अन्तर्गलं गलस्य मध्य एव स्वरं वदति । दिग्धगलः भेदसा श्लेष्मणा च लिप्तगलः । तृषार्तः भेदस उष्मणा आर्तवरोधात् ॥

भेदोजस्वरभेदमें मनुष्य बहुत देरसे गलेके भीतर ही जो दूसरोंके समझमें नहीं आवै ऐसे शब्द बोलताहै, भेदसे और कफसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें गला कफसे लिप्ता रहताहै और तृषासे पीडित रहताहै ॥ ४ ॥

अथ स्वरभेदासाध्यलक्षणम् ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ॥ भेदास्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो नैव स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥

क्षीणस्य क्षयरोगिणः । कृशस्य अपुष्टस्य ॥

क्षयरोगीका, वृद्धका, दुर्बल मनुष्यका स्वरभेद, अथवा बहुत दिनोंका पुराना वा, जन्मसे उत्पन्न हुआ, भेदवाले मनुष्यको उत्पन्न हुआ और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ ऐसा स्वरभेद असाध्य होताहै ॥ ५ ॥

अथ स्वरभेदचिकित्सा ।

वातादिजनितश्वासकासघ्ना ये प्रकीर्तिताः ॥ योगास्तानत्र युञ्जीत यथादोषं

चिकित्सकः ॥ ६ ॥ वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम् ॥ कफे सक्षार-कटुकं क्षौद्रं कवल इष्यते ॥ ७ ॥ गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः ॥ तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चाशु प्रसीदति ॥ ८ ॥ आद्ये कोष्णं जलं पेयं भुक्त्वा घृतरसौदनम् ॥ क्षीराम्बुपानं पित्तोत्थे पिबेत्सर्पिरतन्द्रितः ॥ ९ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ॥ पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे स्वरसंक्षये ॥ १० ॥

वातादिसे उत्पन्न हुए श्वासको और खोंसीको हरनेवाले जो प्रयोग कहे हैं, उन्ही प्रयोगोंको वैद्य लोग दोषोंकी पद्धतिके अनुसार इस स्वरभेदमें योजे ।

जो वातसे स्वरभेद हुआ होय तो लवणके साथ तैलको, पित्तसे स्वरभेद हुआ होय तो सहतके साथ घीको, और जो कफसे स्वरभेद हुआ होय तो क्षार तथा चरपरे पदार्थोंके साथ सहतका कवल करना चाहिये । कवल करा-नेसे गला, तालू, जीभ और दन्तमूलोंमें रहा हुआ कफ निकलजाताहै और स्वर तत्काल साफ होजाताहै । वातज-स्वरभेदमें घी और मासके रसके साथ भात खाय और मदोष्ण जल पीवै, पित्तज स्वरभेदमें आलस्यको छोड़कर दूध और पानी तथा घी पीवै और कफजस्वरभेदमें पोपल, पीपलामूल, मिर्च और सोंठ इनका चूर्ण करके गोमूत्रछा सेवन करै ॥ ६-१० ॥

अथ निदिग्धिकावलेहः ।

निदिग्धिकातुला ग्राह्या तदर्द्धं ग्रन्थिकस्य तु ॥ तदर्द्धं चित्रकस्यापि दशमूलश्च तत्समम् ॥ ११ ॥ जलद्रोणद्वये काथ्यं गृह्णीयादाढकं ततः ॥ पूते क्षिपेत्तदर्द्धन्तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ १२ ॥ सवमेकत्र कृत्वा तुलेहवत्साधु साधयेत् ॥ अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातकपलं तथा ॥ १३ ॥ मरिचस्य पलं चैकं सर्वमेकत्र

चूर्णितम् ॥ मधुनः कुडवं दत्त्वा तदशनी-  
याद्यथानलम् ॥ १४ ॥ निदिग्धिकावले-  
हाऽयं भिषग्भिर्मुनिभिर्मतः ॥ स्वरभेद-  
हरो मुख्यः प्रतिश्यायहरस्तथा ॥ १५ ॥  
कासश्वासाग्निमान्द्यादीन्गुल्ममेहगलाम-  
यान् ॥ आनाहमूत्रकृच्छ्राणि हन्याद्ग-  
न्ध्यर्बुदानि च ॥ १६ ॥

कटेरी ४०० चारसौ तोले, पीपलामूल २०० दोसौ तोले, चीता १०० सौ तोले और दशमूलकी औषधि १०० सौ तोले, इन सबको २०४८ दोहजार अडतालीस तोले जलमें पकावै, जब पकते पकते २५६ दोसौ-छानन तोले जल बाकी रहजाय तब उस काथको वस्त्रमें छानकर फिर उस काथसे आधा पुराना गुड डालकर अवलेहकी तरह पकावै, जब यह सीरेकी समान हो जाय तब इसमें त्रिजातकका चूर्ण ३२ वत्तीस तोले और काली-मिर्चोंका चूर्ण ४ तोले और सहत १६ सोलह तोले मिलावै तो यह निदिग्धिकादि अवलेह तैय्यार होताहै, इस अवलेहको अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन प्रतिश्यायको नष्ट करनेवाला है तथा खाँसी, श्वास, अग्निकी मन्दता, गुल्म, प्रमेह, गलेके रोग, विषाके अवरोधसे पेटका अफरना, मूत्रकृच्छ्र, ग्रिथ और अर्बुदको नष्ट करै ॥ ११-१६ ॥

अथ मृगनाभ्याद्यवलेहः ।

मृगनाभिः सस्रूमैलालवङ्गकुसुमानि च ॥  
त्वक्क्षीरी चेति लंहोऽयं मधुसर्पिःसमा-  
युतः ॥ वाक्स्तम्भमुग्रं जयति स्वरभ्रंश-  
समन्वितम् ॥ १७ ॥

कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग वशलोचन इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे स्वरभेद और जिह्वाकी जडता दूर होतीहै ॥ १७ ॥

अथ ब्राह्मयाद्यवलेहः ।

ब्राह्मी वचाभ्यावासा पिप्पली मधुसं-  
युता ॥ अस्य प्रयोगात्सप्ताहात्किन्नरैः  
महं गीयते ॥ १८ ॥

एतन् स्वरभेदाधिकारः ।

ब्राह्मी, वच, हरड, अडूसा और पीपल इनको पीस-कर सहतमें मिलाकर चाटनेसे सातदिनमें किन्नरकी समान गायन करसक्ताहै ॥ १८ ॥

इति स्वरभेदाधिकारः संपूर्णः ।

अथारोचकाधिकारः ।

तत्र सनिदानवातारोचकलक्षणम् ।  
वातादिभिः शोकभयार्तिलोभक्रोधैर्मनो-  
प्राशनरूपगन्धैः ॥ अरोचकाः स्युः परिह-  
ष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ॥ १ ॥

वातादि दोषोंसे, शोकसे, भयसे, पीडासे, लोभसे, क्रोधसे, मनको विगाडनेवाले भोजन, रूप और गंधसे, अन्नान्नादिकपर जो अरुचि उत्पन्न होतीहै उसको अरोचक कहतेहैं । वातज, पित्तज, कफज, शोकादि आगतुज और त्रिदोष ऐसे अरोचक रोग पाचप्रकारकाहै । वातज अरोचकके लक्षण । तहा वातज अरुचिमें दाँत खट्टे और मुख कसैला रहता है ॥ १ ॥

अथ पित्तजारुचिलक्षणम् ।

कट्फलमुष्णं विरसश्च पृति पित्तेन वि-  
द्यालवणश्च वक्त्रम् ॥

यतो विदग्धश्लेष्मास्य लवणभावमुपैति  
लवणं हि वक्त्रम् ॥

पित्तकी अरुचिमें मुख चरपरा, खट्टा, विरस और दुर्गन्धित रहताहै । क्योंकि टाहको प्राप्त हुआ कफ खारी होनेके कारण मुख खारी होजाताहै ।

अथ कफजारुचिलक्षणम् ।

माधुर्यैपिच्छल्यगुरुत्वशैत्यस्तिग्धत्वदौर्ग-  
न्ध्ययुतं कफेन ॥ २ ॥

तथा पैच्छल्यं मुखस्य अभ्यन्तरे ।  
स्तिग्धत्वं बहिः ॥

कफकी अरुचिमें तथा मधुर, पिच्छल, भारी, शीत-लतायुक्त और दुर्गन्धित होजाताहै ॥ २ ॥

अथागन्तुजारुचिलक्षणम् ।

अरोचके शोकभयार्तिलोभक्रोधाद्यहृद्या-  
शुचिगन्धजे स्यात् ॥ स्वाभाविकश्चास्य  
मथारुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेच्च ॥ ३ ॥

क्रोधादीत्यादिशब्देन अहृद्ययोरशनरूप-  
योर्ग्रहणम् । स्वाभाविकश्च अविकृतरसम् ।  
त्रिदोषजमाह-नैकरसम् अनेकरसमास्यं  
स्यात् ॥

शोकसे, भयसे, अत्यन्त लोभसे, क्रोधादिकसे, अप्रिय  
भोजन करनेसे, अप्रिय रूपको देखनेसे और अप्रिय गंधको  
सूघनेसे मुख स्वाभाविक रसयुक्त होता है । कुछ विकृति  
नहीं होती है । त्रिदोषसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मुख अनेक  
रसवाला होता है ॥ ३ ॥

अथ वातजाद्यरोचकविशेषलक्षणम् ।

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तातृद्धाह-  
चोषबहुलं सकफप्रसेकम् ॥ श्लेष्मात्मकं  
बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोहजडता-  
भिरथापरश्च ॥ ४ ॥

हृच्छूलपीडनयुतं हृदि शूलेन पीडनं तेन  
युतम् । चोषः पार्श्वस्थिताग्निनेव सन्तापः ।  
बहुभिः त्रिभिर्दोषैः बहुरुजम् उक्तवातादि-  
रोगयुक्तम् । वैगुण्यं मनसो व्याकुलत्वम् ।  
जडता शून्यता । अपरम् आगन्तुजम् ।  
भक्तद्वेषभक्ताच्छन्दौ चरकसुश्रुताभ्याम् अ-  
रोचकत्वेनैव संगृहीतौ । वृद्धभोजस्तेषां लक्ष-  
णानि पृथगाह-

प्रक्षिप्तन्तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते  
नरः ॥ अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेष-  
मतः शृणु ॥ ५ ॥

न आस्वादते अन्नस्य मिष्टतां न प्राप्नोति ।  
तदन्नं मिष्टं न लगतीति यावत् ॥

चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु  
भोजनम् ॥ द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्त-  
द्वेषः स उच्यते ॥ ६ ॥ कुपितस्य भया-  
र्तस्य तथा भक्तविरोधिनः ॥ यत्र नान्ने  
भवेच्छृङ्खा, स भक्ताच्छन्द उच्यते ॥ ७ ॥

वातकी अरुचिमें हृदयमें शूलकी समान पीडा होती है  
पित्तकी अरुचिमें तृषा, अत्यन्त दाह और अग्नि सेवनके

समान सताप होता है, कफकी अरुचिमें मुखमेसे कफ युक्त  
थूक निकलता है, त्रिदोषकी अरुचिमें उपरोक्त सब लक्षण  
होते हैं और आगन्तुज कारणोंसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मनमें  
व्याकुलता, मोह ( बेहोशी ) और शून्यता होती है ।

विशेषविवेचनम् ।

भक्तद्वेष और भक्ताच्छन्दको यद्यपि चरक और सुश्रुत-  
में अरुचिहीमें माना है तथापि वृद्ध भोजने इसके लक्षण  
अरुचिसे अलग लिखे हैं । वृद्ध भोज कहता है कि  
मुखमें दिया हुआ अन्नका ग्रास अच्छा न लगे तो उसको  
'अरोचक' कहते हैं । मनसे भोजनका चिन्तन करके,  
भोजनको देखकरके और भोजनका स्पर्श करके,  
जो भोजनपर द्वेष उत्पन्न होता है उसको 'भक्तद्वेष'  
कहते हैं । क्रोधसे, भयसे, पीडासे और प्रेमके अनु-  
रोधसे जो अन्नपर श्रद्धा नहीं रहती उसको 'भक्ता-  
च्छन्द' कहते हैं ॥ ४-७ ॥

अथारोचकचिकित्सा ।

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥  
रोचनं दीपनं वह्नेर्जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥  
॥ ८ ॥ शृंगवेररसं वापि मधुना सहयो-  
जयेत् ॥ अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्याय-  
कफापहम् ॥ ९ ॥

भोजनसे आगे सदैव लवण और अदरकका भक्षण  
पथ्य है, रुचिको करनेवाला, अग्निको दीपन करनेवाला  
और जिह्वा तथा कण्ठको शुद्ध करनेवाला है । सहतके  
साथ अदरकके रसको पीनेसे अरुचि, श्वास, खांसी प्रतिश्याय  
और कफ नष्ट होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथाम्लीकापानकम् ।

पक्वाम्लीका सिता शीतवारिणा वस्त्रगा-  
लिता ॥ एलालवंगकर्पूरमरिचैरवधूलिता  
॥ १० ॥ पानकस्यास्य गण्डूषं धारयित्वा  
मुखे मुहुः ॥ अरुचिं नाशयत्येव पित्तं  
प्रशमयेत्तथा ॥ ११ ॥

पकीहुई इमली और खांड इनको शीतल जलमें धोल-  
कर उसको वस्त्रमें छानलेवे, फिर उसमें इलायची, लोंग,  
कपूर और मिरचका चूर्ण डालदेवे, इसको अम्लीकापानक



कहतेहैं इस पानक ( पन्ना ) के मुखमें बारबार गण्डूप ( कुल्ले ) धारण करनेसे अरुचि नष्ट होतीहै और पित्त-शमन होताहै ॥ १०-११ ॥

अथ तक्रम् ।

राजिकाजीरकौ भृष्टौ भृष्टं हिण्डु सना-  
गरम् ॥ सैन्धवं दधि गोः सर्वं वस्त्रपूतं  
प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ तावन्मात्रं क्षिपेत्तत्र  
यथा स्यादुचिरुत्तमा ॥ तक्रमेतद्भवेत्सद्यो  
रोचनं वह्निवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

भुनीहुई राई, भुनाहुआ जीरा, भुनीहुई हींग, भुनीहुई  
सोंठ, सैवानिमक और गायका दही इन सबको मिलाकर  
वस्त्रमें छान लें, फिर जितनीमें वह ठीक होजाय उतनी ही  
उसमें छोंछ मिलावे । यह तक्र-तत्काल रुचिको उत्पन्न  
करेहै और जठराग्निको बढ़ावेहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ शिखरिणी ।

सम्यगावर्तितं दुग्धं निबद्धं दधि माहि-  
षम् ॥ एकीकृत्य पटे घृष्टं शुभ्रशर्करया  
समम् ॥ १४ ॥ एलालवंगकर्पूरमरिचैश्च  
समन्वितम् ॥ नाम्ना शिखरिणी कुर्या-  
दुचि सकलवल्लभाम् ॥ १५ ॥

अच्छे प्रकारसे औटया हुआ दूध और वस्त्रमें रोंछा  
हुआ पानी रहित भैंसका दही इनको एकत्र करके उसमें  
उत्तम सफेद चीनी मिलाकर मोटे वस्त्रमें घिसकर छान  
लें फिर उसमें इलायची, लौंग भीमसेनीकपूर और काली-  
मिरच, डाले तो सिरारन सिद्ध होजातीहै । सब लोगोंको  
प्रिय यह सिरारन रुचिको उत्पन्न करेहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ दाडिमादिचूर्णम् ।

द्वे पलं दाडिमाम्लस्य खण्डं दद्यात्पल-  
त्रयम् ॥ त्रिसुगन्धि पलं चैकं चूर्णमेकत्र  
कारयेत् ॥ १६ ॥ तच्चूर्णं मात्रया भुक्त-  
मरोचकहरं परम् ॥ दीपनं पाचनं च स्या-  
त्पीनसज्वरकासजित् ॥ १७ ॥

खट्टे अनारके दाने ८ तोले, खाड १२ तोले, त्रिसुगन्धि  
दालचीनी, इलायची, तेजपात ), १ तोला, इन  
सबका एकत्र चूर्ण करके मात्रानुसार खाय तो अरुचि नष्ट  
होजातीहै । यह चूर्ण-अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन  
है, पीनस, ज्वर और खाँसीको दूर करेहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ लवंगादिचूर्णम् ।

लवंगकंकोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्प-  
लकृष्णजीरकम् ॥ जलं सकृष्णागुरुभृंग-  
केसरं कणा च विश्वा नलदं सहेलया ॥  
॥ १८ ॥ तुषारजातीफलवंशरोचनाः  
सितार्द्धभागाः सकलं विचूर्णितम् ॥ सुरो-  
चनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वश्यतमं  
त्रिदोषजित् ॥ १९ ॥ उरोविबन्धं तमकं  
गलग्रहं सकासहिकारुचियक्ष्मपीनसम् ॥  
ग्रहण्यतीसारमुरःक्षतं नृणां तथा प्रमेहा-  
न्निखिलान्निहन्ति ॥ २० ॥

कंकोलं सुगन्धविशेषः । नतं तगरम् ।  
जलं वालकं भृंगं त्वक् । नलदमुशीरम् ।  
तुषारः कर्पूरः । इति लवंगादिचूर्णम् ॥

लौंग, ककोच, मिरच, खस, चन्दन, तगर, नीलेकमल  
के बीज, कालजीरा, सुगन्धवाला, अगर, तज, नागकेशर,  
पीपल, सोंठ, इलायची, भीमसेनीकपूर, जायफल, वगलौ-  
चन और सबसे आधी खाड लें, सबको एकत्र मिला-  
लें, इसको सेवन करनेसे रुचि उत्पन्न होतीहै, तृप्ति  
होतीहै, अग्नि दीपन होतीहै, बलकी वृद्धि होतीहै मधुन-  
शक्ति बढ़तीहै, तीनों दोष शमन होतेहैं, तथा छातीका  
जकडना, तमक, वास, गलग्रह, खाँसी, हिचकी, अरुचि,  
क्षयरोग, पीनस, सग्रहणी, अतिसार, उरःक्षत और सर्व  
प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट होजातेहैं ॥ १८-२० ॥

यवानीखाण्डवचूर्णम् ।

यवानी दाडिमं शुण्ठी तिन्तिडीकाम्ल-  
वेतसैः ॥ बदराम्लश्च कुर्वीत चतुःशाण-  
मितानि च ॥ सार्द्धद्विशाणं मरिचं  
पिप्पली दशशाणिका ॥ २१ ॥ त्वक्  
सौवर्चलधान्याकजीरकं द्विद्विशाणिकम् ॥  
चतुःषष्टिमितैः शाणैः शर्करामत्र योज-  
येत् ॥ २२ ॥ चूर्णितं सर्वमेकत्र यवा-

नोखाण्डवाभिधम् ॥ चूर्णं जयेत्पाण्डुरोगं  
हृद्रोगं ग्रहणीज्वरम् ॥ २३ ॥ छर्दिशोषा-  
तिसारांश्च प्लीहानाहविवन्धताम् ॥ अरुचिं  
शूलमन्दाग्निमशो जिह्वागलामयान् ॥ २४ ॥

अज्वायन, अनार, सेंठ, इमली, अमलवेत और  
सुखाया हुआ बेरका गूदा ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला  
कालीमिरच ६० रत्ती, पीतल २४० रत्ती, दालचीनी,  
कालानिमक, धनिया और जीरा प्रत्येक पदार्थ ४८ रत्ती  
भर लेवै, खाड २४ शाण लेवै, सबका एकत्र चूर्ण करले  
तो यवानीखांड व चूर्ण तैयार होजाताहै। इस चूर्णको  
सेवन करनेसे पाण्डुरोग, छातीका दर्द, ग्रहणी, ज्वर, वमन,  
शोष, अतीसार, प्लीहा, अफारा, मलबध, अरुचि, शूल,  
अधिकी मंदता, बवासीर, जिह्वाके रोग और गलेके रोग  
नष्ट होजातेहैं ॥ २१-२४ ॥

इति अरोचकाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ छर्द्यधिकारः ।

तत्र विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानपूर्व-  
कसम्प्राप्तिः ।

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि ॥  
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भो-  
जनैः ॥ १ ॥ आमाश्रयात्तथोद्वेगादजीर्णा-  
त्क्रिमिदोषतः ॥ नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्त-  
थातिद्रुतमभ्रतः ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्भु-  
क्तमुत्क्रियते बलात् ॥ २ ॥

आमात् असम्यक् पक्वात् रसात् । अजी-  
र्णात् यथास्थितात् भुक्तात् । आपन्नसत्त्वायाः  
प्राप्तगर्भायाः । अन्यैर्बीभत्सैर्विकृतैः हेतुभिः  
घृणाकारिभिः । अनिष्टश्रवणस्पर्शनदर्शनभ-  
क्षणपानैः उत्क्रियते ॥

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः ।  
छर्द्यः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्य-  
ते ॥ ३ ॥

अत्यंत पतले और चिकने भोजन करनेसे और अ-  
प्रिय और खारी भोजन करनेसे, विनासमय भोजन कर-  
नेसे, अत्यंत भोजन करनेसे, अहित भोजन करनेसे, आ-  
मसे, भयसे, उद्वेगसे, अजीर्णसे, कृमिदोषसे, गर्भके  
रहनेसे, बहुत शीघ्र शीघ्र भोजन करनेसे, दूषित हुई वायु,  
दुष्ट हुआ पित्त और दुष्ट हुए कफसे तथा दुष्ट हुए तीनों  
दोषोंसे, ग्लानिजनक पदार्थोंके देखनेसे, सुननेसे, स्पर्श  
करनेसे, अथवा भक्षण करनेसे, अथवा बलात्कार भोजन  
करनेसे और अत्यंत भयकर कारणोंसे, कुपित दोषोंसे  
भोजन करी हुई वस्तु पीछे उछलकर पाँच प्रकारकी छर्दि-  
को उत्पन्न करैहै, अब उनके लक्षण कहेजातेहैं ॥ १-३ ॥

( १ ) आम-अर्थात् अच्छे प्रकारसे नहीं पका हुआ  
अन्नरस । ( २ ) अजीर्ण-अर्थात् जैसा भोजन किया  
होय वैसाही पेटमें रक्खा रहे पका न होय ।

अथ वमनपूर्वलक्षणम् ।

हृत्लासोद्गारसंरोधौ प्रसेको लवणास्यता ॥  
द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ४ ॥

उबकाईका आना, डकारका रुकना, मुखसे पानीका  
गिरना, मुखमें खारीपन और अन्नपानमें अत्यन्त अरुचि  
होतीहै । यह पूर्वलक्षण जानने ॥ ४ ॥

अथ वमनसामान्यलक्षणम् ।

छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ॥ निरु-  
च्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ५ ॥

छादयन् पूरयन् अंगभञ्जनैः अङ्गभेदैः  
अर्दयन् अंगानि पीडयन् । वक्त्रं प्रधावितः  
दोषः छर्दिः इत्युच्यते ॥

जो रोग वेगोंसे मुखको भरताहुआ, अंगोंको तोडता  
हुआ और पीडाको करताहुआ जो दोषोंका मुखमें आता  
है उसको वमन कहतेहैं ॥ ५ ॥

अथ वातजच्छर्दिलक्षणम् ।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकास-  
स्वरभेदतोदैः ॥ उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं वि-  
च्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् ॥ कृच्छ्रेण  
चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्द-  
यतीव दुःखम् ॥ ६ ॥

कषायं कषायरसम् । दुःखमिव छर्दयति ॥

वातकी छर्दिमें छाती और पसलियोंमें पीडा, मुखशोष, मस्तक और नाभिमें दर्द, खोंसी, स्वरभंग, अंगोमें सुई चुभोने सरीखी पीडा, डकारका प्रबल शब्द आर्गोयुक्त, टूटीसी, काली, पतली, कसैली और थोड़ी छर्दि (उलटी) अत्यन्त कष्टसे तथा बड़े वेगसे होतीहै ॥ ६ ॥

अथ पित्तजच्छर्दिलक्षणम् ।

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्द्धतात्वक्षिसन्ता-  
पतमोभ्रमार्तः ॥ पीतं भृशोष्णं हरित-  
ञ्च तित्कं धूम्रञ्च पित्तेन वमैः सदाहम् ॥ ७ ॥

पित्तकी छर्दिमें मूर्च्छा, तृषा, मुखमें शोष, मस्तक, तालू और नेत्रोंमें सन्ताप, अन्वेरी आवै, भ्रम हो, तथा पीली बहुत गरम, हरी, कड़वी, दुर्गन्धयुक्त और दाहयुक्त वमन होतीहै ॥ ७ ॥

अथ कफवमनलक्षणम् ।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्राऽरु-  
चिर्गौरवार्तः ॥ स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्धि-  
शुक्लं सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ८ ॥

कफकी वमनमें तन्द्रा, मुखमें मधुरता, कफका गिरना, तृप्तिका होना, निद्राका आना, अरुचि और भारीपन इनसे पीडित होताहै, रोमांचोंका खडा होना तथा स्निग्ध ( चिकनी ), गाढ़ी, भीठी, सुफेद और अल्प पीडावाली वमन होतीहै ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजवमनलक्षणम् ।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्र-  
वला प्रसक्ता ॥ छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्ल-  
नीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥ ९ ॥

त्रिदोषजन्य वमनमें शूल, अन्नका अच्छे प्रकारसे परिपाक न होना, अरुचि, दाह, तृषा, श्वास और अत्यन्त मोह होताहै । तथा नारी, खट्टी, नीलेरगकी, गाढ़ी, गरम और रुधिरवाली वमन होतीहै ॥ ९ ॥

अथागन्तुजवमनलक्षणम् ।

अमात्स्यजा च क्रिमिजामजा च बीभ-  
त्सजा दौर्हृदजा च या हि ॥ सा पञ्चमी  
ताञ्च विभावयेत्तत्र दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्त-  
नादां ॥ १० ॥

एताः पञ्च अपि आगन्तुजत्वेन साम्यात्  
एकैव । अत एव सां आगन्तुजा पञ्चमी ।  
विभावयेत् अनुबन्धयेत् ॥

अहित भोजन करनेसे कृमि तथा आमसे ग्लानिकारक पदार्थोंके देखनेसे और गर्भवती स्त्रियोंके गर्भके रहनेसे उत्पन्नहुई, इस प्रकार आगन्तुज वमन पाँच प्रकारकी है । और वह आगन्तुज वमन पूर्वोक्त लक्षणोंसे यथादोषानुसार जाननी चाहिये ॥ १० ॥

अथ वमनोपद्रवाः ।

कासः श्वासो ज्वरस्तृष्णाहिक्कावैचित्त्य-  
भेव च ॥ हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्दरूप-  
द्रवाः ॥ ११ ॥

वैचित्त्यं विकृतचित्तत्वम् । तमकोऽत्र तमः-  
श्वासपदेनैव तमकारणस्यापि श्वासस्य  
उक्तिः ॥

खोंसी, श्वास, ज्वर, तृषा, हिक्का, चित्तकी विकृति ( घबराहट ), छातीकी पीडा और अन्धकारसा दिखाई देना, ये सब वमनके उपद्रव हैं ॥ ११ ॥

अथ वमनसाध्यासाध्यता ।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा  
शोणितपूययुक्ता ॥ सचन्द्रिकां तां प्रवद-  
न्त्यसाध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां  
च ॥ १२ ॥

सचन्द्रिकां मयूरपिच्छचन्द्रिकाप्रभायुक्ताम् ।

जो वमन क्षीण मनुष्यको, अधिकतर, उपद्रवयुक्त रुधिर और राध (मवाद) सहित, तथा मोरपूँछकी समा-  
कातिवाली वमन होय तो असाध्य जाननी और जो वम-  
उपद्रवरहित होय तो साध्य है ॥ १२ ॥

अथ वमनचिकित्सा ।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता  
लघनमेव तस्मात् ॥ विधीयते मारुतजां  
विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १३ ॥

सर्व प्रकारकी वमन आमाशयमें उत्कृष्ट ( दोष ) के होनेसे होतीहै इस कारण इनमें लंघन कराने चाहिये अथवा कफ और पित्तनाशक सशोधन देवे किंतु वातकी छर्दिमें यह चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १३ ॥

हन्याक्षीरोदकं पीतं छर्दिं पवनसम्भ-  
वाम् ॥ मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः  
ससैधवः ॥ १४ ॥

क्षीरोदकं नाशितस्य क्षीरस्य उदकम् ॥

दही डालकर दूधको फाड़कर उस दूधका पानी पीनेसे अथवा घृतसहित और सैधेनिमकके साथ मूँगका तथा आमलोका यूष पीनेसे वातकी वमन दूर होती- है ॥ १४ ॥

गुडूचीत्रिफलानिम्बपटोलैः कथितं जलम् ॥  
पिवेन्मधुयुतं तेन छर्दिर्नश्यति पि-  
त्तजा ॥ १५ ॥

गिलेय, हरड, बहेडा, आमला, नीम और पटोलपत्र इनका काथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे पित्तजन्य वमन दूर होतीहै ॥ १५ ॥

हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिकसंयु-  
तम् ॥ अधोमार्गीकृते दोषे छर्दिः शीघ्रं  
निवर्तते ॥ १६ ॥

हरडका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे दोषोको गुदाके मार्गसे जानेपर वमन शीघ्र दूर होतीहै ॥ १६ ॥

विडंगत्रिफलाविश्वाचूर्णं मधुयुतं जयेत् ॥  
विडंगप्लवशुण्ठीनां चूर्णं वा कफजां  
वमिम् ॥ १७ ॥

प्लवं कैवर्तमुस्तकं गुडतजी इति लोके ॥

वायविडंग, हरड, बहेडा, आमला और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे अथवा वायविडंग, केवटी मोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफकी वमन दूर होजातीहै ॥ १७ ॥

पिष्टा धात्रीफलं लाजाञ्छर्कराश्च पलो-  
न्मिताम् ॥ दत्त्वा मधुपलश्चापि कुडवं

सलिलस्य च ॥ वाससा गालितं पीतं हन्ति  
छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ १८ ॥

आमले धानकी खील और चार तोले खांड इनको पीसकर चारतोले सहत और सोलह १६ तोले जल डाल- कर बल्लमें छान लेवे, इसको पीनेसे त्रिदोषजन्य वमन दूर होजाती है ॥ १८ ॥

गुडूच्या रचितं हन्ति हिमं मधुसमन्वि-  
तम् ॥ दुर्निवारामपि च्छर्दिं त्रिदोषजनि-  
तां बलात् ॥ १९ ॥

गिलेयका हिम बनाकर सहत डालकर पीनेसे त्रिदोष सम्बन्धी अत्यत दुर्निवार वमन बलात्कारसे नष्ट हो- जातीहै ॥ १९ ॥

एलालवंगजकेसरकोलमज्जालाजाप्रियंगु-  
वनचन्दनपिप्पलीनाम् ॥ चूर्णानि माक्षि-  
कसितासहितानि लीढ्वा छर्दिं निहन्ति  
कफमारुतपित्तजाताम् ॥ २० ॥

इलायची, लौंग, नागकेसर, बेरका गूदा, धानकी खीलें, फूलप्रियंगु, मोथा, चन्दन और पीपल इनका चूर्ण बनाकर सहत तथा खांडमें मिलाकर चाटनेसे कफ वायु तथा पित्तसे उत्पन्न हुई वमन दूर होजाती है, इसको एलादि चूर्ण कहते हैं ॥ २० ॥

अश्वत्थबकुलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं  
जले ॥ तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति  
दुर्जयाम् ॥ २१ ॥

सूखी हुई पीपलकी तथा मौलसिरीकी छालको जला- कर पानीमें बुझालेवे उस पानीको पीनेसे तत्काल दुर्जय वमन दूर होजाती है ॥ २१ ॥

पथ्यात्रिकटुधान्याकजीरकाणां रजो लि-  
हन् ॥ मधुना नाशयेच्छर्दिमरुचिश्च त्रि-  
दोषजाम् ॥ २२ ॥

हरड, सोंठ, भिरच, पीपल, धनिया और जीरा इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन और अरुचि नष्ट हो- जातीहै ॥ २२ ॥

विल्वत्वचो गुडूच्या वा काथः क्षौद्रेण  
संयुतः ॥ छर्दिं त्रिदोषजां हन्ति पर्पटः  
पित्तजां तथा ॥ २३ ॥

वेलकी छाल अथवा गिलोयका काथ बनाकर सहत  
डालकर पीनेसे त्रिदोषजन्य वमन दूर होजातीहै तथा  
पित्तपापडेको पीसकर पीनेसे पित्तकी वमन दूर हो-  
जातीहै ॥ २३ ॥

आम्रास्थिविल्वनिर्यूहः पीतः समधुश-  
र्करः ॥ निहन्त्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर  
इवाहुतिम् ॥ २४ ॥

आमकी गुठली और वेलगिरी इनका काथ बनाकर  
सहत तथा खाट मिलाकर पीनेसे जिसप्रकार अग्नि आहु-  
तिका नाश करताहै उसीप्रकार इससे वमन सहित अति-  
सारका नाश होताहै ॥ २४ ॥

जम्बाम्रपल्लवशृतं लाजरजःसंयुतं शीत-  
म् ॥ शमयति मधुना युक्तं वमिमति-  
सारं तृषामुग्राम् ॥ २५ ॥

जामुनके पत्ते और आमके पत्ते इनका काथ बनाकर  
उसमें धानकी खीलेका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे  
वमन, अतिसार, और घोर तृषा शांत होतीहै ॥ २५ ॥

वीभत्सजां हृद्यतमैरिष्टैर्दोर्हृदजां फलैः ॥  
लंघनैरामजां छर्दिं जयेत्सात्म्यैरसात्म्य-  
जाम् ॥ २६ ॥

वीभत्स पदार्थोंके दर्शन आदिसे उत्पन्न हुई वमनको  
अत्यन्त प्रिय पदार्थोंके उपयोगसे जीते । गर्भसे उत्पन्न  
हुई वमनको प्रियफलोंके उपयोगसे जीते । आमसे उत्पन्न  
वमनको लघनोसि जीते और अहित पदार्थोंसे उत्पन्न हुई  
वमनको हितपदार्थोंसे जीते ॥ २६ ॥

कृमिहृद्रागवद्धन्याच्छर्दिं कृमिसमुद्भवा-  
म् ॥ तत्रतत्र यथादांषं क्रियां कुर्याच्चि-  
कित्सकः ॥ २७ ॥

यद्य कृमिदोषसे उत्पन्न हुई वमनको कृमिरोगोक्त  
और हृदयरोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये और उसी  
दोषानुसार चिकित्सा क्रिया करे ॥ २७ ॥

सोद्वारायां भृशं छर्द्या मूर्वाया धान्यमु-

स्तयोः ॥ समधूकाञ्जनं चूर्णं लेहयेन्मधु-  
संयुतम् ॥ २८ ॥

बहुत डकारवाली वमन होय तो मूर्वा, धनियौ, नागर-  
मोथा, मुलैठी और रसौत इनका चूर्ण करके सहतमें  
मिलाकर चाटे ॥ २८ ॥

सौवर्चलमजाजी च शर्करामरिचानि  
च ॥ क्षौद्रेण सहितं लीढं सद्यश्छर्दिनि-  
वारणम् ॥ २९ ॥

कालानिमक, जीरा, खाड और काली मिरच इनका  
चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे वमन तत्काल  
शमन होजातीहै ॥ २९ ॥

इति वमनाधिकारः संपूर्णः ।

अथ तृष्णाधिकारः ।

तत्र तृषानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

भयश्रमाभ्यां बलसंशयाद्वाप्यूर्द्ध्वं चितं पि-  
त्तविवर्द्धनैश्च ॥ पित्तं सवातं कुपितं नराणां  
तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥  
स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च  
तृट् सम्भवतीह जन्तोः ॥ तिस्रः स्मृता-  
स्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथान्यामस-  
मुद्भवा च ॥ भक्तोद्भवा सप्तभिकेति तासां  
निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु ॥ २ ॥

नराणां पित्तं स्वस्थान एव संचितं पित्तं  
सवातम् पित्तविवर्द्धनैः कटुम्लोष्णादिभिः  
कुपितम्पित्तं भयश्रमाभ्यां बलसंशयादुप-  
वासादेश्च वातः कुपितः तद्द्वयमूर्द्ध्वं प्राप्तम्  
ऊर्द्ध्वशाल्पिपासां जनयेत् । न केवलं ता-  
लुनि एव दूषिते तृषा भवति किन्तु जल-  
वाहिस्रोतःसु अपि । अत आह स्रोतःसु  
इत्यादि । ननु अत्र बहुवचनं न युक्तं यतो  
जलवहे द्वे स्रोतसौ सुश्रुतेन उक्ते । उच्यते ।  
तयोरेव अनेकप्रतानयोगात्त दोषः अपां



वाहिषु स्रोतःसु इति जिह्वादेरपि उपलक्षणम् । यत आह चरकः—

रसवाहिनीश्च धमनीर्जिह्वाहृदयगलतालुक्लोमसंशोषान् ॥ नृणां देहेषु कुरुतस्तृष्णामतिबलां पित्तानिलौ ॥ ३ ॥

मनुष्योंके अपने स्थानमें संचित हुआ पित्त अपने बढ़ानेवाले तीखे, खट्टे तथा उष्ण आदि पदार्थोंसे कोपको प्राप्त होता है और अपने स्थानमें संचित हुई वायु भयसे, श्रमसे तथा बलका क्षय करनेवाले उपवासादिकसे कोपको प्राप्त होती है इस प्रकार कोपको प्राप्त हुआ पित्त और वायु यह दोनों ऊपरको आकर तालुकेको दूषित करके तृषाको उत्पन्न करते हैं । केवल तालुकेके ही दूषित होनेसे मनुष्योंके तृषा ( प्यास ) उत्पन्न होती है किन्तु जलवाहिस्रोतोंके दूषितहोने पर भी उत्पन्न होती है । जलको वहानेवाले दो स्रोत ( छिद्र ) हैं ऐसा सुश्रुत कहता है, फिर यहा 'जलको वहानेवाले स्रोत' ऐसा बहुवचन क्यों कहा ?

समाधान—दो स्रोतोंका बहुतसे तत्त्वोंकरिके योग है इसकारण यहा बहुवचन आनेमें कुछ भी दोष नहीं आता ।

स्रोत, यह शब्द उपलक्षण रूप है इस कारण इस शब्दसे जीभ आदिका भी ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि चरक कहता है कि, पित्त और पवन रसको वहानेवाली नाडी, जीभ, गला, तालू और तृषा लगनेके स्थानके संशोषणसे मनुष्योंके शरीरमें प्रबल तृषा उत्पन्न होती है ॥

वातज, पित्तज, कफज, क्षतज, क्षयज, आमदोषज और भोजन किये हुए अन्नसे उत्पन्न होनेवाली, इस प्रकार तृषा सात प्रकारकी है । अब इनके अनुक्रमसे लक्षण कहता हू ॥ १-३ ॥

अथ तृषासामान्यलक्षणम् ।

ताल्वोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहः सन्तापमोहभ्रमविप्रलापाः ॥ सर्वाणि रूपाणि भवन्ति तस्यामुत्पत्तिकाले तु विशेषतो हि ॥ ४ ॥

तालू, होठ, कंठ और मुख इनमें शोष तथा दाह, सन्ताप, मोह, भ्रम और बकवाद ये सब तृषाके लक्षण

हैं । तृषाकी उत्पत्तिके समयमें यह लक्षण विशेष करके उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

अथ वातजतृषालक्षणम् ।

क्षामास्यता मारुतसम्भवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि ॥ स्रोतोनिरोधो विरसश्च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ५ ॥

शङ्खशिरःसु शङ्खयोः शिरसि च तोदः । स्रोतोनिरोधः रसाम्बुवाहिनीधमनीनिरोधः ॥

वायुकी तृषामें मुख उतरजाता है, कनपटी और मस्तकमें पीडा होती है, रसको तथा जलको वहनेवाली धमनी रुकजाती है, मुखका स्वाद निरस होजाता है और यह तृषा शीतल जलसे वृद्धिको प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

अथ पित्तजतृषालक्षणम् ।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः ॥ शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूपनश्च ॥ ६ ॥

विलापः प्रलापः । प्रततश्च शोषः अवि- रतः शोषः । शीताभिनन्दा शीतेच्छा । परिधूपनं कण्ठाद्धूमनिर्गम इव ॥

पित्तकी तृषामें मूर्छा, अन्नपर अरुचि, बकवाद, दाह, नेत्रोंमें लाली, निरतर शोष, शीतकी इच्छा, मुख कड़वा होजाता है और कंठमेंसे धुआं सा निकलता है ॥ ६ ॥

अथ कफजतृषालक्षणम् ।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेन्नरस्य ॥ निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तयार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥ ७ ॥

अग्नौ जठराग्नौ कफसंवृते स्वकारणकृ- पितेन कफेन उपरिष्ठाच्छादिते । बाष्पा- वरोधादग्नेरुष्मावरोधादवरुद्धानलोष्मणा अ- म्बुवहस्रोतःशोषणाद्बलासेन कफेन नरस्य तृट् भवेत् । तया तृष्णया अर्दितः पीडितः शुष्यति कृशो भवति ॥

जठराग्निके ऊपर भागमें अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुए कफसे आच्छादित होनेके कारण जठराग्निकी उष्णता रुककर उस उष्णतासे जलको बहानेवाले स्रोतोंका शोषण होनेके कारण कफसे जो तृषा होतीहै, उस तृषासे पीडित हुए मनुष्यके शरीरमें अत्यन्त कृशता होजातीहै, निद्रा बढजातीहै, भारीपन होताहै और मुख मधुर होजाताहै ७॥

अथ क्षतजतृषालक्षणम् ।

क्षतस्य रुक्छोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा  
चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥ ८ ॥

क्षतस्य शस्त्रादिक्षतयुक्तस्य रुक् पीडा ॥

शस्त्रादिक्रमे जखमी हुए मनुष्यको पीडाके होनेसे और रुधिरके निकलनेसे जो तृषा लगतीहै उसको क्षतज कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ क्षतजतृषालक्षणम् ।

रसक्षयाद्या क्षयसम्भवा सा तयाभिभू-  
तस्तु निशादिनेषु ॥ प्रपीयतेऽम्भः स सुखं  
न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः॥  
रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण  
भिषग्व्यवस्येत् ॥ ९ ॥

रसक्षयलक्षणानि सुश्रुतेन उक्तानि “रस  
क्षये हृत्पीडा कम्पः शोषः शून्यता तृष्णा  
चेति” । व्यवस्येज्जानीयात् ॥

रसके क्षय होनेसे जो तृषा उत्पन्न होतीहै उसको क्षयज कहतेहैं । इस तृषासे पीडित मनुष्य रात दिन पानी पिया करताहै परन्तु कभी सतोष नहीं होता, कोई कोई दैन्य इसको सन्निपातकी तृषा भी कहतेहैं सुश्रुतमें जो रसक्षय होनेके लक्षण कहेंहैं वे सब लक्षण इस तृषामें होतेहैं ऐसा बताने जाने ।

सुश्रुतमें कहा है कि “जब रसका क्षय होताहै तो हृदयमें पीडा, कम्प, शोष, जडता और तृषा उत्पन्न होतीहै” ॥ ९ ॥

अथामोत्पन्नतृषालक्षणम् ।

त्रिदोषलिगामसमुद्रवा च हृच्छूलनिष्ठी-  
वनसादकर्त्री ॥ १० ॥

जो तृषा त्रिदोषसे उत्पन्न होतीहै उसमें तीनों दोषोंके चिह्न होतेहैं, उसमें हृदयमें पीडा, शूलआना और ग्लानि ये चिह्न उत्पन्न होतेहैं ॥ १० ॥

अथ भुक्तोद्भवतृषालक्षणम् ।

स्निग्धं तथाम्लं लवणञ्च भुक्तं गुर्वन्नमे-  
वाशु तृषां करोति ॥ ११ ॥

लवणश्चेति चकारात्कटु च ॥

स्निग्ध, खट्टे, खारी, जीखे और भारी अन्नोंको भक्षण करनेसे जो तृषा उत्पन्न होतीहै उसमें बारबार शीघ्र शीघ्र जल पीनेकी इच्छा होतीहै ॥ ११ ॥

अथ तृषोपद्रवाः ।

दीनस्वरः प्रताम्यन्दीनाननहृदयशुष्कग-  
लतालुः ॥ भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा  
सा शोषिणी कष्टा ॥ १२ ॥

शोषिणी धातुशोषिणी ॥

स्वरका दुबला होजाना, ग्लानि, मुख और हृदयकी दीनता, गले और तालुयेका सूखना इन सब उपद्रववाली तृषा होय तो कष्टसाध्य है और धातुओंको भी शोषण करेहै ॥ १२ ॥

अथोपद्रवयुक्ततृषाऽरिष्टम् ।

ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥  
सर्वास्त्वितिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्र-  
सक्तानाम् ॥ घोररोपद्रवयुक्ता तृष्णा मर-  
णाय विज्ञेया ॥ १३ ॥

आदिशब्दादतीसारादीनां ग्रहणम् । अ-  
तिप्रसक्ताः नितरां घोररोपद्रवयुक्ताः अतीव  
मुखशोषादियुक्ताः ॥

ज्वर, प्रमेह, क्षय, खाँसी, वास और अतीसार इत्यादि रोगोंसे पीडित मनुष्योंको रोगसे कृशहुए मनुष्योंको और वमन करनेवाले मनुष्योंको जो अत्यन्त घोर तृषा लगतीहै, तथा मुखशोष आदि उपद्रवोंसे युक्त जो सर्व प्रकारकी तृषा उत्पन्न होतीहै वह मारनेके लिये ही उत्पन्न होतीहै ॥ १३ ॥

अथ तृषाचिकित्सा ।

वातघ्नमन्नपानं मृदु लघु शीतञ्च वात-  
तृष्णायाम् ॥

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्य-  
ते ॥ स्वादु तिक्तं द्रवं शीतं पित्ततृष्णा-  
पहं परम् ॥ १४ ॥

वातकी तृषामे वातनाशक, कोमल हलके और शीतल ऐसे अन्नपान उपयोग करे । वातकी तृषामें गुडके साथ दहीका सेवन श्रेष्ठ है ।

मधुर, कडवे, पतले और शीतल पदार्थोंके उपयोग करनेसे पित्तकी तृषा शांत होजातीहै ॥ १४ ॥

मुस्तर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः॥  
शृतं शीतं जलं दद्यात्तृष्णादाहज्वरशा-  
न्तये ॥ १५ ॥

छत्रा धान्यकं कश्चिद्धान्नीश्व दद्यात् ।  
चन्दनमत्र धवलं तस्य अतितृष्णाहरत्वात् ।  
शृतमर्द्धपक्वमत्र कर्तव्यम् । इति षडङ्गपानम् ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, धनिया, खस और चन्दन इन सबको जलमे औटाकर उस जलको शीतल करके पीनेसे तृषा, दाह और ज्वर शांत होजाताहै इसमें कुछेक आमले भी डालने चाहिये । यहा चन्दन शब्दसे लालचन्दन नहीं सफेद चन्दन समझना चाहिये । कारण यह है कि, सफेद चन्दनसे तृषा विशेष करके दूर होतीहै । इसे औटाते समय जब इसमेंसे आधा जल जलजाय तब इसको अग्निपैसे उतार लेना चाहिये । इस जलको 'षडङ्गपान' ऐसा कहतेहैं ॥ १५ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम् ॥  
काश्मरीशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णादितो नरः ॥ १६ ॥

धानकी खीलोको शीतल जलमें भिजो देवे, फिर उसको मलकर उसमें गुड घोलकर कुम्भेरके फल और मिश्री डालकर पियै तो उससे तृषाकी पीडा शांत होजा-  
तीहै ॥ १६ ॥

आस्तरणमार्द्रवासः प्रावरणं चार्द्रवासः  
स्यात् ॥ तेन पिपासा शाम्यति दाहश्चो-  
ग्रोऽपि देहिनां नियतम् ॥ १७ ॥

भीजेहुए वस्त्रपर सोनेसे अथवा भीजे वस्त्रको ओढकर सोनेसे तृषा और उग्र दाह नष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥

गोस्तनीक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूतपलैः॥ नि-  
यतं नासिकापीते तृष्णा शाम्यति दा-  
रुणा ॥ १८ ॥

ईखका रस और दूध मिलाकर उसमें दाख, मुलहठी, सहत और कमल डालकर उसको नासिकाके द्वारा पान करनेसे दारुण तृषा शांत होजातीहै ॥ १८ ॥

वैशद्यं जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखे  
जलम् ॥ तृष्णादाहप्रशमनं मधुगण्डूषधार-  
णम् ॥ १९ ॥

मुखमें विगदता उत्पन्न होतीहै और गीलापन होताहै । तथा सहतका गण्डूष ( कुल्ला ) मुखमें धारण करनेसे घोर तृषा और दाह दूर होतीहै ॥ १९ ॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि निधापये-  
त् ॥ केशरं मातुलुंगस्य घृतसैन्धवसंयु-  
तम् ॥ २० ॥

जीभ, तालु, कण्ठ और तृषा लगनेका स्थान सूखता होय तो विजोरे नीबूके रसको घीमें तथा सैन्धेनिमकमें पीसकर मस्तकपर लगावे तो तुरन्त शान्ति होय ॥ २० ॥

दाडिमं बदरं लोध्रं कपित्थं बीजपूरकम् ॥  
पिष्ट्वा मूर्द्धनि लेपस्तु पिपासादाहना-  
शनः ॥ २१ ॥

अनार, बेर, लोध, कैथ और विजोरानीबू इनको एकत्र पीसकर मस्तकपर प्रलेप करनेसे तृषा और दाह शांत होतीहै ॥ २१ ॥

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासि-  
तम् ॥ पाययेद्दामयेच्चाथ तेन तृष्णा  
प्रशाम्यति ॥ २२ ॥

तृषातुर मनुष्यको सहत डालकर शीतल जल गले तक पिलाकर कय करादेवे तो तृषा शांत होजायगी ॥ २२ ॥

प्रातः शर्करयोपेतः काथो धान्याकसम्भ-  
वः ॥ जयेत्तृष्णां तथा दाहं भवेत्स्रोतो-  
विशोधनम् ॥ २३ ॥

प्रातःकाल धनियोंका काथ बनाकर उसमें खाड डालकर पीनेसे तृषा और दाह दूर होजातीहै और स्रोत शुद्ध होजातेहैं ॥ २३ ॥

आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम् ॥  
एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे ॥

तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषश्च दारु-  
णम् ॥ २४ ॥

आमले, कमल, कूठ, धानकी खीलें और वडके  
अकुर इन सबका एकत्र चूर्ण करके सहतमें गोली  
बनाकर मुखमें रखनेसे महा उग्र तृषा और मुखका दारुण  
शोष नष्ट होजाताहै ॥ २४ ॥

क्षतोद्भवां रुग्निनिवारणेन जयेद्रसानाम-  
सृजश्च पानैः ॥

घ्रावके होनेसे उत्पन्नहुई तृषाको उसकी पीडाको दूर  
करनेसे, रसोंको पिलानेसे और रुधिरके पिलानेसे दूर करे ।

क्षयोत्थितं क्षीरजलं निहन्यान्मांसोदकं  
वा मधुरोदकं वा ॥ २५ ॥

रसके क्षय होनेसे उत्पन्नहुई तृषाको दूधसहित जल  
पिलाकर, मासका रस पिलाकर और मधुर पानी (शरबत  
वर्गरेह ) पिलाकर शमन करै ॥ २५ ॥

आमोद्भवां विल्ववचायुतानां जयेत्कषायै-  
रथ दीपनानाम् ॥

आमसे उत्पन्नहुई तृषाको वेलगिरी और वच तथा  
दीपन पदार्थोंका काथ पिलाकर शमन करै ॥

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेच्च क्षयं विना सर्व-  
कृताश्च तृष्णाम् ॥ २६ ॥

उल्लिखनैः लेखनद्रव्यैः ॥

भारी भोजन करनेसे तृषा उत्पन्न होय तो कफको  
उखाटनेवाले पदार्थोंसे दूर करे । क्षयकी तृषाको छोड़कर  
सर्व प्रकारकी तृषाको इनहीं पदार्थोंसे दूर करना  
चाहिये ॥ २६ ॥

स्निग्धेन भुक्ते या तृष्णा स्यात्तां गुडाम्बु-  
ना शमयेत् ॥ अतिरोगदुर्वलानां तृष्णां  
शमयेन्नृणामिहाशु पयः ॥ २७ ॥

पयोऽत्र दुग्धम् ॥

स्निग्ध अन्नको भक्षण करनेसे जो तृषा उत्पन्न होय  
तो उसको गुडके सरबनसे शांत करे । अत्यंत रोगसे  
दुर्बल हुए मनुष्यकी तृषा दूधसे तत्काल शांत होजा-  
तीहै ॥ २७ ॥

मूर्च्छाछिदितृषानाहस्त्रीमद्यभृशकार्षिताः ॥

पिवेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ॥

॥ २८ ॥ सात्प्यान्नपानभैषज्यैस्तृष्णां

तस्य जयेत्पुरः ॥ तस्यां जितायामन्योऽपि  
व्याधिः शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ २९ ॥

मूर्च्छा, वमन, तृषा, अफारा, क्रीप्रसग और मद्यमा-  
नसे पीडित मनुष्योंको शीतल जल पिलावे ॥

रक्तपित्तमे तथा मदात्ययमे हितकारक अन्न पानोंसे  
एव हितकारक औषधियोंसे तृषाको शांत करै । जब तृषा  
शांत होजाय तो फिर पश्चात् दूसरे रोग भी चिकित्सा करने  
योग्य होजातेहैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

तृषापूर्वमपक्षीणो न लभेत जलं यदि ॥  
मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वारितं  
नरः ॥ ३० ॥

तृषासे व्याकुल हुए मनुष्यको प्रथम जो जल न मिले  
तो वह मनुष्य मरजाताहै अथवा कोई बड़ा रोग उत्पन्न  
होताहै ॥ ३० ॥

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्च-  
ति ॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न कचिद्धारि-  
वारयेत् ॥ ३१ ॥ अन्नेनापि विना जन्तुः  
प्राणान्धारयते चिरम् ॥ तोयाभावात्पि-  
पासार्तः क्षणात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ ३२ ॥

इति तृष्णाधिकारः ।

तृषातुर मनुष्यको मोह उत्पन्न होताहै और मोहसे  
प्राण नष्ट होजातेहैं । इस कारण कभी किसी अवस्थामें  
भी जल देना वर्जित नहींहै । अन्नके न मिलनेपर तो  
प्राणी बहुत दिनोंतक जीसक्ताहै किंतु जलके न मिलनेपर  
तृषासे पीडित मनुष्य क्षणमात्रमें मरजाताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति तृष्णाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मूर्च्छाधिकारः ।

तत्र मूर्च्छानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ॥

वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥

॥ १ ॥ करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वभ्यन्तरेषु

च ॥ निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति

मानवाः ॥ २ ॥

क्षीणहुए, बहुत दोषवाले, विरुद्ध भोजनको सेवन करनेवाले, मलमूत्रादिकके वेगोको रोकनेवाले, लकड़ी आदिकी जिनके चोट लगी हो और अल्प सत्त्व गुणवाले जिनके मनके स्थानोमें ज्ञानेन्द्रियोमें और कर्मेन्द्रियोमें दोष प्रवेश करतेहैं उनको मूर्च्छा उत्पन्न होतीहै ॥ १ ॥ २ ॥

बहुदोषस्य अधिकदोषस्य न तु अनेकदोषस्य । तदा मूर्च्छा त्रिदोषजैव स्यात् तथैव अस्तु को दोषः तत्र पृथक् दोषजानां मूर्च्छानां वक्ष्यमाणत्वात् । वेगाघातात् मलादेः, अभिघातात् लगुडादिना हीनसत्त्वस्य स्वल्पसत्त्वगुणस्य, अर्थात् अधिकतमोगुणस्य । यत उक्तम् “मूर्च्छा पित्ततमःप्राया” इति । करणायतनेषु करणं मनस्तस्य आयतनेषु स्वस्थानेषु बाह्येषु कर्मेन्द्रियेषु आभ्यन्तरेषु बुद्धीन्द्रियेषु ॥

‘बहुत दोषवाले’ इस शब्दका अर्थ ‘अधिक दोषवाले’ ऐसा समझना । ‘अनेक दोषवाले’ ऐसा नहीं समझना । कारण यह है कि, यदि ऐसा समझा जाय तो मूर्च्छा तीनों दोषोंके समुदायसे होतीहै ऐसा अर्थ होताहै ।

शका—मूर्च्छा तीनों दोषोंके समुदायसे होतीहै ऐसा अर्थ होनेमें क्या अनुचित है ?

समाधान—एक एक दोषसे मूर्च्छा होती है ऐसा कहा है, इस कारण यहा निदानपूर्वक सम्प्राप्तिके विषयमें तीनों दोषोंके समुदायसे मूर्च्छा होतीहै, ऐसा कहना उचित नहीं है ।

‘अल्प सतोगुणवाले मनुष्यको मूर्च्छा आतीहै’ इस वाक्यका अर्थ ‘अधिक तमोगुण वालेको मूर्च्छा आतीहै’ ऐसा समझना । कारण यह है कि, मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक होताहै ।

अथ मूर्च्छासामान्यलक्षणम् ।

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः । तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ॥ मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

तमोगुणः अज्ञानहेतुः । अभ्युपैति आगच्छति । सुखदुःखव्यपोहकृत्सुखदुःखज्ञाननाशकरम् । नष्टे सुखदुःखज्ञाने नरः काष्ठवत्पतति तां मोहो मूर्च्छेति प्राहुः इत्यन्वयः । मूर्च्छाया मूर्च्छायाऽपि पर्यायः । यत उक्तम्—

संज्ञोपघातो मूर्च्छाया मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छनं तथा ॥ कश्मलं प्रलयो मोहः संन्यासस्तु मृतोपमः ॥ ५ ॥

संज्ञाको वहानेवाली नाडियोंको वायु आदिसे अवरुद्ध होनेपर सहसा सुखका तथा दुःखका ज्ञान नष्ट करनेवाला तमोगुण प्राप्त होताहै और इस तमोगुणसे, सुख दुःखका ज्ञान नष्ट होकर मनुष्य काष्ठकी समान गिरजाताहै यह रोग मूर्च्छा अथवा मोह कहाजाताहै और यह मूर्च्छा छः प्रकारकी है । मूर्च्छाका पर्यायशब्द ‘मूर्च्छाय’ भी है, कहा भी है कि “संज्ञोपघात, मूर्च्छाय, मूर्च्छा, मूर्च्छन, कश्मल, प्रलय और मोह, ये सब मूर्च्छाके नाम हैं । जिससे यह मनुष्य मृतककी समान होजाय ऐसा जो मोह वह ‘संन्यास’ कहाजाताहै ॥ ३-५ ॥

अथ मूर्च्छाषड्विधत्वम् ।

वातादिभिः शोणितेन मध्येन च विषेण च ॥ षट्स्यप्येतासु पित्तन्तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ६ ॥

यत उक्तम्—मूर्च्छा पित्ततमःप्रायेति ॥

वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मद्यसे उत्पन्न होनेवाली और विषसे उत्पन्न होनेवाली ऐसी मूर्च्छा छै प्रकारकी हैं । इन सब प्रकारकी मूर्च्छाओंमें भी पित्त अध्यक्षपनेसे रहताहै ।

कहा भी है कि, मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिकतासे होता है ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छापूर्वरूपम् ।

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलक्षयः ॥ सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं तां विभावयेत् ॥ ७ ॥



हृदयकी पीडा, जम्माइओंका आना, रूखानि, संजाका नाश और बलका नाश ये सब मूर्च्छाओंके पूर्व लक्षण हैं। आगे उसके वातादि भेदोंसे अलग अलग लक्षण कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ वातमूर्च्छालक्षणम् ।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथ वारुणम् ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं प्रतिबुध्यते ॥ ८ ॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च ॥ कार्यं श्यावारुणा छाया मूर्च्छाये वातसम्भवे ॥ ९ ॥

नीलं नीलवर्णम्, कृष्णं कज्जलाभम् अरुणम् अलक्तरागम्, तमः प्रतिशति मूर्च्छति श्यावारुणा छाया गात्रस्य ॥

वातकी मूर्च्छामें आकाशको नीला, काला अथवा लाल देखता देखता मूर्च्छित होजाताहै, फिर तत्काल चैतन्य अर्थात् होशमें होजाताहै। शरीरमें कंप, अंगोंमें तोड़ने सरीखी पीडा, हृदयमें पीडा, शरीर कुश होजाताहै और शरीरका रंग कालेपनको लिये लाल होजाताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ पित्तजमूर्च्छालक्षणम् ।

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदः प्रतिबुध्यते ॥ १० ॥ सपिपासः ससन्तापो रक्तपित्ताकुलेक्षणः ॥ सम्भिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसम्भवे ॥ ११ ॥

आकाशको लाल, हरा, अथवा पीले रंगका देखता २ मूर्च्छित होजाय, पसीने युक्त होकर फिर होश हो, तृषा लगे, सताप उत्पन्न हो, नेत्र लाल तथा पित्तसे व्याकुल होजाय, दस्त पतला होनेलगे और शरीरका रंग पीला होजाय तो जानना कि, उसको पित्तसे मूर्च्छा उत्पन्न हुई है १० ॥ ११ ॥

अथ कफमूर्च्छालक्षणम् ।

मेघसङ्काशमाकाशं तमोभिर्वा धनैर्वृतम् ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ १२ ॥ गुरुभिः प्रावृत्तैरङ्गैर्यथेवाद्र्देण चर्मणा ॥ सप्रसेकः सहस्रासो मूर्च्छाये कफसम्भवे ॥ १३ ॥

मेघसंकाशं शुभ्रमेघसंकाशमित्यर्थः ॥

यत आह सुश्रुतः “ कफेन पश्येद्रूपाणि श्वेताभ्रप्रतिमानि तु ” । धनैर्निबिडैस्तमोभिः । गुरुभिरङ्गैरुपलक्षितः मूर्च्छायः

षड्विध उक्तः सुश्रुतेन-

आकाशको बादलोंसे आच्छादित देखकर अथवा घोर अंधकारसे घिरा हुआ देखकर मूर्च्छित होजाय। फिर बहुत कालमें चैतन्य हो, जिसप्रकार गीले चमड़ेसे ढकदेते हैं उसी प्रकार उसका शरीर भारी अंगोंसे युक्त जान पड़ता है। मुखमें पानी भर भर आवै और उबकाई आवै तो जानना कि, यह कफकी मूर्च्छा है।

‘बादल’ यहां जो बादल शब्द कहा सो बादल सुफेद समझने। क्योंकि सुश्रुतने कहा है कि, कफसे सुफेद बादलोंकी समान रूपोंको देखताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ चरकमतेन त्रिदोषज-  
मूर्च्छालक्षणम् ।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः ॥

सजन्तुं पातयत्याशुविना वीभत्सचेष्टितैः १४

अपस्मार इवागतस्तेन महता अभिघातेन पतति चिरेण प्रतिबुध्यते तर्हि तयोः को भेद इत्यत आह-

सान्निपातिकमूर्च्छाया विना वीभत्सचेष्टितैः ॥

कफेन वमनदन्तघट्टनाक्षिविकृत्यादिभिर्विना पातयति ॥ १५ ॥

जो मूर्च्छा सन्निपातसे होतीहै उसमें तीनों दोषोंके चिह्न देखनेमें आतेहैं और उसमें मृगीकी समान मनुष्य बड़े जोरसे गिरजाताहै उससे गिराहुआ मनुष्य बहुत कालमें चैतन्य होताहै।

जब मृगी और सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण तो एकसेही मिलतेहैं। फिर इनमें अंतरही क्या रहा? यदि कोई ऐसी शका करे तो उसके समाधानके लिये चरक कहता है कि “मृगीमें श्लागोंसहित वमन” दांतोंका चवान और नेत्रोंमें विकृति इत्यादिक भयानक चेष्टा होतीहै और सान्निपातिक मूर्च्छामें यह चेष्टा नहीं होती ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ रुधिरोत्पन्नमूर्च्छानिदानम् ।

पृथिव्यम्भस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः ॥

तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥ १६ ॥

तमोरूपं तमोबहुलम् । मानवाश्च ये तामसाः । न तु सात्त्विका राजसाश्च । अत्रैके वदन्ति नैव युक्तिः समीचीना तर्हि चम्पकादिगन्धेन अपि मूर्च्छा प्रसज्येत तत्रापि गन्धस्य पार्थिवत्वात् । अत आह—

द्रव्यस्वभावमित्येके दृष्ट्वा यदपि मुह्यति ॥

दर्शनादसृजस्तज्जाद्रन्धाच्चैव प्रमुह्यति ॥ १७ ॥

पृथिवी और जल यह दोनों तमोगुणके अधिक अंशो युक्त हैं । और गंध तथा रुधिर पृथिवीके तथा जलके पदार्थ रूप हैं इस कारण सतोगुणी और रजोगुणी नहीं किन्तु जो तमोगुणी मनुष्य हैं वह रुधिरकी गंधसे मूर्च्छित होजाते हैं ।

इस विषयमे बहुतसे मत हैं कोई कहते हैं कि, गंध तमोगुणके कार्यरूप पृथ्वीका भाग है इस कारण इससे मनुष्य मूर्च्छित होते हैं यह युक्ति ठीक नहीं । क्योंकि यदि ऐसा होय तो चंपक आदिकी गंध भी पृथ्वी सम्बन्धी है इसलिये उसकी गंधसे भी मूर्च्छा होनी चाहिये ।

इस युक्तिको छोडकर कितनेक वैद्य कहते हैं कि, “रुधिरकी गंधसे नहीं किन्तु रुधिरके देखनेसे अत्यंत मूर्च्छा होती है । यह रुधिरके ऐसे स्वभाव होनेसे ही होती है” ।

भोज तो ऐसा कहता है कि, रुधिरके दर्शनसे और गंधसे भी मूर्च्छा होती है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ रुधिरमूर्च्छालक्षणम् ।

स्तब्धांगयष्टिस्त्वसृजाद्रूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ १८ ॥

रुधिरकी मूर्च्छा होय तो शरीर स्तब्ध ( जकडासा ) होजाता है और गूढ श्वास होजाता है ॥ १८ ॥

अथ मद्यमूर्च्छालक्षणम् ।

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ॥ त एव तस्मात्ताभ्यान्तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १९ ॥

ये गुणाः लघुरूक्षाशुविशदव्यवायितीक्ष्णविकाशिसूक्ष्मोष्णानिर्देश्यरसत्वादयः तैलादौ द्रव्ये व्यस्तास्तीव्राश्च सन्ति त एव

गुणाः विषमद्ययोस्तु तीव्रतरत्वेन स्थिताः तत्रापि भेदः—“त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः” इति ॥

लघुता, रुक्षता, शीघ्रता, विशदता, व्याधिपन, तीक्ष्णता, विकाशीपन, सूक्ष्मपन, उष्णपन और निरूपण करनेके लिये अशक्य रसयुक्तपन, इत्यादि जो गुण तैलादिक पदार्थोंमें अलग अलग रहते हैं और तीव्र हैं वही गुण विषमें और मद्यमें अत्यंत तीव्रतासे रहते हैं । उनसे भी इतना भेद है कि, मद्यकी अपेक्षा ये गुण विषमें अधिक बलवान् हैं, मद्यमें तथा विषमें ये गुण दोनों होनेसे मद्य और विषसे मूर्च्छा होती है ॥ १९ ॥

अथ मद्यमूर्च्छालक्षणम् ।

मद्येन प्रलपञ्छेते नष्टविभ्रान्तमानसः ॥

गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ २० ॥

नष्टविभ्रान्तमानसः नष्टं सर्वथा स्मृतिहीनं विभ्रान्तं रज्जौ सर्पज्ञानयुक्तं मानसं यस्य सः । जरां जीर्णताम् । तन्मद्यम् ॥

मद्य ( सराव ) की मूर्च्छामें मन सर्वथा स्मृतिहीन होजाता है और ऐसी भ्रान्ति होजाती है कि, जेवरी ( रस्सी ) आदिको सोंप समझने लगता है जबतक पी हुई मदिरा जीर्ण नहीं होती तबतक मूर्च्छित मनुष्य अपने अंगोंको धरतीपर पटका करता है ॥ २० ॥

अथ विषमूर्च्छालक्षणम् ।

वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युः स्तम्भश्च विषमूर्च्छिते ॥ वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ २१ ॥

विषस्य मूलकन्दफलपत्रक्षीरादिभेदभिन्नस्य यथास्वं लक्षणमुक्तं सुश्रुते कल्पस्थाने तल्लक्षणं मद्यापेक्षया तीव्रतरं वेदितव्यं न तु संज्ञानाशेन साम्यधर्मात् ॥

विषकी मूर्च्छामें कप, निद्रा, तृषा और अधिकार उत्पन्न होता है, विषके जो मूल, कद, फल, पत्र और क्षीरा-दिक अलग अलग भेद हैं उनके जो जो लक्षण सुश्रुतके कल्पस्थानमें कहे हैं वही वही लक्षण मद्यके लक्षणोंकी अपेक्षा अधिक तीव्र हैं ऐसा जानना । किन्तु संज्ञानाश करनेका धर्म मद्यमें और विषमें समान है कुछ लक्षण समान नहीं हैं ॥ २१ ॥

अथ मूर्च्छाभ्रमतंद्रादिपरस्परभेदः ।

मूर्च्छा पित्ततमः प्राया रजःपित्तानिलाद् भ्रमः ॥ तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्म-तमोभवा ॥ २२ ॥

रजःपित्तानिलाद् भ्रम इति न अत्र समु-च्चयः । केवलपित्तज्वरे भ्रमस्य उक्तत्वाद् भ्रमश्च चकारूढस्येव भ्रमवस्तुज्ञानं स्वदेहस्य भ्रमत इव ज्ञानश्च ॥

मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक होता है, भ्रम, रजोगुण, पित्त और वायुसे होता है, तत्रा तमोगुण, वायु और कफसे होती है और निद्रा, कफ तथा तमोगुणसे होती है ।

रजोगुण पित्त और वायु इन तीनोंके समुदायसे भ्रम होता है ऐसा नहीं समझना क्योंकि केवल पित्तज्वरमें भी भ्रम होता है ऐसा कहा है ।

जिसप्रकार घूमते हुए चाकके ऊपर सम्पूर्ण पदार्थ घूमते हुए दिखाई देते हैं उसीप्रकार सब वस्तुओंको घूमता हुआ देखे और अपने शरीरको भी घूमता हुआ देखे, यह लक्षण जिसमें होते हैं उसको भ्रम कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ तंद्रालक्षणम् ।

इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ॥ निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दि-शेत् ॥ २३ ॥

इन्द्रियाणामर्थः प्रयोजनं येषु अर्थाद्विषये-षु, असंवित्तिः असम्यक् ज्ञानम् इति इन्द्रि-यार्थाऽसम्यग्ज्ञानादि। निद्रायां प्रबुद्धस्य क्लमा-भावस्तन्द्रायान्तु प्रबोधितस्याऽपि क्लम इत्य-नयोर्भेदः ।

निद्रासे विरे हुएकी समान जिसमें विषयोंका ज्ञान नष्ट हो जाय, शरीरमें भारीपन, जम्भार्द, तथा क्लम ( ग्लानि ) प्राप्त हो उनको तन्द्रा कहते हैं । जब मनुष्यको निद्रा आती-

है फिर जागनेपर उसको क्लम नहीं रहता और तन्द्रामें तो जागनेके पश्चात् भी क्लम रहता है । इतना ही निद्रामें और तन्द्रामें भेद है ॥ २३ ॥

अथ क्लमलक्षणम् ।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रबुद्धः श्वासस-ङ्गतः ॥ क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थ-प्रबाधकः ॥ २४ ॥

इन्द्रियाणां बुद्धीन्द्रियाणां कर्मेन्द्रिया-णाञ्च । अर्थः प्रयोजनं विषयग्रहणं तस्य प्रबाधकः प्राबल्येन बाधकः ॥

बिना ही परिश्रमकिये उत्पन्न हो, श्वाससंयुक्त और जानोन्द्रियोंके तथा कर्मेन्द्रियोंके विषयोंके ग्रहणको जो अत्यंत रोकनेवाला देहमें श्रम होता है उसको क्लम कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ निद्रालक्षणम् ।

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमा-न्विताः ॥ विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपि-ति मानवः ॥ २५ ॥

क्लान्ते ग्लाने श्रान्ते इति यावत् कर्मात्मा-नः क्लमान्विताः कर्मेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि च क्लमान्विताः इन्द्रियाणि श्रान्तानि ॥

जब मन क्लमको प्राप्त होकर थकी हुई जानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके विषयके ग्रहणसे रुकता है तब मनुष्य सोजाता है ॥ २५ ॥

अथ संन्याससम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ॥ संन्यस्यन्त्यवलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रि-ताः ॥ २६ ॥ स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ॥ प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्ता सद्यः फलां क्रियाम् ॥ २७ ॥

आक्षिप्य विनाश्य संन्यस्यन्ति मूर्च्छ-यन्ति प्राणायतनं हृदयम् । संन्यस्तः मूर्च्छितः काष्ठीभूतः क्रियारहितः । अत

एव मृतोपम इति । सद्यः फलां क्रियां  
सूचीव्यधनाञ्जनावपीडकपिकच्छुधर्षणवृ-  
श्चिकादिदंशनादिरूपाम् ॥

जब हृदयमें रहनेवाले अत्यंत बलवान् कुपित दोष  
प्राणोके स्थानरूप हृदयमें वाणीकी, देहकी तथा मनकी  
चेष्टाको नष्ट करके बलहीन मनुष्यको मूर्च्छित करदेतेहैं  
उसको संन्यास कहतेहैं । जब वह मनुष्य काष्ठकी समान  
क्रियारहित मृतककी समान होजाताहै । इस मनुष्यके  
शरीरमें सुई चुभोना, तीक्ष्ण अजन लगाना, तीक्ष्ण नस्य  
देना, कौंचकी फली घिसकर लगानी, और बिच्छू आदिसे  
कटवाना इत्यादि तत्काल फल करनेवाली क्रिया यदि न  
की जावे तो यह मनुष्य शीघ्र ही मर जाताहै २६॥२७॥

अथ संन्यासमूर्च्छाभेदः ।

दोषेषु मदमूर्च्छाया गतवेगेषु देहिनः ॥  
त्वयमप्युपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधै-  
र्विना ॥ २८ ॥

मदमूर्च्छाया मदः अप्रवृद्धः उन्मादः ।  
मूर्च्छायो मूर्च्छा ।

दोषोंके वेगवतीतनेपर मूर्च्छा और नहीं बढ़ा हुआ  
उन्माद अपने आपही शांत होजातेहैं किन्तु संन्यास तो  
विना औषधियोंके शांत होताही नहीं ॥ २८ ॥

अथ मूर्च्छाचिकित्सा ।

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः  
प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ॥ शीतानि पाना-  
नि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनि-  
वारितानि ॥ २९ ॥

मणयश्चन्द्रकान्तादयः । हारा मुक्तादि-  
हाराः शीताः प्रदेहाः सकर्पूरचन्दनानुलेप-  
नानि । शीतानि पानानि सितामलकादि-  
पानकानि । गन्धवन्ति कर्पूरादिसुगन्धवन्ति ।  
सर्वासु मूर्च्छासु अनिवारितानि । अस्यायम-  
भिप्रायः सेकादीनि अन्यासु मूर्च्छासु हितानि  
एव किन्तु वातश्लेष्मजामु अपि न निवारि-  
तानि तत्र अपि पित्तस्य प्राधान्यात् ॥

सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि सदाडिमा  
जांगलजा रसाश्च ॥ तथा यवा लोहि-  
तशालयश्च मूर्च्छासु पथ्याः ससतीन-  
मुद्राः ॥ ३० ॥

सतीनः कलायः ॥

शीतल जलका सीचना, शीतल जलमें अवगाहन,  
चन्द्रकांत आदि मणि और मोती आदिके हारोंका धारण,  
कपूर मिश्रित चंदनादिकका लेपन, मिश्री संयुक्त और  
कपूरसे सुवासित किया हुआ आमले आदिके रसका पानक,  
और पखेकी पवन ये सब उपचार सर्वप्रकारकी मूर्च्छासे  
हितकारी हैं ।

मधुर औषधियोंके द्वारा पकाहुआ दूध, दाडिमका  
रस मिला हुआ जांगल देशके जीवोंका मासरस, जो, लाल-  
चावल, मटर और मूंग ये सब मूर्च्छामें पथ्य हैं २९॥३०॥

कोलमज्जाषणोशीरकेसरं शीतवारिणा ॥  
पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढा कृष्णां वा मधुसं-  
युताम् ॥ ३१ ॥

बेरकी गिरी, काली मिरच, खस और नागकेसर  
इनको शीतल जलके साथ पीसकर पीनेसे मूर्च्छा नष्ट  
होतीहै ॥ ३१ ॥

शीतेन तोयेन विषं मृणालं कृष्णाश्च  
पथ्यां मधुनाऽवल्लिह्यात् ॥ कुर्याच्च नासा-  
वदनावरोधं क्षीरं पिबेद्वाप्यथ मानुषी-  
णाम् ॥ ३२ ॥ द्राक्षासितादाडिमलाज-  
वन्ति कट्टारनीलोत्पलपद्मवन्ति ॥ पिबे-  
त्कषायाणि च शीतलानि पित्तज्वरं यानि  
च यापयन्ति ॥ ३३ ॥ शिरीषबीजगो-  
मूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ॥ अञ्जनं स्या-  
त्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ३४ ॥  
अञ्जनं सम्यगारब्धं मधुसिन्धुशिलोषणैः ॥  
प्रमोहद्रोहि भवति भाषितं भिषजां  
वरैः ॥ ३५ ॥

शिला मनःशिला । ऊषणं मरिचम् ॥

मधूकसारसिन्धूत्वचोषणकणाः समाः॥  
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबो-  
धनम् ॥ ३६ ॥

पीपलका चूर्ण वनाकर सहतमे मिलाकर चाटनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है । कमलका कंद, कमलकी नाल, पीपल और हरड इनको पीसकर सहतके साथ चाटनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है । नाकके तथा मुखके खोंसको रोकनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है । त्रीका दूध पीनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है ।

दाख, खाड, अनार, धानकी खीलें, दहीका तोड, नीले कमल और सुफेद कमल इनका शीतल कषाय ( हिम ) पिये और जो काय पित्तज्वरको नष्ट करनेवाले हैं वह भी पिये ।

सिरसके बीज पीपल, कालीमिरच, सैधानिमक, लसुन, भैरवशिल, और वच इनको गोमूत्रमें पीसकर अजन वनाकर नेत्रोंमें आँजनेसे चेतना प्राप्त होती है ।

सहत, सैधानिमक, भैरवशिल और काली मिर्च इनका अंजन अच्छे प्रकारसे वनाकर नेत्रोंमें आँजनेसे मूर्च्छाकी वेहोसी दूर होजाती है ।

मधुवेका सार, सैधानिमक, वच, मिर्च और पीपल इनको समान भाग लेकर जलमें चारीक पीसकर नास छेनेसे संज्ञा उत्पन्न होती है ॥ ३२-३६ ॥

अथ रुधिरोत्पन्नमूर्च्छादि-  
चिकित्सा ।

रक्तजायान्तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रिया-  
विधिः ॥ मद्यजानां पिवेन्मद्यं निद्रां  
संवेत वा सुखम् ॥ विषजायां विषघ्नानि  
भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

रुधिरकी मूर्च्छामें शीत चिकित्सा हितकारी है । मद्यकी मूर्च्छामें फिर दुबारा मद्य पिये अथवा सुख पूर्वक सोना हितकारी है । और विषकी मूर्च्छामें विषनाशक औषधियोंका प्रयोग हितकारी है ॥ ३७ ॥

अथ संन्यासचिकित्सा ।

प्रभूतदापस्तमसोऽतिरेकात्सम्मूर्च्छितो नैव  
विशुध्यते यः ॥ संन्यस्तसंज्ञः स हि दु-  
श्चिकित्स्यो नरो भिषग्भिः परिकीर्तितो-  
ऽसौ ॥ ३८ ॥ अज्ञानान्यवपीडाश्च

धूमाः प्रथमनानि च ॥ सूचीभिस्तोदनं  
शस्तं दाहपीडा नखान्तरे ॥ ३९ ॥  
लुञ्चनं केशलोम्नाश्च दन्तैर्दशनमेव च ॥  
आत्मगुप्तावधर्षश्च हितस्तस्य प्रबो-  
धने ॥ ४० ॥

अवपीडः कल्कीकृतौषधरसस्य नासापुटे  
दानम् । प्रथमनम् औषधचूर्णस्य द्विमुख्या  
नाडिकया मुखवातेन नासापुटे दानम् ।  
तस्य संन्यस्तस्य ॥

अधिक दोषवाला मनुष्य तमोगुणकी अधिकतासे मूर्च्छित होकर पीछे जाग्रत नहीं हो उसको वैद्य संन्यास रोग युक्त कहते हैं और उसकी चिकित्सा अत्यंत कठिन है ।

संन्यास रोगवाले मनुष्यके अजन लगावे औषधि-  
योंका कल्क वनाकर उनका रस नाकमें निचोड़े, धुँवाँ देवे, औषधिके चूर्णको दो मुखवाली नलीमें भरकर उसमें मुखसे फूक मारकर नाकमें चढ़ावे । अगोंमें सुई चुभोवे, नखूनोंमें आशिका दाह देवे, केश और रोमोंको उखाड़े, दाँतोंसे कटवावे और शरीरपर कौँछकी फलीको धिसे ॥ ३८-४० ॥

अथ मूर्च्छोपयोगीरसः ।

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायां प्राशयेद्भि-  
षक् ॥ शीतसेकावगाहादीन्सर्वांगे पीडनं  
हठात् ॥ ४१ ॥ ताम्रचूर्णसमोशीरं केशरं  
शीतवारिणा ॥ पीतं मूर्च्छां द्रुतं हन्या-  
दृक्षामिन्द्राशनियथा ॥ ४२ ॥

ताम्रचूर्णं मारितताम्रचूर्णम् ॥

वैद्य मूर्च्छाको दूर करनेके लिये पारेकी भस्मको पीप-  
लके चूर्ण और सहतके साथ चढ़ावे, शीतल सेचन और  
शीतलजलका अवगाहन आदि कर्मकरे । तथा बलात्कारसे  
सम्पूर्ण अंगोंको दबावे ।

तावेकी भस्म, खस और नागकेसर इनको समान  
भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर शीतल जलके  
साथ पीनेसे जिस प्रकार बिजलीसे वृक्ष नष्ट होजाते हैं  
उसी प्रकार इससे मूर्च्छा तत्काल नष्ट होजाती  
है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥



अथ भ्रमचिकित्सा ।

पिबेदुरालभाक्काथं सघृतं भ्रमशान्तये ॥  
पथ्याक्काथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा  
॥ ४३ ॥ शुण्ठीकृष्णाशताह्वानां साभ-  
यानांपलपलम् ॥ गुडस्य पट्टपलान्येषा  
गुटिका भ्रमनाशिनी ॥ ४४ ॥ ताम्रं दुरा-  
लभाक्काथैः पीतन्तु घृतसंयुतम् ॥ निवारयेद्  
भ्रमं शीघ्रं तं यथा शंभुभाषितम् ॥ ४५ ॥

धमासेका काथ बनाकर घी डालकर पीनेसे भ्रम  
( भौर ) दूर होजाताहै । हरडके काथसे अथवा आमलोंके  
रससे सिद्ध किये हुए घीको पीनेसे भ्रम दूर होजाताहै ।

सोठ, पीपल, सतावर और हरड ये सब औषधि चार  
चार तोले और गुड चौबीस तोले इन सबको मिलाकर  
चेर बराबर गोली बनाकर खाय तो भ्रमरोगका विनाश  
होताहै ।

तावेकी भस्मको जवासेके काथके साथ मिला कर  
पिये तो तुरन्तही भ्रमरोग शान्त होताहै, जिस प्रकार  
शिवजीने शिवसंहितामें कहाहै ॥ ४३-४५ ॥

अथ तन्द्रानिद्राचिकित्सा ।

तुरंगलालालवणोत्तमेन्दुमनःशिलामाग-  
धिकामधूनि ॥ नियोज्य तान्यक्षिण  
विमिश्रितानि तन्द्रां सनिद्रां विनिवार-  
यन्ति ॥ ४६ ॥

इन्दुः कर्पूरः ॥

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ॥  
बस्तमूत्रेण सम्पिष्टं नस्यं तन्द्रानिवा-  
रणम् ॥ ४७ ॥

श्वेतमरिचं शिशुबीजम् ॥

शुण्ठीकणोग्रालवणोत्तमानि नस्येन तन्द्रा-  
विजयोल्वणानि ॥ क्षुद्रामृतापौष्करना-  
गराणि भाङ्गीशिवाभ्यां कथितानि  
पानात् ॥ ४८ ॥

शिवा हरीतकी ॥

इति मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्रासंन्यासाधिकारः ।

घोडेकी लारमें, सैधानिमक, कपूर, मैनाशिल, पीपल  
और सहत इनको महीन पीसकर नेत्रोंमें लगावे तो निद्रा-  
सहित तन्द्रारोग निवारण होताहै ।

सैधानिमक, सहेजनेके बीज, सरसो और कूट इन  
सबको कूट पीसकर बकरेके मूत्रमें खरलकरके नास लेय  
तो उसी समय तन्द्राका नाश होताहै ।

सोठ, पीपल, वच और सैधानिमक इनको महीन पीस  
कर नास लेय तो महाघोर तन्द्राका भी विनाश होताहै ।

कटेहरी, गिलोय, पुहकरमूल, सोठ, भारगी और  
हरडके काठेको पीनेसे तन्द्रा और निद्रा दोनोंका निवारण  
होताहै ॥ ४६-४८ ॥

अथ मद्यतयाधिकारः ।

तत्र मद्यस्वभावः ।

मद्य स्वभावतः प्राज्ञयथैवान्नं तथा स्मृ-  
तम् ॥ अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं  
रसायनम् ॥ १ ॥

मद्य स्वभावहीसे अन्नके समान है, ऐसा विद्वान् लोगोंने  
कहा है, अर्थात् जो मद्य विना युक्तिके साथ पियाजाताहै  
तो अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै और जो युक्ति ( विधि  
पूर्वक ) के साथ पिया जाय तो महारसायन है ॥ १ ॥

प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्य-  
सून् ॥ विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसा-  
यनम् ॥ २ ॥ विधिना मात्रया काले  
हितैरन्नैर्यथाबलम् ॥ प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं  
तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३ ॥

अन्नही प्राणियोका प्राण है परन्तु युक्तिविना अन्न  
सेवन करनेसे प्राणोंका नाशकारक है, यह सब जानते हैं  
कि, विष प्राण हरताहै परन्तु युक्तिके साथ सेवन करनेसे  
महारसायन है ।

जो मनुष्य आनन्दसहित विधिपूर्वक यथायोग्य समय-  
पर मात्रानुसार प्रसन्न चित्त होकर हितकारक अन्नके साथ  
बलाबल विचार मद्य पान करतेहैं उनको मद्य अमृतकी  
समान गुणकारी है ॥ २-३ ॥

अथ मद्यपानविधिः ।

कृतशरीरसंस्कारः शुचिरुत्तमगन्धवान् ॥

उदामगन्धिभिः स्फीतैर्मृदुभिर्वसनैर्वृतः ॥

॥ ४ ॥ विचित्रविविधस्रग्वी रक्ताभरण-  
भूषितः ॥ सानन्दः सावधानश्च पिवेन्मद्यं  
शनैःशनैः ॥ ५ ॥

शरीरको अच्छे प्रकारसे स्वच्छ करके, अर्थात् मलमूत्र  
दतधावनादि करके पवित्र होकर, उत्तम फुलेल आदि  
सुगंधोंको लगाकर, उत्तम सुवासित महीन अथवा कोमल  
वस्त्र धारणकर, अनेक प्रकारके चित्र विचित्र मदनवाणादि  
सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंसे उरःस्थलको सुशो-  
भित करके लाल रंगके आभूषणोंको भूषितकर आनन्द  
युक्त होकर सावधानीके साथ धीरे धीरे ठहर ठहरकर  
थोड़ी थोड़ी मदिरा पीवै ॥ ४-५ ॥

अथ मद्यपानस्थानम् ।

उपवनेषु सुरभिसुरंगसुमनःसमूहमनोह-  
रेषु ॥ मंजुगुंजन्मधुकरनिकरेषु कूजंत्कल-  
कण्ठेषु ॥ ६ ॥ सुरभिशिशिरमधुरसमीरेषु  
मन्दिरेषु ॥ सुधाशुभ्रेषु सुधूपधूपितेषु  
सूपधानेषु ॥ संस्तीर्णविहितशयनासनेषु ॥  
॥ ७ ॥ उपविष्टोऽथ वा तिर्यक् भृशं हृष्टः  
सुरां पिवेत् ॥ सौवर्णै राजतैः पात्रैः पिवे-  
न्मणिमयैरपि ॥ ८ ॥ रूपयौवनमत्ताभि-  
र्वल्लभाभिर्विशेषतः ॥ वस्त्राभरणमाल्यैश्च  
भूषिताभिर्यथर्तुकैः ॥ दीयमानं मृगा-  
क्षीभिः पिवेन्मद्यं मुदान्वितः ॥ ९ ॥

जहां उत्तम वर्णवाले सुगन्धित सुगन्धित पुष्प मनको  
हर्गन करनेवाले खिल रहे हों। उनमें मधुर ध्वनिसे भ्रमरोके  
समूह गुजार करते हों, जहां मधुर स्वरमें कोयल कूह कूह  
करती हों और जहां शीतल मन्द सुगन्ध पवन मधुर मधुर  
चरती हों, ऐसे उपवन अथवा कुसुम काननके भीतर  
चूने कलरसे स्वच्छ पुताया हुआ, हवादार और उत्तम  
गुणोंसे सुवासित किये हुए बगलेमें उत्तम आमन अथवा  
पलंग बिछा होय और उसके ऊपर गद्दे तकिये नरम नरम लगे  
हुए हों, तथा उसके ऊपर स्वच्छ चादर बिछी हुई हो  
उम शयन करनेके आसनमें बैठकर अथवा तिरछा  
लेटकर अत्यन्त आनन्दके साथ मद्यको पीवै, रूप और

यौवनसे उन्मत्त हुई अत्यन्त प्रिय, यथा यथा कठुके  
अनुसार वस्त्रोंसे, आभूषणोंसे और सुवासित पुष्पोंसे सुस-  
जित तथा हिरनकी समान नेत्रवाली ऐसी स्त्रियों, सोनेके,  
चादीके, अथवा रत्नोंके या काचके ग्याले गिलासाम  
भर भरकर बारबार देवे तो पुरुष प्रीतिपूर्वक उस  
मदिराको पीवै ॥ ६-९ ॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तमद्यपानमात्रा ।

शुद्धकायः पिवेन्मद्यं सोपदंशं पलद्वय-  
यम् ॥ मध्याह्ने द्विगुणं तच्च सुस्निग्धं भक्ष-  
येदनु ॥ १० ॥ प्रदोषेऽष्टपलं तद्वन्मात्रा  
मद्यरसायने ॥ अनेन विधिना सेव्यं मद्य  
नित्यमतन्द्रितैः ॥ ११ ॥

शुद्धकायः उत्सृष्टमलमूत्रः । पलद्वयं  
पारिशेष्यात्पूर्वाह्ने बोद्धव्यम् । अतन्द्रितैः  
मात्रया सावधानैः । अन्ये त्वाहुः-

बुद्ध्यादयो गुणा यावदुल्लसन्ति निरत्य-  
याः ॥ मात्रेयं विहिता मद्यपानेऽन्या  
रोगजन्मने ॥ १२ ॥

काल इति यस्मिन्काले यादृशं मद्यमु-  
चितं तस्मिस्तादृशं पेयम् ॥

मल मूत्रादिको त्याग शुद्ध होकर पूर्वाह्न ( प्रातःकाल )  
में चाट ( दाल, सेव, नमकीन पदार्थ ) के साथ आठ  
रूपये भर मदिरा पीवै, मध्याह्नके समय सोलह रूपये भर  
मदिरा पीवै और उसके उपरान्त अत्यन्त स्निग्ध भोजन  
करे और सायंकालमें ३२ रूपयेभर मद्य पीवै, मद्यकी  
यह मात्रा रसायन रूप है, इसकारण मनुष्योंको मात्रामें  
भूल नहीं करनी चाहिये, नित्य इसी विधिसे मद्यका सेवन  
करना चाहिये । अन्य ग्रंथोंमें तो यह कहा है कि, जब-  
तक शुद्ध बुद्धि आदिगुण अबाधित रीतिसे प्रकाशित  
रहें तबतक उतनीही मद्य पीवै, इसके सिवाय अन्यमात्रा  
रोगियोंके लिये जाननी अधिक मात्रा सदैव रोगको उत्पन्न  
करती है ॥ १०-१२ ॥

अथ कस्मिन्नृतौ कीदृङ् मद्यं  
पेयमित्याह ।

ग्रीष्मे मद्यं हिमं स्वादु माध्वीकादि सुख-  
प्रदम् ॥ शीते प्रशस्यते चोष्णं तीक्ष्णं  
गौडिकपैष्टिकम् ॥ १३ ॥

जिस ऋतुमें जैसी मद्य पीनी योग्य है वही पीनी  
चाहिये । जैस कि, ग्रीष्म ऋतुमें शीतल और मधुर  
माधवी नामक मदिरा सुखदायी है । और शीतकालमें  
उष्ण तथा तीक्ष्ण गौडिक और पौष्टिक मद्य हितकारी  
है ॥ १३ ॥

अथ हितकार्यन्नम् ।

मद्यानुकूलैर्विविधैः फलैर्वर्णमनोहरैः ॥  
सुगन्धैर्लवणैर्हृद्यैर्भृष्टैर्मांसैः पृथग्विधैः ॥  
॥ १४ ॥ स्निग्धैरन्नैश्च भक्ष्यैश्च सह मद्यं  
पिबेन्नरः ॥ १५ ॥

अन्नैः सिद्धैः ओदनपर्पटकादिभिः ।  
भक्ष्यैः लड्डुकफेणिकादिभिः ॥

अभ्यंगोत्सादनस्नानवासोदूपानुलेपनैः ॥  
स्निग्धोष्णैस्तादृशैरन्नैर्वातप्रकृतिकः पि-  
बेत् ॥ शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्ध-  
शीतलैः ॥ १६ ॥ फलैरन्नैः सह नरः  
पित्तप्रकृतिकः पिबेत् ॥ श्लष्मिको जांग-  
लैर्मांसैर्मरिचैर्मदिरां पिबेत् ॥ १७ ॥  
प्राक् पिबेच्छ्लष्मिको मद्यं भक्तस्योपरि  
पौक्तिकः ॥ वातिकस्तु पिबेन्मद्यं सम-  
दोषो यथेक्षते ॥ १८ ॥ वातिकस्तु  
पिबेन्मद्यं प्रायो गौडिकपैष्टिकम् ॥ कफ-  
पित्तात्मको यस्तु माध्वकिं माधवं  
पिबेत् ॥ १९ ॥ विधिर्वसुमतामेष कथि-  
तश्चरकादिभिः ॥ यथोपपत्तिकं वापि  
पिबेन्मद्यं हि मात्रया ॥ २० ॥

मद्यको पीनेवाला मनुष्य मद्यके अनुकूल मनोहर फल,  
सुगन्धित और प्रिय नमकीन पदार्थ, अलग अलग प्रकारके  
मांस, भात, पापड और लड्डू तथा फेनी आदि स्निग्ध  
भक्ष्योंके साथ मद्य पिये ।

वातप्रकृतिवाला मनुष्य स्निग्ध और उष्ण अभ्यङ्ग  
( मालिश ), अगर आदि सुगन्धित वस्तुका लेपकर, स्नान,  
वस्त्र, धूप और अनुलेपन इत्यादि उपचार करके उसी  
प्रकार अन्नके साथ मद्यको पिये ।

पित्तप्रकृतिवाला मनुष्य अनेक प्रकारके शीतल उप-  
चार करके मधुर, स्निग्ध तथा शीतल फलोंके साथ  
और उसीप्रकार अन्नके साथ मद्य पिये । कफ प्रकृति-  
वाला मनुष्य जांगल देशके जीवोंके मांसके साथ और  
मिरचके साथ मद्य पिये ।

कफप्रकृतिवाला मनुष्य भोजनसे पहिले मद्य पिये,  
पित्तप्रकृतिवाले पुरुषको भोजन करनेके बाद मद्य पीनी  
चाहिये, वातप्रकृतिवाला भोजनके मध्यमे मद्य पिये और  
समदोषवाला मनुष्य जैसी रुचि हो उसीप्रकार पिये ।  
वातप्रकृतिवाले मनुष्यको विशेष करके गुडकी और जौके  
आटेकी मदिरा पीनी चाहिये, कफप्रकृतिवाले और पित्त-  
प्रकृतिवालेको खांड आदि मधुर पदार्थोंकी मदिरा पीनी  
चाहिये । चरकादि ऋषि कहतेहैं कि, यह विधि केवल  
धनवानोंके लिये कही है इसलिये निर्धन मनुष्योंको जैसी  
भिलजाय वैसीही पीलेवे ॥ १४-२० ॥

अथ मद्यगुणाः ।

रसवातादिमार्गाणां सत्त्वबुद्धीन्द्रिया-  
त्मनाम् ॥ प्रधानस्यौजसश्चैव हृदयं  
स्थानमुच्यते ॥ २१ ॥ मद्यं हृदयमा-  
विश्य स्वगुणैरोजसो गुणान् ॥ दशभि-  
र्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥  
॥ २२ ॥ लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्लव्यवा-  
याशुकरं तथा ॥ रूक्षं विकाशि विशदं  
मद्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ २३ ॥ गुरु  
शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं  
तथा ॥ प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दश-  
गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ गौरवं लाघवा-  
च्छैत्यमौष्ण्यादम्लस्वभावतः ॥ माधुर्यं  
मार्दवं तैक्ष्ण्यात्प्रसादश्चाशुभावनात् ॥  
॥ २५ ॥ रौक्ष्यात्स्नेहं व्यवायित्वात्स्थि-  
रत्वं सूक्ष्मतामपि ॥ विकाशिभावात्पै-  
च्छिल्यं वैशद्यात्सान्द्रतां तथा ॥ २६ ॥

सौध्म्यान्मद्यं निहन्त्येवमोजसः स्वगुणै-  
 गुणान् ॥ सत्त्वं तदाश्रयं चाशु संक्षोभ्य  
 कुरुते मदम् ॥ हृदि मद्यगुणाविष्टे हृष-  
 स्तर्षो रतिः सुखम् ॥ २७ ॥ विकाराश्च  
 यथासत्त्वं चित्रा राजसतामसाः ॥ जायन्ते  
 मोहनिद्रान्ता इत्येतन्मदलक्षणम् ॥ २८ ॥  
 हर्षमोजो बलं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं तथा ॥  
 युक्त्या पीतं करोत्याशु मद्यं मदसुखप्र-  
 दम् ॥ २९ ॥ रोचनं दीपनं हृद्यं स्वर-  
 वर्णप्रसादनम् ॥ प्रीणनं बृंहणं बल्यं भय-  
 शोकश्रमापहम् ॥ ३० ॥ स्वापनं नष्टनि-  
 द्राणां मूकानां वाग्विशोधनम् ॥ नाशनं  
 चातिनिद्राणां विबन्धानां विबन्धनुत् ॥  
 ३१ ॥ वधवन्धपरिक्लेशदुःखानां चाप्य-  
 बोधकम् ॥ अपि प्रवयसां मद्यमुत्सर्गामो-  
 दकारकम् ॥ ३२ ॥ बहुदुःखक्षतस्यास्य  
 शोकैरुपहतस्य च ॥ विश्रामो जीवलो-  
 कस्य मद्यं युक्त्या निषेवितम् ॥ ३३ ॥

मदस्त्रिलक्षणो भवति । एको मदोऽधि-  
 कसत्त्वगुणस्य पुंसो भवति । द्वितीयोऽधि-  
 करजोगुणस्य । तृतीयोऽधिकतमोगुणस्य ॥

प्रधानाधममध्यानां रुक्माणां व्यक्तिदा-  
 यकः ॥ यथाग्निरेवं सत्त्वानां मद्यं प्रकृति-  
 दर्शकम् ॥ ३४ ॥

रस और वातादि मार्गोंका, चित्त, बुद्धि, अहंकार  
 और शरीरमें प्रधान ओजका स्थान हृदय है, यह मद्य  
 उस हृदयमें प्रवेश होकर अपने दश गुणोंसे ओजके दश  
 गुणोंको क्षोभित करके चित्तमें विकार उत्पन्न करतीहै,  
 मद्य-एतु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्याप्य (प्रथम  
 सम शरीरमें व्याप्त होकर पश्चात् पचनेवाली), आशुकर  
 (शीघ्र शरीरमें फैलनेवाली), रुक्ष, विकारि और विशद  
 (शरीरको आर्द्रताको दूर करनेवाली), इन दश गुणों

वाली है । ओज-गुरु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, सान्द्र, मधुर,  
 स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और सूक्ष्म इन दश गुणों करके  
 युक्त है । तहा मद्य लघु होनेसे ओजके गुरु गुणको, उष्ण  
 होनेसे ओजकी शीतलताको, अम्ल होनेसे ओजके मधुर  
 गुणको, तीक्ष्ण होनेसे ओजके मृदुगुणको, आशुकारी  
 होनेसे ओजकी प्रसन्नताको, रुक्ष होनेसे ओजकी स्निग्ध-  
 ताको, व्याप्य होनेसे ओजकी स्थिरताको, विकारि होनेसे  
 ओजके सूक्ष्म गुणको, विशद होनेसे ओजकी पिच्छिल-  
 ताको और सूक्ष्म होनेसे ओजके सान्द्र गुणको नष्ट करेहै, इस-  
 प्रकार मद्य अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको क्षोभित  
 करतीहै, इसीप्रकार मद्य अपने गुणोंसे ओजके गुणोंको,  
 चित्तको और चित्तके रहनेके स्थानको तत्काल क्षोभित करके  
 मद (मस्तपने) को उत्पन्न करेहै, मद्यके गुण हृदयमें  
 प्राप्त होकर हर्ष, तृप्ता, रतिसुख और प्रकृतिके अनुसार  
 मोहसे निद्रापर्यंत रजोगुणके तथा तमोगुणके विचित्र  
 विकार उत्पन्न होतेहैं, ये मद्यका स्वरूप अर्थात् लक्षण  
 हैं । जो लोक मद्यसे मदके सुखको चाहते हैं वही मद्यको  
 युक्तिपूर्वक पिये, क्योंकि मद्य युक्तिपूर्वक पीनेसे तत्काल  
 हर्ष, ओज, बल, पुष्टि, आरोग्यता और पुरुषत्वको उत्पन्न  
 करेहै । युक्तिसे सेवन कीहुई मदिरा रुचि उत्पन्न करेहै,  
 अधिको दीपन करेहै, हृदयको प्रिय, स्वर और वर्णको  
 शुद्ध करनेवाली, तृप्तिकारक, धातुओंको पुष्ट करनेवाली,  
 बलको बढ़ानेवाली, भय, शोक और श्रमको हरनेवाली  
 जिन मनुष्योंको निद्रा न आती हो उनके निद्रा लानेवाली,  
 गूंगे मनुष्योंकी वाणीको शुद्ध करनेवाली, अत्यंत निद्राको  
 नष्ट करनेवाली, मलवधवाले रोगियोंके मलवधको तोड़ने  
 वाली, वध, वधन क्लेशादि दुःखोंके बोधनको हरनेवाली  
 युक्तिपूर्वक पी हुई मदिरा वृद्ध मनुष्योंको भी स्वाभाविक  
 रीतिसे परमानन्द उत्पन्न करनेवाली है, अनेक प्रकारके  
 दुःखोंसे पीडित, धावयुक्त और विविध प्रकारके क्लेशोंसे  
 फँसे हुए शोकसे, व्याकुल प्राणियोंको मद्य जगत्में विश्राम  
 रूप है । मद तीन प्रकारका होताहै, तहा एक तो  
 अधिक सतोगुणवाले पुरुषोंको होताहै, दूसरे प्रकारका  
 मद अधिक रजोगुणवाले मनुष्योंको होताहै, और  
 तीसरे प्रकारका मद अधिक तमोगुणवाले प्राणि-  
 योंको होताहै, जैसे कि, चरकमें लिखा है जिसप्रकार  
 सुवर्णकी उच्चमता, मध्यमता और अधमता अग्नि  
 तपानेसे प्रकट करदेती है उसीप्रकार मद्य, मनुष्योंकी

उत्तम अधम और मध्यम प्रकृतिको प्रकट करनेवाली है ॥ २१-३४ ॥

अथ सात्त्विकमदलक्षणम् ।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननि-  
द्रारतिवर्द्धनश्च ॥ सम्पाठगीतिस्वरवर्द्धनश्च  
प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ ३५ ॥

प्रीतिः परेण मैत्री । सुखः सुखयतीति  
मुखः सुखकर इत्यर्थः । पानादित्यादि पाना-  
देषु अनुषङ्गवर्द्धनः अतिरम्यः मनोविकारि-  
वेऽपि न दुःखकरः । प्रथमगुणविकारित्वात्  
प्रथमः । एवं द्वितीयं तृतीयं च ॥

पहिले प्रकारका मद जो कि, सत्त्वगुणनामक पहिले  
गुणका विकार रूप है यह मद—बुद्धि, स्मरणशक्ति और  
प्रीतिको उत्पन्न करैहै, सुखको करैहै, अन्नभे, पानमे, तथा  
निद्रामे रुचिको बढ़ानेवालाहै, गीत, वादित्र और पढ़नेमें  
स्वरको शुद्ध करनेवाला है और मनको विकृत करनेपर  
भी दुःखदायक नहीं होता, यह मद पहिले गुणका  
विकार रूप होनेसे पहिले गिनाजाताहै । इसीप्रकार जो  
दूसरा ( रजो गुणका ) विकार रूप है वह दूसरा और जो  
तीसरे गुणका ( तमोगुण ) विकार रूप है वह तीसरा मद  
जानना ॥ ३५ ॥

अथ राजसमदलक्षणम् ।

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तली-  
लाकृतिरप्रशान्तः ॥ आलस्यनिद्राभिहतो  
मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ३६ ॥

अव्यक्तैत्यत्र ईषदर्थे नञ् । विचेष्टः विरु-  
द्धचेष्टः । उन्मत्तस्य लीलाकृतिभ्यां सहितः ।

राजस मदसे मत्त हुआ पुरुष विरुद्ध चेष्टा करताहै,  
उन्मत्तकी समान लीला करताहै, उन्मत्तकी आकृति समान  
आकृति करलेताहै, बारबार आलस्यसे और बारबार निद्रासे  
मूर्च्छित होजाताहै और उस मनुष्यकी बुद्धि, स्मृति और  
वचन यथार्थ स्पष्ट नहीं रहतेहैं ॥ ३६ ॥

अथ तामसमदलक्षणम् ।

गच्छेदगम्यां न गुरुंश्च मन्येत्खादेदभक्ष्या-  
णि च नष्टसंज्ञः ॥ ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि  
स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः ३७ ॥

मन्येदिति परस्मैपदमार्षत्वात् । अस्वतन्त्रः  
मदपरवशः ॥

तीसरे ( तमोगुण ) प्रकारके मदसे मत्त हुआ मनुष्य  
मदके परवश होजाताहै, अगम्या स्त्रियोमे गमन करने  
लगताहै, माता पिता आदि गुरुजनको कुछ नहीं सम-  
झता, अभक्ष्य पदार्थोंको भक्षण करने लगताहै, सज्ञा  
जाती रहती है अर्थात् ज्ञान रहित होजाताहै और हृदयमें  
स्थित छिपी हुई गुप्त बातोंको कहने लगताहै ॥ ३७ ॥

यद्यपि मदस्त्रिविधोऽस्ति तथापि सुश्रु-  
तेनाऽतितामसनामा चतुर्थोऽन्यो मत-  
स्तल्लक्षणमाह ।

चतुर्थे तु मदे मूढो भगदार्तिव निष्क्रियः ॥  
कार्याकार्याविभागज्ञो मृतादपि परो  
मृतः ॥ ३८ ॥

मूढो मोहयुक्तः ॥

को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम् ॥  
बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती ३९  
अमूढः विचारबहुलः ।

चौथे प्रकारके मदमे मनुष्य मोह ( बेहोश ) युक्त  
होजाताहै, दूरी लकड़ीकी समान क्रिया रहित मृतकसे भी  
अधिक मृतक होजाताहै, और उस मनुष्यको कार्य अका-  
र्यकी कुछ भी सुधि बुधि नहीं रहती, इस चौथे प्रकारके  
उन्मादकी समान मदको कौन विचारशील, स्वतंत्र और  
विचक्षण पुरुष प्राप्त होताहै अर्थात् कोई भी प्राप्त नहीं  
होता, जिसप्रकार विचारशील, स्वतंत्र और विचक्षण पुरुष  
निर्जनवनमें नहीं गमन करते उसी प्रकार इस चौथे मदको  
कोई पुरुष सेवन नहीं करते ॥ ३८ ॥ ३९ ॥



अथ केषां मदाधिक्यं केषां च  
मदाल्पत्वं भवतीत्याह ।

नातिमाद्यन्ति बलिनः कृताहारा महाश-  
नाः ॥ स्निग्धाः सत्त्ववयोर्युक्ता मद्यनित्या-  
स्तदन्वयाः ॥ ४० ॥ मेदःकफाधिका मंद-  
वातपित्ता दृढाग्रयः ॥ विपर्ययेऽतिमाद्यन्ति  
विष्टब्धाः कुपिताश्च ये ॥ मद्येन चाम्ल-  
रूक्षेण साजीर्णे बहुनापि च ॥ ४१ ॥

बलवान्, जो आहार कर चुका हो, बहुत भोजन करनेवाला हो, स्निग्ध, वैर्ययुक्त, युवावस्थावाला, नित्य मद्य पीनेवाला, जिसके कुलमें परम्परासे मद्य पीतेहैं, जिसके शरीरमें मेद और कफ अधिक है, वात और पित्तकी मन्दता है और दृढ अग्निवाले पुरुषोंको मद अत्यन्त नहीं चढ़ताहै और जो इससे विपरीत गुणोंवाले हैं, तथा मलयधवाले और क्रोधी मनुष्योंका मद अधिक चढ़ता है खट्टा और रुक्ष मद पीनेसे अजीर्णमें मद पीनेसे और अधिक मद पिया जाय तो भी अत्यन्त मद चढ़ताहै ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ मदात्ययनिदानम् ।

विपश्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रको-  
पनाः ॥ त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बल-  
वत्तराः ॥ ४२ ॥ तस्मादविधिपीतेन तथा  
मात्राधिकेन च ॥ युक्तेन चाहितैरन्नैर-  
काले सेवितेन च ॥ मद्येन खलु जायन्ते  
मदात्ययमुखा गदाः ॥ ४३ ॥

तीनों दोषोंको कुपित करनेवाले जो गुण विषमें देखनेमें आतेहैं वही गुण मद्यमें भी देखनेमें आतेहैं, परन्तु विषके गुण मद्यके गुणोंसे बलवान् हैं, मद्यमें विषके गुणोंसे हीन शक्तिवाले गुण हैं, इसलिये विवि रक्षित पिया हुआ, अधिक पिया हुआ, अहितकारक अन्नोंके साथ पिया हुआ और अयोग्य समय सेवन किया हुआ मद्य मदात्यय आदि रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥

अथ विधिमन्तरासेवितमद्यमन्य-  
विकारोत्पादकमित्याह ।

निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं  
मनुजेन नित्यम् ॥ उत्पादयेत्कष्टतमान्वि-  
कारानुत्पादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ ४४ ॥  
एकान्ततो नैरन्तर्येण । विकारान् मदा-  
त्ययादीन् । शरीरस्य भेदं नाशम् ॥

बिना अन्नके पिया हुआ मद्य अथवा जो मनुष्य निरन्तर बारबार मद्य पिये तो मद्य मद्यादुःखदायक मदा-  
त्यय आदि विकारोंको उत्पन्न करैहै और शरीरका भी नाश करैहै ॥ ४४ ॥

अथ मदात्ययादिविकारान्यहेतुः ।

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन  
बुभुक्षितेन ॥ व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन  
वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ ४५ ॥  
अत्यम्लरूक्षावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन  
तथाऽचलेन ॥ उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं  
करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥ ४६ ॥

क्रोधको प्राप्त हुआ, भयभीत, तृपासे व्याकुल, शोकसे संतापित, झुधासे पीडित, दड, कसरतके करनेसे और ब्रह्मके ढोनेसे तथा अधिक मार्गके चलनेसे थका हुआ, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे पीडित, अत्यन्त खट्टे और रुखे पदार्थोंके खानेसे जिसका उदर भर रहा हो, अजी-  
र्णमें भोजन करनेवाला, निर्बल और उष्णतासे संतापित ऐसे मनुष्योंका सेवन किया हुआ मद्य अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करैहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ मद्योत्पन्नविकाराः ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि च ॥  
पानविभ्रममत्युग्रं तेषां वक्ष्यामि लक्ष-  
णम् ॥ ४७ ॥

मद्यसे मदात्यय, परमद, पानाजीर्ण और अत्यन्त उग्र पानविभ्रम यह विकार उत्पन्न होतेहैं, अब इनके लक्षण कहतेहैं ॥ ४७ ॥

अथ मदात्ययसामान्यलक्षणम् ।

शरीरदुःखं बलवत्प्रमेहो हृदयव्यथा ॥  
अरुचिः सततं तृष्णा ज्वरः शीतोष्ण-  
लक्षणः ॥ ४८ ॥ शिरःपार्श्वास्थिसन्धी-  
नां वेदना विक्षते यथा ॥ जायतेऽतिबला  
जृम्भा स्फुरणं वेपनं श्रमः ॥ ४९ ॥  
उरोविबन्धः कासश्च हिकका श्वासः  
प्रजागरः ॥ शरीरकम्पः कर्णाक्षिमुख-  
रोगास्त्रिकग्रहः ॥ ५० ॥ छर्दिविद्भेद  
उत्क्लेशो वातपित्तकफात्मकः ॥ भ्रमः  
प्रलापो रूपाणामसताश्चैव दर्शनम् ॥  
॥ ५१ ॥ तृणभस्मलतापर्णपांशुभिश्चाव-  
पूरणम् ॥ प्रधर्षणं विहङ्गैश्च भ्रान्तचेताः  
स मन्यते ॥ ५२ ॥ व्याकुलानामश-  
स्तानां स्वप्नानां दर्शनानि च ॥  
मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्ष-  
येत् ॥ ५३ ॥

जिसके मदात्यय हुआ हो उस मनुष्यके शरीरमें अत्यंत दुःख होता है, बलवान् मोह, हृदयमें व्यथा ( पीडा ), अरुचि, निरंतर तृपाका लगना, शीतल और उष्ण ज्वरका होना, शिर, पसली और हड्डीकी संधियोंमें पके फोड़ेकी समान वेदना, जम्भाइयोंका अधिक आना, अगोंका स्फुरण होना, अर्थात् फडकना, कम्प, श्रम, छातीका जकड़ना, खँसी, हिचकी, श्वास और जागरण हो, कान, नेत्र और मुखमें रोग हो, त्रिक स्थानमें पीडा, वमन, विरेचन, वात, पित्त और कफका उत्क्लेद होना, भ्रम और प्रलाप होना तथा बुरे रूपोंका देखना, भ्रमयुक्त चित्तवाला यह मनुष्य अपने शरीरपर तृण, भस्म, बेल, और पत्ते उड़ उड़कर गिरते देखे, चहूँओरसे पक्षी उड़े चले आते हैं ऐसा प्रतीत हो, व्याकुल और असंगल ( अशुभ ) रूप स्वप्न देखे, यह सब लक्षण जिसके होय उसको मदात्यययुक्त जानना ॥ ४८-५३ ॥

अथ वातजमदात्ययनिदानम् ।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्मभिर्योऽतिकर्षितः  
॥ ५४ ॥ रूक्षाल्पप्रामिताशी च यः पिव-

त्यतिमात्रया ॥ रूक्षं परिणतं मद्यं  
निशि निद्रां निहत्य च ॥ करोति तस्य  
तच्छिघ्रं वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ५५ ॥

तन्मद्यम् ॥

मैथुन, शोक, भय, भार, पंथा और श्रम आदि कर्मोंके करनेसे जो मनुष्य कृश होगये हैं, तथा रूक्ष अल्प और बहुत थोड़े भोजन करनेवाले ऐसे मनुष्य जो रूक्ष मद्यको अत्यन्त पीते हैं तो उनके वह मद्य पेटमें परिणामको प्राप्त होकर रात्रिकी निद्राको नष्ट करके तत्काल वायुसम्बन्धी मदात्ययको उत्पन्न करे है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ वातजमदात्ययलक्षणम् ।

हिककाश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ॥  
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ५६  
हिचकी, श्वास, शिरका कांपना, पसलियोंमें पीडा, जागरण और प्रलाप ( बकवाद ) सब लक्षण वातके मदात्ययमें होते हैं ॥ ५६ ॥

अथ पित्तजमदात्ययनिदानम् ।

तीक्ष्णोष्णमद्यमम्लं च योऽतिमात्रं निषे-  
वते ॥ अम्लोष्णतीक्ष्णभोजी च क्रोधनो  
ज्ञानवान्नरः ॥ तस्योपजायते तीव्रः पित्त-  
प्रायो मदात्ययः ॥ ५७ ॥

खट्टे, गरम और तीक्ष्ण पदार्थोंको भोजन करनेवाला क्रोधी और अज्ञानी मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्यको अत्यन्त सेवन करता है उसके तीव्र पित्तका मदात्यय उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

अथ पित्तजमदात्ययलक्षणम् ।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ॥  
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ५८

तृष्णा, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतीसार, विभ्रम और शरीरके रंगका हरा होना ये सब लक्षण पित्तके मदात्ययमें होते हैं ॥ ५८ ॥

अथ कफजमदात्ययनिदानम् ।

मधुरस्निग्धगुर्वाशी यः पिवत्यतिमात्रया ॥  
अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनमुखे रतः ॥  
मदात्ययं कफप्रायं स नरो लभते ध्रुवम् ५९ ॥

कसरत अर्थात् परिश्रम नहीं करनेवाला, दिनमें सोने-  
वाला, नित्य शय्यापर बैठा रहनेवाला अथवा गद्दे तकिये  
लगाकर लेटे रहनेवाला तथा मधुर, स्निग्ध और भारी  
भोजन करनेवाला मनुष्य जो अत्यन्त मद्य पीता है उस  
मनुष्यके अत्यन्त कफका मदात्यय उत्पन्न होता है ॥५९॥

अथ कफजमदात्ययलक्षणम् ।

उर्ध्वरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ॥  
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्य-  
यम् ॥ ६० ॥

वमन, अरुचि, उबकाई, तन्द्रा, शरीर भीजे वल्लसें  
ढकासा मालूम होवे और भारीपन रहे और शीत लगै ये  
सब लक्षण कफके मदात्ययमें होते हैं ॥ ६० ॥

अथ सान्निपातिकमदात्यय-  
निदानलक्षणे ।

त्रिदोषो हेतुभिः सर्वैः सर्वैर्लिङ्गैर्मदात्ययः ।

उपरोक्त सपूर्ण कारणोंसे उत्पन्न हुआ और सम्पूर्ण  
लक्षणोंवाला जो मदात्यय होता है उसको त्रिदोषज कहते हैं ।

अथ परमदलक्षणम् ।

श्लेष्मक्षयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च विण्मू-  
त्रसक्तिरथ तन्दिररोचकश्च ॥ लिङ्गं परस्य  
तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा  
शिरसि सन्धिषु चापि भेदः ॥ ६१ ॥

कफका क्षय, अगोंमें भारीपन, मुखमें विरसता, मल  
और मूत्रका अवरोध, तन्द्रा अरुचि, तृषा, मस्तकमें दर्द  
और सन्धियोंमें अर्थात् जोड़ोंमें तोड़ने सरीखी पीड़ा, ये,  
मद्य पर मदके लक्षण जानने, ऐसा विद्वान् वैद्य कहते हैं ॥ ६१ ॥

अथ पानाजीर्णलक्षणम् ।

आध्मानमुग्रमथ वोद्गिरणं विदाहः पाने-  
त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ॥ ज्ञेयानि  
तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि पित्तप्रकोप-  
जनितानि च कारणानि ॥ ६२ ॥

उद्गिरणं वान्तिरुद्गारो वा । पीयत इति-  
पानं मद्यम् ॥

मद्यके अजीर्णमें उग्र अफारा होना है अथवा वमन  
होती है, अथवा डकार अधिक आती हैं, दाह होता है  
और पित्तके प्रकोपसे जो लक्षण होते हैं वह सब लक्षण  
देखनेमें आते हैं, इसको वैद्य पानाजीर्ण कहते हैं ॥ ६२ ॥

अथ पानविभ्रमलक्षणम्

हृद्गात्रतोदकफसंस्त्रवकण्ठधूममूर्च्छावमी-  
मदशिरोरुजनप्रदेहाः ॥ द्वेषः सुरान्नवि-  
कृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशन्त्य-  
खिलेषु धीराः ॥ ६३ ॥

कण्ठधूमः कण्ठाद्भूमनिर्गम इव । प्रदेहः  
कफेन लिप्तास्यता । द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च  
तेषु सुराविकारेषु अन्नविकारेषु च द्वेषः ।  
अखिलेषु मद्यविकारेषु ॥

हृदयमें तथा गात्रों ( देह ) में सुई चुभानेकी सी व्यथा  
होय, कफका स्त्राव, कण्ठमेंसे धुँआँसा निकलता प्रतीत हो,  
मूर्च्छा आवै, वमन मद और शिरमें पीड़ा होती हो, मुख कफसे  
लिप्तासा हो, सर्व प्रकारकी मदिरापर और सब प्रकारके  
अन्नके ऊपर द्वेष उत्पन्न होय तो जानना कि, मद्यके विकार-  
ोंमें 'पानविभ्रम' विकार उत्पन्न हुआ है ऐसा प्राचीन  
धन्वन्तरि वैद्य कहते हैं ॥ ६३ ॥

अथ मदात्ययाद्यसाध्यलक्षणम् ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभा-  
स्यमतिपानहतं त्यजेच्च ॥ जिह्वौष्ठदन्तम-  
सितन्त्वथ वापि नीलं पीते च यस्य नयने-  
रुधिरप्रभे च ॥ ६४ ॥ ह्रिककाज्वरो वम-  
थुवेपथुपार्श्वशूलाः कासभ्रमावपि च पान-  
हतं त्यजेत्तम् ॥ ६५ ॥

अत्यन्त मद्यपान करनेसे जिस मनुष्यका ऊपरका होठ  
ऊपरको मुकड़ गया हो, शीत अत्यन्त हो, मुख तैलकी  
समान वर्णवाला हो जाय, ऐसे मनुष्यकी वैद्य चिकित्सा  
नहीं करे । मद्यपानसे मूर्च्छितहुए मनुष्यके जो जीभ, होंठ,  
तथा दात काले अथवा नीले, नेत्र पीले अथवा लाल रंगके

होगये हो और हिचकी, ज्वर, वमन, कफ पसलियोंमें शूल, खाँसी तथा भ्रम होय तो उस मनुष्यकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ मदात्ययादिविकार-  
चिकित्सा ।

मद्योत्थानाश्च रोगाणां मद्यमेव हि भेष-  
जम् ॥ यथा दहनदग्धानां दहनं स्वेदनं  
हितम् ॥ ६६ ॥ मिथ्यातिहीनमद्येन  
यो व्याधिरुपजायते ॥ समेनैव निपी-  
तेन मद्येन स हि शाम्यति ॥ ६७ ॥  
बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् ॥  
यवानीहपुषाजाजीशृङ्गवेरावचूर्णितम् ॥  
॥ ६८ ॥ सस्नेहैः सक्तुभिर्युक्तमुपदंशैश्चि-  
रोत्थितम् ॥ दद्यात्सलवणं मद्यं वातपै-  
त्तिकशान्तये ॥ ६९ ॥ मद्यं सौवर्चल-  
व्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ॥ जीर्ण-  
मद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥  
॥ ७० ॥ चव्यं सौवर्चलं हिङ्गु पूरकं  
विश्वदीप्यकम् ॥ चूर्णं मद्येन पातव्यं  
पानात्ययरुजापहम् ॥ ७१ ॥ लाव-  
तित्तिरदक्षाणां रसैश्च शिखिनामपि ॥  
पक्षिणां मृगमत्स्यानामानूपानां तथौ-  
दनैः ॥ ७२ ॥ स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्च  
वेशवारैर्भुखप्रियैः ॥ स्निग्धैर्गोधूमकैरन्नै-  
र्वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ७३ ॥ नारीणां  
यौवनोष्माणां निर्दयैरुपगूहनैः ॥ श्रोण्यू-  
रुकुचभारैश्च संरोधोष्णसुखप्रदैः ॥ ७४ ॥  
शयनाच्छादनैरुष्णैश्चान्तर्गहैः सुखप्रदैः ॥  
मारुतैः प्रबलैः शीघ्रं प्रशाम्यति मदा-  
त्ययः ॥ ७५ ॥ पित्तपानात्यये योज्याः  
सर्वतश्च क्रिया हिमाः ॥ सितामाक्षिकसं-  
युक्तं मद्यमद्भौदकं पिबेत् ॥ ७६ ॥  
मद्यं खर्जूरमृद्धीकापरूषकरसैर्युतम् ॥  
सदाडिमरसं शीतं सक्तुभिश्चावचूर्णि-

तम् ॥ ७७ ॥ सशकरं वा माध्वीकं  
संयुक्तमथ वा परम् ॥ दद्याद्बृहदकं काले  
पातुं पित्तमदात्यये ॥ ७८ ॥ शशान्क-  
पिञ्जलानेणाल्लौवानसितपुच्छकान् ॥  
मधुराम्लान्प्रयुञ्जीत भोजने शालिषष्टि-  
कान् ॥ ७९ ॥ पटोलयवमिश्रं वा  
छागलं कल्पयेदसम् ॥ सतीनमुद्रमिश्रं  
वा दाडिमामलकान्वितम् ॥ ८० ॥  
द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन च ॥ कल्प-  
येत्तर्पणान्यूषाव्रसांश्च विविधात्मिकान् ॥  
॥ ८१ ॥ शीतानि चान्नपानानि शीत-  
शय्यासनानि च ॥ शीतवातजलस्पर्शाः  
शीतान्युपवनानि च ॥ ८२ ॥ क्षौमप-  
त्रोत्पलानाश्च मणीनां मौक्तिकस्य च ॥  
चन्दनोदकशीतानां स्पर्शाश्चन्द्रांशुशी-  
तलाः ॥ ८३ ॥ रूक्षतर्पणसंयुक्तं यवा-  
नीव्योषसंयुतम् ॥ यवगोधूमकश्चान्नं  
रूक्षयूषेण भोजयेत् ॥ ८४ ॥ कुलथ-  
कानां शुष्काणां मूलकानां रसेन वा ॥  
प्रभूतकटुसंयुक्तं यवान्नं वा प्रदापयेत् ॥  
॥ ८५ ॥ छागमांसरसं रूक्षमम्लं वा  
जांगलं रसम् ॥ व्योषयूषमनागम्लं पिबे-  
त्कफमदात्यये ॥ ८६ ॥ स्थाल्यामथ  
कपाले वा भृष्टं कृत्वा तु नीरसम् ॥  
कृद्मललवणं मांसं खादेत्कफमदात्यये ॥  
॥ ८७ ॥ वामकद्रव्ययुक्तेन मद्येनोले-  
खनं मतम् ॥ मदात्यये कफोद्धूते लव-  
नञ्च यथाबलम् ॥ ८८ ॥ यदिदं कर्म  
निर्दिष्टं वातपित्तकफान्प्रति ॥ सर्वजे सर्व-  
मेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सकैः ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार अग्निसे जलेहुएको दाहन और स्वेदन  
हितकारी है उसी प्रकार मद्यसे उत्पन्न हुए रोगोको मद्य  
ही औषधि है । मद्यके मिथ्या योगसे वा अत्यन्त योगसे  
और हीन योगसे जो रोग उत्पन्न होय वे रोग समयोगवाले  
मद्य पीनेसे ही शांत होतेहैं ।

वातसे तथा पित्तसे उत्पन्न हुए मदात्यय रोगको शमन करनेके लिये पुरानी मद्यमें नमक डालकर तथा विजौरा नींबू, अमलबेत, धेर, अनार, अजवायन, हाऊवेर, जीरा और सोंठ इनका चूर्ण डालकर स्नेह युक्त सत्तुओंके साथ और मसालेके साथ रोगीको पीनेको देवे ।

प्रथम पिया हुआ मद्य जीर्ण होनेपर काला नमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनके साथ तथा जलके साथ मद्य देवे तो वातज मदात्यय नष्ट होजाता है ।

चव्य, काला नमक, भूनी हींग, विजौरा, सोंठ और अजवायन इनका चूर्ण करके मद्यके साथ पीनेसे मदात्यय रोग दूर होजाताहै ।

लवा, तीतर, मुरगा, मोर, जलप्रायदेशमें रहनेवाले मृग और मछली इनके मांसके रससे संयुक्त भात, क्षिग्ध, उष्ण, खारी, खट्टे और मुखको प्रिय लगे ऐसे अचार मसालेके साथ और क्षिग्धतायुक्त गेहूँके भोजनसे वातका मदात्यय शांत होताहै ।

जिन युवतियोंके शरीरमें जौवनकी छटा छिटक रही हो उनके निर्दय आलिंगनसे, नितम्ब, जवा और कुच इनके भारसे तथा प्यारसे और दवानेसे, जो गरमीका सुख होताहै उससे, गरम शयन शय्या, गद्दी आदिके सुखसे, गरम आच्छादनसे और सुखदायक मन्दिरोंके भीतरके भवनोंमें रहनेसे वातकी प्रवृत्तागला मदात्यय शांत होताहै ।

पित्तके मदात्ययमें सम्पूर्ण शीतल क्रिया प्रयोग करनी चाहिये । मद्यमें आधा पानी डालकर मिश्री और सहत मिलाकर पीनेसे पित्तज मदात्यय नष्ट होजाता है ।

उज्जर, दास, फालसे, अनार इनके रसके साथ, मिश्री तथा सत्तु डालकर शीतल गुणवाली माषीक मद्य अथवा इनसे संयुक्त की हुई दूसरे प्रकारकी मद्य उसमें चतुर्धा पानी मिलाकर समयपर पिये तो पित्तका मदात्यय नष्ट होजाताहै ।

पित्तके मदात्ययमें खरगोश, तीतर, एणमृग, लवा, तथा कालपुच्छ मृग इनका मांस देना चाहिये, मीठे तथा गठे पदार्थ, झालिचावल और साटीके चावल देने चाहिये, परबलके वृषसे अथवा मटर सहित मृगके चूषके साथ अथवा अनारके और आमलेके रसके साथ बकरेके मांसका रस उपयोगी है । पित्तके मदात्ययमें वृत्तिकारक वृषोंकी, जग्य अलग प्रकारके

रसोंकी, शीतल, अन्न पानोंकी, शीतल शय्याकी, शीतल आसनोंकी शीतल पवनकी, शीतल जलके स्पर्शकी, शीतल उपवनोकी और चन्द्रमाकी किरणोंकी योजना करनी चाहिये ।

कफसम्बन्धी मदात्ययमें रुक्ष, तर्पण ( वृत्ति करनेवाले पदार्थ ) तथा अजवायन, सोंठ, मिरच और पीपल इनके साथ जौ तथा गेहूँका भोजन रुक्ष यूपोंके साथ भक्षण करना चाहिये, अथवा कुलवीके और सूखी मूलीके रसके साथ अथवा तीखे पदार्थोंके साथ जौका भोजन करना चाहिये ।

कफके मदात्ययमें रुक्ष द्रव्योंके साथ बकरेके मांसका रस, अथवा अम्ल किये हुए जागलदेशके जीवोंका मांस रस, अथवा कुछ खटाई डालकर सोंठ, मिरच, तथा पीपलका यूप पिलावे ।

मांसको हॉडीमें अथवा खीवटेमें सूखा भूनकर उसमें तीखे खट्टे और खारी पदार्थ मिलाकर खाय तो कफका मदात्यय दूर होजाताहै ।

कफके मदात्ययमें वमनकारक औषधियोंसे संयुक्त मद्य पिलाकर कफको निकालना चाहिये तथा शक्त्यनुसार लघन कराने चाहिये ।

साध्निपातिक मदात्ययमें वातज, पित्तज और कफज मदात्ययकी जो अलग चिकित्सा कही है वे सब चिकित्सा वैद्य इसमें करे ॥ ६६-८९ ॥

अथ प्रसंगप्राप्तकोद्रवादि-

मदचिकित्सा ।

सगुडः कूष्माण्डरसः शमयति मदमाशु कोद्रवजम् ॥ धतूरजश्च दुग्धं सशर्कर-  
श्चाशु पानेन ॥ ९० ॥ सच्छर्दिमूच्छर्-  
तीसारं मदं पूगफलोद्भवम् ॥ सद्यः प्रश-  
मयेत्पीतमातृप्तेर्वारि शीतलम् ॥ ९१ ॥  
वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणाद-  
पि च ॥ शाम्यति पूगफलोद्भवमदः  
सशूलः शर्कराकवलात् ॥ ९२ ॥ तत्क्ष-  
णान्मृदितं चूर्णं समाघ्रातं प्रणाश-  
येत् ॥ ताम्बूलोत्थं मदं पुंसामेकमेव  
स्वभावतः ॥ ९३ ॥ जातीफलमदं शीघ्रं  
हन्ति पथ्या निषेविता ॥ शीततोयाव-



गाहश्च शर्करा दधियोजिता ॥ विभीतम-  
दशान्त्यर्थमेतदेव मतं पुनः ॥ ९४ ॥  
मद्यं पीत्वा यदि नातत्क्षणमवल्लेखि शर्करां  
सघृताम् ॥ जातु न मदयति मद्यं मनाग-  
पि प्रथितवीर्यमपि ॥ ९५ ॥

इति मदात्ययपरमदपानाजीर्णपानविभ्रमाधिकारः ।

कोदोंको खानेसे जो मद होय तो पेटके रसमे गुड़ मि-  
लाकर सेवन करे, इससे कोदोंका मद तत्काल शमन हो-  
जाताहै । धतूरेका मद ( आमला ) मिश्री मिलाकर दूधको  
पीनेसे नष्ट होजाताहै ।

सुपारीके खानेसे उत्पन्न हुए वमन, मूर्छा और अतिसार  
सहित मदको तृप्तिपूर्वक कण्ठपर्यन्त पिया हुआ शीतल जल  
तत्काल दूर करदेताहै । सुपारीका मद अन्ने उपलोको  
सूघनेसे, जलको पीनेसे और नमक खानेसे भी दूर होजा-  
ताहै । सुपारीका मद शूलसहित होय तो खोंडयुक्त कवल  
धारण करे इससे तत्काल शांत होजाताहै ।

पानका मद तत्काल चूनेको हाथोंसे मलकर सूघनेसे  
शांत होजाताहै । जायफलका मद हरडके खानेसे, शीतल  
जलमे प्रवेश करनेसे, अथवा खांडके साथ दही खानेसे  
शांत होजाता है । बहेडेका मद भी दहीमे बूरा मिलाकर  
खानेसे शांत होजाताहै ।

मनुष्य यदि मद्य पीकर तत्काल घीमे मिलाकर बूरा  
खाय तो प्रबल पराक्रमवाला भी मद किंचित् भी नशा  
नहीं करता ॥ ९०-९५ ॥

इति मदात्यय-परमद-पानाजीर्ण-पान-  
विभ्रमाधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ दाहाधिकारः ।

तत्र प्रथमं पित्तदाहः ।

पित्तज्वरसमः पित्तदाहः स्यात्तस्य  
संक्रमः ॥ १ ॥

दाह उष्मात्मको व्याधिः पित्तज्वरसमानः  
पित्तज्वरलक्षणयुक्तः पित्तज्वरे तु आमाशय-  
दुष्टात् दाहो ज्वराधिक इति भेदः । तस्य  
दाहस्य पित्तज्वरोक्तः क्रमः चिकित्सा ॥

दाहरोग सात प्रकारका है, तहां सबसे पहिले पित्तके  
दाहको कहतेहैं, दाह गरमीरूप व्याधि है, इसमे पित्त-  
ज्वरके लक्षण होतेहैं इस कारण जो पित्तज्वरकी चिकि-  
त्सा कही है वही चिकित्सा दाहकी करनीचाहिये, पित्त-  
ज्वरमें आमाशयके दुष्ट होनेसे दाह और ज्वर यह दोनो  
होतेहैं और यह व्याधि तो केवल दाहरूप है, इस कारण  
पित्तज्वर और दाहमे भेद है ॥ १ ॥

## अथ रुधिरदाहः ।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रितं दहति ध्रुवम् ॥  
सन्धूष्यते चोष्यते च ताम्राभस्ताम्रलो-  
चनः ॥ लोहगन्धांगवदनो वह्निनेवाव-  
कीर्यते ॥ २ ॥

उद्रितम् अतिरिक्तं सत् दहति दाहाख्यं  
व्याधिं करोति । सन्धूष्यते अग्निना दह्यत  
इव । उष्यते समीपस्थेनैव वह्निना ताप्यते  
चूष्यत इति पाठान्तरे आचूषणेनैव पीडाम-  
नुभवति इत्यर्थः । वह्निनेव अवकीर्यते शरी-  
रोपरि वह्निः प्रक्षिप्यत इव ॥

सम्पूर्ण शरीरमे रहनेवाला रुधिर सो अत्यन्त वृद्धिको  
प्राप्त और कुपित होकर दाह नामवाली व्याधिको उत्पन्न  
करताहै, इसमे रोगीको सब ससार अग्निसे जलते हुएकी  
समान प्रतीत होताहै, अथवा समीपमे रखी हुई अग्निसे  
सब शरीर तपता हुआ मालूम होताहै, शरीरमें चूसने  
सरीखी पीडा होतीहै, शरीरपर अग्नि डालनेकी समान  
वेदना होतीहै, इस मनुष्यका शरीर, नेत्र, लालवर्ण होजा-  
तेहैं शरीरमेंसे तथा मुखमेंसे तत्ते लोहेपर जल डालनेके  
समान गंध आनेलगताहै ॥ २ ॥

## अथ रक्तपूर्णकोष्ठजदाहः ।

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोन्यः स्यात्सु-  
दुस्तरः ॥ ३ ॥

असृजा शस्त्रादिक्षतात् निस्सृतरक्तैः ॥

शस्त्र आदिके लगनेसे घाव जो होजाताहै, उस घाव-  
मेंसे निकलेहुए रुधिरसे जिस मनुष्यका कोठा भर जाताहै  
उसके जो महादुस्तर दाह उत्पन्न होताहै वह तीसरे प्रका-  
रका दाह गिनाजाताहै ॥ ३ ॥

अथ मद्यदाहः ।

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ॥ दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ ४ ॥

स पानोष्मा मद्यपानजनित ऊष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः पित्तरक्ताभ्यां वर्द्धितः ॥

मद्यपानके करनेसे त्वचा ( चमडी ) में प्राप्तहुई और पित्त तथा रुधिरसे बढीहुई भयकर दाहको उत्पन्न करती है, इससे पित्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ तृष्णानिरोधजदाहः ।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ॥ ५ ॥ स बाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः ॥ संशुष्कगलताल्बोष्ठो जिह्वां निष्कास्य वेपते ॥ ६ ॥

अब्धातौ रसे क्षीणे क्षयं प्राप्ते । तेजः समुद्धतं वृद्धम्, मन्दचेतसः अल्पबुद्धेः यतस्तेन तृष्णानिरोधः कृतः ॥

जो मनुष्य अपनी मूर्खतासे तृषा ( प्यास ) को रोकता है उसके तृषाके अवरोधसे शरीरकी जलमय धातु क्षीण होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ तेज शरीरके बाहर तथा भीतर दाहको उत्पन्न करता है और उसमें गला, तालू और होठ सूखजाते हैं और वह जीभ निकालकर हँपता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ धातुक्षयजदाहः ।

धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः ॥ क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेदृशपीडितः ॥ ७ ॥

सीदत् म्रियेत ॥

धातुके क्षयसे जो दाह होती है उससे पीडित मनुष्य मूर्च्छासे तथा तृषासे युक्त होता है, क्रिया रहित होजाता है, स्वर बैठजाता है और वह मनुष्य अतम मरजाता है ॥ ७ ॥

अथ मर्माभिघातजदाहः ।

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ॥ मर्माणि शिरोहृदयवस्त्र्यादीनि ॥

मत्तक, हृदय और मूत्राशय आदि मर्मोंके अभिघात

( चोट ) से जो दाह होता है वह असाध्य है । यह सातवर्ग दाह है ।

अथ दाहासाध्यता ।

सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगान्त्रस्य देहिनः ॥ ८ ॥

जिसके शरीरमें भीतर तो दाह हो और ऊपरसे शरीर शीतल हो ऐसा सब प्रकारका दाह वर्जित है ॥ ८ ॥

अथ दाहचिकित्सा ।

शतधौतवृताभ्यक्तं लेपं वा यवसक्तुभिः ॥ कोलामलकयुक्तैर्वा धान्याम्लैरपि बुद्धिमान् ॥ ९ ॥

छादयेत्तस्य सर्वांगमारनालार्द्रवाससा ॥ लामज्जेन युक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजनैः ॥ १० ॥ सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे ॥ परिषेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने ॥ ११ ॥ शस्यते शिशिरं तोयं दाहतृष्णोपशान्तये ॥ फलिनी लोभ्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम् । कालेयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ १२ ॥

फलिनी प्रियंगुः । सेव्यम् उशीरम् । अम्बु वालकं हेमपत्रं नागकेशरपत्रम्, कुटन्नटं वितुन्नकं गुडतजी इति लोके कचिच्चम्पावती इति नाम । कालीयकं कलम्बक इति लोके ॥

हीवेरपद्मकोशीरचन्दनाम्बुजवारिणा ॥

सम्पूर्णमवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥

॥ १३ ॥ वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः ॥ नार्यश्चन्दनदिग्धा-

ङ्गयो दाहदैन्यहरा मताः ॥ १४ ॥

पाययेत्कमलस्याम्भः शर्कराम्भः पयोऽपि च ॥ क्षीरमिक्षुरसश्चापि कारयेत्पित्तजि-

द्विधिम् ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य दाहवाले मनुष्यके शरीरमें धीको

सौवार धोकर मालिसकरे, अथवा जौके सत्तू और बेर तथा आमले सहित धान्याम्ल नामक कॉजीका लेपकरे दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरको कॉजीमे भीजे हुए वस्त्रसे ढके शरीरपर लामजक संयुक्त चदनका प्रलेप करे ।

दाहसे व्याकुल मनुष्यको कमलके पत्र और केलेके पत्तोंकी शय्यापर सुलावे । चंदन मिले हुए जलके कण जिनमेसे गिरते हो ऐसे पंखोंसे पवन करे ।

दाह और तृषाको शांत करनेके लिये जलका सींचना वा छिडकना, जलमें घुसकर स्नान करना और शीतल जलका ही उपयोग करना चाहिये ।

फूलप्रियंगू, लोध, सुगंधवाला, खस नागकेसरके पत्ते केवटी मोथा और पीला चंदन इनका रस निकालकर प्रलेप करना दाहमें हितकारी है ।

सुगंधवाला, पद्माख, खस, चंदन और कमल इनसे सुवासित किया हुआ जल चौबच्चेमें भरदेवे उसमें दाहसे पीडित मनुष्यको बैठावे ।

जिनमें सुन्दर सुन्दर रंग रंगके मनोहर कमल खिल रहे हैं ऐसी वावडी, जिनमें फुहारे छूट रहे हैं ऐसे भवन और सर्व अंगोंमें जिनके चंदन लगरहा हैं ऐसी स्त्री दाहसम्बन्धी दुःखको दूर करै है ।

दाहवाले मनुष्यको कमलका जल पिलावे, खाडका सरबत पिलावे, मिश्री मिलाकर दूध पिलावे, केवल दूध ही पिलावे और ईखका रस पिलावे इत्यादि पित्तको शमन करनेवाले उपचार करने चाहिये ॥ ९-१५ ॥

### अथ चंदनादिकाथः ।

पटीरपर्पटोशीरनीरनीरदनीरजैः ॥ मृणालमिसिधान्याकपद्मकामलकैः कृतः १६ ॥  
अर्द्धशिष्टः सिताशीतः पीतः क्षौद्रसमन्वितः ॥ काथो व्यपोहयेदाहं नृणाञ्च परमोल्बणम् ॥ १७ ॥  
पटीरं चन्दनम् ॥

सफेद चंदन, पित्तपापडा, सुगंधवाला, खस, नागर-मोथा, कमलगट्टा, कमलकी नाल, सौंफ, धनियों, पद्माख और आमले इनका अर्द्धांशकाथ बनावे, उसमें मिश्री और शीतल होनेपर सहित डालकर पीनेसे मनुष्योंका अत्यंत उग्रदाह शांत होजाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

### अथ कांजिकतैलम् ।

तिलतैलं भवेत्प्रस्थं तत्पोडशगुणे शनैः ॥  
कांजिके विपचेत्तस्यादाहज्वरहरं परम् १८

इति दाहाधिकारः ।

सोलह १६ भाग कॉजीमे धीरे धीरे पकाया हुआ तिलका चौसठ ६४ तोले तेल दाह और ज्वरके संतापको दूर करताहै ॥ १८ ॥

इति दाहाधिकारः संपूर्णः ।

### अथोन्मादाधिकारः ।

#### तत्रोन्मादनिरुक्तिः ।

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ॥ मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥

अयमर्थः । यस्माद्धेतोरुद्धताः प्रवृद्धाः दोषा उन्मार्गमाश्रिताः मदयन्ति चित्तं विक्षिपन्ति अस्मिन्सोऽयमुन्माद इति कीर्तितः स उन्मादः मानसो व्याधिः मनोवैकृत्यकरणात् ॥

इस रोगमें वृद्धिको प्राप्त हुए दोष ( वात पित्त कफ ) अपने मार्गोंको छोडकर अन्यमार्गोंमें आश्रित होकर चित्तको विक्षिप्त करते हैं इसलिये इसको उन्माद कहते हैं यह मनको विकृत करदेताहै अत एव यह मानसिक रोग है ॥ १ ॥

#### अथावस्थाभेदेनोन्मादनामान्तरम् ।

स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां विभर्ति च २ ॥  
स उन्मादः तरुणो नवीनः ॥

यह उन्माद बढा न हो नवीन होय तो मद कहाजाता-है ॥ २ ॥

#### अथोन्मादविप्रकृष्टनिदानम् ।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरु-द्विजानाम् ॥ उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमा च चेष्टा ॥ ३ ॥

दुष्ट धत्तूरबीजादिसहितम् अशुचि रज-स्वलास्पर्शादि । प्रधर्षणमभिभवः । विषमा चेष्टा बलवद्विग्रहादिः ॥

विरुद्ध भोजन ( धतूरे आदि मिश्रित भोजन ), रज-  
स्वलाआदिसे स्पर्श किया हुआ भोजन, देवता. गुरु और  
ब्राह्मणोंके अपमानसे, भयसे अथवा हर्षसे मनमें डरके  
लगनेसे एव बलवान्के साथ द्वेषादिक विरुद्ध चेष्टा करनेसे  
इत्यादि कारणोंसे उन्माद रोग उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथोन्मादसन्निकृष्टनिदानम् ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥  
मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते ॥  
विपाद्भवति पष्ठश्च यथास्वं तत्र भेष-  
जम् ॥ ४ ॥

अत्यत कुपित हुई वायुसे, अत्यन्त कुपित हुए पित्तसे,  
अत्यत कुपित हुए कफसे अत्यत कुपित हुए तीनों  
दोषोंसे, मनके दुःखसे और विपादिकोंके भक्षण करनेसे,  
छः प्रकारका उन्माद होता है । इस उन्मादरोगमें यथादो-  
षानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथोन्मादसम्प्राप्तिः ।

तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं  
हृदयं प्रदूष्य ॥ स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोव-  
हानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

अल्पसत्त्वस्य अल्पसत्त्वगुणस्य । मला  
वातादयः । बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्येति एतेन  
आश्रयस्य दुष्ट्या तदाश्रितायाः बुद्धेरपि दुष्टि-  
रुक्ता । मनोवहानि स्रोतांसि हृदयाश्रितानि  
दश एतानि विशेषतो बोद्धव्यानि । चरकेण  
सकलशरीरस्रोतांसि एव मनोऽधिष्ठानत्वेन  
उक्तानि । प्रमोहयन्ति विकृति कुर्वन्ति ॥

अल्पसत्त्वगुणवाले मनुष्यके विरुद्ध भोजन आदि  
कारणोंसे दुष्ट हुए वातादिदोष बुद्धिके निवास रूप हृद-  
यको और बुद्धिको भी दूषित करके मनको बहानेवाले  
हृदयमें रहकर दश स्रोतोंमें स्थित होकर तत्काल मनुष्योंके  
चित्तको विकृत करते हैं ।

ऊपरके वचनमें मनको बहान करनेवाले स्रोतोंकी जो  
दश मग्या की हैं उनपर विशेष ध्यान देना चाहिये  
कारण कि, चरक तो 'शरीरमें जितने स्रोत हैं वे सब  
मनके अधिष्ठान हैं' ऐसा कहता है ॥ ५ ॥

अथोन्मादसामान्यलक्षणम् ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टि-  
रधीरता च ॥ अबद्धवाक्यं हृदयञ्च शून्यं  
सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ ६ ॥

धीविभ्रमः शुक्तिकायां रजतज्ञानम् ।  
सत्त्वपरिप्लवः सत्त्वं मनस्तस्य चाश्रयम् ।  
अबद्धवाक्यम् असंबद्धभाषित्वम् । शून्यं  
स्मृतिशून्यम् ॥

शीपको चादी समझना ऐसा बुद्धिमानका भ्रम, मनकी  
चंचलता, दृष्टिको चारोंओर व्याकुलतासे फिराना, अधीर-  
जता, असंबद्ध भाषण और हृदयकी शून्यता ( विचार-  
णाशक्ति जातीरहै ) ये उन्मादके सामान्य लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ वातजोन्मादनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।  
रूक्षोष्णशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनि-  
लोऽतिवृद्धः ॥ चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य  
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥ ७ ॥

रूक्ष, गरम और शीतल अन्नको भोजन करनेसे, विरे-  
चनसे, धातुओंके क्षयसे और उपवासादिकोंसे अत्यत  
बुद्धिको प्राप्त हुई वायु चित्तादिकसे दुष्ट होकर हृदयको  
अतिशय दूषित करके बुद्धिको तथा स्मरण शक्तिको भी  
तत्काल नष्ट करदेती है ॥ ७ ॥

अथ वातजोन्मादलक्षणम् ।

अस्थानहास्यस्मितनृत्यगीतवागंगविक्षेप-  
णरोदनानि ॥ पारुष्यकार्प्यारुणवर्णताश्च  
जीर्णे बलश्चानिलजस्य रूपम् ॥ ८ ॥

अस्थाने अनवसरे । हास्यादीनि रोदना-  
न्तानि जीर्णे आहारे बलं व्याधेः ॥

विनाही कारण हँसना या मुसकराना, प्रसंग विना नाचना  
प्रसंगविना गाना, विना प्रसंग बोलना, विना कारण इधर  
उधर हाथ पैरोंको चलाना, विना प्रसंग रोना, गाल बजाना,  
दुर्बलता, रूखापन, शरीरका लाल रंग होजाना और  
आहारके जीर्ण होनेपर रोगका बढ़ना यह सब वातसम्ब-  
न्धी उन्मादके लक्षण जानने ॥ ८ ॥

अथ पित्तजोन्मादसम्प्राप्तिः ।

अजीर्णकटुम्लविदाहशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ॥ उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥९॥

हृदि स्थितं पित्तं चितं सञ्चितं पुनः अजीर्णकटुम्लविदाहशीतैर्भोज्यैरुदीर्णवेगं सङ्कुन्मादं कुर्यात्पूर्ववत् हृदयं प्रदूष्य इत्यर्थः ॥

अस्थिर बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें संचित हुआ पित्त अजीर्णसे और तीखे, खट्टे दाहकारक तथा उष्ण भोजनोंसे प्रकुपित होकर हृदयको अत्यंत दूषित करके अत्यंत उग्र भयानक उन्मादको उत्पन्न करताहै ॥ ९ ॥

अथ पित्तजोन्मादलक्षणम् ।

अमर्षसंरम्भविनग्रभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः ॥ प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीतास्यता पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ १० ॥

अमर्षोऽसहिष्णुता संरम्भ आडम्बर इति यावत् । सन्तर्जनं परित्रासनम् । अभिद्रवणं पलायनम् । औष्ण्यं गात्रे च उष्णो दाहविशेषः । प्रच्छाय इत्यादि छायायां शीतयोश्चान्नजलयोरभिलाषा ।

असहनता, शीलता न रहै, इधर उधर हाथ पाँवोंको पटकै तथा अन्यान्य और उपद्रव मचावे, नगा हो जाय, दूसरोंको त्रास देवे, भाग जाय, शरीरमें एक प्रकारकी दाह हो, छायाकी इच्छा, शीतल अन्नकी इच्छा, शीतल जलकी इच्छा और मुखमें पीलापन ये सब पित्तजन्य उन्मादके लक्षण जानने ॥ १० ॥

अथ कफजोन्मादनिदानपूर्वक सम्प्राप्तिः ।

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि सम्प्रवृद्धः ॥ बुद्धिं स्मृतिश्चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

सम्पूरणैः भोजनादिभिः । मन्दविचेष्टितस्य व्यायामरहितस्य । सोष्मा कफेति

कफोऽपि उन्मादं करिष्यन्पित्तसहायम् अपेक्षते व्याधिस्वभावात् । मर्मणि अत्र मर्मशब्देन हृदयमुच्यते ॥

परिश्रम नहीं करनेवाले मनुष्योंके भोजन आदिसे वृद्धिको प्राप्तहुआ पित्तसहित कफ हृदयमें बुद्धिको तथा स्मृतिको नष्ट करदेताहै और चित्तको मोहयुक्त करके उन्मादको उत्पन्न करताहै ।

इस वचनमें 'पित्तसहित कफ' कहा इससे यह जान पड़ताहै कि जब कफ उन्माद करनेको, तैयार होताहै तब उसको व्याधिके स्वभावसे पित्तकी सहायताकी आवश्यकता होतीहै ॥ ११ ॥

अथ कफजोन्मादलक्षणम् ।

वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियता च निद्रा ॥ छर्दिश्च लाला च बलश्च भुक्ते नखादिशौक्यश्च कफात्मके स्यात् ॥ १२ ॥

वाक्चेष्टितं मन्दं वचनमल्पम् । नारीविविक्तप्रियता नारीप्रियता विजनप्रियता च । भुक्ते सति बलं व्याधेः ॥

कफके उन्मादमें थोडा बोलताहै, स्त्रीकी इच्छा होतीहै एकात वास अच्छा मालूम होताहै, निद्रा आतीहै वसन होतीहै, लार गिरतीहै, भोजन करनेके पश्चात् व्याधिका बल बढ़ताहै और नखादिक बहुत सफेद होजातेहैं ॥ १२ ॥

अथ सान्निपातिकोन्माद निदानपूर्वकलक्षणम् ।

यः सान्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः स तु हेतुभिः स्यात् ॥ सर्वाणि रूपाणि विभर्ति तादृग्विरुद्धमैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

स सान्निपातिक उन्मादः । सान्निपातग्रहणेनैव सर्वात्मकत्वं लब्धं पुनः सर्वैरिति यत्कृतं तद्रजस्तमः प्रापणार्थं तेन रजस्तमोर्मिलित इत्यर्थः । तेन वातादयो रजस्तमोर्भिर्मनोदोषैः मिलितोः समस्तैश्च निदानैः कुपिता उन्मादं जनयन्ति । सर्वै-



हेतुभिः समस्तैर्मिलितैः स्यात् । यतोऽन्यो व्याधिः सर्वैर्हेतुभिः मिलितैरेव भवतीति नियमो नास्ति । अयं तु व्याधिप्रभावात्सर्वैर्हेतुभिर्मिलितः स्यात् । तादृक् उन्मादः विरुद्धभेषज्यविधिरिति कोऽर्थः ? त्रिदोषजे प्रत्येकं वातादेः प्रत्यनीका चिकित्सा कार्या सा च परस्परविरोधिनी त्रिदोषं हन्ति किञ्चिदेव द्रव्यम् आमलकादि न च अत्र यौगिकं व्याधिप्रभावादत्त एव विवर्ज्यः न चिकित्स्य इत्यर्थः ॥

सम्पूर्ण कारणोंसे कुपित हुए और रजोगुण तथा तमोगुण मनके दोषोंके साथ मिलकर वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोंसे जो अत्यंत घोर उन्माद होता है उसको सान्निपातिक उन्माद कहते हैं उसमें सब लक्षण देखेजाते हैं । अन्य त्रिदोषजन्य रोग सम्पूर्ण कारणोंके मिलनेसे ही होते हैं ऐसा नियम नहीं है किन्तु यह सान्निपातिक उन्माद तो सम्पूर्ण कारणोंके मिलनेसे ही होता है ऐसा इसका स्वभाव है । इस उन्मादमें जो कुछ औषधि आदि की जावे वह सब विरुद्ध पड़ती है, इसकारण इस उन्मादकी चिकित्सा ही नहीं करनी चाहिये । अन्य रोगोंमें त्रिदोषजन्य वायु आदि प्रत्येक दोषोंकी परस्परविपरीत चिकित्सा कीजाती है और वह चिकित्सा एक दूसरे दोषोंसे विरुद्ध होती है । इस उन्मादकी चिकित्सा तो तीनों दोषोंकी समान प्रचलता होनी है इसकारण इसमें एक दूसरे दोषसे विरुद्ध चिकित्सा काम नहीं देती । आमला आदि कोई एकही द्रव्य तीनों दोषोंको एक साथमें शमन करता है किन्तु वह द्रव्य इस उन्मादमें व्याधिके स्वभावसे उपयोगी नहीं होसकता । इस उन्मादकी चिकित्सा व्यर्थ जाती है ॥ १३ ॥

अथ मनोदुःखजोन्मादविप्रकृष्ट-  
निदानम् ।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्विन्नासित-  
स्य धनवाधवसंक्षयाद्वा ॥ गाढं क्षते  
मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायत चोत्कट-  
तरो मनसो विकारः ॥ १४ ॥

अन्यैः हिंसादिभिः गाढमतिशयेन क्षते  
ऽभिहते । प्रियया प्राप्तुमशक्यया रिरंसोः  
पुरुषस्य । विकारः उन्मादरूपः ॥

चोर, राजपुरुष, शत्रु अथवा अन्यान्य मनुष्योंके त्रास देनेसे, या धनका और वाधवोंका नाश होनेसे मन अत्यंत दुःखित ( घायल ) होकर अथवा जो अपनेको न मिल-  
सके ऐसी स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छासे- मनमें अत्यंत चोट लगकर अधिकतर प्रबल उन्माद उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथ मनोदुःखजोन्मादलक्षणम् ।

चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो  
गायत्यथो हसति रोदिति चाति-  
मूढः ॥ १५ ॥

चित्रमाश्चर्यं मनोऽनुगतं गोप्यमपि  
विसंज्ञो विरुद्धज्ञानः । अतिमूढः अतीव  
ज्ञानशून्यः । अत्र विकल्पो बोद्धव्यः ॥

मनके दुःखसे जो उन्माद होता है उसमें विपरीत ज्ञान-  
वाला अथवा ज्ञानसे रहित होकर वह विचित्र प्रकारसे बोलता है, मनमें स्थित गुप्त बातको भी कहदेता है, कभी गाता है, कभी हँसता है और कभी रोता है ॥ १५ ॥

अथ विषजन्योन्मादलक्षणम् ।

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः श्यावा  
ननो विषकृते तु भवेत्परासुः ॥ १६ ॥

विषजन्य उन्मादमें आँखें लाल होजाती हैं, बल,  
इन्द्रियोंकी सामर्थ्य और शरीरकी काति नष्ट होजाती है,  
मुख काला होजाता है और मन अत्यंत दीन होजाता है  
यह मनुष्य जीता नहीं ॥ १६ ॥

अथोन्मादारिष्टम् ।

अवाङ्मुखस्तन्मुखो वा क्षीणमांसबलो  
नरः ॥ जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन  
विनश्यति ॥ १७ ॥

जो उन्मादसे पीडित मनुष्य मुखको नीचेही करे रहै,  
अथवा सदैव ऊपरको उठायेरहै, जागाकरे, तथा जिसका  
मांस और बल क्षीण होगया हो ऐसा मनुष्य उन्मादसे  
अवश्य मरजाता है ॥ १७ ॥

अथ देवाद्युन्मादसामान्यलक्षणम् ।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तः ॥ प्रकोपकालो नियतश्च यस्य देवादिजन्मा मनसो विकारः ॥ १८ ॥

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टः न मर्त्यस्येव चागादयो यत्र सः । विक्रमः पराक्रमः । वीर्यं शौर्यम्, ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तज्ञानं बुद्धिः आदिपदेन तद्वेदाः मेधाविचारणात्स्मृत्यादयो गृह्यन्ते । विज्ञानं शिल्पादिविषयकं ज्ञानम् । बलम् चेष्टापाटवम् । आदिपदेन अभिमानादि गृह्यन्ते । नियतः वक्ष्यमाणतिथ्यादिभिः । मनोविकार उन्मादः ॥

देवादिकजुष्ट उन्मादमें उस मनुष्यका बोलना, पराक्रम, शूरता और चेष्टा मनुष्योंके सी नहीं होती और वह मनुष्य बुद्धि, विचारशक्ति, धारणाशक्ति, स्मरणशक्ति, शिल्प आदिके ज्ञान, बल तथा अभिमान इत्यादिसे संयुक्त होता है । इस उन्मादके प्रकोपका समय असुक्त तिथिमें नियमित होता है जो कि, आगे कहा जायगा ॥ १८ ॥

अथ देवग्रहजुष्टलक्षणम् ।

सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रोऽप्यवितथसंस्कृतप्रभाषी ॥ तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ १९ ॥

अतिदिव्यमाल्यगन्धः अतिशयेन दिव्यस्य माल्यस्येव गन्धो यस्य सः । निस्तन्द्रो निद्रारहितः । अवितथं सत्यम् । ब्रह्मण्यः ब्राह्मणभक्तः ॥

देवग्रहग्रसित उन्मादमें मनुष्य सतोषी होता है, पवित्र रहता है, उसके शरीरमें दिव्य पुष्पोंकी सुगन्ध आती है, निद्रारहित होता है, सत्य सत्य शुद्ध संस्कृतभाषा बोलता है, तेजस्वी होता है, उसके नेत्र स्थिर होते हैं, दूसरोंको वरदान देता है और ब्राह्मणोंकी भक्ति करता है ॥ १९ ॥

अथ दैत्याविष्टलक्षणम् ।

संस्वेदी द्विजगुरुद्वदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ॥ सन्तुष्टो भवति न चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः ॥ २० ॥

विमार्गदृष्टिः कुमार्गरतः । दुष्टात्मा दुष्टस्वभावः ॥

दैत्यग्रह ग्रसित उन्मादवाला मनुष्य पसीनेसे तराबोर होजाता है, ब्राह्मण गुरु और देवताओंकी निन्दा करता है, उसके नेत्र टेढ़े होजाते हैं, किसीसे भयभीत नहीं होता, कुमार्गमें रुचि रखता है, किसी अन्नपानसे सन्तुष्ट नहीं होता और उसका स्वभाव दुष्ट होजाता है ॥ २० ॥

अथ गन्धर्वाविष्टलक्षणम् ।

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः ॥ नृत्यनवै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

हृष्टात्मा हृष्टजीवात्मा पुलिनं तोयोत्थितं तटं वनान्तरं वनमध्यं तयोः सेवी । चारु चाल्पशब्दमिदं हसनक्रियाविशेषणम् ॥

गन्धर्व ग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नान्तःकरणयुक्त रहता है, जलाशय, तट और वन उपवनोमें निवास करता है, उत्तम आचरण रखता है, गायन, सुगन्ध तथा पुष्पोंके ऊपर प्रेम रखता है और नाचते २ मन्द मुसकान करता है ॥ २१ ॥

अथ यक्षाविष्टलक्षणम् ।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः ॥ तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २२ ॥

यक्षग्रहग्रसित मनुष्य गम्भीर होता है, उसके नेत्र लाल होते हैं, प्रिय सुन्दर बारीक और रंगीनवस्त्र पहनता है, शीघ्र २ चलता है, थोड़ा बोलता है, सहन शील और तेजस्वी होता है तथा किसको क्या दू ऐसा बोलता है ॥ २२ ॥

अथ पित्राविष्टलक्षणम् ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान्  
शान्तात्मा, जलमपि चापसव्यवस्त्रः ॥  
मांसंप्सुस्तिलगुडपायसाभिलाषी तद्रक्तो  
भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २३ ॥

प्रेतानां मृतानां पितृणाम् दिशति ददाति ।  
अपसव्यवस्त्रः दक्षिणस्कन्धकृतोत्तरीयः ॥

पितृग्रहे पीडित मनुष्य कुशा आदिपै अपने पित्रोंको  
पिंड देताहै, शातचित्त रहताहै, अपसव्य अर्थात् दहिने  
स्कन्धपर वस्त्र रखकर अपने पित्रोंको जल भी देताहै, मांस,  
तिल, गुड और खीर खानेकी इच्छा करताहै और पित्रोंकी  
भक्ति करताहै ॥ २३ ॥

अथ नागाविष्टलक्षणम् ।

यस्तव्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित् सृक्कि-  
ण्यौ मुहुरपि जिह्वयाऽवलेढि ॥ क्रोधा-  
लु-  
धृतमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयः स खलु  
भुजंगमेतजुष्टः ॥ २४ ॥

प्रसरति स सर्पवदुरसा चलति । सृक्किण्यौ  
आंशुप्रान्तौ ॥

सर्पग्रहे ग्रसित मनुष्य कभी सापकी समान पृथिवीमें  
छातीमें बलमे चलताहै, बारबार जीभसे गलाफुओंको  
चाटताहै, क्रोधित होताहै और सहत, घी, दूध तथा  
खीर खानेकी इच्छा करताहै ॥ २४ ॥

अथ राक्षसाविष्टलक्षणम् ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-  
निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ॥  
क्रोधा-  
लु-  
र्विविधवलो निशाविहारी  
शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥ २५ ॥

राक्षसग्रहे जुष्ट मनुष्य मांस, रुधिर और मदिराके  
विकारोंकी इच्छा करताहै, अत्यन्त निर्लज्ज होजाताहै,  
अत्यन्त निर्दय होजाताहै, अत्यन्त शूर होजाताहै, क्रोधी  
होजाताहै, उसके शरीरमें अनेक प्रकारके बल आजाते  
हैं, रात्रिभ्रमण कियाकरताहै और पवित्रतासे द्वेष  
करताहै ॥ २५ ॥

अथ ब्रह्मराक्षसाविष्टलक्षणम् ।

देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदांगनिन्दकः ॥ आ-

त्मपीडाकरोऽहिंसो ब्रह्मराक्षससेवितः २६  
अहिंसः अहिंसाशीलः ॥

ब्रह्मराक्षससे पीडित मनुष्य देवता, ब्राह्मण और गुरु  
इनसे द्वेष करताहै, वेद और वेदके अंगोंकी निन्दा कर-  
ताहै, अन्य किसी मनुष्यको नहीं मारता किन्तु अपने  
शरीरको पीडित करताहै ॥ २६ ॥

अथ पिशाचाविष्टलक्षणम् ।

उद्वस्त्रः कृशपरुषो विरुद्धभाषी दुर्गन्धो  
भृशमशुचिस्तथातिलोलः ॥ बद्धाशी वि-  
जनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टस्त्रसति रुद-  
न्पिशाचजुष्टः ॥ २७ ॥

उद्वस्त्रः नम्रः दिग्म्बर इति विदेहवच-  
नात् कृशो निर्मासः । परुषो रुक्षः । अति  
लोलः सर्वस्मिन्नन्नपानादौ लोलुपः । व्याचे-  
ष्टविरुद्धमाचेष्टन् ।

पिशाचग्रहे पीडित मनुष्य नम्र होजाताहै दुर्बल औ  
बलहीन होजाताहै, विरुद्ध वाक्य बोलताहै, दुर्गन्धि  
होजाताहै, अत्यन्त अपवित्र रहताहै, रूखा होजाताहै  
सर्व प्रकारके अन्न पानोंमें लपट होजाताहै, बहुत भोज  
करताहै, निर्जन स्थान और वनोंके मध्यमे रहताहै औ  
विरुद्ध चेष्टा करता २ तथा रोता २ त्रासको प्रा  
होजाताहै ॥ २७ ॥

अथ हिंसकराक्षसादिग्रहग्रसि-  
तनिदानम् ।

अशुचि भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाक्ष-  
तम् ॥ हिंसहिंसाविहारार्थं सत्कारार्थम-  
थापि वा ॥ २८ ॥

जो मनुष्य अपवित्र रहनेवाला और मर्यादाको तोड़ने-  
वाला होताहै वह मनुष्य वावयुक्त हो अथवा घावरहित  
हो तो भी राक्षसादिक हिंसक जाति उस मनुष्यको मार-  
नेके लिये अथवा उससे अपनी पूजा करनेके लिये उसको  
पकड़तेहैं ॥ २८ ॥

अथ हिसार्थगृहीतलक्षणम् ।

स्थूलाक्षो द्रुतमदनः सफेनवामी निद्रालुः  
पतति च कम्पते च योऽति ॥ यश्चाद्रिद्रि-  
रदनगादिविच्युतः स्यात्सोऽप्राध्यो भव-  
ति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥ २९ ॥

यश्चाद्रि इत्यादि यः पर्वतादिपतितः स ग्रहैर्गृह्यत इत्यर्थः । आदिशब्देन भित्तिप्रासादादयो गृह्यन्ते तथा त्रयोदशेऽब्दे सर्व एव देवादिगृहीता असाध्याः ॥

पर्वतके ऊपरसे, हाथीके ऊपरसे, वृक्षादिकके ऊपरसे, भीतके ऊपरसे और ऊचे भवन आदिकके ऊपरसे गिरेहुए मनुष्यको राक्षसादिक हिसक जाति ग्रसलेतीहैं तब उस मनुष्यके नेत्र जड होजातेहैं ॥

वेगसे शीघ्रचले, ज्ञागोयुक्त वसन करे, निद्रा अधिक आवे, गिरपडे और अत्यन्त कोंपे यह मनुष्यका उन्माद असाध्य है । देवादिक ग्रह ग्रसित सर्व प्रकारके उन्माद तेरहवें वर्ष असाध्य होजातेहैं ॥ २९ ॥

अथ देवाद्यवेशसमयः ।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि ॥  
गन्धवाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपत्ति-  
थौ ॥ ३० ॥ पितरः कृष्णपक्षे च पञ्चम्या-  
मपि चोरगाः ॥ रक्षःपिशाचा रात्रौ च चतु-  
र्दश्यां विशन्ति हि ॥ ३१ ॥

कृष्णपक्षे अमावास्यायां प्रायशः यदन्यत्रापि तिथ्यभिधानप्रयोजनं लक्षणार्थं तत्र तिथौ च बलिदानार्थम् ॥

विशेष करके देवग्रह पूर्णमासीके दिन, दैत्य दोनों संध्याकालमें, गन्धर्व अष्टमीके दिन, यक्षग्रह, पडवाके दिन, पितृग्रह कृष्णपक्षमें, सर्पग्रह पंचमीके दिन, राक्षस रात्रिमें और पिशाचग्रह चतुर्दशीके दिन मनुष्यके शरीरमें प्रवेशकरतेहैं । पितृग्रह विशेष करके कृष्णपक्षकी अमावास्याके दिन प्रवेश करतेहैं और किसी समय अन्य तिथियोंमें भी प्रवेश करतेहैं । लक्षण समझनेके लिये और उन उन तिथियोंमें बलिदान करनेके लिये तिथि कही है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ देवादिग्रहो मनुष्यशरीरे

प्रविशन्न दृश्यत इत्याह ।

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो  
यथा ॥ स्वमणिं भास्करार्चिश्च तथा देहे  
च देहधृक् ॥ विशन्ति च न दृश्यन्ते  
ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम् ॥ ३२ ॥

दर्पणादीनिति आदिशब्देन अन्यदपि निर्मलद्रव्यं जलतैलादिद्रवद्रव्यश्च गृह्यते । छाया प्रतिबिम्बम् । स्वमणिः सूर्यमणिः ॥ देहधृक् जीवात्मा ॥

देवादिक ग्रह जो मनुष्योके शरीरमें प्रवेश करतेहैं वह मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करते समय क्यों नहीं दीखते ? ऐसी कोई शका करे तो उसके समाधानके लिये कहते हैं । “जिसप्रकार दर्पण अथवा जल वा तेल आदिक द्रव पदार्थोंमें छाया प्रवेश करतीहै और प्रवेश करती दीखती नहीं, जिस प्रकार शीत और गरमी मनुष्योके शरीरमें प्रवेश करतीहै किंतु प्रवेश करती दीखती नहीं, जिसप्रकार सूर्यकी किरणें मूर्यकात ( आतसीसीसा ) मणिमें प्रवेश करती हैं और प्रवेश करती नहीं दीखती, जिसप्रकार जीव शरीरमें प्रवेश करताहै और प्रवेश करता दीखता नहीं, उसीप्रकार देवादिक ग्रह शरीरमें प्रवेश करतेहैं किंतु प्रवेश करते दीखते नहीं ॥ ३२ ॥

अथोन्मादचिकित्सा ।

वातिक स्तहपानं प्राग्विरेकः पित्तसम्भवे ॥  
कफजे वमनं कार्यं परो वस्त्यादिकः क्रमः ॥  
॥ ३३ ॥ यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारे चि-  
कित्सितम् ॥ उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्यं  
दोषदूष्ययोः ॥ ३४ ॥ जलामिद्रुमशैलेभ्यो  
विषमेभ्यश्च तं सदा ॥ रक्षेदुन्मादिनं  
यत्नात्सद्यः प्राणहरं हि तत् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मीकू-  
ष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशंखपुष्पिकास्वर-  
साः ॥ दृष्ट्वा उन्मादहतः पृथगेते कुष्ठमधु-  
भिश्चाः ॥ ३६ ॥

अयमर्थः । ब्राह्मीरसः ( तोला ) ४, कुष्ठचूर्णं माषाः २, मधु अष्टौ माषाः ८ पेयाः । इति एको योगः । माण्डवीजचूर्णमाषाः ८ कुष्ठचूर्णमाषौ २ अथ द्वितीयो योगः । शंख-पुष्पीस्वरसं पलैकं १, कुष्ठचूर्णं माषद्वयं २, मधुनः अष्टौ माषाः पेयाः । तृतीयो योगः ॥

वातके उन्मादमें प्रथम स्नेहपान करना चाहिये, पित्तके

उन्मादमें प्रथम विरेचन ( दस्त ) कराना चाहिये, और कफके उन्मादमें प्रथम वमन ( उलटी ) करानी चाहिये पश्चात् पिचकारी आदि लगानी चाहिये ॥

अपस्मार रोगमें दोषोंके लिये तथा दोषोंसे दूषित हुई धानुओंके लिये जो कुछ चिकित्सा कीजातीहै वह सब चिकित्सा उन्मादमें भी करनीचाहिये । उन्मादरोगीकी जलसे, अग्निसे, वृक्षोंसे, पर्वतोंसे, तथा अन्यान्य विषम-स्थानोंसे यत्नपूर्वक सर्वदा रक्षा करनीचाहिये । कारण यह है कि, जल और अग्निआदि तत्काल मृत्युको करतेहैं ॥

ब्राह्मीका रस ४ तोले, कूठका चूर्ण १२ रत्ती और सहत ४८ रत्ती इन सबको एकत्र मिलाकर पीनेसे उन्माद नष्ट होताहै ॥

पेटेके बीजोंका चूर्ण ४८ रत्ती, और कूठका चूर्ण १२ रत्ती इनको सहतमें मिलाकर खानेसे उन्माद नष्ट होजाताहै ॥

गलाहृत्कीका रस ४ तोले, कूठका चूर्ण १२ रत्ती और सहत ४८ रत्ती इनको एकत्र मिलाकर पीनेसे उन्मादका नाश होताहै ॥ ३३-३६ ॥

### अथ सिद्धार्थकादि ।

सिद्धार्थको हिंशु वचा करज्जो देवदारु च ॥  
मस्तिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक् कटुच-  
यम् ॥ ३७ ॥ समांशानि प्रियंगुश्च शिरी-  
षो रजनीद्वयम् ॥ वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमग-  
दः पानमञ्जनम् ॥ ३८ ॥ नस्यमालेपनश्चै-  
व स्नानमुद्धर्तनं तथा ॥ अपस्मारविषोन्मा-  
दकृत्याऽलक्ष्मीज्वरापहम् ॥ ३९ ॥ भूते-  
भ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते ॥ स  
पिरितेन संसिद्धं सगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ ४० ॥

सरसों, हींग, वच, करज, देवदारु. मजीठ, हरट, कपड़ा, आमला, फटकरी, मालकागुनी, दालचीनी, सोंठ, मिर्च, शींग, कृष्णप्रियंगु, सिरस, हलदी और दारुहलदी इन सबको समान भाग लेकर बरकरेके मूत्रमें पीसकर जाग्रति बनावे । इस आपथिको पीनेसे, नेत्रोंमें आँजनेसे, नाश देनेमें, शरीरपर प्रलेप करनेमें, स्नान करनेमें और

उन्नत करनेसे अपस्मार, विष, उन्माद, अभिचार, अलक्ष्मी, ज्वर और भूतवाधा दूर होतीहै, इस औषधिका उपयोग करके राजद्वारमें जाना बहुत श्रेष्ठ है । इनही औषधियोंके द्वारा पकाया हुआ घी गोमूत्रके साथ सेवन किया जाय तो वह भी येही गुण करताहै ॥ ३७-४० ॥

### अथोन्मादिनस्त्रासभयकरणम् ।

ब्रूयादिष्टविनाशश्च दर्शयेदद्भुतानि च ॥  
बद्धं सार्षपतैलाक्तं रक्षेदुत्तानमातपे ॥ ४१ ॥  
कपिकच्छ्राथ वा तप्तैर्लोहतैलजलैः स्पृशेत् ॥  
कशाभिस्ताडयेत्तं वा सुबद्धं विजने गृहे ॥  
॥ ४२ ॥ सर्पेणोद्धृतदन्तेन दंशेत्सिंहैर्गजै-  
श्च तम् ॥ त्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्क-  
रैस्तथा ॥ ४३ ॥ अथ वा राजपुरुषा बहि-  
नीत्वा सुसंयतम् ॥ त्रासयेयुर्वधैरेनं तर्ज-  
यन्तो नृपाज्ञया ॥ ४४ ॥ देहदुःखभयेभ्यो  
हि यतः प्राणभयं भवेत् ॥ ततस्तस्य शमं  
याति सर्वतो विप्लुतं मनः ॥ ४५ ॥  
इष्टद्रव्यविनाशेन मनो यस्याभिहन्यते ॥  
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या ज्ञात्वाऽऽश्वासैः शमं  
नयेत् ॥ ४६ ॥

उन्माद रोगीसे उसकी प्रिय द्रव्यस्तुका नाश होना कहे इसको आश्चर्यजनक खेल दिखावे और उसके शरीरमें सरसोंके तेलका लेपकर धूपमें चित्त सुलावे, शरीरमें कौष्ठकी फली घिसकर लगावे, तपे हुए लोहेसे, तेलसे अथवा जलसे स्पर्श करावे, एकात घरमें अच्छे प्रकारसे उसको बाँधकर खूब कोड़े लगावे, जिसके दाँत निकाललियेगये हों ऐसे सोंपसे कटवावे, सिंह तथा हाथियोंसे डरपावे, शत्रु तथा चोरोंने भयभीत करावे, अथवा राजासे आज्ञा लेकर उनके राजनौकरोंसे नगरके बाहर लिया जाकर ग्यूस बाँधकर तिरस्कार करते २ मार डालनेकी धमकी देवे, कारण यह है कि, भयके लगनेसे और शरीरपर दुःखोंके पड़नेसे प्राण जानेका भय उत्पन्न होताहै और उस भयके होनेसे विकृत हुआ चित्त कदाचित् अपने ठिकाने आजाताहै । उन्मादरोगीको



गई हुई वस्तुकी समान दूसरी वस्तु देवै, जिसका मन किसी प्रिय वस्तुके विनाशसे अभिघातको प्राप्त हुआ हो उस मनुष्यके लिये विचार करके उसी वस्तुकी समान दूसरी वस्तु देनेका धीरज देकर चित्तको शांत करे, इस प्रकार करनेसे विगडा हुआ मन शांत होता है ॥ ४१-४६ ॥

### अथ त्र्यूषणांजनम् ।

त्र्यूषणं हिंगु लवणं वचा कटुकरोहिणी ॥  
शिरीषस्य करञ्जस्य बीजं गौराश्च सर्षपाः ॥  
॥ ४७ ॥ गोमूत्रपिष्टैरेभिस्तु वर्त्तिनेत्राञ्जने  
हिता ॥ हन्युन्मादमपस्मारं तथा चातु-  
र्थकं ज्वरम् ॥ ४८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, सैधानिमक, वच, कुटकी, सिरसके बीज, करजके बीज और सुफेद सरसों इनको गोमूत्रमे पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें आजनेसे उन्माद, मृगी और चौथिया ज्वर नष्ट होजाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

### अथ सारस्वतचूर्णम् ।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि  
कटूनि पाठा ॥ माङ्गल्यपुष्पी च समान्य-  
मूनिसर्वैः समानाश्च वचां विचूर्ण्य ॥ ४९ ॥  
ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्यं वारत्रयं  
शुष्कमिदं हि चूर्णम् ॥ अक्षप्रमाणं मधुना  
घृतेन लिह्यान्नरः सप्त दिनानि  
चूर्णम् ॥ ५० ॥

माङ्गल्यपुष्पी शङ्खपुष्पी शङ्खाहुलीति लोके ॥  
सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥  
हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधानां विचेत-  
साम् ॥ ५१ ॥ एतस्याभ्यासतः पुंसां  
बुद्धिर्मेधाः धृतिः स्मृतिः ॥ सम्पत्तिः  
कविताशक्तिः प्रवर्द्धन्वोत्तरोत्तरम् ॥ ५२ ॥

कूठ, असगध, सैधानिमक, अजमोद, जीरा, कालाजीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, पाठ और अखाहूली इनको समान भाग लेवै और सब औषधियोंकी बराबर बचलेवै, सबका एकत्र चूर्ण करके ब्राह्मीके रसकी तीन भावनादेवै, जब यह चूर्ण सूखजाय तब इसमेंसे एक एक तोला लेकर सहतमें

तथा घीमे मिलाकर सात दिन तक चाटे । ब्रह्माजीने पूर्व-कालमे सर्व लोकोंके हितके लिये विशेष करके दुष्ट बुद्धि-वाले मनुष्योंके लिये यह सारस्वतचूर्ण निर्माण किया है, इस चूर्णको नित्य सेवन करनेसे मनुष्योंकी बुद्धि, धारणा-शक्ति, धीरज, स्मरणशक्ति, सपत्ति और कविता शक्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥ ४९-५२ ॥

### अथ विश्वाद्यचूर्णम् ।

विश्वाजमोदरजनीद्वयसैन्धवोग्रायष्ट्याह्व-  
कुष्ठमगधोद्भवजीरकाणाम् ॥ चूर्णं प्रभात-  
समये लिहतः ससर्पिर्वाग्देवता निवसति  
स्वयमेव वक्त्रे ॥ ५३ ॥

सोंठ, अजमोद, हलदी, दारुहलदी, सैधानिमक, वच सुलैठी, कूठ, पीपल और जीरा इनका चूर्ण करके घीमें मिलाकर प्रातःकाल चाटे तो साक्षात् सरस्वती देवी सुखमें निवास करती है ॥ ५३ ॥

### अथ महाचैतस घृतम् ।

काथे विचूर्णिते क्षिप्त्वा तत्षोडशगुणं ज-  
लम् ॥ पादशेषं प्रकर्तव्यमेष काथविधिः  
स्मृतः ॥ ५४ ॥ दशमूली तथा रास्त्रा वा-  
तारिस्त्रिवृता बला ॥ भूर्वा शतावरी चेति  
काथैस्तु कुडवैः पृथक् ॥ ५५ ॥ कृतैः  
काथैर्घृतप्रस्थद्वयं मृद्गग्निना पचेत् ॥ कल्की-  
कृतैर्वक्ष्यमाणद्रव्यैः सम्यक्पुनः पचेत् ॥  
॥ ५६ ॥ विशाला त्रिफला कौन्ती देवदा-  
वेलवालुकम् ॥ स्थिराऽनन्ता रजन्यौ द्वे-  
प्रियंगुः सारिवाद्यम् ॥ ५७ ॥ नीलोत्प-  
लैला मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेसरम् ॥  
विडंगं ह्यग्निपत्री च कुष्ठं चन्दनपद्मके ५८ ॥

अग्निपत्री अग्नौतीति लोके अगिया इति च ॥

तालीशपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम् ॥  
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैः कर्षमितैः पृथ-  
क् ॥ ५९ ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा पिष्टैस्त-

द्विपचेद्वृत्तम् ॥ महाचैतसनामेदं सर्वचे-  
तोविकारनुत् ॥ ६० ॥ अपस्मारे महो-  
न्मादं मन्देऽग्नौ ज्वरकासयोः ॥ वातरक्ते  
प्रतिश्याये शोषे काष्ठये तृतीयके ॥ ६१ ॥  
मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले विसर्पाभिहतेषु च ॥  
पाण्ड्यामये तथा कण्ठां विषे मेहे गरेऽपि  
च ॥ ६२ ॥ देवादिहतचित्तानां गद्गदाना-  
मन्वतसाम् ॥ शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानां  
धन्यमायुर्वलप्रदम् ॥ ६३ ॥ अलक्ष्मीपा-  
परक्षेत्रं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ हन्ति भ्रमं  
मदं मूर्च्छां मेवास्मृतिमतिप्रदम् ॥ ६४ ॥

दशमूत्र, रायसन, एरट, निमोत, खिरटी, मूवा और  
सनागर ये प्रत्येक आधे सोलह सोलह तोले लेकर कूट  
लेवे, सबको एकत्र करके सोलहगुने जलमें पकावे जब  
पकने पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर  
छान लेवे, फिर इस काथमे २८८ तोले धीको मद भद  
अग्निसे पकावे, फिर इन्डायन, हरट, बहेडा, आमले, रेणुका,  
देवदारु, एलवालुक ( एलुआ ), सालपर्णी, धमासा, हल्-  
दी, दान्तरुटी, कर्णप्रियंगु, दोनों प्रकारकी सारिवा, नीले  
रमल, टल्यायची, मजीठ, जमालगोटके बीज, अनारकी  
फेनर, वायविडन, अग्रिपत्री, कूट, लालचदन, पद्मास,  
नालीसपत्र, कटाई और मालतीके नदीन फूट, ये प्रत्येक  
आधे चार चार तोले लेकर चौगुने जलमें तथा पीस-  
कर अलग अलग बल्क बनाकर उस बल्कसे अच्छे प्रकार  
घनको सिद्ध करें तो यह महार्चितस नामक घृत सिद्ध  
होताहै । यह धी चित्तमें समस्त विकारोंको शांत करता-  
है तथा अपस्मा, महेन्माद, अधिकी मदता, ज्वर,  
गैबी, वातरक्त, स्त्रेकना, शोष, दृग्गता, एकान्तरज्वर,  
मूत्रकृच्छ्र, कटीशूल, विषय, पाङ्गुग, गुजली, विष,  
मेहे, और वातर विषादिकोंको नष्ट करना है उसी प्रकार  
देवादिहतचित्तमे पीडित हुआ चित्तका विनाश, मनकी  
जगता, मनका विमोह धुनको दमेनाला, धन, आयु,  
पुत्रता, मेह, रुज, स्त्रुनिको वृद्धिदेनेवाला है, भ्रम,  
मद, मूर्च्छा, गद्गद कण्ठका होना, अलक्ष्मीके निवारणको,  
पराके उन्मादके सम्पूर्ण हर्तको । निराग्न करनेवाला  
॥ ६५-६८ ॥

अथ देवाद्युन्मादचिकित्सा ।

पूजाबल्युपहारोष्ट्रिहोममंत्राञ्जनादिभिः ॥  
जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिभि-  
षक् ॥ ६५ ॥

अष्ट वैद्य पूजा, बलिदान, उपहार, हवन, इष्ट मन्त्रका  
आराधन और अञ्जनादिकोंसे आगन्तुक, देवतादिकोंकी  
यथायोग्य पूजनकरै ॥ ६५ ॥

अथ कृष्णाञ्जनम् ।

कृष्णामरिचसिद्धूथमधुगोरोचनाकृत-  
म् ॥ अंजनं सर्वदेवादिकृतोन्मादहरं  
परम् ॥ ६६ ॥

पीपल, भिरच, संधानिमक, सहत और गोरोचन इन  
सब औषधियोंको कूटपीस छानकर अञ्जन बनावे, इस  
कृष्णाञ्जनके लगानेसे, देवादिकोंके कोपसे सब प्रकारके  
उत्पन्न हुए उन्माद तत्काल नष्ट होतेहैं ॥ ६६ ॥

अथर्क्षलोमकधूपः ।

ऋक्षजम्बूकलोमानि शल्लकी लशुनं तथा ॥  
हिगु मूत्रञ्च वस्तस्य धूमस्य प्रयोज-  
येत् ॥ एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि  
यो ग्रहः ॥ ६७ ॥

ऋक्ष और गीदड ( स्यार ) के रोम, सेईके काटे,  
लहसुन, हींग और बकरेका मूत्र, इन सबको मिलाकर  
धूप देनेसे बलवान् ग्रहदोषोंकी भी तुरन्त शान्ति  
होतीहै ॥ ६७ ॥

अथ कल्याणघृतम् ।

कल्याणकश्च युञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम् ॥  
तैलं नारायणं वाथ महानारायणं तथा ॥  
॥ ६८ ॥ ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं  
न चाचरेत् ॥ रोगिणं भिषजं यत्ते क्रुद्धा  
हन्त्यर्महौजसः ॥ ६९ ॥

इति उन्मादाधिकारः ।

कल्याण घृत, वा महार्चितस घृत, अथवा नारायण तैल  
वा महानारायण तैलका उन्माद रोगमें चतुर वैद्य सेवन  
करावे पिशाचोंके अतिरिक्त और देवताओंके विरुद्ध  
और कोई किसीप्रकारका आचरण न करे, क्योंकि यह  
महा बलवान् प्रतिकूल आचरण करनेसे क्रोधित होकर

सेर्गिको वा वैद्यको तत्कालही मारडालते हैं फिर कोई उपाय नहीं बन सक्ता ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

इति उन्मादाधिकारः ।

## अथाऽपस्मारलक्षणम् ।

तत्रापस्मारनिदानसहितसम्प्राप्तिः ।

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धाहत्स्रोतसि स्थिताः ॥ कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥

चिन्ता और शोकादिकोसे कुपित हुए दोष हृदयके स्रोतोमें अर्थात् मनके बहनेवाली नाडियोंमें स्थित होकर स्मृतिका नाश करके अपस्मार नामक रोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

अथापस्मारसंख्या ।

वातापित्तात्कफात्सर्वेर्दोषैः स स्याच्च-  
तुर्विधः ॥ २ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और त्रिदोषसे, इस रीतिसे अपस्मार चार प्रकारका है ॥ २ ॥

अथापस्मारसामान्यलक्षणम् ।

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः ॥

अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरतरो हि सः ३

संरम्भः नेत्रविकृतिहस्तपादादिविक्षेप-  
णादिकम् ॥

जिस रोगमें ऐसा जानपड़े कि, मैं अन्धकारमें प्रवेश करता हूँ और दोषोके प्रकोपसे स्मृति नष्ट होजाय, नेत्रोंमें विकार हो और हाथ पाओंको झुंघर उधर फेंके, यह अपस्मार रोगके लक्षण हैं इसी महा भयकर रोगको वैद्य लोग मृगी भी कहते हैं ॥ ३ ॥

अथापस्मारपूर्वरूपम् ।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमू-  
ढता ॥ निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति  
भवन्त्यथ ॥ ४ ॥

शून्यता हृदयस्यैव ध्मानम् । विस्मापनं  
मूर्च्छा मनोमोहः । प्रमढता इन्द्रियमोहः ।  
भविष्यति भाविनि तस्मिन् अपस्मारे ॥

अपस्मार रोग होनेसे हृदय कम्पायमान और शून्यता, पसीना, विस्मय, मूर्च्छा, मनमें मोह, इन्द्रियोंमें मूढता, निद्राका नाश होजाता है ॥ ४ ॥

अथ वातजापस्मारलक्षणम् ।

कम्पते प्रदशेदन्तान्फेनोद्गामी श्वसि-  
त्यपि ॥ अभितोऽरुणवर्णानि पश्येद्रूपाणि  
चानिलात् ॥ ५ ॥

जिसको वातकी मृगी होय उसके शरीरमें कम्प, दाँतोका चावना, मुखसे झागोका उगलना, ऊँची श्वासलेना, नेत्रोंमें अग्निकी समान चारो ओर लाल रूपोंका देखना, यह वातकी मृगीके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

अथ पित्तजापस्मारलक्षणम् ।

पीतफेनांगवक्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः ॥  
सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पै-  
त्तिके ॥ ६ ॥

पीतस्य असृग्रूपस्य वा वस्तुनो दर्शनं  
यस्य स पीतासृग्रूपदर्शनः ॥

जिसको पित्तकी मृगी होय उस मनुष्यके शरीरमें और नेत्रोंमें पीलापन, तृष्णा और संसारके सब पदार्थोंमें अग्निकी प्रचण्ड ज्वालासी व्याप्त दिखाई देवे, यह पित्तकी मृगीके लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ कफजापस्मारलक्षणम् ।

शुक्लफेनांगवक्राक्षः शीतो हृष्टांगजो  
गुरुः ॥ पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिके  
मुच्यते चिरात् ॥ ७ ॥

शीतः शीतांगः । हृष्टांगजो हृष्टरोमा ।  
गुरुः गुरुगात्रता ॥

जिसको कफकी मृगी होय उस पुरुषके शरीरका, फेनका, नेत्रोंका रंग सफेद, अंगोंमें भारीपन, शीत और रोमोंका खडा होना, सब लोकको वस्तुको सफेद ही सफेद देखना और बहुत कालोपरान्त चित्तका शान्त होना, ये लक्षण कफकी मृगीके हैं ॥ ७ ॥

अथ सन्निपातापस्मारलक्षणम् ।

समस्तैर्लक्षणैरेतैर्विज्ञातव्यस्त्रिदोषजः ॥  
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्या-  
नवश्च यः ॥ ८ ॥

स च त्रिदोषजः असाध्यः तथा क्षीणस्य  
अनवश्च एकदोषजोऽपि असाध्य इत्यर्थः ॥

अपस्मारमें ऊपर कहे हुए त्रिदोषके सम्पूर्ण लक्षणोंसे  
जो पूर्ण हो उस प्राणीको तीनों दोषोंसे अपस्मार रोग  
जानना, यह रोग असाध्य है और क्षीण मनुष्यको बहुत  
दिनोंकी (पुरानी) मृगी एक दोषसे उत्पन्न हुई भी  
असाध्य है यह लक्षण सन्निपातकी मृगीके हैं ॥ ८ ॥

अथापस्मारारिष्टम् ।

प्रस्फुरन्तश्च बहुशः क्षीणं प्रचलितश्रुवम् ॥  
नेत्राभ्याश्च विकुर्वाणमपस्मारो विना-  
शयेत् ॥ ९ ॥

प्रस्फुरन्तं गात्रस्फुरणयुक्तम् । नेत्राभ्याश्च  
विकुर्वाणं नेत्रे विकृते कुर्वन्तम् ॥

जिस मृगीवाले मनुष्यके अंग अधिक फड़कते होयें,  
शरीर क्षीण होगया होय, नेत्र विकृत होय, भ्रुकुटी भौंह  
चलायमान होय तो वह रोगी किसीप्रकार मृत्युके पक्षसे  
बच नहीं सकता ॥ ९ ॥

अथापस्मारप्रकोपसमयः ।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता  
मलाः ॥ अपस्मारं प्रकुर्वन्ति वेगं किञ्चि-  
दथान्तरम् ॥ १० ॥

पक्षात्पित्तं द्वादशाहाद्वयुर्मासात्कफः अ-  
पस्मारं करोतीत्यर्थः । वेगं किञ्चिदथान्तरं  
किञ्चित्स्वल्पं वेगम् आन्तरम् उक्तकालाना-  
मन्तरालेऽपि कुर्वन्ति ॥

प्रताप होनेपर पित्तका अपस्मार एक पक्षमें अर्थात्  
फण्टह दिनमें उत्पन्न करेहै और पक्षके मध्यमें भी थोड़ा  
ग वेग करेहै, वातरा अपस्मार बारह दिनमें उत्पन्न  
होताहै और इसके मध्यमें भी किञ्चित् वेग करे है,  
और कफका अपस्मार एक महीनेमें उत्पन्न होताहै और  
एक मासके मध्यमें भी अणुमात्र अपना वेग करेहै ॥ १० ॥

ननु हेतुभूतेषु दोषेषु विद्यमानेषु सदैव तद्व्या-

धिप्रकोपः कथं न स्यादत आह ।

देवे वर्षेऽप्यपि यथा भूमौ बीजानि कानि-  
चित् ॥ शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधि-  
ममुच्छ्रूयः ॥ ११ ॥

अयमर्थः । यथा उत्पत्तिकारणसामग्र्यां  
सत्यामपि वास्तुकादिबीजानि स्वभावात्  
शरदि एव प्ररोहन्ति, तथा हेतुभूतेषु दोषेषु  
विद्यमानेषु अपि स्वभावात् अपस्मारो द्वाद-  
शाहादिषु एव वेगं करोति इत्यर्थः ॥

शका—अपस्मारके कारणरूप दोषोंके सदैव विद्यमान  
रहनेपर अपस्मार सर्वदा क्यों नहीं रहता ।

समाधान—जिसप्रकार उत्पत्तिके कारणरूप मृगी वर्षा  
होनेपर भी वधुए इत्यादिके बीज स्वभावके कारण शरद-  
ऋतुमें ही उपजतेहैं, उसीप्रकार कारणरूप दोषोंके विद्य-  
मान होनेपरभी अपने स्वभावसे ही द्वादशादिकदिवसमें  
अपस्मार भी अपने कोपको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

अथापस्मारचिकित्सा ।

तैलेन लशुनः सेव्यः पयसा च शतावरी ॥  
ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥  
॥ १२ ॥ चूर्णैः सिद्धार्थकादीनां भक्षितै-  
स्थवाऽपि तैः ॥ गोमूत्रपिष्टैः सर्वांगलेपैः  
शाम्यत्यपस्मृतिः ॥ १३ ॥ सिद्धार्थशिशु-  
कट्वंगकिणिहीभिः प्रलेपनम् ॥ चतुर्गुणग-  
वां मूत्रे तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ १४ ॥  
कट्वंगः [सोनापाठा] किणिही [चिरचिटा] ॥  
निर्गुण्डीभववन्दारनावनस्य प्रयोगतः ॥  
उपैति सहसा नाशमपस्मारो महागदः ॥  
॥ १५ ॥ मनोह्वा ताक्ष्यविष्टा च शकृत्पा-  
रावतस्य च ॥ अञ्जनाद्धन्त्यपस्मारमुन्मा-  
दश्च विशेषतः ॥ १६ ॥

मनोह्वा मनःशिला । शकृद्विष्टा ॥

यः खादेक्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचा-  
रजः ॥ अपस्मारं महाघोरं चिरात्थं स  
जयेद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥ कूष्माण्डकफलो-  
त्थेन रसेन परिपेषितम् ॥ अपस्मारविना-  
शाय यष्ट्याहं स पिवेन्न्यहम् ॥ १८ ॥

व्यहमिति एकस्य पानात् दिवसत्रयेणैव  
अपस्मारोपशमो भवति इति अभिप्रायः ॥

तेलमें मिलाकर लहसुन, दूधमें औटाकर सतावर  
और सहतमे मिलाकर ब्राह्मीका रस सेवन करे तो सब  
प्रकार का अपस्मार निवारण होता है ।

सरसों, सहैजना, सोनापाठा ( अरलू ), लटजीरा  
( चिरचिटा ) इन सबका चूर्ण खानेसे अथवा इनको  
मूत्रमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे अथवा इनही औष-  
धियोंमे चौगुना गोमूत्र मिलाकर और उतनाही तेल  
मिलाकर विधिपूर्वक पकाकर सब शरीरपर मालिस करनेसे  
अपस्मार रोग शान्त होता है ।

निर्गुण्डीके बन्देकेरसका नास लेनेसे महाबलवान्  
अपस्मार रोगका तुरन्त ही नाश होता है । भैरशिल, रसौत,  
गोबर और कवूतरकी बीज, इन सब औषधियोंको महीन  
पीस अञ्जन बनावे, इस अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे अपस्मार  
और उन्माद अवश्य ही दूर होता है ।

सहतके साथ घुडबचके चूर्णको चाटै और दूध भात  
खाय तो महाघोर बहुत दिनोंका पुराना अपस्मार अव-  
श्य ही नष्ट होता है ।

मुलैठीको महीन पीसकर पेटके रसके साथ तीन दिन  
पीनेसे अपस्मारका नाश होता है ॥ १२-१८ ॥

अथ ब्राह्मीघृतम् ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीशृतं घृतम् ॥  
पुराणं स्यादपस्मारोन्मादग्रहहरं पर-  
म् ॥ १९ ॥

एतस्य प्रक्रिया पुराणं गोघृतं प्रस्थमि-  
तम् । वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीणां समुदितानां  
कुडवमितानां कल्केन प्रस्थमितब्राह्मीरस-  
पिष्टेन पचेत् ॥

वच सोलह १६ तोले, कूट सोलह १६ तोले, शख-  
पुष्पी ( कण्डिला ) सोलह १६ तोले, इन सबको चौसठ  
६४ तोले ब्राह्मीके रसमें पीसकर उसमें चौसठ ६४ तोला  
पुराना गौका घृत मिलाकर कल्क बनावे, उसका सेवन  
करनेसे अपस्मार, उन्माद और सम्पूर्ण ग्रहदोषोंका विनाश  
होता है ॥ १९ ॥

अथ कूष्माण्डघृतम् ।

२० सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् ॥

यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाश-  
नम् ॥ २० ॥

अठारह गुणे पेटके रसमें स्वच्छ गायके घीमें मुलेठी-  
का कल्क मिलाकर पकावे, जब पक करके स्वांगशीतल  
होजाय तब उस कूष्माण्डघृतका सेवन करे तो अपस्मार-  
का शीघ्रही विनाश होता है ॥ २० ॥

अथ कल्याणचूर्णम् ।

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशी-  
तता ॥ २१ ॥ दशमूलीजलं तस्य कल्या-  
णारुख्यं प्रयोजयेत् ॥ पञ्चकोलं समरिचं  
त्रिफला विडसैन्धवम् ॥ २२ ॥ कृष्णा-  
विडङ्गपूतीकयवानीधान्यजीरकम् ॥ पीत-  
मुष्णाम्बुना चूर्णं वातश्लेष्मामयापहम् ॥  
॥ २३ ॥ अपस्मारे तथोन्मादेऽप्यर्शसां  
ग्रहणीगदे ॥ एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्या-  
ग्रेष्व दीपनम् ॥ २४ ॥

हृदयमें कंप, नेत्रोंमें पीडा, शरीरमें पसीना और  
हाथपाओंमें शीतलता, जिस मृगी रोगवाले मनुष्यके होय  
उसको दशमूलका काथ और कल्याण चूर्ण देवे, उस  
कल्याणचूर्णमें क्या क्या औषधि हैं सो सब लिखते हैं,  
पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोठ, मिर्च, हरड,  
बहेडा, आमला, विडलौन, सैधानोन, वायविडंग, क-  
जुआ, अजवायन, धनियों और जीरा, इन सब औष-  
धियोंका चूर्ण महीन पीसकर गरम पानीके साथ फाँकनेसे  
वात, कफके रोग, अपस्मार, उन्माद, बवासीर, संग्रहणी  
और मन्दाग्नि, इन सबको शान्त करे है ॥ २१-२४ ॥

द्वौ कीटमेद्वौ विधिवदानीय रविवासरे ॥  
कण्ठे भुजे वा सन्धार्य जयेदुग्रामपस्मृ-  
तिम् ॥ २५ ॥

अयन्तु कीटो नदीतीरे सिकतामध्ये तिष्ठति ॥  
शियुकुष्ठजलाजाजीलशुनव्योषहिङ्गुभिः ॥  
बस्तमूत्रे शृतं तैलं नावनं स्यादपस्मृतौ २६  
जलं वालकम् । अजाजी जीरकः । बस्तः  
छागः । नावनं नस्यम् ॥



उन्मादेषु यदुद्दिष्टं पथ्यं नस्याञ्जनौषधम् ॥  
अपस्मारेऽपि तत्सर्वं प्रयोक्तव्यं भिष-  
ग्वरैः ॥ २७ ॥

नदीके किनारे बालू ( रेत ) के भीतर रहनेवाले  
कीड़ों ( मिरगचना ) के दो भेद रविवारके दिन विधिपूर्वक  
लाकर अपस्मारवाले रोगीके कंठ और भुजामें बाँधनेसे  
महा भयंकर अपस्मारका भी विनाश होता है ।

सहेंजना, कृट, सुगन्धवाला, जीरा, लहसुन, त्रिकुटा  
( सोट मिरच पीपल ) और होंग, इन औषधियोंको  
पीसकर बकरेके मूत्र और तेलमें पकाके, उसका नास  
लेनेसे अपस्मार नाश होता है ।

उन्मादमें जो जो पथ्य, नास, अञ्जन और औषधि  
लिखी हैं वे सब औषधि अपस्मारमें भी व्यवहारमें लानी  
चाहिये ॥ २५-२७ ॥

अथ भूतभैरवरसः ।

मृतसुताभ्रलोहश्च शिलागन्धश्च तालकम् ॥  
रसाञ्जनश्च तुल्यांशं नरमूत्रेण मर्दयेत् ॥  
॥ २८ ॥ तद्गोलद्विगुणं गन्धं लौहपात्रे  
क्षणं पचेत् ॥ पञ्चगुंजोन्मितं भक्ष्यमपस्मा-  
रहरं परम् ॥ २९ ॥ व्योषं सौवर्चलं हिंगु  
नरमूत्रेण सर्पिषा ॥ पिवेत्कर्षमितं पश्चाद्-  
सोऽयं भूतभैरवः ॥ ३० ॥

इति अपस्माराधिकारः ।

पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, मेन-  
शिल, गन्धक, हरिताल और रसौत, इन सबको समान  
भाग लेकर मनुष्यके मूत्रमें खरल करे, फिर इसका गोला  
बनाकर, गोलेसे दूनी गन्धकके साथ लोहके वर्तनमें क्षण-  
मात्र पकावे, इस प्रकार 'भूतभैरव' नाम रस सिद्ध होता  
है, इस रसको पाँचरत्नी खानेसे अपस्मारका नाश होता है,  
इसको खाकर त्रिकुट, कालानिमक और भूनी होंग,  
उनको महीन पीसकर मनुष्यके मूत्र और घृतके साथ  
पिये ॥ २८-३० ॥

इति अपस्माररोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ वातव्याध्यधिकारः ।

तत्र वातव्याधिसामान्य-  
कारणानि ।

कषायकदुत्तिककं प्रमितरूक्षलध्वन्नतः  
पुरःपवनजागरप्रतरणाभिघातश्रमैः ॥  
हिमादनशनात्तथा निधुवनाच्च धातुक्षया-  
न्मलादिरयधारणान्मदनशोकचिन्ताभयै  
॥ १ ॥ अतिक्षतजमोक्षणाद्द्रुकृतातिमां  
सक्षयादतीववमनावृणामतिविरेचनादा-  
मतः ॥ पयोदसमये दिनक्षणदयोऽतृतीयां-  
शयोर्जरामतिगतेऽशिते शिशिरसंज्ञकालेः  
पि च ॥ २ ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि  
पूरयित्वाऽनिलो बली ॥ करोति विवि-  
धात्रोगान्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ३ ॥

प्रमितम् अत्र वैपरीत्येन उपसर्गस्तेन  
अपरिमितमित्यर्थः । प्रकर्षेण मितमित्यल्पं  
वा लध्वन्नम् । अतिपुराणं शाल्यादि । कति-  
चिदन्नानि नवानि अपि वातलानि । यत  
आह-गुणरत्नमालायाम् ।

नीवारस्त्रिपुटः सतीनचणकश्यामावत्सुद्धा-  
ठकीनिष्पावश्च मकुष्ठकश्च वरटा मंगल्यकः  
कोदवः ॥ ४ ॥

एते वातकरा इति शेषः । नीवारः प्रसा-  
धिका तीनीति लोके । त्रिपुटः खे सारी-  
तिलोके । सतीनः कलायः । निष्पावो  
राजमाषः वोडा इति लोके । मकुष्ठकः मोठ  
इति लोके । वरटा वरटिका वै इति  
लोके । मंगल्यः मसूरी । पुरःपवनः प्राग्वातः ।  
आमतः आमेन मार्गावरणात् । यतः उक्तम्  
"वायोर्धातुक्षयात्कोपो मार्गस्यावरणेऽतन च"  
इति पयोदसमये वर्षासु । जराक्रमतिगते  
अशिते भुक्तेऽतीवजीर्णतां गते । देहे स्रोतांसि  
इत्यादिना संप्राप्तिरुक्ता कषायादिभिर्हृतुभिः ॥

कसैला, चरपरा, कडवा, अत्यन्त थोडा, अत्यन्त अधिक, रुखा तथा हलका ऐसा अन्न भोजन करनेसे, पूर्वदिशाकी पवनको सेवन करनेसे, जागनेसे, पानीमें तैरनेसे, चोट आदिके लगनेसे, श्रमसे, अत्यन्त शीतके लगनेसे, उपवास ( व्रत ) आदि करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, धातुओंके क्षयसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, कामदेवकी पीडासे, शोकसे, चिन्तासे, भयसे, बहुत रुधिरके निकलवानेसे, रोगसे मासके क्षीण होनेसे, अत्यन्त वमन और विरेचन करनेसे और आमसे वात-सम्बन्धी व्याधि उत्पन्न होतीहै ॥

वर्षाऋतुमें, दिनके तथा रात्रिके तीसरे भागमें, भोजन किये अन्नके जीर्ण होनेपर और शिशिर ऋतुमें भी बलवान् वायु शरीरके खाली खोतोंमें भरकर सम्पूर्ण शरीरमें रहने-वाले अथवा एक किसी अंगमें रहनेवाले अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करैहै ।

अत्यन्त पुराने शालिचावल आदि अन्न हलके अन्न गिने जातेहैं, कितनेक नवीन अन्न भी वायुको उत्पन्न करनेवाले हैं गुणरत्नमाला निघण्टुमें लिखाहै कि, तिनी ( नीवार, पुनेरा ) कस्ता ( खेसारी ) मटर, चने, समा, मूंग, अड-हर, लोविया, मोद, कर् और मसूर तथा कोदों ये धान्य वायुको उत्पन्न करनेवाले हैं । आमसे मार्गका आवरण होताहै इस कारण आमसे भी वायुसम्बन्धी रोग उत्पन्न होतेहैं । अन्य ग्रन्थोंमें भी कहाहै कि, धातुओंके क्षयसे और मार्गके आवरणसे वायुका कोप होताहै १-४ ॥

अथ वर्षर्तृदिकारणप्रबलवातोत्पन्न  
व्याधिनामान्याह ।

शिरोग्रहोऽल्पकृशता जृम्भात्यर्थं हनुग्रहः ॥  
जिह्वास्तम्भो गद्गदत्वं मिन्मिनत्वञ्च  
मूकता ॥ ५ ॥ वाचालता प्रलापश्च  
रसानामनभिज्ञता ॥ बाधिर्यं कर्णनादश्च  
स्पर्शज्ञानं तथार्दितम् ॥ ६ ॥ मन्यास्त-  
म्भोऽत्र विगणितो बाहुशोषोऽपवाहुकः ॥  
वर्णिता वा विव विश्वाची ऊर्ध्ववात उदीरितः ॥  
॥ ७ ॥ उल्बाध्मानश्च प्रत्याध्मानं वाताष्ठीला  
प्रत्यष्ठीला ॥ तूनी च प्रतितूनी च वह्निवैष-  
म्यमेव च ॥ ८ ॥ आटोपः पार्श्वशूलश्च

त्रिकशूलं तथैव च ॥ मुहुश्च मन्त्रणं मूत्रनि-  
ग्रहो मलगाढता ॥ ९ ॥ पुरीषस्याप्रवृत्तिश्च  
गृध्रसी च ततः परा ॥ कलायखञ्जता  
वापि खञ्जता पंगुता तथा ॥ १० ॥ क्रोष्ठु-  
शीर्षकखल्वयौ च वातकण्ठक एव च ॥  
पादहर्षः पाददाह आक्षेपो दण्डकाभिधः  
॥ ११ ॥ वातपित्तकृताक्षेपस्तथा दण्डा-  
पतानकः ॥ अभिघातकृताक्षेप आयामो  
द्विविधः स्मृतः ॥ १२ ॥ आन्तरश्च  
तथा बाह्यो धनुर्वातश्च कुब्जकः ॥ अप-  
तन्त्रोऽपतानश्च पक्षाघातोऽखिलाङ्गकः ॥  
॥ १३ ॥ कम्पः स्तम्भो व्यथा तोदो  
भेदश्च स्फुरणं तथा ॥ रौक्ष्यं काश्यश्च  
काष्ण्यश्च शैत्यं लोम्नाश्च हर्षणम् ॥ १४ ॥  
अङ्गमर्दोऽङ्गविभ्रंशः शिरासङ्कोच एव  
च ॥ अङ्गशोषश्च भीरुत्वं मोहश्च चल-  
चित्तता ॥ १५ ॥ निद्रानाशः स्वेदनाशो  
बलहानिस्तथैव च ॥ शुक्रक्षयो रजोनाशो  
गर्भनाशः परिभ्रमः ॥ १६ ॥ एत एवा-  
शीतिसंख्या रोगा योगेन रूढितः ॥  
वातव्याधीति नामानो मुनिभिः परिकी-  
र्तिताः ॥ १७ ॥

एत एव शिरोग्रहादय एव । योगेन वा-  
तेन वाताद्व्याधिर्वातव्याधिरिति निरुक्त्या  
तदा वातज्वरादिष्वपि प्रसङ्गः स्यादत आह  
रूढितः प्रसिद्धितः । शिरोग्रहादयोऽशीतिरेव  
वातव्याधिसंख्याः प्रसिद्धा न तु वातज्वरादयः

शिरोग्रह । १ । अल्पकृशता । २ । जृम्भा । ३ ।  
हनुग्रह । ४ । जिह्वास्तम्भ । ५ । गद्गदता । ६ । मिन्मि-  
नत्व । ७ । मूकता । ८ । वाचालत्व । ९ । प्रलाप । १० ।  
रसानामनभिज्ञता । ११ । बाधिर्य । १२ । कर्णनाद । १३ ।  
त्वक्छून्यता । १४ । अर्दित । १५ । मन्यास्तम्भ । १६ ।  
बाहुशोष । १७ । अपवाहुक । १८ । विश्वाची । १९ ।  
ऊर्ध्ववाहु । २० । आध्मान । २१ । प्रत्याध्मान । २२ ।  
वाताष्ठीला । २३ । प्रत्यष्ठीला । २४ । तूनी । २५ ।

प्रतिवृत्ती । २६ । वहिर्वैपम्य । २७ । आटोप । २८ ।  
 पार्श्वशूल । २९ । त्रिकशूल । ३० । सुहृर्मृत्रणा । ३१ । मूत्र-  
 निग्रह । ३२ । मलगाढता । ३३ । मलप्रवृत्ति । ३४ ।  
 गृत्रसी । ३५ । कलायखञ्जता । ३६ । खञ्जता । ३७ ।  
 पगुता । ३८ । क्रौष्टशीर्ष । ३९ । खल्ली । ४० । वातकं-  
 टक । ४१ । पादहर्ष । ४२ । पाददाह । ४३ । दण्डका-  
 क्षेप । ४४ । वातपित्तकृताक्षेप । ४५ । दडापतानक  
 । ४६ । अभिघाताक्षेप । ४७ । अन्तरावाम । ४८ ।  
 बाह्यावाम । ४९ । धनुर्वात । ५० । कुब्जक । ५१ ।  
 अपतन्त्र । ५२ । अपतानवात । ५३ । पक्षाघात । ५४ ।  
 सर्वागवात । ५५ । कम्प । ५६ । स्तम्भ । ५७ । व्यथा  
 । ५८ । तोद । ५९ । भेद । ६० । स्फुरण । ६१ ।  
 रौध्य । कार्श्य । ६३ । काण्य । ६४ । शैत्य । ६५ ।  
 लोमहर्ष । ६६ । अगमर्द । ६७ । अगविभ्रंश । ६८ ।  
 शिरासकोच । ६९ । अगशोप । ७० । भीरुता । ७१ ।  
 मोह । ७२ । चलचित्ता । ७३ । निद्रानाश । ७४ ।  
 स्वेदनाश । ७५ । बलहानि । ७६ । शुक्रनाश । ७७ ।  
 रजनाश । ७८ । गर्भनाश । ७९ । परिभ्रम । ८० ।  
 ये अस्सी ८० रोग वातव्याधि नामसे कहलाते हैं ऐसा  
 मुनियोंका वाक्य है ।

‘वातव्याधि’ यह यौगिक नाम है और रुद्धि नामभी है  
 शिरोग्रह आदि वातसे उत्पन्न होते हैं इस कारण ये वात-  
 व्याधि कहलाते हैं अत एव वातव्याधि शब्दका जो समास  
 सिद्ध अर्थ है उस उसमें प्रवर्तन होनेसे ‘वातव्याधि’ शब्द  
 यौगिक गिनाजाता है, किन्तु ये अस्सी व्याधिही ‘वातव्याधि’  
 कहीजाती हैं पर वातज्वर आदि व्याधि ‘वातव्याधि’ नहीं  
 कहीजाती ऐसी प्रसिद्धि है इस कारण ‘वातव्याधि’ शब्द  
 रुद्धिभी गिना जाता है, जो इकल यौगिकही गिना जाता  
 तो वातज्वर आदि व्याधियोंमें भी इस शब्दकी प्रवृत्ति  
 होजाती ॥ ५-१७ ॥

अथ वातव्याधिसामान्यचिकित्सा ।

मधुरलवणसाम्लस्निग्धनस्योष्णनिद्रायुरु-  
 रविकरवस्तिस्वेदसन्तर्पणानि ॥ दहनज-  
 लदशोषाभ्यंगसंमर्दनानि प्रकुपितपवनानां  
 शान्तिमेतानि कुयुः ॥ १८ ॥

मधुर, गारी, सटे और स्निग्ध पदार्थ, नस्य ( नास-  
 लेना ), गरम पदार्थ, निद्रा, भारी पदार्थ, सूर्यकी रूप,  
 वस्तिकर्म ( पिचकारी आदि लगाना ), संक आदि

स्वेदनकर्म, तर्पण करना, दाग देना, जलका छिड-  
 कना, क्रोध, स्नेहका अभ्यंग ( मालिश ) और शरीरको  
 मर्दन करना ये सब कर्म कुपित हुई वायुको शांत करें-  
 हैं ॥ १८ ॥

अथ शिरोग्रहलक्षणम् ।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्द्धधराः शिराः ॥  
 रुक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्या-  
 च्छिरोग्रहः ॥ १९ ॥

मूर्द्धधराः ग्रीवागताः । पवनः शिरोग्रहः  
 स्यात् इत्यन्वयः । स च असाध्यः ॥

कुपित वायु रधिरमें प्राप्त होकर नाडमें रहनेवाली  
 शिराओंको रुक्ष वेदनायुक्त और काली करदेती है उसके  
 शिरोग्रह कहते हैं यह शिरोग्रह असाध्य है ॥ १९ ॥

अथ शिरोग्रहचिकित्सा ।

शिरोग्रहे तु कर्तव्या शिरागतमरुत्क्रिया ॥  
 दशमूलीकषायेण मातुलुंगरसेन च ॥  
 श्रुतेन तैलेनाभ्यंगः शिरोवस्तिश्च  
 युज्यते ॥ २० ॥

शिरोग्रह हुआ होय तो शिराओंमें रहनेवाली वायुकी  
 चिकित्सा करनी चाहिये, दशमूलके कायसे और विजैरे  
 नींबूके रसके द्वारा पकायेहुए तेलका अभ्यंग और इसी  
 तेलकी शिरोवस्ति देनी चाहिये ( शिरोवस्ति की विधि प्रथम  
 खंडमें कहआये हैं, ) सो देखलेना ॥ २० ॥

अथ जृम्भालक्षणम् ।

पीत्वैकं श्वासमनिलः पुनस्त्यजति वेग-  
 वान् ॥ आलस्यनिद्रायुक्तश्च स जृम्भ इति  
 कथ्यते ॥ २१ ॥

जृम्भशब्दस्त्रिलिङः । तथा च “जृम्भस्तु  
 त्रिषु जृम्भणम्” इत्यमरः ॥

वेगवाला पवन एक श्वासको पीकर फिर उस श्वासको  
 बाहर निकालता है और उसके साथ आलस्य तथा निद्रासी  
 प्रतीत होती है उसको जृम्भा ( जभाई ) कहते हैं ।

मूल श्लोकमें जृम्भा शब्दके बदले जृम्भ लिखा है  
 उसका कारण यह है कि, सत्कृत मालिशमें जृम्भ  
 शब्द त्रिलिङ है, जृम्भ शब्द तीनों लिङ्गोंमें होता है

और जृम्भण शब्द नपुंसक लिंगमे है ऐसा अमरकोषमे कहा है ॥ २१ ॥

अथ जृम्भाचिकित्सा ।

शुण्ठी पिप्पल्यूषणं दीप्यकश्च सिन्धूद्रुतं  
चेति सर्वं पृथग्वा ॥ तद्रूपं वा सूक्ष्मचूर्णी-  
कृतं वा जृम्भारम्भस्तंभकृत्स्यात्तदेव २२ ॥  
जृम्भावेगे समुत्पन्ने शोभने शयने नरम् ॥  
स्वापयेत्तेन नियमाज्जृम्भावेगः प्रशाम्य-  
ति ॥ २३ ॥ जृम्भावेगः क्षयं याति कटु-  
तैलेन मर्दनात् ॥ भोजनात्स्वादुभोज्यानां  
तथा ताम्बूलभक्षणात् ॥ २४ ॥

सोंठ, पीपल, कालीमिरच, अजवायन और सैधानिमिक इन पदार्थोंको अलग अलग अथवा एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करके खाय तो तत्कालही जम्भाई रुक जाती है ।

जब जम्भाई आना आरम्भ होय तब उस मनुष्यको सुंदर गय्यापर शनयभवनमे सुला देवै इससे जम्भाई रुक जाती है ।

सरसोंके तेलकी मालिस करनेसे, मधुर भोजनसे और नागवेल ( ताम्बूलके ) खानेसे जम्भाई शांत होजाती- है ॥ २२-२४ ॥

अथ हनुग्रहनिदानलक्षणे ।

जिह्वानिलैखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ॥  
कुपितो हनुमूलस्थः संसयित्वाग्निलो हनु-  
म् ॥ २५ ॥ करोति विवृतास्यत्वमथ वा  
संवृतास्यताम् ॥ हनुग्रहः स तेन स्यात्कृ-  
च्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ २६ ॥

निलैखनं कर्षणम् । शुष्कं चणकादि ।  
संसयित्वा अधः कृत्वा विवृतास्यत्वं व्यात्तमु-  
खत्वम् । संवृतास्यत्वं दन्तलग्नताम् ॥

जीभको घिसनेसे, चने आदि सूखे पदार्थोंके चाबनेसे, तथा अभिघात ( चोट ) से कोपको प्राप्तहुई ठोडीकी जड़में रहनेवाला वायु ठोडीको नीचे करके मुखको बंद करदेताहै अथवा खोलदेताहै इसमें कठिनतासे चाबना और बोलना होताहै इसको हनुग्रह कहते हैं ।

इस रोगमे जो मुख बंद रहजाताहै तो दांतके जाबडे परस्पर मिलजाते हैं और जो मुख खुलरहजाताहै तो दांतके जाबडे परस्पर नहीं मिलसक्ते ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ हनुग्रहचिकित्सा ।

संवृतं चिबुकं स्निग्धं स्विन्नमुन्नमयेद्विषकं ॥  
विवृतं नमयित्वा तु कुर्यात्प्राप्तामिह क्रिया-  
म् ॥ २७ ॥ पिप्पलीमार्द्रकश्चापि सञ्चर्व्य  
च मुहुर्मुहुः ॥ निष्ठीवेत्तप्ततोयेन शोधयेद्द-  
दनान्तरम् ॥ २८ ॥ निष्कुल्य लशुनं सम्य-  
क्संक्षुध्य तिलतैलवत् ॥ सैन्धवेनान्वितं  
खादेद्धनुस्तम्भादितो नरः ॥ २९ ॥ रसो-  
नगुठिकामाषविदलं परिपेय्य च ॥ योज-  
येत्पिष्टिकां ताश्च सैन्धवार्द्रकाहिङ्गुभिः ॥  
॥ ३० ॥ ततस्तु वटकान्कृत्वा तिलतैले  
पचेच्छनैः ॥ भक्षयेत्तान्यथावहि हनुस्त-  
म्भात्सुखी भवेत् ॥ ३१ ॥ अभ्यज्य पक्व-  
तैलेन स्वेदयेन्मृदुनाग्निना ॥ वस्ति विधा-  
रयेन्मूर्ध्नि तैलेन परिपूरितम् ॥ ३२ ॥

मुख बंद होगया होय तो जाबडेको स्नेहन और स्वेदन संस्कार कराकर मुखको खोल देवै और जो मुख खुल गया होय तो ठोडीको नमाकर योग्य क्रिया करे ।

पीपल और अदरख इनको चाब चाबकर बारवार थूके और गरम जलसे मुखके भीतरके भागको स्वच्छ करे ।

लसुनको कूटकर तिलके तेलके साथ और सैन्धेनिमिकके साथ खाय तो हनुग्रह दूर होजाता है ।

लसुन और उडदकी भीजी हुई धुली दाल दोनोकी एकत्र पिठी पीसकर उसमें सैधानिमिक, अदरख और हींग डालकर बडे बनावे, इन बडोंको तिलके तेलमे धीरे धीरे मंदाग्निसे पकावै, अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन करै तो हनुग्रह नष्ट होजाताहै ।

पकाये हुए प्रसारणी तेलकी मालिस करके मद अग्निसे सेककर मस्तकके ऊपर तेलसे भरी हुई वस्तिको धारण करे तो हनुग्रह नष्ट होजाताहै ॥ २७-३२ ॥

## अथ प्रसारणीतैलम् ।

समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याः शतं पलैः ॥  
 सम्पक्संक्षुद्य सलिले द्रोणमात्रे पचेद्भि-  
 षक् ॥ ३३ ॥ सलिलस्य चतुर्थांशं काथं  
 समवशेषयेत् ॥ ततः पलशते तैले तं  
 कपायं पुनः पचेत् ॥ ३४ ॥ पचेत्पलशतं  
 मस्तु काञ्जिकं मस्तुनः समम् ॥ ततः  
 शुद्धं पचेद्गुग्गुलुं गव्यं तैलाच्चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥  
 चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचा ॥  
 शतपुष्पा देवदारु रास्ना च गजपिप्प-  
 ली ॥ ३६ ॥ प्रसारणीभवं मूलं मांसी  
 रक्तञ्च चन्दनम् ॥ तथा वातारिमूलञ्च  
 वलामूलञ्च नागरम् ॥ ३७ ॥ तैलस्य  
 चाष्टमांशेन सर्वकलकानि साधयेत् ॥ नाम्ना  
 प्रसारणीतैलं विख्यातं तत्प्रयुज्यते ३८ ॥  
 पाने नस्येशिरोवस्तौ मर्दने स्वेदने तथा ॥  
 प्रयुक्तं वातजात्रोगान्सर्वानपि विनाशयेत् ॥  
 ॥ ३९ ॥ विशेषतो हनुस्तम्भं जिह्वास्त-  
 म्भं तथादितम् ॥ गद्गदत्वञ्च विश्वाचीं  
 मन्यास्तम्भापवाहुको ॥ ४० ॥ त्रिकशूलं  
 गृध्रसीञ्च खल्लतां पंगुतां तथा ॥ कलाय-  
 खल्लतां खल्लं स्तम्भं संकोचमेव च ॥ ४१ ॥  
 आन्तरं बाह्यमायामं तथा दण्डापतान-  
 कम् ॥ धनुर्वातञ्च कुब्जत्वं व्यपोहति न  
 संशयः ॥ ४२ ॥ क्षीणानां स्थविराणाञ्च  
 वातसंकोचितात्मनाम् ॥ प्रसारयेद्यतो-  
 ऽङ्गानि तदुक्तं पा प्रसारणी ॥ ४३ ॥

चारसी तोले मूल, पत्र और शाखाओं समेत प्रसारणी  
 ( पसरन, गंधप्रसारी स्त्रीम, नारी इत्यादि क्वचित् प्रचलित  
 भाषा ) का पन्नाग लेकर अच्छे प्रकारसे कूटकर १०२४  
 एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते  
 चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार लेवे, फिर उस  
 शेषको बन्धन छानकर चूहे पर चढ़ादेवे और उसमें  
 तिलका तेल ४०० चारसी तोले, दहीका तोट ४००

चारसी तोले कौजी ४०० चारसी तोले और तेलसे चौगुना  
 उत्तम गायका दूध डालकर यथाविधि पकावे, फिर इसमें  
 चीता पीपलामूल, मुलैठी, सेंधानिमक, वच, सोया, देवदारु,  
 रासना, गजपीपल, प्रसारणीकी जड़ वालछड ( जटा-  
 मासी ), लाल चंदन, अंडकी जड़, खिरैटीकी जड़ और  
 सोठ ये सब ५० तोले लेकर कल्क बनाकर तेलमें मिला-  
 कर पकावे, तो प्रसारणी तैल सिद्ध होता है । इस प्रसारणी  
 तैलको पीनेसे, नस्यसे, शिरोवस्तिसे, मर्दनसे और स्वेद-  
 नकर्मसे सम्पूर्ण वातजन्य व्याधि नष्ट होजाती है और विशेष  
 करके हनुग्रह, जिह्वास्तम्भ, अर्दित, गद्गदता, विश्वाची,  
 मन्यास्तम्भ, अपवाहुक, त्रिकशूल, गृध्रसी, खंजता, पङ्गुता,  
 कलायखजता, खज, स्तम्भ, सकोच, अंतरायाम, बाह्या-  
 याम, दंडापतानक धनुर्वात और कुब्जत्वका नाश होता-  
 है । यह प्रसारणी औषधि वातके कारण अगमे सकोच  
 हुआ क्षीण हुआ और वातसे सुकडे हुए वृद्ध मनुष्योंके  
 अगोंको फैलादेती है, इस कारण सकोचको नष्ट करनेवाली  
 यह प्रसारणी नामसे कहीजाती है ॥ ३३-४३ ॥

## अथ जिह्वास्तम्भलक्षणम् ।

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयते-  
 ऽनिलः ॥ जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवा-  
 क्येष्वनीशता ॥ ४४ ॥

अनीशता असामर्थ्यम् ॥

कुपित वायु वाणीकी बहानेवाली शिराओंमें प्रात होकर  
 जीभको स्तब्ध करदेती है इसको जिह्वास्तम्भ कहते हैं ।  
 इसमें मनुष्य खान, पान और बोलनेमें असमर्थ होजाता-  
 है ॥ ४४ ॥

## अथ जिह्वास्तम्भचिकित्सा ।

जिह्वास्तम्भे यथावस्थं वातव्याधिचिकि-  
 त्सितम् ॥ सामान्योक्ता क्रिया चात्रादि-  
 तस्यापि हिता मता ॥ ४५ ॥

जिह्वास्तम्भ रोगमें अवस्था आदिकी योग्यताके अनु-  
 सार वातव्याधिहीकी चिकित्सा करे और अर्दित रोगमें जो  
 सामान्य चिकित्सा कही है वह भी हितकारी है ॥ ४५ ॥

## अथ गद्गदमिन्मिनमूकतालक्षणानि ।

आवृत्य वायुः सक्रोधमनीः शब्दवा-



हिनीः ॥ नरान्करोत्यवचनान्मूकमिन्मि-  
नगद्गदान् ॥ ४६ ॥

अवचनान् अत्र ईषदर्थे नञ् तेन ईष-  
द्वचनान् । स एव वायुः प्रबलश्चेत्तदा  
मूकान् अवचनान् मिन्मिनान्सानुनासिक-  
वचनान् । गद्गदाँल्लुप्तपदव्यञ्जनाभिधायिनः  
करोति इति अन्वयः । एषां समानाधिक-  
रणत्वेऽपि दुष्टेरनुत्कर्षादिना अदृष्टवशाद्वा  
भेदो बोद्धव्यः ॥

कफसहित वायु शब्दको चलानेवाली धमनियोंको  
आवरण करके मनुष्योंके वचनको क्रियारहित करदेताहै ।  
यही वायु जो प्रबल होय तो मनुष्योंको मूक करदेताहै,  
अर्थात् गूंगा करदेताहै और जिसमें पदोंका तथा व्यंज-  
नोका लोप होजाय ऐसा गद्गदपन युक्त करदेताहै ।

पदोंका तथा व्यंजनोका जिसमें बोलते समय लोप  
होजाय उसको गद्गदत्व कहतेहैं गूंगेकी समान जो अक्ष-  
रोको नाकमें बोलें उसको मिन्मिनत्व कहतेहैं । और  
गूंगापनको मूकता कहतेहैं । यद्यपि इन सब रोगोंका एकही  
स्थान है तथापि दोषोंकी न्यूनाधिकतासे अथवा प्रारब्धके  
योगसे इन रोगोंके भेद होजातेहैं, ऐसा जानना ॥ ४६ ॥

अथ गद्गदमिन्मिनमूकता  
चिकित्सा ।

अथ सारस्वतघृतम् ।

प्रस्थं घृतस्य पलिकैः शिशुवचालवणधा-  
तकीलोध्रैः ॥ आज्ञे पयासि सपाठैः सिद्धं  
सारस्वतं नाम्ना ॥ ४७ ॥ विधिवदुपयु-  
ज्यमानं जडगद्गदमूकतां क्षणान्जित्वा ॥  
स्मृतिमतिमेधाप्रतिभाः कुर्यात्सुस्पष्टवा-  
ग्भवति ॥ ४८ ॥

सैजिना, वच्च, सैधानमक, धायके फूल, लोध और  
पाठ इनको चारचार तोले लेकर कल्क बनाकर उस  
कल्कसे बकरीके दूधमें चौंसठ तोले घृतको पकावै, इसको  
'सारस्वत घृत' कहतेहैं, इस घृतको विधिपूर्वक सेवन  
करनेसे जडता, गद्गदपना और मूकता क्षणभरमें नष्ट

होजातीहै, वाणी स्पष्ट होतीहै और स्मृति, मेधा तथा तर्क-  
शक्ति प्राप्त होतीहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ कल्याणावलेहः ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभे-  
षजम् ॥ अजाजी चाजमोदा च यष्टी-  
मधुकसैधवम् ॥ ४९ ॥ एतानि सम-  
भागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ तच्चूर्णं  
सर्पिषा लेह्यं प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ५० ॥  
एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः ॥  
मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनि-  
स्वनः ॥ ५१ ॥

हलदी, वच्च, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोद,  
मुलैठी, सैधानिमक, इन सबको समान भाग लेकर बारीक  
चूर्ण करके घीमें मिलाकर नित्य चाटे तो मनुष्य २१दिनमें  
श्रवणमात्रसे धारणकरनेकी शक्तिवाले भेघके तथा दुन्दुभि  
शब्दकी समान स्वरवाले और मदोन्मत्त कौयलकी समान  
स्वरवाले होजातेहैं ॥ ४९-५१ ॥

अथ प्रलापलक्षणम् ।

स्वहेतुकुपिताद्वातादसंबद्धं निरर्थकम् ॥  
वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकी-  
र्तितः ॥ ५२ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायुसे जो मनुष्य असंबद्ध  
और व्यर्थ बोलनेलगताहै उसको प्रलाप कहतेहैं ॥ ५२ ॥

अथ प्रलापचिकित्सा ।

सतगरवरतित्तारेवताम्भोदतित्ता नलद-  
तुरगगन्धाभारतीहारहूराः ॥ मलयजद-  
शमूलीशंखपुष्प्यः सुपक्वाः प्रलपनमप-  
ह्न्युः पानतो नातिदूरात् ॥ ५३ ॥

वरतित्तोऽत्र पर्पटः।नलदमुशीरम्।भारती  
ब्राह्मी । हारहूरा द्राक्षा ॥

तगर, पित्तपापडा, अमलतास, नागरमोथा, कुटकी,  
सुगंधबाला, असगध, ब्राह्मी, दाख, चंदन, दशमूल और  
शंखाहुली इनका विधिपूर्वक काथ बनाकर सेवन करनेसे  
प्रलाप तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ५३ ॥

अथ रसाज्ञानलक्षणम् ।

भुञ्जानस्य नरस्यान्नं मधुरप्रभृतीवसान् ॥  
रसज्ञा यत्र जानाति रसाज्ञानं तदु-  
च्यते ॥ ५४ ॥

भोजन करते समय जिस मनुष्यकी जिह्वा मधुर आदि  
रसोंको न जाने उसको 'रसाज्ञान' कहतेहैं ॥ ५४ ॥

अथ रसाज्ञानचिकित्सा ।

धर्षेज्जिह्वां जडां सिन्धुव्यूषणैः साम्लवे-  
तसैः ॥ अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दात-  
व्यमीरितम् ॥ ५५ ॥

सैधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और अमलवेत  
इनको एकत्र पीसकर जिह्वाको धिसे । जो अमलवेत नहीं  
मिले तो उसके बदले चूका ले लें ॥ ५५ ॥

अथ किराततिक्तादिकल्कः ।

किराततिक्ता कट्ठी कुटजस्य फलं  
वचा ॥ ब्राह्मी फलञ्च पालाशं सर्जिका  
कृष्णजीरकम् ॥ ५६ ॥ पिप्पली पिप्प-  
लीमूलं चित्रं नागरमूषणम् ॥ एषां कल्कै-  
र्भुधुर्धर्षेज्जिह्विकामार्द्रिकारसैः ॥ ५७ ॥  
तेन सम्यग्विजानाति रसना सकला-  
वसान् ॥ कल्कः किराततिक्तादिर्जिह्वा-  
याः शून्यतां हरेत् ॥ ५८ ॥

चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ, वच, ब्राह्मी, ढाकके बीज,  
सजीखार, कालाजीरा, पीपल, पीपलामूल, चीता, सोंठ  
और मिरच इन सबको अदरखके रसमें पीसकर जीभपर  
वारंवार धिसे तो जीभको रसका ज्ञान अच्छे प्रकार हो  
जाताहै, यह 'किराततिक्तादि' कल्क जीभकी जड़ताको  
दूर करेहै ॥ ५६-५८ ॥

अथ बाधिर्यकर्णनादौ ।

बाधिर्यकर्णनादयोर्लक्षणं चिकित्सा च  
तदधिकारं वक्ष्यामः ॥

बाधिरता और कर्णनाद इनके लक्षण तथा चिकित्सा  
कारणरोगाधिकारमें कहेंगे ॥

अथ त्वक्शून्यतालक्षणम् ।

स्पृश्यमाना त्वचा या तु शीतोष्णं मृदु

कर्कशम् ॥ न जानाति बुधैस्त्वक् च  
शून्येति परिकीर्तिता ॥ ५९ ॥

जो स्पर्श करते समय त्वचामें शीतल, गरम, कोमल,  
कठिन इनकी खबर न पड़े उसको पंडित त्वक्शून्य  
कहतेहैं ॥ ५९ ॥

अथ त्वक्शून्यचिकित्सा ।

सुप्तवाते त्वसृङ्मोक्षं कारयेद्बहुशो  
भिषक् ॥ दद्याच्च लवणांगारधूमैस्तैलस-  
मन्वितैः ॥ ६० ॥

त्वक्शून्यता हुई होय तो वैद्य वारंवार रोगीके शरीर-  
मेंसे रुधिर निकलवावे, फस्त खुलवावे तथा अंगारोंके ऊपर  
तेल और सैधानिमक, डालकर धुँआँ देवै ॥ ६० ॥

अथार्दितसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि  
च ॥ हसतो जृम्भतो भाराद्विषमाच्छय-  
नासनात् ॥ ६१ ॥ शिरोनासौष्ठचिबुक-  
ललाटेक्षणसन्धिगः ॥ अर्दयत्यनिलो  
वक्रमर्दितं जनयेत्ततः ॥ ६२ ॥ वक्त्री  
भवति वक्रार्द्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते ॥  
शिरश्चलति वाक्संगो नेत्रादीनाञ्च वैकृतम्  
॥ ६३ ॥ ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मि-  
न्पार्श्वे च वेदना ॥ तमर्दितमिति प्राहु-  
र्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ६४ ॥

व्याहरतः वदतः । कठिनानि पूगफ-  
लादीनि । विषमाच्छयनासनात् । ग्रीवादि-  
वैपरीत्येन शयनादासनाच्च । अर्दयति पीड-  
यति ततस्तदनन्तरम् अर्दितं जनयेत् ।  
अर्दिते जाते किं स्यात्तदाह वक्त्री भवति  
इत्यादि । अपवर्तते वक्रा भवति । चलति  
कम्पते । वाक्संगः वाङ्निरोधः । नेत्रादी-  
नामिति आदिशब्देन भ्रूगण्डनासिका-  
दीनां ग्रहणम् । वैकृत्यं वेदनास्फुरणवक्र-  
त्वादि । ग्रीवेत्यादि यस्मिन् पार्श्वे अर्दितं  
तस्मिन् पार्श्वे ग्रीवादीनां वेदना ॥

ऊँचे स्वरसे बोलनेसे, सुपारी आदि कठिन पदार्थोंके खानेसे, अत्यन्त हँसनेसे, अत्यन्त जम्भाई लेनेसे, अधिकतर भारको उठानेसे, नाडको टेढ़ी तिरछी रखकर विपम रीतिसे सोनेसे और विपम रीतिसे बैठनेसे मस्तक, नाक, होंठ, ठोड़ी, ललाट और नेत्रोंकी संधि इनमें रहनेवाला वायु मुखको पीडित करताहै इससे अर्दित रोग उत्पन्न होताहै जब यह अर्दित रोग उत्पन्न होताहै तब इसमें आधा मुख टेढ़ा होजाताहै, नाड टेढ़ी होजातीहै, मस्तक कापनेलगताहै, बोलनेमें असमर्थ होजाताहै, नेत्र, भौंह, गाल और नाक इनमें वेदना स्फुरण तथा टेढ़ापन होताहै और जिस ओर यह अर्दित रोग होताहै उसी ओरकी गरदन, ठोड़ी और दातोंमें वेदना होतीहै, रोगके ज्ञाता वैद्य इस रोगको 'अर्दित लकवा' कहतेहैं ॥ ६१-६४ ॥

वातापित्तात्कफाच्च स्यात्त्रिविधं तत्समा-  
सतः ॥ लालास्रावो व्यथा कम्पः स्फुरणं  
हनुवाग्रहः ॥ ६५ ॥ ओष्ठयोः श्वयथुः शूलं  
चादिते वातजे भवेत् ॥ वीतमास्यं ज्वर-  
स्तृष्णा पित्तजे मोहधूपने ॥ गण्डे शिरसि  
मन्यायां शोथस्तम्भः कफात्मके ॥ ६६ ॥

वातज, पित्तज और कफज इस प्रकार सक्षिप्त रीतिसे अर्दित रोग तीन प्रकारका है ।

वातके अर्दित रोगमें रोगीके मुखमें लार गिराकरतीहै, पीडा होतीहै, गिराओंमें स्फुरण होताहै, कंप होताहै, ठोड़ी जकड जातीहै, कम बोला जाताहै, होंठमें सूजन और शूल होताहै ।

पित्तके अर्दित रोगमें मुख पीला होजाताहै, ज्वर आजाताहै, तृष्णा अधिक लगतीहै, मोह और उष्णता होतीहै ।

कफके अर्दित रोगमें गले, माथे और मन्यानाडीमें सूजन और स्तम्भ होताहै ॥ ६५-६६ ॥

अथादितासाध्यलक्षणम् ।

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषि-  
णः ॥ न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेप-  
नस्य च ॥ ६७ ॥

अनिमिषाक्षस्य निमेषासमर्थचक्षुषः ।  
प्रसक्तं प्रकर्षेण लग्नम् अव्यक्तञ्च भाषितुं

शीलं यस्य तस्य अर्दितं न सिध्यति । त्रिव-  
र्षम् अतीतवर्षत्रयम्, अथ वा त्रयाणां चक्षु-  
र्नासामुखानां वषः स्रावो यत्र तत् । वेपनस्य  
कम्पनशीलस्य तस्य गाढमतिशयेन न सि-  
ध्यति इति अन्वयः ॥

जो मनुष्य अस्फुर तथा परस्पर मिलेहुए अक्षरोंको बोलता होय और जिसके नेत्र पलक मारनेमें असमर्थ होय उस मनुष्यका अर्दित रोग आरोग्य नहीं होता ।

जिस मनुष्यके अर्दित रोगको उत्पन्न हुए तीन वर्ष बीत गये हों अथवा नेत्र, नाक तथा मुख खलता होय और शरीर कांपता होय उस मनुष्यका अर्दित रोग आराम नहीं होता ॥ ६७ ॥

अथादितरोगचिकित्सा ।

स्नेहपानानि नस्यञ्च भोज्यान्यनिलहारि-  
च ॥ उपनाहाश्च शस्यन्ते नावनं वस्तयो-  
र्दिते ॥ ६८ ॥  
वस्तिरत्र शिरोवस्तिरेव ॥

दशमूलकषायेण मातुलुंगरसेन वा ॥  
बलया पञ्चमूल्या वा क्षीरं वातात्मके  
हितम् ॥ ६९ ॥ पिष्टं मांसघृतं जग्ध्वा  
नवनीतेन सोर्दिते ॥ क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा  
दशमूलरसं पिबेत् ॥ ७० ॥ अर्दिते  
पित्तजे शीतान्स्नेहांश्चैव विनिर्दिशेत् ॥  
घृतवस्तिप्रसेकञ्च क्षीरमेकं तथैव च ॥  
॥ ७१ ॥ जिह्वाभूताननो मूको दाहवा-  
न्योर्दिते भवेत् ॥ कुर्यात्प्रतिक्रियां तस्य  
वातपित्तविनाशिनीम् ॥ ७२ ॥ श्लेष्म-  
भागे क्षयं नीते बृंहणैः समुपाचरेत् ॥  
अर्दिते शोथसंयुक्ते वमनं च प्रशस्यते  
॥ ७३ ॥ रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं  
खादेन्नरो योर्दितरोगयुक्तः ॥ तस्यार्दितं  
नाशमुपति शीघ्रं वृन्दं घनानामिव वायु-  
वेगात् ॥ ७४ ॥

अर्दित रोगीको घृतादि स्नेहपान करावै, वातनाशक नाश देवै, वातनाशक भोजन खिलावे, उपनाह स्वेद और शिरोवस्ति करावै ।

वातज अर्दित रोगमें दशमूलके काथसे, अथवा विजो-रंके रससे अथवा खिरंटीके काथसे अथवा पचमूलके काथसे पकाये हुए दूधको पिये ।

अर्दितरोगी मामकी घीमें पीसकर नैनी घीके साथ खाय और ऊपरसे दूध और मांसरसके साथ भोजन करे तथा दशमूलका रस पिये ।

पित्तज अर्दित रोगमें शीतल स्नेहोंका उपयोग करे, शिरमें घीकी पिचकारी लगावे, घृत अथवा दूधका सेवन करे और विशेष करके दूधका उपयोग करे ।

जिस अर्दित रोगीका मुख टेढ़ा होगया होय दाह होता होय और अपने आप गूगा होगया होय उसको वातपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ।

कफके अर्दित रोगवाले मनुष्यका कफ क्षय करके पुष्टिकारक पदार्थोंसे उपचार करे । जो अर्दित रोग सृजन युक्त होय तो उममें वमन कराना उत्तम है ।

जो अर्दित रोगवाला मनुष्य तिलके तेलमें मिलाकर लनुनके कट्ठको सेवन करताहै उसका अर्दित रोग तत्काल नष्ट होजाताहै, जिस प्रकार वायुके वेगसे बादलोंका समूह तत्काल विनाश होजाताहै ॥ ६८-७४ ॥

अथ मन्यास्तम्भनिदानलक्षणम् ।

दिवास्वप्नासनस्थानविकृतोर्द्धनिरीक्षणैः ॥

मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणा-  
वृतः ॥ ७५ ॥

आसनस्थानविकृतोर्द्धनिरीक्षणैः, आस-  
नेन स्थानेन वा अतिशयेन विकृतं ग्रीवादि  
विकृतं यथा स्यादेवम् उपरिभागे यन्निरीक्षणं  
तेन स एव कुपितो वातः श्लेष्मणा आवृतः  
मन्यास्तम्भं करोति । ग्रीवायाः पश्चाद्भागे  
चतुर्दशशिरा मन्यासंज्ञाः । तथा च अमर-  
सिंहः “ पश्चाद्ग्रीवाशिरा मन्याः ” इति ।  
तासां स्तम्भं करोति च ॥

दिनमें सोनेसे, अथवा विपरीत आमनपर बैठनेसे,  
अथवा विपरीत गतिसे ऊपर गरदनको करके टेकनेसे  
कोनको प्राप्त हुई वायु कफके साथ मिलकर नाटके

पिछले भागमें रहनेवाली मन्या नामक शिराओंको स्तब्ध  
कर देतीहै, इसको मन्यास्तम्भ रोग कहतेहैं ॥ ७५ ॥

अथ मन्यास्तम्भचिकित्सा ।

दशमूलीकृतं काथं पञ्चमूल्यापि कल्पि-  
तम् ॥ रुक्षं स्वेदं तथा नस्यं मन्यास्तम्भे

प्रयोजयेत् ॥ ७६ ॥ तैलेनाज्येन वा

ग्रीवामभ्यज्यार्कदलैरथ ॥ एरण्डपत्रैर्वा-

च्छाद्य स्वेदयेद्बहुशो भिषक् ॥ ७७ ॥

कुक्कुटाण्डद्रवैरुष्णैः सैन्धवाज्यसमन्वि-

तैः ॥ ग्रीवां संमर्दयेत्तेन मन्यास्तम्भः

प्रशाम्यति ॥ ७८ ॥

दशमूलके काथका अथवा पचमूलके काथका, रुक्ष  
स्वेदन और नस्य इनका उपयोग मन्यास्तम्भको नष्ट कर-  
देताहै ।

तेल अथवा घीका गर्दनपर मालिस करके आकके  
पत्तोंसे अथवा अण्डके पत्तोंसे गरदनको बाधे और बारबार  
सेक करै तो मन्यास्तम्भ नष्ट होजाताहै ।

मुरगेके अण्डके रसको गरम करके उसमें सैन्धानमक  
और घी डालकर गर्दनको मलनेसे मन्यास्तम्भ दूर होजा-  
ताहै ॥ ७६-७८ ॥

अथ बाहुशोषलक्षणम् ।

अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयेदंसवन्ध-

नम् ॥ अंसवन्धनशोषात्स्याद्बाहुशोषः

संवेदनः ॥ ७९ ॥

कन्धे अथवा खवोंमें रहनेवाली वायु खवोंके बधनको  
मुखा देतीहै, उस खवोंके बधनके सूखनेसे अत्यन्त वेदना-  
वाला बाहुशोष रोग उत्पन्न होताहै ॥ ७९ ॥

अथ बाहुशोषचिकित्सा ।

बाहुशोषे पिवेद्रुक्त्वा सर्पिः कल्याणकं

महत् ॥ बलामूलशृतं तोयं सैन्धवेन

समन्वितम् ॥ बाहुशोषकरे वाते मन्या-

स्तम्भे च शस्यते ॥ ८० ॥

बाहुशोष उत्पन्न हुआ होय तो भोजन करनेके पश्चात्  
महाकल्याण नामक घी पिये ।

खिरंटीकी जड़का काथ बनाकर उसमें सैन्धानमक

मिलाकर पिये तो बाहुशोष और मन्यास्तम्भको नष्ट करै है ॥ ८० ॥

अथापबाहुकलक्षणम् ।

शिराः संकोच्य बाहुस्थः स कुर्यादपबाहु-  
कम् ॥ ८१ ॥

स वायुः बाहुस्थः । शिराः बाहुस्थशिराः ॥  
बाहुमें रहनेवाली वायु बाहुमें रहनेवालीशिराओंको  
सकुचित करके अपबाहुक रोगको उत्पन्न करै है ॥ ८१ ॥

अथापबाहुकचिकित्सा ।

परमौषधमपबाहुकमन्यास्तम्भोर्द्ध्वजत्रुग-  
तरोगे ॥ शीतलजलेन नस्यं तदुपशमे जि-  
ह्मिनी च पुरः ॥ ८२ ॥ मूलं बलायास्त्वथ  
पारिभद्रजं तथात्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा ॥  
युञ्जीत यो माषरसेन नस्यं भवेदसौ वज्र-  
समानबाहुः ॥ ८३ ॥

बलाया मूलं कल्कीकृतं पिबेत् तथा पारि-  
भद्रमूलञ्च । पारिभद्रोऽत्र फरहद इति लोके  
वातहरत्वात् ॥

अपबाहुक रोगमें, मन्यास्तम्भ रोगमें और कंठसे ऊपर  
के रोगोंमें शीतल जलको नस्य देवे, नस्यके शान्त होनेके  
पश्चात् जिहिनी और गूगलका उपयोग करे, यह उत्तम  
औषधि है ।

खिरैटीकी जड़ और फरहदकी जड़को पीसकर पीनेसे  
अथवा कौछके स्वरसको पीनेसे और उडदोंके रसका नास  
लेनेसे बाहु वज्रकी समान होजाती है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ माषतैलम् ।

माषातसीयवकुरण्टककण्टकारीगोकण्टदु-  
टुकजटाकपिकच्छुतोयैः ॥ कार्पासकास्थि-  
शणबीजकुलत्थकोलकाथेन वस्तपिशित-  
स्यरसेन वापि ॥ ८४ ॥ शुण्ठ्या समागधि-  
कया शतपुष्पया च सैरण्डमूलकपुनर्नव-  
या सरण्या ॥ रास्नाबलामृतलताकटुकार्वि-  
पकं माषाख्यमेतदपबाहुहरं हि तैलम् ८५ ॥

उडद, अलसी, जौ, कटसरैया, कटेरी, गोखरू, अरु-  
लुकी जड़, जटामोसी, कौछ, सुगंधबाला, कपास, सनके-  
बीज, कुलथी और बेर इनके काथसे, बकरेके मांसके  
रससे, सोंठ, पीपल, सोया ( सौंफ ), अंडकी जड़, पुन-  
र्नवा, प्रसारणी, रास्ना, खिरैटी, गिलोय और कुटकी इनके  
कल्कसे पकाया हुआ तेल अपबाहुकको नष्ट करै है ।  
इसको 'माषतैल' कहते हैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ विश्वाचीलक्षणम् ।

तलं प्रत्यंगुलीनां या कण्डरा बाहुपृष्ठतः ॥  
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची सा निग-  
द्यते ॥ ८६ ॥

कण्डरा महास्नायुः । तलं हस्तस्य उपरि-  
भागः तलशब्दोऽत्र उपरिवाचकः यथा भूमि-  
तलमिति । तेन अयमर्थः, बाहुपृष्ठतः बाह्वोः  
पृष्ठं बाहुपृष्ठमारभ्य तलं प्रतिहस्ततलं याव-  
ल्लक्षीकृत्य अंगुलीनां या कण्डरा तां सन्दूष्य  
बाह्वोः प्रसारणाकुञ्चनादिकर्मक्षयकरी भवति  
सा इह वातव्याधिषु विश्वाची इत्युच्यते ।  
बाह्वोरिति द्वित्वं सम्भवपरम् एकस्मिन्नपि  
बाहौ विश्वाची भवति ॥

बाहुकी पृष्ठसे लेकर हाथके ऊपरभाग तक अंगुलियों  
तक रहनेवाली कंडराका नाम मोटीनसे हैं उनको दूषित  
करके दोनों बाहुको फैलाने, सकोडने आदि कामोंको नष्ट  
करनेवाला जो रोग उत्पन्न होता है उसको 'विश्वाची' कहते  
हैं । यह रोग एक बाहुमें भी होजाता है ॥ ८६ ॥

अथ विश्वाचीचिकित्सा ।

दशमूलीबलामाषकाथं तैलाज्यमिश्रि-  
तम् ॥ सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विश्वाच्या-  
मपबाहुके ॥ ८७ ॥

जो विश्वाची अथवा अपबाहुकरोग उत्पन्न हुआ होय  
तो सन्ध्याके समय दशमूल, 'खिरैटी और उडद इनके  
काथमें तैल और घी मिलाकर सायकालको भोजनकरने-  
बाद पीवे और फिर नास लेवे ॥ ८७ ॥

अथ माषादितैलम् ।

माषसिन्धुबलारास्नादशमूलकहिङ्गुभिः ॥



चचाशिवजटारुयाभिः सिद्धं तैलं सनागर-  
म् ॥ ८८ ॥ ऊर्ध्वं भक्ताशनाद्धन्याद्वाहुशो-  
पापवाहुकौ ॥ विश्वाचीमुद्धतां चापि पक्षा-  
घातं तथादितम् ॥ ८९ ॥

भोजन करनेके पश्चात् उडद, सैधानिमक, खिरैटी,  
रायसन, दशमूल, हींग, वच और वेलगिरी इनके द्वारा  
पकावा हुआ तैल सोंठके साथ उपयोग किया जाय तो  
वाहुशोप, अपवाहुक, अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई विश्वाची,  
पक्षाघात और अर्दित ( लकवा ) इन सबका नाश होता-  
है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

### अथोर्ध्ववातलक्षणम् ।

अधःप्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन च ॥  
करोत्युद्गारवाहुल्यमूर्ध्ववातः स उच्यते ९० ॥  
वायुः समानवायुः ॥ मारुतेन अपानवायुना  
स्वहेतुदुष्टेन । अधःप्रतिहतः अधोनिरुद्धः ॥

अपने कारणोंसे दुष्ट हुई समान वायु और कफ वायु  
नीचेसे रुककर वारवार डकार आनेके रोगको करतीहै  
उसको ऊर्ध्ववात कहतेहैं ॥ ९० ॥

### अथोर्ध्ववातचिकित्सा ।

भागा दश विश्वायास्तत्तुल्यावृद्धदारकस्या-  
पि ॥ त्रय एव च पथ्यायाश्चतुरंशं हिंगु  
संभृष्टम् ॥ ९१ ॥ एकः सैन्धवभागस्तत्तुल्यं  
चित्रकं चात्र ॥ संवृद्धमूर्ध्ववातं हन्त्येतच्चू-  
र्णितं भुक्तम् ॥ ९२ ॥

अत्र वृद्धदारकालाभे त्रिवृन्मूलं ग्राह्यम् ॥

सोंठ दशभाग, विधारा दशभाग, जो विधारा कहीं  
नहीं मिले तो निखोत दशभाग, हरड तीन भाग, भुनी  
हींग चार भाग, सैधानिमक एकभाग और चीता एक भाग  
लेवे, इन सबका एकत्र चूर्ण करके सेवन करे तो इससे  
उग्र ऊर्ध्ववात नष्ट होजातीहै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

### अथाध्मानलक्षणम् ।

साटोपमत्यग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् ॥  
आध्मानमिति जानीयाद्द्वोरं वातनिरोध-  
जम् ॥ ९३ ॥

आटोपो गुडगुडाशब्दः भृशमाध्मातं वा-  
तपूर्णमस्त्रावत् । वातनिरोधजम् अधोवात-  
निरोधजम् ॥

जिस रोगमें नीचेकी वायुके रुकनेसे उदरमें अधिक  
पीड़ायुक्त गुडगुडाहट और पेट मसककी समान फूल जाय  
इस भयकर रोगको आध्मान कहतेहैं ॥ ९३ ॥

### अथाध्मानचिकित्सा ।

आध्माने लघनं पूर्वं दीपनं पाचनं ततः ॥  
फलवर्तिक्रियां कुर्याद्विस्तिकर्म च शोध-  
नम् ॥ ९४ ॥

आध्मान रोगमें प्रथम लघन करावे और फिर अग्नि-  
दीपन करनेवाली और पाचन औषधि देवे, फलवर्ती क्रिया,  
पिचकारी लगावे और सन्शोधन भी करावे ॥ ९४ ॥

### अथ नारायणचूर्णम् ।

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलो-  
न्मिता ॥ खण्डादपि पलं ग्राह्यं चूर्णमे-  
कत्र कारयेत् ॥ मधुनाऽक्षमितं लिह्या-  
च्चूर्णमाध्माननाशनम् ॥ ९५ ॥

पीपल १ तोला, निखोत ४ तोले और खाड ४ तोले  
इनका एकत्र चूर्ण करके उस चूर्णको सहतके साथ एक  
तोलाभर चाटे तो आध्मान तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ९५ ॥

### अथ दारुषट्कलेपः ।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ लिपे-  
दुष्णैरम्लपिष्टैः शूलाध्मानयुतोदरम् ॥ ९६ ॥  
हैमवती वचा ॥

देवदारु, वच, कूठ, सोया, हींग और सैधानिमक, इनको  
तक्रमे अथवा नीचूके रसमें पीसकर गरम करके लेप करनेसे  
पेटका शूल और आध्मान नष्ट होजाताहै ॥ ९६ ॥

### अथ महानाराचरसः ।

अभयारम्बधो धात्री दन्ती तिक्ता स्नुही  
त्रिवृत् ॥ मुस्ता प्रत्येकमेतानि ग्राह्याणि  
पलमात्रया ॥ ९७ ॥ तानि संकुट्य

सर्वाणि जलाढकयुगे पचेत् ॥ तत्र तोये-  
ऽष्टमं भागं कषायमवशेषयेत् ॥ ९८ ॥  
निस्त्वग्जैपालबीजानि नवानि पलमात्रया ॥  
तनुवस्त्रधृतान्येव तस्मिन्काथे शनैः पचेत् ॥  
॥ ९९ ॥ ज्वालयेदनलं मंदं यावत्काथो  
घनो भवेत् ॥ ततः खल्वे क्षिपेद्भागानष्टौ  
जैपालबीजतः ॥ १०० ॥ भागांस्त्रीत्राग-  
राद्वौ च मरिचाद्वौ च पारदात् ॥ गन्ध-  
काद्वौ च तानीह यावद्यामं विमर्दयेत् ॥  
॥ १०१ ॥ रसो नाराचनामाऽयं भक्षितो  
रक्तिकामितः ॥ जलेन शीतलेनैव रोगा-  
नेतान्विनाशयेत् ॥ १०२ ॥ आध्मानं  
शूलमानाहं प्रत्याध्मानं तथैव च ॥ उदा-  
वर्तं तथा गुल्ममुदराणि हरत्यसौ ॥ १०३ ॥  
वेगे शान्तिं तु भुञ्जीत शर्करासहितं दधि ॥  
ततस्तत्सैन्धवेनापि ततो दध्योदनं  
मनाक् ॥ १०४ ॥

अमलतास, आमला, जमालगोटा, कुटकी, थूहर  
और निसोत तथा नागरमोथा प्रत्येक चार २ तोला लेकर  
सबको एकत्र कूटकर पांचसौ तोले जलमे पकावै, जब  
पकते पकते आठवा भाग जल शेष रह जाय तब उसमें  
लुकले रहित नये जमालगोटेके बीज बारीक कपडेकी  
पोटलीमे बाधकर धीरे २ पकावै, अग्निकी मन्द २ आच  
धेनेसे जब यह काथ गाढा हो जाय तब इसको खरलमे  
डालकर उसमें आठभाग जमालगोटेके बीज तीन भाग  
सोठ, दो भाग कालीमिर्च, दो भाग पारा और दो भाग  
गन्धक डालकर एक प्रहरतक खरल करे तो 'महा-  
नाराच' नामक रस तैयार होजाताहै, इस रसको शीतल  
जलके साथ खाय तो इससे आध्मान, शूल, आनाह,  
प्रत्याध्मान, उदावर्त, गुल्म और उदरके सम्पूर्ण रोग नष्ट  
होजातेहैं । रोगके वेग शान्त होनेपर रोगीको मिश्रीके  
साथ दही खिलावे और सैन्धेनिमकके साथ कुछेक दही  
भात खिलावे ॥ ९७-१०४ ॥

अथ प्रत्याध्मानलक्षणम् ।

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ॥

प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलिता-  
निलम् ॥ १०५ ॥

विमुक्तपार्श्वहृदयं पार्श्वहृदये विहाय जातम्  
तदेव आध्मानं कफव्याकुलितानिलं कफेन  
अवरुद्धवातम् ॥

पसली और हृदयको छोडकर आमाशयमें उत्पन्न हुआ  
और जिसमें कफके कोपसे वायु रुकगई होय ऐसा जो  
आध्मान है उसको प्रत्याध्मान कहतेहैं ॥ १०५ ॥

अथ प्रत्याध्मानचिकित्सा ।

प्रत्याध्माने समुत्पन्ने कुर्याद्वमनलंघने ॥  
दीपनादीनि युञ्जीत पूर्ववद्वस्तिकर्म  
च ॥ १०६ ॥

प्रत्याध्मान उत्पन्न हुआ होय तो प्रथम वमन तथा  
लंघन करावै, दीपन तथा पाचन औषधियोंका उपयोग  
करे और आध्मानकी समान वस्तिकर्म करावे ॥ १०६ ॥

अथ वाताष्ठीलालक्षम् ।

नाभेरधस्तात्सञ्जातः सञ्चारी यदि वा-  
ऽचलः ॥ अष्ठीलावद्धनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत  
उन्नतः ॥ वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्ग-  
निरोधिनीम् ॥ १०७ ॥

अष्ठीला वर्तुलः पाषाणखण्डः । आयतः  
दीर्घः । वाताष्ठीलेति स्वरूपपरं न तु विशे-  
षपरं व्यावर्तकाभावात् । बहिर्मार्गनिरोधिनी  
शिश्नभगगुदननिरोधिनी । तेन मूत्रमरुन्म-  
लावरोधः सूचितः ॥

नाभीके नीचे गोल पथरीकी समान कठोर, भारी,  
ऊँची, ऊपरके भागमें लम्बी और स्थिर अथवा चंचल  
जो गाठ उत्पन्न होतीहै उसको वाताष्ठीला कहतेहैं । यह  
गाठ लिंग, योनि तथा गुदाको रोक देतीहै कि, जिससे  
विषा, मूत्र और वायुका अवरोध होजाताहै ।

पित्तकी और कफकी अष्ठीला नहीं होतीहैं इसकारण  
यहा 'वाताष्ठीला' येही नाम समझना, परन्तु वातज  
अष्ठीला ऐसा भेद नहीं समझना ॥ १०७ ॥

अथ प्रत्यष्ठीलालक्षणम् ।

एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधि-  
नीम् ॥ प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्य-  
गुथिताम् ॥ १०८ ॥

एतामेव अष्ठीलामेव जठरे तिर्यगुथि-  
तामिति भेदः ॥

वेदनायुक्त और वायु, विष्ठा तथा मूत्रको रोकनेवाली  
जो अष्ठीला ( गाठ ) पेटमें होतीहै उसको प्रत्यष्ठीला  
कहतेहैं ॥ १०८ ॥

अथ वाताष्ठीलाप्रत्यष्ठीलाचिकित्सा ।  
अष्ठीलायाः क्रिया कार्या गुल्मस्यान्तर-  
विद्रधेः ॥ चूर्णं हिग्वादिकं चात्र पिवेदु-  
ष्णेन वारिणा ॥ १०९ ॥

गुल्मकी और अन्तरविद्रधिकी जो चिकित्सा कही है  
वही चिकित्सा अष्ठीलाकी भी करनीचाहिये और इस  
रोगमें नीचे कहा हुआ हिग्वादि चूर्णको भी गरम जलके  
साथ पीनाचाहिये ॥ १०९ ॥

अथ हिग्वादिचूर्णम् ।

हिगुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निसा-  
ठाः शटी वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षार-  
द्रव्यं दाडिमम् ॥ पथ्यापौष्करवेतसाम्लह-  
पुषायोज्यं तदेभिः कृतं चूर्णं भावितमे-  
तदारद्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ११० ॥

भूती हींग, पीपलामूल, धनिया, जीरा, वच, चव्य,  
चीता, पाट, कचूर, विषाविल, तीनों प्रकारके निमक, सोंठ,  
भिरच, पीपल, जवाखार, सजी, अनार, हरड, पोहकरमूल  
अमलपत और हाऊयेर इन सबका एकत्र चूर्ण करके  
अदरकके रसकी तथा विजैरे नीबूके रसकी भावना देवे  
तो हिग्वादि चूर्ण सिद्ध होताहै ॥ ११० ॥

अथ तूनीलक्षणम् ।

अथो या वेदना याति वचोमूत्राशयो-  
न्थिता ॥ भिन्दंतीव गुदोपस्थं सा तूनी  
नामतो मता ॥ १११ ॥

उपस्थं शिश्नं भगञ्च ॥

विष्ठाके स्थानसे तथा मूत्राशयसे उत्पन्न हुई गुदा, लिग  
तथा योनिमें भेदने सरीखी पीडा करतीहुई जो वेदना  
नीचे को जातीहै उसको 'तूनी' कहतेहैं ॥ १११ ॥

अथ प्रतितूनीलक्षणम् ।

गुदोपस्थोत्थिता सैव प्रतिलोमं विधा-  
विता ॥ वेगैः पकाशयं याति प्रतितूनीति  
सोच्यते ॥ ११२ ॥

अधस्तादुत्थिता ऊर्ध्वगामिनी वेगैर्वेदना-  
वेगैर्मुहुर्मुहुः स्वभावोपशमोपलक्षितैः सा तु  
नामतः प्रतितूनी । सैव वेदना वेगैः उत्पत्ति  
प्रशमलक्षितैः ॥

जो वेदना गुदामेंसे तथा उपस्थमेंसे उठकर उलटी  
दौडकर बारबार शान्त होकर वेगपूर्वक पक्षाशयमें जाती  
होय उसको 'प्रतितूनी' कहतेहैं ॥ ११२ ॥

अथ तूनीप्रतितूनीचिकित्सा ।

तून्याश्च प्रतितून्याश्च प्रशस्ताः स्नेहवस्त-  
यः ॥ पिवेद्वा स्नेहलवणं पिप्पल्यादिमथा-  
म्बुना ॥ उष्णेन रामठं क्षारं प्रगाढमथ  
वा घृतम् ॥ ११३ ॥

तूनी अथवा प्रतितूनी हुई होय तो स्नेहकी पिचकारी  
लगावे, अथवा तेलमें सैधानिमक डालकर पिये अथवा  
पिप्पल्यादि गणका काथ पिये, अथवा हींग तथा जवा-  
खारको गरमजलसे पिये, अथवा अच्छे प्रकारसे घी  
पिये ॥ ११३ ॥

अथ त्रिकशूललक्षणम् ।

स्फिगस्थनोः पृष्ठवंशास्थनोर्यः सन्धिस्त-  
त्रिकं मतम् ॥ तत्र वातेन या पीडा त्रिक-  
शूलं तदुच्यते ॥ ११४ ॥

कूलेकी दो अस्थियोंकी और पीठके वासकी दो  
अस्थियोंकी जो संधि हैं उनको त्रिक कहतेहैं । इस त्रिक-  
स्थानमें वायुसे जो पीडा उत्पन्न होतीहै उसको त्रिकशूल  
कहतेहैं ॥ ११४ ॥

अथ त्रिकशूलचिकित्सा ।

कारयेद्वालुकास्वेदं त्रिकशूले प्रयत्नतः ॥

यद्वाऽधस्तात्करीषामिं धारयेत्सततं  
नरः ॥ ११५ ॥

त्रिकशूलमे उस मनुष्यको यत्नपूर्वक बालुकास्वेद  
देवै, अथवा उसकी खाटके नीचे बनेके उपलोकी अग्नि  
रखकर शोक देवै ॥ ११५ ॥

अथ त्रयोदशांगगुग्गुलुः ।

आभाऽश्वगन्धा हपुषा गुडूची शतावरी  
गोक्षुरकश्च रास्ता ॥ श्यामा शताह्वा च  
शटी यवानी सनागरा चेति समं विचू-  
र्ण्य ॥ ११६ ॥ सर्वैः समं गुग्गुलुमत्र  
दद्यात्क्षिपेदिहाज्यश्च तदर्द्धभागम् ॥ त-  
द्भक्षयेदर्द्धपिचुप्रमाणं प्रभातकाले पय-  
साऽथ यूषैः ॥ ११७ ॥ मद्येन वा को-  
ष्णजलेन चाथ क्षीरेण वा मांसरसेन  
वापि ॥ त्रिकग्रहे जानुहनुग्रहे च वाते  
भुजस्थे चरणस्थिते च ॥ ११८ ॥ स-  
न्धिस्थिते चास्थिगते च तस्मिन्मज्जा-  
स्थिते स्नायुगते च कोष्ठे ॥ रोगान्हरे-  
द्वातकफानुविद्वान्वातेरितान्हृद्ग्रहयोनिदो-  
षान् ॥ ११९ ॥ भग्नास्थिविद्वेषु च  
खल्लतायां सगृध्रसीके खलु पक्षघाते ॥  
महौषधं गुग्गुलुमेतमाहुस्त्रयोदशाङ्गं भि-  
षजः पुराणाः ॥ १२० ॥

आभा बबूलः । तथा च “आभा बबूल-  
पर्यायः कथितः कोविदैरिह” इति ॥

बबूर, असगंध, हाऊबेर, गिलोय, सतावर, गोखरू, रासना,  
निसोत, सोया, कचूर, अजवायन और सौंठ इन सबको  
समान भाग लेकर चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर गूगल  
लेवै और गूगलसे आधा घी लेवै, सबको एकत्र मिलाकर  
खूब कूटे तो त्रयोदशांग गूगल बनजाताहै । इस गूगलको  
प्रातःकाल दूधके साथ, वायूषके साथ, अथवा मद्यके  
साथ, वा कुछेक गरम जलके साथ, वा केवल ताजे  
पानीके साथ अथवा मांसके रसके साथ आधे  
तोले प्रमाण खाय तो इससे त्रिकशूल, जानु-

स्तम्भ, हनुग्रह, भुजागतवायु, पादगतवायु,  
सधिगतवायु, अस्थिगतवायु, मज्जागतवायु, स्नायुगतवायु,  
कोष्ठगतवायु, वातकफके समस्त रोग, वायुके रोग, छातीका  
स्तम्भ, योनिदोष, भग्नास्थिसे उत्पन्न हुए रोग, विद्वहोनेसे  
उत्पन्न हुए रोग, खंजता, गृध्रसी और पक्षाघात ये सम्पूर्ण  
रोग दूर होजातेहैं । प्राचीन वैद्य इस त्रयोदशांग गूगलको  
वायु सम्बन्धी रोगोंपर उत्तम औषधि कहतेहैं ११६-१२०

अथ मुहुर्मूत्रमूत्रनिग्रहनिदान-  
पूर्वकलक्षणम् ।

मारुतेऽविगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यक्प्रवर्त-  
ते ॥ विकारा विविधाश्चापि तस्मिन्दुष्टे  
भवन्ति हि ॥ १२१ ॥

अविगुणे अनुलोमे । विकाराः विविधाः  
मुहुर्मूत्रमूत्रनिग्रहादयः ॥

वायु जब दुष्ट नहीं होतीहै तब मूत्रागयमें अच्छे प्रका-  
रसे मूत्रको प्रवर्तन करातीहै और जब वायु दुष्ट होजाती-  
है तब मुहुर्मूत्र तथा मूत्रनिग्रह आदि अनेक प्रकारके  
विकारोको उत्पन्न करतीहै । बारवार मूत्र उसको ‘मुहुर्मू-  
त्र’ कहतेहैं और जिसमे मूत्रका अवरोध ( रुकावट ) हो-  
ताहै उसको मूत्रनिग्रह कहतेहैं, मुहुर्मूत्र तथा आदि विकार  
‘वस्तिवात’ इस नामसे भी कहजातेहैं ॥ १२१ ॥

अथ मुहुर्मूत्रमूत्रनिग्रहचिकित्सा ।

बलामूर्वात्वचश्चूर्णं ससितं कर्षसम्मि-  
तम् ॥ पिवेत्कुडवदुग्धेन मुहुर्मूत्रणशां-  
तये ॥ १२२ ॥ पथ्याविभीतधात्रीणां  
चूर्णं चूर्णं मृतायसः ॥ मधुना सह  
संलीढं मुहुर्मूत्रणशान्तिकृत् ॥ १२३ ॥  
यवक्षारस्य चूर्णन्तु संयोज्य सितया सह ॥  
भक्षयेन्नियतं तस्य प्रशमेन्मूत्रनिग्रहः ॥  
॥ १२४ ॥ कूष्माण्डस्य तु बीजानि  
बीजानि त्रपुसस्य च ॥ वस्तौ सन्धार-  
येत्तेन प्रशाम्येन्मूत्रनिग्रहः ॥ १२५ ॥  
आमलक्याश्च कल्केन वस्तिभागं प्रलेप-  
येत् ॥ तेन प्रशाम्यति क्षिप्रं नियमान्मूत्र-  
निग्रहः ॥ १२६ ॥ मेहनस्याथ योनेर्वा

मुखस्याभ्यन्तरे शनैः ॥ घनसारयुतां  
वार्ति धारयेन्मूत्रनिग्रहे ॥ १२७ ॥

खिरंटी, चुरनहार ( चिन्हार ) और दालचीनी इनका  
चूर्ण करके मिश्री मिलाकर सोलह तोलेभर दूधके साथ,  
इस चूर्णको एक तोले प्रमाण खाय तो मुहुर्मूत्रणकी शाति  
होतीहै ।

हरड, बहेटा और आमला इनका चूर्ण तथा मारेहुए  
लोहेका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे तो मुहुर्मूत्रकी शाति  
होतीहै ।

जवाखारके चूर्णको खाडके साथ मिलाकर सेवन करे  
तो मूत्रनिग्रह अवश्य नष्ट होजाताहै ।

पेटके बीज और खीरेके बीजोंको पेडूके ऊपर पीसके  
रखनेमें मूत्रनिग्रह दूर होजाताहै ।

आमलाका कल्क बनाकर पेडूके ऊपर रखनेसे मूत्रनि-  
ग्रह तत्काल नष्ट होजाताहै । लिगके अथवा योनिके मुखमें  
धीरे धीरे कपूरकी वत्ती चढावे तो मूत्रका अवरोध दूर हो-  
जाताहै ॥ १२२-१२७ ॥

अथ गृध्रसीलक्षणम् ।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजंघापदं क्रमा-  
त् ॥ गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति  
स्पन्दते मुहुः ॥ १२८ ॥ वाताद्वातक-  
फाभ्यां सा विज्ञेया द्विविधा पुनः ॥  
वातजायां भवेत्तोदो देहस्यातीव वक्रता  
॥ १२९ ॥ जानुजंघोरुसन्धीनां स्फुरणं  
स्तम्भता भृशम् ॥ वातश्लेष्मोद्भवायान्तु  
गौरवं वह्निमार्दवम् ॥ तन्द्रा मुखप्रसेकश्च  
भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ १३० ॥

गृध्रसी वातजा केवला स्फिगादिपदपर्य-  
न्तम् स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति । क्रमाद् वृद्धि-  
क्रमात् । तेन यथायथा वर्द्धते तथातथा  
स्फिगादीनि आक्रामति नात्र ग्रहणे निर्दे-  
शक्रमनियमः ॥ तथा मुहुः स्पन्दते स्फिगा-  
दिषु शिराकम्पं करोतीत्यर्थः ॥

कुले की संधि, कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जघा और पांव  
इनमें स्तम्भता, वेदना तथा सुई चुभोने सरीखी पीडा  
और नृत्यकी संधिआदि शिरा वाग्वार कांप, यह गृध्रसी

रोग कहाजाताहै, अब यह रोग जितना जितना अधिक  
बढताजाताहै उतना उतना ही कुले आदिकी संधियोंको  
विशेष दबाताहै ।

वातज और कफज इसप्रकार गृध्रसी दो प्रकारकी है  
तहा वातकी गृध्रसी रोगमें सुई चुभोने सरीखी पीडा होती-  
है, देह अत्यंत बौका होजाताहै घुटने, जघा और सांथल-  
की संधियोंकी शिरा काँपतीहैं और बहुत स्तम्भ होताहै और  
जो वात तथा कफ दोनोंसे उत्पन्नहुई गृध्रसी होय तो शरी-  
रमें भारीपन, अग्निकी मदता, तन्द्रा, मुखसे पानीका गि-  
रना और अन्नपर असुचि होतीहै ॥ १२८-१३० ॥

अथ गृध्रसीचिकित्सा ।

गृध्रस्यार्ति नरं सम्यग्रेकेण वमनेन वा ॥  
ज्ञात्वा निरामं दीप्ताग्निं वस्तिभिः समु-  
पाचरेत् ॥ १३१ ॥ नादौ वस्तिविधिं  
कुर्याद्यावदूर्द्धं न शुध्यति ॥ स्नेहो निर-  
र्थकः स स्याद्भस्मन्येव हुतं यथा ॥  
॥ १३२ ॥ तैलमेरण्डजं प्रातर्गोमूत्रेण  
पिवेत्ररः ॥ मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यू-  
रग्रहापहः ॥ १३३ ॥ तैलं घृतं चार्द्रक-  
मातुलंगरसं सचक्रं सगुडं पिवेद्वा ॥  
कट्यरुपृष्ठत्रिकशूलगुल्मगृध्रस्युदावर्तहरः  
प्रयोगः ॥ १३४ ॥ निष्कुण्ठैरण्डबीजा-  
नि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ॥ तत्पानन्तु  
कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् ॥ १३५ ॥  
एरण्डमूलं बिल्वश्च बृहती कण्टकारिका ॥  
कपायो रुचकोपेतः पीतो वंक्षणवस्तिजम्  
॥ १३६ ॥ गृध्रसीजं हरेच्छूलं चिर-  
कालानुबन्धि च ॥ गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां  
कृष्णाचूर्णं पिवेत्ररः ॥ दीर्घकालोत्थितां  
हन्ति गृध्रसीं कफवातजाम् ॥ १३७ ॥  
सिहास्यदन्तीकृतमालकानां पिवेत्कषायं  
रुडुतैलमिश्रम् ॥ यो गृध्रसीनष्टगतिः प्रसुप्तः  
स शीघ्रगः स्याद्भि किमत्र चित्रम् ॥  
॥ १३८ ॥ बृहन्निम्बतरोः सारो वारिणा



परिपेषितः ॥ स पीतो नाशयेत्क्षिप्रम-  
साध्यामपि गृध्रसीम् ॥ १३९ ॥ शेफा-  
लिकादलैः काथो मृद्वभिपरिपाचितः ॥  
दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रः प्रणाश-  
येत् ॥ १४० ॥

**शेफालिका निर्गुण्डी ॥**

गृध्रसीवातसे पीडित मनुष्यको अच्छे प्रकार विरेचन और वमन देकर आमरहित और दीप्ताग्नि को जानकर स्नेहकी पिचकारी लगावै, जबतक वमनरूप ऊर्ध्व शोधन नहीं होता तबतक राखमे हवनकी समान स्नेहकी पिचकारी व्यर्थ होती है ।

प्रातःकाल गोमूत्रके साथ अण्डीका तेल एक महीने तक पिये तो गृध्रसीवात और ऊरुग्रह नष्ट होजाता है ।

तेल, घी अदरकका रस और विजोरेकारस इन सबको एकत्र मिलाकर उसमें चूकेका रस अथवा गुड डालकर पिये तो कटिशूल, ऊरुशूल, पृष्ठशूल, त्रिकशूल, गुल्म, गृध्रसी और उदावर्त ये सब रोग नष्ट होजाते हैं ।

अण्डके बीजोंको छीलकर उनके छिलके अलग करके गिरीको दूधमें पीसकर पीनेसे कटिशूल और गृध्रसी वात नष्ट होती है, यह परमौषधि है ।

अण्डकी जड़, बेलगिरी, बड़ी कटेरी और छोटी कटेरी इनके काथमे कालानिमक डालकर पीनेसे वंक्षणशूल, वस्तिशूल और गृध्रसीसम्बन्धी शूल बहुत दिनोंका पुराना भी नष्ट होजाता है ।

गोमूत्रके और अण्डके तेलके साथ पीपलका चूर्ण पिये तो बहुत दिनोंकी पुरानी और कफ तथा वात दोनोंसे उत्पन्न हुई गृध्रसी नष्ट होती है ।

गृध्रसीसे मनुष्यकी चलनशक्ति नष्ट होगई होय और जो जड़ होगया होय वह मनुष्य अट्टसा, जमालगोटा और चिरायता इनका काथ बनाकर उसमें अण्डीका तेल मिलाकर पिये तो अत्यन्त शीघ्र गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ।

बकायनके भीतरकी छालको पानीमें पीसकर पीनेसे असाध्य गृध्रसी भी नष्ट होजाती है ।

निर्गुण्डीके पत्तोंका काथ मन्द मन्द अग्निसे पचाकर पीनेसे असाध्य गृध्रसी भी नष्ट होजाती है ॥ १२१-१४० ॥

**अथ रास्नागुग्गुलुः ।**

रास्नायास्तु पलं चैकं पञ्च कर्षाणि गुग्गुलोः ॥  
सर्पिषा वटिकां कृत्वा भक्षयेद्गृध्रसीह-  
रीम् ॥ १४१ ॥

चार तोलेभर रास्ना और पांच तोलेभर गुग्गुलु इनको एकत्र मिलाकर घीके योगसे गोली बनाकर सेवन करनेसे गृध्रसी नष्ट होजाती है ॥ १४१ ॥

**अथ रास्नासप्तककाथः ।**

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपु-  
नर्नवानाम् ॥ काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं  
जंघोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ १४२ ॥

रासना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरु, अण्ड और पुनर्नवा ( सांट ) इनका काथ बनाकर उसमें सोंठका चूर्ण डालकर पीनेसे जघागत वायु, ऊरुगत वात, पृष्ठगत वात, त्रिकशूल और पार्श्वशूल नष्ट होजाता है ॥ १४२ ॥

**अथ पथ्यादिगुग्गुलुः ।**

पथ्याविभीतामलकीफलानां शतं क्रमेण  
द्विगुणाभिवृद्धम् ॥ प्रस्थेन उक्तञ्च पलंक-  
षाणां द्रोणे जले संस्थितमेकरात्रम् ॥  
॥ १४३ ॥ अर्द्धावशिष्टं कथितं कषायं  
भाण्डे पचेत्तत्पुनरेव लौहे ॥ अमूनि वहे-  
रवतार्य दद्याद्गव्याणि सञ्चूर्ण्य पलाद्ध-  
कानि ॥ १४४ ॥ विडङ्गदन्तीत्रिफला-  
गुडूचीकृष्णात्रिवृन्नागरकोषणानि ॥ यथे-  
ष्टचेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमाम्बुपानानि  
च भोजनानि ॥ १४५ ॥ निषेव्यमाणो  
विनिहन्ति रोगान्सगृध्रसीं नूतनखञ्जताञ्च  
प्लीहानमुग्रं जठराभिगुल्मं पाण्डुत्वकण्डू-  
वमिवातरक्तम् ॥ १४६ ॥ पथ्यादिको  
गुग्गुलुरेष नाम्ना ख्यातः क्षितावप्र-  
मितप्रभावः ॥ बलेन नागेन समं मनुष्यं  
जवेन कुर्यात्तुरगेण तुल्यम् ॥ १४७ ॥  
आयुःप्रकर्षं विदधाति चक्षुर्वलं तथा  
पुष्टिकरो विषन्नः ॥ क्षतस्य सन्धा-

नकरो विशेषादोगेषु शस्तः सकलेषु  
तज्ज्ञैः ॥ १४८ ॥

हरड १००, बहेडे २००, आमले ४०० और  
गूगल ६४ तोले, इन सबको १०२४ एक हजार  
चौबीस तोले जलमें एक रात्रिभर भिगो रखे फिर  
इसका अर्द्धविशेष काथ बनाकर और छानकर लोहेके  
बासनमें पकावे, जब अच्छा गाढा होजाय तब अग्नि-  
परसे उतारकर इसमें वायविडंग, जमालगोटा, हरड,  
बहेडा, आमला, गिलोय, निसोत, पीपल, सेंठ और  
कालीमिर्च इनका दो दो तोले चूर्ण डाले यह पथ्यादि  
गुग्गुलु सिद्ध होताहै। इस गूगलको सेवन करनेवाला  
मनुष्य यथेष्ट विहार करे। और इसपर शीतल जल पिये  
तथा शीतलही पदार्थोंका भोजन करे। गूगलको सेवन  
करनेसे गृध्रसी, नवीन खज्जता, अत्यन्त उग्र श्लेष्मा,  
गुल्म, पांडुरोग, मन्दाग्नि, कण्डू, वमन, वातरक्त और  
विशेष करके गृध्रसी वात, नष्ट होतीहै। यह पथ्यादि  
नामवाला गूगल पृथिवीमें अत्यन्त प्रभाववाला है। इसको  
सेवन करनेवाला मनुष्य बलमें हौथी समान, वेगमें  
चोडेकी समान होजाताहै। तथा आयुकी वृद्धि करता  
है, नेत्रोंकी ज्योति बढ़ाताहै, शरीरकी पुष्टि करताहै,  
बिपको दूर करताहै, घावको भरताहै और विशेष  
करके सम्पूर्ण रोगोंमें हितकारी है ऐसा वैद्योंका मत  
है ॥ १४३-१४८ ॥

अथ खंजपंगुलक्षणम् ।

वायुः कट्याश्रितः सकथ्नः कण्डरामा-  
क्षिपेद्यदा ॥ खंजस्तदाभवेज्जन्तुः पंगुः  
सकथ्नोर्दयोर्वधात् ॥ १४९ ॥

सकथ्नः कट्यादिगुल्फस्य कण्डरां महा-  
स्त्रायम् आक्षिपेद्भ्रमनादौ कम्पयेत् । वधाद्भ्रम-  
नादिक्रियाधातात् ॥

कटिमें रहनेवाली वायु कुपित होकर कमरसे लेकर  
पोंनके गुल्फोंतककी जो मोटी नसे हैं उनको जब खींचती  
है अर्थात् चलते समय कँपातीहै तब वह मनुष्य खज्जा  
अर्थात् ल्हाटा होजाताहै ।

कमरसे पायकी गाँठोंतक दोनों साँथलोंकी चलनेकी  
क्रिया नष्ट होजातीहै उसको पंगु (लंग) कहतेहैं ॥ १४९ ॥

अथ खज्जपंगुचिकित्सा ।

उपाचरेदभिनवं खंजं पंगुमथापि च ॥

विरेकास्थापनस्वेदगुग्गुलुस्नेहवस्तिभिः १५०

खज्जता अथवा पंगुता रोग जो थोड़े दिनोंका उत्पन्न  
हुआ होय तो विरेचनसे, निरूह वस्तिसे, स्वेदनसे,  
गूगलको सेवन कराकर तथा स्नेह वस्तिओंसे चिकित्सा  
करे ॥ १५० ॥

अथ कलायखंजलक्षणम् ।

कम्पते गमनारम्भे खंजन्निव च लक्ष्यते ॥

कलायखंजं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रव-  
न्धनम् ॥ १५१ ॥

गमनारम्भे कम्पते एतस्य खंजादयमेव  
भेदः । कलायखज्ज इति शास्त्रे रूढा संज्ञा  
न तु यौगिकी ॥

चलते समय लँगाडेकी समान चले या कँपे और  
जिसके सब सन्धिवन्धन शिथिल होजायें उस मनुष्यको  
कलायखज्ज हुआ जानना। इसमें चलते समय कम्प होय  
और लँगाडाता चले इस लिये खज्जता और कलायखज्ज-  
तामें अन्तर है। (कलायखज्ज) यह नाम वैद्यकशास्त्रमें  
अर्थके अनुसार नहीं होनेसे यौगिक नहीं किन्तु रूढ है  
ऐसा जानना ॥ १५१ ॥

अथ कलायखज्जचिकित्सा ।

क्रमः कलायखज्जस्य खज्जपङ्गोरिव स्मृतः ॥

विशेषात्स्नेहनं कर्म कार्यमत्र विच-  
क्षणैः ॥ १५२ ॥

कलायखज्जताकी चिकित्सा खज्जता और पंगुताकी  
समान करनी चाहिये और इसमें विशेष करके स्नेहक्रिया  
करे ॥ १५२ ॥

अथ क्राष्टुकशीर्षलक्षणम् ।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महा-

रुजः ॥ ज्ञेयः क्राष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रा-

ष्टुकशीर्षवत् ॥ १५३ ॥

क्राष्टुः शृगालः ।

वायुसे तथा रुधिरसे जुटनोंके मध्यमें गीदडके  
मस्तककी समान बहुत बड़ी और मोटी अत्यन्त

पीडावाली सूजन होती है उसको क्रोष्टुक्शीर्ष कहते हैं ॥ १५३ ॥

### अथ क्रोष्टुक्शीर्षचिकित्सा ।

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षं तु गुडूचीत्रिफलाम्भसा ॥  
क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारकम् १५४  
गुग्गुलुं शुद्धं कर्षमितं गुडूचीत्रिफलाम्भ-  
सा गुडूचीपथ्याविभीतामलकैः समुदितैः  
चतुष्कर्षमितैः प्रस्थमितेन जलेन पक्त्वा  
क्वाथेन उष्णेन पलद्वयमितेन गुग्गुलुं पिबेत् ।  
एरण्डतैलं कर्षमितं क्षीरेण गव्येन पलपरि-  
मितेन पिबेत् । वृद्धदारकचूर्णं वा दुग्धेन  
गव्येन पलचतुष्टयमितेन पिबेत् ॥

रसैस्तिक्तिरमांसस्य पीतैर्गुग्गुलुसंयुतैः ॥  
वातरक्तक्रियाभिश्च जयेज्जम्बूकमस्त-  
कम् ॥ १५५ ॥

गिलोय, इरड, बहेडा और आमला यह प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर ६४ चौसठ तोले जलमें पकाकर क्वाथ बनावे । जब आठ तोले जल शेष रहै तब इस गरमागरम क्वाथके साथ शुद्ध किये गुग्गुलुको एक तोलाभर खाय तो क्रोष्टुक्शीर्ष रोग नष्ट होजाता है । दूधके साथ अडीका तेल अथवा विघारेको पीनेसे क्रोष्टुक्-शीर्षरोग नष्ट होजाताहै । जो अडीका तेल पीना होय तो तेल एक तोला और गायका दूध चार तोले लेना चाहिये । विघारेका चूर्ण पीना होय तो गायके सोलह तोले दूधके साथ पिये ।

गुग्गुलुके साथ तीतरके मासका रस पिये, तथा वात-रक्तकी चिकित्साके समान क्रोष्टुक्शीर्षकी चिकित्सा करे ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

### अथ खल्लीलक्षणम् ।

खल्ली तु पादजंघोरुकरमूलावमोदिनी १५६  
अवमोदिनी परिवर्तनशीला ॥

जिससे पाव, जघा, साथल और हाथकी जड ये सब ठिठरा जायें उसको खल्लीवात कहतेहैं ॥ १५६ ॥

### अथ खल्लीचिकित्सा ।

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कश्चुक्रतैलसमन्वितः ॥  
सुखोष्णो मर्दने योज्यः खल्लीशूलनिवा-  
रणः ॥ १५७ ॥

कूठ और सैन्धेनिमकका कल्क बनाकर तेल और चुका मिलाकर कुछेक गरम करके मर्दन करनेसे खल्लीवात नष्ट होजातीहै ॥ १५७ ॥

### अथ वातकण्टकलक्षणम् ।

रुक्पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते  
यदा ॥ वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वात-  
कण्टकम् ॥ १५८ ॥

पांव विषमरीतिसे पड़े अथवा परिश्रमसे वातके कारण जो घुटनोंमें पीडा होतीहै उसको वातकण्टक कहते हैं ॥ १५८ ॥

### अथ वातकण्टकचिकित्सा ।

रक्तावसेचनं कुर्यादभीक्षणं वातकण्टके ॥  
पिबेदैरण्डतैलं वा दहेत्सूचीभिरेव च १५९ ॥  
अभीक्षणं पुनः पुनः ॥

वातकण्टक हुआ होय तो बारंवार रुधिर निकलवावे, अथवा अडीका तेल पिये अथवा सुइयोसे दागदेवे १५९ ॥

### अथ पाददाहलक्षणम् ।

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ॥  
विशेषतश्चङ्क्रमणे पाददाहं तमादिशेत् १६०  
पित्त तथा रुधिरसयुक्त वायु पावोंमें दाह करतीहै और चलते समय विशेष करके दाह ( जलन ) होताहै इसको पाददाह कहतेहैं ॥ १६० ॥

### अथ पाददाहचिकित्सा ।

वातरक्तक्रमं कुर्यात्पाददाहे विशेषतः ॥  
मसूरविदलैः पिष्टैः शृतशीतेन वा-  
रिणा ॥ चरणौ लेपयेत्सम्यक्पाददाह-  
प्रशान्तये ॥ १६१ ॥

विशेष करके पाददाहरोगमें वातरक्तकी चिकित्सा करे

औंटायेहुए जलको शीतल करके उसमें मसूरको पीस-  
कर पावपर लेपकरे, इससे पाददाह नष्ट होजाता-  
है ॥ १६१ ॥

नवनीतेन संलितौ वह्निना परितापितौ ॥  
मुच्येते चरणौ क्षिप्रं परितापात्सुदारु-  
णात् ॥ १६२ ॥

पांवपर नैनी धीका लेप करके अग्निसमें सेके तो दारुण  
पाददाह भी नष्ट होजाताहै ॥ १६२ ॥

अथ पादहर्षलक्षणम् ।

हृष्येते चरणौ यस्य भवतश्च प्रसुप्तकौ ॥

पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः १६३

हृष्येते रोमाञ्चितौ भवतः । प्रसुप्तकौ

सिनिसिनीयुक्तौ ॥

कफके तथा वायुके कुपित होनेसे दोनों पांव रोमांच  
युक्त होकर झसझस करने लगते हैं, उसको पादहर्ष  
कहतेहैं ॥ १६३ ॥

अथ पादहर्षचिकित्सा ।

पादहर्षं तु कर्तव्यः कफवातहरो  
विधिः ॥ १६४ ॥

पादहर्ष रोगमें कफ तथा वायुको हरणकरनेवाली चि-  
कित्सा करनी चाहिये ॥ १६४ ॥

अथ दण्डकाक्षेपादिचतुर्विधाक्षेपकाणां

संप्राप्तिर्ष्वकसामान्यलक्षणम् ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति  
मारुतः ॥ तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं  
मुहुश्चलः ॥ मुहुराक्षेपणाद्वायुराक्षेपक  
इति स्मृतः ॥ १६५ ॥

मुहुर्मुहुर्देहमाक्षिपति गजारूढस्य इव  
पुरुषस्य गात्रं दोलयति । किंविशिष्टो मारुतः  
मुहुश्चलः वारंवारं सञ्चरणशीलः अयं वायु-  
राक्षेपक इति स्मृतः । देहस्य यत् मुहुराक्षे-  
पणं चालनं ततः ॥

जब जोपको प्राप्त हुई वायु सर्व धमनियोंमें प्राप्त होती-  
है तब बारबार संचरण करनेवाली उस वायुसे मनुष्य

हलता है जिस प्रकार हाथीपर बैठेहुए मनुष्यका शरीर  
हलताहै, इस कारण शरीरको बारबार हलानेवाली होनेसे  
इसको आक्षेपक कहतेहैं ॥ १६५ ॥

पित्तश्लेष्मान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ॥  
कुर्यादाक्षेपकं चान्यं चतुर्थमभिघात-  
जम् ॥ १६६ ॥

पित्तान्वितः श्लेष्मान्वितश्च केवलश्च वायुः  
आक्षेपकत्रितयं कुर्यात् । अन्यं चतुर्थमभिघा-  
तजम् । अन्यो दण्डात् अभिघातजो वायुः  
चतुर्थमाक्षेपकं कुर्यादित्यर्थः ॥

पित्तसंयुक्तवायुसे उत्पन्न हुआ, कफ संयुक्त वायुसे उत्पन्न  
हुआ, केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और अभिघातसे उत्पन्न  
हुआ इस प्रकार आक्षेपक रोग चार प्रकारका है ॥ १६६ ॥

अथ केवलवातोत्पन्नाक्षेपक-  
लक्षणम् ।

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीः स्तम्भाति मा-  
रुतः ॥ दण्डवत्स्तम्भगात्रस्य दण्डकः सो-  
ऽनुपक्रमः ॥ १६७ ॥

अयं वातजाक्षेपको दण्डाख्यः सोऽनुप-  
क्रमः । स्वस्वभावादेव असाध्यः । अत्र च  
मुहुर्मुहुराक्षेपणं बोद्धव्यम् ॥

वायुसे हाथ, पांव, मस्तक, पीठ और श्रोणी ये जकड़  
जायें, जिसमें सम्पूर्ण शरीर लकड़ीकी समान जड़क जाय  
उसको दण्डापतानक कहतेहैं । केवल वायुसे उत्पन्न हुआ  
और जिसमें शरीर हाथीपर बैठेकी समान हालाकरे ऐसा  
यह दण्डकाक्षेप स्वभावसेही असाध्य है ॥ १६७ ॥

अथ कफयुक्तवातोत्पन्नदण्डापतानक-  
लक्षणम् ।

कफावृतो यदा वायुर्धमनीष्वेव तिष्ठति ॥  
स दण्डवत्स्तम्भयति कृच्छ्रो दण्डाप-  
तानकः ॥ १६८ ॥

दण्डापतानकः, स आक्षेपको दण्डापतानकाख्यः । कृच्छ्रः कष्टसाध्यः । अत्र च मुहुर्मुहुराक्षेपणं बोद्धव्यम् । आगन्तुजाक्षेपकस्य लक्षणं सामान्यमेव बोद्धव्यम् ॥

जब कफसे व्याप्त वायु घमनिओमे रहती है तब घमनी लकड़ीकी समान स्तब्ध होजाती है और शरीर हाथीपै चैठेहुएकी समान बारबार हिलकरता है इसको दंडापतानकाक्षेप रोग कहते हैं, यह दंडापतानकाक्षेप कष्टसाध्य है ॥

अभिघातकृताक्षेपक जो आगन्तुजाक्षेपक कहाजाता है उसके लक्षण अलग नहीं कहे हैं अत एव आक्षेपकके जो सामान्य लक्षण कहे हैं वे उसके भी जानने चाहिये पित्त-संयुक्त वायुसे उत्पन्न हुए आक्षेपकके लक्षण भी अलग नहीं देखनेमें आते इसकारण उसके लक्षण भी सामान्य लक्षणोंसे न्यूनाधिक रहित जानने ॥ १६८ ॥

अथ चतुष्प्रकाराक्षेपकचिकित्सा ।

तत्र महाबलातैलम् ।

चलामूलकषायस्य दशमूलीगृतस्य च ॥  
यवकोलकुलत्थानां काथस्य पयसस्तथा ॥  
॥ १६९ ॥ अष्टावष्टौ स्मृता भागास्तै-  
लादेकस्तदेकतः ॥ पचेदवाप्य मधुरं  
गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ १७० ॥ तथाऽगुरुं  
सर्जरसं सरलं देवदारु च ॥ मञ्जिष्ठां  
पद्मकं कुष्ठमेलं कालाञ्च सारिवाम् ॥  
॥ १७१ ॥ मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं  
सारिवां वचाम् ॥ शतावरीमश्वगन्धां  
शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १७२ ॥ तत्साधु-  
सिद्धं सौवर्णं राजते मृन्मयेऽपि वा ॥  
प्रक्षिप्य कलशे सम्यक्स्वनुगुप्तं निधापये-  
त् ॥ १७३ ॥ एतन्महाबलातैलं प्रयुक्तम-  
विलम्बितम् ॥ सर्वानाक्षेपकादींस्तु वात-  
व्याधीन्व्यपोहति ॥ १७४ ॥ हिक्कां श्वास-

मधीमन्थं गुल्मं कासं सुदुस्तरम् ॥ षण्मा-  
सादुपयुक्तं तदन्त्रवृद्धिञ्च नाशयेत् १७५ ॥  
यथाबलमलं मात्रां सूतिकायै च दापयेत् ॥  
या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः  
पुमान् ॥ १७६ ॥ क्षीणवाते मर्महते  
ह्यभिघातहते तथा ॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने  
च सर्वथैतत्प्रयुज्यते ॥ १७७ ॥ एतद्धि-  
राज्ञा कर्तव्यं कर्तव्यं राजपूजितैः ॥  
सुखिभिः सुकुमारैश्च धनिभिर्मानवैः  
सदा ॥ १७८ ॥

एकतः एकत्र । अवाप्य प्रक्षिप्य ॥

खिरैटीका काथ आठभाग, दशमूलका काथ आठ भाग, जौ, कालीमिर्च और कुलथीका काथ आठभाग, दूध आठ भाग और तेल एक भाग, इन सबको एक बासनमें डालकर और उसमें जीवनीय गणकी औषधि सैधानिमक, अगर, राल, वूपसरल, देवदारु, मजीठ, पद्माख, कूठ, इलायची, कालीसारिवा, वालछड ( जटामासी ), छार-छवीला, तेजपत्र, तगर, गौरीसारिवा, वच, सतावर, असगन्ध, सोया और पुनर्नवा इन सब पदार्थोंको डालकर यथाविधिसे तेलको पकावै तौ महाबला नामक तैल तैयार होता है । इस तेलके सिद्ध होनेके पश्चात् सोने, चादी, अथवा मट्टीके कलशमें भरकर उत्तमरीतिसे रखदेवे । इस तेलका प्रयोग करनेसे सर्व प्रकारकी वातव्याधि नष्ट होती है विशेष करके, आक्षेपकादि रोग नष्ट होते हैं तथा हिचकी, श्वास, अधिमन्थ, गुल्म और भयंकर खाँसी भी दूर होजाती है और छः महानिके प्रयोग करनेसे अन्त्रवृद्धि-का भी नाश होजाता है बल और मलके अनुसार प्रसूता स्त्रीको इस तेलकी मात्रा देवे ॥

जिन स्त्रियोंको गर्भ रहनेकी इच्छा है तथा जो पुरुष वीर्यक्षीण होगये हैं उनके लिये भी यह तेल महाहितकारी है । क्षीणवातपर, मर्महत अभिघातपर, अन्यान्य अभिघातोपर, टूटे हुएपर और परिश्रमके दुःखपर अच्छे प्रकार-से इस तेलका प्रयोग करना चाहिये । राजा, राजमान्य, सुखी लोग, सुकुमार लोग और धनवान् मनुष्योंको यह तेल सदैव रखना चाहिये ॥ १६९-१७८ ॥



अथान्तरायामलक्षणम् ।

अंगुलीगुल्फजठरहृद्भक्षोगलसंश्रितः ॥  
स्नायुप्रतानमनिलस्तदाक्षिपति वेगवान् ॥ १७९ ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥ अन्यन्तरे धनुरिव यदा नमति मानवः ॥ तदा सोऽन्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ १८० ॥

यदा स बली मारुतोऽन्यन्तरायामं कुरुते ॥ तदंगुल्यादिसंश्रितोऽनिलाः । स्नायुरत्र उपलक्षणम् । तेन शिराकण्ठयोरपि ग्रहणम् । आक्षिपति कम्पयति । तदा स मानवः विष्टब्धाक्षः स्तब्धनेत्रः भग्नपार्श्वः भग्न इव पार्श्वे यस्य सः ॥

जब बलवान् वायु अंतरायामको करती है तब अंगुली, गुल्फ, पेट, हृदय, वक्षःस्थल और गला इनमें रहनेवाली पवन वेगवान् होकर स्नायुके समूहको, शिराओंको और कण्ठको भी कंपाती है और उस समय उस मनुष्यकी आँखें पथराजाती हैं, टोडी जकड़जाती हैं, पसली टूटीकी समान होती हैं, कफकी वमन करता है और वह छातीसे कमानकी समान नव जाता है ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ बाह्यायामलक्षणम् ।

महाहेतुर्वली वायुः सशिराः स्नायुकण्डराः ॥  
मन्यापृष्ठाश्रिता बाह्याः संशोण्यानामये-  
द्धिः ॥ १८१ ॥ यत्र तं वहिरायामं प्रव-  
दन्ति भिषग्वराः ॥ तमसाध्यं बुधाः प्राहु-  
र्वक्षःकटयूरुभञ्जनम् ॥ १८२ ॥

वक्षःकटयूरुभञ्जनम् तत्रापि यो वक्षः-  
कटयूरुभञ्जति संमर्दयति तमसाध्यं प्राहुः ॥

बड़े बड़े कारणोंसे प्रबल हुई वायु नाडीमें तथा पीठमें रहनेवाली पीठकी शिराओंको, स्नायुओंको तथा कण्डराओंको सुगा देती है उससे मनुष्य पीठकी और कमानकी समान नव जाता है इस रोगको उत्तम वैद्य बाह्यायाम कहते हैं, यह रोग अग्राध्य है । और इसमें भी जो छाती, कमर, तथा सोंथलोंमें मर्दनकी समान पीडा होती होय तो अत्यन्त अग्राध्य है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथ चिकित्सा ।

बाह्यायामेऽन्तरायामे विधेयाऽर्दितव-  
क्रिया ॥ १८३ ॥

जो अंतरायाम और बाह्यायाम उत्पन्न हुआ होय तो अर्दितकी समान चिकित्सा करे ॥ १८३ ॥

अथ धनुस्तम्भलक्षणम् ।

धनुस्तुल्यो नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भसंज्ञितः ॥  
विवर्णवद्धवदनः स्रस्तांगो नष्टचेतनः ॥  
प्रस्विद्येच्च धनुस्तम्भो दशरात्रं न जी-  
वति ॥ १८४ ॥

अन्तरायामेऽङ्गुल्यादिषु आक्षेपः स्तब्धा-  
क्षत्वादिकश्च भवति । धनुस्तम्भे तु धनुर्वन्नम-  
नमात्रमिति एतयोर्भेदः । विवर्णवद्धवदनः  
बन्धोऽत्र चिबुकस्य ज्ञेयः ॥

वायुके कोप होनेसे मनुष्य कमानकी समान नव जाता है उसको धनुर्वात कहते हैं, शिथिल अगोंवाला, भयानकता युक्त, पसीने सहित और जिसका मुख फैलगया हो तथा विपरीत रंगवाला होगया होय तो ऐसा धनुर्वातका रोगी दश रात्रिके भीतर मर जाता है ।

अंतरायाममें तो अंगुली आदियोंमें आक्षेप होता है तथा आँखें पथरा जाती हैं और धनुर्वातमें तो केवल कमानकी समान नवजाता है इस कारण अंतरायाम और धनुर्वातमें भेद है ॥ १८४ ॥

अथ कुब्जकलक्षणम् ।

हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशः सरूक् ॥  
कुब्जो वायुर्यदा कुर्यात्तदा तं कुब्जमा-  
दिशेत् ॥ १८५ ॥

यदेत्युक्ता यदि वेति विकल्पार्थस्तेन न पुनरुक्तिदोषः । ननु अन्तरायामः क्रोडनतो भवति । वहिरायामः पृष्ठतो भवति ताभ्यामस्य को भेदः, उच्यते-अन्तरायामवहिरायामयोः प्रकृतस्यैव अन्तःशरीरस्य वहिःशरीरस्य च नमनम् अत्र तु हृदयं पृष्ठं वा शरीराद्वहिर्भवतीति भेदः ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु छातीको अथवा पीठको अनुक्रमसे ऊँचे और वेदनायुक्त कर देवे इस रोगको कुब्जक कहतेहैं ।

शंका—अंतरायाममे छातीसे नवताहै और बाह्यायाममें पीठसे नवताहै फिर इस कुब्जकमें कौनसा भेद रहा ।

समाधान—अंतरायाममें और बाह्यायाममें शरीर जैसा तैसा ही रहकर छातीसे अथवा पीठसे नवताहै परंतु कुब्जकमे तो छाती तथा पीठ शरीरके भागसे बाहर निकलजाती है यह भेद है ॥ १८५ ॥

अथ धनुर्वातकुब्जकचिकित्सा ।

बाह्यायामेऽन्तरायामे धनुःस्तम्भे च कुब्जके ॥ योज्यं प्रसारणीतैलं तेन तेषां शमो भवेत् ॥ १८६ ॥ वातव्याधिषु सामान्या याः क्रियाः कथिताः पुरा ॥ कर्तव्या एव ताः सर्वास्तैलमेतद्विशेषतः ॥ १८७ ॥

धनुर्वात, कुब्जक, अंतरायाम और बाह्यायाम उत्पन्न हुआ होय तो प्रसारणीतैल ( जो कि हनुग्रहकी चिकित्सामें कह चुके हैं ) का उपयोग करनेसे ये रोग शांत होजाते हैं । प्रथम वातव्याधियोंने जो सामान्य चिकित्सा कही है वह सब चिकित्सा इसमें अवश्य करनी चाहिये और विशेष करके प्रसारणीतैलका उपयोग करना चाहिये ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

अथापतंत्रकलक्षणम् ।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते ॥ पीडयन् हृदयं गत्वा शिरःशंखौ च पीडयन् ॥ १८८ ॥ धनुर्वन्नमयेद्वात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा ॥ स कृच्छ्रादुच्छ्वसेदुच्चैः स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः ॥ कपोत इव कूजेच्च निःसृजः सोऽपतन्त्रकः ॥ १८९ ॥

स्थानात्पक्वाशयात् । ऊर्ध्वं शिर उद्दिश्य । आक्षिपेच्चाालयेत् । अथ निमीलकः । अथ वा निमीलिताक्षः । यत्रैतानि भवन्ति सोऽपतन्त्रकः ॥

अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुई वायु पक्वाशयमेंसे ऊपर जाकर हृदयको पीडित करैहै, मस्तक तथा कन-

पटिओको भी पीडित करैहै, गात्रको कमानकी समान नवादेतीहै और कँपातीहै और चित्तको मोहयुक्त करतीहै जिससे कि यह मनुष्य अत्यंत कठिनतासे ऊँचाश्वास लेताहै, आंखोंको खोलदेताहै अथवा मीचलेताहै, कबूतरकी समान कूँजताहै, बेसुधिं होजाताहै यह सब लक्षण जिसमें होंयें उसको अपतन्त्रक रोग कहतेहैं ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

अथापतंत्रकचिकित्सा ।

अथापतन्त्रकेणार्तमातुरं नापतर्पयेत् ॥ निरूहवस्ति वमनं सेवयेन्न कदाचन ॥ १९० ॥ श्वसनाः कफवाताभ्यां रुद्धास्तस्य विमोक्षयेत् ॥ तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥ १९१ ॥ श्वसनाः प्रश्वासोच्छ्वासवहा धमनीः ॥

अपतन्त्रसे पीडित मनुष्यके तृप्ति विरुद्ध क्रिया नहीं करे और कभी भी निरूहवस्ति तथा वमनका सेवन नहीं करावे, परंतु कफसे तथा वायुसे रुकी हुई उन श्वासको चलानेवाली नाडियोंको तीक्ष्ण प्रधमन ( तीक्ष्ण चूर्णका नस्य ) देकर खोलदेवे, क्योंकि नाडियोंके खुलजानेसे रोगीको संज्ञा प्राप्त होतीहै ॥ १९० ॥ १९१ ॥

अथ मरिचादिनस्यम् ।

मरिचं शिग्रुबीजानि विडङ्गश्च फणिज्जकम् ॥ एतानि सूक्ष्मचूर्णानि दद्याच्छीर्षविरेचने ॥ १९२ ॥

फणिज्जको मरुवकः ॥

शिरोविरेचन अर्थात् शिरको खाली करनेके लिये कालीमिर्च, सैजिनेके बीज, वायविडंग और मरुआ इनका बारीक चूर्ण करके नासदेवे ॥ १९२ ॥

अथ हरीतक्यादियोगः ।

हरीतकी वचा रास्ना सैन्धवं साम्लवेतसम् ॥ घृतमार्द्रकसंयुक्तमपतन्त्रकनाशनम् ॥ अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमीरितम् ॥ १९३ ॥

हरड, वच, रासना, सैन्धानमक, अमलवेत, ( अम-

लवेत न मिलसके तो चूका ) घी और अदरकका रस इनका प्रयोग करनेसे अपतन रोग नष्ट होजाताहै ॥ १९३ ॥

### अथापतानकलक्षणम् ।

दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञाश्च हत्वा कण्ठेन कूज-  
ति ॥ हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं  
वृते पुनः ॥ वायुना दारुणं प्रादुरेके तम-  
पतानकम् ॥ १९४ ॥ गर्भजातनिमित्तश्च  
शोणितातिस्रवाच्च यः ॥ अभिघातनिमि-  
त्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ १९५ ॥

दृष्टिं रूपग्रहणशक्तिं संस्तभ्य नाशयित्वा ॥

वायु कुपित होकर मनुष्यके देखनेकी शक्ति तथा सजा ( होश ) को नष्ट करदेवे, गलेमें कूँजे और मोहसे धिरे हुए हृदयको जब वायु त्यागदेवे तब फिर होश होवे, इस महादारुण रोगको कितनेक वैद्य अपतानक कहतेहैं ।

गर्भकी उत्पत्तिसे उत्पन्न हुआ रुधिरके बहुत निकल-  
नेमें उत्पन्न हुआ और अभिघातसे उत्पन्नहुआ अपतानक  
नहीं आरोग्य होताहै ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

### अथापतानकचिकित्सा ।

अथापतानकेनार्तमसुताक्षमवेपनम् ॥  
अखट्टापातिनं चैव त्वरया समुपाचरेत्  
॥ १९६ ॥ अपतानकिने शस्तं दशमू-  
लीशृतं जलम् ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं  
जीर्णं मांसरसौदनम् ॥ १९७ ॥ तैलेन  
मर्दनं चैव तथा तीक्ष्णं विरेचनम् ॥  
स्रोतोविशोधनं पश्चात् सर्पिःपानं हितं  
स्मृतम् ॥ १९८ ॥ हन्त्यभुक्तवता पीत-  
मम्लं दध्यपतानकम् ॥ मरिचेन समायुक्तं  
क्षेहवस्तिरथापि वा ॥ १९९ ॥

अपतानरोगमें पीडित मनुष्यके नेत्रोंमेंसे पानी बहता-  
हो, कन्ध नहीं होताहो और घाट्य न पड़गया होय तो  
इसमें पहिले ही तन्त्राय चिकित्सा करनीचाहिये ।

अपतानक रोगीको दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण  
डालकर पिलावै, काथ पचजाय तब मांसरस युक्त भात  
खिलावै, तैलसे मर्दन करे, तीक्ष्ण विरेचन ( जुलाब ) देवे  
और पश्चात् घी पिलावे कि जिससे खोत साफ होजाय ।

भोजनसे पहिले मरिचके चूर्णके साथ खंडे दहीको पिये  
तो अपतानकरोग नष्ट होजाताहै । स्नेहकी पिचकारी लगा-  
नेसे भी अपतानकरोग नष्ट होजाताहै ॥ १९६-१९९ ॥

### अथ पक्षाघातलक्षणम् ।

गृहीत्वार्द्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायूर्विशोष्य  
च ॥ पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिवन्धान्वि-  
मोक्षयन् ॥ २०० ॥ कृत्स्नोर्द्धकायस्तस्य  
स्यादकर्मण्यो विचेतनः ॥ एकांगवातं तं  
केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥ २०१ ॥

अर्द्धम् अर्द्धनारीश्वरवत्पक्षं बाहुपाश्वोरुज-  
ङ्घादिभागम् । अन्यतमं वामं दक्षिणं वा वि-  
मोक्षयन् शिथिलीकुर्वन् । अकर्मण्यः कर्मा-  
समर्थः । विचेतनः ईषत्स्पर्शादिज्ञानयुक्तः ॥

वायु शरीरके आवे भागको पकड़कर शिराओंको  
तथा स्नायुओंको सुखा डालतीहै, सन्धियोंके बन्धनोंको  
शिथिल करके दहिने अथवा बायें किसी एक ओरके  
अंगको मारदेतीहै कि जिससे मनुष्यका आधा शरीर  
कुछ काम नहीं करसक्ता और स्पर्शज्ञान आदि भी अल्प  
रहजाताहै । इस रोगको कितनेक वैद्य पक्षाघात कहतेहैं,  
कितनेक वैद्य एकांगवात कहतेहैं, और कितनेक वैद्य  
पक्षवध कहतेहैं । जिस प्रकार अर्द्धनारीश्वरका आधाशरीर  
नमीय है और आधा शरीर पुरुषमय है उसी प्रकार  
इस रोगवाले मनुष्यका आधा शरीर मारा जाता है  
और वह आधा शरीर किसी कार्य करनेके योग्य नहीं रहता  
है ॥ २०० ॥ २०१ ॥

### अथान्यदोषयुक्तवायुलक्षणम् ।

दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वायो पित्तस-  
न्विते ॥ शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव  
कफावृते ॥ २०२ ॥

दाहो बाह्यः, सन्तापः आभ्यन्तरः ।  
एतल्लक्षणमन्यत्रापि वातव्याधौ बोद्धव्यं  
निर्दिष्टत्वात् ॥

वायु जो पित्तसंयुक्त होय तो अन्तर्दाह, बाहर संताप  
तथा मूर्च्छा होती है और कफसंयुक्त होय तो शीतलता,  
सृजन तथा भारीपन होता है, यही लक्षण अन्यान्यवात-  
व्याधियोंमें भी जानने, क्यों कि यह लक्षण सामान्य रीतिसे  
वायु गन्धका ग्रहण करते हैं ॥ २०२ ॥

अथ पक्षाघातसाध्यासाध्यता ।

शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ॥  
साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतु-  
कम् ॥ २०३ ॥

शुद्धः केवलः । अन्येन पित्तेन कफेन वा ।  
क्षयहेतुकं क्षयो धातुक्षयस्तत्कुपितवातनिमि-  
त्तकम् ॥

पक्षाघात जो केवल वायुसे उत्पन्न हुआ होय तो  
अत्यन्त कष्टसाध्य है, पित्तसे और कफसे संयुक्त वायुस  
उत्पन्न हुआ होय तो साध्य है और धातुओंके क्षयसे कुपित  
हुई वायुसे उत्पन्न हुआ होय तो असाध्य है ॥ २०३ ॥

उपरमसाध्यलक्षणम् ।

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये ॥  
पक्षाघातं परिहरेद्देदनारहितो यदि ॥ २०४ ॥  
वेदनारहितो यदि इति भिन्नमसाध्यलक्षणम् ॥

गर्भवती स्त्री, प्रसूतास्त्री, बालक, वृद्ध, क्षीण और  
जिसके रुधिरका क्षय हो गया होय ऐसे मनुष्योंके उत्पन्न  
हुआ पक्षाघात आराम नहीं होता, अत एव इसकी  
चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ।

पक्षाघात जो वेदनासे रहित होय तो असाध्य है इस-  
लिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २०४ ॥

अथ पक्षाघातचिकित्सा ।

तत्र माषादिकाथः ।

माषात्मगुप्तावातारिवाट्यालकजटाशृत-  
म् ॥ हिंगुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातं विनाश-

येत् ॥ माषिके हिंगुसिन्धूत्थे जरणाद्या-  
स्तु शाणिकाः ॥ २०५ ॥

उडद, कौंछ, एरण्ड और खिरैटीकी जड़ इनका काथ  
बनाकर उसमें हींग और सैंधानिमक डालकर पीनेसे पक्षा-  
घात नष्ट होता है ( हींग और सैंधानिमक पाच पांच रत्ती  
लेना चाहिये और जीरा आदि पदार्थ चौबीस रत्ती लेना  
ऐसी मर्यादा है ) ॥ २०५ ॥

अथ ग्रंथिकादितैलम् ।

ग्रन्थिकाग्निकणाशुण्ठीरास्नासैन्धवकल्कि-  
तम् ॥ माषकाथशृतं तैलं पक्षाघातं  
व्यपोहति ॥ २०६ ॥

पीपलामूल, चीता, पीपल, सोठ, रास्ना और सैंधानिमक  
इनका कल्क डालकर उडदके काथमें पकाया हुआ तेल  
पक्षाघातको दूर करे है ॥ २०६ ॥

अथ माषादितैलम् ।

माषात्मगुप्तातिविषारुबूकरास्नाशताह्वाल-  
वणैः सुपिष्टैः ॥ चतुर्गुणे माषबला-  
कषाये तैले शृतं हन्ति हि पक्षाघा-  
तम् ॥ २०७ ॥

उडद, कौंछ, अतीस, अरण्ड, रासन, सोया और  
सैंधानिमक इनका उत्तम विधिसे कल्क बनाकर तेलसे  
चौगुने उडदके तथा खिरैटीके काथमें पकाया हुआ तेल  
पक्षाघातको नष्ट कर देता है ॥ २०७ ॥

अथ सर्वाङ्गवातलक्षणम् ।

सर्वाङ्गपवने क्रुद्धे गात्रस्फुरणभञ्जने ॥  
वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्य स-  
न्धयः ॥ २०८ ॥

सन्धयो वेदनाभिः परीता युता स्फुटन्तीव ॥

संपूर्ण अंगोंमें वायुका कोप होनेसे गात्रकी गिरा कापने  
लगती है, अंग टूटने लगते हैं, और वेदनाके मारे सन्धि  
फटीसी जाती है इसको सर्वाङ्गवात कहते हैं ॥ २०८ ॥

अथ सर्वाङ्गवातचिकित्सा ।

सर्वाङ्गगतमेकाङ्गतश्चापि समीरणम् ॥  
तैलावगाहनं हन्ति तोयवेगमिवा-  
चलः ॥ २०९ ॥

जिस प्रकार जलके वेगसे पर्वत नष्ट होजातेहैं उसीप्रकार तेलका अवगाहन सर्वांगवात तथा पक्षावातको नष्ट करेहै ॥ २०९ ॥

### अथ स्थाननामलक्ष्यलक्षण- वातव्याधिवर्णनम् ।

स्थाननामानुरूपैश्च लिंगैः शेषान्विनिर्दि-  
शेत् ॥ सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपल-  
क्षयेत् ॥ २१० ॥ प्रथमं ह्रस्वकेशत्वं  
ततो वाचालतापि च ॥ आटोपः पार्श्व-  
शूलश्च पुरीषस्यातिगाढता ॥ २११ ॥  
तथा मलाप्रवृत्तिश्च कम्पः स्तम्भश्च रू-  
क्षता ॥ काश्यं काष्ण्यश्च शैत्यश्च लोम-  
हृषा व्यथा तथा ॥ २१२ ॥ तोदो भेदः  
शिरास्फूर्तिरंगमर्दोऽङ्गशुष्कता ॥ संकोच-  
श्चांगविभ्रंशो मोहश्चञ्चलचित्तता ॥ २१३ ॥  
निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिश्च भी-  
रुता ॥ शुक्रक्षयो रजोनाशो गभनाशः  
परिश्रमः ॥ २१४ ॥

आटोपो गुडगुडाशब्दः । तोदः सूची-  
व्यधनेनेव पीडा । भेदो विदारणेनेव व्यथा  
अंगविभ्रंशः अंगस्य स्थानत्यागेन स्खलनम् ।  
निद्रानाशो निद्रालपत्वमपि । गर्भनाशः  
आमगर्भपातः । गर्भशय्यायां वाताविघ्नाना-  
द्गर्भग्रहणमिति जैजटः । परिश्रमः आयासं  
विना श्रमः ॥

शेष ( नामी ) वातरोग ( जो कि यहा नहीं कहे हैं )  
उनको उनके स्थान और नामके अनुसार लक्षणोंसे जान-  
लेने चाहिये और इन सबमें पित्तादिकका संसर्ग कल्पना  
करके जानलेना । जैसे कि केशोंकी अल्पताको 'ह्रस्वकेश-  
त्वं' कहतेहैं । बहुत खोलना वाचालता कहीजातीहै ।  
पेटमें जो गुडगुडाशब्द होताहै वह आटोप कहाजाता है ।

पसलियोंमें जो शूल होताहै वह 'पार्श्वशूल' कहाजाता  
है । विघ्नकी जो अत्यन्तकठिनता है वह 'मलगाढता' कही-  
जातीहै । दस्तका जो नहीं उतरना है वह 'मलाप्रवृत्ति'  
कहीजातीहै । अंगका जो कांपना है वह 'कम्प' कहा  
जाताहै । अंगका जो जकडजानाहै वह 'स्तम्भ' कहा-  
जाताहै । शरीरका जो रुखापन है वह 'रूक्षता' कही  
जातीहै । शरीरकी जो दुर्बलता है वह 'काश्यं' कही-  
जातीहै । शरीरका जो कालापन है वह 'काष्ण्यं' कहा-  
जाताहै । शरीरकी जो शीतलता है वह 'शैत्य' कहाजाता-  
है । रोमाचोंका जो खडा होनाहै वह 'रोमहर्षण' कहा-  
जाताहै । अंगमें जो पीडा होतीहै वह 'व्यथा' कही-  
जातीहै । अंगमें जो सुई छेदने सरीखी पीडा होतीहै  
वह 'तोद' कहाजाताहै । मानों शरीरको कोई चीरे-  
डालताहै ऐसी जो पीडा होतीहै वह 'भेद' कहाजाता-  
है । शिराओंका जो फडकना वह 'शिरास्फूर्ति' कहीजाती-  
है । अंगोंका जो टूटना है वह 'अंगमर्द' कहाजाताहै ।  
अंगोंका जो सूखनाहै वह 'अंगशुष्कता' कहीजातीहै  
अंगोंका जो सकुचना है वह 'अंगसंकोच' कहाजाताहै ।  
अंगोंका जो अपने स्थानसे स्खलन होनाहै वह 'अंगवि-  
भ्रंश' कहाजाताहै । चित्तका जो मूढ होजाना है वह  
'मोह' कहाजाताहै । चित्तका जो चञ्चलपन है वह  
'चलचित्तता' कहीजातीहै । निद्राका विलकुल नहीं  
आना अथवा कम आना वह 'निद्रानाश' कहाजाताहै ।  
पसीनेका जो न आनाहै वह 'स्वेदनाश' कहाजाताहै ।  
बलका जो नाश होनाहै वह 'बलहानि' कहीजातीहै ।  
डरपोकपन जो है वह 'भीरुता' कहीजातीहै । वीर्यका  
नष्ट होना जो है वह 'शुक्रक्षय' कहाजाताहै । स्त्रीके  
रजका नाश होताहै तो 'रजोनाश' कहाजाताहै । अपक्व  
गर्भका गिरजाना अथवा जैजटके मतानुसार गर्भाशयमें  
वायुके स्थित होनेसे गर्भका नहीं रहना जो है वह 'गर्भ-  
नाश' कहाजाताहै । विना परिश्रम कियेहुए थकजाना  
जो है वह 'परिश्रम' कहाजाताहै । वह्निवैप्रम्य, अर्थात्  
अग्निकी विपमताके लक्षण जटराग्निके विकारोंमें अग्निमा-  
द्यमें कह आये हैं सो देखलेना ॥ २१०-२१४ ॥

### अथोक्तवातव्याधिचिकित्सा ।

सामान्यवातरोगाणां या चिकित्सा प्रच-  
क्ष्यते ॥ एषां सैव विधातव्या तयैते  
यान्ति संक्षयम् ॥ २१५ ॥



वातव्याधियोमें जो सामान्य औषधि कही है वही औषधि हृत्त्वकेशत्व आदि रोगोंमें प्रयोग करनी चाहिये, इस प्रकार करनेसे उन रोगोंका नाश होताहै ॥२१५॥

अथान्यप्रकारेण वातव्याधि-

निरूपणम् ।

एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितो-  
ऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषेण भवेद्दोगवि-  
शेषकृत् ॥ २१६ ॥

एवंविधानि रूपाणि शिरोग्रहादीनि  
अशीतिः । हेत्वित्यादिहेतुविशेषः पित्त-  
श्लेष्माद्यावृतत्वादिः । यथा श्लेष्मावृतो  
वायुः मन्यास्तम्भं करोति । स्थानविशेषः  
कोष्ठादिः । यथा “तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे  
निग्रहो मूत्रवर्चसोः” इत्यादि ॥

कोपको प्राप्त हुई इस प्रकार यह वायु शिरोग्रह आदि  
अस्सी रूपोंको उत्पन्न करतीहै । हेतुओंके भेदसे तथा  
स्थानोंके भेदसे भी वातव्याधियोंका विशेष विवेचन  
समझना योग्य है ॥ २१६ ॥

अथोदानादिवायोः पित्तकफसंबन्धेन

लक्षणम् ।

उदाने पित्तसंयुक्ते दाहो मूर्च्छा भ्रमः  
क्लमः ॥ अस्वेदहर्षो मन्दामिः शीतता  
च कफावृते ॥ २१७ ॥ प्राणे पित्ता-  
वृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ॥ दौर्बल्यं  
सदनं तन्द्रा वैरस्यश्च कफावृते ॥ २१८ ॥  
प्राणो हृदयाश्रयो वायुः ॥

स्वेदो दाहस्तृषा मूर्च्छा समाने पित्त-  
संयुते ॥ कफेन सक्ते विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च  
जायते ॥ २१९ ॥

कफेन संयुक्ते समाने विण्मूत्रे सक्ते अव-  
रुद्धे भवतः । गात्रहर्षो रोमाश्च ॥  
अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्यं रक्तमू-  
त्रता ॥ अधःकाये गुरुत्वश्च शीतता च  
कफावृते ॥ २२० ॥

अत्र गुदाश्रयः अपानः ॥

व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ॥  
स्तम्भोऽथ दण्डकश्चापि शूलशोथौ कफा-  
वृते ॥ २२१ ॥

दण्डकः आक्षेपकभेदः ॥

कठमे रहनेवाली उदान वायु जो पित्तसे संयुक्त  
होय तो दाह, मूर्च्छा, भ्रम तथा ग्लानि होतीहै ।  
जो कफसे संयुक्त होतीहै तो पसीनेका अभाव, रोमां-  
चोंका हो आना, आग्निकी मन्दता और शरीरकी  
शीतलता होतीहै । हृदयमें रहनेवाली जो प्राणवायु  
पित्तसे संयुक्त होय तो वमन तथा दाह होताहै । और  
कफसे संयुक्त होय तो दुर्बलता, ग्लानि, तन्द्रा तथा विरसता  
होतीहै । जठराग्निके नीचे रहनेवाली जो समान वायु  
पित्तसे संयुक्त होय तो पसीना दाह तृषा तथा मूर्च्छा होतीहै  
और कफसे संयुक्त होय तो विष्टा तथा मूत्रका अवरोध,  
और रोमांचोंका खडा होना ये लक्षण होतेहैं ॥

गुदामें रहनेवाली अपान वायु पित्तसे संयुक्त होय तो  
दाह, उष्णता और लालमूत्र होजाताहै । और जो कफसे  
संयुक्त होय तो शरीरके नीचेके भागमें भारीपन तथा  
शीतपन होताहै ॥

सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाली व्यानवायु जो पित्तसे संयुक्त  
होय तो दाह, अगोंका फेंकना, तथा ग्लानि होतीहै और  
जो कफसे संयुक्त होय तो जडता, दंडकाक्षेप, शूल तथा  
सृजन ये लक्षण होतेहैं ॥ २१७-२२१ ॥

अथ पित्तकफावृतवायुचिकित्सा ।

वाते सपित्ते कुर्वीत वातपित्तहरीं क्रि-  
याम् ॥ सकफे तत्र कुर्वीत वातश्लेष्महरीं  
क्रियाम् ॥ २२२ ॥

वायु पित्तसे संयुक्त होय तो वात तथा पित्त दोनों-  
को हरनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये और जो कफसे  
संयुक्त होय तो वायु तथा कफ इन दोनोंको हरनेवाली  
चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२२ ॥

अथ त्वगादिस्थानस्थितरसादिधातु-  
गतवायुलक्षणम् ।

त्वग्दृक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा

च तुद्यते ॥ आतन्यते सरागा च सर्व-  
रुक्त्वगतेऽनिले ॥ २२३ ॥

सर्वरुक्सप्तत्वग्व्यथा त्वगगते त्वक्छन्देन  
अत्र रस उच्यते । त्वगाधार्यत्वात्तेन रस-  
गत इत्यर्थः ॥

रुजस्तीव्राः ससन्तापो वैवर्ण्यं कृशता-  
ऽरुचिः ॥ गात्रे चारुंषि भुक्तस्य स्तम्भ-  
श्चासृगतेऽनिले ॥ २२४ ॥

अरुंषि व्रणानि । भुक्तस्य भुक्तेत्यत्र  
अध्यवसितादित्वात् कर्तरि क्तः तेन भुक्त-  
वतः स्तम्भः सन्तर्पणेन रक्तवृद्धेः ॥

गुर्वङ्गं तुद्यते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा ॥  
सरुक्स्तिमितमत्यर्थं वाते मांससमा-  
श्रिते ॥ २२५ ॥

दण्डमुष्टिताडितमिव तुद्यते स्तिमितं  
निश्चलमित्यर्थः । मांसमेदसोर्गतवातयोरे-  
कलिङ्गत्वम् अदूरान्तरेण प्रत्यासत्तेः आश्र-  
यप्रभावात् ॥

तथा मेदःश्रितः कुर्याद्ग्रन्थीन्मन्दरुजो  
व्रणान् ॥ २२६ ॥

तथा मेदःश्रितः मांसगतवत् । दूरेण  
प्रत्यासत्तेरस्थिरूपाया भेदाच्च कुर्यात् ग्रन्थी-  
नित्यादिर्विशेषः ॥

भेदोऽस्थिपर्वणां सन्निगूलं मांसवलक्षयः ॥  
अस्वप्नं सतता रुक् च वाते दुष्टेऽस्थिसं-  
स्थितं ॥ वाते मज्जगते पीडा न कदा-  
चित्प्रशाम्यति ॥ २२७ ॥

मज्जगते अस्थिगतवत् । यथा भेदोगतो  
मांसगतवत्स्यात् पीडात्र कदापि न शाम्यत्य-  
यं विशेषः ॥

क्षिप्रं मुञ्चति वध्नाति शुक्रं गर्भमथापि  
वा ॥ विकृति जनयेच्चापि शुक्रस्थः  
कुपितोऽनिलः ॥ २२८ ॥

शुक्रं वध्नाति स्खलयत्येव न । गर्भं क्षिप्रं  
मुञ्चति । आममेव पातयति । वध्नाति मूढं

करोति । वातदुष्टशुक्रारब्धत्वात् । विकृति  
शुक्रस्य वर्णान्तरत्वादिरूपां गर्भस्य विकृतां-  
गत्वादिरूपां जनयति ॥

जत्र वायु रसमें स्थित होजातीहै तत्र शरीरकी चमड़ी  
रुखी, फटीहुई, जड, पतली, काली, मुई चुभोने  
सरीखी पीडायुक्त, खिन्नीसी और ललाई लिये होतीहै  
और सातों त्वचार्योंमें व्यथा होती है । रुधिरगत वायु  
होय तो तीव्रपीडा होतीहै, सताप होताहै, शरीरका रंग  
धिगड जाताहै, दुर्बलता होजातीहै, अरुचि होजातीहै,  
गात्रमें व्रण होतेहैं और भोजन करनेके पश्चात् वृत्तिसे  
रुधिरकी वृद्धि होकर स्तब्धता होतीहै ॥

वायु मांसगत होय तो अंग भारी होजाताहै, लकड़ी  
अथवा मुट्टीके मारनेकी समान पीडा होतीहै, स्तब्धता  
होतीहै, व्यथायुक्त होताहै और अत्यन्त निश्चल होजाताहै ।

वायु भेदगत होय तो मांसगत वायुकी समान सम्पूर्ण  
लक्षण होतेहैं, तथा अल्पपीडावाली ग्रथि और फोड़े  
होतेहैं, इतनी भेदगत वायुमें विशेषता है कि, दुष्ट वायु  
अस्थियोंमें स्थित होय तो अस्थियोंकी संधियोंमें तोड़ने  
सरीखी पीडा होतीहै । संधियोंमें झूल चलताहै, मांस  
तथा बलका क्षय होताहै, निद्रा नहीं आती और प्रबल  
पीडा होतीहै । मजागत वायुमें अस्थिगत वायुके समान  
लक्षण होतेहैं, परन्तु इतना विशेष होताहै कि मजागत  
वायुसे उत्पन्न हुई पीडा कभीभी शांत नहीं होतीहै ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु वीर्यमें प्राप्त होय तो वीर्य  
स्खलित नहीं होते देती, अपक्व गर्भकोही गिरादेतीहै तथा  
मूढ करदेतीहै, वीर्यके रंगको बदलदेतीहै, अथवा वीर्यको  
विगाड देतीहै और गर्भमें अंगविकृति आदि करतीहै,  
वातदूषितवीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण गर्भ कच्चाही  
गिर जानाहै अथवा मूढ होजाय है यह सम्भव  
है ॥ २२३-२२८ ॥

अथ रसादिधातुगतवायु-  
चिकित्सा ।

वायौ त्वगाश्रिते स्नेहाभ्यंगं स्वेदश्च कार-  
येत् ॥ रक्तस्थे शीतलाल्लेपान्विरक्तं रक्त-  
मोक्षणम् ॥ २२९ ॥ मांसमेदोगते वाते  
सविरेकं निरूहणम् ॥ अस्थिमज्जगते  
स्नेहं वहिरन्तश्च योजयेत् ॥ २३० ॥

वायु रसमे स्थित होय तो स्नेहका अभ्यंग तथा स्वेदन किया करे । वायु रुधिरमे प्राप्त होय तो शीतल लेप करे, विरेचन देवे तथा फस्त आदि खुलवाकर रुधिर निकलवावे ।

वायु मांस अथवा मेदमें स्थित होय तो विरेचन देवे और निरुहवस्ति ( काथकी पिचकारी ) करे ।

वायु अस्थियोंमें अथवा मज्जामें स्थित होय तो बाहर तथा भीतर स्नेहकी योजना करे ॥ २२९ ॥ २३० ॥

केतकिनागबलातिबलानां यद्बहुलेन रसेन विपक्वम् ॥ तैलमनल्पतुषोदकसिद्धं मारु-  
तमस्थिगतं विनिहन्ति ॥ २३१ ॥ हर्षोऽन्न-  
पानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ॥ २३२ ॥

केवडा और गगेरन ( गुलसकरी ) तथा कंघी इनके बहुतसे स्वरससे और बहुतसे तुषोदकसे पकाये हुए तेलको केतक्यादितैल कहतेहैं । इस तेलका उपयोग करनेसे अस्थिगत वायु नष्ट होजातीहै ॥ २३१ ॥ वायु वीर्यमें प्राप्त होय तो स्त्रीआदिसे हर्ष उपजावे और वीर्यको बढानेवाले अन्नपान देवे क्योंकि इस प्रकार करनेसे बल तथा वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

अथ स्थानविशेषेण वातव्याधिवि-  
शेषस्तत्र कोष्ठगतवायु-  
लक्षणम् ।

वाते कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः ॥  
ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलश्च जायते २३३

जब दुष्ट वायु कोठेमे स्थित होतीहै तो मूत्र तथा विष्टाका अवरोध होताहै और गुल्म ( वायगोला ), हृदयरोग, ब्रध्न, बवासीर और पसलियोंमें शूल ये सब लक्षण होतेहैं ॥ २३३ ॥

अथ कोष्ठलक्षणम् ।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ॥ हृदुन्दुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्य-  
भिधीयते ॥ २३४ ॥

उन्दुकः पीठ इति लोकं । एतेन कोष्ठ-  
शब्देन सर्व एवाशयाः कथ्यन्ते । तथापि

विशेषार्थमामाशयादिगतवातलक्षणान्यपि  
पृथग्वक्ष्यन्ते ॥

कच्चे भोजन रहनेका स्थान, अग्निके रहनेका स्थान, पक्व भोजनके रहनेका स्थान, मूत्रका स्थान, रुधिरका स्थान, हृदय, पीठ और फेफडा इन सबको मिलकर कोठा कहाजाताहै । यद्यपि 'कोठा' यह शब्द सब आशयोंको कहाजाताहै तोभी विशेष जाननेके लिये आमाशयादिमे रहनेवाली वायुके लक्षण पृथक् ही कहे हैं ॥ २३४ ॥

अथ कोष्ठवात चिकित्सा ।

पाचनीयै रसैर्युक्तैरन्यैर्वा पाचयेन्मलान् ॥  
विशेषतः पिबेत्क्षीरं नरः कोष्ठगते-  
ऽनिले ॥ २३५ ॥

दुष्ट वायु कोठेमे स्थित होय तो मनुष्य पाचन करने-  
वाले रसोंकी योजना करे, अथवा अन्यान्य उपायोंसे मलको पकावे और विशेष करके दूध पिये ॥ २३५ ॥

अथामाशयगतवायुलक्षणम् ।

हृत्पार्श्वोदरनाभीरुक्तृष्णोद्गारविसूचिकाः ॥  
कासः कण्ठस्य शोषश्च श्वासाश्चामाश्रये-  
ऽनिले ॥ २३६ ॥

चरक कहताहै कि " जब वायु आमाशयमें रहती है तब हृदय, पसली, पेट और नाभि इनमें पीडा होती है, तृषा लगती है, डकार आती हैं, विसूचिका ( हैजा ) खाँसी कठमे शोष और श्वास होताहै " ॥ २३६ ॥

अथामाशयलक्षणम् ।

नाभेस्तनान्तरं जन्तोरादुरामाशयं बुधाः २३७

चरक कहताहै " कि प्राणियोंके शरीरमें नाभि और स्तनके बीचका जो भाग है उसको आमाशय कहतेहैं " ॥ २३७ ॥

अथामाशयगतवायुचिकित्सा ।

आमाशयस्थे त्वनिले प्रशस्तं प्राग्लघनं  
दीपनपाचनञ्च ॥ प्रच्छर्दनं तीक्ष्णविरेचनं  
वा मृदा यवाः शालियुताः पुराणाः ॥

॥ २३८ ॥ भूतीकपथ्याशट्पुष्कराणि  
विल्वामृतादारुकनागराणि ॥ उग्राविषा-  
मागधिकाविडानि काथास्त्रयः सामसमी-  
रणघ्नाः ॥ २३९ ॥

भूतीकः रोहिषः सुगन्धस्तृणविशेषः तद-  
लाभे उशीरं ग्राह्यम् । पुष्करं पुष्करमूलम् ।  
दारुकं देवदारु । उग्रा वचा । विषा अति-  
विषा ॥

वायु आमाशयमें स्थित होय तो प्रथम लंघन कराने  
चाहिये और दीपन तथा पाचन औषधि देनी उत्तम है  
अथवा वमन और तीक्ष्णविरेचन देना उत्तम है । इस  
रोगवाले मनुष्यको पुरानी मूग, जौ और चावल पथ्य  
( हित ) हैं ।

रोहिष, सुगन्धितृण, हरड, कचूर और पोहकरमूल,  
इनका काय बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट होजा-  
तीहै, जो रोहिष तृण न मिलसके तो उसके अभावमें खस  
टालनी चाहिये ।

वेलगिरी, गिलेय, देवदारु और सेंठ इनका काय  
बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट होजातीहै ।

वच, अतीस, पीपल और त्रिफलासंचरनिमक इनका  
काय बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट होजाती  
है ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

अथ षड्धरणयोगः ।

चित्रकेन्द्रयवौ पाठा कटुकातिविषाऽभ-  
या ॥ आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं  
सुखाम्बुना ॥ योगेऽस्मिन्भिषजा ग्राह्याः  
पण्णां षड्धरणा पृथक् ॥ दिनेषु षट्सु  
दातव्यास्तेन षड्धरणः स्मृतः ॥ २४० ॥

अत्रः पण्णां समुदितानां षड्धरणमि-  
तानां चूर्णीकृतानाम् एकस्मिन्नहनि एक-  
दंशो ज्ञेयः ॥

चीता, मन्त्रजौ, पाट, कुटकी, अतीस और हरड ये  
प्रत्येक औषधि चौबीस चौबीस रत्तीभर लेकर उनका  
चूर्ण उनके बपड़ेमें छानलेवे । फिर उसमेंसे नित्य २४  
रत्ती चूर्ण लेकर कुट्टेक गरम जलके साथ पिये तो आमा-  
शयगत वायु नष्ट होजातीहै । उस चूर्णको इसी प्रकार

छै दिनतक पिये तो छै दिनमें आराम होजाताहै इस लिये  
यह षड्धरण योग कहाजाताहै ॥ २४० ॥

अथान्यषड्धरणयोगः ।

आमाशयगते वाते छर्दिश्चापि यथाक्र-  
मम् ॥ देयः षड्धरणो योगः सप्तरात्रं  
सुखाम्बुना ॥ २४१ ॥

अयमर्थः । प्रथमदिवसे वमनं कारयि-  
तव्यं ततो द्वितीयं दिनमारभ्य षड्दिनप-  
र्यंतं पाठक्रमेणैकैकस्य चूर्णं टंकमितं देय-  
मित्यर्थः ॥

पहिले दिन वमन कराकर दूसरेदिन चीतेका चौबीस  
रत्ती चूर्ण गरमजलसे पिये, तीसरेदिन इन्द्रजौका चौबीस  
रत्तीचूर्ण गरमजलसे पिये, चौथेदिन पाटका चौबीस  
रत्ती चूर्ण गरमजलके साथ पिये, पांचवें दिन कुटकीका  
चूर्ण चौबीसरत्ती गरमजलके साथ पिये, छठेदिन  
अतीसका चूर्ण चौबीसरत्ती गरमजलके साथ पिये और  
सातवेंदिन हरडका चूर्ण, चौबीसरत्ती गरमजलके साथ  
पिये । इसप्रकार करनेसे भी आमाशयगतवायु नष्ट  
होजाती है ॥ २४१ ॥

अथ पकाशयगतवायुलक्षणम् ।

पकाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति  
च ॥ कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेद-  
नाम् ॥ २४२ ॥

आटोपो वातस्य क्षुब्धत्वम् । न तु गुडगु-  
डाशब्दस्तस्य अन्त्रकूजनोक्तत्वात् ॥

जब वायु पकाशयमें स्थित होतीहै तो पेटमें आतें गुड-  
गुड कराकरतीहै, शूलकी पीडा होतीहै, वायु कुपित होती  
है, मूत्र और विषा थोड़ी थोड़ी उतरतीहै, अफारा  
आजाताहै और त्रिकस्थानमें पीडा होतीहै ॥ २४२ ॥

अथ पकाशयगतवायुचिकित्सा ।

वह्नः संवर्द्धनं कार्यं कर्मादावर्तकं तथा ॥

देयः स्नेहविरेश्च पकाशयगतेऽनिले २४३ ॥

वायु पकाशयमें स्थित होय तो जठराधिकी बढ़ानेका  
उपाय करना चाहिये, उदावर्तकी जो चिकित्सा कहीहै  
वह सब करनी चाहिये और स्नेहयुक्त विरेचन कराना  
अत्यन्त सुखकारी है ॥ २४३ ॥

अथोदरगतवायुचिकित्सा ।

वाते जठरगे दद्यात्क्षारचूर्णादिदीपनम् ॥

वायु पेटमें स्थित होय तो क्षार तथा चूर्ण आदि दीपन औषधि देनी चाहिये ॥

अथ कुक्षिगतवायुचिकित्सा ।

शुण्ठीकुटजबीजाभिचूर्ण कोण्णाम्बु  
कुक्षिगे ॥ २४४ ॥

वायु कोंखमें स्थित होय तो सोठ, इन्द्रजौ और चीता इनका चूर्ण करके कुछेक गरमजलके साथ पिये ॥ २४४ ॥

अथ गुदगतवायुलक्षणम् ।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मश-  
र्कराः ॥ जङ्घोरुत्रिकपाश्वासपृष्ठरोगो  
गुदेऽनिले ॥ २४५ ॥

रोगोऽत्र रुजा पीडेति यावत् ॥

जब वायु गुदामे स्थित होती है तो विघ्न, मूत्र और अधोवायुका अवरोध होता है, शूल चलता है, पेट अफरता है, पथरी और शर्करा रोग होता है, तथा पिडली, साँथल, कमर, पसली, कंधे और पीठ इनमें पीडा होती है ॥ २४५ ॥

अथ गुदगतवायुचिकित्सा ।

वाते गुदगते दुष्टे कर्मोदावर्तकं हि-  
तम् ॥ २४६ ॥

दुष्ट वायु जो गुदामें स्थित होय तो उदावर्तमे जो चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिये ॥ २४६ ॥

अथ हृदयगतवायुचिकित्सा ।

हृदयानिलनाशाय गुडूर्ची मरिचान्वि-  
ताम् ॥ पिबेत्प्रातः प्रयत्नेन सुखं तप्ताम्भसा  
सह ॥ २४७ ॥ पिबेदुण्णाम्भसा पिष्टमा-  
श्वगन्धं विभीतकम् ॥ गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृद-  
यानिलनाशनम् ॥ २४८ ॥ देवदारुसमा-  
युक्तं नागरं परिपेषितम् ॥ हृद्रातवेदना-  
युक्तः पीत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ २४९ ॥

प्रातःकाल यत्नपूर्वक कुछेक गरमजलके साथ मिरच तथा गिलेयको पिये तौ हृदयमें रहनेवाली दुष्ट वायु नष्ट होती है ॥

असंगंध और बहेडा इनको एकत्र पीसकर गुडमें मिलाकर गरमजलके साथ पिये तो हृदयमें रहनेवाली दुष्ट वायु नष्ट होती है ।

देवदारु और सोठ इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीनेसे हृदयगत वायुसे पीडित मनुष्य सुखी होता है ॥ २४७-२४९ ॥

अथ कर्णेन्द्रियादिगतवायु-  
लक्षणम् ।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्कुट्टः समा-  
रणः ॥ २५० ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु जब इन्द्रियोमें रहती है तब इन्द्रियोकी शक्तिका नाश करती है ॥ २५० ॥

अथ कर्णेन्द्रियादिस्थितवायु-  
चिकित्सा ।

श्रोत्रादिष्वनिले दुष्टे कार्यो वातहरः क्रमः ॥  
स्नेहाभ्यंगावगाहाश्च मर्दनालेपनानि च २५१

दुष्ट हुई वायु जब कान आदि इन्द्रियोमें स्थित होय तो वायुकी चिकित्सा करे, स्नेहपदार्थोंकी मालिस करे, स्नेहकी कोठीमें अवगाहन करावै, स्नेहको शरीरपर लगावे और स्नेहका लेप करे ॥ २५१ ॥

अथ शिरागतवायुलक्षणम् ।

कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम् ॥  
स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्ला कुञ्जत्व-  
मेव च ॥ २५२ ॥

कुञ्चः संकोचः बाह्यायामं पृष्ठेन नतम् ।  
अभ्यन्तरायामं क्रोडेन नतम् । शूलं शिराया-  
मेव पूरणं स्थूलत्वम् ॥

शिराओंमें रहनेवाली वायु शिराओंमें शूलकी पीडा, शिराओंका संकोच, शिराओंकी स्थूलता, अतरायामको, बाह्यायामको, खल्लोको और कुञ्जताको करती है ॥ २५२ ॥

अथ शिरागतवायुचिकित्सा ।

स्नेहाभ्यंगोपनाहश्च मर्दनालेपनानि च ॥



वाते शिरागते कुर्यात्तथा चासृग्विमो-  
क्षणम् ॥ २५३ ॥

वायु शिराओंमें स्थित होय तो स्नेहका अभ्यग करे,  
स्नेहवदित वफारा, स्नेहकी मालिश करे, स्नेहका लेपन  
और रुधिर निकलवावे ॥ २५३ ॥

अथ स्नायुगतवायुलक्षणम् ।

शूलमाक्षेपकः कम्पः स्तम्भः स्नाय्वनि-  
लाद्रवेत् ॥ २५४ ॥ स्वेदोपनाहाम्निर्कर्म-  
बन्धनोन्मर्दनानि च ॥ क्रुद्धे स्नायुगते वाते  
कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ २५५ ॥

स्नायुगतवातसे शूल आक्षेपक और स्तम्भ होताहै कोप-  
को प्राप्त हुई वायु जब स्नायुमें प्राप्त होय तो पसीने निकल-  
वावे, दाग देवे, दृढ ( सख्त ) धधन बाँधे और स्नेह चु-  
पड़े, यह उपाय बुद्धिमानोंको करना चाहिये २५४ ॥ २५५ ॥

अथ सन्धिगतवायुलक्षणम् ।

हन्ति सन्धिगतः सन्धीञ्छूलशोथौ करो-  
ति च ॥ २५६ ॥

हन्ति विश्लेषयति ॥

मधि ( जोड़ ) में रहनेवाली वायु संधियोंको छोड़ देतीहै  
और शूल तथा सूजनको उत्पन्न करतीहै ॥ २५६ ॥

अथ संधिगतवायुचिकित्सा ।

कुर्यात्सन्धिगते वाते दाहस्नेहोपनाहनम् ॥  
इन्द्रवारुणिकामूलं मागधीगुडसंयुतम् ॥  
भक्षयेत्कर्षमाणं तत्सन्धिवातं व्यपो-  
हति ॥ २५७ ॥

जब वायु संधियोंमें प्राप्त होय तो दाग देना और  
पसीना निकलवाना चाहिये, इन्द्रायनकी जड़ और पीपल  
इनको गुडमें मिलाकर एक तोले प्रमाण भक्षण करे तो  
संधियोंके रहनेवाली वायु नष्ट होतीहै ॥ २५७ ॥

अथ वातरोगकष्टसाध्यत्वम् ।

हनुस्तम्भादिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ॥  
कालेन महता यत्नास्मिध्यन्ति ह्यथ वा  
न वा ॥ २५८ ॥

शतेषु एकः कश्चिन्मुच्यते इत्यर्थः । परं  
कः सिध्यति ? यस्तरुणो भवति तथा बल-  
वानुपद्रवरहितश्च ॥

हनुग्रह, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात और अपतानक ये  
व्याधि यत्न करनेसे बहुतदिनोंमें आराम होजातीहैं अथवा  
नहीं भी आराम होतीहैं, इन रोगीमनुष्योंमें सैकड़ोंमें  
कोई एक दो मनुष्य जो युवा, बलवान् और उपद्रव-  
रहित होय तो उसके आराम होजाताहै नहीं तो नहीं आराम  
होता सब यमलोकको चलेजातेहैं ॥ २५८ ॥

अथ वातव्याध्युपद्रवाः ।

विसर्पदाहरुग्भंगमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ॥  
क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधा-  
दयः ॥ २५९ ॥

वाता वातविकाराः कार्यकारणयोरभेदो-  
पचारात् । वातादिति पाठे वातात्पक्षवधादय  
इति योज्यम् ॥

वातके प्रकोपसे होनेवाली व्याधियोंसे जिनका मांस तथा  
बल क्षीण होजाताहै वह मनुष्य विसर्प, दाह, व्यथा, भंग,  
मूर्च्छा, अरुचि और मंदाग्निकी पीडासे मरजातेहैं ॥ २५९ ॥

अथ वातव्याध्यसाध्यलक्षणम् ।

शूनं सुप्तत्वचं म्लानं कम्पाध्माननिपीडि-  
तम् ॥ रुजार्तिमन्तश्च नरं वातव्याधिर्वि-  
नाशयेत् ॥ २६० ॥

जिसका शरीर सुन्न होगयाहै, त्वचा जड़ होगई हो,  
ग्लानियुक्त, कप और अकारसे पीडित और पीडासे व्याकुल  
ऐसे मनुष्योंको वातव्याधि अंतमें मारदेतीहै ॥ २६० ॥

अथ प्रकृतिस्थितवातपञ्चककार्यम् ।

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ  
स्थितः ॥ वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्धी-  
तरोगः समाः शतम् ॥ २६१ ॥

जिस मनुष्यके वायु अप्रतिहतगतिवाली, अपने स्थानमें  
रहनेवाली और सम प्रकृतिवाली होय वह मनुष्य रोगरहित  
होकर सौ वर्षसे भी अधिक जीताहै ॥ २६१ ॥

### अथ चक्रदत्तप्रोक्तमहामाषादि- तैलम् ।

माषस्यार्द्धाढिकं देयं तुलार्द्धं दशमूलतः ॥  
पलानि च्छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसः  
पचेत् ॥ २६२ ॥ चतुर्भागावशेषं तं  
कषायमवतारयेत् ॥ प्रस्थे द्वे तिलतैलस्य  
पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २६३ ॥ जीवनी-  
यानि मज्जिष्ठा चव्यं चित्रककटफलम् ॥  
सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्त्रामलकगोक्षु-  
रम् ॥ २६४ ॥ आत्मगुप्ता तथैरण्डः  
शताह्वा लवणत्रयम् ॥ देवदार्वमृताकु-  
ष्ठमश्वगन्धा वचा शटी ॥ २६५ ॥ एतै-  
रक्षमितैः कल्कैः पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥  
पक्षाघातादिते पुंसि हनुस्तम्भादिते  
तथा ॥ २६६ ॥ कर्णशूले शिरःशूले  
तिमिरे च त्रिदोषजे ॥ पाणिपादशिरो-  
ग्रीवाश्रवणे मन्द एव च ॥ २६७ ॥  
कलायखञ्जे पङ्गौ च गृध्रस्यामपवाहुके ॥  
पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णादिपूरणे  
॥ २६८ ॥ तैलमेतत्प्रशंसन्ति सर्ववात-  
विकारनुत् ॥ महामाषादिनामेदं भाषितं  
मुनिभिः पुरा ॥ २६९ ॥

उडद १२८ तोले, दशमूल २०० तोले और वक-  
रेका मास १२० तोले, इन सबको एक हजार चौबीस  
१०२४ तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई  
भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उतारकर उसमें  
१२८ तोले तिलका तेल और तेलसे चौगुना ५०४ तोले  
दूध डाले और जीवनीय गण, मजीठ, चव्य, चीता,  
कायफल, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, रायसन,  
आमले, गोखरू, कौछके बीज, अड, सोया, तीनों प्रका-  
रके निमक, देवदारू, गिलोय, कूठ, असगध, वच और  
कचूर इन प्रत्येक औषधियोंका एक एक तोले कल्क  
डालकर उसको मंद मंद अग्निसे पकावे तो यह महामा-  
षादि तेल सिद्ध होताहै । यह तेल पक्षाघात, हनुग्रह,  
कानकी पीडा, मस्तककी पीडा, त्रिदोषजन्य तिमिर,

हाथकी जडता, पाँवकी जडता, शिर, गरदन और  
कानोंकी मदता, कलायखंज पंगुता, गृध्रसी और अप-  
वाहुक रोग इन सब रोगोमे यह तेल हितकारी है । पान,  
नश्य, पिचकारी और कान आदिके भरनेमें इस तेलका  
उपयोग करना वायुसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोको नष्ट करेहै ।  
यह महामाषादि तेल पूर्वकालमे मुनियोने कहा है ॥  
॥ २६२-२६९ ॥

### अथ द्वितीयमहामाषादितैलम् ।

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरण्टकः ॥  
गोकण्टष्टुण्डुकश्चैषां प्रत्येकं पलसप्तकम् ॥  
चतुर्गुणाम्बुना पक्ता पादशेषं शृतं नयेत्  
॥ २७० ॥ कार्पासकास्थि बदरं शणबीजं  
कुलत्थकम् ॥ पृथक्चतुर्दशपलं चतुर्गुणजले  
पचेत् ॥ २७१ ॥ कषायं तत्र गृहीयाच्च-  
तुर्थांशावशेषितम् ॥ प्रस्थश्च छागमांसस्य  
चतुःषष्टिपले जले ॥ २७२ ॥ प्रक्षिप्य  
पाचयेद्दीमान्पादशेषं रसं नयेत् ॥ तैल-  
प्रस्थे ततः काथान्सर्वास्तान्क्रमशः पचेत्  
॥ २७३ ॥ कल्कद्रव्यैः पचेदेभिरमृताकु-  
ष्ठसैन्धवैः ॥ रास्त्रापुनर्नवैरण्डैः पिप्पल्या  
शतपुष्पया ॥ २७४ ॥ बलाप्रसारिणी-  
भ्याश्च मांस्या कटुकया तथा ॥ पृथक्क-  
र्षमितैरेतैः साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ २७५ ॥  
हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं वातव्याधीनशेषतः ॥  
आक्षेपकं पक्षाघातमूरुस्तम्भापवाहुकौ ॥  
हस्तकम्पं शिरःकम्पं विश्वाचीमर्दितं  
तथा ॥ २७६ ॥

उडद, जौ, अलसी, कटेरी, कौछ, कटसरैया, गोखरू  
और अरल, यह प्रत्येक औषधि सातसात पल लेकर  
चौगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल  
बाकी रहजाय तब उस काथको उतारलेवे, फिर उसमें  
कपासके बीज, ( त्रिनोले ) बेर, सनके बीज और कुलथी  
ये प्रत्येक औषधि चौदह १४ चौदह १४ पल लेकर  
चौगुने जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल बाकी रहजाय

तत्र उसको उतार लेवे, फिर चौंसठ तोले भर बकरेका मास लेकर चौंसठ पल जलमें पकावे जव चौथाई भाग जल रहजाय तब उतारलेवे, फिर ६४ तोले तेलमें इन काथोंको अनुक्रमसे पकावे, फिर गिलोय, कूठ, सैधानिमक, रायसन, पुनर्नवा, एरड, पीपल, सोया ( सौंफ ), खिरैटी, प्रसारणी, बालछड और कुटकी प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर अलग अलग कल्क बनाकर तेलमें डालकर मंद मंद अग्निसे पकावे तो मापादि तैल सिद्ध होजाताहै । यह तेल आक्षेपक, पक्षाघात, ऊरुस्तम्भ, अपवाहुक, हस्तकप, शिरकप, विश्वाची, अर्दित ( लकवा ) और सम्पूर्ण वातव्याधियोंको तत्काल नष्ट कर देता है ॥ २७०-२७६ ॥

### अथ मध्यमनारायणतैलम् ।

अश्वगन्धा बला विल्वं पाटला बृहतीद्वयम् ॥ श्वदंष्ट्रातिबला निम्बः श्योनाकश्च पुनर्नवा ॥ २७७ ॥ प्रसारिणी चामिमन्थः कुर्याद्विशपलं पृथक् ॥ चतुर्दोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ २७८ ॥ तैलाढकेन संयोज्य शतावया रसाढकम् ॥ प्रक्षिपेत्तत्र गोक्षीरं ततस्तैलाच्चतुर्गुणम् ॥ २७९ ॥ पृथक्पलमितैः कल्कैर्द्रव्यैरेभिः पचेद्भिषक् ॥ वचाचन्दनकुष्ठैलामांसीशैलेयसैन्धवैः ॥ २८० ॥ अश्वगन्धावलारान्ताशतपुष्पेन्द्रदारुभिः ॥ पर्णाचतुष्टयेनैव तगरेण प्रसाधयेत् ॥ २८१ ॥ तत्तैलं भोजनेऽभ्यंगे पाने वस्तौ च योजयेत् ॥ पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् ॥ २८२ ॥ कुञ्जत्वं वधिरत्वञ्च गतिभंगं कटीग्रहम् ॥ गात्रशोपेन्द्रियध्वंसं शुक्रनाशं ज्वरक्षयान् ॥ २८३ ॥ अन्त्रवृद्धिं कुरण्डञ्च दन्तरोगं शिरोग्रहम् ॥ पार्श्वशूलञ्च पंगुत्वं वृद्धिनाशञ्च गृध्रसीम् ॥ २८४ ॥ अन्यांश्च विविधान्वातान्हेरेत्सर्वांगसंश्रयान् ॥ अस्याः प्रभावाद्भन्यापि नारी

पुत्रं प्रसूयते ॥ २८५ ॥ यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः ॥ तथेदं वातरो-  
रागाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ॥ २८६ ॥

असगंध, खिरैटी, बेलगिरी, पाटल, कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरु, कंघी, नीम, अरलू, पुनर्नवा, प्रसारणी और अरनी ये प्रत्येक औषधि दशदश पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे जव पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उस काथको छान लेवे, फिर इस काथमे तेल १ आढक, सतावरका रस १ आढक और गायका दूध ४ आढक डाले तथा वच, लाल चदन, कूठ, इलायची, बालछड, पत्थरका फूल ( छारछबीला ), सैधानिमक, असगंध, खिरैटी, रायसन, सोया, देवदारु, शालिपर्णी, पृथ्विपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और तगर इन प्रत्येक औषधिका कल्क चार चार तोले डालकर वैद्य इस तेलको उत्तमरीतिसे तैयारकरे इस प्रकार करनेसे मध्यम नारायण तेल सिद्ध होताहै ।

इस तेलको भोजनमें, अभ्यगमें, पिचकारीमें और पीनेमें उपयोग करे तो इससे पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, कुञ्जता, वधिरता, गतिभंग, कमरकी पीडा, गात्रशोप, इन्द्रियध्वंस, वीर्यका क्षय, ज्वर, क्षय, अन्त्रवृद्धि, कुरड, दतरोग, मस्तककी वेदना, पार्श्वशूल, पंगुता, वृद्धिका नाश, श्व्रधी और अन्यान्य भी समस्त शरीरमें रहनेवाले वातरोग नष्ट होजातेहैं । इसके प्रतापसे बच्चा बच्चा भी पुत्रको उत्पन्न करतीहैं । जिस प्रकार नारायणदेव दुष्ट दैत्योका नाश करतेहैं उसी प्रकार यह उत्तम नारायण तैल वायुसम्बन्धी समस्त रोगोंको दूर करेहै ॥ २७७-२८६ ॥

### अथ महानारायणतैलम् ।

तिलतैलं समादाय चतुराढकसम्मिताम् ॥ पञ्चपल्लवकल्केन शोधयेद्दोषशान्तये ॥ २८७ ॥ तत्राजं दुग्धमथ वा गव्यं तैलसमं पचेत् शतावरीरसश्चापि तैलतुल्यं पचेद्भिषक् ॥ २८८ ॥ दशमूली बला राक्ता शिशूपलपुनर्नवाः ॥ शेफालिका नागबला बला चैव प्रसारिणी ॥ २८९ ॥ अश्वगन्धा सहचरो

दर्भमूलं करञ्जकः ॥ खदिरं चन्दनं  
 लोध्रं वचाशनपलाशकम् ॥ बकुलैरण्ड-  
 वरुणशालयुग्मकटम्भराः ॥ २९० ॥  
 शिरीषः शिखरी वासा हिंसा जम्बूविभी-  
 तकम् ॥ काञ्चनारः कपित्थश्च पारिभद्रः  
 प्रियालकम् ॥ पाषाणभेदः शम्पाको दुग्धि-  
 का दाडिमीफलम् ॥ २९१ ॥ उदुम्बरः  
 सप्तला च कन्यका मालती त्वचम् ॥ माग-  
 धीफलमूलश्च यवकोलकुलत्थकम् ॥ २९२ ॥  
 आत्मगुप्तार्ककार्पासबीजं वृक्षादनी स्नुही ॥  
 केतकीमूलधतूरलाङ्गलीगर्दभाण्डकम् ॥  
 ॥ २९३ ॥ चित्रकश्च महानिम्बं पञ्चव-  
 ल्कलमेव च ॥ मुण्डी ठेकारि मुसली  
 हंसपादीविशल्यकम् ॥ २९४ ॥ एषां  
 दशपलान्भागान्वारिण्यष्टगुणे पचेत् ॥  
 पाददेशं परिस्त्राव्य तत्र तैलं पुनः पचेत् ॥  
 ॥ २९५ ॥ छागो मेषश्च हरिण एणश्च  
 बहुशृङ्गकः ॥ शशः शल्यः शिवा गोधा  
 सिंहो व्याघ्रश्च भल्लुकः ॥ २९६ ॥ वन्यो  
 चराहः खड्गी च महिषो घोटकस्तथा ॥  
 कपिर्वभ्रुविडालश्च मूषकश्चोरुदुर्दुरः ॥  
 ॥ २९७ ॥ वर्तीकस्तिस्तिरिलावः खञ्जरी-  
 टश्चकोरकः ॥ उलूको नीलकण्ठश्च वनकु-  
 व्कुट एव च ॥ २९८ ॥ गृध्रश्च गरुडो  
 हंसश्चक्रः कारण्डवोऽपि च ॥ कपोतः  
 सारसः क्रौञ्चो वन्यः पारावतस्तथा ॥  
 रोहितो मदुरश्चापि शिलीन्ध्रः शृङ्गक-  
 स्तथा ॥ २९९ ॥ इल्लीसो गर्गरो वभिः  
 कथकाकः पिकोऽपि च ॥ महामस्यः  
 कच्छपश्च शिशुमारश्च सांकुचिः ॥ ३०० ॥  
 मकरो घंटिकाकारस्तदलाभे तु गोधि-  
 का ॥ यथालाभममीषाश्च काथं तैल-  
 समं पचेत् ॥ ३०१ ॥ रास्नाश्वगन्धा-  
 मिसिदारुकुष्ठपर्णीचतुष्काऽगुरुकेसराणि ॥

सिन्धूत्थमांसी रजनीद्वयश्च शैलेयकं  
 चन्दनपुष्करश्च ॥ ३०२ ॥ एला सयष्टी  
 तगराब्दपत्रं भृङ्गोऽष्टवर्गस्तु वचा  
 पलांसी ॥ स्थौणेयवृश्चीवैकचोरकाख्यं  
 मूर्वावचं कट्फलपद्मकश्च ॥ ३०३ ॥  
 मृणालजातीफलकेतकाख्यं सनागपुष्पं  
 सरलं मुरा च ॥ जीवन्तिकोशीरवरा-  
 स्तथैव दुरालभा वानारिका नखश्च ॥ ३०४ ॥  
 कैवर्तमुस्तार्जुनतिक्तकश्च वातामखर्जूरक-  
 तुम्बराश्च ॥ सधातकीग्रन्थिकपर्पटाश्च  
 पटोलहेमाजजयन्तिकाश्च ॥ ३०५ ॥  
 त्रायन्तिकालम्बुषशक्रबीजं रसाञ्जनाभा  
 त्रिवृतारुणा च ॥ द्राक्षाकणाद्रौणपुनर्नवाश्च  
 कौन्ती किमिघ्नो हयमारकश्च ॥ ३०६ ॥  
 नीलोत्पलं पद्मककारवीभ्यां रम्भानलोगो  
 क्षुरकः क्षुरश्च ॥ कंकोलकालेयकुसुम्भपुष्प-  
 न्तरुष्ककाश्मीरकसिक्थकश्च ॥ लवंग-  
 कर्पूररसालकाण्डकस्तूरिकाबालकमम्ब-  
 रश्च ॥ ३०७ ॥

दारु देवदारु । पर्णीचतुष्कं शालिपर्णी  
 पृष्ठिपर्णी मुद्गपर्णी माषपर्णी । केशरः पुन्ना-  
 गस्तस्य पुष्पं ग्राह्यम् । तदलाभे नागकेशरं  
 ग्राह्यम् । शैलेयकम् छरीला इति लोके ।  
 चन्दनमत्र श्वेतम् । पुष्करं पुष्करमूलम् ।  
 तगरस्याप्यलाभे तु कुष्ठं दद्याद्रिषग्वरः ।  
 भृङ्गस्त्वक् । अष्टवर्गालाभे शतावरी विदा-  
 र्यश्वगन्धा वाराही द्विगुणा दद्यात् । वाराही  
 गेटि इति लोके । पलांसी कर्चूरभेदः गन्ध-  
 पलाशीति काश्मीरे प्रसिद्धा तदलाभे कर्चूर  
 एव देयः ॥ स्थौणेयं गठिवनभेदः ईषसुगन्धि  
 थनेर इति लोके । वृश्चीवः श्वेतमूला  
 पुनर्नवा । चोरकः ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः  
 भडिउर इति नैपालदेशे प्रसिद्धः ।

केतकस्य मूलं पुष्पञ्च दद्यात् । कैवर्तमुस्ता  
केवटीमोथा गुडतजी इति च लोके ।  
तिक्तकः किराततिक्तकः वातामं वादाम  
इति लोके । हेमाहं धतूरस्य फलं मूलं पत्रञ्च ।  
जयन्तिका जेत्रित्वक् । त्रायन्तिका अत्र  
लभ्यत एव न । अलम्बुषा लज्जालूभेदः ।  
आभा वव्वूलः तस्य त्वक् । अरुणा मञ्जिष्ठा ।  
द्रोणः द्रोणु मारुक् पञ्चांगः । पुनर्नवा रक्त-  
पुष्पा । हयमारकः करवीरस्तस्य मूलम् ।  
पद्मकं नीलोत्पलादन्योत्पलम् । पद्मकाष्ठम्  
उक्तमेव । कारवी मगरैला इति । रम्भायाः  
कन्दम् । क्षुरस्य फलानि रसालकाण्डम् ।  
आण्डी सुगन्धद्रव्यम् ॥

कल्कानमीषां विपचेत्सुवैद्यः पृथक्पृथक्  
कर्षयुगोन्मितानाम् ॥ शुभे च नक्षत्रमु-  
हूर्तलघ्ने सन्तोष्य विप्रांश्च भिषग्वरांश्च  
॥ ३०८ ॥ सम्पूज्य नारायणनामधेयं  
देवं त्रिनेत्रं जगतामधीशम् ॥ पात्रेषु  
हेम्नः खलु राजते वा ताम्रेऽथ वा लोह-  
मयेऽपि रक्षेत् ॥ ३०९ ॥ अभ्यञ्जनेऽञ्जने  
नस्ये निरुहे चावगाहने ॥ पाने चैतद्य-  
थाव्याधिप्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥ ३१० ॥  
बहुनाऽत्र किमुक्तेन तैलमेतत्प्रयोजित-  
म् ॥ अवश्यं वातजान् व्याधीनशीतिमपि  
नाशयेत् ॥ ३११ ॥ एतस्याभ्यासतो  
जन्तोर्जरा जातु न जायते ॥ पतन्ति  
बलयो नैव पलितश्च न जायते ॥  
॥ ३१२ ॥ नेत्रं तेजस्वि नितरां गरुड-  
स्येव जायते ॥ नोच्चैः श्रुतिर्न वाविर्य  
कर्णनादो न जायते ॥ पाणिकम्पः शिरः-  
कम्पः प्रलापश्च न जायते ॥ ३१३ ॥  
बुद्धिभ्रंशो न जायेत तस्मात्कर्मसु पाट-  
वम् ॥ यथा जलेन सिक्तस्य शाखिनः  
पल्लवादयः ॥ ३१४ ॥ वर्द्धन्ते धातव-

स्तद्वदेहिनोऽनेन नित्यशः ॥ आमं गर्भ-  
त्यजेज्जातु सूतिका रुग्युता च या ॥  
॥ ३१५ ॥ या च दुःप्रसवक्षीणा ताम्य  
एतद्धितं परम् ॥ वन्ध्या च लभते पुत्रं  
गर्भपातो न जायते ॥ ३१६ ॥ योनि-  
रोगाः प्रणश्यन्ति प्रदरश्च प्रशाम्यति ॥  
अस्मात्तैलवरादन्यत्कुत्रचिन्नास्ति भेष-  
जम् ॥ ३१७ ॥ बल्यं वृष्यं बृंहणश्च  
रसायनमिदं महत् ॥ पुरा देवासुरे युद्धे  
दैत्यैरभिहतान्सुरान् ॥ ३१८ ॥ भिन्ना-  
न्भग्नास्थिकान्विद्धान्पिञ्चितान्व्यथयाऽर्दि-  
तान् ॥ दृष्ट्वा हिताय देवानां नराणां चा-  
ज्ववीदिदम् ॥ तैलं नारायणो देवो  
महानारायणाभिधम् ॥ ३१९ ॥

चार आढक तिलका तेल लेकर दोपकी शातिके लिये  
उसको पचपल्लवके काथसे शुद्ध करे फिर उस तेलमें  
चार आढक बकरीका अथवा गायका दूध और चार  
आढक सतावरका रस पकावे, फिर दशमूल, खिरैटी,  
रायसन, सेंजिना, नीलकमल, पुनर्नवा, निर्गुण्डी, कघो-  
गगेरन, प्रसारण, असगन्ध, कटसरैया, डाभकी जड़,  
करजुआ, खैर, लालचन्दन, लोध, वच, विजयसार, ढांक,  
मालसिरी, अड, वरना, दो प्रकारका साल, कुटकी, सि-  
रस, चिरचिटा, अडूसा, बालछड, जामुनकी छाल, बहेडा,  
कचनार, कैथ, नीम, चिरौजी, पापाणभेद, अमलतास,  
दुद्धी, अनार, गूलर, सातला, धौकार, मालती, (चमेली)  
तज, पीपल, नरसलकी जड़, जौ, वेर, कुलथी, कौछ,  
आककी जड़, कपास, गिलोय, थूहर, चीता, केवडेकी  
जड़, बतूरा, कलिहारी, बेलिया, पीपलकी छाल, बकायन,  
पचबल्कल, गोरखमुडी, टेकारी, मुसली, लाललज्जालू  
और इन्द्रायन ये प्रत्येक पदार्थ दशदश पल लेकर अठ-  
गुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई जल शेष रह-  
जाय तब उतारकर छानलेवे, फिर इस काथमें इस तेल-  
को पकावे, फिर बकरा, भेडा, हिरन, एणहिरण, सांवर,  
खरगोश, सेई, छपकली, गोय, सिंह, बाघ, रीछ, जगली-  
सुअर, गंडा, भैंसा, घोडा, बन्दर, नीला, बिलाव, चूहा,  
भेडक, बत्तक, तीतर, लवा, खजन (समोला) चकोर, उल्लू,  
नीलकंठ, वनमुरगा, गीघ, गरुड, हंस, चकवा, कार-



डव, कवूतर, सारस, कुडा, जगली कवूतर, रोहू मछली, मदगुर मछली, शिलीन्ध्र, शृंगक, इल्लीस, गर्गरीमछली, वर्मि, कथ मछली, कौआ, कोयल, महामत्स्य, कछुवा, शिशुमार, संकुच, मगर, घडियाल, अगर घडियाल न मिलसके तो उसके अभावमे गोय लेनी चाहिये । इनमें जितने जीवोंके मांस मिलसके उतनेही लेने चाहिये । इनके चार आठक रसमे तेलको पकावे फिर रास्ना, असगन्ध, सोया, देवदारु, पृथ्वीपर्णी, शालिपर्णी, मुद्गपर्णी, माप्रपर्णी, कूठ, अगर, पुन्नाग, अगर पुन्नाग न मिलसके तो उसके अभावमें नागकेसर लेनी चाहिये, सैधानिमक, चालछड, हलदी, दारुहलदी, भूरीछरीला, चन्दन, पोह-करमूल, इलायची, मुलैठी, तगर, जो तगर न मिलसके तो कूठ लेना चाहिये, नागरमोथा, तेजपात, तज, मेदा आदि अष्टवर्ग जो अष्टवर्ग न मिलसके तो उसके बदलेमे दोनो सत्तावर, विदारीकन्द, असगन्ध, तथा वाराहीकन्द, वच, गन्धपलाशी ( काश्मीर देशमें प्रसिद्ध है ) अगर गन्धपलाशी न मिले तो कचूर लेना चाहिये । शुनेर, सफेद फूलका पुनर्नवा, नेपाल देशमे होनेवाला भटेउर, मूर्वाकी छाल, तज, कायफल, पद्माख, कमलकी नाल, चायफल, केवडेकी जड और फूल, नागकेसर, धूपसरल, कपूरकचरी, गिलोय, सुगन्धवाला, हरड, बहेडा, आमला, धमासा, कौंछ, नख, सुगन्धद्रव्य, केवटीमोथा, अर्जुन, चिरायता, बादाम, खजूर ( छोहारे ), धनिया, तुम्बुरु, धायके फूल, पीपलामूल, पित्तपापडा, परवल, धतूरेकी छाल, अरणी, त्रायमाण, अलम्बुषा ( एक प्रकारकी लजावन्ती ), इन्द्रजौ, रसोत, बबूरकी छाल, निसोत, म-जीठ, दाख, पीपल, गूमा, लालफूलकी पुनर्नवा, निर्गुण्डीके बीज अथवा मेहदीके बीज, वायविडग, कनेरकी जड, नीले कमल, कमल, कालाजीरी ( कलैजी ), केलेका कंद, चीता, गोखुरु, तालमखाना, कंकोल, पीला-चंदन, कसूमके फूल, शिलारस, केसर, मोम, लौंग, कपूर, सालके काड, जवादि कस्तूरी, सुगन्धवाला और अम्बर इन प्रत्येक औषधिका अलग अलग दो दो तोले कल्क बनाकर उस कल्कसे इस तैलको पकावे तो यह महानारायण नामक तैल सिद्ध होताहै । शुभ नक्षत्रमें शुभ, मुहूर्तमें तथा शुभलग्नमें वैद्य ब्राह्मणोंका और उत्तम प्राचीन वैद्योंका पूजन करके जगत्के स्वामी और तीनों गुणोंको चलावेवाले नारायण देव और त्रिनेत्र शूलपाणि शिवजीका पूजन करके सोनेके, रूपेके, तांबेके अथवा लोहेके वासनमें

इस तैलको भरकर रखदेवै । वैद्य व्याधिके, अनुसार अभ्यगर्मे, अजनमे, नस्यमें, निरुहवस्तिमें, अवगाहनमें और पानमें इसको प्रयोग करे । विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन परंतु इतना अवश्य कहेंगे कि इस तैलका विधि-पूर्वक व्यवहार किया जाय तो यह अस्सी प्रकारके वात-रोगोंको अवश्य नष्ट करदेताहै । इस तैलका अभ्यास करनेसे शरीरमें बली नहीं पडती, बिना समयही वाल सफेद नहीं होजाते, नेत्र गरुडकी समान अत्यंत तेजयुक्त होतेहैं, ऊंचेसे सुन्ना, बहरापन और कानमे अनेक प्रकारके शब्द होना यह कभी नहीं होता, हाथ नहीं कांपते, मस्तक नहीं कोंपता, प्रलाप नहीं होता, बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती और सब काम करनेमें समर्थ होताहै । जिस प्रकार जलसे सींचेहुए वृक्षके पल्लवआदि वृद्धिको प्राप्त होतेहैं उसीप्रकार इस तैलके सींचनेसे प्राणियोंकी धातु वृद्धिको प्राप्त होतीहैं । जिस स्त्रीके कच्चा गर्भ गिर जाता-है, स्तिका रोगवाली और जो स्त्रियें प्रसवकी वेदनासे क्षीण होगई हैं उनके लिये यह तैल अत्यंत हितकारी है, इस तैलका उपयोग करनेसे बध्वास्त्रियोंके भी पुत्रकी प्राप्ति होतीहै । गर्भपात नहीं होता, योनिके समस्तरोग नष्ट होतेहैं और प्रदररोग शांत होताहै इस परमोत्तम तैलसे अधिक बलवर्द्धक, मैथुनशक्तिको बढ़ानेवाली और धातुओंको पुष्ट करनेवाली अन्य औषधे नहीं है । यह तैल श्रेष्ठ रसायन है, पूर्वकालमें दैत्योंके तथा देवताओंके युद्धमें दैत्योंके प्रहारसे जो देवताओंके शरीरमें चोट लगीथी, हड्डी टूट गईथीं, शरीर वेधा गया था, हाड पिंजर चूर्ण होगयेथे और पीडासे व्याकुल थे तब श्रीनारायण देवने मनुष्योंके हितके लिये यह नारायण तैल निर्माण किया था ॥ २८७-३१९ ॥

इति महानारायणतैलम् ।

अथ महायोगराजगुग्गुलुः ।

नागरं पिप्पलीमूलं चव्यमूषणचित्रकम् ॥  
भृष्टं हिग्वजमोदा च सर्षपो जीरक-  
द्रयम् ॥ ३२० ॥ रेणुकेन्द्रयवौ पाठा  
विडंगं गजपिप्पली ॥ कटुकाऽतिविषा  
भाङ्गी वचा मर्वा च पत्रकम् ॥ ३२१ ॥  
देवदारु कणा कुष्ठं रास्ना मुस्ता च सैन्ध-

वम् ॥ एला त्रिकण्टकं पथ्या धान्यकश्च  
विभीतकम् ॥ धात्री च त्वगुशीरश्च यव-  
क्षारोऽखिलान्यपि ॥ ३२२ ॥ एतानि  
समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥  
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावानेवात्र गुग्गुलुः  
॥ ३२३ ॥ संमर्द्य सर्पिषा पश्चात्सर्वं  
संमिश्रयेच्च तत् ॥ एकं पिण्डश्च तत्कृत्वा  
धारयेद् घृतभाजने ॥ गुटिकाष्टकमात्रास्तु  
खादेत्तास्तु यथोचिताः ॥ ३२४ ॥

अत्र दोषकालाद्यपेक्षया ॥

सोंठ, पीपलामूल, चव्व, कालीमिरच, चीता, भुनीहुई  
ईंग, अजमोद, मरसों, जीरा, कालाजीरा, रेणुका, इन्द्रजी,  
पाद, वायविडग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारगी,  
वच्च, मूवी, तेजपात, देवदारु, पीपल, कूठ, रायसन,  
नागरमोथा, सैधानिमक, इलायची, गोखरु, हरड, धनिया,  
बहेडा, आमल, तज, खस और जवाखार इन सब  
पदार्थोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे, फिर  
इस सब चूर्णकी बराबर गूगल लेवें, सबको एकत्र मिला-  
कर न्यूत्र घीमें मर्दन करके एक पिण्ड बनावे उस पिण्डको  
नीके वासनमें रखदेवें, फिर उसकी चौथीस चौथीस रस्तीकी  
गोलिया बनावे । दोप और कालानुसार विचारकर इन  
गोलियोंको सेवन करे ॥ ३२०—३२८ ॥

आदौ शाणोन्मितं खादेत्सार्द्धं शाणं ततः  
परम् ॥ तदग्रे कर्षमर्द्धन्तु पूर्णं कर्षं ततः  
परम् ॥ ३२५ ॥ गुग्गुलुर्योगराजोऽयं महा-  
मुख्यो रसायनम् ॥ मैथुनाहारपानानां  
नियमो नात्र विद्यते ॥ ३२६ ॥ अर्शासि  
ग्रहणीरोगं ग्रीहगुल्मोदरानपि ॥ आनाहं  
मन्दमग्निश्च श्वासं कासमरोचकम् ॥  
॥ ३२७ ॥ प्रमेहं नाभिगूलश्च किमिक्षय-  
मुरोग्रहम् ॥ सर्वान्वातामयान्हन्यादाम-  
वातमपस्मृतिम् ॥ ३२८ ॥ वातरक्तं तथा  
कुष्ठं तथा दुष्टव्रणानपि ॥ शुक्रदोषं रजो-  
दोषमुदावर्त भगन्दरम् ॥ ३२९ ॥

इन गोलियोंको सेवन करनेकी यह विधि है कि प्रथम  
कुछेक दिनोतक तो एक एक गोली खाय, फिर डेढ़ डेढ़  
गोली खाय, फिर छैः छैः मासे खाय, फिर एक एक तोला  
भर खाय, यह योगराज गूगल अत्यन्त मुख्य है और  
रसायन है । इसके सेवन करनेमें मैथुन और अन्नपानका  
कुछ नियम नहीं है । इस गूगलको सेवन करनेसे बवा-  
सीर, सग्रहणी, ग्रीहा, गुल्म, उदरके समस्तरोग, पेटका  
अफारा, अग्निकी भेदता, श्वास, खोंसी, अरुचि, प्रमेह,  
नाभिगूल, कृमि, क्षय, छातीका जकडना, सर्व प्रकारके  
वातरोग, आमवात, अपस्मार, कोढ़, दुष्टव्रण, वीर्यविकार,  
रजोदोष, उदावर्त और भगन्दर इन सब रोगोंका नाश  
होताहै ॥ ३२५—३२९ ॥

रास्नादिकाथसंयुक्तः सर्ववातामयान्हरेत् ॥  
काकोल्यादिश्रृतात्पित्तं कफमारग्वधा-  
दिना ॥ ३३० ॥ दार्वीश्रृतेन मेहांश्च  
गोमूत्रेण च पाण्डुताम् ॥ मधुना भेदसो  
वृद्धि कुष्ठं निम्बश्रृतेन च ॥ ३३१ ॥  
छिन्नाकाथेन वातासं शोथं मूलकजाच्छृ-  
तात् ॥ पाटलाकाथसहितो विषं मूषक-  
सम्भवम् ॥ ३३२ ॥ त्रिफलाकाथसंयुक्तो  
दारुणां नेत्रवेदनाम् ॥ पुनर्नवादिकाथेन  
हन्ति सर्वोदराण्यपि ॥ ३३३ ॥

इस गूगलको रास्नादि काथके साथ पीनेसे सर्व प्रका-  
रकी वातव्याधि शमन होतीहै । इसको काकोल्यादि  
काथके साथ पीनेसे पित्त शमन होताहै । आरग्वधादि  
काथके साथ पीनेसे कफ दूर होताहै । दारुहलदीके  
काथके साथ पीनेसे प्रमेह नष्ट होताहै । गोमूत्रके साथ  
पान करनेसे पाहुरोग नष्ट होताहै । सहतके साथ खानेसे  
मेहकी वृद्धि नष्ट होतीहै । नीमके काथके साथ पीनेसे  
कोढ़ नष्ट होताहै । गिल्लोयके काथके साथ पीनेसे वातरक्त  
नष्ट होताहै । मूलीके काथके साथ पीनेसे सूजन दूर होती-  
है । पाटलके काथके साथ पीनेसे चूहेका विष दूर होताहै ।  
त्रिकलके काथके साथ पीनेसे नेत्रकी दारुण पीडा शमन  
होतीहै ।

और पुनर्नवादिक्वाथके साथ पीनेसे सर्व प्रकारके उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ ३३० ॥ ३३३ ॥

रास्त्रा पुनर्नवा शुण्ठी गुडूच्येरण्डजं  
घृतम् ॥ सप्तधातुगते वाते सामे सर्वा-  
गगेषि चेत् ॥ ३३४ ॥

रास्त्रा, पुनर्नवा, सोंठ, गिलोय और एरड इनका  
क्वाथ रास्त्रादिक्वाथ कहा जाता है । सप्तधातुगत वायु आम-  
संयुक्तवायु और सर्वशरीरस्थवातके विकारोमे यह क्वाथ  
उपयोगी है ॥ ३३४ ॥

अथ रसोनकल्कः ।

युक्तः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन सि-  
न्धुना ॥ वातरोगान्हरेत्सर्वाञ्ज्वरांश्च वि-  
षमानपि ॥ ३३५ ॥

लसुनका कल्क बनाकर उसमें तिलका तेल और  
सैधानिमिक मिलाकर भक्षण करै तो समस्त वायु सम्बन्धी  
रोग और विषमज्वर नष्ट होजाते हैं ॥ ३३५ ॥

अथ द्वितीयरसोनकल्कः ।

क्षारेण तैलेन घृतेन वाऽपि मांसेन सार्द्धं  
लशुनानि खादेत् ॥ शाल्योदनेनापि च  
षष्टिकेन पलार्द्धवृद्ध्या दिवसानि सप्त ॥  
॥ ३३६ ॥ वातोत्थरोगान्विषमज्वरांश्च  
शूलान्सगुल्मान्दहनस्य मान्द्यम् ॥ प्लीहा-  
नमुग्रं भुजपार्श्वशूलं शिरोव्यथां कृन्तति  
शुक्रदोषान् ॥ ३३७ ॥

दूध, तेल, घी, मांस, भात अथवा साठीके चावल्लोका  
भात इनके साथ सात दिन तक क्रमसे प्रत्येक दिन दो  
दो तोले बढ़ाकर लसुनका कल्क भक्षण करे तो वात-  
सम्बन्धी रोग, विषमज्वर, शूल, गुल्म, अग्निकी  
मंदता, प्लीहाकी पीडा, हाथ और पसलियोंकी पीडा,  
मस्तककी व्यथा और वीर्यके समस्त दोष दूर होते  
हैं ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥

अथ लशुनसेवनस्य तृतीयविधिः ।

अन्नप्रकारैः पलप्रकारैर्गोधूमकैर्वा यव-  
सक्तुभिर्वा ॥ दुग्धेन तैलेन घृतेन वापि यु-  
क्तानि शाते लशुनानि खादेत् ॥ ३३८ ॥  
संवर्तकैर्लावकपिञ्जलैर्वा मृग्याः पलैर्वा-

प्यथकौक्कुटैर्वा ॥ वाराहवार्तीरकहारिणै-  
र्वा सुसंस्कृतैरग्निलं समीक्ष्य ॥ ३३९ ॥

अन्नके पदार्थोंके साथ, मांसके बनेहुए पदार्थोंके  
साथ, गेहूँके बनेहुए पदार्थोंके साथ, जौके सत्तूके साथ,  
दूधके साथ, तेलके साथ, घीके साथ, संवर्तकके मांसके  
साथ, लवाके मांसके साथ, तीतरके मांसके साथ, हिर-  
नीके मांसके साथ, मुरगेके मांसके साथ, सुअरके  
मांसके साथ, बटेरके मांसके साथ अथवा हिरनके मांसके  
साथ शीतकालमें अग्निका बलाबल विचारकर लसुनको  
सेवन करना चाहिये । जो अन्न मांस आदि पदार्थोंके  
साथ लसुन खाना होय तो उन पदार्थ आदिसे  
अच्छे प्रकारसे संस्कृत ( सशोधन ) करना  
चाहिये ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

अथ रसोनाष्टकम् ।

रसोनपक्वकन्दस्य गुलिका निस्तुषीकृताः॥  
पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदङ्कुरम् ॥  
॥ ३४० ॥ निश्युग्रगन्धनाशाय दध्ना  
सन्नीय रक्षयेत् ॥ ततः प्रक्षाल्य संशोष्य  
शिलायां परिपेषयेत् ॥ ३४१ ॥ कल्कस्य  
पञ्चमे भागे चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत् ॥  
सौवर्चलं यवानीश्च भर्जितं हिङ्गु सैन्धवम् ॥  
॥ ३४२ ॥ कटुत्रिकं जीरकञ्च समभागा-  
नि चूर्णयेत् ॥ तिलतैलञ्च कल्कस्य तुर्यां-  
शं तत्र मिश्रयेत् ॥ ३४३ ॥ खादेत्कर्षमितं  
प्रातः किं वा दोषाद्यपेक्षया ॥ अनुपानं  
प्रकुर्वीत वातारिशृतमन्वहम् ॥ ३४४ ॥  
सर्वाङ्गैकाङ्गजं वातमर्दितश्चापतन्त्रकम् ॥  
अपस्मारं तथोन्मादमूरुस्तम्भञ्च गृध्रसीम् ॥  
॥ ३४५ ॥ उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां  
कृमीन्हरेत् ॥ मद्यं मांसं तथाऽम्लञ्च रसं  
सेवेत नित्यशः ॥ ३४६ ॥ आयासमातपं  
रोषमतिनीरं गुडं स्त्रियम् ॥ रसोनमश्वत्पु-  
रुषस्त्यजेदेतन्निरन्तरम् ॥ ३४७ ॥ वर्ज-  
येत्तदतीसारी प्रमेही पाण्डुरोगवान् ॥  
अरोचकी गर्भिणी च मूर्च्छाशौरोगसंयुतः ॥

॥ ३४८ ॥ रक्तपित्ती च शोषी च यक्ष्मी  
छर्द्यदितो नरः ॥ पित्ते तु पथ्यभुक्कुर्या-  
त्प्रयोगान्ते विरेचनम् ॥ ३४९ ॥ अन्यथा  
तस्य जायन्ते कुष्ठपाद्वामयादयः ॥ स्त्री-  
स्तन्ये त्वरितं दद्याद्दालानामप्यनिच्छ-  
ताम् ॥ तथा च लभते सिद्धिं महावीर्या-  
द्रसोनतः ॥ ३५० ॥

लसुनकी पकीहुई गाठको छीलकर साफ करले फिर उसको चीरकर उसके बीचके अकुरोंको निकाल डाले, पश्चात् उसकी उग्रगंधको दूर करनेके लिये उन कलि-  
योंको रात्रिमें दहीके बीचमें गाड़ देवे, फिर प्रातःकाल धोकर सुखावे और सिलपर पीसकर कल्क बनावे उसमें कालानिमक, अजवायन, भुनी हींग, सैंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और जीरा इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे लसुनके कल्कसे पांचवा भाग इस चूर्णको मिलावे और कल्कसे चौथाई भाग तिलका तेल मिलावे, फिर इसमेंसे प्रातःकाल एक तोलाभर खाय अथवा दोपोंका विचार करके योग्य मात्रानुसार खाय और नित्य एरडका काथ पिये । यह रसोनाष्टक सर्वांगवात, एकांगवात, अर्दित, अपतत्रक, अपस्मार, उन्माद, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, छातीकी पीड़ा, पीठकी पीड़ा, कमरकी पीड़ा, पसलियोंका झूल, तथा कोखकी पीड़ा और कुम्भिओंको नष्ट करे है । रसोनाष्टकको सेवन करनेवाला नित्य मद्यको, मासको तथा सट्टे रसको सेवन करे और परिश्रम, धूप, क्रोध, अत्यत जल तथा मैथुन इनका त्याग करदेवे । अतिसार, प्रमेह, पांडुरोग, अरुचि, मूच्छी, बवासीर, रक्तपित्त, ओष, भयकर क्षयरोग और वमन इनसे पीडित तथा गर्भवती न्नियें लसुनका भक्षण त्यागदेवें । पित्तकी पीड़ा होय तो पथ्यसे भोजन करे इस रसोनाष्टकको सेवन करनेके पश्चात् विरेचन लेवे, जो विरेचन न लेवे तो कोढ़ तथा पाण्डु-  
रोगादि उत्पन्न होते हैं रसोनाष्टककी नहीं इच्छा करनेवाले बालकोंको भी उनकी माताके दूधमें तत्काल इस रसो, नाष्टकको मिलाकर देवे इस प्रकार करनेसे लसुनके गुणोंकी वाहुन्यतासे बालकोंके समस्त वातविकार शमन होते हैं ॥ ३४८-३५० ॥

अथ वातारिरसः ।

रसो गन्धो वरा वह्निर्गुग्गुलुः क्रमवर्द्धितः ॥  
तत्रैकभागः स्मृतः स्याद्रन्वको द्विगुणः

स्मृतः ॥ ३५१ ॥ त्रिभागा त्रिफला यो-  
ज्या चतुर्भागस्तु चित्रकः ॥ गुग्गुलुः पञ्च-  
भागः स्याद्बुबुतैलेन मर्दितः ॥ ३५२ ॥  
क्षिप्त्वा तत्रोदितं चूर्णं तेन तैलेन मर्दयेत् ॥  
गुटिकां कर्षमात्रान्तु भक्षयेत्प्रातरेव हि ॥  
॥ ३५३ ॥ नागरैरण्डमूलानां कषायं प्रपि-  
बेदनु ॥ अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदे-  
शकम् ॥ ३५४ ॥ विरेकपरिणामे तु  
स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् ॥ वातारिसंज्ञको  
ह्येष रसो नियतसेवितः ॥ मासेन मरुतो  
रोगान्हरेत्सुरतवर्जिनः ॥ ३५५ ॥

इति वातारिरसः ।

पारा १ भाग, गंधक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता ४ भाग और अडके तेलमें मर्दन किया हुआ गुग्गुलु ५ भाग, इन सबको एकत्र मिलाकर अडीके तेलमें मर्दन करे, इसमेंसे प्रतिदिन एक एक तोलेकी गोली बनाकर भक्षण करे और गोली खानेके पश्चात् सोंठ और अडकी जड़के काथका नुपान करे फिर अडीके तेलको पीठपर मलकर, सेकदेवे । कदाचित् रेचन लगे तो स्निग्ध और गरम अन्न भोजन करे यह वातारिनामक रस नियमपूर्वक सेवन किया जाय और मैथुनका त्याग करदेवे तो एक महीनेमें वातसम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ३५१-३५५ ॥

इति वातव्याव्यधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ ऊरुस्तम्भाधिकारः ।

तत्रोरुस्तम्भस्य विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदान  
सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणानि ।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ॥  
जीर्णाजीर्णै तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजाग-  
रैः ॥ १ ॥ सल्लेष्ममेदःपवनः साममत्यर्थ-  
सञ्चितम् ॥ अभिभूयेतरं दोषमूरु चेत् प्रति  
पद्यते ॥ २ ॥ सक्थ्यस्थोनि प्रपूर्यान्तः

श्लेष्मणा स्तिमितेनृसः ॥ तदा स्तम्भाति  
तेनोरु स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥  
परकीयाविव गुरुस्यातामतिभृशव्यथौ ॥  
ध्यानांगमर्दस्तैमित्यं तन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः  
॥ ४ ॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसु-  
प्तिभिः ॥ तमूरुस्तम्भमित्याहुरामवातम-  
थापरे ॥ ५ ॥

जीर्णाजीर्णे किञ्चित् जीर्णे किञ्चित् अजी-  
र्णे । शीतादिभिः निषेवितैः भुक्तः । संक्षो-  
भेण संचलनेन । दिवास्वप्नेन रात्रौ जागर-  
णेन । अभिभूय दूषयित्वा । इतरं दोषं  
कफं पित्तञ्च । स्तिमितेन आर्देण वृत्तेनेति  
यावन्नतु घनेन । स पवनः तदा ऊरु स्त-  
म्भाति । तेन स्तम्भेन अचेतनौ शून्यौ ।  
परकीयाविव अक्रियावित्यर्थः । ध्यानम्  
मूढता । पादसम्बन्धिनीभिः सदनकृच्छ्रो-  
द्धरणसुप्तिभिश्च संयुक्तौ । अयं सुश्रुतेन  
महावातव्याधिषु पठितः ॥

कुछेक जीर्ण और कुछेक अजीर्ण होय ऐसी अव-  
स्थामें शीतल, गरम, पतले, सूखे, भारी और चिकने  
ऐसे भोजन करनेसे, परिश्रम करनेसे, शरीरको संचलन  
करनेसे, दिनमें सोनेसे और रात्रिमें जागनेसे कफ तथा  
मदसहित वायु आमसयुक्त तथा अत्यन्त संचित हुए कफको  
तथा पित्तको दूषित करके साथलोंमें प्राप्त होतीहै । और  
साथलोंमें प्राप्त होकर लिपटे हुए कफसे साथलकी हड्डि-  
योंमें मिलकर स्तब्ध करदेतीहै कि जिससे साथल अकड  
जातीहैं, सुन्न होजातीहैं, अत्यन्त भारी और जैसे कि दूस-  
रोंकी होय ऐसी जानपडतीहैं इस रोगमें मूढता, अगोंका  
टूटना, तन्द्रा, वमन, अरुचि, ज्वर, पावकी ग्लानि,  
पावोंकी मन्दता और जडता यह सब लक्षण होतेहैं यह  
रोग ऊरुस्तम्भ कहाजाताहै कितने एक वैद्य इसको  
आढ्यवात कहतेहैं, सुश्रुतने इसको महाव्याधिओंमें  
कहाहै ॥ १-५ ॥

अथोरुस्तम्भपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपं तस्य निद्रातिध्यानं स्तिमितता  
ज्वरः ॥ रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जघोर्वोः  
सदनं तथा ॥ ६ ॥

जब ऊरुस्तम्भ होनेको होताहै तो निद्रा, अत्यन्त-  
व्यान, क्रियारहितपना, ज्वर, रोमांचोका हो आना,  
अरुचि, वमन और पिण्डलिओंमें तथा सांथलोमें पीडा  
उत्पन्न होतीहै ॥ ६ ॥

अथोरुस्तम्भरूपम् ।

वातशंकिभिरज्ञानात्तत्र स्यात्स्नेहनात्पुनः ॥  
पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं  
तथा ॥ जंघोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्वा दाहवे-  
दने ॥ ७ ॥ पादश्च व्यथत न्यस्तं शीत-  
स्पर्शं न वेत्ति च ॥ संस्थाने पीडने गत्यां  
चालने चाप्यनीश्वरः ॥ अन्यनेयौ हि  
सम्भन्नावरूपादौ च मन्यते ॥ ८ ॥

अज्ञानादनिश्चयात् । स्तम्भसुप्तिकर्मरहि-  
तपाददर्शनेन वातशंकिभिः वातव्याधिंशं-  
किभिः । तत्र ऊरुस्तम्भे स्नेहनात् स्नेहदा-  
नात् । स्नेहादिना स्नेहन्या चिकित्सया पाद-  
सदनादयः ऊरुभग्नोपमत्वात् ते विकाराः  
स्युः । जंघोर्वोर्गमनादौ अशक्तिः । अदा-  
हवेदना ईषदाहेन सह वेदना । अन्यनेयौ  
अन्यचाल्यौ भवतः ॥

पावोंका सोना, पावोंकी जडता और क्रियाओंसे रहित  
होना इत्यादि लक्षणोंके मिलनेसे प्रायः मनुष्यको वात-  
रोगका भ्रम होताहै । उस भ्रमसे वह वातरोगोकी समान  
तैलादिकका मलना आदि स्नेहनचिकित्सा करताहै तो  
उसके दूनी पीडा होजातीहै, पावोंमें पीडा, जडता और  
सुन्नता होय, पैरोका उठाते धरते समय अत्यन्त वेदना  
होय, पैरोंकी पिण्डली और साथलोंमें अत्यन्त ग्लानि,  
चलनेमें असमर्थ, कुछ २ दाहयुक्त पीडा, यह सब अधि-  
कतासे होतीहै । जब यह रोग होताहै तो पैरोको उठाते  
चलाते समय विशेष पीडा होतीहै, शीतल पदार्थोंका स्पर्श  
मालूम नहीं होता और बैठनेमें, दबानेमें, चलनेमें एवं  
हलानेमें असमर्थ होताहै और वह मनुष्य अपनी साथ-



लौको तथा पात्रोंको टूटासा जानताहै और उसके पाव दूसरोंके उठानेसे उठतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथोरुस्तम्भारिष्टम् ।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेषनः पुरुषो भवेत् ॥ ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ ९ ॥

अन्यथा दाहाद्युपद्रवरहितं तमपि नवम् उत्पन्नमात्रं साधयेत् ॥

जो ऊरुस्तम्भमें दाह, व्यथा, सुई चुभानेसरीखी पीडा हो और रोगी कापने लगे तो उस मनुष्यको वह ऊरुस्तम्भ मारदेताहै और जो दाहादिक उपद्रव नहीं हैंथी तथा ऊरुस्तम्भ तत्कालका उत्पन्न हुआ होय तो साधये ॥ ९ ॥

अथोरुस्तम्भचिकित्सा ।

स्नेहासृक्साववमनं वस्तिकर्म विरेचनम् ॥  
वर्जयेदामवाते तु यतस्तैस्तस्य कोप-  
नम् ॥ १० ॥ तस्मादत्र सदा कार्यं स्वेद-  
लघनरुक्षणम् ॥ आमभेदः कफाधिक्या-  
न्मारुतं परिरक्षता ॥ ११ ॥ यत्स्यात्क-  
फप्रशमनं न तु मारुतकोपनम् ॥ तत्सर्वं  
सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ सर्वो  
रुक्षः क्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥  
॥ १२ ॥ पश्चाद्वातविनाशाय विधातव्याः  
खिलाः क्रियाः ॥ भोज्याः पुराणाः  
त्र्यामाककोद्रवांश्चालशालयः ॥ १३ ॥  
जांगलैरवृत्तैर्मांसैः शार्कैश्चालवणैर्हितैः ॥  
शार्कैरलवणैर्दद्याजलतैलाज्यसाधितैः ॥  
॥ १४ ॥ सुनिषण्णकनिर्वार्कवृन्तारग्वध-  
पल्लवैः ॥ वायसीवास्तुकाद्यैश्च साधितैः  
शाकमूलकैः ॥ १५ ॥ शार्कैरलवणैर्युक्तं  
जीर्णं शान्त्योदनं भिषक् ॥ रुक्षणाद्वात-  
कोपश्चेन्निद्रानाशातिपूर्वकः ॥ १६ ॥  
स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः ॥  
प्रतारयेन्प्रतिघातो नदीं शीतजलां शि-

वाम् ॥ १७ ॥ सरश्च विमलं शीतं स्थिर-  
तोयं पुनःपुनः ॥ यथा विशुष्केऽस्य कफे  
शान्तिमूरुग्रहो व्रजेत् ॥ १८ ॥

ऊरुस्तम्भमें स्नेहन, रुधिरका निकलवाना ( फरु वगैरह ) वमनक्रिया, वास्तिकर्म ( पिचकारी ) और विरेचन ( जुलाव ) इनको त्यागदेवे क्योंकि इन स्नेहनादिक क्रमोंसे ऊरुस्तम्भका उलटा प्रकोप होताहै इसकारण ऊरुस्तम्भमें सदैव स्वेदन, लघन तथा रुक्षक्रिया करनी चाहिये । इस रोगमें वायुका बचाव करके आम, भेद और कफ अधिक होनेसे जो जो औषधि कफको शमन करनेवाली और वायुको कुपित नहीं करनेवाली है उनको सदैव इसमें सेवन करे । इस ऊरुस्तम्भरोगमें सकल रुक्ष क्रिया करनी चाहिये । उसमें भी प्रथम कफको नष्ट करनेवाली क्रिया प्रयोग करनी चाहिये और फिर वातनाशक क्रिया प्रयोग करे । घृतरहित जंगल प्रदेशके प्राणियोंके मांसके साथ और लवणरहित हितकारक शाकोंके साथ, पुराना सामा, पुराने कोदो, पुराने वनकोदो और पुराने चावल इनका भोजन करे, शिरआरी नीमके पत्ते, आककी शाखा, अमलतासके पत्ते, मकोय, बथुआ और मूली इत्यादि बनायेहुए जलमें, तेलमें और घीसे पकायेहुए निमकरहित शाक खाने चाहिये । खायाहुआ भोजन जीर्ण होनेके पश्चात् वैद्य उसको निमकरहित शाकोंके साथ लाल शालिचावलेका भात भक्षण करावे । जो रुक्ष क्रिया करनेसे निद्राका नाश तथा पीडासहित वायुका प्रकोप होय तो वायुकी वेदनाको हरनेवाली स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करे । रोगीको शीतल जलवाली सुन्दर नदीमें उसके प्रवाहके साथ चलावे अर्थात् तैरावे और निर्मल तथा शीतल और स्थिर जलवाले तालावमें वारंवार तैरावे ॥ १०-१८ ॥

शरीरबलमग्निश्च कार्येषा रक्षता क्रिया ॥  
सक्षारमूत्रस्वेदांश्च रुक्षाण्युत्सादनानि च  
॥ १९ ॥ कुर्याद्वाहे च मूत्राद्यैः कर-  
ञ्जफलसर्पपंः ॥ मूलैर्वाप्यश्वगन्धाया  
मूलैर्कस्य वा भिषक् ॥ २० ॥ पिबु-  
मर्दस्य वा मूलैरथ वा देवदारुणः ॥  
क्षौद्रसर्पपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं भिषक् ॥  
॥ २१ ॥ गाढमुत्सादनं कुर्याद्दूरुस्तम्भे

सवेदने । दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्षपैश्चापि  
बुद्धिमान् ॥ २२ ॥ तर्कारी सुरसाशियु-  
वचावत्सकनिम्बकैः । पत्रमूलफलैस्तोयं  
शृतमुष्णञ्च सेवनम् ॥ २३ ॥

शरीरके बलका और अग्निका बचाव करके जिस  
प्रकार कफ सूखकर ऊरुस्तम्भ शांत होय उसीप्रकार  
चिकित्सा करनी चाहिये । क्षार तथा मूत्र सयुक्त पदार्थोंसे  
स्वेदन करे । और रुक्ष पदार्थोंसे साथलोंको मले ।  
दाह होय तो मूत्रादिकसे अथवा करजवेके फलोंसे, सयुक्त  
सरसोंसे अथवा असगन्धके चूर्णसे, अथवा आककी जड़के  
चूर्णसे, अथवा नीमकी जड़के चूर्णसे, अथवा देवदारुके  
चूर्णसे साथलोंको खूब मले । वेदनायुक्त ऊरुस्तम्भमें  
उपरोक्त पदार्थोंको सहत, सरसों और बोंबोंकी मट्टी  
इनसे साथलोंको खूब दृढ रीतिसे मर्दन करे । ऊरुस्त-  
म्भकी पीडाभे बुद्धिमान् वैद्य दन्ती (जमालगोटेकी जड़),  
छोटी दन्ती, काली तुलसी और सरसों इनसे भी साथलोंको  
खूब मर्दन करे । अरणी, काली तुलसी, सैजिना, वच,  
कुडा और नीम इनके पत्तोंका, जड़का तथा  
फलोंका काथ बनाकर उस काथको गरम २ सेवन  
करे ॥ १९-२३ ॥

भल्लातकामृतागुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः ॥  
पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिव-  
हर्णाः ॥ २४ ॥

भिलावे, गिलोय, सोठ, देवदारु, हरड, पुनर्नवा  
और दशमूल इनको सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग नष्ट  
होताहै ॥ २४ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि  
च ॥ कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भा-  
द्विमुच्यते ॥ २५ ॥

पीपल, पीपलामूल और भिलावे इनका कल्क बनाकर  
सहत मिलाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता-  
है ॥ २५ ॥

रास्नाश्यामाकपथ्यामरिचमिसिशिवावे-  
ल्लशम्यश्वगन्धा यासच्छिन्नाजमोदा-  
सुमुषमतिविषावृद्धदारौ बृहत्यौ ॥ २६ ॥  
शुण्ठी तिक्ता यवानी सहचरचविकैरण्ड-

दाव्याजकर्ण्य ऊरुस्तम्भामवातं कफपव-  
नरुजं दण्डकांश्चाशु हन्यात् ॥ २७ ॥

रायसन, समा, हरड, काली मिरच, सोया, हलदी,  
वायावडग, कचूर, असगंध, जवासा, गिलोय, अजमोद  
वनतुलसी, अतीस, विधारा, कटेरी, कटाई, सोठ,  
कुटकी, अजवायन, कटसरैया, चव्य, अरड, दारुह-  
लदी और राल इनका काथ ऊरुस्तम्भ, आमवात  
कफके रोग, वातके रोग और दडकाक्षेपको तत्काल  
नष्ट करदेताहै । इसको रास्नादि काथ कहते  
हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

ग्रन्थिकारुष्ककृष्णानां काथं क्षौद्रान्वितं  
पिबेत् ॥ लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण  
कटुकायुतम् ॥ २८ ॥

पीपलामूल, भिलावे और पीपल इनका काथ बनाकर  
सहत मिलाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होताहै ।

त्रिफलेका तथा कुटकीका चूर्ण बनाकर सहनमे मिला-  
कर चाटनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होताहै ॥ २८ ॥

सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः ॥  
पिप्पलीवर्द्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन  
वा ॥ २९ ॥

षड्धरण चूर्ण जो कि वातव्याधिमें कहाहै उसको  
सुखोष्ण जलके साथ पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होताहै ।

सहतके साथ अथवा गुडके साथ वर्द्धमानपीपलका  
सेवन करे तो ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होताहै ॥ २९ ॥

ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव  
च ॥ शिलाजतु गुग्गुलं वा पिप्पलीमथ  
नागरम् ॥ ३० ॥ ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्द-  
शमूलैरसेन वा ॥

ऊरुस्तम्भ रोगमें कडवे खुरणका आसव भी सेवन  
करना लिखाहै । मूत्रके साथ अथवा दशमूलके रसके साथ  
शिलाजीत, गुग्गुल, पीपल और सोंठको पीनेसे ऊरुस्त-  
म्भकी पीडा दूर होजातीहै ॥ ३० ॥

त्रिफला पिप्पली मुस्तं चव्यं कटुकरो-  
हिणी ॥ ३१ ॥ लिह्याद्वा मधुना चूर्ण-  
मूरुस्तम्भादितो नरः ॥ घृतं सौरेश्वरं

दद्यादूरुस्तम्भे कफोत्तरे ॥ ३२ ॥ द-  
द्याच्छुण्ठीघृतं वापि वैश्वानरमथापि  
वा ॥ सैन्धवाद्यं हितं तैलममृतागुगुलि  
गुग्गुलुः ॥ ३३ ॥

त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, चव्य और कुटकी इन  
सबका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे ऊरुस्त-  
म्भकी पीडा शांत होती है । ऊरुस्तम्भमें कफकी अधि-  
कता होय तो सौरेश्वरघृत, अथवा वैश्वानर चूर्ण, अथवा  
शुण्ठीघृत व सैन्धवाद्यतैल, अथवा अमृतागुग्गुल देना  
हितकारी है ॥ ३२-३३ ॥

अथ कुष्ठाद्यतैलम् ।

कुष्ठश्रीवेष्टकोदीच्यसरलं दारु केशरम् ॥  
अजगन्धाश्वगन्धे च तैलं तैः सार्षपं  
पचेत् ॥ सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्त-  
म्भार्दितः पिबेत् ॥ ३४ ॥

कूट, सरलनिर्यास ( लोबान ), सुगन्धवाला, सरल धूप,  
देवदारु, नागकेशर, वनतुलसी और असगंध इनके कल्कसे  
पकाया हुआ सरसोंका तेल सहतके साथ यथामात्रानुसार  
पियाजाय तो ऊरुस्तम्भ नष्ट होजाता है ॥ ३४ ॥

अथाष्टकट्टरतैलम् ।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलान्नागरादष्ट कट्टरम् ॥  
तैलप्रस्थं समं दध्ना गृध्रस्पूरुग्रहापहम्  
॥ ३५ ॥ सस्नेहदाधि सघृतं तक्रं कट्टरमु-  
च्यते ॥ अष्टकट्टरतैलं च तैलं सार्षपमि-  
ष्यते ॥ पिप्पलीमूलशुण्ठ्याश्च प्रत्येकं  
द्विपलं कृतम् ॥ ३६ ॥

पीपलामूल ८ तोले, सोंठ ८ तोले, मलाई युक्त दहीसे  
बनाई हुई खट्टी छाछ ६४ तोले और दही ६४ तोले,  
सरसोंका तेल ६४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर  
विधिपूर्वक तेलको सिद्धकरे । इसको अष्टकट्टर तैल कहते-  
हैं । इस तेलका उपयोग करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग दूर हो-  
जाता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ द्विपञ्चमूलान्तैलम् ।

द्विपञ्चमूली त्रिफला चित्रकं देवदारु च ॥  
एकाष्टीला त्वपामार्गं श्रेयसी वायसी  
शुभा ॥ ३७ ॥ बला भार्गवी पृथक्पर्णी

सुवहा मदयन्तिका ॥ विशालोशिरिका-  
श्मर्यास्तिस्रो देयास्तथान्निकः ॥ ३८ ॥  
चिरविल्वो ह्यशोकश्च कलशंशुमती तथा ॥  
पयस्यापीलुपर्ण्यश्च गुडूची च शतावरी  
॥ ३९ ॥ एषां पञ्च पलान्भागाञ्जल-  
द्रोणेषु सप्तसु ॥ अष्टभागावशेषेण पचेत्तै-  
लाढकं शतम् ॥ ४० ॥ कुष्ठश्च शतपुष्पा  
च त्र्यूषण चित्रकं वरा ॥ देवदार्वगुरु  
श्रेष्ठं विडङ्गं मुस्तमेव च ॥ ४१ ॥ अश्व-  
गन्धा स्थिरा पाठा मूली श्यामाकमेव  
च ॥ पिप्पल्यः शृङ्गवेरश्च दन्ती हिङ्ग-  
ग्वम्लवेतसम् ॥ ४२ ॥ अनेन गर्भेण  
भिषक्कषायेण च साधयेत् ॥ सिद्धशीतश्च  
पूतश्च क्षौद्रेण सह संसृजेत् ॥ ४३ ॥  
तदस्य नस्यपानार्थं तदेवाभ्यञ्जने भवेत् ॥  
ऊरुस्तम्भश्चिरोद्भूतस्तैलेनानेन शाम्यति ॥  
आमवातं शीतवातं क्षुद्रवातश्च नाश-  
येत् ॥ ४४ ॥

दशमूल, त्रिफला, चीता, देवदारु, बड़ी मौलसरी,  
चिरचिटा, गजपीपल, कौआढोडी, मकोय, खिरैटी,  
भारगी, पृश्निपर्णी, निर्गुण्डी, मालिका ( मोतिया ), इन्द्रा-  
यन, खस, कुम्भेर, लालचीता, करज, अशोकके पत्र,  
शालपर्णी, क्षीरकाकोलीकी प्रतिनिधि, मूर्वा, गिलोय और  
सतावर यह प्रत्येक औषधि बीस २० बीस २० तोले  
सात द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते आठवाँ भाग  
जल शेष रहजाय तब उस छाथमें एक आढक परिमाण  
तेल पकावे, फिर इस तेलको कूट, सोया, सोंठ, दुगुनी  
मिरच, पीपल, चीता, त्रिफला, देवदारु, उत्तम अगर,  
वायविडग, नागरमोथा, असगंध, पृष्टिपर्णी, पाठ, मूली,  
समा, अदरक, दन्ती, हींग और अमलवेत इनके छाथसे  
तथा कल्कसे पकावे जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब  
कपड़ेमें छान लेवे फिर उसमें सहत मिलाकर व्यवहार  
करे । इस तेलसे नस्य, णन और अभ्यग ( मालिश )  
करे तो बहुत दिनोंका ऊरुस्तम्भ नष्ट होजाता है । यह  
तेल आमवात, क्षुद्रवात और शीतवातको भी दूर करे-  
है ॥ ३७-४४ ॥

अथ महासैन्धवाद्यतैलम् ।

सिन्धुरुग्विश्वजा सोग्रा भार्जीयष्टीस्थि-  
राफलैः ॥ दारुविश्वशटीधान्यकृष्णाकट्-  
फलपौष्करैः ॥ ४५ ॥ दीप्यकातिविषैर-  
ण्डनीलीनीलाम्बुजैः पचेत् ॥ तैलं सका-  
ञ्जिकं हन्ति पानाभ्यञ्जननावनैः ॥ ४६ ॥  
आमवातं कृमीन्गुल्मान्प्लीहोदरशिरो-  
रुजः ॥ मन्दाग्निं पक्षसन्ध्यण्डवातस्तम्भ-  
गदानपि ॥ ४७ ॥

सैधानिमक, कूट, छोटीसतावर, वच, भारगी, मुलैठी,  
पृश्निपर्णी, जायफल, देवदारु, सोंठ, कचूर, धनियॉ,  
पीपल, कायफल, पोहकरमूल, अजवायन, अतीस, एरंड,  
नील और नीलकमल, इनके द्वारा पकायाहुआ तेल  
कॉजी मिलाकर पान, अभ्यग तथा नस्यमे प्रयोग करे तो  
आमवात, कृमि, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, मस्तककी  
पीडा, मदाग्नि, पक्षाघात, संधिवात, अंडकोषकी पीडा  
और वातस्तम्भ रोग दूर होता है ॥ ४५-४७ ॥

अथ सैन्धवाद्यतैलम् ।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च गुण्ट्या ग्रन्थिकचि-  
त्रकात् ॥ द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि विंशति-  
र्द्वे तथाऽऽट्ठके ॥ ४८ ॥ आरनालात्पञ्चप्रस्थं  
तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ गृध्रस्यूरुग्रहास्यार्ति-  
सर्ववातविकारनुत् ॥ ४९ ॥

इति ऊरुस्तम्भनिदानचिकित्साधिकारः ।

सैधानिमक २ दो पल, सोंठ ५ पाँच पल, चीता २  
पल, पीपलामूल २ दो पल, भिलवैकी गुठली २० बीस  
पल और आरनाल कॉजी २ दो आठक, इनसे पांच ५  
प्रस्थ अडीके तेलको पकावे तो सैन्धवाद्य तेल सिद्ध  
होता है । यह तेल—गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ, मुखकी पीडा  
और सर्व प्रकारके वायु सम्बन्धी विकारोंको नष्ट करता  
है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इति ऊरुस्तम्भाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ आमवाताधिकारः ।

तत्रामवातनिदानपूर्वक-  
सम्प्राप्तिः ।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्लोऽपस्य च ॥  
॥ १ ॥ स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं  
कुर्वतस्तथा ॥ वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्म-  
स्थानं प्रधावति ॥ २ ॥ तेनात्यर्थमपक्वो-  
ऽसौ धमनीभिः प्रपद्यते ॥ वातपित्तकफै-  
र्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ॥ ३ ॥ स्रोतां-  
स्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥  
जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम् ॥  
॥ ४ ॥ व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञो-  
ऽतिदारुणः ॥ ५ ॥

विरुद्धाहारचेष्टस्य विरुद्धाहारः क्षीरम-  
त्स्यादिः विरुद्धचेष्टा भुक्तव्यायामादि ताभ्यां  
युक्तस्य । निश्चलस्य निर्व्यायामपरस्य । स्निग्धं  
भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वत इति मिलितो  
हेतुः । श्लेष्मस्थानम् आमाशयसन्ध्यादि ।  
तेन श्लेष्मस्थानगमनेन अत्यन्तम् अपक्वः ।  
पित्तस्थानगमनेन पक्वो भविष्यति इति अभि-  
प्रायः । असौ आमः धमनीभिः प्रपद्यते, धम-  
नीमागश्चलति । भूयो दूषितः अतिशयेन  
दूषितः । सोऽन्नजो रसः आमः स्रोतांसि  
अभिष्यन्दयति संश्रित्य रसवहशिरावरोधं  
कृत्वा स्रोतांसि गुरूणि कुर्यात् । नानावर्णः  
वातादिजनितवर्णभेदात् नानावर्णः ॥

दूध मछली आदि विरुद्ध आहार और विरुद्ध चेष्टा  
करनेवाले वा कसरत नहीं करनेवाले, मंद अग्निवाले,  
भोजनमें लंपट, और स्निग्ध अन्न खाकर कसरत करने-  
वाले, मनुष्यके वायुसे प्रेरित हुआ आम रस कफके आमाशय  
और संधियों आदि स्थानोंमें दौडकर पहुँच जाता है आम  
जो पित्तके स्थानोंमें जाय तो पकजाता है किन्तु ऊपर कहे-  
अनुसार कफके स्थानमें प्राप्त होनेके कारण अत्यन्त अपक्व  
रहा यह आम धमनिओंके मार्गसे चलता है, इसप्रकार

मच्चलन करताहुआ यह आम फिर वानसे, पित्तसे तथा कफसे अत्यन्त दूषित होकर नोतों ( छिद्रों ) में रहनेवाले रमकों बहान करनेवाली शिराओंको रोककर नोतोंको भारी करदेताहै । वातादिदोषोंसे अनेक प्रकारके वर्णवाली और अत्यन्त चिकना पिच्छिल यह आम अग्निको निर्वल कर देताहै और हृदयमें भारीपनको करताहै । यह महा-दारुण आम व्याधियोंका आश्रयरूप है ॥ १-५ ॥

अथामस्वरूपम् ।

अजीर्णाद्यो रसो जातः सञ्चितो हि क्रमेण वै ॥ आमसंज्ञां स लभते शिरो-  
गात्ररुजाकरः ॥ ६ ॥

अजीर्णाद्रुक्तादजीर्णात् ॥

भोजन किये हुए अन्नके नहीं पकनेसे जो अन्नका अपक्व रस उत्पन्न होताहै वह क्रम क्रमसे जब एकत्रित होजाताहै तब वह आम कहाजाताहै और वह आम मस्त-क्रमे तथा गात्रमें वेदना करतीहै ॥ ६ ॥

अथामवातसामान्यलक्षणम् ।

युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ॥  
स्तब्धश्च कुरुतो गात्रमामवातः स  
उच्यते ॥ ७ ॥

एतौ वातकफौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ वेद-  
नयेति वाङ्मयम् ॥

एकही समय कुपित हुए वात और आम यह दोनों त्रिकसन्धानकी स्थियोंमें पीटा करतेहुए प्रवेश करके गात्रको जकड़ देते हैं तब यह रोग आमवात कहा-  
जाताहै ॥ ७ ॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तामवातलक्षणम् ।

अंगमर्दोऽरुचिस्तृष्णा चालस्यं गौरवं  
ज्वरः ॥ अपाकः शून्यतांगानामामवा-  
तस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

विशेषार्थम् अस्य संग्रहः ॥

अंगोंका दृटना, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, भारीपन, ज्वर, अन्नका नहीं पचना और अंगोंकी शून्यता यह आम-  
वातके लक्षण हैं ।

आमवातमें विशेष जाननेके लिये अन्यग्रन्थोंमें कहे हुए  
यह लक्षण हमने इस रूपमें लिखे हैं ॥ ८ ॥

अथ वाताधिक्यामवातलक्षणम् ।

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो  
भवेत् ॥ हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानू-  
रुसन्धिषु ॥ ९ ॥ करोति सरुजं शोथं  
यत्र दोषः प्रपद्यते ॥ स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं  
व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ १० ॥ जनये-  
त्सोऽग्निर्दौर्बल्यं प्रसेकारुचिर्गौरवम् ॥  
उत्साहहानिं वरस्यं दाहश्च बहुमूत्रताम् ॥  
॥ ११ ॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा  
निद्राविपर्ययम् ॥ तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च  
हृद्ग्रहं विद्विबद्धताम् ॥ जाडयान्त्रकूज-  
मानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १२ ॥

यदा प्रकुपितो भवेत्प्रकषण कपितः  
स्यात्तदा वक्ष्यमाणानुपद्रवान्करोति । हस्ते-  
त्यादि यत्र दोषः दुष्टः आमः प्रपद्यते गच्छति  
तानाह जाड्यम् अकर्मण्यत्वम् । अन्यानुप-  
द्रवान् कलायखञ्जत्वादीन् ॥

सम्पूर्ण रोगोंमें अत्यन्तकष्टजनक जब यह आमवात  
अधिक कुपित होताहै तब हाथ, पाँव, मस्तक, गुल्फ,  
त्रिक, घुटने, सॉथल और घुटनोंके जोड़ इनमें पीडा  
युक्त सूजन उत्पन्न करताहै । दुष्ट हुआ यह आम जिनप्रदे-  
शमें जाताहै उसीशरीरके प्रदेशमें वीर्यूके काटे हुएकी  
समान घोर पीडा करताहै, आम वातसे जठराग्नि निर्वल  
होजातीहै, मुखमें थूक आने लगताहै, अरुचि होतीहै,  
शरीरमें भारीपन, उत्साहका नाश, विरसता, दाह, मूत्रकी  
बाहुल्यता, पेटमें कठिनता, शूल, निद्राका नाश, तृष्णा,  
वमन, मूर्च्छा, हृदयमें जडता, मलका अवरोध, जडता,  
आंतोंका कुँलना, अफारा और दूसरे कलायखजादिक भी  
दुःखदायक उपद्रव होतेहैं ॥ ९-१२ ॥

अथामवातविशेषलक्षणम् ।

पित्तात्सदाहरागश्च सशूलं पवनात्मकम् ॥  
स्तिमितं गुरुकण्डूकं कफजुष्टं तमादि-  
शेत् ॥ १३ ॥

गुरुकण्डकम् बहुकण्डूकम् ॥



दाह तथा लाली होय तो आमवातको पित्तका जानना, जो शूल चले तो वायुका आमवात जानना और खुजली बहुत चलती होय तथा जडता होय तो कफका आमवात जानना ॥ १३ ॥

### अथामवातसाध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ॥ सर्वदेहचरैः शोथैः स कष्टः सान्निपातिकः ॥ १४ ॥

जो आमवात एक दोषका होय तो साध्य जानना, दो दोषोंका होय तो याप्य जानना और जो तीन दोषोंका होय तथा सम्पूर्ण शरीरमें सूजन होय तो असाध्य जानना ॥ १४ ॥

### अथामवातचिकित्सा ।

लघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ॥ विरेचनं स्नेहनञ्च वस्तयश्चाममारुते ॥ १५ ॥

आमवातमें प्रथम लघन करना, सेक करना, तिक्त-पदार्थ, अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ और तीक्ष्ण पदार्थ सेवन करे, विरेचन देवै, स्नेहन कर्म करे और पिचकारी लगानी यह सब उपचार करे ॥ १५ ॥

रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥ उपनाहाश्च कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ १६ ॥

रेतीकी पांठली बनाकर उसका रूक्ष सेक करे और स्नेहरहित उपनाह स्वेद देवै ॥ १६ ॥

आमवाताभिभूताय पीडिताय पिपासया ॥ पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमुच्यते ॥ १७ ॥

आमवातसे दुःखित मनुष्य तृषासे पीडित होय तो उसको पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोठ इनसे पकाया हुआ जल देना उत्तम है ॥ १७ ॥

शुष्कमूलकयूषं वा यूषं वा पाञ्चमौलिकम् ॥ रसकं काञ्जिकं वापि शुण्ठीचूर्णावचूर्णितम् ॥ १८ ॥

आमवातवाले मनुष्यको सूखी मूलीका यूष अथवा पंचमूलका यूष अथवा जिसमें सोठका चूर्ण मिला होय ऐसी काँजीको देवै ॥ १८ ॥

सौवीरं स्विन्नवार्त्तिकं तथा तिक्तफलानि च ॥ वास्तूकशाकं सारिष्टशाकं पौनर्नवं हितम् ॥ १९ ॥ पटोलं गोक्षुरश्चैव वरुणं कारवल्लकम् ॥ यवान्नं कोरदूषान्नं पुराणशालिषष्टिकम् ॥ २० ॥ लावकानां तथा मांसं हितं तत्रेण संस्कृतम् ॥ हितश्च यूषः कौलथः कालायश्चणकस्य च ॥ २१ ॥

सौवीर नामक काँजीमें द्रैगनको उवालकर अथवा कडवे फलोंको उवालकर सेवन करे । बथुयेका शाक, नीमके पत्तोंका शाक, पुनर्नवेका शाक, परवलो, गोखरु-ओका शाक, वरना, करेला, जौ, कोदों, पुरानेशालिधान और साठी धान, तत्रमे सगोधन किया हुआ लवाका मांस कुलथीका यूष, मटर और चने यह सब आमवातमें हितकारी हैं ॥ १९-२१ ॥

रुच्यं दद्याद्यथासात्म्यमामवातहितञ्च यत् ॥ शतपुष्पा वचा विश्वश्चदंष्ट्रावरुणत्वचः ॥ २२ ॥ पुनर्नवा सदेवाह्वाशटीमुण्डितकाः समाः ॥ प्रसारणी च तर्करीफलञ्च मदनस्य च ॥ २३ ॥ शुक्तकाञ्जिकपिष्टा च कोष्णा च लेपने हिता ॥ अहिंसा केसुकान्मूलं शिशुर्वल्मीकमृत्तिका ॥ मूत्रपिष्टैश्च कर्तव्यमुपनाहः प्रलेपनम् २४ ॥

आमवात रोगीकी प्रकृतिके अनुसार जो उसको रुचे और आमवातमें हितकारी होय वही उसको देवै ।

सोया, वच, सोठ, गोखरु, वरनाकी छाल, पुनर्नवा, देवदारु, कचूर और गोरखमुंडी, प्रसारणी, अरणी, मैनाफल, इनको सिरकेकी काँजीमें पीसकर सुखोष्ण लेप करे तो आमवातमें अत्यंत हितकारी है ।

अहिंसा ( हींस ), अंडकी जड़, सैजिना और बॉबीकी मट्टी इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर पीडाके स्थानमें बॉधनेसे अथवा लेप करनेसे आमवात रोग शमन होता है ॥ २२-२४ ॥

चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गातिविषाऽमृ-  
ताः ॥ २५ ॥ देवदारुवचामुस्तनागरा-  
तिविषाभयाः ॥ पिवेदुष्णाम्बुना नित्य-  
मामवातस्य भेषजम् ॥ २६ ॥

चीना, कुटकी, पाठ, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय,  
देवदारु, वच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस और हरड इनको  
एकत्र पीसकर गरम जलके साथ नित्य पिये तो आमवात,  
शमन होताहै ॥ २५ ॥ २६ ॥

शटीशुण्ठयभयाश्चोत्रा देवाह्वातिविषा-  
ऽमृताः ॥ कषायमामवातस्य पाचनं रुक्ष-  
भोजनम् ॥ २७ ॥

कचूर, सोंठ, हरड, वच, देवदारु, अतीस और  
गिलोय इनका काथ पिये और रुक्ष भोजन करे तो आम-  
वात नष्ट होजातीहै ॥ २७ ॥

पुनर्नवा च बृहतीवर्द्धमानफणिज्जकैः ॥ क-  
ल्पथेत्काथमाने तु मूर्वाशिग्रुद्रुमैर्भिषक् २८ ॥

पुनर्नवा, कयाई, एरड, मरुआ, मूर्वा और सीजि-  
नेका पचाग इनका काथ बनाकर वैद्य आमवातरोगीको  
पिलावे ॥ २८ ॥

सेचनं चामवातस्य रुक्कपयसापि वा ॥  
लिह्यात्पथ्यां सविश्वां वा मूत्रैर्वा गुग्गुलुं  
पिवेत् ॥ २९ ॥ विश्वाल्मुषयोः कल्क-  
मद्याद्वा तिलविश्वयोः ॥ विश्वपथ्यामृता-  
काथं कवोष्णं कौशिकान्वितम् ॥ कटीजंबो-  
रुपृष्ठानां रुजं पीतं निवर्तयेत् ॥ ३० ॥

आमवात रोगपर एरडके पानीका सेचन करे, अथवा  
सोंठके साथ हरडको खाय, अथवा मूत्रके साथ गुग्गुलुको  
गाय । अथवा सोंठ तथा गोरखमुण्डीका कल्क खाय ।  
अथवा तिलका तथा सोंठका कल्क खाय अथवा सोंठ,  
हरड तथा गिलोय इनका काथ बनाकर उसमें गुग्गुलु  
डालकर कुट्टेक गरम करके पिये, तो कमर, सांयल तथा  
पीठकी पीडा शांत होजातीहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

हिंवाद्यचूर्णम् ।

हिगु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाजार्जा स-

पुष्करम् ॥ भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वा-  
तामजिद्भवेत् ॥ ३१ ॥

हींग, चव्य, विरियासचरनिमक, सोंठ, कालाजीरी  
( कलौजी ) और अडकी जड यह सब पदार्थ एकसे एक  
दुगुना लेकर चूर्ण बनाकर सेवन करे तो आमवातकी पीडा  
शांत होजातीहै ॥ ३१ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं सैन्धवं कृष्णजी-  
रकम् ॥ चव्यचित्रकतालीसपत्रकं नाग-  
केशरम् ॥ ३२ ॥ एषां द्विपलिकान्भागा-  
न्पञ्च सौवर्चलस्य च ॥ मरिचाऽजाजि-  
शुण्ठीनामैकैकस्य पलंपलम् ॥ ३३ ॥  
दाडिमात्कुडंबश्चैव द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥  
सर्वमेकत्र संक्षुध्य योजयेत्कुशलो भिषक् ॥  
॥ ३४ ॥ पिप्पल्याद्यभिति ख्यातं नष्ट-  
स्याग्रेष्व दीपनम् ॥ अशासि ग्रहणी गुल्म-  
मुदरं सभगन्दरम् ॥ ३५ ॥ कृमिकण्डू-  
रुचीर्हन्त्यात्सुरयोष्णोदकेन वा ॥ नातः  
परतरकिञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥ ३६ ॥

पीपल, पीपलामूल, सैन्धानिमक, कालाजीरा, चव्य,  
चीता, तालीसपत्र और नागकेशर यह प्रत्येक पदार्थ आठ  
आठ तोले लेवे, कालानिमक पांच तोले लेवे, कालीमिर्च,  
जीरा और सोंठ चार ४ चार ४ तोले लेवे, दाडिभीसार  
सोलह तोले लेवे और अमलवेत आठ तोलेभर ले, इन  
सब औषधियोंको एकत्रित करके चतुर वैद्य कूट पीस चूर्ण  
बनाकर रोगीको देवे । इसको पिप्पल्यादिचूर्ण कहतेहैं ।  
इसको सहतके साथ अथवा गरमजलके साथ पिये तो  
नष्ट हुई जठराग्नि फिरसे दीपन होतीहै । और बवासीर,  
ग्रहणी, गुल्म, उदरके रोग, भगन्दर, कृमि, खुजली और  
अरुचि दूर होजातीहै । आमवातकी इससे उत्तम अन्य  
औषधि नहीं है ॥ ३२-३६ ॥

अथ पथ्याद्यचूर्णम् ।

पथ्याविश्वयवानीभिस्तुल्याभिश्चूर्णितं पि-  
वेत् ॥ तत्रेणोष्णोदकेनापि काञ्जिकेना-

थ वा पुनः ॥ ३७ ॥ आमवातं निहन्त्याशु  
शोथं मन्दाग्नितामपि ॥ पीनसं कासहृद्गं  
स्वरभेदमरोचकम् ॥ ३८ ॥

हरड, सोठ और अजवायन इन सबको समान भाग  
लेकर चूर्ण बनाकर तक्र ( मट्टा ) के साथ, गरमजलके  
साथ अथवा काँजीके साथ पिये तो आमवात, सूजन,  
जठराग्निकी मंदता, पीनस, खोंसी, हृदयकी पीडा, स्वर  
भेद और अरुचि दूर होती है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथ रसोनादिकषायः ।

रसोनविश्वनिर्गुण्डीकाथमामार्दितः पि-  
बेत् ॥ नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य  
भेषजम् ॥ ३९ ॥

आमसे पीडित मनुष्यको लसुन, सोठ और निर्गुण्डी  
इनका काथ पीना चाहिये, इस काथसे अधिक आम-  
वातकी अन्य औषधि नहीं है ॥ ३९ ॥

अथ रास्नापंचककाथः ।

रास्नां गुडचीमेरण्डं देवदारु महौषधम् ॥  
पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिम-  
ज्जगे ॥ ४० ॥

रासना, गिलोय, अडकी जड, देवदारु और सोंठ  
इनका काथ सर्वांगवात, आमवात, सधिगतवात, अस्थि-  
गतवात और मज्जागतवातसे पीना चाहिये ॥ ४० ॥

अथ पिप्पल्यादिकाथः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥  
कथितं वारि तत्पेयमामवातविना-  
शनम् ॥ ४१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका  
काथ बनाकर पिये तो आमवात नष्ट होजाता है ॥ ४१ ॥

अथ शत्यादिकल्कः ।

शटी विश्वौषधीकल्कं वर्षाभूकाथसंयु-  
तम् ॥ सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविना-  
शनम् ॥ ४२ ॥

कचूर तथा सोंठ इनका कल्क बनाकर पुनर्नवेके  
काथके साथ सात दिनतक पिये तो आमवात नष्ट होजाता  
है ॥ ४२ ॥

अथ रास्नासप्तककाथः ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपु-  
नर्नवानाम् ॥ काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं  
जड्वोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली ॥ ४३ ॥

रासना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखरु, अंड-  
की जड और पुनर्नवा इनका काथ बनाकर उसमें सोंठका  
चूर्ण डालकर पीनेसे पिडालिओका, सांथलोका, पसलियोका,  
त्रिकस्थानका और पीठका शूल नष्ट होजाता है ॥ ४३ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥  
खादेद्वाप्यभयाविश्वं गुडूचीं नागरेण  
वा ॥ ४४ ॥

पीपलका चूर्ण डालकर दशमूलका काथ पीनेसे अथवा  
सोंठ तथा हरडको भक्षण करनेसे अथवा गिलोय तथा  
सोंठको भक्षण करनेसे आमवात नष्ट होजाता है ॥ ४४ ॥

अथ चित्रकादिचूर्णम् ।

चित्रकेन्द्रयवापाठाकटुकातिविषाभयाः ॥  
आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बु-  
ना ॥ ४५ ॥

चीता, इन्द्रजौ, पाद, कुटकी, अतीस और हरड  
इनका चूर्ण करके कुछेक गरमजलके साथ पीनेसे आमा-  
शयकी वायु दूर होजाती है ॥ ४५ ॥

अथ पुनर्नवादिचूर्णम् ।

पुनर्नवाऽमृता शुण्ठी शताह्वा वृद्धदारकम् ॥  
शटी मुण्डितिका चूर्णमारनालेन पाय-  
येत् ॥ ४६ ॥ आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं  
पेयं सुखाम्बुना ॥ आमवातं निहन्त्याशु  
गृध्रसीमुद्धतामपि ॥ ४७ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, सोया, विधारा, कचूर और  
गोरखमुडी इनका चूर्ण बनाकर आरनालनामक काँजी  
अथवा गरमजलके साथ पीनेसे आमवातरोग तत्काल नष्ट  
होजाता है और भयकर गृध्रसीवात नष्ट होती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ नागरचूर्णम् ।

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबे-

त्सदा ॥ आमवातप्रशमनं कफवातहरं  
परम् ॥ ४८ ॥

सोंठका चूर्ण एक तोलाभर लेकर कांजीके साथ नित्य  
पिये तो आमवातरोग शांत होजाताहै । यह औषधि कफ  
तथा वायुको हरनेवाली उत्तम है ॥ ४८ ॥

अथ पंचकोलचूर्णम् ।

पञ्चकोलकचूर्णन्तु पिवेदुष्णेन वारिणा ॥  
मन्दाग्निशूलगुल्मामकफारोचकनाशन-  
म् ॥ ४९ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका  
चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ पिये तो अग्निकी मन्दता,  
शूल, गुल्म, आम, कफ और अरुचि इनका नाश  
होताहै ॥ ४९ ॥

अथैरण्डतैलम् ।

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ॥  
एक एव निहन्ताशु ऐरण्डतैलके-  
शरी ॥ ५० ॥

शरीररूपी वनमें विचरण करनेवाले आमवातरूपी  
उन्मत्त हाथीको इकला अंडीका तेलरूप सिंह मारदे-  
ताहै ॥ ५० ॥

अथैरण्डतैलहरीतकी ।

ऐरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधि-  
वत् ॥ आमानीलार्तिर्युक्तो गृध्रसीवृद्ध्या-  
र्दितो नियतम् ॥ ५१ ॥

आमवातसे, गृध्रसीसे और अर्दितवातसे पीडित मनु-  
ष्यको अंडीके तेलके साथ हरडका चूर्ण अवश्य सेवन  
करना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथारग्वधपत्रप्रयोगः ।

आरग्वधस्य पत्राणि भृष्टानि कटुतैलतः ॥  
आमत्रानि नरः कुर्यात्सायं भक्तावृतानि  
च ॥ ५२ ॥

सन्ध्याके समय सरसोंके तेलमें अमलतासके पत्तोंको  
संरुकर भक्षण करे और उसके पश्चात् भोजन करे तो  
आमघी पीडा नष्ट होजातीहै ॥ ५२ ॥

अथ कटिग्रहपंगुरोगलक्षण  
चिकित्से ।

वायुः कट्याश्रितः शुद्धः सामो वा जन-

येदुजम् ॥ कटीग्रहः स एवोक्तः पंगुस-  
क्थनोर्द्वयोर्वधात् ॥ ५३ ॥ शुण्ठीगोक्षु-  
रकक्वाथः प्रातःप्रातर्निषेवितः ॥ सामे  
वातकटीशूले पाचनं रुक्प्रणाशनम् ॥ ५४ ॥

कटिमें रहनेवाली शुद्ध अथवा आमसहित वायु व्यथाको  
उत्पन्न करतीहै इसको कटिग्रह कहतेहैं जो इसमें दोनों  
साथल विकारको प्राप्त होजावे तो इसको पगुरोग कहतेहैं ।  
सोंठ और गोखुरु इनका क्वाथ नित्य प्रातःकाल सेवन  
करे तो आमसहित वायुरोगीका कटिशूल नष्ट होताहै और  
आमका पाचन होताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

यवक्षारसमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥  
दशमूलीकषायेण पिवेद्वा नागराम्भसा ॥  
॥ ५५ ॥ कटीशूलेषु पातव्यं तैलमैरण्ड-  
सम्भवम् ॥ महौषधगुहूच्योश्च क्वाथं  
पिप्पलिसंयुतम् ॥ पिवेदामे सरुक्कोष्ठे  
कटीशूले विशेषतः ॥ ५६ ॥

अंडीके तेलमें जवाखार डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग  
नष्ट होताहै और दशमूलके साथ अथवा सोंठके क्वाथके  
साथ अंडीका तेल पीनेसे कटीशूल नष्ट होताहै ॥

आममें, कोटेकी पीडामें और विशेष करके कटिग्रह-  
पर सोंठ और गिलोयके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर  
पिये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपा-  
चयेत् ॥ ५७ ॥ तत्पायसं कटीशूले  
गृध्रस्यां परमौषधम् ॥ सर्पिस्तैलं गुडं  
शुक्तं पञ्चमं विश्वभेषजम् ॥ ५८ ॥ पीत-  
मेतद्भवेत्सद्यस्तर्पणं कटिशूलनुत् ॥ न हि  
चैतत्समं किञ्चिन्निरामे कटिमारुते ॥  
॥ ५९ ॥ शुकतरुवल्कलसहितं गोमूत्रं  
स्थापितन्तु सप्ताहम् ॥ हिंगुवचा  
प्पासैन्धवयुक्तेन तेनाथ ॥ ६० ॥ तत्पु-  
टपक्कं हन्यात्कटीरुजं दारुणं पुंसाम् ॥  
आममेदोवृद्धिभवान्विकारांश्चानिलोद्भ-  
वान् ॥ ६१ ॥

अडीके बीजोको साफकर पीस करके दूधमे पकाकर उस दूधपाकको सेवन करनेसे कटिग्रह तथा गृध्रसर्वात दूर होजाताहै । कटिग्रह तथा गृध्रसीका यह उत्तम उपायहै ।

घी, तेल, गुड, शुक्तनामक कांजी और सोंठ इन सबको एकत्र मिलाकर पिये तो तत्काल वृत्ति होतीहै और कटिग्रह नष्ट होताहै, आमरहित कटिग्रहपर इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है । देवदारुकी छालको गोमूत्रमे पीसकर सातदिनतक रखदेवे, फिर इसको हींग, वन्च, सोया और सैंवेनिमकके साथ पीसकर पुटपाककी विधिसे पकावे इसको सेवनकरनेसे दारुण कटिग्रह तथा आम, भेद और वायुकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए दूसरे विकारभी शांत होजातेहैं ॥ ५७-६१ ॥

### अथामृताद्यचूर्णम् ।

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डितिकावरुणकैः कृतं चूर्णम् ॥ मस्त्वारनालपीतं सामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ ६२ ॥

गिलोय, सोंठ, गोखरू, गोरखमुंडी और वरना इनका चूर्ण करके दहीके तोडके साथ अथवा आरनालके साथ पिये तो आमवातका नाश होताहै ॥ ६२ ॥

### अथालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं त्रिफलानागरामृताः ॥ यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामाचूर्णश्च तत्समम् ॥ ६३ ॥ पिबेन्मस्तु सुरां तत्र काञ्जिकोष्णोदकेन वा ॥ आमवातं जयत्याशु सशोथं वातशोणितम् ॥ ६४ ॥ त्रिकजानूरुसन्धिस्थज्वरारोचकनाशनम् ॥ अलम्बुषादिकं चूर्णं रोगानीकविनाशनम् ॥ ६५ ॥

गोरखमुंडी १ भाग, त्रिफला २ भाग, सोंठ ४ भाग, गिलोय ५ भाग और निसोतका चूर्ण १५ भाग लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर दहीके पानीके साथ, मदिराके साथ, कांजीके साथ अथवा गरम जलके साथ पिये तो सूजनरहित आमवात, वातरक्त, त्रिकस्थानमें प्राप्त हुआ ज्वर, घुटने, जवा और सोंथलेंकी पीडा और अरुचि इन सबका नाश होताहै । यह अलम्बुषादिचूर्ण रोगोंकी सेनाको नष्ट करनेवाला है ॥ ६३-६५ ॥

हरीतक्यक्षधात्रीभिः प्रसिद्धा त्रिफला क्रमात् ॥ प्रत्येकं तेन वा युञ्ज्याद्भागवृद्धिं यथोत्तरम् ॥ ६६ ॥

हरड, वेहेडा, आमला इन तीनोंको त्रिफला कहतेहैं । एक एक भागसे बढायके उपयोग करना, अथवा प्रत्येक एक एकसे उपयोग करना ॥ ६६ ॥

### अथ द्वितीयालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं मूलं वरुणकस्य च ॥ गुडूची नागरश्चेति समभागानि कारयेत् ॥ ६७ ॥ काञ्जिकेन तु तत्पेयं बिडालपदमात्रकम् ॥ आमवाते प्रवृद्धे च योगोऽयममृतोपमः ॥ ६८ ॥

गोरखमुंडी, गोखरू, वरनाकी जड़, गिलोय और सोंठ इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करै इसमे एक-तोला चूर्ण लेकर कांजीके साथ पीवे. बढे हुए आमवातरोगपर यह उपाय अमृतकी समान है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

### अथ तृतीयालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं गुडूची वृद्धदारुकम् ॥ पिप्पली त्रिवृता मुस्ता वरुणं सपुनर्नवम् ॥ त्रिफला नागरश्चेति सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६९ ॥ मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा ॥ आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥ ७० ॥

गोरखमुंडी, गोखरू, गिलोय, विधारा, पीपल, निसोत, नागरमोथा, वरना, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ इनका बारीक चूर्ण बनाकर दहीके पानीके साथ, तक्रके साथ, दूधके साथ अथवा मासरसके साथ पीवे तो तत्काल आमवात नष्ट होजाताहै तथा संधियोंमें प्राप्त हुई सूजन भी दूर होजातीहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

### अथ वैश्वानरचूर्णम् ।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वदेव तु ॥ भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥ ७१ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः



सूक्ष्मचूर्णीकृतं शुभम् ॥ मस्त्वारनालत-  
क्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ ७२ ॥ पीतं  
जयत्यामवातं गुल्महृद्वस्तिजान्गदान् ॥  
प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनानाहं गुदजानि च  
॥ ७३ ॥ विबन्धं जाठरात्रोगान्कटीव-  
स्तिमुत्थितान् ॥ वातानुलोमनभिदं  
चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ७४ ॥

सैधानिमक २ भाग, अजवायन २ भाग, अजमोद ३ भाग, सोंठ ४ भाग और हरट १२ भाग इन सबका वारीक चूर्ण बनाकर दहीके पानीके साथ और आरनाल-नामक कौजीके साथ, तक्रके साथ, घीके साथ अथवा गरम जलके साथ पीये तो आमवात, गुल्म, हृदयकी पीडा, मूत्राशयकी पीडा, प्लीहा, ग्रन्थि, शूलादि, अफारा, ववासीर, मलबन्ध, उदरके रोग और कमरके तथा मूत्राशयके रोग सब नाश होतेहैं । यह वैश्वानर चूर्ण वायुको योग्यमार्गमें संचार करानेवाला है ॥ ७१-७४ ॥

### अथासीतकचूर्णम् ।

असीतकं मागधिका गुडूची श्यामा  
वराही गजकर्णशुण्ठी ॥ समा धृताः  
कृत्स्नमिदन्तु चूर्णं पिवेत्तदुष्णोदकमण्ड-  
यूपैः ॥ ७५ ॥ तक्रै रसैर्मद्यसमस्तुभिर्वा  
यथेष्टचेष्टस्य च भोजनस्य ॥ अवाहुकं  
गृध्रसिखञ्जवातं विश्वाचितूनीप्रतितूनि-  
रोगान् ॥ जंघामवातार्दितवातरक्तं  
कटीग्रहं गुल्मगुदामयश्च ॥ प्रकोष्ठकं  
पाण्डुगरोग्रशोफं हन्यादुरुस्तम्भमुदीर्ण-  
वेगम् ॥ ७६ ॥

दिण्णुकान्ता, पीपल, गिलोय, निसीत, वाराहीकद, एरड आर सोंठ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उस चूर्णको गरम जलके साथ, माइके साथ, मूत्रके साथ, तक्रके साथ, मांसके रसके साथ, मद्यके साथ अथवा दहीके पानीके साथ पिये । इसपर आहार विहार अच्छातुआ करे । इस चूर्णसे—अपवाहुक, गृध्री, खज, विनाची, दूनी, प्रतिदूनी, पिटलीके रोग, आमवात, अर्दि-त, वातरक्त, कटीग्रह, गुल्म, ववासीर, क्रोष्टुगीर्ष, पाण्डु-

रोग, विष, उग्र सूजन और प्रवलवेगवाला ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होताहै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

### अथ शुंठीधान्यकघृतम् ।

शुंठीनां षट्पलं पिष्टं धान्याकं द्विपलं  
तथा ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं वि-  
पाचयेत् ॥ ७७ ॥ वातश्लेष्मामयान्हन्या-  
दग्निवृद्धिकरं परम् ॥ दुर्नामश्वासकासघ्नं  
वलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥

सोंठ २४ तोले और आठ तोले धनिया इनका कल्क बनाकर वह कल्क डालकर चौंसठ ६४ तोलेभर घी चौगुने जलमें डालकर पकावे तो शुंठीधान्यक घृत सिद्ध होताहै । यह घी अग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करताहै, बलको बढ़ाताहै, वर्णको उत्तम करताहै और वायुसम्बन्धी रोग, कफ सम्बन्धी रोग, ववासीर, श्वास और खासी इन सब रोगोंको दूर करेहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

### अथ घृतसिद्धिः ।

पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्रसं-  
ग्रहे ॥ दीपनार्थं मतिप्रता मस्तुना च  
प्रकीर्तितम् ॥ ७९ ॥ सर्पिर्नागरकल्केन  
सौवीरं तच्चतुर्गुणम् ॥ सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठ-  
मामवातहरं परम् ॥ ८० ॥

जो पुष्टिके लिये बनावे तो इसको दूधमें पकाना चाहिये । मल तथा मूत्रके अवरोधके लिये बनावे तो इसको दहीमें पकावे । और अग्निको दीपन करनेके लिये बनावे तो बुद्धिमान् वैद्य इसको दहीके तोडके साथ पकावे, सोंठका कल्क डालकर चौगुनी सौवीरनामक कौजीमें घृतको पकावे तो शुटीघृत सिद्ध होताहै । यह घी अग्निको दीपनकरनेमें उत्तम है और आमवातको नष्टकरनेका सहज उपाय है ।

### अथ शुंठीघृतम् ।

नागरकाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाच-  
येत् ॥ चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेन जलेन  
वा ॥ ८१ ॥ वातश्लेष्मप्रशमनमग्निस-  
न्दीपनं परम् ॥ नागरं घृतमित्युक्तं कटी-  
शूलामनाशनम् ॥ ८२ ॥

चौसठ तोलेभर घीमे सोंठका कल्क डालकर उस घीको चौगुने सोंठके द्वाथमे अथवा केवल पानीमे पकावे तो शुठीघृत सिद्ध होता है । यह घी वात तथा कफको भसन करता है । अग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करता है और कटिग्रह तथा आमको दूर करै है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अथ कांजिकाद्यघृतम् ।

हिंगु त्रिकटुक चव्यं माणिमन्थं तथैव च ॥ कल्कान्कृत्वा तु पलिकान्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८३ ॥ आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ॥ शूलं विबन्धमानाह-  
मामवातकटीग्रहम् ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ८४ ॥

हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, चव्य और सैधानिमक इन प्रत्येकको एक एक तोला लेकर कल्क बनाकर चौसठ तोलेभर घीको दोसौ छप्पन २५६ तोले कौंजीमें पकावे तो काजिकाद्यघृत सिद्ध होता है । यह घी मंदाग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करता है तथा शूल, मलबध, उदरके रोग, अफारा, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणीदोष इनको नाश करै है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ शृंगवेराद्यघृतम् ।

शृङ्गवेरयवक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः ॥ पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिरारनालं चतुर्गुणम् ॥ ८५ ॥ शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषमग्निसन्दी-  
पनं परम् ॥ ८६ ॥

अदरख, जवाखार, पीपलामूल और पीपल इनका कल्क बनाकर चौगुनी आरनालनामक कौंजीमें घृतको सिद्ध करे । इसको शृंगवेराद्यघृत कहते हैं । यह घी अग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करता है और शूल, मलबध अफारा, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणीदोष इन सबका नाश करै है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

पिबेद्विन्दुघृतं वापि धान्वन्तरमथापि वा ॥  
महाशुण्ठीघृतं वापि आमवाते पुनःपुनः  
॥ ८७ ॥ यत्किञ्चिल्लेखनं सर्पिर्दीपनं

पाचनञ्च यत् ॥ तत्सर्वमामवातेषु योज्यं  
वा मस्तु षट्पलम् ॥ ८८ ॥

आमवातमें विदुघृत अथवा धान्वन्तरघृत अथवा महा-  
शुण्ठीघृत वारंवार पीना चाहिये । जो जो घी कफके उखाडनेवाले, अग्निको दीपन करनेवाले और आमको पाचन करनेवाले हैं उन सबका आमवातपर उपयोग करना चाहिये । अथवा २४ तोले मस्तुका उपयोग करे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथाजमोदादिचूर्णवटकौ ।

अजमोदमरिचपिप्पलीविडंगसुरदारुचि-  
त्रकशताह्वाः ॥ सैन्धवं पिप्पलीमूलं भा-  
गा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ ८९ ॥ शुण्ठी  
दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदा-  
रस्य ॥ पथ्यापलानि पञ्च च सर्वाण्ये-  
कत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ९० ॥ समगुडव-  
टकानदतश्चूर्णं वात्युष्णवारिणा पिबतः ॥  
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुक-  
ष्टाश्च ॥ ९१ ॥ प्रतितूनी विश्वाची रोगा-  
श्चान्येऽपि गृध्रसी चोग्रा ॥ कटिपृष्ठगुद-  
स्फुटनञ्चैवार्ति जंघयोस्तीव्राम् ॥ ९२ ॥  
श्वयथुश्च सर्वसन्धिषु ये चान्येऽत्यामवा-  
तसम्भूताः ॥ सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव  
सूर्याशुविध्वस्तम् ॥ ९३ ॥ क्षुद्रोधमरोगि-  
त्वं स्थिरयौवनमथ बलीपलितनाशम् ॥  
कुरुते च तथाभ्यासाद्गुणानथान्यास्तथा  
सुबहून् ॥ ९४ ॥

अजमोद, मिरच, पीपल, वायविडंग, देवदारु, चीता, सोया, सैधानिमक, और पीपलामूल ये प्रत्येक पदार्थ चार २ तोले लेवे, सोंठ ४० तोले लेवे, विघारा ४० तोले लेवे, और हरड २० तोले लेवे, इन सब पदार्थोंको एकत्रित करके सबका चूर्णकर उसमें बराबरका गुड मिलाकर बडे बनावे उन बडोंको सेवन करनेसे अथवा कुछेक गरम जलसे उस चूर्णको खानेसे जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे अन्धकारका नाश होता है उसीप्रकार इस औषधिसे आम-  
वातसम्बन्धी समस्त दुःखदायक रोग नष्ट होते हैं ।

इसको सेवन करनेसे तूनी, प्रतितूनी, विश्वान्त्री, अन्यान्य वातरोग, उग्रगृधसी, कमर, पीठ, गुदा और पिडलियोंमें फोडने सरीखी पीडाका होना, सर्व सन्धियोंमें प्राप्तहुई सूजन और अन्यान्यभी आमसे तथा वातसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होते हैं । इस अजमोदादि औषधिका अभ्यास करनेसे सुख जागृत होताहै । आरोग्यता प्राप्त होती है । यौवन स्थिर होताहै । वली तथा पलित रोगोंका नाश होताहै । यह अत्यंत गुणो करके युक्त है ॥ ८९-९४ ॥

### अथ योगराजगुग्गुलुः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानीं कारवीं  
तथा ॥ विडंगमजमोदाश्च जीरके सुरदारु  
च ॥ ९५ ॥ चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्ता  
गोक्षुरधान्यकम् ॥ त्रिफला मुस्तकं व्यो-  
षन्त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ ९६ ॥ ताली-  
सपत्रं पत्रश्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥  
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु गुग्गु-  
लुम् ॥ ९७ ॥ संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धं  
भाण्डे निधापयेत् ॥ अतो मात्रां प्रयुं-  
जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ ९८ ॥ अग्नि-  
मान्ध्यामवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानपि ॥  
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥  
अग्निश्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं  
तथा ॥ वातरोगं जयत्येष सन्धिमज्जा-  
गतानपि ॥ १०० ॥

चीता, पीपलामूल, अजवायन, कलौंजी, वायविडग, अजमोद, जीरा, काला जीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सैधानिमक, कूट, रासना, गोखरू, वनियों, त्रिफला, नागरमोथा, सोंठ, मिरच, पीपल, तज, खस, जवास्त्रार, तालीसपत्र और तेजपत्र इनका बारीकचूर्ण बनावे और इस सब चूर्णकी बराबर गुग्गुलु लेकर बीमें न्यूय मर्दनकरके चूर्णमें मिलावे । इस गुग्गुलुकी बीके चिकने वासनमें भरके रंग देवे । अग्निका बलाबल विचारकर इसकी मात्राको सेवन करे । और इस पे यथेच्छ भोजन करे । इससे मटाग्न, उदरके रोग, अफारा, बवासीर, आमवातादिरोग, कृमि, दुष्टव्रण, प्लीहा, इन सब रोगोंका नाश होताहै । और अग्नि दीपन होतीहै । तेजकी वृद्धि

होती है, बल बढ़ता है, यह गुग्गुलु सधियोंमें तथा मजामे रहनेवाले वातरोगोंको दूर करताहै ॥ ९५-१०० ॥

### अथ प्रसारणीलैहः ।

प्रसारण्याढके काथे प्रस्थो गुडरसो मतः ॥  
पक्वः पञ्चोषणरजोयुक्तः स्यादामवात-  
हा ॥ १०१ ॥

दोसौ छप्पन्न २५६ तोलेभर प्रसारणीके काथमें चौसठ तोलेभर गुडका रस डालकर पकावे, फिर उसमें पीपल, पीपलामूल, सोंठ, चीता और चव्य, इनका चूर्ण डालकर मिलाकर सेवनकरे तो आमवातका नाश होताहै ॥ १०१ ॥

### अथ खंडशुठो ।

नागरस्य पलान्यष्टौ वृतस्य पलविंशति-  
म् ॥ क्षीरं द्विप्रस्थसंयुक्तं खंडस्यार्द्धं शतं  
पचेत् ॥ १०२ ॥ व्योषत्रिजातकद्रव्यात्म-  
त्येकश्च पलं पलम् ॥ निदध्याच्चूणतं  
तत्र खादेदग्निबलं प्रति ॥ १०३ ॥ आम-  
वातप्रशमनं बलपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ बल्यमा-  
युष्यमोजस्यं वलीपलितनाशनम् ॥ आम-  
वातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥ १०४ ॥

सोंठ ३२ तोले, घी ८० तोले, दूध १२८ तोले और खोंड २० तोले इनका पाक करके उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, तज, तेजपात और दलायची प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर चूर्ण बनाकर मिलादेवे तो खंडशुठी सिद्ध होतीहै । इस खंडशुठीको अग्निके बलानुसार सेवन करे तो आमवात शांत होती है । बल तथा पुष्टि बढ़ती है । आयुष्यकी वृद्धि होती है । ओज बढ़ताहै और उत्तम सौभाग्य प्राप्त होताहै ॥ १०२-१०४ ॥

### रसोनपिडः ।

पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा ॥  
हिगु त्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि  
च ॥ १०५ ॥ शतपुष्पा निशा कुष्ठं  
पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ अजमोदा  
यवानी च धान्याकश्चापि बुद्धिमान्

॥ १०६ ॥ प्रत्येकञ्च पलञ्चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ घृतभाण्डे दृढे चैव स्थापयेद्दिनषोडशम् ॥ १०७ ॥ प्रक्षिप्य तैलमानाञ्च प्रस्थाद्धं कांजिकस्य च ॥ खादेत्कर्षप्रमाणन्तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ १०८ ॥ आमवाते रक्तवाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंस्थिते ॥ अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गरेषु च ॥ सोन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ १०९ ॥

लसुन ४०० तोले, तिल १६ तोले, हींग ४ तोले, सोठ ४ तोले, भिरच ४ तोले, पीपल ४ तोले, जवाखार ४ तोले, सजी ४ तोले, पंचलवण ४ तोले, सोया सोंफ ४ तोले, हलदी ४ तोले, कूठ ४ तोले, पीपलामूल ४ तोले, चीता ४ तोले, अजमोद ४ तोले, अजवायन ४ तोले और धनियों ४ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके उसमें ३२ तोले तेल और ३२ तोले कोंजी डालकर घीके चिकने उत्तम मजबूत बासनमें भरके सोलह दिनतक रखदेवे । इससे नित्य एक तोलाभर खाय और जल तथा सहतका अनुपान करे । इससे आमवात, वातरक्त, सर्वाङ्गवात, एकाङ्गवात, अपस्मार, अग्निकी मदता, खोत्सी, श्वास, विष, उन्माद, वातभग्न, शूल और कृमि इन सबका नाश होता है ॥ १०५-१०९ ॥

### अथ प्रसारणीतैलम् ।

प्रसारण्या रसे सिद्धं तैलमैरण्डजं पिबेत् ॥ सर्वदोषहरञ्चैव कफरोगहरं परम् ॥ ११० ॥

प्रसारणीके रससे पकाया हुआ अडीका तेल पिया जाय तो सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं और विशेष करके कफके रोग नष्ट होते हैं ॥ ११० ॥

### द्विपञ्चमूलाद्यतैलम् ।

द्विपञ्चमूलीनिर्यासफलदध्यम्लकांजिकैः ॥ तैलं कटारुपार्श्वार्तिकफवातामयान्ग्रहान् ॥ हन्ति वस्तिप्रदानेन करोत्यग्निबलं महत् ॥ १११ ॥

दशमूल, गोद, जायफल, दही और खट्टी कोंजी इनसे पकाये हुए तेलकी पिचकारी लगावै तो कमरका दर्द, पसलियोंका शूल, कफके रोग, वातरोग इन सबका नाश होता है तथा अग्निका बल बढ़ता है ॥ १११ ॥

### अथ बृहत्सैन्धवाद्यतैलम् ॥

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यवानिका ॥ स्वर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ ११२ ॥ वचाऽजमोदा सरणी पौष्करं मधुकं कणा ॥ एतान्यर्द्धपलांशानि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ११३ ॥ प्रस्थमेरुदतैलस्य प्रस्थन्तु शतपुष्पजम् ॥ कांजिकं द्विगुणं दत्त्वा मस्तुं च द्विगुणं तथा ॥ ११४ ॥ एतत्सम्भृत्य सम्भारं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम् ॥ ११५ ॥ पानाभ्यञ्जनवस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम् ॥ वातार्तिवक्षणे शस्तं कटीजानूरुसन्धिजे ॥ ११६ ॥ शूले हृन्पार्श्वजे तद्वद्वृद्धे श्लेष्मणि पीडिते ॥ बाह्यायामार्दितानाहैरत्रवृद्धिनिपीडिते ॥ अन्यांश्चानिलजान्नोगान्नाशयत्याशु देहिनाम् ॥ ११७ ॥

सैधानिमक, हरड, रास्ना, सोया, अजवायन, सजी, भिरच, कूठ, सोठ, कालानिमक, विरियासञ्चरनिमक, वच, अजमोद, या परसन अडकी जड, पोखरमूल, मुलैठी और पीपल ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर खूब पीसकर कल्क बनावे, फिर ६४ चौसठ तोले तेल, ६४ चौसठ तोले सोया, १२८ एकसौ अठाईस तोले कोंजी और १२८ एकसौ अठाईस तोले दहीका तोड़ इन सबको एकत्र करके उसमें पहिला कल्क डालकर उस तेलको कोमल अग्निसे धीरे २ पकावे तो बृहत्सैन्धवाद्यतैल सिद्ध होता है । पीनेमें अभ्यंग ( मालिश ) करनेमें और वस्तिकर्ममें इस तेलका उपयोग करे तो आमवात अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाता है । यह तेल अग्निके, बलको अत्यन्त बढ़ाता है । वातसे उत्पन्न हुई वक्षणकी पीडा, कटिग्रह, घुटनोंकी पीडा, जघाकी वायु, संधियोंकी पीडा, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, कफकी वृद्धि, बाह्यायाम, अर्दित, अफारा,

अत्रबृद्धि तथा इसके सिवाय और भी मनुष्योंके वात-  
सम्बन्धी रोग नष्ट होजातेहैं ॥ ११२-११७ ॥

अथ निरुहवस्तिः ।

स्वल्पप्रसारणीतैलं तैलं वा सैन्धवादि-  
कम् ॥ दशमूलाद्यतैलेन वस्तिदानं प्रश-  
स्यते ॥ ११८ ॥ तैलस्य द्विपलं दद्या-  
त्कांजिकस्य चतुःपलम् ॥ दशमूलरसं मूत्रं  
पृथक्पञ्च पलानि तु ॥ ११९ ॥ वचा  
मदनवाट्या वा सताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥  
पिप्पल्यतिविषामुस्तारास्नाकटफलपौष्करैः  
॥ १२० ॥ अक्षांसिकैश्च तत्सर्वं मन्यथोत  
विचक्षणः ॥ प्रस्थार्हं प्रथमं देयो वस्तिर्नि-  
रभिशांकितः ॥ १२१ ॥ द्वितीये च  
तृतीये च वर्जयेत्प्रसृतद्वयम् ॥ सर्ववात-  
विकारेषु मेहेषु वृषणामये ॥ १२२ ॥  
कुक्षौ हृत्पृष्ठपार्श्वेषु जानुजंघाकटीग्रहे ॥  
विबन्धानाहरोगेषु शर्कराश्मरिपीडिते  
॥ १२३ ॥ मग्नविशिष्टगान्त्रेषु पिच्छितेषु  
क्षतेषु च ॥ एतन्निरुहवत्प्राज्ञो निरायासो  
महागुणः ॥ १२४ ॥

लघुप्रसारणीतैलकी, अथवा सैन्धवाद्यतैलकी, अथवा  
दशमूलाद्यतैलकी पिचकारी लगानी आमवातमें हितकारी  
है । इस पिचकारीमें तेल आठ तोले काँजी सोलह तोले,  
दशमूलका रस बीस तोले और गोमूत्र बीस तोले भरे ।  
फिर इन सब पदार्थोंको एकत्र मिलाकर वच, मेनफल,  
खिरंटी, गोया, कूट, सैन्धानिमक, पीपल, अतीस, नागरमोथा  
रासना, कायफल और अटकी जड़ यह प्रत्येक एक एक  
चोला लेकर पहिला मिश्रित किया हुआ तेल आदि औषधि-  
योंका मथन करे । फिर निःशंक होकर बत्तीस तोले इस  
द्रवकी पिचकारी लगावे । दूसरीवार तथा तीसरीवार  
चौबीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे, सर्व प्रकारके  
वातविकार, प्रमेह, वृषणकी पीडा, कुक्षिरोग, हृदयरोग,  
पीठकी पीडा, पसलियोंकी पीडा, जानुगतवायुकी पीडा,  
जवागत वायुकी पीडा, कमरका दर्द, विबन्ध, अफारा,  
शर्करारोग, अग्निरोग, मग्नशरीर और पिच्छित हुए व्रणमें  
यह निरुहवन्नि अत्यन्त गुणकारक है और थोडा परिश्रम  
करनेवाली है ॥ ११८-१२४ ॥

अथामवातेऽपथ्यम् ।

दधिमत्स्यगुडक्षीरं पोतकी माषापिष्टकम् ॥  
वर्जयेदामवातातौ मांसमानूपसम्भवम्  
॥ १२५ ॥ अभिष्यन्दकरा ये च ये चान्ये  
गुरुपिच्छिलाः ॥ वर्जनीयाः प्रयत्नेन  
आमवातादितैर्नरैः ॥ १२६ ॥

आमवातसे पीडित मनुष्य दही, मछली, गुड, दूध,  
पोईका शाक, उडदोंके बड़े और अनूपदेशके जीवोंका  
मांस इन सबका त्यागकर, देवे, जो पदार्थ अभिष्यन्दी है,  
जो पदार्थ पिच्छिल और भारी हैं, उन सबको आमवातसे  
पीडित मनुष्य अवश्य त्याग देवे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ मध्यमरास्नादिकाथः ।

रास्नैरण्डशतावरोसहचरोदुःस्पर्शवासामृ-  
तादेवाह्वातिविषाभयाघनशटीशुण्ठीकषा-  
यः कृतः ॥ पीतः सोरुबुतैल एष विहितः  
सामे सशूलेऽनिले कट्यूरुत्रिकपृष्ठकोष्ठज-  
ठरक्रोडेपु चामार्तिजित् ॥ १२७ ॥

रासना, अडकी जड़, सतावर, कटसरैया, जवासा  
अद्वसा, गिलेय, देवदारु, अतीस, हरड, नागरमोथा,  
कचूर और सोंठ इनका काय वनाकर अडकी तेल डालकर  
पीनेसे आमसहित तथा शूलसहित वायु, कटिग्रह ऊरु-  
स्तम्भ, पीठकी पीडा, पीठका रहजाना, कोठेकी पीडा  
और उदरकी पीडा जो कि आमसे उत्पन्न होतीहैं सब  
नष्ट होजातीहैं ॥ १२७ ॥

अथ महारास्नादिकाथः ।

रास्ना वातारिमूलश्च वासकश्च दुराल-  
भम् ॥ शटीदारुवलामुस्तनागरातिवि-  
षाभयाः ॥ १२८ ॥ श्वदंष्ट्रा व्याधिघा-  
तश्च मिसिधान्यपुनर्नवाः ॥ अश्वगन्धा-  
मृता कृष्णा वृद्धदारः शतावरी ॥ १२९ ॥  
वचा सहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम् ॥  
समभागान्वितैरैतै रास्नाद्विगुणभागिकैः  
॥ १३० ॥ कषायं पाययेत्सि-



द्धमष्टभागावशेषितम् ॥ शुण्ठीचूर्णसमा-  
युक्तमाभाघेन युतं तथा ॥ १३१ ॥ अल-  
म्बुषादिसंयुक्तमजमोदादिसंयुतम् ॥ यथा-  
दोषं यथाव्याधि प्रक्षेपं कारयेद्विषक्  
॥ १३२ ॥ सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्ज-  
गतेषु च ॥ आनाहेषु च सर्वेषु सर्वगात्रा-  
नुकम्पने ॥ १३३ ॥ कुब्जके वामने चैव  
पक्षाघाते तथार्दिते ॥ जानुजंघास्थिपी-  
डासु गृध्रस्यां च हनुग्रहे ॥ १३४ ॥ प्र-  
शस्तं वातरक्ते स्यादूरुस्तम्भे तथार्शसि ॥  
विश्वाचीगुल्महृद्दोगविषूचीक्रोष्टुशीर्षके ॥  
॥ १३५ ॥ अन्त्रवृद्धौ श्लीपदे च योनिशु-  
क्रामये तथा ॥ पुंसां मेढ्रगते रोगे स्त्रीणां  
वन्ध्यामये तथा ॥ १३६ ॥ योषितां  
गर्भदं मुख्यं नास्ति किञ्चिदतः परम् ॥  
सर्वेषां पाचनानान्तु श्रेष्ठमेतद्धि पाचनम् ॥  
महारास्नादिकं नाम प्रजापतिविनिर्मि-  
तम् ॥ १३७ ॥

रासना, अण्डकी जड़, अड्डसा, जवासा, कचूर,  
खिरैटी, नागरमोथा, अतीस, हरड, गोखरू, अमलतास,  
सौफ, धनियॉ, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल,  
विधारा, सतावर, वच, कटसरैया, चव्य, कटेरी और  
कटाई इन सब औषधियोंमें रास्ना दो भाग लेंवै और  
सब औषधि एक एक भाग लेकर इनका अष्टावशेष काथ  
बनावे इसमें वैद्य दोष तथा व्याधिके अनुसार शुण्ठीचूर्ण,  
अथवा आभाद्यचूर्ण अथवा अलम्बुषादिचूर्ण अथवा  
अजमोदादिचूर्ण डाले, इस काथको पीनेसे समस्त वात-  
रोग, सन्धिवात, मजागतवात, सर्व प्रकारका आनाह,  
सर्व अंगोंका कापना, कुब्जकवात, वामनवात, पक्षाघात,  
अर्दितवात, जानुगत वायु, जघागत वायु आस्थियोंमें  
प्राप्त हुई वायुकी पीडा, गृध्रसी वात, हनुग्रह, वातरक्त,  
ऊरुस्तम्भ, बवासीर, विश्वाची, गुल्म, हृदयरोग, विषू-  
चिका, क्रोष्टुशीर्ष, अन्त्रवृद्धि, श्लीपदरोग, योनिरोग शुक्र-  
रोग, लिगगत रोग और स्त्रियोंके वन्ध्या रोग नष्ट होतेहैं ।  
स्त्रियोंको गर्भ देनेवाला इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं  
है । सर्वप्रकारके काथोंमें यह उत्तम पाचन है । यह  
महारास्नादि प्रजापतिने स्वयं कहाहै ॥ १२८-१३७ ॥

अथ रास्नादिदशमूलकाथः ।

रास्नाविश्वविडंगानि रुबूकं त्रिफला  
तथा ॥ दशमूलं पृथक् श्यामा काथो  
वातामयापहः ॥ १३८ ॥ अर्द्धावभेदके  
त्वाढ्ये चार्दिते वातखंजके ॥ नेत्ररोगे  
शिरःशूले ज्वरापस्मारयोस्तथा ॥ मनोभ्रंशे  
च विविधे कथितश्च शुभप्रदम् ॥ १३९ ॥

इति आमवातनिदानचिकित्साधिकारः ।

रासना, सोंठ, वायविडग, एरण्ड, त्रिफला, दशमूल  
और निसोत इनका काथ बनाकर पीनेसे वातसम्बन्धी  
रोग, आधाशीशी, ऊरुस्तम्भ, अर्दित, खज्ज, नेत्रके सम-  
स्तरोग, मस्तकका शूल, ज्वर, अपस्मार और अनेक  
प्रकारके मनसम्बन्धी रोग नष्ट होतेहैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

इति आमवाताधिकारः सपूर्णः ।

अथ पित्तव्याध्यधिकारः ।

तत्र पित्तव्याधिविप्रकृष्टसंनि-  
कृष्टनिदानम् ।

कट्फलोष्णविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवा-  
सातपस्त्रोसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्याया-  
ममद्यादिभिः ॥ मध्ये चापि हि भोज-  
नस्य जरता भुक्तेन मध्यक्षणे मध्याह्न  
रजनी निदाघशरदोः पित्तं करोत्याम-  
यान् ॥ १ ॥

मद्यादिभिः इत्यादिशब्देन दधिमत्स्यमा-  
षतिलातसीकांजिकादीनि संगृह्यन्ते तीक्ष्ण  
राजिकादि । मध्ये चापि हि भोजनस्य यावत्  
कालेन भुक्ते तस्य कालस्य मध्यमभागे ।  
जरता भुक्तेन भुक्तस्य जरणकालमध्ये ।  
मध्यन्दिने त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य मध्यां-  
शे तथा रात्रेः मध्यमंशे ॥

चरपरे वा तीखे, खट्टे, गरम, दाहकारक, तीक्ष्ण नम-  
कीन वा खारी पदार्थोंके खानेसे, क्रोध करनेसे, उपवास

लवणादि करनेसे, सताप अथवा धूपको सेवन करनेसे, स्त्रीप्रसंग करनेसे, तृषाको रोकनेसे, भूखको मारनेसे, कसरत दड अथवा परिश्रमके काम करनेसे, मदिरा पीनेसे, दही, मछली, उडद, तिल, अलसी तथा काजी आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे, भोजन करते समयके मध्यकालमें, भोजन पचनेके मध्यकालमें, दिनके मध्यभागमें, रात्रिके मध्यभागमें, ग्रीष्मऋतु और शरद् ऋतुमें पित्त कुपित होकर रोगको उत्पन्न करताहै ॥ १ ॥

अथ पित्तरोगाः ।

अकालपलितं नेत्ररक्तत्वं तस्य पीतिमा ॥  
तद्वन्मूत्रस्य पीतत्वं मलस्यापि च पी-  
तता ॥ २ ॥ नखानामामरक्तत्वं तेषा-  
मपि च पीतता ॥ दंतानाञ्चापि पीतत्वं  
पीतत्वं वपुषस्तथा ॥ ३ ॥ तमसो दर्श-  
नञ्चापि तथा च वदनाम्लता ॥ उच्छ्वास-  
सस्योष्णता चापि धूमोद्गारस्तथैव च ॥  
॥ ४ ॥ भ्रमः कुमस्तथा क्रोधो दाहो  
भेदसमन्वितः ॥ तेजो द्वेषश्च शीतच्छा-  
द्यनृतिरतिस्तथा ॥ ५ ॥ भक्षितस्य वि-  
दाहश्च जठरानलतीक्ष्णता ॥ रक्तप्रवृत्ति-  
विड्भेदः पुरीषस्योष्णता तथा ॥ ६ ॥  
मूत्रोष्णता मूत्रकृच्छ्रं शुक्राल्पत्वं तनू-  
ष्णता ॥ स्वेदस्य चापि दौर्गन्ध्यं देहप्रा-  
वरणं तथा ॥ ७ ॥ शरीरस्यावसादश्च  
पाकश्च वपुषस्तथा ॥ चत्वारिंशदमी  
पित्तव्याधयो मुनिभिर्मताः ॥ ८ ॥

एषां चिकित्सा तु स्वप्रकरणे वोद्धव्या ॥

इति पित्तव्याध्यधिकारः ।

विनाही समय वालोंका पकना अर्थात् सफेद होजाना, नेत्र लाल हों, नेत्र पीले हों, मूत्र पीला हो, विष्टा पीला हों, नखोंमें गुलाबीपन, नखोंमें पीलापन, दातोंमें पीलापन, शरीर पीला हो, अन्वकार दर्शन, मुखमें खट्टापन, आसका गन्ध होना, मुखमेंसे धुँयेकीतरह उकारका आना, भ्रम, ग्यानि, क्रोध, दाह, भेद, प्रकाशसे द्वेष, शीतकी शृच्छा, अनृति, अरति, भोजनका विदाहपाक होना, जठराग्निही तीक्ष्णता, रुविरका निकलना, दस्तोंका आना, विष्टाका गरम होना, मूत्रका गरम होना,

मूत्रकृच्छ्र, वीर्यकी अल्पता, शरीरका गरम रहना, पसीनेमें दुर्गन्धका होना, देहका फटना, शरीरमें पीडा और शरीरका पकना यह चालीस रोग मुनियोंने पित्तव्याधि कही हैं । इन पित्तव्याधियोंकी चिकित्सा इन इन व्याधियोंके प्रकरणमें कही सो उस उस प्रकरणमें समझलेनी चाहिये ॥ १-८ ॥

इति पित्तव्याध्यधिकारः ।

अथ श्लेष्मव्याध्यधिकारः ।

तत्र श्लेष्मव्याधिसंनिघृष्टविप्रकृष्ट-  
निदानम् ।

गुरुमधुररसादिस्निग्धमंदोदराग्निद्रवदधि-  
दिननिद्राशीतनिश्चेष्टितानि ॥ प्रथमदिव-  
सभागे भुक्तमात्रे वसन्ते भवति हि कफ-  
रोगो रात्रिभागेऽपि चाद्ये ॥ १ ॥

मधुररसादि इत्यादिशब्देन अम्ललवणौ गृह्येते । निश्चेष्टितं कायिकव्यापाराकरणम् । प्रथमदिवसभागे त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य आद्यभागे । भुक्तमात्रे भुक्तस्य पाककालस्य त्रिधा विभक्तस्य प्रथमकाले कफरोगो भवति ॥

भारी पदार्थोंके खानेसे, मधुररसको सेवन करनेसे, स्निग्ध पदार्थोंको सेवन करनेसे, जठराग्नि की मन्दतासे, द्रव ( जलदुग्धादि ) पदार्थोंसे, दहीको सेवन करनेसे, दिनमें सोनेसे, शीतसे और कामकाज आदि शरीरके व्यापार नहीं करनेसे अर्थात् खाली बेकाम बैठे रहनेसे, दिनके प्रथम भागमें, भोजन पचनेके पहिले समयमें, तथा रात्रिके पहिले भागमें कफके रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥

अथ कफरोगाः ।

प्रथमं मुखमाधुर्यं तथैव मुखलितता ॥ २ ॥  
मुखप्रसेकश्च तथा निद्राधिक्यं तथैव च ॥  
कंठं घुर्धुरता चापि कटुकांक्षोष्णकामिता ॥ ३ ॥ बुद्धिमांशमचैतन्यमालस्यं तप्तिरेव च ।

अग्निमान्द्यं मलाधिक्यं मलशैत्यं तथैव  
च ॥४॥ मूत्राधिक्यं मूत्रशौक्यं शुक्रा-  
धिक्यं तथैव च ॥ स्तैमित्यं गौरवं शैत्य-  
मेत एव हि विंशतिः ॥ योगतो रूढितः  
प्रोक्ता मुनिभिः श्लेष्मिका गदाः ॥ ५ ॥  
एषां चिकित्सा तु स्वप्रकरणे बोद्धव्या ।

इति श्लेष्मव्याध्यधिकारः ।

मुखमें मधुरता, मुखमें कफका ल्हसा रहना, मुखसे  
थूकका निकलना, निद्राकी अधिकता, कठमें घरघराहट,  
तीखे पदार्थोंकी इच्छा, उष्णपदार्थोंकी इच्छा, बुद्धिकी  
मदता, अचैतन्यता, चपलताका घटजाना, आलस्य,  
तृप्ति, अग्निकी मंदता, विष्टाकी अधिकता, विष्टाकी  
शीतलता, मूत्रकी अधिकता, मूत्रका श्वेत होना, वीर्यकी  
अधिकता, शरीरको भीजेवस्त्रसे ढके हुएकी माफिक  
मालूम होना, शरीरका भारीपन और शरीरका शीतल  
रहना यह बीस व्याधि मुनियोंने श्लेष्मव्याधि कहीं है  
यद्यपि इनके सिवाय और भी कफके रोग होतेहैं तथापि  
योगरूढि रीतिके अनुसार इनही व्याधियोंमें 'श्लेष्मव्याधि'  
यह शब्द प्रवर्त्त होताहै । इन व्याधियोंकी चिकित्सा  
अपने अपने प्रकरणोंमें कही है इस कारण उनहीं उन  
प्रकरणोंमें समझनी चाहिये ॥ २-५ ॥

इति श्लेष्मव्याध्यधिकारः सपूर्णः ।

## अथ वातरक्ताधिकारः ।

तत्र प्रथमवातरक्तनिदानम् ।

लवणाम्लकटुक्षारस्त्रिगुणजोष्णाजीर्णभोजनैः ॥  
क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूल-  
कैः ॥ १ ॥ कुलत्थमाषानिष्पावशाकादि-  
पल्लेक्षुभिः ॥ दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्र-  
सुरासवैः ॥ २ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदि-  
वास्वप्नातिजागरैः ॥ प्रायशः सुकुमाराणां  
मिथ्याहारविहारिणाम् ॥ स्थूलानां सुखि-  
नाश्चापि प्रकुप्येद्वातशोणितम् ॥ हस्त्यश्वो-

घैर्गच्छतश्चाश्वतश्च विदाह्यन्नं सविदाहा-  
शनस्य ॥ ३ ॥

कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च दुष्टं शीघ्रं  
पादयोश्चीयते तु ॥ तत्संपृक्तं वायुना दूषि-  
तेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ ४ ॥

क्षारो यवक्षारादि । अजीर्णभोजनैः  
अजीर्णे भोजनैः अतिमात्रभोजनैरित्यर्थः ।  
क्लिन्नादीनि मांसविशेषणानि । शुष्कमा-  
तपे शोषितम् । अम्बुजं मत्स्यादि । मांसम्  
आनूपं गौडादि पूर्वदेशजम् । पिण्याकं  
तिलखलिः । मूलकं प्रसिद्धमेव । निष्पावः  
[ वोडा ] शाकं पत्रशाकम् । आदिशब्देन  
वृन्ताकादीनां फलशाकादीनां फलं गृह्यते ।  
दोषरहितमपि मांसं वातशोणितं प्रकोप-  
येत् । शीतादिषु मांसं विशेषतो वातशो-  
णितं प्रकोपयेत् । आरनालसौवीरशुक्तानि  
सन्धानभेदाः । तक्रं चतुर्थांशजलयुक्त वस्त्र-  
पूतं दधि । सुरा सन्धानभेदः । विरुद्धं क्षीर-  
मत्स्यादि । अध्यशनम् 'अजीर्णे भुज्यते यत्तु  
तदध्यशनमुच्यते' । अतिजागरो निशि ।  
प्रायशः बाहुल्येन सुकुमाराणां अल्पतर-  
कायव्यापाराणाम् । अथ च मिथ्याहारवि-  
हारिणाम् अल्पाहारविहारिणां स्थूला-  
नां सुखिनां रक्तवृद्ध्या । हस्त्यश्वोघैर्ग-  
च्छतः यतः वायुर्वर्द्धते रुधिरश्च अधो  
गच्छति । हस्त्यादय उपलक्षणानि । पद्भ्या-  
मपि चलतः । अश्वतश्च विदाह्यन्नम् ।  
विदाहि निष्पावकुलत्थसर्षपशाकादि ।  
सविदाहाशनस्य सविदाहि अशनं यस्य ।  
भुक्ते विदग्धे तदुपरि भुञ्जानस्य इत्यर्थः ।  
अध्यशनमुक्तमप्येतद्वचनं विदग्धं जीर्णम् ।  
भोजनस्य विशेषतो हेतुत्वम् । पश्चात्  
वातशोणितं प्रकुप्यति इति अन्वयः । एतेषां  
कारणानां मध्ये केनचिद् वायुः केनचिद्  
रक्तं केनचिदुभयमपि प्रकुप्येत् । अथ

सम्प्राप्तिमाह कृत्स्नेत्यादि-पूर्वोक्तैर्हेतुभिः  
कृत्स्नं समस्तम् । अधोगतम् पादयोः  
नीयते संचितं भवति, तत् रुधिरम् दूषितेन  
स्वेहेतुभिर्वायुना सम्पृक्तं मिलितम् वातरक्तम्  
उच्यते । ननु च एतस्य सम्प्राप्तिरुक्ता  
सुश्रुतेन-

शीघ्रं रक्तं दुष्टिमायाति तच्च वायोर्मार्गं संरु-  
णद्ध्याशु वातम् ॥ कुष्ठोऽत्यर्थं मार्गरोधात्स  
वायुरत्युद्रिक्तं दूषयेदक्तमाशु ॥ ५ ॥

अत्र प्रथमं रक्तस्य दुष्टिरतो रक्तवात-  
मिति व्यपदेशमुचितं भवति । तत्राह तत्  
प्रावल्यादिति । तस्य वातस्य दोषत्वेन प्रा-  
धान्यात् वातरक्तमिति व्यपदिश्यते ॥

नमकीन, खट्टे, चरपरे, तीखें, जवाखारादि खारी,  
चिकने और गरम ऐसे पदार्थोंका भोजन करनेसे, अत्यत  
भोजन करनेसे, सडा हुआ तथा धूपमें सुखा हुआ ऐसा  
मछलियोंका तथा गौट आदि पूर्व देशके जीवोंका मांस  
खानेसे, तिलोंकी खलको खानेसे, गूली, कुलथी, उडद,  
लोबिया, पत्रशाक, बैंगन आदि फल शाक और मांसको  
खानेसे, ईख, दही, आरनाल, सौवीर, शुक्र, तक्र,  
सुरा और आसवकी सेवन करनेसे, दूधके साथ मछली  
आदि विरुद्ध आहार करनेसे अजीर्णमें भोजन करनेसे,  
क्रोध करनेसे दिनमें सोनेसे और अत्यन्त रात्रिमें  
जागनेसे प्रायः मिथ्याहार विहार करनेवाले सुकुमार  
( कोमल, कृश, दुर्बल ) स्वयं शरीरवाले और धटे  
रहकर सुख भोगनेवाले, हाथी चोटेपर चढ़कर जाने-  
वाले, तथा बहुत मार्ग चलनेवाले, लोबिया, कुलथी,  
सरसो आदि शाकको भक्षण करनेवाले और भोजनके  
विदग्ध पाक होनेपर भोजन करनेवाले मनुष्योंके वायु  
तथा रक्त प्रकुपित होताहै । इन सब कारणोंमें किसी  
कारणसे वायु कुपित होतीहै, किसी कारणसे रुधिर  
प्रकुपित होताहै और किसी कारणसे दोनों कुपित होते-  
है ॥ १-३ ॥

ऊपर कहे हुए कारणोंसे सम्पूर्ण रुधिर तत्काल  
विगड जाताहै और वह विगडा हुआ रुधिर नीचे जाकर  
दोनों पांवोंमें एकत्रित होजाताहै यह रुधिर कारणोंसे  
दूषित होकर वायुके साथ मिलजाताहै और इसमें वायुकी  
प्रबलता होतीहै इस कारण इसको वातरक्त कहतेहैं ।

शंका-“रुधिर तत्काल विगड जाताहै और वह शीघ्र  
गतिवाला रुधिर वायुके मार्गको तुरत रोक देताहै,  
मार्गके रोकनेसे अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुए रुधिरको  
तत्काल दूषित करताहै” यह सुश्रुतके वचनमें प्रथम  
रुधिरका विगडना कहा है, इस कारण इस रोगको ‘रक्त-  
वात’ ऐसा कहना ठीक था किन्तु ‘वातरक्त’ ऐसा नाम  
क्यों कहा ?

समाधान-शोधकों कारणोंसे इस रोगमें वायुको  
प्राधान्यता है इस कारण यह रोग वातरक्त कहाजाता-  
है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वातरक्तपूर्वरूपम् ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्यं स्पर्शज्ञत्वं क्ष-  
तेऽतिरुक् ॥ सन्धिष्वैथिल्यमालस्य सद-  
नं पिडिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजंघोरु-  
कट्यंसहस्तपादांगसन्धिषु ॥ निस्तोदः  
स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ ७ ॥  
कण्डूः सन्धिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति  
चासकृत् ॥ वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृ-  
क्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

धर्मागमनमत्यर्थं भवति न वा सर्वथा  
भवति एतच्च व्याधिमहिम्ना कुष्ठवद्बोद्धव्य-  
म् । क्षतेऽतिरुक् यदि क्षतं स्यात्तदा तत्र  
अतिरुक् । सदनं सुप्तिः । अंगानां पिडिकाप्रा-  
दुर्भावः । जान्वादिषु निस्तोदः पीडाविशेषः ।  
वैवर्ण्यं त्वक्कान्तिक्षयः ॥

जब वातरक्त होनेको होताहै तब पसीना  
अत्यत आताहै अथवा किञ्चिन्मात्र भी नहीं आता,  
शरीरमें कृशता, स्पर्शका ज्ञान नष्ट होजाताहै, घण  
होय तो उसमें अत्यंत पीडा होतीहै, सधियोंमें

( १ ) निर्विनाश मात्र भी वायु तथा रुधिरको कुपित  
करताहै और सडा हुआ तथा धूपमें सुखा हुआ तो विशेष  
करके वात और रक्तको कुपित करताहै ॥

शिथिलता, आलस्य, अगोमें जडता, फूडिये, फुंसियोका निकलना, जानु, जंघा, ऊरु, कटि, हाथ, पाँव और सम्पूर्ण अगोकी सधियोंमें शस्त्र छेदने सरीखी पीडा होती है तथा अग फडकतेहैं, भेद बढ़जाताहै भारीपन, ग्लानि, खुजली, सधियोंमें व्यथा, वारंवार दाह होकर शांत होना, त्वचा ( चमडी ) की कांतिका नष्ट होजाना और अगोमें चकत्ते पडजातेहैं ।

पसीनेका अत्यंत होना अथवा किञ्चिन्मात्र भी नहीं होना, यह व्याधिके प्रभावसे होताहै ॥ ६-८ ॥

अथ वाताधिक्यवातरक्तलक्षणम् ।

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलं स्फुरणतोदनम् ॥ शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावता वृद्धिहानयः ॥ ९ ॥ धमन्यंगुलिसन्धीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् ॥ शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुमुत्तयः ॥ १० ॥

तत्र पादयोः शूलादिकम् । यत आह सुश्रुतः । “स्पर्शोद्भिन्नौ तोदभेदप्रशोफौ स्वापोपेतौ वातरक्तेन पादौ” इति । तथा शोथस्य रौक्ष्यादिकं वृद्धिहानयश्च विज्ञेयाः । सुप्तिः स्पर्शज्ञिता ॥

वातरक्तमें वायुकी अधिकता होय तो शूल होताहै, अगोंका फडकना, व्यथा, सूजनमें रुक्षता, तथा कालापन और कुछेक कालापन होताहै, सूजन बढ़तीहै, घटतीहै, नाडियोंमें तथा अगुलियोंकी सधियोंमें संकोच होताहै, अग रहजातेहैं, अत्यंत व्यथा होतीहै, शीतपर द्वेष होताहै शरीर अकड जाय, कप और स्पर्शका ज्ञान नष्ट होजाताहै ।

शूल तथा फडकना आदि पाँवमेंही होताहै ऐसा जानना, कारण यह है कि “वातरक्तमें दोनों पाँव स्पर्शसे उद्वेगकी प्राप्त होतेहैं और दोनों पाँवोंमें व्यथा, भेदन, सूजन तथा जडता होतीहै” ऐसा सुश्रुतने कहा है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ रक्ताधिक्यवातरक्तलक्षणम् ।

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ॥ स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डू-क्लेदसमन्वितः ॥ ११ ॥

रक्तेऽधिक इत्यनुवर्तनीयम् । एवं वक्ष्यमाणपित्तादिषु इति एतच्च आरम्भकरक्ताद्रक्तान्तरं बोद्धव्यम् । रक्तमपि रक्तान्तरदूषकं भवति । यदुक्तं दुष्टरक्तलक्षणम्—पित्तवदक्तेन अतिकृष्णश्चेति । अतिरुक् तोदः अतिरक्तादौ यत्र सः शोथः चिमचिमायते । चिमचिमेति कण्डूभेदः स्पर्शप्रियेति यावत् । चुहचुहा इति लोके तद्युक्तः । क्लेदसमन्वितः क्लेद आर्द्रता तद्युक्तः ॥

वातरक्तमें रुधिरकी अधिकता होय तो अत्यंत व्यथा-युक्त, तोडने सरीखी पीडा सहित, लालरगकी, खुजली और क्लेदसयुक्त सूजन होती है । इसमें चिमचिम ऐसा होताहै और स्निग्ध पदार्थ तथा रुक्ष पदार्थोंसे यह सूजन शांत नहीं होती है । इसमें जो रुधिरकी अधिकता होती है वह रुधिर वातरक्तको उत्पन्न करनेवाले रुधिरसे अलग समझना चाहिये क्योंकि रुधिर भी अन्य रुधिरको दूषित करताहै ॥ ११ ॥

अथ पित्ताधिक्यवातरक्तलक्षणम् ।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मद-स्तृषा ॥ स्पर्शसहत्वं रुग्दाहः शोथः पाको भृशोष्णता ॥ १२ ॥

पित्ते अधिके विदाहः विशेषेण दाहः विदाहादयश्च पादयोरेव बोद्धव्याः । यत आह सुश्रुतः—“पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशोथौ मृदू च ।” पादाविति शेषः । संमोहः आतुरस्य । स्वेदः पादयोः । मूर्च्छा पादयोः समुच्छ्रायः शोथ इति यावत् । न तु मूर्च्छा मोहः संमोहस्य उक्तत्वात् ॥

वातरक्तमें जो पित्तकी अधिकता होय तो अत्यंत दाह होताहै, रोगी बहुत बेहोश होजाता है, पसीने आते हैं, मूर्च्छा होती है, मद होताहै, तृषा लगती है,



शरीरको नहीं सहारसक्ता, व्यथा, शरीरमें दाह, सूजन पक-  
तीहै और बहुत गरमी होतीहै अत्यन्त दाहका होना और  
किसीके शरीरको नहीं सहारना इत्यादि घर्म पावमें होतेहैं  
क्योंकि “पित्तसे और रुधिरसे दोनों पांव अत्यन्त दाह  
युक्त, अत्यन्त गरम, लाल, सूजनयुक्त और मृदुता युक्त  
होतेहैं” ऐसा सुश्रुतने कहाहै ॥ १२ ॥

अथ कफाधिकद्विदोषत्रिदोषाधिक-  
वातरक्तलक्षणम् ।

कफे स्तैमित्यगुरुता सुप्तिः स्निग्धत्वशी-  
तता ॥ कण्डूर्मन्दा च रुग्णद्वन्द्वसर्वलिङ्गश्च  
सकरे ॥ १३ ॥

कफे अधिके स्तैमित्यं शरीरस्यार्द्रचर्मा-  
वगुण्ठितत्वमिव । गुरुतादयः पादयोरेव ।  
यत आह सुश्रुतः—“कण्डूर्मन्तौ श्वेतशीतौ  
सशोथौ पीनौ स्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे तुरक्ते” ।  
पादाविति शेषः । अधिकद्विदोषम् अधिक-  
त्रिदोषं च तदाह—द्वन्द्वसर्वलिङ्गं च संकरे  
द्वित्रिदोषसंसर्गे ॥

वातरक्तमें जो कफकी अधिकता होय तो शरीर गीले  
चमटेसे ढकेहुएकी माफिक मालूम होताहै, भारीपन  
होताहै, जडता होतीहै, स्निग्धता होतीहै, शीतता होतीहै,  
कुछ कुछ खुजली, चलतीहै और व्यथा होतीहै । दो  
दोषोंकी अधिकता होय तो दोनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

भारीपन तथा जडता आदि पावमें होतीहै ऐसा  
जानना, कारण यह है कि, रुधिर जब कफसे दूषित  
होताहै तो पावमें खुजली, सुफेद और शीतल सूजन  
युक्त कटिन और स्तब्ध होजातेहैं, ऐसा सुश्रुतमें  
कहाहै ॥ १३ ॥

अथ वातरक्तप्रसर्पणप्रकारः ।

पादयोर्भूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ॥

आखोर्विपमिव कुद्धं तदेहमनुसर्पति ॥ १४ ॥

आखोर्भूपकस्य आखोर्विपमिवेत्यनेन  
मन्दविसर्पत्वं बोधितम् । देहमनुसर्पति  
अप्रतिक्रियणाम् ॥

पावोंकी जडमें और किसी समय हाथोंकी जडमेंसे  
उत्पन्न होकर जिसप्रकार चूहेका विप धीरे धीरे शरीरमें  
फैलताहै उसी प्रकार कुपित हुआ वातरक्त चिकित्सा नहीं  
करनेवाले मनुष्योंके शरीरमें धीरे धीरे फैलताहै ॥ १४ ॥

अथ वातरक्तोपद्रवाः ।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ॥  
मूर्च्छा चाऽमन्दरुक् तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥  
॥ १५ ॥ हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाकतोद-  
भ्रमक्लमाः ॥ अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्म-  
ग्रहार्बुदाः ॥ १६ ॥

मांसकोथो मांसगलनम् । मूर्च्छा तद-  
ङ्गसमुच्छ्रायः । अमन्दरुक् पीडाबाहुल्यम् ।  
प्रवेपकः कम्पः । प्रवेपनं प्रवेपः ततः  
स्वार्थे कः ॥

निद्राका नहीं आना, धरुचि, श्वास, मांस गल गलकर  
गिरना, गिरने व्यथा, मूर्च्छा, कम दीखना, तृष्णा, ज्वर,  
मोह, कम्प, हिचकी, पगुता, विसर्प (चकचोका होना),  
पकना, सुई चुभोने सरीखी पीडा, भ्रम, क्लम (ग्लानि),  
अंगुलियोंका टेढा हो जाना, फूटना, दाह, मर्मस्थानोंमें  
पीडा और अर्बुद (गांठ) यह सब वातरक्तके उपद्रव  
जानने ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ वातरक्तासाध्ययाप्यसाध्यता ।

एतेरुपद्रवैर्वैज्यं मोहेनैकेन चापि यत् ॥  
अकृत्तूपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुप-  
द्रवम् ॥ १७ ॥

मोहेनैकेनेति वचनम् अस्वप्नादिभिः स-  
मस्तैरसाध्यत्वं बोधयति ॥

एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोष-  
जम् ॥ त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च  
स्युरुपद्रवाः ॥ १८ ॥

नवं संवत्सरात् अर्वाचीनं तत्साध्यम् ॥

आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रसृतञ्च यत् ॥

उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥  
वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरो-  
त्थितम् ॥ १९ ॥

आजानु पद्भ्यां जानुपर्यन्तं यद्भवति  
तदसाध्यं स्यात् । स्फुटितं यच्च त्वङ्मात्रे  
शीतेन वै किञ्चिद्विदीर्णम् प्रभिन्नम्, अधिकवि-  
दीर्णम् । प्रसृतं बहत् ।

उपरोक्त सद्य उपद्रव वातरक्तमे होय तो उसको अ-  
साध्य जानना अथवा केवल एक मोहही होय तो भी  
उसको असाध्य जानना और जो इन उपद्रवोंमें थोड़े  
बहुत उपद्रव होय तो उस वातरक्तको याप्य समझना  
और जो कोई उपद्रव न होय तो उसको साध्य समझना ।

जा वातरक्त एक दोषवाला और एक वर्षका होय  
तो उसको साध्य जानना । दो दोषवालेको याप्य जानना ।  
और तीनों दोष युक्त अथवा जिसमें सद्य उपद्रव होय तो  
उसको असाध्य जानना ।

जो वातरक्त पावोंसे लेकर घुटनोतक फैले उसको  
असाध्य जानना । जिस प्रकार त्वचा फटजाती है उसी-  
प्रकार जिस वातरक्तमें त्वचा फट जाय उसको असाध्य  
जानना । जो वातरक्त अत्यन्त फटगया हो अथवा बलक्षय  
या मांसक्षयआदि उपद्रवोंसे संयुक्त होय तो उसको  
असाध्य जानना ।

जो वातरक्तको उत्पन्न हुए एक वर्ष हुआ हो उसको  
याप्य जानना ॥ १७-१९ ॥

अथ वातरक्तचिकित्सा ।

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो  
हरेत् ॥ अल्पाल्पं रक्षयेद्वायुं यथादोषं  
यथाबलम् ॥ २० ॥

रक्षयेत् वायुं यथावायुर्न वर्द्धते तथा रक्तं  
हरेदित्यर्थः ॥

उग्रांगदाहतोदेषु जलौकोभिर्विनिर्हरेत् ॥

॥ २१ ॥ शृंगन्तु वै चिमिचिमा कण्डू-  
रुग्वेपनान्वितम् ॥ प्रच्छन्नेन शिराभिर्वा  
देशादेशान्तरं व्रजेत् ॥ २२ ॥

निर्हरेन्निष्काशयेच्चिमिचिमा चुहचुहा इति  
लोके । प्रच्छन्नं पच्छना इति लोके । व्रजे-  
दिति रक्तविशेषणम् ॥

अंगे म्लाने तु न स्राव्यं रक्षेद्वातोत्तरञ्च  
यत् ॥ २३ ॥ गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं  
कम्पवायुशिरामयान् ॥ ग्लानिमन्यांश्च  
वातोत्थान्कुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ २४ ॥  
खञ्जादीन्वातरोगांश्च मृत्युञ्जानवशेषित-  
म् ॥ कुर्यात्तस्मात्प्रमाणेन स्निग्धादक्तं  
विनिर्हरेत् ॥ २५ ॥

प्रथम वातरक्तवाले रोगीको स्नेहपान आदिसे स्निग्ध  
करके उसके दोष और बलानुसार थोड़ा रुधिर वा खार  
निकलवावे । किन्तु रुधिरको निकलवानेमें वायुकी अवश्य  
रक्षा करनी चाहिये अर्थात् जिससे वायु न बड़े उस रीतिसे  
रुधिर निकलवाना चाहिये । घोर दाह होता होय  
अथवा सुई चुभोने सरीखी पीडा होती होय तो जोंक लगा  
कर रुधिर निकलवाना चाहिये । चमचमाटी, खुजली,  
व्यथा, तथा कम्प होय तो सिंगी लगाकर रुधिर निकल-  
वाना चाहिये । और जो वातरक्त शरीरके एक प्रदेशमेंसे  
दूसरे प्रदेशमें जाता होय तो प्रच्छन्ना लगाकर रुधिर  
निकलवाना चाहिये । शरीरमें ग्लानि होय तो रुधिर नहीं  
निकलाना चाहिये और जो काढे तो जिसमें वायुकी वृद्धि  
न होय ऐसी रीतिसे निकालना चाहिये, रुधिरके क्षय होनेसे  
वायुकी वृद्धि होय तो गम्भीर सूजन, अकडपन, कम्प,  
शिराओंमें पीडा, ग्लानि और अन्यान्य भी वातसम्बन्धी  
रोग उत्पन्न होतेहैं, रुधिर जो योग्यरीत्यनुसार अवशेष न  
रहे तो खंजतादिवातरोगोंको उत्पन्न करताहै, तथा मरणको  
भी करताहै, इस कारण वातरक्तरोगीको स्निग्ध करके उसके  
शरीरमेंसे प्रमाणके समान रुधिर निकलवावे ॥ २०-२५ ॥

विरेच्यः स्नेहयित्वादौ स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः ॥  
रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमसकृद्वास्तिकर्म च ॥  
नहि वस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्ति-  
तम् ॥ २६ ॥ बाह्यमालेपनाभ्यंगपरिषे-  
कोपनाहनैः ॥ विरेकास्थापनस्नेहपानैर्ग-  
म्भीरमाचरेत् ॥ २७ ॥ दिवास्वप्नं सप्त-  
न्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ॥ कटूष्णगुर्व-  
भिष्यन्दि लवणाम्लौ च वर्जयेत् ॥ २८ ॥

पुराणा यवगोधूमा नीवाराः शालिषष्टि-  
काः ॥ भोजनार्थं रसार्थं तु विष्किराः  
प्रतुदा हिताः ॥ २९ ॥

वातरक्त रोगीको प्रथम स्निग्ध करके स्नेहयुक्त विरेचन (दस्तावर) औषधि अथवा रज्जुता कोमलविरेचन औषधि देकर मलरहित करे । वातरक्त रोगीके बारबार पिचकारी लगाना भी उत्तम है पिचकारीके समान वातरक्तका अन्य उपाय नहीं है ।

जो वातरक्त बाहर होय तो आलेपन, अभ्यंग, सेचन, तथा औषधियोंको वाक्कर चिकित्सा करनी चाहिये । और जो वातरक्त गम्भीर होय तो रेचन, निरुहवस्ति, तथा ज्वेदपानसे चिकित्सा करे ।

वातरक्तरोगी, दिनमें सोना, धूपका सेवन, दड कसरत आदि, मैथुन, कडवे रसवाले पदार्थ, भारी पदार्थ, अभिष्यन्दी पदार्थ, नमकीन पदार्थ और अम्लरसके पदार्थोंको त्यागदेवे ।

वातरक्तरोगीके भोजनके लिये पुराने जौ, पुराने गेहूँ, नीवार ( तीनी, पुनेग ) लाल शालिवान तथा साठीधान हितकारी हैं । और विष्किर ( मुरगा आदि ) तथा प्रतुद ( तोता चिडे आदि ) जातिके पक्षियोंका मासरस हितकारी हैं ॥ २९-३० ॥

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः सकुलत्थ-  
काः ॥ यूपार्थं बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वात  
शोणिते ॥ ३० ॥ सुनिपण्णकवेत्राग्रका-  
कमाची शतावरी ॥ वास्तुकोपोदिका-  
शाकं शाकं सौवर्चलं तथा ॥ घृतमांस-  
रसैर्भृष्टं शाकं सात्म्याय दापयेत् ॥ ३१ ॥

सुनिपण्णः चांगेरीसदृशः चतुष्पत्रशाकः  
स जले स्थले भवति, सूसुनि इति लोके ।  
धवली चिल्मी इति क्वचित् ॥

वातरक्तरोगीको यूपके लिये अडहर, चने, मूँग, मसूर और कुलथी इनमें बहुत धीवाले यूप हितकारी हैं ।

जिनमें शाक सात्म्य है ऐसे वात रोगियोंको मिनि आंग, घेतका अग्रभाग, पुनर्नवा, शतावर, बथुआ, पोई और जाली इनका शाक धीमें तथा मासरसमें भूनकर सेवन करना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवास्तिभिः ॥  
॥ ३२ ॥ सुखोष्णैरुपनाहेश्च वातोत्तर-  
मुपाचरेत् ॥ हितो गोधूमचूर्णश्च च्छागक्षी-  
रघृताप्लुतः ॥ ३३ ॥

घी, तेल, चरबी और मज्जा इनका पान, अभ्यंग, वास्तिकर्म और सुखोष्ण उपनाह इनसे वातोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा करनी चाहिये । बकरीके घीमें अथवा दूधमें गेहूँके आटेको उबालकर उसका लेप करनेसे वातरक्त शमन होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

लेपस्तद्वत्तिला भृष्टाः पिष्टाः पयसि नि-  
र्वृताः ॥ क्षीरपिष्टातसीलेपो वर्द्धमानफ-  
लेन वा ॥ ३४ ॥ उभे शताह्वे मधुकं  
बलां च प्रियालक चापि कसेरुकं च ॥ घृतं  
विदारीश्च सितोपलाश्च कुर्यात्प्रदेहं पवने  
सरक्ते ॥ ३५ ॥

तिलोंको भूनकर पीसलेवे फिर दूधमें पकाकर उसका लेपकरे अथवा अलसीको दूधमें पीसकर उसका लेपकरे अथवा अडीको पीसकर लेप करना हितकारी है ।

सौंफ, काशनी, मुलैटा, खिरैटी, चिरौजी, कसेरु, विदारीकद और खोंड इनको धीमें पीसकर लेप करनेसे वातरक्त शमन होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

रास्त्रा गुडूची मधुकं बले द्वे सजीवकं  
सर्षभकं पयश्च ॥ घृतश्च सिद्धं मधुशेषयुक्तं  
रक्तानिलार्ति प्रणुदेत्प्रदेहः ॥ ३६ ॥  
वासा गुडूची चतुरंगुलानामेरण्डतैलेन  
पिबेत्कपायम् ॥ क्रमेण सर्वांगजमप्यशेषं  
जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ३७ ॥

गहना, गिलेय, दोप्रकारकी खिरैटी, जीवक, ऋषभक, दूध और घी इनको एकत्र पकावे और उसमें मोम मिलाकर उसका गाढ़ा लेप करनेसे वातरक्तकी पीडा शमन होती है ।

अदृसा, गिलेय और अमलतास इनका काय बनाकर उसमें अटीका तेल डालकर पीनेसे सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न हुआ वातरक्तका विकार अनुक्रमसे सर्व प्रकारसे नष्ट होजाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

दशमूलीशृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवार-

णम् ॥ परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन  
सर्पिषा ॥ ३८ ॥

वाताधिक्य वातरक्तमे दशमूलसे पकाये हुए दूधको पान करे और सुहाते सुहाते गरमधीका सेचन करे, इससे तत्काल शूल शमन होता है ॥ ३८ ॥

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलाऽमृतसाधितम् ॥  
क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशो-  
णितम् ॥ ३९ ॥

कडवे परवल, कुटकी, सतावर, त्रिफला और गिलोय इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे दाहयुक्त वातरक्त शमन होजाता है ॥ ३९ ॥

त्रिवृद्धिदारीक्षुरकक्वाथो वातास्रनाशनः ॥  
अमृता कफवातघ्नी कफभेदोविशोषिणी ॥  
॥ ४० ॥ वातरक्तप्रशमनी कण्डूवीसर्प-  
नाशिनी ॥ गुडूच्याः स्वरसः कल्कश्चूर्णं  
वा क्वाथ एव च ॥ प्रभूतकालमासेव्य  
मुच्यते वातशोणितात् ॥ ४१ ॥

निसोत, विदारीकद और गोखुर, इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातरक्तका नाश होता है ।

गिलोय—कफ और वायुको हरनेवाली है । कफ तथा भेदको सुखानेवाली है । वातरक्तको शमन करनेवाली है । और खुजली तथा विसर्पको हरने वाली है इसलिये गिलोयके स्वरसको, कल्कको, चूर्णको अथवा क्वाथको बहुत दिनोंतक सेवन करे तो वातरक्तसे मुक्त होजाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अमृतानागरधान्यककर्षत्रितयेन पाचनं  
सिद्धम् ॥ जयति सरक्तं वातं सामं  
कुष्ठान्यशेषाणि ॥ ४२ ॥

गिलोय १ तोला, सोंठ १ तोला और धनियों १ तोला इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातरक्त, आमवात और सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ४२ ॥

वत्सादन्युद्भवः क्वाथः पीतो गुग्गुलुभि-  
श्रितः ॥ समीरणसमायुक्तं शोणितं  
सम्प्रणाशयेत् ॥ ४३ ॥ तिस्रोऽथ वा पञ्च  
गुडेन पथ्या जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषा-  
यम् ॥ तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णमाजानु-  
भिन्नञ्च्युतमप्यवश्यम् ॥ ४४ ॥

गिलोयका क्वाथ बनाकर उसमें गूगल डालकर पीनेसे वातरक्तका नाश होता है ।

तीन अथवा पांच हरडोका चूर्ण बनाकर गुडमें मिलाकर खाय और उसके ऊपर गिलोयका क्वाथ पिये तो घुटनोंतक भेदा हुआ और खवताहुआ भयकर वातरक्त अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्दाक्षालुङ्गरसेन वा ॥  
त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिकाः कोलस-  
म्मिताः ॥ ४५ ॥ भक्षयेन्मधुनालोडय  
शृणु कुर्वन्ति यत्फलम् ॥ पादस्फोटं महा  
घोरं स्फुटत्सर्वाङ्गसञ्चयम् ॥ तत्सर्वं नाश-  
यत्याशु साध्यञ्चैव सशोणितम् ॥ ४६ ॥  
माहिषं नवनीतं तु बलिना परिमिश्रि-  
तम् ॥ गोमूत्रमिश्रितं कृत्वा क्षीरेण  
लवणेन च ॥ ४७ ॥ तदेकत्र समालोडय  
वह्निना भावयेच्छनैः ॥ गात्रमुद्धर्तयेत्तेन  
देहस्फुटनशान्तये ॥ ४८ ॥

गूगल और गिलोय इनको दाख और बिजोरा निचूके रसमें अथवा त्रिफलेके रसमें बैरकी बराबर गोली बनाकर उनको सहतमे मिलाकर चाटनेसे महाघोर और सम्पूर्ण अंगोंको तोडनेवाला पादस्फोटरोग और वातरक्त तत्काल नष्ट होजाता है । यह औषधि गुग्गुलुवटिका कहीजाती है । आमलेसारगंधकको भैंसके माखन, गोमूत्र, दूध और सेंधेनिमकके साथ मिलाकर धीरे धीरे अभिसे गरम करके शरीरमें लगानेसे अंगोंका फटना शांत होता है ॥ ४५-४८ ॥

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं पित्तं सिता-  
ढ्या मधुना कफञ्च ॥ वातासृगुग्रं  
रुवुतैलमिश्रा शुण्ठ्यामवातं शमयेद्  
गुडूची ॥ ४९ ॥

गिलोय घीके साथ सेवन की जाय तो वायुको नष्ट करती है । गुडके साथ सेवन की जाय तो मलबन्धको दूर करे है । खाडके साथ सेवन की जावे तो पित्तको शमन करती है । सहतके साथ सेवन की जाय तो कफ नष्ट होता है । अंडीके तेलके साथ सेवन की जाय तो उग्रवात-रक्त नष्ट होता है । और सोंठके क्वाथके साथ सेवन की जाय तो आमवातको शमन करती है ॥ ४९ ॥

सिहास्यपञ्चमूलीछिन्नरुहैरण्डगोक्षुरकाथः ॥  
एरण्डतैलरामठसैन्धवचूर्णान्वितः पीतः  
॥ ५० ॥ प्रशमयति वातरक्तं तथामवातं  
कटीशूलम् ॥ मूत्रपुरीषविवन्धं ब्रध्नवि-  
कारं सुदुर्वारम् ॥ ५१ ॥

अद्वषा, पंचमूल, गिलोय, एरड और गोखरू इनका  
काथ बनाकर उसमें अडीका तेल, हीगका चूर्ण और  
सैन्धेनिमकका चूर्ण डालकर पीनेसे वातरक्त, आमवात,  
कटीशूल, मूत्र तथा मलका अवरोध और दुःसाध्य ब्रध्न  
रोग भी नष्ट होजाताहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

गन्धर्वहस्तवृषगोक्षुरकामृतानां मूलं बले-  
क्षुरकयोश्च पचेत्तु धीमान् ॥ वातासृगा-  
शु विनिहन्ति चिरप्ररूढमाजानुगं स्फुटि-  
तमूर्द्धगतन्तु धीमान् ॥ ५२ ॥

एरड, अद्वषा, गोखरू, गिलोय, खिरैटी और गो-  
खरू इनकी जटका काथ बनाकर पीनेसे बहुत दिनोंका  
बुटनोतक पहुँचा हुआ, फटा हुआ और ऊपरको चलता  
हुआ उग्र वातरक्त तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ५२ ॥

कफपित्तप्रशमनं कण्डूवीसर्पनाशनम् ॥  
वातरक्तप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ॥ ५३ ॥

गुडके साथ घीको मिलाकर सेवन करनेसे कफ और  
पित्तको शमन करताहै कण्डू और विसर्पका नाश करता-  
है । वातरक्तको शमन करताहै और हृदयको भी हित-  
कारी है ॥ ५३ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन  
वा ॥ ५४ ॥

वर्द्धमानपिप्पलीको सेवन करनेसे अथवा हरडके चूर्ण-  
को गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्त शांत होता-  
है ॥ ५४ ॥

कोकिलाक्षामृताकाथे पिवेत्कृष्णां यथा-  
बलम् ॥ पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते  
वातशोणितात् ॥ ५५ ॥

तालमराना तथा गिलोय इनका काथ बनाकर उसमें  
पिप्पलीका चूर्ण डालकर पीनेसे इफ्रीम २१ दिनमें वातरक्त  
नष्ट होजाताहै । परन्तु अधिक बलानुसार इसपर पथ्य  
भोजन करना चाहिये ॥ ५५ ॥

मधुकाद्विगुणं तैलं तैलादाजं पयो  
भवेत् ॥ तद्यथाग्निलं पेयं वातरक्तरुजा-  
पहम् ॥ ५६ ॥

मुलैटी, मुलैटीसे दुगुना तेल और तेलसे दुगुना बक-  
रीका दूध इन सबको मिलाकर अग्निके बलानुसार पिये तो  
वातरक्त नष्ट होजाताहै ॥ ५६ ॥

अगस्तिपुष्पचूर्णेन माहिषं जनयेदधि ॥  
तदुत्थनवनीतेन देहजं स्फुटनं जयेत् ॥  
त्रिफलानिम्बमल्लिष्ठा वचा कटुकरोहिणी  
॥ ५७ ॥ वत्सादनी दारुनिशा कषायो  
नवकार्षिकः ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं  
रक्तमण्डलम् ॥ ५८ ॥ कण्डूकपालिका  
कुष्ठं पानादेवापकर्षति ॥ पञ्चरक्तिकमा-  
षेण कषायो नवकार्षिकः ॥ ५९ ॥ किञ्चैवं  
साधिते काथे योग्या मात्रा प्रदीयते ॥  
कर्षादौ तु पलं यावद्द्यात्षोडशिकं जलम्  
॥ ६० ॥ ततस्तु कुडवं यावदष्टादशगुणं  
जलम् ॥ चतुर्गुणमतश्चोर्द्धं यावत्प्रस्था-  
दिकं भवेत् ॥ ६१ ॥

अगस्त्यके फूलोंका चूर्ण बनाकर भैंसके दूधमें डालकर  
दही जमावे फिर उसमेंसे साखन निकालकर उपयोग करे  
तो शरीरका फटना दूर होजाताहै ।

हरड, बहेडा, आमला, नीम, मजीठ, वच, कुटकी,  
गिलोय और दारुहलदी यह प्रत्येक औषधि एक एक  
ताला लेकर उसका काथ बनाकर पिये तो वातरक्त, कौढ,  
पामा, रक्तमण्डल, कण्डू और कपालकुष्ठ तत्काल नष्ट  
होताहै । सोलह सोलह मासेका एक तोला होताहै यहां  
पाच पाच रक्तीका एक एक मासा जानना । इसको  
नवकार्षिक काथ कहतेहैं, इसमेंसे योग्य मात्रानुसार पिये ।  
काथ करनेके लिये एक तोलेसे लेकर चार तोलेतक  
औषधिमें सोलह गुना जल डालना चाहिये । इसके ऊपर  
सोलह तोले औषधिमें अठगुना जल डालना चाहिये और  
इसके उपरान्त चौंसठ तोलेतक औषधिमें चाँगुना पानी  
डालना चाहिये ॥ ५७-६१ ॥

विरेचनेर्घृतक्षीरपानैः सैकैः सवस्तिभिः ॥



लेपनं शाल्मलीकल्कमविक्षीरेण संयुतम्  
॥ ६२ ॥ रक्तोत्तरं क्षीरघृतं मधुकोक्षीर-  
वारिभिः ॥ सेचनं चात्र कर्तव्यमविक्षीरैः  
क्षणक्षणम् ॥ ६३ ॥ सहस्रशतधौतेन  
घृतेन रुधिरोत्तरे ॥ लेपनं सुष्ठु शीतेन  
घृतसर्जरसेन वा ॥ ६४ ॥ शीतैर्निर्वापणै-  
श्चापि रक्तपित्तोत्तरं जयेत् ॥ ६५ ॥

विरेचन, घी, तथा दुग्धपान, सेचन और पिचकारी  
रगाना तथा सेमलके चूर्णको भेडके दूधमे लेप करना इनसे  
वातरक्त नष्ट होताहै ।

वातरक्तमे रुधिरकी अधिकता होय तो दूध, घी, मुलै-  
ठीका पानी और खसका पानी इनसे अथवा भेडके दूधसे  
क्षण क्षणभरमें सेचन करे सौवार अथवा हजारवार घृतको  
शेकर उस घीसे अथवा घी और राल इनको मिलाकर  
रूप करनेसे रुधिरकी अधिकतावाला वातरक्त नष्ट होजाताहै  
रुधिरकी तथा पित्तकी अधिकता वातरक्तमें होय तो उसको  
भी शीतल पदार्थोंसे सेचन करना चाहिये ॥ ६२-६५ ॥

सरागे सरुजे दाहे रक्तं विस्राव्य लेपयेत् ॥  
तिलाः प्रियालं मधुकं बिसमूलं च वेत-  
सम् ॥ सघृतं पयसा पिष्टं प्रलेपाद्दाहरो-  
गनुत् ॥ ६६ ॥

लाल, दाह और व्यथायुक्त वातरक्त होय तो रुधि-  
रको निकलवाकर पश्चात् तिल, चिरौजी, मुलैठी, कमलकी  
जड़ और बेत इनको दूधमें पीसकर घी डालकर गाढा  
रूप करे तो दाहकी पीडा शांत होजातीहै ॥ ६६ ॥

पित्तोत्तरे तु काश्मर्यद्राक्षारग्वधचन्दनैः  
॥ ६७ ॥ मधुकक्षीरकाकोलीयुक्तैः काथं  
सुशीतलम् ॥ शर्करां मधुसंयुक्तां वातरक्ते  
पिबेन्नरः ॥ ६८ ॥

वातरक्तमें पित्तकी अधिकता होय तो कुम्भेरके फल,  
द्राख, अमलतास, लाल चन्दन, मुलैठी और क्षीरका  
कोली इनका काथ बनाकर उसको अच्छे प्रकारसे शीतल  
करके उसमें खाड तथा सहत डालकर पिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

धारोष्णं मूत्रसंयुक्तं क्षीरं दोषानुलोम-  
नम् ॥ पिबेद्वा सन्निवृच्चूर्णं पित्तरक्तावृ-  
तानिले ॥ ६९ ॥

मूत्रके साथ धारोष्ण दूधमे निसोतका चूर्ण डालकर  
पीनेसे पित्ताधिक्य वातरक्त नष्ट होताहै, यह दोषोंको अनु-  
लोमन करनेवाला है ॥ ६९ ॥

क्षीरेणैरण्डतैलं वा प्रयोगेण पिबेन्नरः ॥  
बहुदोषे विरेकार्थं जीर्णे क्षीरौदनाश-  
नः ॥ ७० ॥

अधिक दोषवाले मनुष्य रेचन ( जुलाब ) के लिये  
दूधके साथ अडीका तेल पिये और जीर्ण होनेपर दूध  
भातका भोजन करे ॥ ७० ॥

पटोलं त्रिफला भीरुगुडूची कटुरोहिणी ॥  
काथः पित्ताधिके शस्तः शर्करामधुसं-  
युतः ॥ ७१ ॥

कडवे परवल, सतावर, गिलोय और कुटकी इनका  
काथ बनाकर उसमें खाड तथा सहत डालकर पीनेसे  
पित्ताधिक्य वातरक्त शमन होजाताहै ॥ ७१ ॥

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेच-  
नम् ॥ वमनं मृदुनात्यर्थं स्नेहसेको विलं-  
घनम् ॥ ७२ ॥

वातरक्तमें कफकी अधिकता होय तो कडवी औषधि-  
योंके द्वारा पकायेहुए घृतको पिये, बारबार विरेचन लेवे,  
मृदुरीतिसे कुछेक वमन करे, स्नेहपान करे, लंघन करे और  
सुहाते २ गरम पदार्थोंसे सेचन करे ॥ ७२ ॥

कोष्णाः सेकाश्च शस्यन्ते वातरक्ते कफो-  
त्तरे ॥ तैलमूत्रसुराशुक्तैः परिषेकाः सदा  
हिताः ॥ ७३ ॥

तेल, मूत्र, मद्य और शुक्तका पानी इनका सेचन करना  
हितकारी है । सफेद सरसोंका कल्क बनाकर उसका उत्तम  
रीतिसे गाढा लेप करनेसे भी पीडा शांत होजातीहै ॥ ७३ ॥

गौरसर्पकल्केन प्रदेहो वा रुजापहः ॥

अथवा पीलीसरसोंका कल्क करके क्रियाहुआ लेप  
पीडाको नष्ट करताहै ।

शिशुः सवरुणकल्को धान्याम्लेनानिलार्ति-  
जिल्लेपात् ॥ भवति न वेति विकल्पो न  
विधेयः सिद्धयोगेऽस्मिन् ॥ ७४ ॥

सैंजना और वरना इनको धान्याम्ल नामक काजीमें  
पीसकर लेप करनेसे वातरक्तकी पीडा शमन होजातीहै ।  
यह सिद्ध योग है, इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये ७४

कल्कः श्लेष्मोत्तरे लेपो वाजिगन्धानिलो-  
द्रवः ॥ लेपः सर्पपनिर्वार्कहिंसाक्षारतिलै-  
हितः ॥ ७५ ॥ श्रेष्ठः सक्तुघृतक्षारकपि-  
त्यत्वग्भिरेव च ॥

असगन्ध और तिल इनका कल्क बनाकर लेप करनेसे  
कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होजाताहै ।

सरसों, नीम, आक, वालछड जवाखार और तिल इनका  
लेप करनेसे कफाधिक्य वातरक्त शमन होजाताहै ।

सक्तु, घी, जवाखार और कैथकी छाल इनको पीसकर  
लेप करनेसे कफाधिक्य वातरक्त शमन होताहै ॥ ७५ ॥

मसूरशिग्रोस्तद्वीजं हितं धान्याम्लसंयुत-  
म् ॥ मुहूर्ताल्लिप्तमम्लैश्च सिंचेद्वातकफो-  
त्तरे ॥ ७६ ॥ मुस्तामलकनिशाभिः  
कथितं तोयं समाक्षिकं पेयम् ॥ जय-  
ति सदागतिरक्तं सकफं वा सततयोगे-  
न ॥ ७७ ॥

मसूरकी दाल और सैंजिनेके बीज इनको धान्याम्ल  
नामक कांजीके साथ पीसकर इसका दो घडीतक लेप करे  
फिर सट्टे पदार्थोंसे सेचन करे तो वायुकी तथा कफकी  
अधिकतावाला वातरक्त शमन होताहै ।

नागरमोथा, आमले और हलदी इनका काथ बना-  
कर सहत डालकर नित्य पीनेका अभ्यास करे तो केवल  
वातरक्त अथवा कफाधिक्य वातरक्त शमन होताहै ७६ ॥ ७७

हरिद्रामृतककाथं मधुना मधुरीकृतम् ॥  
पिवेद्वा त्रिफलाकाथं वातरक्ते कफा-  
धिके ॥ ७८ ॥

हलदीका तथा गिलोयका काथ अथवा त्रिफलेका का-  
थ सहत डालकर पीनेसे कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होता-  
है ॥ ७८ ॥

हरीतकीं वा तक्रेण पाययेदुदकेन वा ॥  
गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् ॥  
प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते वातकफोत्तरे ॥  
॥ ७९ ॥ अमृता कटुका यष्टी शुंठी-  
कल्कं समाक्षिकम् ॥ ८० ॥ गोमूत्र-  
पीतं जयति सकफं वातशोणितम् ॥  
धात्रीहरिद्रामुस्तानां कषायं वा समा-  
क्षिकम् ॥ ८१ ॥

तक्रके साथ अथवा जलके साथ हरडका चूर्ण सेवन  
किया जाय तो कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होताहै ।

घरका धुआँ, वच, कूठ, सोया, हलदी और दासह-  
लदी इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे वाताधिक्य और  
कफाधिक्य वातरक्तका शूल नष्ट होजाताहै ।

गिलोय, कुटकी, मुलैठी और सोंठ इनका कल्क ब-  
नाकर सहत मिलाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे कफाधिक्य  
वातरक्त नष्ट होताहै । अथवा आमले, हलदी और ना-  
गरमोथेका काथ पिये तो परम हितकारी है ॥ ७९-८१ ॥

अथ लांगलीगुटिका ।

लांगल्यास्त्वमृतातुल्यं कन्दमुद्धृत्य य-  
त्नतः ॥ योजयेत्त्रिफलालौहरजस्त्रिकटुकैः  
समैः ॥ ८२ ॥ गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्द्रा-  
क्षालुंगरसेन वा ॥ त्रिफलाया रसैर्युक्ता  
गुटिकाः कोलसंमिताः ॥ ८३ ॥ भक्षये-  
न्मधुनालोड्य शृणु कुर्वति यत्फलम् ॥  
पादस्फुटितं दुर्भ्रं जानुप्राप्तं च यद्भवेत्  
॥ ८४ ॥ यच्च देहोद्गतं रक्तं यच्चासाध्यं  
प्रकीर्तितम् ॥ ग्रन्थेता भक्ष्यमाणस्य प्रबलं  
वातशोणितम् ॥ ८५ ॥

लाङ्गली गुटिका—कालिहारीका कंद यत्नपूर्वक ला-  
कर और उस कदकी बराबर गिलोय लेवे तथा हरड,  
वहेडा आमला, लोहचूर्ण, मोंठ, मिरच और  
पीपल यह समान भाग मिला देवे, फिर गुग्गुल अथवा

दाखके या विजोरेके रससे अथवा त्रिफलेके रससे बेरकी समान गोली बनावे, इन गोलियोंको सहतमे मिलाकर खाय तो प्रबल वात रोग, पादस्फोट, दुर्भ्रश बुटनोतक प्राप्त हुआ, असाध्य और शरीरमेसे रुधिर निकलता हुआ ये सब दूर होते हैं ॥ ८२-८५ ॥

अथ बलाघृतम् ।

बलामतिबलां मेदामात्मगुप्तां शतावरीम् ॥  
काकोली क्षीरकाकोलीं रास्नां मृद्धीं च  
पेषयेत् ॥ ८६ ॥ घृतं चतुर्गुणं क्षीरं तैः  
सिद्धं वातरक्तनुत् ॥ हृत्पांडुरोगवीसर्पका-  
मलादाहनाशनम् ॥ ८७ ॥

खिरैटी, कंधी, मेदा, कौछ, सतावर, काकोली, क्षीर-  
काकोली, रासना और दाख इनका कल्क डालकर चौगुने  
दूधमे घृतको सिद्ध करे । यह घृत वातरक्त, हृदयकी  
पीडा, पांडुरोग, विसर्प, कामला और दाहको दूर  
करे है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

अथापरपिंडतैलम् ।

बलास्थिरानागबलागुडूचीशतावरीकल्क-  
कषायसिद्धम् ॥ तैलं विदध्यादनुवासनेषु  
तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णम् ॥ ८८ ॥

खिरैटी, पृश्निपर्णी, गोरन, गिलोय और सतावर इनके  
कल्क और काथसे तैलको सिद्ध करे । इस तैलकी पिच-  
कारी लगावे तो प्रबल वातरक्त नष्ट होताहै ॥ ८८ ॥

अथ पारूषकघृतम् ।

त्रायन्तिका चामलकी द्विकाकोली शता-  
वरी ॥ कसेरुका कषायेण कल्कैरोभिः  
पचेद् घृतम् ॥ ८९ ॥ उभे पारूषके द्राक्षा-  
काश्मर्यसमुद्रमान् ॥ पृथग्विदार्याः  
स्वरसं तथा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ९० ॥  
एतदायोजितं सर्पिः पारूषकमिति स्मृत-  
म् ॥ वातरक्ते क्षते क्षीणे विसर्पे पैत्तिके  
ज्वरे ॥ ९१ ॥

त्रायमाणा, आमले, काकोली, क्षीरकाकोली, सतावर  
और कसेरु इनका काथ बनाकर उसमें दोनों प्रकारके

फालसे, दाख, कुम्भेरके फल तथा देवदारु इनका कल्क  
डालकर विदारीकंदके स्वरससे घृतको चौगुने दूधमे पकावे  
तो पारूषक घृत सिद्ध होताहै । इस घृतका उपयोग  
करनेसे वातरक्त, क्षत, क्षीणता, विसर्प तथा पित्तज्वर नष्ट  
होताहै ॥ ८९-९१ ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे ॥  
क्षीरतुल्यं घृतं सिद्धं वातशोणितनाश-  
नम् ॥ ९२ ॥

सतावरका कल्क डालकर सतावरके चौगुने स्वरसमें  
दूधकी बराबर घी डालकर पकावे तो शतावरीघृत सिद्ध  
होताहै । इस घृतका उपयोग करनेसे वातरक्त नष्ट होता-  
है ॥ ९२ ॥

अथर्षभकघृतम् ।

श्रावणोक्षीरकाकोलीक्षीरिकाजीवकैः समैः ॥  
सिद्धं त्वर्षभकं सर्पिः सक्षीरं वातरक्त-  
नुत् ॥ ९३ ॥

अत्र क्षीरं चतुर्गुणम् ॥

गोरखमुडी, क्षीरकाकोली, वशलोचन और जीवक यह  
सब औषधि समान भाग लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको  
डालकर चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे इसको ' ऋषभक '  
घृत कहते हैं । यह घी वातरक्तको नष्ट करे है ॥ ९३ ॥

अथ गुडूचीघृतम् ।

गुडूचीकाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं शृत-  
म् ॥ हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति  
दुस्तरम् ॥ ९४ ॥

गिलोयका काथ और कल्क डालकर चौगुने दूधमें  
घीको पकाकर सेवन करे तो वह घी वातरक्त तथा दुस्तर  
कोढको भी दूर करे है ॥ ९४ ॥

अथ द्वितीयं गुडूचीघृतम् ।

क्षीरं स्नेहसमं दद्याच्चतुर्भिश्च चतुर्गुणम् ॥  
एकद्वित्रिद्वैद्वैः कुर्यात्स्नेहाच्चतुर्गु-  
णम् ॥ ९५ ॥

अमृतायाः कषायेण कल्केन च महौषधा-  
त् ॥ मृद्वग्निना घृतं सिद्धं वातरक्तहरं  
परम् ॥ ९६ ॥ आमवाताढ्यवातादी-  
न्कृमिकुष्ठव्रणानपि ॥ अर्शांसि गुल्मांश्च  
तथा नाशयेदाशु योजितम् ॥ ९७ ॥

गिलोयका काथ और सोंटका कल्क डालकर मृदु  
अग्निसे पकाया हुआ घी वातरक्तको विशेष करके दूर कर-  
ताहै और आमवात तथा ऊरुस्तम्भादि वातरोग, कृमि,  
कोढ़, व्रण, बवासीर तथा गुल्मको भी दूर करे है ९५-९७ ॥

अथ तृतीयं गुडूचीघृतम् ।

अमृतास्वरसविपक्वं सर्पिस्तत्कल्कसाधितं  
पीतम् ॥ अपहरति वातरक्तमुत्तानं चाव-  
गाढं च ॥ ९८ ॥

गिलोयके स्वरसमें गिलोयके कल्कसे घृतको पकाकर  
सवन करे तो अत्यंत बढ़ा हुआ वातरक्त नष्ट होताहै ९८ ॥

अथ चतुर्थं गुडूचीघृतम् ।

अमृतायाः पलशतं जलद्रोणावशेषितम् ॥  
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कल्कादष्टौ पलानि  
च ॥ ९९ ॥ चतुर्गुणेन पयसा वातास-  
क्कुष्ठनाशनम् ॥ कामलापांडुरोगघ्नं प्लीह-  
कासज्वरापहम् ॥ १०० ॥

गिलोय चारसों ४०० तोले भर लेकर १०२४ एक  
हजार चौबीस तोले जलमें काथ बनावे, फिर इस काथमें  
३२ तोले गिलोयका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घी  
पकावे । यह चतुर्थ गुडूची घी वातरक्त, कोढ़, कामला,  
पांडुरोग, प्लीहा, खाँसी और ज्वरको दूर करे-  
॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ पंचमगुडूचीघृतम् ।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं  
वला ॥ वासारग्वधवृश्चिवदेवदारुत्रिकं-  
टकम् ॥ १०१ ॥ कटुका रोहिणी कृष्णा  
काश्मर्यस्य फलानि च ॥ रास्नाक्षुरकग-

न्धर्ववृद्धदारुघनोत्पलैः ॥ १०२ ॥ कल्कै-  
रेभिः समैः कृत्वा सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥  
धात्रीरसः समो देयो वारित्रिगुणसंयुतः  
॥ १०३ ॥ सम्यक्सिद्धं च विज्ञाय भोज्ये  
पाने च शस्यते ॥ बहुदोषोत्थितं वातर-  
क्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ १०४ ॥ उत्तानं  
चापि गंभीरं त्रिकं जंधोरुजानुकम् ॥  
क्रोष्टुशीर्षमहाशूले आमवाते सुदारुणे ॥  
॥ १०५ ॥ दाहरोगोपसृष्टस्य वेदनां चा-  
तिदुस्तराम् ॥ मूत्रकृच्छ्रमुदावर्तं प्रमेहं  
विषमज्वरान् ॥ १०६ ॥ एतान्सर्वान्निहं-  
त्याशु वातपित्तकफोत्थितान् ॥ सर्वकालो-  
पयोगेन वर्णायुर्वलवर्द्धनम् ॥ अश्विभ्यां  
निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ १०७ ॥

गिलोय, मुलेठी, दाख, त्रिफला, सोंट, खिरैटी, अडूसा,  
अमलतास, सफेदपुनर्नवा, देवदारु, गोखुरु, कुटकी,  
मजीठ, पीपल, कुम्भेरके फल, रासना, तालमखाना, एरंड,  
विधारा, नागरमोथा और नीले कमल इन सबको समान-  
भाग लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको डालकर चौसठ  
तोले आमलोकें रसमें और उससे तिगुने जलमें चौसठ  
तोले घीको पकावे, उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेके पश्चात्  
भोजनमें तथा पीनेमें इस घृतका उपयोग करे तो अनेक  
दोषोंसे उत्पन्न हुआ वातरक्त, ऊपरको उभरा हुआ और  
गम्भीर वातरक्त, त्रिक, जघा, ऊरु, जानु और क्रोष्टुशीर्ष  
इनका शूल, महाभयकर शूल, दारुण आमवात, दाह-  
रोग, अत्यंतदुस्तर पीडा, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, विषमज्वर  
और वातपित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके  
रोग इन सबको दूर करे है । इसका सदैव उपयोग  
करनेसे वर्ण, आयु और बल अधिक बढ़ताहै । यह  
अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ घृत परमोत्तम  
है ॥ १०१-१०७ ॥

अथ षष्ठं गुडूचीघृतम् ।

गुडूचीस्वरसे सर्पिर्जीवनीयैश्च साधितम् ॥  
कल्कैश्चतुर्गुणैः क्षीरैः सिद्धं वाऽजस्र-  
वातनुत् ॥ १०८ ॥

गिलोयके स्वरससे और जीवनीय गणके कल्कसे चौगुने दूधमे पकाया हुआ घी वातरक्तको शमन करता है १०८ ॥

### अथ महागुडूचीघृतम् ।

अमृतायाः शतं प्राप्य जलद्रोणे विपा-  
चयेत् ॥ चतुर्भागावशिष्टन्तु घृतप्रस्थं  
विपाचयेत् ॥ १०९ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं तत्र  
दापयेन्मतिमान् भिषक् ॥ कल्कश्चात्र  
प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ११० ॥  
काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ च  
यत् ॥ शतावरी पयस्या च मधुकं नील-  
मुत्पलम् ॥ १११ ॥ अश्वकन्दस्य  
मूलानि स्थिरं वा कटुरोहिणीम् ॥ ऋद्धिं  
वृद्धिं तथा मेदे श्वदंष्ट्रां बृहतीद्वयम् ॥  
॥ ११२ ॥ गडूचीं पिप्पली रास्तां वासकं  
चापि संहरेत् ॥ तदेकस्थं समैर्भागैः  
पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ११३ ॥ पानाम्य-  
ञ्जननस्येषु परिषेके च दापयेत् ॥ वात-  
स्तं सशोषाढ्यं सदाहं क्रोष्टुशीर्षकम् ॥  
॥ ११४ ॥ खञ्जोरुस्तम्भवातश्च वातरक्तं  
सुदारुणम् ॥ बहूदितं वातकृच्छ्रं गृध्रसीं  
वातकण्टकम् ॥ नाशयेद्योजितं सर्पिर्ध-  
न्वन्तरिवचो यथा ॥ ११५ ॥

४०० चारसौ तोले गिलोयको १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे जब पकते २ चौथा भाग जल शेष रहजाय तब उस काथमें ६४ चौसठ तोले घी तथा चौगुना दूध डालकर काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, सतावर, विदारीकद मूलेठी, नीले कमल, असगंधकी जड, पृथिवर्णी, कुटकी, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गोखरू, कटेरी, बड़ी कटेरी, गिलोय, पीपल, रासना और अड्डसा इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर कल्क बनाकर उसमे डालकर मंद मंद अग्निसे पकावे तो महागुडूची घृत सिद्ध होता है । धन्वन्तरि भगवान् कहते हैं कि इस घृतको पान करनेमें अभ्यगमें, नस्यमें तथा सेचनमे प्रयोग करे तो शोष और दाहयुक्त

वातरक्त, क्रोष्टुशीर्ष, खंजवात, ऊरुस्तम्भ, दारुणवातरक्त, बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ वातकृच्छ्र गृध्रसी और वातकण्टक इन सब रोगोका नाश होता है ॥ १०९-११५ ॥

### अथ शताह्लादितैलम् ।

काथेन शतपुष्पायाः कुष्ठस्य मधुकस्य  
च ॥ एकैकं साधयेत्तैलं वातरक्तरुजाप-  
हम् ॥ ११६ ॥

सोये ( सौंफ ) के काथसे एकवार, दूसरी बार कूठके काथसे और तीसरी बार मुलैठीके काथसे पकाया हुआ तैल वातरक्तकी पीडाको शमन करता है ॥ ११६ ॥

### अथ महापिंडतैलम् ।

सारिवारिष्टकूष्माण्डपोतकीभस्मजाम्बु-  
ना ॥ गुडूचीगव्यदुग्धाभ्यां कर्मरंगरसेन  
च ॥ ११७ ॥ विपचेत्तिलजं तैलं दत्त्वै-  
तानि भिषग्वरः ॥ काकोल्यौ जीवकं  
मेदे शताह्लाक्षीरिणीयुतैः ॥ ११८ ॥  
जिंगीसिवथाऽमृतानन्तासार्जसैन्धवचन्द-  
नैः ॥ हन्याद्वातास्रजं घोरं स्फुटितं  
गलितं तथा ॥ ११९ ॥ चर्मदलाख्यं  
पामादींस्त्वग्दोषश्च विपादिकाम् ॥ कुष्ठान्य  
शांसि वीसर्पं व्रणशोथं भगन्दरम् ॥ १२० ॥  
न सोऽस्ति वातरक्तस्य विकारो योऽभि-  
वर्द्धितः ॥ यत्र हन्यात्प्रसह्यैतत्पिण्डतैलं  
महत्समृतम् ॥ १२१ ॥

सारिवा, नीम, पेठा और पोई इनके भस्मके जलसे, गिलोयके काथसे, गायके दूधसे, कमरखके रससे और काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, मेदा, महामेदा, सोया, खिरनी, मजीठ, मोम, गिलोय, सारिवा, राल, सैधानिमक और लाल चदन इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल 'महा-पिंड तैल' कहा जाता है इस तेलका उपयोग करनेसे घोर वातरक्त, फटता और गलता हुआ चर्मदल कोढ़, पामा-दि रोग, त्वचाके समस्त विकार, विपादिका, कोढ़, ववा-सीर, वीसर्प, व्रण, शोथ और भगन्दर इन सब रोगोको



दूर करेहै । ऐसा कोई भी वातरक्तका बढा हुआ विकार नहीं है कि जिसको यह महापिडतैल दूर न कर-  
देवे ॥ ११७-१२१ ॥

अथ पिडतैलम् ।

सारिवासर्जमञ्जिष्ठायाष्टीसिक्थैः पयोन्वि-  
न्वितैः ॥ तैलं पक्वं प्रयोक्तव्यं पिण्डारुख्यं  
वातशोणिते ॥ १२२ ॥

सारिवा, राल, मजीठ, मुलैठी और मोम इनका,  
कल्क डालकर चौगुने दूधमें पकाया हुआ तेल 'पिडतैल'  
कहा जाता है । इस तैलका वातरक्तपर उपयोग करना  
चाहिये ॥ १२२ ॥

अथ द्वितीयं पिण्डतैलम् ।

सारिवासर्जयष्ट्याहमधुसिक्थैः पयोन्वि-  
तैः ॥ सिद्धमैरण्डजं तैलं वातरक्तरुजा-  
पहम् ॥ अपृतमथितस्यास्य पिण्डतै-  
लस्य योगतः ॥ १२३ ॥

सारिवा, राल, मुलैठी और मोम इनका कल्क डालकर  
चौगुने दूधमें पकाया हुआ अटीका तेल वातरक्तकी पीडा-  
को शमन करता है ॥ १२३ ॥

अथ महापद्मकतैलम् ।

पद्मकेशरयष्ट्याहफेनिलापद्मकोत्पलैः ॥  
पृथक्पञ्चपलैर्दत्तं वलाकिंशुकचन्दनैः ॥  
॥ १२४ ॥ जले शृतं पचेत्तैलं प्रस्थं  
सौवीरसम्मितम् ॥ लोध्रकाकोलिको-  
शीरजीवकर्पभकेशरैः ॥ १२५ ॥ मद-  
यन्तिलतापत्रपद्मकेशरपद्मकैः ॥ प्रपौण्ड-  
रीककालीयमेदोमांसीप्रियंगुभिः ॥ १२६ ॥  
कुंकुमैर्द्विगुणैः कर्पैर्मञ्जिष्ठायाः पलेन च ॥  
महापद्मकमिदं तैलं वातासृग्वरनाश-  
नम् ॥ १२७ ॥

कमलकी केसर, मुलैठी, रीठा, पञ्जाख, नीलेकमल,  
गिरैठी, टेम् और लालचन्दन यह प्रत्येक पदार्थ बीस बीस  
तोले लेकर इनका काय बनाकर उसमें लोध्र, काकोली,  
पद्म, जीवक, कपभक, नागकेसर, मदनवान, तेजपात,  
कमलकी केसर, पञ्जाख, प्रपौण्डरीक, दानहलदी, मेदा,  
पाल्लव और कृत्वाप्रिगु इन प्रत्येक पदार्थका एक एक

तोला कल्क डाले, केसरका दो तोले कल्क डाले और  
मजीठका चार तोले कल्क डाले तथा सौवीर नामक कौजी  
६४ तोले और तेल ६४ तोले मिलाकर यत्नपूर्वक पकावे  
तो 'महापद्मक तेल' सिद्ध होता है यह तेल-वातरक्त और  
ज्वरका नाश करता है ॥ १२४-१२७ ॥

अथ खुड्वाकपद्मकतैलम् ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीकाथसाधितम् ॥  
स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिच-  
न्दनैः ॥ खुड्वाकपद्मकमिदं तैलं वातासृ-  
पित्तनुत् ॥ १२८ ॥

पञ्जाख, खस, मुलैठी और हलदी इनके काथमें खल,  
मजीठ, बडीसतावर, काकोली और लालचन्दन इनका  
कल्क डालकर पकाया हुआ तेल 'खुड्वाकपद्मक' कहा जा-  
ता है । यह तेल वातरक्तको नष्ट करता है ॥ १२८ ॥

अथ गुडूचीतैलम् ।

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषित  
म् ॥ क्षीरद्रोणन्तु ताभ्यां च पचेत्तैलाढकं  
शनैः ॥ कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयग-  
णोत्थितैः ॥ १२९ ॥ कुष्ठैलागुरुमृद्रीका-  
मांसी व्याघ्रनखं नखी ॥ हरेणु श्रावणी  
व्योषं शताह्वा शृंगिसारिवे ॥ १३० ॥  
त्वक्पत्रागुरुविक्रान्ता स्थिरा तामलकी  
तथा ॥ नतकेशरहीवेरं पद्मकोत्पलचन्द-  
नम् ॥ सिद्धं कर्षसमैर्भागैः पानाभ्यंगा-  
नुवासनैः ॥ १३१ ॥ सेव्यं वातासृजा-  
न्हन्ति स्रोतोधात्वन्तराश्रितान् ॥ धन्यं  
पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् ॥  
॥ १३२ ॥ स्वेदकण्डूरुजायामशिरः-  
कम्पामयार्दितान् ॥ हन्याद्व्रणकृतान्दो-  
षान्गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ १३३ ॥

४०० चारसौ तोले गिलोयको एक हजार चौबीस  
तोले जलमें पकावे जब पकते पकते जल चीथाई भाग  
शेष रहजाय तब उस काथमें १०२४ एक हजार चौबीस  
तोले दूध डाले और मुलैठी, मजीठ, जीवनीय-

गणकी औषधि, कूठ, इलायची, अगर, दाख, वालछड, थूहर, नख, निगुण्डीके बीज, गोरखमुण्डी, सोंठ, मिरच, पीपल, सोया, काकडागिगी, सारिवा, तज, तेजपत्र-अगर, अरणी, पृश्निपर्णी, भुईआमला, तगर, नागकेशर, सुगन्धवाला, पद्माख, नीलकमल और लाल चन्दन यह प्रत्येक औषधि एक एक तोलाभर ले कल्क डालकर २५६ दोसी छप्पन तोले तेल धीरे धीरे पकावे तो यह 'गुडूचीतेल' सिद्ध होता है । पीनेमें, अभ्यगमे तथा पिचकारी लगानेमें इस तेलका उपयोग करनेसे खोतोमे तथा धातुओंमें प्राप्त हुए वातरक्तके विकार गमन होते हैं । यह उत्तम गुडूचीतेल धन्य है, पुत्रको देनेवाला है, स्त्रियोंके गर्भको उत्पन्न करै है और वात तथा पित्तको गमन करनेवाला है । यह तेल पसीना, खुजली, व्यथा, आयाम, शिरःकंप, अर्दित और व्रणके विकारोंको शमन करता है ॥ १२९-१३३ ॥

### अथ मृताह्वयतैलम् ।

गुडूची मधुकं ह्रस्वपंचमूलं पुनर्नवा ॥  
रास्तामेरण्डमूलश्च जीवनीयानि लाभतः ॥ १३४ ॥ पलानां शतिकैर्भागैर्बलापंच-  
शतं भवेत् ॥ कोलं बिल्वं यवान्माषान्कु-  
लत्थांश्चाढकोन्मितान् ॥ १३५ ॥ काश्म-  
र्याणाञ्च शुष्काणां द्रोणं द्रोणशतेऽम्भसः ॥  
साधयेज्ज्वरं पूतं चतुर्द्रोणञ्च शेषयेत् ॥  
॥ १३६ ॥ तैलद्रोणं पचेत्तेन दत्त्वा पंचगुणं  
पयः ॥ पिष्ट्वा त्रिपलिकश्चैव चन्दनोशीर-  
केशरम् ॥ १३७ ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठानि  
तगरं मधुयष्टिका ॥ मञ्जिष्ठार्द्धपलश्चैव  
तत्सिद्धं सर्वयौगिकम् ॥ १३८ ॥ वात-  
रक्ते क्षते क्षीणे भारार्त्ते क्षीणरेतसि ॥  
वेपनोत्क्षिप्तभग्नानां सर्वैकांगजरोगिणाम्  
॥ १३९ ॥ योनिदोषमपस्मारमुन्मादं  
विषमज्वरम् ॥ हन्यात्पुंसवनश्चैव तैला-  
श्रयममृताह्वयम् ॥ १४० ॥

गिलोय, मुलेठी, लघुपंचमूल, पुनर्नवा, रासना, अण्ड-  
की जड और जितनी मिलसके उतनी जीवनीयगणकी  
औषधी यह प्रत्येकद्रव्य ४०० चार सौ तोले लेवे, खिरैटी

दोहजार २०० तोले लेवे, बेर, बेलगिरी, जौ, उडद और कुल-  
थी यह प्रत्येक पदार्थ २५६ दोसी छप्पन तोले लेवे,  
सुखायेहुए कुम्भेरके फल एक द्रोण लेवे इन सब पदा-  
र्थोंको कुटकर सौ द्रोण जलमें काथ बनावे जब यह पक-  
कर नरम होजाय तब वस्त्रमें काथको छान लेवे, फिर  
अग्निसे पकावे जब चार द्रोण जल शेष रहजाय तब उतार  
लेवे, फिर इस काथमें दूधपाच भाग, लाल चन्दन, खस  
और नागकेशर यह प्रत्येक पदार्थ बारह बारह तोले लेवे,  
सबको पीसकर कल्क बनाकर डालदेवे, तेजपत्र, इलायची  
अगर, कूठ, तगर, मुलेठी, तथा भेंजीठ यह प्रत्येक  
औषधी दो दो तोले लेकर कल्क बनाकर, डालदेवे, फिर  
इस कल्क तथा उस दूध मिले काथसे एक द्रोण तेलको  
पकावे तो यह 'अमृताह्वय' नामक तेल सिद्ध होता है,  
यह तेल वातरक्तपर, क्षतमें, क्षीणतामें, भारसे पीडित  
हुएपर, वीर्यकी क्षीणतामें, कम्पमें, क्षिप्त, भग्न, सर्वांग  
वातरोगपर और एकागवातरोगपर हितकारी है । इस  
तेलसे योनिके विकार, अपस्मार, उन्माद, तथा विष-  
मज्वर भी दूर होता है और स्त्रियोंके गर्भको देनेवाला  
है ॥ १३४-१४० ॥

### अथ मृणालाद्यमिश्रकतैलम् ।

मृणालोत्पलशालूकसारिवोदीच्यकेशरैः ॥  
चन्दनद्वयभूनिम्बपत्रबीजकसेरुकैः ॥  
॥ १४१ ॥ पटोलकटुकानन्तागुन्द्रापर्प-  
टवासकैः ॥ पिष्ट्वा तैलं घृतं पक्वं तृणमू-  
लरसेन वा ॥ क्षीरद्विगुणसंयुक्तं वस्तिक-  
र्मसु योजितम् ॥ नस्याभ्यञ्जनपानैर्वा  
हन्यात्पित्तगदानिदम् ॥ १४२ ॥

कमलकी नाल, नीलकमल, कमलकन्द, सारिवा,  
सुगन्धवाला, नागकेशर, लालचन्दन, सफेदचन्दन,  
चिरायता, कमलगट्टे, कसेरू, परवल, कुटकी, सारिवा  
( जहा एक पाठमें एक औषधि दो बार आवे तो दो  
भाग और तीन बार आवे तो तीन भाग लेनी चाहिये  
ऐसी सम्प्रदाय है ) गोंद, पटेर, पित्तपापडा और अड्डसा  
इनका कल्क डालकर तृणपञ्चमूलके काथमें दुगुने दूधके

साथ दूध और घृतको पकावे तो 'मृणालाद्यमिश्रक' सिद्ध होता है । वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यङ्ग और पीनेसे यह मिश्रक पित्तसम्बन्धी रोगोंको दूर करे है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

### अथ धतूराद्यतैलम् ।

कनकशिखरिमानक्षारसंसिद्धतोये कुसुम-  
लवणयुक्तैः सर्जनिर्यासपूर्णैः ॥ विधिश्च-  
ततिलतैलं कल्कयुक्तं निहन्ति प्रचुरतर-  
मिदानीमिन्द्रलुप्तस्रवातम् ॥ १४३ ॥

धतूरा, चिरचिटा और मानकन्द इनकी भस्मका काय बनाकर उसमें लैंग, सैधानिमिक और रालका कल्क डालकर विधिपूर्वक तिलके तेलको इसी कल्कके साथ व्यवहार करे तो विशेष करके वातरक्त और इन्द्रलुप्त रोगको दूर करे है ॥ १४३ ॥

### अथ नागवलातैलम् ।

शुद्धां पचेन्नागवलानुलान्तु जलार्मणे पा-  
दकषायसिद्धम् ॥ विस्राव्य तैलाढकमत्र  
देयमजापयस्तैलविमिश्रितन्तु ॥ १४४ ॥  
नतं सयष्टिं मधुकश्च कल्कं दत्त्वा पृथक्पं-  
चपलं विपकम् ॥ तद्वातरक्तं शमयत्यु-  
दीर्णं वस्तिप्रदानेन हि सप्तरात्रात् ॥  
दशाहयोगेन करोत्यरोगं पीतश्च तैलो-  
त्तममश्विनोक्तम् ॥ १४५ ॥

४०० चार सौ तोले उत्तम गोरन ( गुलशकरी ) लेकर १०२४, एक हजार चौबीस तोले जलमें काय बनावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उस काथको बख्खमें छानलेवे फिर उस काथमें तगर और मुल्लैठी इनका बीस २० तोले कल्क डालकर तथा चौगुना बकरीका दूध डालकर उससे २५६ दोस्रो छप्पन तोले तेल पकावे तो 'नागवला तेल' सिद्ध होता है । अश्विनोक्तुमारोंका कहाहुआ यह तेल है । इस तेलकी पिचकारी लगानेसे वृद्धिको प्राप्तहुआ भी वातरक्त सात दिनमें नष्ट होजाता है और जो यह

तेल पियाजाय तो दश दिनमें वातरक्त नष्ट होजाता है ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

### अथ जीवकाद्यमिश्रकतैलवृते ।

जीवकर्षभकौ मेदे ऋष्यप्रोक्ता शतावरी ॥  
मधुकं मधुपर्णी च काकोलीद्वयमेव च ॥  
॥ १४६ ॥ मुद्गमाषाख्यपर्णी च दशमूलं  
पुनर्नवा ॥ बलामृता विदारी च साश्वग-  
न्धाश्मभेदकौ ॥ १४७ ॥ कुर्यात्कल्कं  
कषायश्च ताभ्यां तैलं वृतं पचेत् ॥ लाभ-  
तश्च वसा मज्जा मांसं प्रतुदविष्किरात् ॥  
॥ १४८ ॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्सिद्धं  
वातशोणितम् ॥ सर्वदेहाश्रितान्हन्ति  
व्याधीन्धोरांश्च वातजान् ॥ १४९ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, सतावर, मुलैठी, गिलेय, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, दशमूलकी दशौऔपधि, पुनर्नवा, खिरैटी, गिलेय, विदारीकन्द, असगन्ध और पाखानभेद इनका कल्क और इनहीके कायमे चौगुने दूधके साथ जितना मिल-सके उतना प्रतुद और विष्किर पक्षियोंके मास, चर्वी तथा मज्जा डालकर धी और तेलको पकावे तो यह जीवकाद्यमिश्रक सिद्ध होता है । यह मिश्रक वातरक्त और सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त भयकर वातव्याधियोंको भी दूर करे है ॥ १४६-१४९ ॥

### अथ शतपाकवलातैलम् ।

वलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गु-  
णम् ॥ शतपाकं भवेदेतद्वातासृग्वातपि-  
त्तनुत् ॥ १५० ॥ धन्यं पुंसवनश्चैव नराणां  
शुक्रवर्द्धनम् ॥ रेतोयोनिविकारघ्नमेतद्वा-  
तविकारनुत् ॥ १५१ ॥

खिरैटीके कायमे खिरैटीका कल्क डालकर तथा चौगुना दूध डालकर तेलको पकावे जब पकजाय तब फिर इनहीं द्रव्योंके साथ इस तेलको पकावे, इस प्रकार सौवार इस तेलको पकावे तो यह 'शतपाकवलातैल' सिद्ध होता है । यह तेल भाग्यको बढ़ानेवाला, पुत्रको देनेवाला, मनुष्योंके वीर्यको बढ़ानेवाला, शुक्र और योनिके रोगोंको हरनेवाला, वात तथा पित्तके विकारोंको नष्ट करनेवाला है और वातस्रवधी सपूर्ण रोगोंको दूर करे है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

अथ मधुकाद्यतैलम् ।

मधुयष्ट्याः पलशतं कषाये पादशेषिते ॥  
तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मि-  
तैः ॥ १५२ ॥ शतपुष्पावरीमूर्वापयस्या-  
गुरुचन्दनैः ॥ स्थिराहंसपदीमांसीद्विमे-  
दामधुपर्णिभिः ॥ १५३ ॥ काकोलीक्षी-  
रकाकोलीतामलक्यृद्धिपद्मकैः ॥ जीव-  
कर्षभजीवन्तीत्वक्पत्रनखवालकैः ॥ १५४ ॥  
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवेन्दुवितुन्नकैः ॥  
वातासृक्पित्तदाहार्तिज्वरघ्नं बलवर्ण-  
कृत् ॥ १५५ ॥

४०० चार सौ तोले मुलैठीका काथ बनावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसमें सोया, सता-  
वर, मूर्वा, विदारीकंद, अगर, लालचंदन, पृथिवीर्णी,  
हंसपदी ( एक प्रकारकी लजावन्ती ) वालछड, भेदा,  
महामेदा, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, भुईआमले,  
ऋद्धि, पद्माख, जीवक, ऋषभक, जीवन्ती, दालचीनी,  
तेजपात, सुगंधनख, सुगंधबाला, कमल, मजीठ, सारिवा,  
कपूर और केवटीमोथा इनका चार चार तोले कल्क २५६  
तोले दूध और २५६ तोले तेल डालकर उत्तम विधिसे  
तेलको पकावे तो यह 'मधुकाद्यतैल' सिद्ध होताहै ।  
इस तेलको सेवन करनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होती-  
है तथा वातरक्त, पित्त, दाहकी पीडा और ज्वर नष्ट  
होताहै ॥ १५२-१५५ ॥

अथ शतपाकमधुकतैलम् ।

मधुयष्ट्याः पलं पिष्ट्वा तैलप्रस्थं चतुर्गुणे ॥  
क्षीरे साध्यं शतं वारांस्तदेव मधुकान्वि-  
तम् ॥ १५६ ॥ सिद्धं देयं त्रिदोषे स्या-  
द्वातास्रश्वासकासनुत् ॥ धन्यं पुंसवन-  
श्चैव कामलादाहनाशनम् ॥ १५७ ॥

४०० चारसौ तोले मुलैठीका कल्क डालकर चौगुने  
दूधमें चौसठ तोले तेलको पकावे, जब पकजाय तब  
फिर इसी तेलको दूसरी बार इनही द्रव्योंसे पकावे, इस  
प्रकार सौवार इसी तेलको इस कल्क और दूधसे पकावे  
तो यह 'शतपाक मधुकतैल' तैय्यार होताहै । यह तेल  
भाग्यको बढ़ानेवाला, पुत्रको देनेवाला, तथा वातरक्त,  
श्वास, खाँसी, कामला और दाहको दूर करेहै,

तीनों दोषोके प्रकोपमे भी इस तेलको देना चाहिये  
॥ १५६-१५७ ॥

अथ सहस्रपाकबलातैलम् ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरसम पचेत् ॥  
सहस्रशतपाकं वा वातासृग्वातरक्तनुत् ॥  
॥ १५८ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठमिन्द्रियाणां  
प्रसादनम् । जीवनं बृंहणं स्वयं शुकासृ-  
ग्दोषनाशनम् ॥ १५९ ॥

खिरैटीके काथसे और कल्कसे दूध और तेल डालकर  
विधिपूर्वक पकावे, इस प्रकार हजारवार इस तेलको  
पकावे तो यह 'सहस्रपाकबलातैल' सिद्ध होताहै यह तेल  
वात रुधिरके विकार, वातरक्त और वीर्यके दोषोंको दूर  
करेहै, उत्तम रसायन, इन्द्रियोको स्वच्छ करनेवाला,  
जीवनको बढ़ानेवाला, धातुओंको पुष्ट करनेवाला और  
स्वरको उत्तम करनेवाला है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

अथ पुनर्नवागुग्गुलुः ।

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुक्ममूलञ्च तथा  
प्रयोज्य ॥ दत्त्वा पलं षोडशकञ्च शुण्ठ्याः  
संकुट्य सम्यग्विपचेद्धटेऽपाम् ॥ १६० ॥  
पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्टशे-  
षेण पुनः पचेत्तु ॥ एरण्डतैलं कुडवञ्च  
दद्याद्दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि पंच ॥ १६१ ॥  
निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयं  
चार्द्धपलं पलं प्रति ॥ फलत्रयव्यूषणाचि-  
त्रकाणि सिन्धूत्थभल्लातविडङ्गकानि ॥  
॥ १६२ ॥ कर्षं तथा माक्षिकधातुचूर्णं  
पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम् ॥ चूर्णानि  
दत्त्वा ह्यवतार्य शीति खादेन्नरः कर्षसम-  
प्रमाणम् ॥ १६३ ॥ वातासृजं वृद्धिग-  
दं च सप्त जयत्यवश्यं त्वथ गृध्रसीं च ॥  
जंधोरुपृष्ठत्रिकवस्तिजं च तथामवातं प्रब-  
लं च हन्ति ॥ १६४ ॥

पुनर्नवेकी जड ४०० तोले अडकी जड ४००  
तोले और सौठ ६४ तोले इनको उत्तम रीतिसे कूट  
कर १०२४ तोले जलमें पकावे जब पकते पकते

आठवा भाग जल शेष रहजाय तब उस काथको छान-  
लेवे, फिर इस काथमें ३२ तोले गूगल डालकर पकावे,  
पकते समय इसमें १६ तोले अठीका तेल, निसोतका  
चूर्ण २० तोले, जमालगोटिका चूर्ण ४ तोले, गिलेयका  
चूर्ण १० तोले, हरडका चूर्ण ४ तोले, बहेडेका चूर्ण ४  
तोले, आमलोंका चूर्ण ४ तोले, सोंठका चूर्ण ४ तोले,  
मिरचका चूर्ण ४ तोले, पीपलका चूर्ण ४ तोले, चीतेका  
चूर्ण ४ तोले, सैधेनिमकका चूर्ण ४ तोले, मिलावका  
चूर्ण ४ तोले, वायविडगका चूर्ण ४ तोले, सोनामाखीका  
चूर्ण १ तोला और पुनर्नवेका चूर्ण १ तोला डालकर  
पकावे, जब अच्छे प्रकारसे पकजाय तब अग्निपरसे उतार  
लेवे । शीतल होनेपर इसमेंसे एक तोलाभर नित्य खाय ।  
यह गूगल—वातरक्त, सात प्रकारकी वृद्धि, गृध्रसी, जँवा,  
ऊरु, पृष्ठ, त्रिक और वास्ति इनमें प्राप्त हुए वातके  
विकारोंको शमन करैहै तथा प्रबल आमवातको नष्ट करै-  
है ॥ १६०—१६४ ॥

### अथ समशर्करागुग्गुलुः ।

यावशूकसुरदारुसैन्धवं मुस्तकत्रुटिविचा-  
यवानिकाः ॥ व्योपदोष्यकनिशाफलत्रिकं  
जीरकद्वयविडंगचित्रकम् ॥ १६५ ॥  
कार्पिकं सुमसृणं सुयोजितं संयुतं पुरप-  
लेश्व पंचभिः ॥ शर्करां पुरसमां सुपपये-  
त्तप्तसर्पिषि विनिक्षिपेत्ततः ॥ १६६ ॥  
वातरक्तमुदरं भगन्दरं ग्रीहयक्ष्मविषम-  
ज्वरं गरम् ॥ श्वित्रकुष्ठमखिलव्रणानयं  
चित्तविभ्रममदांश्च दारुणान् ॥ १६७ ॥  
गृध्रसी च गुदजामिमन्दतां हन्ति कोष्ठज-  
नितं महागदम् ॥ वज्रमिन्द्रसुकरादिव  
च्युतं गुप्तशैलकुलमुत्तमं द्रुतम् ॥ १६८ ॥  
अन्नपानपरिहारवर्जितं सर्वकालसुखदं  
निरत्ययम् ॥ सेव्यमानमिदमश्विनिर्मितं  
गुग्गुलोर्हि वटिकारसायनम् ॥ १६९ ॥  
चत्वारो मापका हीने मध्यमेऽष्टौ च मा-  
पकाः ॥ श्रेष्ठा द्वादशकाः प्रोक्ताः कोष्ठं  
विज्ञाय पाययेत् ॥ १७० ॥ संसनत्वाद्गु-  
रत्वाद्वा गुग्गुलोः करणक्रमः ॥ १७१ ॥

जवाखार, देवदारु, सैधानिमिक, नागरमोथा, इला-  
यची, वच, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद,  
हल्दी, हरड, बहेडा, आमला, जीरा, कालाजीरा,  
वायविडंग और चीता इनको एकत्र बारीक पीसकर इसमें  
२० तोले गूगल मिलाकर और २० तोले खांड  
मिलावे, फिर उस गूगलको गरम घीमें मिलाकर खूब कूटे  
तो यह 'शर्करासमगूगल' सिद्ध होताहै । जिसप्रकार  
इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र बड़े बड़े पर्वतोंको भेदन  
करदेताहै उसीप्रकार यह गूगल वातरक्त, उदरके रोग,  
भगन्दर, ग्रीहा, अयरोग, विषमज्वर, विष, श्वित्र-  
कोठ, सर्वप्रकारके व्रण, चित्तविभ्रम सम्बन्धी दारुणरोग,  
गृध्रसी, बवासीर, अग्निकी मंदता और कोष्ठगत बड़े  
बड़े रोगोंको दूर करैहै । अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ  
यह समशर्करागूगल—रसायन, सर्वकालमें सुख देनेवाला  
और इसपरअन्नपान किसीका परहेज नहीं है । हीन कोठे-  
वाले मनुष्यको यह गूगल चारमासे देवे, मध्यम कोठेवाले  
मनुष्यको आठमासे देवे और श्रेष्ठ कोठेवाले मनुष्यको  
बारहमासे देवे । कोठेको देखकर गूगलको देवे । गूगल  
लसन पदार्थ है और भारी है इसकारण गूगल देनेमें यह  
क्रम कहा है ॥ १६५—१७१ ॥

### अथामृतागुग्गुलुः ।

प्रस्थभेकं गुडूच्याश्च अर्द्धप्रस्थं च गुग्गुलोः ॥  
प्रत्येकं त्रिफलायास्तु तत्प्रमाणं विनि-  
दिशेत् ॥ १७२ ॥ सर्वमेकत्र संकुटय  
काथयेदुल्वणेऽम्भसि ॥ पादशेषं परि-  
स्त्राव्य कषायं ग्राहयेद्विषका ॥ पुनः पचे-  
त्कषायन्तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥  
॥ १७३ ॥ दन्तीव्योपविडंगानि गुडू-  
चीत्रिफलात्वचः ॥ ततश्चार्द्धपलं चूर्णं  
गृह्णीयाच्च पृथक्पृथक् ॥ १७४ ॥ कर्पन्तु-  
त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ तस्मि-  
न्सुसिद्धं विज्ञाय कषाण्णे प्रक्षिपेद्बुधः ॥  
॥ १७५ ॥ ततश्चाग्निबलं मत्वा खादे-  
त्कर्पप्रमाणतः ॥ वातरक्त तथा कुष्ठं  
गुदजान्याग्निसादनम् ॥ १७६ ॥ दुष्ट-



व्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम् ॥  
नाड्याढ्यवातं श्वयथुं सर्वानेतान्व्यपो-  
हति ॥ १७७ ॥

गिलोय ६४ तोले, गूगल ३२ तोले, हरड ६४ तोले, बहेडे ६४ तोले और आमले ६४ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके अत्यंत गरम पानीमें इनका काथ बनावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतारकर छानलेवे, फिर उसको अग्निपर चढाकर पकावे जब गाढा होनेलगे तब जमालगोटे, सोठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, गिलोय, हरड, बहेडा, आमला और दालचीनी यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर और निसोतका एक तोला चूर्ण इसमें मिलादेवे, जब यह गूगल अच्छेप्रकारसे पककर तैय्यार होजाय तब उतारलेवे, मंदोष्ण होय तब इसको ढालदेवे, फिर अग्निके बलाब-लका विचार करके इस गूगलमेंसे नित्य एक तोलाभर खाय, यह गूगल—वातरक्त, कोढ, बवासीर, मंदाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, ऊरुस्तम्भ और सूजनको दूरकरेहै ॥ १७२-१७७ ॥

अथ द्वितीयोऽमृतागुग्गुलुः ।

त्रिप्रस्थममृतायाश्च प्रस्थमेकन्तु गुग्गुलोः ॥  
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥  
॥ १७८ ॥ सर्वमेकत्र संकुटय साधये-  
दुल्वणेऽम्भसि ॥ पुनः पचेत्पादशेषं याव-  
त्सान्द्रत्वमागतम् ॥ १७९ ॥ दन्तीचि-  
त्रकमूलानां कणाविश्वफलत्रिकम् ॥  
गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलं मतम् ॥  
॥ १८० ॥ त्रिवृताकर्षमेकन्तु सर्वमेकत्र  
चूर्णयेत् ॥ सिद्धे चोष्णे क्षिपेत्तच्च अमृ-  
तागुग्गुलुं परम् ॥ १८१ ॥ अतो यथा  
बलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः ॥ वात-  
रक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यभिसादनम् ॥  
॥ १८२ ॥ दुष्टव्रणं प्रमेहांश्च आमवातं  
भगन्दरम् ॥ नाड्याढ्यवातं श्वयथुं  
हन्यात्सर्वामयांस्तथा ॥ अश्विभ्यां नि-  
र्मितश्चायममृताख्यो हि गुग्गुलुः ॥ १८३ ॥  
गुडरामठशुण्ठीनां मांसकूष्माण्डयोरपि ॥

गुडूच्या गुग्गुलोश्चैव प्रस्थः षोडशभिः  
पलैः ॥ १८४ ॥

गिलोय ३ प्रस्थ, गूगल १ प्रस्थ, हरड १ प्रस्थ, बहेडे १ प्रस्थ, आमले १ प्रस्थ और पुनर्नवा १ प्रस्थ, इन सब पदार्थोंको एकत्र कूटकर अत्यंत गरम पानीमें पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उस काथको छानकर अग्निपर चढादेवे, जब यह पकते पकते गाढा होजाय तब इसमें जमालगोटेकी जड, चीतेकी जड, पीपल, सोंठ, डरड, बहेडा, आमले, गिलोय, तज और वायविडंग यह प्रत्येक पदार्थ दोदो तोले और निसोत एक तोला लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके मिलादेवे । जब गूगल अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उसको उतारकर ढालदेवे तो यह 'अमृतागुग्गुलु' सिद्ध होताहै । विशेष-करके अम्लपित्तके रोगियोंको अग्निके बलानुसार यह गूगल सेवन करना चाहिये । अश्विनीकुमारोका बनाया हुआ यह गूगल—वातरक्त, कोढ, बवासीर, अग्निकी मंदता, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, ऊरुस्तम्भ, सूजन और सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करे है ॥ १७८-१८४ ॥

अथ नवपुराणगुग्गुलोर्लक्षणम् ।

स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्कजम्बूफलोपमः ॥  
नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु  
पिच्छिलः ॥ १८५ ॥ शुष्को दुर्गन्धिक-  
श्चैव वर्णान्यत्वमुपागतः ॥ पुराणः स तु  
विज्ञेयो न स देयस्तु रोगिणे ॥ १८६ ॥

जो गूगल चिकना, सोनेकी समान चमकदार, पकी-हुई जामुनकी समान कांतिवाला, सुगन्धी और पिच्छिल ऐसा होय तो उसको नवीन जानना । जो गूगल सूखा, दुर्गन्धित तथा जिसका रंग बदल गया होय उसको पुराना जानना । ऐसा गूगल रोगीको नहीं देना चाहिये ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

अथ चंद्रप्रभावटिका ।

क्रिमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यः  
भूनिम्बाः ॥ मागधिमूलं मुस्तं शटीवचा-  
धातुमाक्षिकश्चैव ॥ लवणक्षारनिशायुक्कु-

स्तुम्बुरुगजकणाः सहातिविषाः ॥ १८७ ॥  
 कर्षाशिकान्येव समानि कुर्यात्पलाष्टकं  
 चाश्मजतु प्रदद्यात् ॥ निष्पत्रशुद्धस्य  
 पुरस्य धीमान्पलद्वयं लौहरजस्तथैव ॥  
 ॥ १८८ ॥ सिताचतुष्कं पलमत्र वा  
 स्यान्निकुम्भकुम्भत्रिमुगन्धियुक्तम् ॥  
 पृथक्पलं चूर्णमथावपेक्ष चन्द्रप्रभेयं  
 गुटिका विधेया ॥ १८९ ॥ ज्वरातिसार-  
 ग्रहणीविकारांश्चाशांसि निर्णाशयते  
 षडेव ॥ भगन्दरान्कामलपाण्डुरोगान्नि-  
 र्णष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् ॥ १९० ॥  
 हन्त्यामयान्पित्तकफानिलोत्थात्राडीगते  
 मर्मगते व्रणे च ॥ शतक्षये गृध्रसियक्ष्मरोगे  
 मेहै गजाख्ये प्रबले प्रयोज्या ॥ १९१ ॥  
 शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहे-  
 ऽप्युदरामये च ॥ शम्भुं समभ्यर्च कृतप्र-  
 सादं प्राप्ता गुटी चन्द्रमसा प्रशस्ता १९२ ॥  
 न पानभोज्ये परिहारवादो न शीतवाता-  
 तपमैथुनेषु ॥ भक्तस्य पूर्व सततं प्रयोज्या  
 तक्रानुपानाप्यथ मस्तुपाना ॥ अजारसो  
 जाङ्गलजो रसो वा पयोऽथ वा शीतज-  
 लानुपानम् ॥ १९३ ॥ शुक्रदोषान्निह-  
 न्त्यष्टौ प्रमेहांश्चापि विंशतिम् ॥ वलीपलि-  
 तनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १९४ ॥ गिरि-  
 जतुगुग्गुलुलौहान्येकीकृत्याथ भावये-  
 द्बहुशः ॥ कायैस्तद्याधिहरैस्तदनु च चूर्णी-  
 कृतं मिलितम् ॥ कृमिरिप्वादिकचूर्णैर्गि-  
 रिजतु समधान्यपटोलयूपेण ॥ १९५ ॥

वायविडग, चीना, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा,  
 आमला, देवदारु, चिरायता, पीपलामूल, नागरमोथा,  
 कनूर, वच, सोनामाखी, संधानिमक, जवाखार, हल्दी,  
 दारुलदी, यमिना, गजपीपल और अतीस यह प्रत्येक  
 पदार्थ एक एक तोला लेकर चूर्ण बना लेवे, गिलाजीत  
 पत्तीन तोले लेवे, शुद्ध किया हुआ गूगल आठ तोले लेवे,

लोहचूर्ण आठ तोले लेवे ( गिलाजीत, गूगल और लोह-  
 चूर्णको एकत्र करके जिन जिन रोगोंमें देना है उनहीं उन  
 रोगोंको हरनेवाली औषधियोंके कायमें अवश्य भावना देनी  
 चाहिये ), खाड १६ तोले लेवे, निसोत, जमालगोटा, तज,  
 तमालपत्र तथा इलायची इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण  
 चार चार तोले लेना चाहिये, इन सब पदार्थोंको एकत्रित  
 करके गोली बनावे, इनको चन्द्रप्रभा गोली कहतेहैं । यह  
 चन्द्रप्रभा बटी—ज्वर, अतिसार, ग्रहणीके विकार, छे प्रका-  
 रकी ववासीर, भगन्दर, कामला और पांडुरोगको नष्ट करै-  
 है और अत्यन्त मद हुई अग्निको दीपन करैहै । वातपित्त  
 कफसे उत्पन्न हुए रोगोपर, नाडीत्रणपर, मर्मगतव्रणोपर,  
 क्षयसे उत्पन्न हुए थयपर, गृध्रसीपर, थयरोगमें तथा अत्यंत  
 प्रबल गजमेह, वीर्यकी क्षीणता, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, वीर्य-  
 प्रवाह और उदरके रोगोंपर भी इन चन्द्रप्रभा गोलियोंको  
 प्रयोग करना चाहिये । प्रसन्न हुए श्रीसदाशिवका पूजन  
 करनेपर यह उत्तम गोली चन्द्रमाको प्राप्त हुई है । इन  
 गोलियोंको सेवन करनेवाले मनुष्यको भोजन, पान, शीत,  
 पवन, धूप, और मैथुन इनका परहेज करनेकी आवश्यक-  
 कता नहीं है । भोजन करनेसे पहिले तक्रके साथ, दहीके  
 तोडके साथ, बकरीके मांसके रसके साथ, जागल प्रदेशके  
 प्राणियोंके मांसरसके साथ, दूध और शीतल जलके साथ  
 सदैव इन गोलियोंको उपयोग करना चाहिये । यह गोली  
 वीर्यके आठ प्रकारके दोष और बीस प्रकारके प्रमेहको  
 नष्ट करै है । इन गोलियोंका उपयोग करनेसे वृद्ध मनुष्य  
 भी बलि और पलित रोगसे मुक्त, होकर युवाकी समान  
 होजाताहै ॥ १८७—१९५ ॥

### अथ कैशोरगुग्गुलुः ।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गु-  
 लोः प्रस्थम् ॥ प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफ-  
 लाञ्च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ १९६ ॥  
 द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन ॥  
 विपचेत्तदप्रमत्तो दर्व्या संधट्टयेन्मुहुर्या-  
 वत् ॥ १९७ ॥ अर्द्धक्षयितं तोयं जातं  
 ज्वलनस्य सम्पर्कात् ॥ अवतार्य वस्त्रपतं  
 पुनरपि संसाधयेदयःपात्रे ॥ १९८ ॥

सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपल-  
स्पर्शं ॥ त्रिफलाचूर्णाद्विपलं त्रिकटोश्चूर्णं  
षडक्षपरिमाणम् ॥ १९९ ॥ क्रिमिरि-  
पुचूर्णाद्विपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्धन्त्योः ॥ पल-  
मेकन्तु गुडूच्या दत्त्वा संचूर्ण्य यत्नेन  
॥ २०० ॥ उपयुज्य चानुपानं यूपं क्षीरं  
सुगन्धि सलिलञ्च ॥ इच्छाहारविहारी  
भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥ २०१ ॥  
तनुरोधि वातशोणितमेकद्विच्युल्वणं चि-  
रोत्थमपि ॥ भग्नश्रुतपरिशुष्कं स्फुटितं  
दीर्घमाजानु यच्चापि ॥ २०२ ॥ व्रणकास-  
कुष्ठगुल्मश्वयथुं गरपाण्डुमेहांश्च ॥ मन्दा-  
ग्निञ्च विबन्धं प्रमेहपिडकांश्च नाशय-  
त्याशु ॥ २०३ ॥ सततं निषेव्यमाणः  
कालवशाद्वन्ति सर्वगदान् ॥ अभिभूय  
जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम् ॥ २०४ ॥  
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ जलश्चाढकमाढकम् ॥  
गुडवद्गुगुलोः पाकः सन्धेयस्तु विशे-  
षतः ॥ २०५ ॥

उत्तम भैसेके नेत्र तथा उदरकी समान ६४ चौसठ  
तोले गूगल लेकर पानीमें डालदेवे फिर उसमें चौसठ  
तोले हरड, बहेडा और आमले तथा बत्तीस पल गिलोय  
यत्नपूर्वक डालकर आगपर चढादेवे । सावधान होकर  
जबतक आधा न जलजाय तबतक बारबार करछीसे  
चलातारहै फिर उसको अग्निपरसे उतारकर बस्त्रमें छान-  
कर पश्चात् लोहेके बासनमें करके अग्निपर चढावे, गाढे  
होनेपर उतार लेय । जब शीतल होजाय तब हरड,  
बहेडा और आमलेका चूर्ण दो दो तोले, सोंठ, मिरच  
और पीपलका चूर्ण दो दो तोले, वायविडगका चूर्ण  
दो तोले, निसोतका चूर्ण दो तोले, दती ( जमालगोटे-  
की जड)का चूर्ण दो तोले और गिलोयका चूर्ण चार तोले  
मिलादेवे । इसको यथायोग्य अनुपान, यूप, दूध, सुगंधित  
गुलाब केवडा आदिके अर्कके साथ देवे । इसपर यथेच्छ  
आहारविहार करे । यह शरीरको बिगाडनेवाला वातरक्त,  
एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, बहुत दिनोका उत्पन्न  
हुआ, भग्नरोग, खताहुआ, सूखा हुआ, फटाहुआ  
शुष्कनोतक प्राप्त हुआ वातरक्त, व्रण, खोंसी, कोढ़,

गुल्म, सूजन, विषविकार, पांडुरोग, प्रमेह, मदाग्नि,  
विबन्ध और प्रमेह पिडका इन सबको शाघ्रही दूर कर  
देताहै । यह सदैव सेवन किया हुआ कालवशसे सर्व  
रोगोंको नष्ट करदेताहै । वृद्ध अवस्थाको दूर करके किशोर  
अवस्थाको प्राप्त करताहै ॥ १९६-२०५ ॥

### अथ त्रिफलागुग्गुलुः ।

त्रिफलातिविषादारुदार्वांमुस्तापरूषकैः ॥  
खदिरासननक्ताह्वगुडूचीनृपपादपैः २०६ ॥  
भूनिम्बनिम्बकटुकाकालिंगकुलकैः समैः ॥  
कार्थं कृत्वा ततः पूतं शृतमष्टगुणेऽम्भ-  
सि ॥ २०७ ॥ गुडूच्यास्तत्र सुकृतं  
चूर्णमर्द्धतु वारिणि ॥ क्षिप्त्वा सुनूतने  
भाण्डे वासयेद्रजनीगतम् ॥ २०८ ॥  
सोमोपेतेन पूतेन कौशिकं परिभावयेत् ॥  
षड्गुणेन तु सप्ताहं शिलाजतुसमन्वि-  
तम् ॥ २०९ ॥ शुक्तस्य तु पलान्यष्टौ  
समावाप्य विचक्षणः ॥ ताप्यचूर्णं पल-  
श्रैकं द्वे पले मधुसर्पिषोः ॥ २१० ॥  
एकीकृत्य समं सर्वं लिह्यात्सुत्रिफला-  
म्बुना ॥ तनुना मुद्गयूषेण जांगलानां  
रसेन वा ॥ जीर्णेऽजीर्णे च भञ्जीत पुराणं  
शालिषष्टिकम् ॥ २११ ॥ यथारोगं  
यथासात्म्यं रसैर्यूषैश्च संस्कृतैः ॥ त्रिसप्ता-  
हप्रयोगेण वातरक्तं सुदारुणम् ॥ २१२ ॥  
निहन्ति वीर्यतः क्षिप्रं कुष्ठरोगान्ब्रणानपि ॥  
छिन्नं भिन्नञ्च सन्धत्ते त्रिफलाख्यो हि  
गुग्गुलुः ॥ २१३ ॥

त्रिफला, अतीस, देवदारु, दारुहलदी, नागरमोथा,  
फालसे, खैर, विजयसार, हलदी, गिलोय, अमलतास,  
चिरायता, नीम, कुटकी, इन्द्रजौ और पटोलपत्र यह सब  
समान भाग लेकर अष्टगुने जलमें पकावे, गिलोय,  
काथके जलसे आधी लेवे, पश्चात् उस जलको उत्तम  
मट्टीके बासनमें करके एक रात्रितक सुवासित करे । फिर  
इसमें छे गुनी वावची मिलाकर बस्त्रमें छानकर इसमें गूग

लकी सात दिनतक झिलाजीत मिलाकर भावना देवे । फिर शुक्तनामक कांजी ३२ तोले, सोनामाखीका चूर्ण चार तोले, सहत और वी आठ तोले सबको मिलाकर एकमे एक कर लेवे । इसको त्रिफलेके जलके साथ, अथवा मूगके दूधके साथ या जागल जीवोंके मांसके रसके साथ मिलाकर खाय । जब जीर्ण होने लगे तब पुराने गालि या साठी धान और यथारोगानुसार और प्रकृतिके अनुसार रस और दूधोंको सेवन करे । इसको तीन सप्ताह पर्यंत सेवन करनेसे दारुण वातरक्त नष्ट होता है । और यह अपने प्रभावसे कुष्ठ और त्रणोंको भी दूर कर देता है । यह त्रिफलागूगल छिन्न भिन्न अंगोंको जोड़नेवाला है ॥ २०६-२१३ ॥

### अथ सिंहनादगुग्गुलुः ।

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् ॥ सौगन्धिकं पलत्रैकं कौशिकस्य पलत्रयम् ॥ २१४ ॥ कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः ॥ पात्रयेत्पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दृढे ॥ २१५ ॥ हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खड्गपंगुताम् ॥ श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ २१६ ॥ कुष्ठानि वातरक्तश्च गुल्मं शूलोदराणि च ॥ आमवातं जयत्येतदपि वैद्यविवर्जितम् ॥ २१७ ॥ सर्वदास्योपयोगेन जरापलितनाशनम् ॥ सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालिषष्टिकम् ॥ २१८ ॥ सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा ॥ वह्नेर्दीप्तिकरं पुंसां भाषितो दण्डपाणिना ॥ २१९ ॥ अत्राहुस्त्रिफलाकाथं पृथक् त्रिपलसम्मितम् ॥ किञ्चिन्निर्याति चैरण्डन्नेहे पाकोऽधिके खरः ॥ २२० ॥

सिंहनाद गुग्गुलु-त्रिफलेका काथ १२ तोले, कुट्टा हुआ गन्धक चार तोले, गुग्गुलु बारह तोले और अटीका तेल पावभर लेवे सबको एकत्र करके पाकको जाननेवाला वैद्य लोहेके दृढ और उत्तम पात्रमें पकावे । यह वात, पित्त तथा कफके विनाश, गज पशुता, दुर्जर श्वास, पाँचों प्रकारकी खाँसी, कोंट, वातरक्त, गुल्म, शूल, उदररोग

और दुर्जर आमवात रोगको भी नष्ट करे है । इसका सदैव उपयोग करनेसे जरा और पलितरोगोंको नष्ट करे है । घी तेल और मांसरसके साथ गालि और साठी धानोंके चावल्लोंको खाय । सिंहनाद नामक यह गूगल रोगरूपी हाथियोंके मदको हरनेवाला है । अग्निको दीपन करनेवाला है । ऐसा श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ २१४-२२० ॥

### अथ द्वितीयः सिंहनादगुग्गुलुः ।

अष्टौ पलान्यत्र पलङ्कषायाः प्रस्थः पृथक् शुद्धफलत्रयस्य ॥ दत्त्वा पचेद्गोणयुगे जलस्य पादावशेषं पुनरेव वैद्यः ॥ २२१ ॥ दन्तीत्रिवृत्तदूषणवारुणीनां विडंगमुस्तत्रिफलामृतानाम् ॥ कन्दोऽगन्धालुकमाणकानां सगन्धकानाञ्च सपारदानाम् ॥ २२२ ॥ पलार्द्धमानं प्रमितं सुचूर्णं दद्याद्विषकं पुनरेव तत्र ॥ फलानि संचूर्ण्य च कानकानि सहस्रसंख्याकलितानि पश्चात् ॥ २२३ ॥ खादेद्विमाषद्वितयं प्रतप्तं तोयादिकं देयमतोऽनुपाने ॥ आमामनिलं सन्धिगतं सगूलं शिरोगतं जानुकटिस्थितञ्च ॥ २२४ ॥ अशोऽतिवृत्तिं विषमज्वरार्तिं प्रमेहकुष्ठानि भगन्दरञ्च ॥ हन्यान्नराणामिति सिंहनादो मेदोमरुच्छेष्मगदान्पुरोऽयम् ॥ २२५ ॥ दाहोऽत्यन्तप्रवृत्तिर्वा विकारोऽन्यो भवेद्बहुः ॥ तत्कृतस्तु तदा तत्र तक्रभक्तं हितं भवेत् ॥ उद्धर्तनं शीतजलस्नानञ्च शयनं तथा ॥ २२६ ॥ विरेकातिशयं कुर्यात्सिंहनादो यतः सुधीः ॥ ज्ञात्वा बलं शरीरे तु दद्यादेवं न वा भिषक् ॥ २२७ ॥ तोयारनालगोक्षरैः क्रमात्पक्वं विशुध्यति ॥ फलं कतकसंज्ञन्तु कृत्वा चूर्णं ततः क्षिपेत् ॥ २२८ ॥

शुद्ध गुग्गुलु वत्तीस ३२ तोले, शुद्ध हरट ३२ तोले, शुद्ध वहैडा ३२ तोले और शुद्ध आमले ३२

तोले इन सबको दो हजार अड़तालीस तोले भर जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग रहजाय तब उतारलेवे, फिर इसमें जमालगोटे, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल, भुईआमले, वायविडग, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, सूरण, वच, आलुका, मानकन्द, गन्धक और पारा ये प्रत्येक पदार्थ दो २ तोले लेकर चूर्ण बनाकर उसमें डालकर दूसरी बार पकावे । पक जानेके बाद एक हजार धतूरेके फलोका चूर्ण करके मिलादेवे तो यह 'सिंहनाद गूगल' तय्यार होता है । यह गूगल बारह रत्ती प्रमाण खाय और गरम जल आदिका अनुपान करे । यह गूगल मनुष्योंकी बवासीर, विषमज्वरकी पीडा, प्रमेह, कोढ़, भगन्दर और मेद, वायु, तथा कफसे उत्पन्नहुए रोगोंको दूर करे है । इस गूगलको सेवन करनेसे दाह, अतीसार, अथवा अन्यान्य कोई विकार होय तो तक्रके साथ भात खाय । उबटन, शीतल जलसे स्नान और शयन करना हितकारी है । यह सिंहनादगूगल बहुत दस्त लाता है इस कारण बुद्धिमान वैद्य रोगीके शरीरका बल विचारकर बारह रत्ती प्रमाण देवे अथवा इससे भी कम देवे । इस गूगलमें धतूरेके फलोका चूर्ण डालना कहा है सो उनको ऐसेही नहीं डालना चाहिये किंतु प्रथम उसके फलोको अनुक्रमसे पानीसे, आरनालसे तथा गायके दूधसे पकावे, प्रथम शुद्ध करके फिर इनका चूर्ण करके डाले । पानी आदिसे पकानेसे धतूरेके फल शुद्ध होजाते हैं ॥ २२१-२२८ ॥

अथ तृतीयसिंहनादगुग्गुलुः ।

पिचितां गुग्गुलोर्मानां कटुतैले पलाष्टके ॥  
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ २२९ ॥ पादशेषं सुपूतश्च पुनरभाव-  
धिभ्रयेत् ॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्ताविडंगा-  
मलकानि च ॥ २३० ॥ गुडूच्यमित्रि-  
वृहन्तीवचासूरणमानकम् ॥ कस्तूरीरस-  
सूतांशं प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ २३१ ॥  
सहस्रं कानकफलं सिद्धे संचूण्य निक्षि-  
पेत् ॥ ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्त-  
प्तजलादिकम् ॥ २३२ ॥ अग्निश्च कुरुते  
शीघ्रं वडवानलसन्निभम् ॥ धातुवृद्धिं  
वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥ २३३ ॥

आमवातं शिरोवातं ग्रन्थिवातं भगन्द-  
रम् ॥ जानुजंघाश्रितं वातं सकटीग्रहवे-  
दनम् ॥ २३४ ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रे च  
भग्ने च तिमिरोदरे ॥ अम्लपित्तं तथा  
कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ २३५ ॥ कासं  
पञ्चविधं श्वासं क्षयश्च विषमज्वरम् ॥  
प्लीहानं श्लीपदं गुल्मान्पाण्डुरोगं सकाम-  
लम् ॥ २३६ ॥ शोथान्त्रवृद्धिशूलानि  
गुदजानि विनाशयेत् ॥ मेदःकफामस-  
ञ्जातरोगवारणदर्पहा ॥ २३७ ॥ सिंहनाद  
इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ भिष-  
ग्भिर्वर्जिते रोगे भाषितो दण्डपा-  
णिना ॥ २३८ ॥

वत्तीस ३२ तोले सरसोंके तेलमें खूब कूटाहुआ वत्तीस ३२ तोले गूगल लेवे, हरड ६४ तोले, बहेडे ६४ तोले और आमले ६४ तोले इन सबको डेढ द्रोणजलमें पकावे जब पकते २ जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर कपडेमें छानलेवे, फिर दूसरीवार आगपर पकावे उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडग, आमले, गिलोय, चीता, निसोत, जमालगोटेके बीज, वच, जमीकंद, मानकद, कस्तूरी, रसौत और पारा ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर पीसकर डालदेवे विधिपूर्वक पकावे, जब पकजाय तब जल, आरनाल, कौजी और गायके दूधसे शुद्ध किये हुए धतूरेके एक हजार फल उनका चूर्ण बनाकर डाल देवे तो यह 'सिंहनाद गूगल' सिद्ध होता है । इस गूगलको बारह रत्ती प्रमाण खाय और गरमजल आदिका अनुपान करे । यह गूगल तत्काल जठराग्निको बढवानलकी समान दीपन करता है, धातुओंको बढाता है, जीवनकी वृद्धि करता है, विपुल बलको उत्पन्न करता है । तथा आमवात, शिरोवात, ग्रन्थिवात, भगन्दर, जानु और जंघागतवात, कमरकी पीडा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भग्न, तिमिर, उदरोग, अम्लपित्त, कोढ़, प्रमेह, गुदाका निकलना ( काच ), खोंसी, पाच प्रकारका श्वास, विषमज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला, सूजन, अत्रवृद्धि, शूल और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करता है । मेद, कफ और आम इन रोगरूपी हाथियोंके गर्वको हरनेवाला यह 'सिंहनाद



गृगल इस नामसे प्रसिद्ध योग अमृतकी समान है । वैद्य करके वर्जित रोगोंको दूर करनेके लिये यह श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ २२९-२३८ ॥

अथ योगसारामृतः ।

शतावरी नागवला वृद्धदारकमुच्चटा ॥  
पुनर्नवाऽमृता कृष्णा वाजिगन्धा त्रिक-  
ण्टकम् ॥ २३९ ॥ पृथग्दशपलान्येषां  
श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ तदर्द्धशर्करायुक्तं  
चूर्णं संमर्दयेद् बुधः ॥ २४० ॥ स्थापयेत्सु-  
दृढे भाण्डे मध्वर्द्धाढकसंयुतम् ॥ घृतप्र-  
स्थेन वाऽऽलोडय त्रिसुगन्धपलेन च २४१  
तं खादेदिष्टभक्ष्यान्नो यथावह्निबलं नरः ॥  
वातरक्तं क्षयं कुष्ठं काश्यं पित्तास्रसम्भ-  
वम् ॥ २४२ ॥ वातपित्तककोत्थांश्च  
रोगानन्यांश्च तत्कृतान् ॥ हत्वा करोति  
पुरुषं हत्वा सर्वामयान्द्रुतम् ॥ २४३ ॥  
बलीपलितनिर्मुक्तं मेधास्मृतिविभूषितम् ॥  
करोति पुरुषं धन्यं पञ्चवर्षशतायुषम् ॥  
योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकीर्तिविव-  
र्द्धनः ॥ २४४ ॥

सतावर, गगेरन ( गुलगकरी ), विधारा, उटगकंजीज,  
पुनर्नवा, गिलोय, पीपल, असगव और गोखरु ये प्रत्येक  
पदार्थ ४० चालीस ४० चालीस तोले लेकर उनका  
चारीक चूर्ण बनाकर उसमें आधाभाग खांड मिलावे,  
अबको गूँथ मर्दनकरे फिर उसमें १२८ तोले सहत और

६४ तोले घी तथा तज, तेजपत्र और इलायचीका चूर्ण  
प्रत्येक चार चार तोले मिलाकर अत्यन्त दृढ वासनमें  
भरकर रखदेवे तो यह 'योगसारामृत' सिद्ध होता है ।  
मनुष्योंको यह 'योगसारामृत' अपनी जठराग्निके बलानुसार  
खाना चाहिये और यथेष्ट अन्नपान भोजनकरे । लक्ष्मी  
तथा कीर्तिको बढ़ानेवाला यह योगसारामृत—वातरक्त,  
कोढ़, कृगता, पित्त तथा रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले रोग  
और वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न हुये अन्यान्य रोगोंको  
भी दूर करके बलि और पलित रोग नष्ट करेहै, मेधा  
और स्मरणशक्तिसे शोभायमान करता है । भाग्यको बढ़ाता  
है और उसकी पांचसौ वर्षकी आयु करता है २३९-२४४

अथ वातरक्ते त्याज्यानि ।

व्यायामं मैथुनं कोपमुष्णाम्ललवणं  
रसम् ॥ दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरु चान्य-  
द्विवर्जयेत् ॥ २४५ ॥

इति वातरक्तनिदानचिकित्साधिकारः ।

व्यायाम ( दंड, कसरत ), मैथुन, क्रोध, उष्ण, खट्टा  
और खारी रसवाले पदार्थ, दिनमें सोना और जो जो  
पदार्थ अभिष्यन्दि तथा भारी हैं उन सबको यह वातरक्त-  
रोगी त्याग देवे ॥ २४५ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैद्यकृतवैद्यसजीविनी-

भाषाटीकायां मध्यखंडे द्वितीयो

भागः सम्पूर्णः ।



॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥



❀ अथ भावप्रकाशः । ❀

❀ मध्यमखण्ड-तृतीयो भागः ३. ❀

❀ भाषाटीकासमेतः ❀

अथ शूलाधिकारः ।

अथ शूलनिदानम् ।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा  
भवेत् ॥ सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः  
प्रभुः ॥ १ ॥

वायुसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे, आमसे, वात-  
पित्तसे, वात तथा कफसे और पित्तकफसे, इसप्रकार शूल  
आठ प्रकारका है, इन सम्पूर्ण शूलोंमें वातका शूल  
अधिक प्रबल है ॥ १ ॥

अथ वातोत्पन्नशूलस्य निदान-  
संप्राप्ति-लक्षणानि ।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छी-  
तजलातिपानात् ॥ कलायमुद्गाढकिंकोर-  
दूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥  
कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरक-

शुष्कशकैः ॥ विट्छुक्रमूत्रानिलसन्निरो-  
धाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥ वायुः  
प्रवृद्धो जनयेद्वि शूलं हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिक  
वस्तिदेशे ॥ जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च  
शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ३ ॥  
मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विण्मूत्रसंस्तम्भ-  
नतोदभेदैः ॥ संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः  
स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ४ ॥

व्यायामो मल्लयुद्धादिः । यानं तुरगर-  
थादि । मैथुनं स्त्रीसेवा । प्रजागरं रात्रौ ।  
एषामतियोगाच्छीतलजलप्रभूतपानात् । क-  
लायः त्रिपुटः । आढकी तुवरी । कोरदूषः  
कोद्रवः । अत्यर्थरूक्षम्, अतिरूक्षद्रव्यसेवा ।  
अध्यशनं भुक्तस्य उपरि भोजनम् । अभिघातो  
लोष्टादिभिः । कषायतिक्तरससेवा कषायः  
विरूढजान्नम् विरूढमंकुरितमन्नम् । कला-

यन्त्रणादि तज्जमत्रं भक्ष्यम् । वल्लूरकं  
शुष्कमांसम् । तस्य शूलस्य देशमाह-  
हृदादिषु । तत्र हृच्छूलस्य पृथगपि लक्षणं  
पठन्ति ॥

ज्याम ( कसरत ), यान ( रय, घोडे आदिकी  
मवागी ), मैथुन, रंजिमें जागरन इनको अत्यत करनेसे,  
शीतलजलके अधिकपीनेसे, मटर, मूंग, अड़हर तथा  
कोदोंके अत्यन्त भक्षणसे, रुध्र पदार्थोंके अत्यत सेवन  
करनेसे अभ्यशन ( भोजनपर भोजन करने ) से अभि-  
यान ( लाठी ईट आदिकी चोट लगनेसे, ) कसेले कड़वे  
रसके सेवनसे, जिसमें अकुर निकल आये हो ऐसा अन्न  
तथा विरुद्ध पदार्थ दूध मछली आदि खानेसे, सूखा हुआ  
मांस तथा गन्धेहुए आक भिट्ठियालके भक्षणसे, विष्टा, वीर्य,  
मूत्र, अयोवायु, इनके वेगको रोकनेसे, अत्यन्त शोक  
तथा अत्यताधिक उपवास करनेसे, बहुत ईसनेसे और  
अत्यत बोलनेसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु हृदय,  
पीठ, पसली, त्रिकस्थान और मूत्राशयमें शूलको उत्पन्न  
करे पश्चात् खाया हुआ अन्न पच जानेपर प्रदोष ( संध्या-  
काल ) में, वर्षासमयमें, शीतकाल समयमें, वायुका क्रोश  
होनेपर शूल अधिक उत्पन्न होता है । यह शूल बारबार  
उत्पन्न होता है और बारबार शान्त होता है । इस शूलसे  
विष्टा तथा मूत्र रुक जाता है, और पीडा अविक होती है ।  
और अंगोंमें भेद होता है यह वातशूलके लक्षण हैं सेक  
आदि स्वेदन करनेसे, अभ्यंग ( तेलकी मालिश ) से, मर्दन  
( मचने आदि ) से और मृग्य तथा गरम भोजन करनेसे  
यह शूल शान्त होता है ॥ २-४ ॥

अन्य ग्रन्थोंमें हृदयमें शूलके, पसलीके और वन्ति-  
स्थानके अलग लक्षण भी कहे हैं जो कहते हैं ।

अथ हृदयशूललक्षणम् ।

कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसवर्द्धितः ॥  
॥ ५ ॥ हृत्स्थः प्रकुरुते शूलमुच्छ्वासस्या-  
वरोधकम् ॥ स हृच्छूल इति ख्यातो  
रसमारुतकौपजः ॥ ६ ॥

यह शूल शीतसे नहीं हुई और रसमें बड़ी हुई हृदय  
में रहनेवाली वायुमें आग नश्वरी तब शूलको उत्पन्न  
करे यह शूल और वायु के उत्पन्न हुआ यह शूल हृदय-  
में रहता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ पार्श्वशूललक्षणम् ।

कफं निगृह्य पवनः सूचीभिरिव निस्तुदन् ॥  
पार्श्वस्थः पार्श्वयोः शूलं कुर्यादाध्मानसं-  
युतम् ॥ ७ ॥ तेनोच्छ्वसिति वक्त्रेण नरोऽ-  
न्नञ्च न कांक्षति ॥ निद्राश्च नाप्नुयादेव  
पार्श्वशूलः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

कफ वायुको लेकर सुईके चुभोनेकी सदृश पसलियोंमें  
पीडा उत्पन्न करती है और साथमें पेटपर अफारा भी  
करे है । यह शूल हुआ होय तो मनुष्य मुखसेही ऊँचे श्वास  
लेता है, अन्नकी इच्छा नहीं होती और निद्रा भी नहीं  
आती यह इन लक्षणोंवाला शूल पार्श्वशूल कहा जाता  
है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ वस्तिशूललक्षणम् ।

संरोधात्कुपितो वायुर्वस्तिं संश्रित्य  
तिष्ठति ॥ वस्तेरध्वनि नाडीषु ततः  
शूलोऽस्य जायते ॥ विण्मूत्रवातसंरोधी  
वस्तिशूलः स उच्यते ॥ ९ ॥

प्रकृतमनुसरति । जीर्णं भुक्ते । प्रदोषे  
रात्र्यागमे रात्रिभवशीतेन वातप्रकोपात् ।  
घनागमे वर्षासु मेघोदये च ॥

वेगोंके रोकनेसे कुपित हुई वायु मूत्राशयमें भरी रहती  
है, इससे मूत्राशयके मार्गकी नाडियोंमें शूल होता है और  
इससे मल, विष्टा, मूत्र तथा वायु भी रुकजाती है, यह  
वस्तिशूल कहलाता है ॥ ९ ॥

अथ पित्तजशूलनिदानसंप्राप्ति-  
लक्षणानि ।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपि-  
प्याककुलत्थयूषः ॥ कटुम्लसौवीरसुरा-  
विकारैः कंधानलायासरविप्रतापैः ॥  
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकु-  
प्याथ करोति शूलम् ॥ तृणमोहदाहार्तिकरं  
हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोपयुक्तम् ॥  
॥ १० ॥ मध्यन्दिने कुप्यति चार्द्धरात्रे  
निद्रावकाले जलदात्यये च ॥ शीते च  
शीतः समुपैति शीति सुखादुशीतेरति-  
भोजनैश्च ॥ ११ ॥

निष्पावो राजमाषः । सौवीरं सन्धान-  
भेदः । सुराविकारैः 'परिपक्वान्नसन्धानसमु-  
त्पन्ना सुरा मता' तस्याः प्रकारैः । रवि-  
प्रतापः आतपः । ग्राम्यातियोगो मैथुनाधि-  
क्यम् । विदाहीत्युक्तापि अशनैर्विदग्धैरिति  
बाधयति । अविदाहिवस्तुनोऽपि पित्तवशा-  
द्विदाहित्वं भवति जलदात्यये शरदि शीतै-  
र्वातादिभिः ॥

खारोसे अत्यन्त तीक्ष्ण-गरम मरिच आदि और  
विदाहकारक पदार्थोंसे, तेल-चौरा-खल और कुलथीके  
यूपसे, तीक्ष्ण तथा खट्टे पदार्थोंसे सौवीर कच्चे यवोको अथवा  
पकेभयोको अर्थात् उनकी भूसी दूर करके जलमें सन्धान  
करनेको सौवीर कहतेहैं वरन् अंग्रेजीमें उसको भी राव कह-  
तेहैं सुराका विकार क्रोध, अधिक तापसे, परिश्रमसे, सूर्यकी  
तीक्ष्ण धूससे, फिरनेसे, अधिक मैथुन करनेसे और विदाही  
भोजनोंसे कुपित हुआ पित्त नाभिमें शूलको उत्पन्न  
करैहै, इससे-तृषा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम  
और शोष होताहै । यह शूल मध्याह्नके समयमें,  
अर्धरात्रिमें, ग्रीष्म ऋतुमें और शरद् ऋतुमें अधिक  
कुपित होताहै । शीत कालमें, शीतल वायु आदिके  
लगनेसे, अत्यन्त शीतल अति मधुर भोजनोंसे शान्त होता  
है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ कफजशूलनिदानसंप्राप्ति-

लक्षणानि ।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैः मांसे-  
क्षुपिष्टकृशरातिलशङ्कुलीभिः ॥ अन्यै-  
र्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रको-  
पमुपगम्य करोति शूलम् ॥ १२ ॥  
हृल्लासकाससदनारुचिसंप्रसेकैरामाशयै-  
स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः ॥ भुक्ते सदैव  
हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ  
शिशिरे कुसुमागमे च ॥ १३ ॥

आनूपं बहुलजलदेशजं भक्ष्यम् । वारिजं  
शालूकादि ॥

पक्वं दध्ना समं क्षीरं विज्ञेया दधिकू-  
र्विका ॥ तन्नेण तत्कूर्चकं स्यात्तयोः  
पिण्डः किलाटकः ॥ १४ ॥

पयोविकारः पायसादिः । पिष्टं माषा-  
दिः । अन्यैर्गुर्वादिभिः । स्तिमितमार्द्रपटा-  
वगुण्ठितमिव यत्कोष्ठं शिरश्च तयोर्गुरुत्वैः  
सहसूर्योदय इति त्रिधा विभक्तदिवसप्रथम-  
भागस्य उपलक्षणम् । शिशिरे तत्र कफस्य  
अतिसञ्चयात् । कुसुमागमे वसन्ते ॥

अधिक जलवाले देशोमें उत्पन्न हुए भक्षोंसे, पाक्षयो-  
का मांस और मछलीआदिका मांस और फटे दूधके  
मावेको किलाट कहतेहैं, जलमें उत्पन्न हुए कमलकन्द  
आदि पदार्थोंसे किलाट फटे दूधके मावेसे, दूधपाक आदिके  
पदार्थोंसे, मांससे, ईखके रससे, उडदादि पिसे अन्नसे,  
खिचडी, तिल, पूरी, कचौरी, दहीबडे और अन्य कफको  
उत्पन्न करनेवाले कारणोंसे, कुपित हुआ कफ आमाश-  
यमें शूलको उत्पन्न करैहै । इस शूलसे हृल्लास ( सूखी  
रद्द ), खाँसी, ग्लानि, अरुचि और मुखसे लार गिरतीहैं,  
उदर और मस्तक भारी रहताहै । भोजन करनेके पश्चात्  
यह शूल सर्वदा अत्यन्त पीडा करताहै और दिनके पहिले  
भागमें, शिशिर ऋतुमें, वसन्तऋतुमें, कफका सञ्चय तथा  
वृद्धि होनेसे यह शूल अधिक पीडा करताहै ॥ १२-१४ ॥

अथ द्विदोषोत्पन्नशूललक्षणम् ।

द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोष-  
जम् ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण दोषोंके लक्षण ऊपर कहे हैं, उनमेंसे जिस  
शूलमें दो दोषोंके लक्षण एकत्र देखनेमें आवें उस शूलको  
दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ जानना ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषोत्पन्नशूललक्षणम् ।

सर्वेषु देशेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्विषक्सर्व-  
भवं हि शूलम् ॥ सुकष्टमेनं विषवज्जकल्पं  
विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १६ ॥

सर्वेषु देशेषु हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिकवस्तिनाभ्या-  
माश येषु । सर्वभवं त्रिदोषजम् ॥

जो शूल ( दर्द ) ऊपर कहे हुए हृदय, पीठ, पसली,  
त्रिक, वस्ति, नाभि और आमाशय, इन सब स्थानोंमें  
होताहो और तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त होय, उसको

त्रिदोषज शूल जानना । यह शूल बहुत कष्टदायक है, विप तथा वज्रकी सदृश है और चिकित्सा करनेके योग्य भी नहीं है ऐसा वैद्योंने कहा है ॥ १६ ॥

**अथामोत्पन्नगूललक्षणम् ।**

आटोपहृष्टासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहक-  
फप्रसंकेः ॥ कफस्य लिंगेन समानलिग-  
मामोद्भवं गूलमुदाहरन्ति ॥ १७ ॥

कफस्य कफगूलस्य । आमोद्भवम् आ-  
मादुद्भवो यस्य तम् । अत्र आमगूले जाते  
पश्चादोपसम्बन्धः अत एव अस्य गूलस्य  
अष्टमत्वमुक्तम् । स च प्रथमम् आ-  
माशये भवति पश्चात् सम्बन्धिभिः दोषैः  
वस्तिनाभिहृत्पार्श्वकुक्षिपु भवति यथा-  
दोषसम्बन्धः ॥

जिस गूलमें अफारा, हृष्टास ( उबकाई ), वमन,  
शरीरमें भारीपन, मन्दता, मुखसे कफका गिरना, यह उप-  
द्रव होय तथा कफज गूलके सदृश लक्षण होय उस  
गूलको आमगूल कहते हैं । यह आमगूल उत्पन्न होने-  
पर उगमं दोषोंका सम्बन्ध होताहै इसकारण आमगूलको  
आटोपा कहा है, यह गूल प्रथम आमाशयमें होताहै  
और पीछेमें दोषोंका सम्बन्ध होनेपर जिस दोषका सवध  
हुआ होय उस दोषकी रीतिके अनुसार वस्तिमें, नाभिमें,  
कोष्ठमें, हृदयमें, पसलियोंमें और पेटमें होताहै ॥ १७ ॥

**दोषभेदेन आमगूलस्थानभेदः ।**

वातात्मकं वस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मक-  
श्चापि वदन्ति नाभ्याम् ॥ हृत्पार्श्वकुक्षौ  
कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपा-  
तात् ॥ १८ ॥

हृत्पार्श्वकुक्षौ हृत्पार्श्वभ्यां सहिते कुक्षौ ।  
कफसन्निविष्टं कफेन आविष्टम् ॥

वस्तीं हृत्कटिपार्श्वेषु स गूलः कफवातिकः ॥

कुक्षौ हृत्नाभिमध्ये तु स गूलः कफपैत्तिकः ॥

दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वात-  
पैत्तिकः ॥ १९ ॥

आमाशय में उत्पन्न होनेसे हुआ होय तो मूत्राशयमें, पित्तके  
सवधमें हुआ होय तो नाभिमें, कफके सवधमें हुआ होय

तो हृदयमें, पसलियोंमें तथा उदरमें और तीनों दोषोंके  
सवधसे हुआ होय तो संपूर्ण प्रदेशोंमें होताहै । कफके तथा  
वायुके सवधसे हुआ होय तो मूत्राशय, हृदय, कमर और  
पसलियोंमें होताहै, कफ तथा पित्तके सवधसे हुआ होय  
तो पेटमें, हृदय और नाभिके मध्यमें होताहै और वायु  
तथा पित्तके सवधसे हुआ होय तो दाह तथा ज्वरको उत्पन्न  
करै है परन्तु यह अत्यन्त भयदायक है यह गूल वात-  
पित्तका समझना और यह भयकर है ॥ १८ ॥ १९ ॥

**अथ तंत्रान्तरोक्तामगूललक्षणम् ।**

अतिमात्रं यदाभुक्तं पावके मृदुतां गते ॥

स्थिरीकृतन्तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य ति-

ष्ठति ॥ २० ॥ यदात्रं न गतं पाकं

तच्छूलं कुरुते भृशम् ॥ मूर्च्छाध्मान-

विदाहांश्च हृत्क्लेशं सविलम्बिकम् ॥ २१ ॥

कम्पं वान्तिमतीसारं प्रमेहं जनयेदपि ॥

अविपाकोद्भवं गूलमेतमाहुर्मनीषिणः २२ ॥

**अविपाकोद्भवम् आमोद्भवमित्यर्थः ॥**

अत्यन्त भोजन किये अन्नसे जठराग्नि मन्द होजानेके  
कारण वायु कोठेमें अन्नको स्थिरकरती है, वह अन्न वातमें  
मिलकर उदरमें स्थिर होकर जमजाता है और वात अन्नके  
चारों ओर रहताहै फिर वह अन्न पक्क नहीं होता तो वही  
दुष्ट अन्न नहीं पचकर भारी गूलको उत्पन्न करै है, तथा  
मूर्च्छा, अफारा, दाह, हृदयमें क्लेश, विलम्बिका, कफ,  
वमन अतीसार और प्रमेहको उत्पन्न करै है, इस गूलको  
विद्वान् आमगूल कहते हैं ॥ २०-२२ ॥

**अथ गूलोपद्रवाः ।**

वेदनातितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवा-

रुची ॥ कासः श्वासो वमिर्हिक्का गूलस्यो-

पद्रवाः स्मृताः ॥ २३ ॥

वेदना ( पीडा ), अत्यन्त तृषा, मूर्च्छा, मलबन्ध,  
भारीपन, अरुचि, नौसी, श्वास, वमन और हिक्का, यह  
गूलके दश उपद्रव जानने ॥ २३ ॥

**अथ गूलसाध्यासाध्यत्वम् ।**

एकदोषानुगः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदो-

षजः ॥ सर्वदोषान्वितो घोरस्त्वसाध्यो

भूर्युपद्रवः ॥ २४ ॥



जो शूल एक दोषवाला होय वह साध्य, दो दोषवाला होय वह कष्टसाध्य और तीन दोषवाला होय तथा अधिक उपद्रव सहित होय वह असाध्य तथा भयकर जानना ॥ २४ ॥

अथ शूलारिष्टम् ।

वेदनाऽतितृषा मूर्च्छा आनाहो गारवं  
ज्वरः ॥ भ्रमोऽरुचिः कृशत्वञ्च बलहानि-  
स्तथैव च ॥ उपद्रवा दशैवैते यस्य शूलेषु  
नास्ति सः ॥ २५ ॥

वेदना, अत्यन्त तृषा, मूर्च्छा, अफारा, भारीपन, ज्वर, भ्रम, अरुचि, दुर्बलता और बलकी हानि, इन दश उपद्रवों सहित शूलरोगी होय तो वह रोगी कदापि नहीं बच सक्ता ॥ २५ ॥

अथ शूलभेदः परिणामः ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वातः सन्निहितो  
यदा ॥ कफपित्ते समावृत्य शूलकारी  
भवेद्वली ॥ भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव  
परिणामजम् ॥ २६ ॥

स्वैर्निदानैरित्यादिना निदानपूर्विका संप्रा-  
प्तिरुक्ता । भुक्ते जीर्यतीत्यादिना लक्षणमुक्त-  
म् । समावृत्य व्याप्य ॥

तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ॥  
आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवैपनैः ॥  
स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भि-  
षक् ॥ २७ ॥ तृष्णादाहारतिस्वेदकटुम्ल-  
लवणोत्तरम् ॥ शूलं शीतशमप्रायं पैतिकं  
लक्षयेद् बुधः ॥ २८ ॥ छर्दिहृल्लाससंमोह-  
स्वल्परुग्दीर्घसन्ततिः ॥ कटुतिक्तोपशा-  
न्तौ च विज्ञेयञ्च कफात्मकम् ॥ २९ ॥  
संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् ॥  
त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलान-  
लम् ॥ ३० ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुआ बलवान् वायु जब कफ और पित्तमें व्याप्त होताहै तब शूल उत्पन्न होताहै और

वह शूल भोजन किये अन्नके पचनेके समयमें होताहै इसको परिणाम शूल कहतेहैं । पेटका फूलजाना, गुड गुड शब्द होना, मलमूत्रका अवरोध, अरति, ( मनका न लगना ) तथा कप, यह लक्षण होयें और स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थोंसे शांत होता होय उसको वैद्य वातसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल कहतेहैं । जिसमें तृषा, दाह, अरति, स्वेद ( पसीना ), तीक्ष्ण खट्टे तथा खारी पदार्थोंसे हुआ होय और शीतल पदार्थोंसे जो शान्त होता होय उसको विद्वान्, पित्तसे उत्पन्न हुआ परिणाम शूल कहतेहैं । जिसमें वमन, हृल्लास, मोह तथा अल्प पीडा होय बहुत दिनोंतक रहै और तीक्ष्ण तथा कड़वे पदार्थोंसे जो शांत होताहोय तो उस शूलको कफसे उत्पन्न हुआ परिणाम शूल जानना । उपरोक्त लक्षणोंमेंसे दो दोषके लक्षण मिलते होयें तो वह द्वन्द्वज और जिसमें उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण मिलते होयें उसको त्रिदोषज जानना । जो शूल त्रिदोषज होय और जिसने मांस बल तथा अधिको क्षीण करदिया होय वह परिणाम शूल असाध्य जानना ॥ २६-३० ॥

अथाद्रवनामकशूललक्षणम् ।

जीर्णे जीर्यति चाप्यन्ने यच्छूलमुपजायते ॥  
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन वा ॥  
न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदा-  
हृतः ॥ ३१ ॥

नेदं शूलमसाध्यं चिकित्साभिधानात् ॥

भोजन किया हुआ अन्न पचनेके समयमें अथवा पच-  
नेके पश्चात् जो शूल उत्पन्न होजाताहै, तथा पथ्यसे,  
अपथ्यसे, भोजनसे, अथवा अभोजनसे जिसके शांत  
होनेका नियम नहीं है वह अन्नद्रव शूल कहाताहै, इस  
शूलको असाध्य नहीं जानना, क्योंकि ग्रंथोंमें वैद्य लोगोंने  
चिकित्सा कही है ॥ ३१ ॥

अथ शूलचिकित्सा ।

वमनं लघनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः ॥  
क्षारश्चूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलशा-  
न्तये ॥ ३२ ॥ विज्ञाय वातशूलन्तु स्नेह-  
स्वेदैरुपाचरेत् ॥ स्वल्पशूलाकुलस्य स्या-  
त्स्वेद एव सुखावहः ॥ ३३ ॥

वमन, लघन, स्वेदन, पाचन, फलवर्त्ति ( गुदामें वत्ती  
चढाना, ) क्षार, चूर्ण और गोली, यह सब उपाय शूलके

गोति करनेके लिये उत्तम कहे हैं । शूल वायुसे हुआ जाने तो स्नेहन तथा स्वेदन उपचार करे, किंचित् शूल शय तो स्वेद करनेसे सुख होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

**अथ मृत्तिकास्वेदः ।**

मृत्तिकां सजलां पाकाद्धनीभूतां पटे क्षिपेत् ॥ कृत्वा तत्पोटलीं शूली यथास्वेदं विधारयेत् ॥ ३४ ॥

गद्दीमें पानी डालकर पकावे, जब गाढी होजाय तब रुपेटमें रख पोटली कर लेवे, इससे योग्य भेक करे तो वायुका शूल दूर होताहै, इसको मृत्तिकास्वेद कहते- हैं ॥ ३४ ॥

**अथ कार्पासास्थ्यादिस्वेदः ।**

कार्पासास्थिकुलथ्यकैस्तिलयवैरैरण्डमूला तसीवर्षाभूषणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् ॥ स्वेदः रयादथ कूर्परोदरशिरः- स्फिग्जानुपादांगुलीगुल्फस्कन्धकटीरुजो विजयते निःशेषवातार्तिहा ॥ ३५ ॥

कपासकी अरिथ ( विनोले ), कुलथी, तिल और जो इन सबको अथवा एक एकको अटीकी जड़, अलसी, सोंठ, सनके बीज और काँजी, इन सबके साथ मिलाकर गरम करलेवे, इससे स्वेद देवे तो पहुँचा, पेट, शिर, गुल्फ, घट्टा, पैर, पाँव, अंगुली, एडी, कंधा और कमर इनका शूल नष्ट होताहै और अन्यवायु संशयी सम्पूर्ण पीडा दूर होतीहै, इसको कार्पासास्थ्यादिस्वेद कहतेहैं ॥ ३५ ॥

**अथ तिलादिगुटिका ।**

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि ॥ शूलं सुदुस्तरं तेन शान्तिं गच्छति सत्व- रम् ॥ नाभिलेपाजयेच्छूलं मदनं काञ्जि- कान्वितम् ॥ ३६ ॥

**मदनं मयनफलम् ॥**

विश्वंमरण्डजं मूलं काथयित्वा जलं पि- वेत् ॥ द्विगुमावर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवा- रणम् ॥ ३७ ॥

विश्वंमरण्ड नाम नीची वनाने और पेटके ऊपर फरे तो इससे मरण्ड पड़, जो शूल दूर होताहै । अथवा मदन नाम नीची वनाने और पेटके ऊपर फरे तो शूल,

मूलसे जातारहताहै । सोंठ और अडीकी जड़, इनका काथ करके उसमें भूनी हींग तथा कालानोंन डालकर पिये तो तुरंतही शूल नष्ट होताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

**अथ वातजशूलचिकित्सा ।**

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ पायसैः कृशरैः पिंडैः स्निग्धैर्वा पिंशितो- त्करैः ॥ ३८ ॥ वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलथ्ययूषः ॥ ससैध- वव्योपयुतः सलावः सहिगुसौवर्चलदाडि- माढ्यः ॥ ३९ ॥

शूल रोगीको तिल चावलकी यवागू तथा स्निग्ध भेडक आदिके मांससे स्वेदन करना अत्यन्त उपकारी है । लवा- पक्षीका मांस और कुलथी इन दोनोंका काथ करके उसके साथ थोडासा सैधव निमक, त्रिकुटा, ( सोंठ मिरिच पीपल ) अनारदानेका रस और सचरानिमक मिलायके सेवन करे तो शीघ्र वातशूल दूर होताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वलापुनर्नवैरंडवृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ सहि- गुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ४० ॥ तुंबुरुण्यभया हिंगु पौष्करं लवणत्रयम् ॥ पिवेदुष्णांबुना वापि शूलगुल्मापतंत्रकी ॥ ४१ ॥ यवानी हिगुसिंधूतक्षारसौर्व- चलाभयाः ॥ सुरामंडेन पातव्या वातशू- लनिपूदनाः ॥ ४२ ॥ सौर्वचलाम्लिका- जाजी मरिचैर्द्विगुणोत्तरेः ॥ मातुलुंगरसैः पिष्ट्वा गुटिका वातशूलनुत् ॥ ४३ ॥ बीज पूरकमूलं च घृतेन सह पाययेत् ॥ जयै- द्वातभवं शूलं कर्पमेकं प्रमाणतः ॥ ४४ ॥

खिरौटी, पुनर्नवा, अट, छोटीकटेरी, बड़ीकटेरी इनके काथम हींग और सैधानिमक डालके पीवे तो वातशूल नष्ट होय अथवा तुंबुरू, हरड, हींग, पोहकरमूल, सचर सैधा और विड निमक इनका समानभाग चूर्णकर गरम जलके साथ पीवे तो शूल, गोला और अपतंत्रवात, दूर होय । अथवा अजमावन, हींग, सैधानिमक, सजीखार, जगादार, संचरानिमक और हरडके चूर्णको, मद्य, अथवा माडसे पीवे तो वातशूल दूर होय अथवा सचरानिमक २ भाग, रमली ४ भाग, जींग ८ भाग और कालीमिरिच

२६ भाग, इन सबको विजोरेके रसमे खरलकर गोली बनावे, यह वातशूलको नष्ट करेहै अथवा विजोरेकी जड़का २ तोले चूर्ण कर घीके साथ पीये तो वातशूल नष्ट होय ॥ ४०-४४ ॥

**अथ पित्तजशूलचिकित्सा ।**

गुडं शालिर्यवक्षारः सर्पिःपानं विरेचनम् ॥  
जांगलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलि-  
नाम् ॥ ४५ ॥ मणीरजतताम्राणां भाज-  
नानि गुरुणि च ॥ तोयेन परिपूर्णानि  
शूलस्योपरि धारयेत् ॥ ४६ ॥ विरेचनं  
पित्तहरं प्रशस्तं रसांश्च शस्ताः शशलाव-  
कानाम् ॥ सगुडां घृतसंयुक्तां भक्षयेद्वा  
हरीतकीम् ॥ प्रलिह्याच्छूलशान्त्यर्थं धा-  
त्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ ४७ ॥

जिसको पित्तका शूल हुआहो उसके लिये गुड, शालि चावल्लोका भात, जवाखार, घी पीना, विरेचन और जांगलदेशके पशु पक्षियोंका मांस, यह औषधिरूप हैं । मणि ( रत्नादिक ), चांदी, अथवा तांबेके भारीभारी पात्रोंमें भर कर पित्तज शूलके ऊपर धरै इससे पित्तजशूल नष्ट होता है । पित्तको हरनेवाला विरेचन, खरगोश और लवेके मांसका रस यह पित्तजशूलको शान्त करैहै । हरडोंका चूर्ण करके उसको गुड घीमे मिलाकर चाटनेसे अथवा सहतके साथ आमलेका चूर्ण चाटे तो पित्तजशूलकी जांति होतीहै ॥ ४५-४७ ॥

**अथ कफजशूलचिकित्सा ।**

शाल्यत्रं जांगलं मांसमरिष्टं कटुकं रस-  
म् ॥ मधुना जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयो-  
जयेत् ॥ ४८ ॥

अरिष्टं भेषजवारिकाथसिद्धं मद्यम् ॥

लवणत्रयसंयुक्तं पंचकोलं सरामठम् ॥

सुखोष्णेनांबुना पीतं कफशूलं प्रणाशयेत् ४९

कफसम्बन्धी शूल हुआ होय तो शालिचावल, जांगल-  
देशके पशु पक्षियोंका मांस, अरिष्ट ( योग्य औषधियोंके  
जलके काथसे बनाईहुई मदिरा ), तीक्ष्ण रस और मादि-  
राके साथ पुराने गेहूँके पदार्थ यह सेवन करे । सैधानोन,  
विडनोन, कालानोन, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चव्य,  
चीता, मिरच और हींग इनका चूर्ण करके सुहाते २

गरम जलके साथ पिये तो इससे कफजशूल नष्ट  
होताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

**अथामशूलचिकित्सा ।**

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलप्रणाशि-  
नी ॥ सेव्यमामहरं सर्वमग्नेर्मन्दस्य वद्ध-  
नम् ॥ ५० ॥ तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफ-  
लाचूर्णमुत्तमम् ॥ प्रयोज्यं मधुसर्पिभ्यां  
सर्वशूलनिवारणम् ॥ ५१ ॥ दारुहैमव-  
तीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ अम्लपिष्टैः  
सुखोष्णैश्च लिम्पेच्छूलयुतोदरम् ॥ ५२ ॥  
सूलं वैल्वं तथैरण्डं चित्रकं विश्वभेष-  
जम् ॥ हिंगुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनि-  
वारणम् ॥ ५३ ॥

वातरोगान्तर्गताध्मानचिकित्सायां लि-  
खितो नाराचनामा रसोऽन्यच्च विरेचनं शूले  
हितम् ॥

आमशूल हुआ होय तो कफशूलको नष्ट करनेवाली  
क्रिया करै, आमको नष्ट करनेवाले सब पदार्थोंका सेवन  
करै और मन्दहुई अग्निको प्रदीप्त करै । राईका चूर्ण  
और हरड, बहेडा तथा आमले इनका चूर्ण मद्यमे तथा  
घीमे मिलाकर खावे तो उससे सर्व प्रकारके शूल नष्ट  
होतेहैं अथवा देवदारु, सफेदवच, कूठ, सोया, हींग,  
और सैधानिमक इनको नींबूके रसमे पीसकर सुहाता २  
गरम लेप करै, इससे उदरका शूल निर्मूल होताहै ।  
अथवा बेलकी जड़, अण्डकी जड़, चीता और सोंठ इनका  
चूर्ण करके हींग और सैधेनोनके साथ खाय तो इससे  
तत्काल शूल निवृत्त होताहै ॥ ५०-५३ ॥

वायुसम्बन्धी रोगोंके प्रकरणमें आध्मानकी चिकित्सामपर  
जो नाराचनामक रस कहाहै वह और अन्य भी विरेचन  
शूलपर हितकारी हैं ।

**अथ कूष्माण्डक्षारः ।**

कूष्माण्डं तनु कृत्वा तु क्षिप्त्वा वर्मे  
विशोषयेत् ॥ स्थाल्यां निक्षिप्य तत्सर्वं  
पिधानेन पिधाय च ॥ ५४ ॥ तुल्ल्यां  
निवेश्य वह्निश्च ज्वालयेत्कुशलो जनः ॥  
यथा तन्न भवेद्भस्म किन्त्वंगारो दृढो  
भवेत् ॥ तदा निर्वापयेच्छीतं सर्वथा

चूर्णितन्तु तत् ॥ ५५ ॥ माषद्वयमितं  
तावच्छुण्ठीचूर्णेन मिश्रितम् ॥ जलेन  
भक्षयेन्नित्यं महाशूलाकुलो नरः ॥ असा-  
ध्यमपि यच्छूलं तदप्येतेन शाम्यति ॥ ५६ ॥

पेटके छोटे २ टुकड़े करके धूपमें सुखावै, पश्चात्  
इन नर टुकड़ोंको हाडीमें भरकर ऊपरसे ढकदेवे, फिर  
चूहेपर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलादेवे, परन्तु अग्नि इस  
प्रकार जलावे कि जिससे पेटके टुकड़े जल न जायें किंतु  
ढढ अगारोंकी सट्टा होजायें फिर इनको ग्रीतल होनेपर  
चूर्ण करलेवे, और बारह रत्ती इसके चूर्णमें, बारह रत्ती  
सोढका चूर्ण मिलाकर पानीसे नित्य भक्षण करें तो इससे  
असाध्य शूलभी शान्त होजाताहै । अत्यन्त शूलसे व्याकुल  
हुए मनुष्योंको यह उपाय करना चाहिये, इसको कृष्माण्ड-  
धार कहतेहैं ॥ ५४-५६ ॥

अथ परिणामशूलचिकित्सा ।

लघनं प्रथमं कुर्याद्वमनं सविरेचनम् ॥  
पक्तिशूलोपशान्त्यर्थं तत्र वान्तेर्विधिर्य-  
था ॥ ५७ ॥ पीत्वा तु क्षीरमाकण्ठं मद-  
नकाथसंयुतम् ॥ कान्तारकस्य पौण्ड्रस्य  
कांशकारस्य वा रसम् ॥ ५८ ॥ कषायो  
वाथ निम्बस्य कटुतुम्बीरसोऽथ वा ॥ यथा-  
विधि वमैद्धीमान्पक्तिशूलार्दितो जनः  
॥ ५९ ॥ त्रिवृता च तथा दंत्या तलेनै-  
रंडजेन वा ॥ दत्तं विरेचनं सद्यः पक्ति-  
शूलनिवारणम् ॥ ६० ॥

परिणामशूलकी शांतिके लिये प्रथम लघन और  
पश्चात् वमन तथा विरेचन करावै । वमनकी विधि इस  
प्रकार है कि, परिणाम शूलसे पीडित मनुष्यको मैनफलके  
गायकं गाय दूधको, अथवा कातार ( कालेगन्ने ) के  
रसको, अथवा पौण्ड्र इसके रसको वा कांशकार इसके  
रसको वा नीमके गायको अथवा कटुवी तोंवीके काथको  
गोत्रक पित्त त्रिविधवमन करें । निंबोत, दन्ती  
( गणानोदकी जट ) अथवा अण्डीके तेलका विरेचन  
( पित्तः ) को तो तुरन्त परिणामशूल नष्ट होताहै ५७-६०

अथ विडंगादिमोदकः ।

विडंगतण्डुलव्योषत्रिवृद्धन्तीसचित्रकम् ॥  
सर्वाण्येतानि मंहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि

कारयेत् ॥ ६१ ॥ गुडं मोदकान्कृत्वा  
खादेदुष्णेन वारिणा ॥ जयेत्त्रिदोषजं  
शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ ६२ ॥

वायविडंग, चावल, सोंठ, भिरच, पीपल, निसोत,  
दन्ती और चीता, इन सबका एकत्र वारीक चूर्ण करके  
गुडमें मिलाकर लड्डू बनालेवे, फिर गरम जलके साथ  
खाय तो तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल नष्ट होता  
है, इसको विडंगादिमोदक कहतेहैं ॥ ६१-६२ ॥

अथ शुण्ठ्यादिकल्कः ।

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संपिप्य यः  
पुमाँल्लिह्यात् ॥ उग्रं परिणतिशूलं नश्येत्त-  
स्य त्रिरात्रेण ॥ ६३ ॥ पीतशम्बूकजं  
भस्म जलेनोष्णेन तक्षणात् ॥ पक्तिजं ना-  
शयत्येव शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य सोंठ, तिल और गुड इनका कल्क करके  
दूधमें पीसकर चाटे तो उग्र परिणामशूल भी तीन दिनमें  
नष्ट होजाता है । अथवा छोटे २ बोंधोकी भस्मको गरम  
जलके साथ पिथे तो जिस प्रकार विष्णु दैत्योका नाश  
करतेहैं उसीप्रकार यह भस्म परिणाम शूलको तुरन्त  
शान्त करेहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ पथ्यादिलोहः ।

लौहपथ्याकणाशुण्ठीचूर्णं समधुसर्पिषा ॥  
विलिहन्विनिहन्त्येव शूलं हि परिणाम-  
जम् ॥ ६५ ॥

लोहेकी भस्म, हरड, पीपल और सोंठ इनका चूर्ण  
करके सहत और बीके साथ चाटे तो इससे परिणामशूल  
अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ६५ ॥

अथ नारिकेलक्षारः ।

नारिकेलं सतोयश्च लवणेन सुपूरितम् ॥  
मृदा च वेष्टितं शुष्कं पक्वगोमयवह्निना ॥  
॥ ६६ ॥ पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलं हि  
परिणामजम् ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चापि  
श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ६७ ॥

पानी भरेहुए गीले नारियलके पेटमें भलीभांति नोन  
मरदेवे, पश्चात् कपडमट्टी करके सुखाकर अनेक उपलोंकी  
अग्निमें पकावै और भस्म करलेवे, यह भस्म पीपलके  
चूर्णके साथ गाय तो इससे वायुसम्बन्धी, पित्तसम्बन्धी,

कफसम्बन्धी और त्रिदोषसम्बन्धी परिणामशूल भी नष्ट होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

**अथान्नद्रवशूलचिकित्सा ।**

अन्नद्रवाख्ये शूले तु न तावत्स्वास्थ्यम-  
श्नुते ॥ यावत्कटुकपित्ताम्लमन्नं न च्छर्द-  
येद्रवम् ॥ ६८ ॥ जातमात्रे जरत्पित्ते  
शूलमाशु विनाशयेत् ॥ पित्तार्तं वमनं कृत्वा  
कफार्तश्च विरेचनम् ॥ ६९ ॥ अन्नद्रवे च  
तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम् ॥ जरत्पित्ते-  
ऽपि यत्पथ्यं प्रोक्तमन्नद्रवे तु यत् ॥ ७० ॥  
आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम् ॥  
माषेण्डरीं सलवणां सुस्विन्नां तैलपाचि-  
ताम् ॥ तादृशीं सर्पिषा खादेदन्नद्रवनि-  
पीडितः ॥ ७१ ॥ धात्रीफलभवं चूर्णम-  
यश्चूर्णसमन्वितम् ॥ यष्टीचूर्णेन वा युक्तं  
लिह्यात्क्षौद्रेण तद्रदे ॥ ७२ ॥

ज्वरतक तीक्ष्ण, गरम और पित्तमिले खट्टे अन्नको  
रोगी वमन न करेगा तबतक अन्नद्रवके शूलमे स्वरथता  
प्राप्त नहीं होसक्ती । परिणामशूल पित्तसे उत्पन्न हुआ  
होय तो तुरन्तही वमन करके नष्ट करदेवे और कफसे  
हुआ होय तो विरेचनसे नष्ट करदेवे । जो चिकित्सा गारे  
णामशूलमें कही है वही अन्नद्रव शूलमें भी करे । जो चिकि-  
त्सा अन्नद्रव शूलमें कही है वह परिणामशूलमे भी करे ।  
रोगीका आमाशय और पक्वाशय शुद्ध होनेसे अन्नद्रवशूल  
शान्त होता है । अन्नद्रवशूलसे पीडित मनुष्य हींग, मिरच,  
जीरा तथा अदरक पड़ीहुई उडदकी पिठ्ठीकी छोटी छोटी  
बडियें करके उनको भलीभांति तेलमे पकाकर घीके साथ  
खाय । आमलेका चूर्ण करके उसमे लोहेका चूर्ण अथवा  
मुलैठीका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ खाय तो इससे  
अन्नद्रवशूल नष्ट होजाता है ॥ ६८-७२ ॥

**श्यामाकतण्डुलैः सिद्धं सिद्धं कोद्रवतण्डु-  
लैः ॥ प्रियंगुतण्डुलैः सिद्धं पायसं सहितं  
हितम् ॥ ७३ ॥**

**अत्र प्रियंगुः कंगुविशेषः ॥**

**गौडिकं शौरणं कन्दं कूष्माण्डमपि भक्ष-  
येत् ॥ कलाययवसक्तून्वा सक्तून्वा लाज-  
सम्भवान् ॥ ७४ ॥**

**गौडिकं गुडेन संस्कृतं पक्वान्नम् ॥**

कुलत्थसक्तूनथ वा दध्ना दद्याच्च दाधि-  
कम् ॥ चणकानामथो सक्तून्कोद्रवस्यौदनं  
तथा ॥ ७५ ॥

दाधिकं दध्ना संस्कृतं भक्तं महेरि इति लोके ॥  
गोधूममण्डकं तत्र सर्पिषा गुडसंयु-  
तम् ॥ ससितं शीतदुग्धेन मृदितं क-  
थितं हितम् ॥ ७६ ॥ अन्नद्रवो दुश्चि-  
कित्स्यो दुर्विज्ञेयो महागदः ॥ तस्मा-  
त्तस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत् ॥ ७७ ॥  
अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः ॥  
तस्मादन्नान्नपानानि मात्राहीनानि कार-  
येत् ॥ ७८ ॥ कलाययवगोधूमाः  
श्यामाकाः कोरदूषकाः ॥ राजमाषाश्च  
माषाश्च कुलत्थाः कंगुशालयः ॥ ७९ ॥  
दधिलुप्तरसं क्षीरं सर्पिर्गव्यं समाहिषम् ॥  
वास्तूकं कारवेल्ली च कर्कोटकफलानि च  
॥ ८० ॥ बर्हिणो हरिणो मत्स्या रोहिताद्याः  
कपिञ्जलाः ॥ एतस्मिन्नामये शस्ता मता  
मुनिचिकित्सकैः ॥ ८१ ॥

**दधिलुप्तरसं दध्ना लुप्तः प्रकृतो रसो यस्य  
तत्क्षीरं दधियुक्तं क्षीरमित्यर्थः ॥**

समा, कोदो, अथवा कंगनीकी दूधमे खीर बना-  
कर उसमे पथ्य ( बूरा वगैरह ) इत्यादि पदार्थ डाल-  
कर खाय, अन्नद्रवशूलवालेको हितकारी है । अथवा  
गुडके बने पदार्थ, खरनकद, पेठा, मटर, जौके सत्तू,  
खीलेके सत्तू, कुलथीके सत्तू दहीके साथ खाय,  
अथवा दहीके बने पदार्थ खाय, चनेके सत्तू अथवा  
कौंदोंका भात खाय यह भी हितकारी है । गेहूँके मां  
डक ( गेहूँकी खीर ) को घी और गुड तथा बूरा  
मिलाकर शीतलदूधमें मलकर खाय यह भी हितकारी  
है । और भिषक्जनोंको उचित है कि, अन्नद्रव शूल  
भयकर महारोग और दुश्चिकित्स्य है इस कारण इसकी  
शांति करनेमे भलीभांति प्रयत्नकरै, अन्नद्रव शूलमें  
और परिणामशूलमे जठराग्नि मंद होजाती है इसलिये  
इस रोगमे अन्न और जलकी अल्प मात्रा देनी चाहिये ।  
मटर, जौ, गेहूँ, समा, कोदों, चौरा, उडद, कुलथी,



चगनी, शालिचावल, दहीमिला दूध, गाय तथा भैंसका घी, बधुआ, करेले, ककरोडे, मोर तथा हिरनका मास, रोहू आदि मछलिये और तीतरका मास, यह अन्नद्रव्यशूलमें परम हितकारी है ऐसा वैद्योंने माना है ॥ ७२-८१ ॥

अथ गुडमंडूरम् ।

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम् ॥  
त्रिपलं लौहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुस-  
र्पिपा ॥ ८२ ॥ समालोच्चसमश्रयादक्ष-  
मात्रप्रमाणतः ॥ आदिमध्यावसानेषु भो-  
जनस्य निहन्ति तत् ॥ ८३ ॥ अन्नद्रवं  
जरत्पित्तमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ परिणाम-  
समुत्पन्नं शूलं संवत्सरोत्थितम् ॥ ८४ ॥

गुड, आमलका चूर्ण, हरडोंका चूर्ण यह प्रत्येक चार चार तोले, लोहेकी कीटकी भस्म १२ तोले इनको सहन तथा घीमें मिलाकर भोजनके आदिमें मध्यमें तथा अंतमें एक एक तोलाभर खाय तो यह महादारुण अन्नद्रव्यशूल, परिणामशूल और जरतिन, इनको नष्ट करेहै । इसको गुडमंडूर कहते हैं ॥ ८२-८४ ॥

अथ शूलरोगोऽपथ्यम् ।

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकं रसम् ॥  
वेगरोधं शुचं क्रोधं द्विदलं शूलवांस्त्य-  
जत् ॥ ८५ ॥

इति शूलपरिणामशूलान्नद्रव्यजरत्पित्ताधिकारः ।

व्यायाम, मैथुन, मद्यपान, नमक, तीक्ष्ण रस, विष्टा आदिके वेगका अवरोध, शोक क्रोध और चना, मूग आदिनी दात इनको शूलरोगी त्याग देवे ॥ ८५ ॥

इति शूलधिकारः समाप्तः ।

अथोदावर्ताधिकारः ।

तत्रोदावर्तनिदानम् ।

दानविषमृच्चर्मभाशुक्षवोद्गारवर्मीन्द्रियैः ॥  
क्षुण्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तस-  
म्भवः ॥ १ ॥

इन्द्रियमत्र शुक्रम् । अत्र तृतीया सहाय्या धृत्या वेगविवर्तनम् ॥

अपेक्षा, विष, मृग, चर्मार्द, शोथ, छिन्न,

डकार, वमन, वीर्य, भूख, प्यास, श्वास और नींद, इनके तेरह वेगोंके रोकनेसे उदावर्त रोगकी उत्पत्ति होतीहै ॥ १ ॥

अथोदावर्तसामान्यलक्षणम् ।

यत्रोर्ध्वं जायते वायोरावर्तः स चिकि-  
त्सकैः ॥ उदावर्त इति प्रोक्तो व्याधिस्त-  
त्रानिलः प्रभुः ॥ २ ॥

आवर्तो भ्रमः ॥

जिस रोगमें वायुका आवर्त ( चक्कर ) ऊपरको जा-  
ताहै उसको वैद्य उदावर्त कहतेहैं, इस रोगमें वायु  
मुख्य है ॥ २ ॥

अथाधोवातावरोधोत्पन्नोदावर्त-

लक्षणम् ।

वातमूत्रपुरीषाणां संगो ध्मानं कुर्मो  
रुजा ॥ जाठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्यु-  
र्वातनिग्रहात् ॥ ३ ॥

संगः अमवृत्तिः । ध्मानमाध्मानम् । कुर्मः  
अनायासश्रमः रुजा जठरे । अन्ये तोदशूल-  
गुल्मादयः ॥

अधोवायुके रोकनेसे वायु, मूत्र तथा विष्टाका अवरोध  
होताहै, तथा पेटका फूलना, अनायासही परिश्रम और  
पीडाका होना और शूल, गुल्म आदि अन्य वायुसम्बन्धी  
रोगभी होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ पुरीषावरोधोत्पन्नोदावर्त-

लक्षणम् ।

आटोपशूलौ परिकर्तिका च संगः पुरी-  
षस्य तथोर्ध्ववातः ॥ पुरीषमास्यादथ वा  
निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ४ ॥

पुरीषवेगे धारिते सति आटोपः सरुक्  
गुडगुडाशब्दः शूलमिति पक्काशये । परि-  
कर्तिका गुदे कर्तनवत्पीडा । ऊर्ध्ववातः  
उद्गारः ॥

विष्टाके वेगकी रोकनेसे पेटमें गुडगुडादृष्ट, पक्काशयमें  
पीडा, गुदामें कतरनेकी सदृश पीडा, होतीहै, मलका रुक  
जाना, चट्टी खट्टी उकारोंका आना अथवा उकारके साथ  
मल भी निकलनाहै ॥ ४ ॥

अथ मूत्रावरोधोत्पन्नोदा-  
वर्तलक्षणम् ।

वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा ॥  
विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिंग मूत्रनि-  
ग्रहे ॥ ५ ॥

विनामः व्यथया वपुषो नमनम् । वङ्क्षणा-  
नाहः वङ्क्षणयोरार्कषणवद्वयथा ॥

मूत्रका वेग रोकनेसे मूत्राशयमे तथा लिंगमे शूल,  
मूत्रकृच्छ्र, मस्तकमे पीडा, पीडासे शरीरका न उठना  
और पेड़मे अफारा होताहै ॥ ५ ॥

अथ जृम्भावरोधोत्पन्नोदावर्त-  
लक्षणम् ।

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपधा-  
तात्पवनात्मकाः स्युः ॥ तथाक्षिनासाव-  
दनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्ण-  
रोगैः ॥ ६ ॥

जम्भाईको रोकनेसे मन्या ( गले नाडके पीछेकी नस )  
और गलेका स्तम्भ, मस्तकमें वातसंबधी पीडा, नेत्र, नाक,  
मुखमें और कानोंमे तीव्र पीडा होतीहै ॥ ६ ॥

अथ नेत्रोदकावरोधोत्पन्नोदावर्त-  
लक्षणम् ।

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं  
प्राप्तममुश्चतो हि ॥ शिरोगुरुत्वं नयनाम-  
याश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ७ ॥

आनन्द अथवा शोकके कारण प्राप्तहुए आंसुओके  
वेगोको कभी न रोके, क्योंकि रोकनेसे मस्तकमे भारीपन  
नेत्रपीडा और पीनसरोग होताहै ॥ ७ ॥

अथ छिक्कावरोधोत्पन्नोदावर्त-  
लक्षणम् ।

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्द्धावभेदकौ ॥  
इन्द्रियाणाञ्च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधा-  
रणात् ॥ ८ ॥

छींकके रोकनेसे मन्या ( नाडीके पीछेकी नस ) का  
स्तम्भ, शिरमे शूल, अर्दित वात, आधे मुखका टेढ़ा हो  
जाना और सब इन्द्रियोकी दुर्बलता, ये रोग उत्पन्न  
होजातेहै ॥ ८ ॥

अथोद्गारावरोधोत्पन्नोदावर्त-  
लक्षणम् ।

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च  
वायोरथ वाऽप्रवृत्तिः ॥ उद्गारवेगेऽभिहते  
भवन्ति जन्तोर्विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ९ ॥

कण्ठास्यपूर्णत्वं कवलेनेव । तोदो हृदि  
आमाशये च ॥ कूजोऽव्यक्तशब्दः उदरे  
वायोरप्रवृत्तिः ॥ उच्छ्वासादिनिरोधात् पव-  
नप्रसूताः पवनाज्जाता विकाराः हिक्कादयः ॥

डकारके रोकनेसे कठ कौरसे रुका हुआसा प्रतीत हो,  
हृदय तथा आमाशयमे चैठोंके काटनेकेसी अत्यत पीडा,  
पेटमे वायुका कूजना, श्वास आदिके रुकनेसे पवनकी  
अप्रवृत्ति और अन्य हिचकी आदि वायुसबधी विकार  
होते हैं ॥ ९ ॥

अथ वमनावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्व-  
राः ॥ कुष्ठहल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा  
गदाः ॥ १० ॥

वमनका वेग रोकनेसे शरीरमें खुजली, चकत्ते, दाह,  
अरुचि, झोंई, सूजन, पाण्डुरोग, ज्वर, कोढ़, हल्लास  
और विसर्प, ये सब उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

अथ वीर्यावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्र-  
विनिग्रहश्च ॥ शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च  
तेते विकारा विहते तु शुक्रे ॥ ११ ॥

तत्स्रवणं शुक्रस्त्रावः । तेते विकाराः  
वातकुण्डलिकादयः ॥

स्त्रीप्रसग करनेके समय वीर्यका वेग रोकनेसे मूत्राशय,  
गुदा तथा अडकोपोंमे सूजन और पीडा, मूत्रका अवरोध,  
शुक्राश्मरी ( वीर्यकी पथरी ), वीर्यका स्त्राव और अन्य  
वातकुण्डलिका आदि विकार होते हैं ॥ ११ ॥

अथ क्षुधावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

तन्द्रांगमर्दारुचिः श्रमश्च क्षुधाविघाता-  
त्कृशता च दृष्टेः ॥ १२ ॥

भूखके रोकनेसे-तन्द्रा, अगोंका दृटना, अरुचि, परि-  
श्रम और दृष्टिकी मदता, ये उपद्रव होते हैं ॥ १२ ॥

अथ तृषावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।  
कण्ठस्य शोथः श्रवणावरोधस्तृष्णाविधा-  
ताद्दृश्यं व्यथा च ॥ १३ ॥

प्यासके रोकनेसे कण्ठ और मुखका सूजन, श्रवण-  
शक्तिका मन्द होना और हृदयमें पीडा ये लक्षण  
होने ॥ १३ ॥

अथ श्वासावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।  
श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहा-  
वथ वापि गुल्मः ॥ १४ ॥

यत्र हुआ मनुष्य श्वासको रोकै तो हृदयमें पीडा मोह  
और गुल्म रोग उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथ निद्रावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।  
जृम्भांगमर्दातिशिरोऽतिजाड्यं निद्रावि-  
घातादथ वापि तन्द्रा ॥ १५ ॥

अतिजाड्यं गौरवम् । शिरोगात्राक्षिगौ-  
रवमिति तन्त्रान्तरे पाठात् ॥

निद्राका रोकनेमें जम्भाई, अगोंका टुटना, मस्तक,  
शरीर तथा नेत्रोंमें भारीपन होता है और तन्द्रा भी  
होती है ॥ १५ ॥

अथ रुक्षादिवस्तुकुपितवातोत्पन्नोदा-  
वर्तनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

वायुः कोष्ठानुगो रुक्षैः कपायकटुतिक्त-  
कैः ॥ भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त  
करोति च ॥ १६ ॥ वातमूत्रपुरीषाश्रुक-  
फमेदोवहानि च ॥ स्रोतांस्युदावर्तयति  
पुरीषं च प्रवर्तयत् ॥ १७ ॥ ततो हृद्गस्ति-  
शूलार्तो हृद्गामारतिपीडितः ॥ वातमूत्र-  
पुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १८ ॥

श्वासासप्रतिश्यायदाहमोहनृषाज्वरान् ॥  
वमिल्लिकाशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥  
वदन्नन्यांश्च लभते विकारान्वातकोप-  
जान् ॥ १९ ॥

उदावर्तयति वायुः ऊर्ध्वं भ्रमेणैव वाता-  
द्विगानि स्रोतांसि निरुणद्धि न तु विडा-  
नानयोगमयति । मनोविभ्रमः रज्जौ सर्प-

ज्ञानम् । श्रवणविभ्रमः अन्यथा श्रवणम् ॥

रुखे, कसैले, तीक्ष्ण और कडवे भोजनसे कुपित हुआ  
कोठेमें रहनेवाला वायु तुरन्त उदावर्तको उत्पन्न करे है ।  
कुपित हुई वात-अधोवायु, मूत्र, विष्टा, आँसू, कफ और  
मेदाको वहानेवाली नाटियोंके मार्गको रोककर मलको  
स्तम्भित करे है तत्र हृदय तथा वस्तिशूल, हृद्गस, अरति  
इनकी पीडा होनेसे मनुष्यके अधोवायु, मूत्र और विष्टा  
थोड़े थोड़े अत्यन्त परिश्रमसे उतरते हैं, तथा श्वास,  
खाँसी, प्रतिश्याय, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिचकी  
मस्तकमें दर्द, मनका भ्रम, श्रवणमें भ्रम ( कुछका कुछ  
सुनाई मालूम होना ) तथा और भी बहुतसे वायुके कोपसे  
हुए विकार होते हैं ॥ १६-१९ ॥

अथोदावर्तसाध्यलक्षणम् ।

तृष्णाछर्दिपरिक्षिप्तं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ॥  
शकृद्भ्रमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् २० ॥  
परिक्षिप्तं क्लेशसंयुतम् ॥

उदावर्त रोगी जो तृषा तथा वमनसे व्याकुल हो, क्षीण  
होगया हो, शूलसे दुःखित हो और विष्टाकी वमन करता  
होय तो विद्वान् वैद्य उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ २० ॥

अथानाहसामान्यलक्षणम् ।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विवद्धं  
विगुणानिलेन ॥ प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं  
विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ २१ ॥

आमम् अपक्वमाहारसारम् । शकृत्पुरीषं  
वा । क्रमेण निचितं सञ्चितम् । भूयो विगु-  
णानिलेन दुष्टवायुना विवद्धं व्यायामशोषितं  
वा यथास्वं पूर्ववदप्रवर्तनम् । एनं विकारमा-  
नाहम् आहुः ॥

आम ( आहारका नहीं पचा रस ) अथवा मल क्रमसे  
संचित हो दुष्ट वायुसे बँधकर अथवा सूखकर अपने मार्गसे  
नहीं निकलै, इस विकारको वैद्य आनाह कहते हैं ॥ २१ ॥

अथामजातानाहलक्षणम् ।

तस्मिन्भवन्त्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रति-  
श्यायशिरोविदाहाः ॥ आमाशयं शूलमथो  
गुरुत्वं हस्तम्भ उद्गारविवातनश्च ॥ २२ ॥  
विवातनम् अप्रवृत्तिः ॥

आहारके कच्चे रससे जो आनाह हुआ होय तो तृषा, प्रतिश्याय, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, शरीरमें भारीपन, हृदयका जकड़जाना और डकारका न आना, ये लक्षण होतेहैं ॥ २२ ॥

अथ मलसंचयेनोत्पन्नानाह-  
लक्षणम् ।

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा  
शकृतो वमिश्च । श्वासश्च पकाशयजे  
भवन्ति तथालसोक्तानि च लक्ष-  
णानि ॥ २३ ॥

पकाशयजे शकृत्सञ्चयजे आनाहे ।  
स्तम्भशब्दः कटीपृष्ठयोः स्तब्धतावाची  
पुरीषमूत्रयोरप्रवृत्तिवाची च । अलसोक्तानि  
लक्षणानि, आध्मानवातविघातादीनि ॥

जो मलके संचयसे आनाह हुआ होय तो कमर, पीठ,  
मल, मूत्र इनका अवरोध, शूल, मूर्च्छा, विष्टा मिली हुई  
वमन और अलसक, अफारा तथा वायुका विघात आदि  
लक्षण होताहै ॥ २३ ॥

अथोदावर्तचिकित्सा ।

अधोवातनिरोधोत्थे उदावर्ते हितं मतम् ॥  
स्नेहपानं तथा स्वेदो वर्तिर्वस्तिर्हितो मतः  
॥ २४ ॥ विडविघातसमुत्थे तु विडभंगान्नं  
तथौषधम् ॥ वर्त्यभ्यंगावगाहाश्च स्वेदो  
वस्तिर्हितो मतः ॥ २५ ॥

वर्तिः फलवर्तिः ॥

मूत्रावरोधजनिते क्षीरवारिवचां पिबेत् ॥  
दुःस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य  
च ॥ २६ ॥

दुःस्पर्शा कण्टकारी दुरालभा च तुल्यगु-  
णत्वात् ॥

एवार्बुदीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ॥  
सितामिक्षुरसं क्षीरं द्राक्षां यष्टीमथापि वा ॥  
सर्वथैव प्रयुज्जीत मूत्रकृच्छाश्मरीविधिः  
॥ २७ ॥ जृम्भाभिघातजे स्नेहं स्वेदं वा-  
पि प्रयोजयेत् ॥ अन्यानपि प्रयुज्जीत स-

मीरणहरान्विधीन् ॥ २८ ॥ नेत्रनीराव-  
रोधोत्थे मुश्वेद्रापि दृशोर्जलम् ॥ स्वप्या-  
त्सुखेन तस्याग्रे कथयेच्च कथाः प्रियाः  
॥ २९ ॥ छिक्काविघातजे तक्षिणघ्राणस्या-  
र्कप्रदर्शनैः ॥ प्रवर्तयेत्क्षुतं सक्तां स्नेहस्वेदौ  
च शीलयेत् ॥ ३० ॥ उद्गारस्यावरोधे तु  
स्त्रैहिकं धूममाचरेत् ॥ छर्दिनिग्रहसञ्जाते  
वमनं लघनं हितम् ॥ ३१ ॥ विरेचनं  
चात्र मतं तैलेनाभ्यञ्जनं तथा ॥ वस्तिशु-  
द्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ ३२ ॥  
आवारिनाशं कथितं पीतवन्तं प्रकामतः ॥  
रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम्  
॥ ३३ ॥ तस्याभ्यङ्गोऽवगाहश्च मदिरा  
चरणायुधाः ॥ शालिः पयोनिरूहश्च  
हितं मैथुनमेव च ॥ ३४ ॥ क्षुद्रिघातस-  
मुद्भूते स्निग्धमुष्णं तथा लघु ॥ रुच्यमल्प-  
हितं भक्ष्यं पुष्पं सेव्यं सुगन्धि यत् ॥  
॥ ३५ ॥ तृषाविघातसम्भूते शीतः सर्वो  
विधिर्हितः ॥ कर्पूरशिशिरं स्वल्पं पिबे-  
त्तोयं शनैः शनैः ॥ ३६ ॥ श्रमश्वास-  
धृतौ शस्तौ विश्रामः सरसौदनौ ॥ निद्रा-  
वगविघातोत्थे पिबेत्क्षीरं सितायुतम् ॥  
संवाहनं सुशय्याञ्च हितः स्वप्नः प्रियाः  
कथाः ॥ ३७ ॥

अधोवायुका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो उसमें  
स्नेहपान, स्वेद, फलवर्ति ( गुदामे बत्तीका प्रवेश करना )  
और वस्तिकर्म ( पिचकारी ) यह हितकारी हैं, विष्टाका  
वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो दस्तावर अन्न,  
दस्तावर औषधि, फलवर्ति, अभ्यंग, मालिश, अवगाहन  
( जल या तेलमें बैठना ), स्वेदन तथा वस्तिकर्म करना  
हितकारी है ।

मूत्रका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो दूधमें जल  
मिलाकर और आगे वचका चूर्ण डालकर पिये अथवा  
कटेरीका स्वरस अथवा कोह ( अजुर ) की छालका  
स्वरस पिये ।

अथवा ककडीके बीजोंको पानीमें पीसकर इसमें निमक

उत्पन्न पानीमें पिये अथवा मिश्री, ईखका रस, दूध, दान्य तथा मुल्हटीका रस पिये । इस उदावर्तमें मूत्रक-चूर्ण उपाय तथा पथरीके उपाय भी सर्वथा करै ।

जम्भाईके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो स्नेहन अथवा स्वेदन किया करै और वातनाशक अन्य उपाय भी करै ।

अंसुओंका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो भली भाँति रोकनेवाले अश्रुवारा बहावे निकाल डालै, फिर मुग्धसे शयन करै और आनन्द सहित प्रिय कथायें कहै ।

छीन्का वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो मिश्र तथा राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंको सूखकर उनका नस्य लेवै और यदि गर्भके सामने देखनेसे भी छीकें आवैं तो सूर्यको देखै और छीक लेवे नाकमें वज्रादिककी वस्ती उत्पन्न छीक लेवे, स्नेहन तथा स्वेदनका भी सेवन करै ।

उन्मत्ता वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो स्नेहयुक्त पदार्थोंका धूमयान करै । वमनके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो वमन तथा लघन करना हितकारी है । दस्त करारि, तेलका मर्दन करै यह सब उपाय इस रोगमें अत्यन्त उपयोगी हैं । वीर्यके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो पुन्य दूधमें चौगुना पानी डालकर तथा मूत्राशयको शुद्ध करनेवाले पदार्थ डालकर जल जल जाय केवल दूधही शेष रहे तब मिश्री डालकर पिये और प्यारी नारंगी नाथ रमण करै । और अन्यग, अवगाहन, मद्यका पीना, सुग्गेका मांस, शालिचावन, दूध, निरुहवस्ति, तथा गहन, यह भी हितकारी हैं । भूखका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो—गन्ध, हल्का, रुचिकारी और मनोमोहक अल्प भोजन करना चाहिये, यह उदावर्त-रोगी सुगन्धित पुष्पोंका भी सेवन करै । वृषाका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो—सम्पूर्ण जीतल उपचार निम्नलिखित, तथा स्फूर्ण वा उत्पलसे सुवासित किया हुआ, उबला पेटा पेटा पान्वाय पिये । परिश्रमके श्वास रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो विराम करे और मास्रस्य रस पीये । निद्राका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो मिश्रीका मधुना गरम दूध पिये अथवा हाथ रस पीये उदावर्त रुकने पर शयन करै और शयनमें शान्ति रहित फिर नये ऐसी कथा सुने ॥ २८-३० ॥

अथ रूक्षादिहेतुकुपितवातोत्प-  
न्नोदावर्तचिकित्सा ।

हिंमुमाक्षिकसिन्धूतैः पिष्टैर्वर्ति विनिर्मि-  
ताम् ॥ घृताभ्यक्तां गुदे न्यस्येदुदावर्त-  
विनाशिनीम् ॥ ३८ ॥

हींग, सहत और सैधानोन, इनको पीसकर वस्ती बनावे, फिर घीमें भिजोकर गुदामें रखवावे तो यह उदावर्त नष्ट होताहै, इसको फलवर्तिक कहतेहैं ॥ ३८ ॥

अथ मदनफलादिफलवर्तिः ।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः ॥  
गुडक्षीरशमायुक्ता फलवर्तिरिहोदिता ३९

भैरवफल, पीपल, कुठ, वच और सफेद सरसो इनको गुड तथा दूधमें पीसकर गुदामें रखवे तो उदावर्त रोग नष्ट होताहै ॥ ३९ ॥

अथ नाराचचूर्णम् ।

खण्डपलं त्रिवृताक्षः कृष्णाकर्षो द्वयोश्चू-  
र्णम् ॥ प्राग्भोजनस्य मधुना विडालपदकं  
नरो लिह्यात् ॥ ४० ॥ एतद्गुडाष्टपुरीषे  
देयं विज्ञैरुदावर्ते ॥ मधुरं नरपतियाग्यं  
चूर्णं नाराचकं नाम्ना ॥ ४१ ॥

छोड चार तोले, निसोत १ तोला और पीपलका चूर्ण १ तोला, इनको एकत्र करके भोजनसे पहिले इसमें १ तोला सहत मिलाकर चाटे तो उदावर्त दूर होताहै । जिसमें विश्रा अत्यन्त दृढ होगई हो ऐसे उदावर्तमें वैद्य यह यत्नकरे, यह चूर्ण अत्यन्त बनी और राजाओंके खाने योग्य है, इसका नाम नाराचचूर्ण है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ गुडाष्टकम् ।

सव्योपपिप्पलीमूलं त्रिवृदन्ती च चित्र-  
कम् ॥ तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्प्रातरु-  
त्थितः ॥ ४२ ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम्ना वल-  
वर्णमिवर्द्धनम् ॥ उदावर्तप्लीहगुल्मशोथ-  
पाण्डुमयापहम् ॥ ४३ ॥



सोठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, निसोत, दन्ती, जमालगोटेकी जड़ और चीता इनका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर प्रातःकाल उठतेही खाय, गुडाष्टकके सेवनसे बल काति तथा अग्निकी वृद्धि होतीहै और उदावर्त, घ्रीहा, गुल्म, सूजन तथा पाण्डुरोग इनका नाश होता- है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ शुष्कमूलाद्यधृतम् ।

मूलकं शुष्कमाद्रं वा वर्षाभूः पञ्चमूलक-  
म् ॥ कृतमालफलं चाप्सु पक्त्वा तेन धृतं  
पचेत् ॥ तत्पीतं शमयेत्क्षिप्रमुदावर्त-  
मशेषतः ॥ ४४ ॥

पञ्चमूलकमत्र बृहत् ॥

सूखी अथवा गीली मूली, सोंठ, बृहत्पंचमूल और अमलतासका गूदा, इनका काथ करके इसमें धृतको पचावे, यह घी पियै तो तत्काल उदावर्त रोग भली भाँति शान्त होजातेहैं ॥ ४४ ॥

अथानाहचिकित्सा ।

तुल्यकारणकार्यत्वादुदावर्तहरीं क्रियाम् ॥  
आनाहेषु च कुर्वीत विशेषश्चाभिधीयते ॥  
॥ ४५ ॥ त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्वित्रतु-  
ष्पञ्चभागिकाः ॥ गुडेन तुल्या गुटिका  
हरत्यानाहमुल्बणम् ॥ ४६ ॥

उदावर्त और आनाहके कारण तथा कार्य समान ही हैं, इसलिये आनाहमें उदावर्तकी ही चिकित्सा करै । जो विशेष चिकित्सा है सो कहते हैं । दो भाग निसोत, चार भाग पीपल और पाँच भाग हरड, इनको सबकी समान गुडमें मिलाकर गोली बनावै और फिर सेवनकरै तो उग्र आनाह भी दूर होजाताहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ त्रिकटुकादिवर्तिः ।

वर्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदन-  
फलैः ॥ मधुनि गुडे वा पक्वैर्विहिता  
सांगुष्ठसम्मिता विज्ञैः ॥ ४७ ॥ वर्तिरियं  
दृष्टफला शनैः प्रणिहिता गुदे धृताभ्य-  
क्ता ॥ आनाहमुदरजार्ति शमयति जठरे  
तथा गुल्मम् ॥ ४८ ॥

इति उदावर्तानाहनिदानचिकित्साधिकारः ।

सोठ, मिर्च, पीपल, सैधव, सरसों, घरका धुआँ, कूठ और मैनफल, इनका चूर्ण करके सहत अथवा घीमें पकावै, फिर अंगूठेकी बराबर बत्ती बनावै, इसको घीसे चुपडकर धीरे धीरे गुदामे रक्खे, इससे आनाह (अफारा) उदररोग और गुल्मरोग नष्ट होताहै, विद्वान् लोगोंने इस बत्तीका फल प्रत्यक्ष देखाहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति उदावर्तानाहधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ गुल्माधिकारः ।

तत्र गुल्मसन्निकृष्टविप्रकृष्टकारण-  
पूर्वकलक्षणम् ।

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ॥  
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपि-  
णम् ॥ १ ॥

दुष्टाः स्वकारणैः मिथ्याहाराध्यशना-  
दिभिः ॥ मिथ्याविहारो बलवद्विग्रहादिः ।  
पञ्चधेति वातपित्तकफसन्निपातरक्तजा एवं  
पञ्च । द्वन्द्वजास्तु प्रकृतिसमवेतत्वात् पृथक्  
न गण्यन्ते अशौवत् । कोष्ठान्तः हृदयाद्व-  
स्तिपर्यन्तं कोष्ठस्तस्य मध्ये कुत्रापि ग्रन्थिरू-  
पिणम् गुटिकाकारम् ॥

भोजनके ऊपर भोजन करना आदि मिथ्या आहारसे और बलवान् मनुष्यके साथ लडना आदि मिथ्या विहारोंसे अत्यन्त दूषित हुए वात, पित्त, कफ और रुधिर, यह कोठमें अर्थात् हृदयसे लेकर मूत्राशयतकके भागमें गोलीकी सदृश गुल्मको उत्पन्न करेहैं । वायुसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे और रुधिरसे उत्पन्न हुआ, इस भाँति गुल्म पाँच प्रकारका होताहै । यद्यपि जो गुल्म दो दोषोंसे होतेहैं उनको गिनो तो पाचसे अधिक संख्या होतीहै तथापि सन्निकृष्ट निदानरूप वातपित्तादिकसेही संयुक्त होतेहैं इसलिये अगोँकी सदृश उनको भी पृथक् नहीं गिना- है ॥ १ ॥

अथ गुल्मभेदाः ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चो-  
च्छ्रितः ॥ पुरुषाणां तथा स्त्रीणां रक्तजं  
चोपजायते ॥ २ ॥

यह गुल्म पुरुषोंके तथा स्त्रियोंके कुपित हुए वात, पित्त, कफ, त्रिदोष और रुधिरसे भी होता है ॥ २ ॥

अथार्तवोत्पन्नगुल्मः ।

आर्तवापि गुल्मः स्यात्स तु स्त्रीणां प्रजायते ॥ अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥ ३ ॥

आर्तव ( रज ) से भी गुल्म होता है परन्तु यह गुल्म स्त्रियोंके ही होता है, रुधिरसे होनेवाले जो अन्य गुल्म हैं वे पुरुषोंके भी होते हैं और स्त्रियोंके भी होते हैं ॥ ३ ॥

अथ गुल्मस्थानानि ।

तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहन्नाभिव-  
स्तयः ॥ ४ ॥

गुल्म—दोनों पसलियोंमें, हृदय, नाभि और मूत्राशयमें होता है, इस भाँति गुल्मके पाँच स्थान हैं ॥ ४ ॥

अथ गुल्मसामान्यलक्षणम् ।

हृदस्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वा  
चलः ॥ वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति  
कीर्तितः ॥ ५ ॥

नाभिश्चन्देन वस्तिर्बोध्यः सामीप्यादेव  
यथा गङ्गायां घोष इति वस्तेरपि गुल्मा-  
श्रयत्वेन उक्तत्वादप्येव हृदस्योरेव पाठान्तरं  
पठन्ति अन्ये तु वस्तीं विद्रधिः स्यात्तु गुल्म  
इति तत्र वस्तेरपि गुल्मस्थानत्वात् । तथा  
च चरके—“पञ्चस्थानानि गुल्मस्य पार्श्वहन्ना-  
भिवस्तयः ।” इति । सञ्चारी चलनशीलः ।  
अचलः स्थिरः वृत्तां वर्तुलः । चयोपचयवा-  
निति कदाचिच्चीयते वृद्धिं गच्छन्ति  
चिदपच्चीयते हीनो भवात् । एतल्लक्षणं  
सामान्योक्तमपि वातिके व्यवतिष्ठते इति  
जैजटः । गणदासस्तु सामान्यमेवाह, सर्व-  
गुल्मानां वातभूलत्वात् ॥

हृदय तथा नाभि के नज्में रहनेवाला अथवा विचरने-  
वाला, चिदी गुल्म है अर्तवसे और स्त्री में समान अथवा

होनेवाला जो गोला होता है उसको गुल्म कहते हैं । यहां  
नाभि कहनेसे मूत्राशय जानना, जैसे ‘गंगा में घोष है’ इस  
वाक्यमें “गंगा” शब्दसे समीप होनेके कारण गंगाका  
किनारा समझना, तैसेही इस वाक्यमें भी मूत्राशय नाभिके  
समीप होनेके कारण ‘नाभिसे’ मूत्राशयही जानना ।  
कितनेक वैद्य तो उपरोक्त वाक्यको ‘हृदय तथा मूत्राशयने  
मध्यमें फेरकर’ ऐसा पढ़ते हैं और कितने कहते हैं कि  
‘मूत्राशयमें विद्रधि होता है गुल्म नहीं होता’ परन्तु या  
वात भूलकी है, क्यों कि गुल्मके हृदय, नाभि, पसलियों  
तथा मूत्राशय ये पाँच स्थान हैं, ऐसा चरकमें कहा है  
उपरोक्त लक्षण यद्यपि सामान्य रीतिसे कहे हैं तथापि ये  
लक्षण वातज गुल्मसेही मिलते हैं, ऐसा जैजट नामक  
वैद्यने कहा है । गणदास नामक वैद्य कहता है कि ‘यह  
लक्षण सब गुल्मोंके लिये साधारण है क्यों कि सब गुल्मों,  
की जड़ वायु है’ ॥ ५ ॥

अथ गुल्मपूर्वरूपम् ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धस्तृषाक्षमत्वान्त्र-  
विकूजनानि ॥ आटोपमाध्मानमपक्तिशू-  
लमासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ६ ॥  
अरुचिं कृच्छ्रविण्मूत्रवातत्वं चान्त्रकूज-  
नम् ॥ आनाहं चोर्द्धवातश्च सर्वगुल्मेषु  
लक्षयेत् ॥ ७ ॥

डकारोंका बहुत आना, मलबन्ध, तृषिका होना,  
सामर्थ्यका नाश, आंतोंका घोलना, पेटमें गुडगुड शब्द  
होय, अफारा हो और अन्न न पचनेके कारण पीडा हो,  
यह लक्षण होंय तो जानना कि गुल्मरोग हुआ है ।  
विण्, मूत्र तथा अयोवायुका कष्टमे उतरना, अरुचि,  
आंतोंमें शब्द होना, अफारा और वायु ऊर्ध्वगत हो यह  
लक्षण सब गुल्मोंमें होते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ वातगुल्मनिदानम् ।

रुक्षान्नपानं विपमातिमात्रं विचेष्टनं वग-  
विनिग्रहश्च ॥ शोकाभिवातोऽतिमलक्षयश्च  
निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ८ ॥

विचेष्टनं विरुद्धा चेष्टा बलवद्विग्रहा-  
दिः । शोकाभिवातः शोकेन मनो-

ऽधिष्ठानस्य हृदयस्य अभिधातः । अति-  
मलक्षयः विरेकादिना । निरन्नता उप-  
वासः ॥

रूक्ष विषम और अत्यंत, ऐसे अन्नपानको सेवन कर-  
नेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, बलवान पुरुषके साथ  
लडना आदि विरुद्ध चेष्टा, हृदय ( कि जो मनके रहनेका  
स्थान है ) में शोक और अभिघात ( चोट ) लगनेसे  
विरेचन आदिसे मलका अत्यंत क्षय और उपवास इन  
कारणोंसे वायुसंबंधी गुल्म होताहै ॥ ८ ॥

अथ वातगुल्मलक्षणम् ।

यः स्थानसंस्थानरुजा विकल्पं विद्ध्वात-  
सङ्गं गलवक्रशोषम् ॥ श्यावारुणत्वं  
शिशिरज्वरश्च हृत्कुक्षिपार्श्वार्श्वशिरोरु-  
जश्च ॥ ९ ॥ करोति जीर्णेऽत्यधिकं  
प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च ॥ वाता-  
त्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतित्तं कटु  
चोपशेते ॥ १० ॥

श्वावारुणत्वं शरीरस्य । शिशिरज्वरं  
शीतज्वरम् । जीर्णे आहारे प्रकुप्यति भुक्ते  
च शान्तिं गच्छति, स वातिको गुल्मः ।  
रूक्षः आहारः । कषायतित्तकटुरसाः । तत्र  
तस्मिन्वातगुल्मे नोपशेते न सुखयति ॥

स्थान स्थानमें पीडा होतीहै, मल तथा अधोवायु रुकती  
हो, गला तथा मुख सूख जाता हो, शरीर नीला और  
लाल हो जाय, शीतज्वर हो, हृदय, कोख, पसली, कंधा  
और शिर इनमें पीडा हो, अन्नके पचनेके समय गोला  
अधिक होजाय और भोजन करने पर गोला मृदु ( नरम )  
हो जाय, ये लक्षण होंय तो वायुसे उत्पन्न हुआ गुल्म  
जानना, इसमें रूक्ष, कसैले, कडवे और चरपरे पदार्थ  
अहितकारी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ पित्तगुल्मनिदानम् ।

कटुम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधाऽतिम-

द्यार्कहुताशसेवा ॥ आमोऽभिघातो  
रुधिरश्च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमु-  
क्तम् ॥ ११ ॥

विदाहि वंशकरीरादि । अतिशब्दो  
मद्यादिषु योज्यः । आमोऽत्र विदग्धाजीर्ण-  
बोधकः । अभिघातो लगुडादिना ॥

चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही तथा रूक्ष पदा-  
र्थोंके सेवन करनेसे क्रोध, मद्यपान तथा धूपके अत्यंत  
सेवनसे, आग्निके समीप रहनेसे, विदग्ध अजीर्ण, लकड़ी  
आदिके अभिघात ( चोट ) और विगडे हुए रुधिरसे पित्त  
संबंधी गुल्म उत्पन्न होताहै ॥ ११ ॥

अथ पित्तगुल्मलक्षणम् ।

ज्वरः पिपासा सदनाङ्गरागः शूलं मह-  
जीर्यति भोजने च ॥ स्वेदो विदाहोऽ-  
व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शसहः पैत्तिकगुल्म-  
रूपम् ॥ १२ ॥

अङ्गरागः देहस्य लौहित्यम् ॥

ज्वर, प्यास, ग्लानि, अगोंका लाल होना, भोजन पच-  
नेके समयमें भारी शूल होना, पसीना आवे, दाह हो और  
गुल्म व्रणकी सदृश स्पर्श न सह सके, यह लक्षण होय तो  
पित्तसे उत्पन्न हुआ गुल्म जानना ॥ १२ ॥

अथ कफजत्रिदोषजगुल्मकारणम् ।

शीतं गुरुस्निग्धमचेष्टनश्च सम्पूरणं प्रस्व-  
पनं दिवा च ॥ गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य  
सर्वस्तु दिष्टो निचयात्मकस्य ॥ १३ ॥

सम्पूरणम् उदरपूरणम् । निचयात्मकस्य  
सान्निपातिकस्य । सर्वो हेतुः वातपित्तक-  
फानां हेतुः ॥

शीतल, भारी तथा स्निग्ध अन्नपान, व्यायामका त्याग  
और दिनमें सोना, इनसे कफसंबंधी गुल्म उत्पन्न होताहै  
वात, पित्त तथा कफके जो निदान हैं वे सब मिलनेसे  
तीनों दोषसंबंधी गुल्म होताहै ॥ १३ ॥

अथ कफजगुल्मलक्षणम् ।

स्तैमित्यशीतज्वरगान्त्रसादहृल्लासकासा-

रुचिगौरवाणि ॥ कफस्य लिङ्गानि च  
यानि तानि भवन्ति गुल्मे कफकोप-  
जाते ॥ १४ ॥

कफस्य लिङ्गानि वेदनाल्पता वह्निमा-  
न्यादीनि ॥

शरीरमें गीलापन, शीतज्वर, ग्लानि, हृल्लास ( उव-  
काई ), साँधी, अरुचि, शरीरमें भारीपन और थोड़ी २  
पीडाका होना, तथा अमिकी मदता, यह लक्षण होयें तो  
कफसे हुआ गुल्म जानना ॥ १४ ॥

अथ द्विदोषजगुल्मकल्पना ।

व्यामिश्रलिङ्गानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशे-  
दौषधकल्पनार्थम् ॥ १५ ॥

सान्निपातिके सर्वो हेतुः उपलक्षणम् ॥

जो दो दोषोंके मिश्रित लक्षण दीखते होयें तो औषधि  
की कल्पनाके लिये वातसे तथा पित्तसे हुए, वायु तथा  
कफसे हुए, और पित्त तथा कफसे हुए इस प्रकार ओर  
भी तीन गुल्मोंकी कल्पना करलेवै ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषजगुल्मलक्षणम् ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्धनोन्नतं शीघ्र-  
विदाहि दारुणम् ॥ मनःशरीराभिवला-  
पहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादि-  
शेत् ॥ १६ ॥

जो तीनों दोषोंसे गुल्म हुआ हो तो अत्यंत पीडा तथा  
दाह होताहै, गोला पथरकी सट्टा घन तथा ऊपरको  
उठा हुआ, तत्काल विदग्धाजीर्णको उत्पन्न करनेवाला,  
मनसो भ्रमित करता शरीरको दुर्बल तथा जठराग्निके बलको  
हरनेवाला और मृत्युको फगनेवाला गुल्म होताहै इसको  
असाध्य समझना ॥ १६ ॥

अथार्तवस्थिरोत्पन्नगुल्मलक्षणम् ।

नवप्रसूताअहितभोजना या या चामगर्भ  
विसृजेत्तौ वा ॥ वायुर्हि तस्याः  
परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं

सदाहम् ॥ १७ ॥ पैतृस्य लिङ्गेन समा-  
नलिङ्गं विशेषणश्चाप्यपरं निबोध ॥  
यः स्पन्दते पिण्डित एव नागैश्चिरात्स-  
शूलः समगर्भलिङ्गः ॥ स रौधिरः  
स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे  
चिकित्स्यः ॥ १८ ॥

नवप्रसूता प्रकृताभिवलवर्णमांसहीना  
अहितभोजना या च आमगर्भ विसृजेत्  
नवममासादवाक् प्रसूयते सापि अहित-  
भोजना ऋतौ वा आर्तवप्रवृत्तिकाले अहित-  
भोजना अपथ्याचरणाद्वा वायुः रक्तं परि-  
गृह्य गुठिकाकारं गर्भाशये गुल्मं करोति  
भोजनपदं विहारस्यापि उपलक्षणम् ।  
यतश्चाह चरकः—“ऋतावनाहारतया भयेन  
विरुक्षणैर्वैगविनिग्रहैश्च । संस्तम्भनोल्लेख-  
नयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रिया रक्तभवोऽभ्युपैति”  
धातुरूपरक्तजस्यापि विप्रकृष्टनिदानानि  
लक्षणानि च पैत्तिकस्येव बोद्धव्यानि । पर-  
मत्र अभिघातादिहेतुर्विशेषः । चिरात्  
स्पन्दते चलति नाङ्गैः न हस्तपादाद्यैः ।  
समगर्भलिङ्गः अत्र समशब्दः सर्वशब्दार्थः  
तेन समानि सर्वाणि गर्भलिङ्गानि आर्तव-  
प्रवृत्तिकाले आर्तवाददर्शनमुखपीततास्तनमु-  
खकृष्णतादोहदादीनि यत्र सः । एते च  
व्याधिप्रभावात् । यथा यक्ष्मिणे रिरंसा ।  
स रौधिर आर्तवरूपरक्तजः स्त्रीणां प्रजायते  
इति गर्भसमानलिङ्गत्वे विशेषज्ञानार्थमाह—  
‘मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः’ ।  
नवमदशममासयोः प्रसवकालत्वादित्ये-  
कं, तत्र, यः स्पन्दते पिण्डित एव नागै-  
रित्यादिनैव संशयस्य निराकृतत्वात् ।  
गर्भः प्रत्यगैः निरन्तरं निःशूलं स्पन्दते  
गुल्मश्चेतद्विपरीत इति । किञ्च नवमे  
दशमे प्रसूयत इति उत्सर्गो न तु नियमः ।

तदधिककालेऽपि प्रसवदर्शनादागमाच्च ।  
यत आह चरकः—“तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण  
गर्भं पुष्टं यदा वर्षगणैरपि स्यात् ।” तस्मा-  
न्मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्य इति न  
संशयव्यवच्छेदार्थं किन्तु तदा सुखेन  
चिकित्सार्थं यत उक्तम्—“रक्तगुल्मपुराणत्वं  
सुखसाध्यस्य लक्षणम् ।” पुराणता चास्य  
दशमासातिक्रमेणैव भवति । जैज्जटेनापि  
उक्तम् । दशमासोपरि पिण्डिते गुल्मे स्नेहा-  
दिना उपस्कृतदेहाय न गर्भाशयक्षतिमाद-  
धाति रक्तभेदनमिति ॥

जो नवप्रसूता स्त्री अहित आहार विहार करै, अथवा  
जो स्त्री अपने गर्भको गिराकर अहित आहार विहार करै  
अथवा जो स्त्री रजस्वला होनेपर अहित आहार विहार  
करै, उस स्त्रीके रुधिरको वायु ग्रहण करके गर्भाशयमें  
गोलेकी सदृश गुल्मको उत्पन्न करेहै, इस गुल्ममें पीडा,  
द्राह और पित्तजगुल्मके लक्षण होते हैं । चरकमें भी  
कहा है कि “रजोघर्भके समय—उपवास करनेसे, भयसे,  
रूक्ष पदार्थोंका उपयोग करनेसे, मूत्र आदिके वेगोंको  
रोकनेसे, स्तम्भन करनेसे, उल्लेखन आदि योनिसंबंधी  
दोषोंसे स्त्रीके रुधिरजन्य गुल्म उत्पन्न होताहै” धातुरूप  
रुधिरसे उत्पन्न हुए गुल्मके विप्रकृष्ट निदान तथा लक्षण  
पित्तसे उत्पन्न हुए गुल्मकी सदृशही जानने, परन्तु अभि-  
घात ( चोट ) आदि निदान विशेष करके होतेहैं, रजोरूप  
गुल्ममें और भी विशेष कहतेहैं कि—रज गिरते समयमें  
रजका नही दीखना, मुखका पीलापन, स्तनोंके आग्रभाग  
काले होना, तथा खानेपीने आदिके भाव—अभाव इत्यादि  
जो जो गर्भके चिह्न हैं वे सब चिह्न व्याधिके प्रभावसे  
जिस गुल्मके देखनेमें आवैं ( जिसप्रकार क्षय रोगवालेको  
स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा व्याधिके प्रभावसे होती-  
है तिसीप्रकार रजसम्बन्धी रुधिरके गुल्मवाली स्त्रीके  
चिह्न व्याधिके प्रभावसे होतेहैं ) तथा जिसमें हाथ पाँव  
आदि अंगोंका नही चलना अधिक तर केवल पिडाकार-  
काही चलना जात हो और जिसमें शूल हो उस गुल्मको  
रजरूप रुधिरसे उत्पन्न हुआ जानना । यह गुल्म स्त्रियोंके

ही होताहै । गर्भ तो हाथ पाँव आदि गाखाओंसे निरन्तर  
और शूल विनाही चलताहै ( फडकता ) है और यह गुल्म  
तो अधिकवार पिडाकारही चलताहै और शूलयुक्त होताहै ।  
इस गुल्मकी चिकित्सा दशमे महीनेके व्यतीत होनेपर करै ।  
कोई कहतेहैं कि—“गर्भ होनेका सन्देह न रहै इसकारण  
दशमे मासके व्यतीत हो जानेपर चिकित्सा करना कहाहै  
क्यों कि नवमा और दशमा महीना प्रसव होनेका काल  
है” परन्तु ऐसा कहना अयोग्य है, क्योंकि—“गर्भ तो हाथ  
पाँव आदि अंगोंसे निरन्तर और शूल विनाही चलताहै”  
इत्यादि कथनके द्वारा गर्भके संग्रहको दूर किया है, तब  
‘नवमे अथवा दशमें महीने प्रसव होय’ यह भी एक  
सामान्य बात है, कुछ नियमरूप नहीं है, क्योंकि दशमें  
महीनेसे अधिक काल वीतनेपर भी प्रसव होते दीखतेहैं,  
और ग्रन्थोंमें भी दशमें मासके वीतनेपर प्रसव होना  
लिखा है । चरकमें कहा है कि—“स्त्री गर्भ रहनेके पश्चात्  
अत्यन्त अधिक काल अर्थात् बहुत वर्ष व्यतीत होनेपर  
भी गर्भको जनतीहै और इस प्रकार उत्पन्न हुआ बालक  
आति पुष्ट होताहै” इसलिये दशमें महीने चिकित्सा करना  
जो कहा है वह गर्भका संशय दूर करनेके लिये नहीं कहा  
है बरन् दशमें महीने सुगमतासे चिकित्सा हो सक्ती है  
इससे कहा है, ऐसा जानना चाहिये । कहाँ है कि—  
“रुधिरसंबन्धी गुल्म यदि जीर्ण ( पुराना ) होय तो उसको  
सुखसाध्य समझना” फिर दशमा महीना व्यतीत होनेपर  
रुधिरसंबन्धी गुल्म जीर्ण हुआ मानने योग्य होताहै । जैजट  
आचार्य भी कहताहै कि—“दशमा महीना व्यतीत होनेके  
पश्चात् गुल्मकी स्थिति होतीहै तब तेल आदिसे स्त्रीके शरी-  
रको संस्कार देकर रुधिरका भेदन करे तो इससे गर्भाशयको  
हानि नहीं होतीहै” ॥ १७ ॥ १८ ॥

### अथाऽसाध्यगुल्मलक्षणम् ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्धनोन्नतं शीघ्र-  
विदाहि दारुणम् ॥ मनःशरीराग्रिवला-  
पहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादि-  
शेत् ॥ १९ ॥

दाहपरीतं दाहेन व्याप्तसकलदेहम् ।  
शीघ्रविदाहि शीघ्रं विदग्धाजीर्णकरम् ।



दारुणम् मारकम् । मनोऽपहारिणम् मनो-  
वैकृत्यकारकम् । शरीराभिवलापहारिणम्  
शरीरस्य कार्यकरम् । अपरम् असाध्यल-  
क्षणमाह-

सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुप-  
रिग्रहः ॥ कृतशूलः शिरानद्धो यदा कूर्म  
इवोन्नतः ॥ २० ॥ दौर्वल्यारुचिहृल्लासका-  
सच्छर्द्यरतिज्वरैः ॥ तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायै-  
र्युज्यते न स सिध्यति ॥ २१ ॥

महावास्तुपरिग्रहः व्यापकतया बृह-  
त्फलं गृह्णाति । युज्यते युक्तो भवति ।  
अपरञ्च-

गृहीत्वा सज्वरं श्वासं छर्द्यतीसारपीडि-  
तम् ॥ हन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति  
गुल्मिनम् ॥ २२ ॥

कर्षति मारणाय कर्षति । अपरञ्च-

श्वासः शूलं पिपासान्नविद्वेषौ ग्रन्थिमू-  
ढता ॥ जायते दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो  
मरणाय वै ॥ २३ ॥

ग्रन्थिमूढता ग्रन्थिरूपस्य गुल्मस्य अक-  
स्माद्विलयनम् ॥

जो गुल्म-अत्यन्त पीडा तथा दाहयुक्त हो, पत्थरकी सट्टा  
वन तथा ऊसरको उठा हुआ हो, तत्काल विदग्धाजीर्णको  
उत्तम करनेवाला हो, मनको भ्रमित करता, शरीरको  
दुर्बल तथा जटगमिके बलको हरनेवाला हो और त्रिदो-  
षन गुल्म, यह असाध्य जानना ॥ १९ ॥

जो गुल्म-क्रम क्रम करके अत्यन्त बढ़ गया हो और  
बहुन स्थान धेर लिया हो, शूलको करनेवाला हो, शिरा-  
जोषे बलवान् कटुष्णी मौति ऊँचा होगया हो और  
दुर्बलता, अर्चन, टहल, नाँसी, वमन, अत्यन्त ज्वर,  
तृष्णा, तन्द्रा तथा प्रतिश्याय, इनमें युक्त हो इस गुल्म  
रोगीको असाध्य जानना ॥ २० ॥ २१ ॥

जो गुल्मरोगी-ज्वर, शूल, वमन और अतीशर इनमें  
क्षीण हो तथा हृदय, नाभि, दाह तथा पाँसमें वजन  
हो इस गुल्मरोगीकी मृत्यु होना ॥ २२ ॥

श्वास, शूल, तृष्णा, अन्नमें अरुचि, गुल्मका अकस्मात्  
गुप्त होजाना और दुर्बलता, इन लक्षणों युक्त गुल्मरोगी  
मृत्युगत हुआ जानना ॥ २३ ॥

### अथ गुल्मचिकित्सा ।

वातारितैलेन पयोयुतेन पथ्यासमेतेन  
विरेचनं हि ॥ संस्वेदनं स्निग्धमतिप्र-  
शस्तं प्रभञ्जनक्रोधकृते च गुल्मे ॥ २४ ॥  
स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकसम्भवः ।  
पीतस्तैलेन शमयेद् गुल्मं पवनसम्भ-  
वम् ॥ २५ ॥ तित्तिरांश्च मयूरांश्च  
कुक्कुटान्कौश्वर्तकान् ॥ सर्पिः शाली-  
न्प्रसन्नाञ्च वातगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥  
पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफला-  
म्बुना ॥ विरेकाय सितायुक्तं कम्पिल्लं  
वा समाक्षिकम् ॥ २७ ॥

त्रिफलाम्बुना त्रिफलाकाथेन । कम्पि-  
ल्लकं कवीला इति लोके ॥

अभयां द्राक्षया खादेत्पित्तगुल्मो गुडेन  
वा ॥ योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपा-  
चरेत् ॥ २८ ॥ अपरैश्च बलासत्रैर्युक्तियुक्तैः  
शमं नयेत् ॥ २९ ॥

वायुके कोपसे गुल्म हुआ होय तो दूध और हरदों  
सहित अंटीका तेलका विरेचन ( जुलाव ) देवै, तथा  
स्निग्ध पदार्थोंसे स्वेदन करे, यह हितकारक है । अथवा  
सजी, कूट और केतकीका खार, इनको मिलाकर तेलमें  
डालकर पिये तो इससे वायुसम्बन्धी गुल्म शांत होजाता  
है । अथवा वायुसे उत्पन्न हुए गुल्ममें तीतर, मोर,  
सुरगा, जैच तथा बटरका मास, घी, शालिचावल और  
प्रसन्ना नामक मदिरा इनका सेवन करावै, पित्तके कोपसे  
गुल्म हुआ होय तो विरेचनके लिये हरद, बहेडा तथा  
आमलोंके काथके साथ निसोतका चूर्ण खाव अथवा  
सहतेने साथ कर्गलेका उपयोग करे । अथवा

पित्तगुल्मवाला मनुष्य दाखके साथ अथवा गुडके साथ  
हरड खाय तो पित्तज गुल्म नष्ट होता है ।

कफसे गुल्म हुआ होय तो—वायुसे हुए गुल्ममें जो  
प्रयोग कहे हैं वे प्रयोग करै और कफको नष्ट करनेवा-  
ले जो प्रयोग हैं उन प्रयोगोंसे भी कफगुल्मको शांत-  
करै ॥ २४-२९ ॥

### अथ हिंवादिचूर्णम् ।

हिंगुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्यामिपा-  
ठाशटीवृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुक क्षार-  
द्वयं दाडिमम् ॥ पथ्यापौष्करवेतसाम्लह-  
पुषाजाज्यस्तदोभिः कृतं चूर्णं भावितमेत-  
दार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ३० ॥ गुल्मा-  
ध्मानगुदांकुरान्ग्रहणिकोदावर्तसंज्ञं गदं  
प्रत्याध्मानगरोदराश्मरियुतांस्तूनीद्वयारो-  
चकान् ॥ ऊरुस्तम्भमतिभ्रमं च मनसो  
बाधिर्यमष्टौलिकां प्रत्यष्टौलिकया सहाप-  
हरते प्राक्पतितमुष्णाम्बुना ॥ ३१ ॥  
हृत्क्षिवंक्षणकटीजठरान्तरेषु वस्तिस्तनां-  
सफलकेषु च पार्श्वयोश्च ॥ शूलानि नाशय-  
ति वातबलासजानि हिंवाद्यमाद्यमिदमा-  
श्विनसंहितोक्तम् ॥ ३२ ॥

हींग, पीपलामूल, धनिया, जीरा, वच, चव्य, चीता,  
पाढ, कचूर, तितडीक, तीनों जातिके नमक, सोंठ,  
मिरच, पीपल, जवाखार, सजीखार, दाडिम, हरड,  
पोहकरमूल, अमलवेत, हाऊवेर और जीरा, इनका चूर्ण  
करके अदरकके रसकी तथा विजौरे नीबूकी भावना  
देकर उष्णजलके साथ खाय तो इससे गुल्म, अफारा,  
बवासीर, ग्रहणी, उदावर्त, प्रत्याध्मान, विष, उदरके  
रोग, पथरी, दोनों प्रकारकी तूनी, अरुचि, ऊरुस्तम्भ,  
मनका अत्यत भ्रम, बहरापन, अष्टौलिका और प्रत्यष्टौ-  
लिका, ये रोग तुरंत नष्ट होते हैं । अश्विनीकुमारकी  
सहितामे कहा हुआ यह हिंवाद्यनामक चूर्ण हृदयमे  
कोख, वंक्षण, कमर, पेट, वस्ती, स्तन, खभा और पस-  
लिये, इनमें वायुसे हुए तथा कफसे हुए शूलको नष्ट करै-  
है ॥ ३०-३२ ॥

### अथ क्षाराष्टकादियोगः ।

धीमानुपचरेद्गुल्मं प्रत्येकञ्च त्रिदो-  
षजम् ॥ सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोष-  
घ्नो विधिर्हितः ॥ ३३ ॥ शरपुंखस्य  
लवणं पथ्याचूर्णं समं द्वयम् ॥ शाणप्र-  
माणमश्रियाचूर्णं गुल्मगदापहम् ॥ ३४ ॥  
स्वर्जिका शाणमाना स्यात्तावदेव गुडं  
भवेत् ॥ उभयोर्वटिकां खादेद्गुल्मामय-  
विनाशिनीम् ॥ ३५ ॥ पलाशवज्रिशि-  
खरीचिश्चार्कतिलनालजाः ॥ यवजः  
स्वर्जिका चेति क्षारा ह्यष्टौ प्रकीर्तिताः ॥  
एते गुल्महराः क्षारा अजीर्णस्य च पा-  
चकाः ॥ ३६ ॥

बुद्धिमान् वैद्य वायुसे हुए गुल्ममें वातनाशक उपचार  
करै, पित्तसे हुए गुल्ममें पित्त नाशक उपचार करै और  
कफसे हुए गुल्ममें कफनाशक उपचार करै । यदि तीनों  
दोषोंसे गुल्म हुआ हो तो उसमें त्रिदोषनाशक उपचार  
करै । सरफोंकेका खार और हरडोंका चूर्ण, इनको समान  
भाग लेकर चार मासे खाय, तो इससे गुल्म नष्ट होता-  
है । अथवा चार मासे सजी और चार मासे गुड, इनकी  
गोली बनाकर खाय तो गुल्मका नाश होता है । अथवा  
पलाश ( ढाक ), थूहर, ओगा, इमली, आक, तिल,  
जौ और सजी, ये आठ क्षार कहाते हैं । ये गुल्मको नष्ट  
करते हैं और अजीर्णका पाचन करते हैं ॥ ३३-३६ ॥

### अथ वज्रक्षारः ।

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारः सुवर्चलम् ॥  
टंकणं स्वर्जिका क्षारतुल्यं चूर्णं प्रक-  
ल्पयेत् ॥ ३७ ॥ वज्रीक्षरै रविक्षरैरा-  
तपे भावयेद्भयहम् ॥ वेष्टयेदर्कपत्रेण  
रुद्धा भाण्डे पुनः पचेत् ॥ ३८ ॥  
तत्क्षारं चूर्णयेत्पश्चाद्भूषणं त्रिफला  
तथा ॥ यवानी जीरको वह्निचूर्णमेषाञ्च  
कारयेत् ॥ ३९ ॥ सर्वचूर्णसमं क्षारं  
सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ तच्चूर्णं टंकयुगलं  
सलिलेन प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥ गुल्म-

शूले तथाजीर्णे शोथे सर्वोदरेषु च ॥  
मन्दे वह्नाबुदावते णीहि चापि परं  
हितम् ॥ ४१ ॥ वातेऽधिके जलैः कोष्णै-  
हितं पित्तेऽधिके घृतैः ॥ गोमूत्रेण कफा-  
धिक्ये कांजिकेन त्रिदोषजे ॥ ४२ ॥ वज्र-  
क्षार इति ख्यातः प्रोक्तः पूर्व स्वयम्भु-  
वा ॥ सेवितो हरतेऽजीर्णं तथाऽजीर्णम-  
वान्गदान् ॥ ४३ ॥ सुवर्चिका टंकमिता  
तत्समानार्दिकापि च ॥ उभे भुञ्जीत  
युगपद्गुल्मामयनिवृत्तये ॥ ४४ ॥

सुवर्चिका सोरा इति लोके ॥

गुल्मी कुमारिकामांसं कर्षाद् गोघृता-  
न्वितम् ॥ शुक्तिचूर्णस्य गुटिकां टंकमात्रां  
सुवेष्टयेत् ॥ ४५ ॥

कुमारिका धिवकुमारी इति लोके ॥

गुडेन शाणमानेन तां लिहेदुल्मरोग-  
वान् ॥ गिलेद्योषाभयासिन्धुसूक्ष्मचूर्णा-  
वभूलिताम् ॥ ४६ ॥

सानुद्रनोन, संधानोन, कचियानोन, जवाखार, सोरा, सुहागा  
और सजी इनको समान भाग लेकर उस चूर्णको थूहरके  
दूधकी अथवा आकके दूधकी तीन दिनतक धूपमें  
भावना देवे पश्चात् उसका गोला बनाकर आकके पत्तोंमें  
न्येष्ट गांठीमें रक्खे और हाडीका मुख बन्द करके उस  
गोलेको अग्निमें पकावे और पश्चात् उस क्षारका चूर्ण करे।  
तदनन्तर सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आमला,  
अजगयन, जीरा और चीता इनका चूर्ण करे, इस क्षारके  
चूर्णको और सोंठ आदिके चूर्णको समानभाग लेकर एकत्र  
करे, पश्चात् उसमेंसे आठ मासे चूर्ण पानीमें घोलकर  
पिये तो इससे गुन्मशूल, अजीर्ण, एज्जन, सब प्रकारके  
उदररोग, अग्निहीन मन्दता, उदावर्त और ग्रीहा, ये मली  
भौंते नष्ट होते हैं, जो वायु अधिक होय तो किंचित् उष्ण-  
ज से, किं अधिक होय तो थोड़े, कफ अधिक होय तो  
गोमूत्रसे और तीनों दोषोंके कोरसे हुआ होय तो काँजीसे  
इस चूर्णका उन्मोग करे। पूरे फालमें ब्रतादि बंदे हुए इस  
प्रातः नामक प्रयोग करनेसे अजीर्ण तथा अजी-  
र्णरोगी मृत नष्ट होते हैं ॥ ४७-४३ ॥

चारमासे सोरा और चारमासे अदरख, इनको एकत्र  
करके खाय तो गुल्मका नाश होता है । अथवा गुल्मवा-  
ला मनुष्य आधा तोला बीकारका गूदा लेकर उससे धी  
मिलावे, पश्चात् उसके ऊपर सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड  
और सैंधा निमक इनका बारीक चूर्ण घुर घुराकर खाय  
तो इससे गुल्म नष्ट होता है ॥ ४३-४६ ॥

अथ गुल्मरोगित्याज्यपदार्थाः ।

वल्लूरं मूलकं मत्स्यं शुष्कशाकानि  
वैदलम् ॥ न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि  
फलानि च ॥ ४७ ॥

वैदलानां निषेधेऽपि माषकुलत्थयोः नात्र  
निषेध इति सुश्रुतटीका ॥

सूखा हुआ मास, मूली, मछली, सूखे हुए शाक,  
विदल ( दो दालबाले ) अन्न, आलु और मधुर फल,  
इनको गुल्मरोगी मनुष्य त्यागदेवे । सुश्रुतकी टीकामें  
लिखा है कि—“जिनकी दो दाल होती हैं, ऐसे विदल अन्न  
गुल्म रोगीको निषेध है, परन्तु उडद और कुलथीका  
निषेध नहीं है” ॥ ४७ ॥

अथ रौधिरगुल्मचिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य योज्यं स्नेहविरेच-  
नम् ॥ शताह्वा चिरविल्वत्वग्दारुभा-  
र्जीकणोद्भवः ॥ ४८ ॥ कल्कः पीतो  
जयेद्गुल्मं तिलकाथेन रक्तजम् ॥  
तिलकाथो गुडव्योषघृतभार्जीयुतो भ-  
वेत् ॥ ४९ ॥ योनिरक्तभवे गुल्मे  
नष्टपुष्पेषु योपिताम् ॥ पीतो धात्रीरसो  
युक्तो मरिचैश्चासगुल्मनुत् ॥ ५० ॥  
सुररोचनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वि-  
तम् ॥ विदधीतासु गुल्मिन्या मलसं-  
चक्रमेण च ॥ ५१ ॥ विशेषमपरश्चासुं  
शृणु रक्तप्रभेदनम् ॥ पलाशक्षारतोयेन  
सर्पिः सिद्धं पिबेच्च सा ॥ ५२ ॥ यस्मिन्न  
च रसक्षारतोयसाध्यरसादिषु ॥ सक्षारं

व्यूषणं सर्पिः प्रपिबेदसगुल्मिनी ॥ ५३ ॥  
फेनोद्गारस्य निष्पत्तिर्मिष्टदुग्धसमाकृतेः ॥  
स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरल-  
क्षणः ॥ ५४ ॥

इति गुल्मनिदानचिकित्साधिकारः ।

रक्तगुल्मवाले रोगीके शरीरको स्वेदनका तथा स्नेह-  
नका संस्कार देकर स्नेहयुक्त पदार्थोंका विरेचन देवै  
और तदनन्तर अन्य चिकित्सा करै । सत्तावर, करजकी  
छाल, दासदलदी, भारगी और पीपल, इनका कल्क  
करकै तिलके काथके साथ पिये तो इससे रुधिरसम्बन्धी  
गुल्म नष्ट होताहै । स्त्रियोंका रज नष्ट हुआ हो अथवा  
योनिके रुधिरसे गुल्म हुआ होय तो तिलका काथ करके  
उसमें गुड, सोंठ, मिरच, पीपल, धी और भारगी ये  
पदार्थ डालकर पिये । आसलोंके रसमें कालीमिरच  
डालकर पिये तो इससे रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होताहै ।  
रुधिरसम्बन्धी गुल्मवाली स्त्रीको दोषोंसे स्वच्छ करनेके  
लिये गोरखमुण्डी और वशलोचन, इनका चूर्ण मिश्री  
तथा सहतमे मिलाकर खिलावै । स्त्रियोंका रुधिरसम्बन्धी-  
गुल्म जिससे तत्काल नष्ट होजाय ऐसा और प्रयोग कह-  
तेहैं कि—ढाकके खारके पानीमें पकाया हुआ धी पिये,  
अथवा जवाखार, सोंठ, मिरच और पीपल, इनका चूर्ण  
धीमें डालकर पिये तो स्त्रीका रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट  
होजाताहै ॥ ४८-५४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे गुल्माधिकारः सपूर्णः ।

### अथ प्लीहायकृदधिकारः ।

तत्र शरीरावयवविशेषेण प्लीहास्वरूपम् ।  
शोणितान्जायते प्लीहा वामतो हृदया-  
दधः ॥ रक्तवाहिशिराणां स मूलं ख्यातो  
महर्षिभिः ॥ १ ॥

बाई ओर हृदयसे नीचे रुधिरसे प्लीहा ( तिल्ली )  
उत्पन्न होतीहै और रुधिरको बहानेवाली शिराओंका मूल  
है, ऐसा महर्षियोंने कहाहै ॥ १ ॥

अथ प्लीहारोगनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

विदाहाभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टम-

त्यर्थमसृक्कफश्च ॥ प्लीहाभिवृद्धिं कर्तुः  
प्रवृद्धौ तं प्लीहसंज्ञं गदमामनन्ति ॥ २ ॥  
वामे स पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः  
सीदति चातुरोऽत्र ॥ मन्दज्वराग्निः कफपि-  
त्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ॥ ३ ॥

विदाहि कुलत्थमाषसर्षपशाकादि। अभि-  
ष्यन्दि माहिषं दध्यादि कफपित्तलिङ्गैरुप-  
द्रुत इत्यर्थः । प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्चेति स-  
म्प्राप्तेः असृजः पित्तस्य च समानधर्मत्वात् ॥

कुलथी, उडद तथा सरसोका शाक आदि विदाही  
पदार्थोंको और भैंसका दही आदि अभिष्यन्दि पदार्थोंको  
सेवन करनेवाले मनुष्यका अत्यन्त दूषित हुआ रुधिर  
और कफ, वृद्धिको प्राप्त होकर प्लीहाको बढ़ातेहै, इसके  
प्लीहारोग कहतेहैं । अत्यन्त दूषित हुए रुधिर और कफसे  
प्लीहाकी वृद्धि होतीहै ऐसा जो कहा सो इस रोगकी  
संप्राप्ति जानना, क्यों कि रुधिर और पित्तका धर्म समान  
है । यह प्लीहा—बाई पसलीमें बढ़ती है, इससे रोगी  
अत्यन्त दुःखी होताहै, तथा मन्द मन्द ज्वर, अग्निकी  
मन्दता, कफ तथा पित्तके चिह्न, बलक्षीण और शरीर  
अत्यन्त पीला होजाताहै ॥ २ ॥ ३ ॥

### अथ रौधिरप्लीहलक्षणम् ।

क्वमो भ्रमो विदाहश्च वैवर्ण्यं गात्रगौ-  
रवम् ॥ मोहो रक्तोदरत्वश्च ज्ञेयं रक्तज-  
लक्षणम् ॥ ४ ॥

ग्लानि, भ्रम, दाह, वर्णकी विपरीतता, शरीरमे भारी-  
पन, मोह और रक्तोदरका होना, ये लक्षण रुधिरसे हुई  
प्लीहाके जानने ॥ ४ ॥

### अथ पित्तजप्लीहलक्षणम् ।

सज्वरः सपिपासश्च सदाहो मोहसं-  
युतः ॥ पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पैत्तिक  
उच्यते ॥ ५ ॥

यदि प्लीहारोग पित्तसे हुआ होय तो ज्वर, तृषा, दाह,  
मोह और विशेष करके शरीरका पीला पड़जाना, ये  
लक्षण होतेहैं ॥ ५ ॥

अथ कफजप्लीहलक्षणम् ।

प्लीहा मन्दव्यथः स्थूलः कठिनो गौरवा-  
न्वितः ॥ अरोचकेन संयुक्तः प्लीहा कफज  
उच्यते ॥ ६ ॥

जो प्लीहा हीनपीडावाली हो, तथा मोटी, कठोर,  
भागी और अरुचि युक्त होय तो जानना कि-कफसे हुआ  
प्लीहा रोग है ॥ ६ ॥

अथ वातजप्लीहलक्षणम् ।

नित्यमानडकोष्ठः स्यान्नित्योदावर्तपी-  
डितः ॥ वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक  
उच्यते ॥ ७ ॥

जो वायुसे हुआ प्लीहारोग होय तो कोठा जकड़ा हुआ  
रहनाई, नित्य उदावर्तकी पीडा और पीडा चारों ओर  
व्याप्त रहनाई ॥ ७ ॥

अथ प्लीहासाध्यलक्षणम् ।

दोषत्रितयरूपाणि प्लीहासाध्ये भव-  
न्त्यपि ॥

जिन प्लीहामें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते होयें, उस  
प्लीहारोगको असाध्य जानना ॥

अथ शरीरावयवविशेषे यकृतस्वरूपम् ।

अथो दक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतः स्थि-  
तिः ॥ तत्तु रंजकपित्तस्य स्थानं शोणि-  
तजं मतम् ॥ ८ ॥

दाहिनी पसलीमें हृदयके नीचे यकृतकी स्थिति होती  
है, यह यकृत रंजकसे होताहै और मनोरञ्जक पित्तका  
स्थान मानाजाताहै ॥ ८ ॥

अथ यकृद्दोषः ।

प्लीहामयस्य हेत्वादि समस्तं यकृदा-  
मयं ॥ किन्तु स्थितिस्तयोर्ज्ञेया वामद-  
क्षिणपार्श्वयोः ॥ ९ ॥

यकृतके जो जो निदान, संप्राप्ति और लक्षण हैं  
वे सब यकृत रोगकेभी निदान, संप्राप्ति और लक्षण  
होते, प्लीहा इतनाही अन्तर है कि-प्लीहाकी स्थिति  
वामपार्श्वमें है और यकृतकी स्थिति दाहिनी पस-  
लीमें है ॥ ९ ॥

अथ प्लीहारोगचिकित्सा ।

पातव्यां युक्तितः क्षारः क्षीरेणादधिशु-

क्तिजः ॥ तथा दुग्धेन पातव्याः पिप्पल्यः  
प्लीहशान्तये ॥ १० ॥ अर्कपत्रं सलवणं  
पुटदग्धं सुचूर्णितम् ॥ निहन्ति मस्तुना  
पीतं प्लीहानमतिदारुणम् ॥ ११ ॥ हिंशु  
त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारं च सैन्धवम् ॥ मातु-  
लुंगरसोपेतं प्लीहशूलहरं भवेत् ॥ १२ ॥  
पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभाविता ॥  
प्लीहशूलमार्तिशमनी वह्निमान्द्यहरी मता  
॥ १३ ॥ रसेन जम्बीरफलस्य शंखना-  
भीरजः पीतमवश्यमेव ॥ शाणप्रमाणं  
शमयेदशेषं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥  
॥ १४ ॥ शरपुंखमूलकल्कस्तक्रेणालो-  
डितः पीतः ॥ प्लीहानं यदि न हरति  
शैलोऽपि तदा जले प्लवते ॥ १५ ॥  
सुपक्वसहकारस्य रसः क्षौद्रसमन्वितः ॥  
पीतः प्रशमयत्येव प्लीहानं नेह संशयः ॥  
॥ १६ ॥ सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशाप-  
र्युषितं नरः ॥ राजिकाचूर्णसंयुक्तं खादे-  
त्प्लीहोपशान्तये ॥ १७ ॥ यवानिकाचि-  
त्रकयावशूकषड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्धवाना-  
म् ॥ चूर्णं हरेत्प्लीहगदं निपीतमुष्णा-  
म्बुना मस्तुरसासवैर्वा ॥ १८ ॥

प्लीहाकी शातिके लिये समुद्रकी सीपकी भस्म करके  
दूधके साथ पिये, अथवा पीपलका चूर्ण दूधके साथ  
पिये । अथवा आकके पत्तेमें नोन रखकर उसको पुट-  
पाकसे जलाकर चूर्ण करलेवै, पश्चात् ये चूर्ण दहीके  
पानीके साथ पिये, तो इससे अत्यन्त दारुण प्लीहाभी  
शान्त होतीहै । अथवा हींग, सोट, मिरच, पीपल, कूट,  
जवाहार और सैधानिमक इनका चूर्णकर विजैरे नींबूके  
रससे पिये तो इससे प्लीहा और शूलका नाश होताहै  
अथवा पीपलका चूर्ण पलाशधार ( ढाकका रस ) के  
जलकी भावना देकर ग्याय तो इससे प्लीहाकी तथा  
गुमफी पीडा शान्त होजाती है और अग्निकी मन्दता  
भी नष्ट होजातीहै । अथवा शंखकी नाभिकी भस्म



करकै नीबूके रसके साथ चार मासे पिये तो इससे कछु-  
एकी सदृश ऊँची ग्रीहा भी अवश्य भले प्रकार नष्ट हो-  
जाती है । वा सरफोकेकी जडका कल्क करकै तक्र ( मट्टे )  
में मिलाकर पिये तो इससे भी यदि ग्रीहा रोग नष्ट न  
होय तो पत्थरभी जलमे तैरने लगें अर्थात् जिसप्रकार  
जलमे पत्थरका तैरना असंभव है उसी प्रकार इस यत्नसे  
ग्रीहा रोगका न नष्ट होना असंभव है । भलीभाँति पकेहुए  
आमके रसको सहृत्के साथ पिये तो इससे ग्रीहा रोग  
अवश्य नष्ट होजाता है । इसमें किंचित् सशय नहीं है ।  
सेमलके फूलको भलीभाँति उसेकर रात्रिमें धरा रहने दे,  
फिर राईके चूर्णके साथ खाय तो ग्रीहा रोगकी शांति होती  
है । अथवा अजवायन, चीता, जवाखार, पीपलामूल,  
दन्ती और पीपल इनका चूर्ण करकै उष्ण पानीसे अथवा  
मद्यसे पिये तो इससे ग्रीहा रोग नष्ट होजाता है ॥ १०-१८ ॥

### अथ यकृद्रोगचिकित्सा ।

ग्रीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृद्रोगे समा-  
चरेत् ॥ कार्यञ्च दक्षिणे बाहौ तत्र शो-  
णितमोक्षणम् ॥ १९ ॥ क्षारं विडङ्गकृ-  
ष्णाभ्यां पूतीकस्याम्बुनि शृतम् ॥ पिबे-  
त्प्रातर्यथावहि यकृत्ग्रीहप्रशान्तये ॥ २० ॥

अत्र पूतीकः करञ्जः ॥

इति ग्रीहयकृदाधिकारः ।

यकृत् रोगमें ग्रीहाके लिये जो क्रिया कही हैं वह सब  
करै और दाहिनी बाँहकी नख खुलवाकर रुधिर निकलवा  
देवै । अथवा वायविडग तथा पीपलकी भस्म करकै जठ-  
रागिके बलानुसार प्रातःकाल करंजके रसके साथ पिये तो  
इससे ग्रीहा तथा यकृत् रोग शांत होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

इति ग्रीहायकृदाधिकारः सम्पूर्णः ।

### अथ हृद्रोगाधिकारः ।

#### अथ हृदयरोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तश्रमाभिघाता-  
ध्यशनप्रसङ्गैः ॥ संचिन्तनैर्वैगविधारणैश्च  
हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

प्रसङ्गः सततं सेवा । संचिन्तनम् अति-  
चिन्ताराजभयादिकमिति यावत् । हृदामयः  
स पंचविधः । वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिकः  
सान्निपातिकः क्रिमिजश्चेति ॥

अत्यत उष्ण, भारी, खट्टे, कसैले और कडवे पदार्थ  
निरंतर सेवन करनेसे, परिश्रमसे, अभिघात ( चोट ) से  
भोजनके ऊपर भोजन करनेके अम्याससे, राजभय आदिके  
अत्यत चितवनसे और मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे वात  
पित्त कफ तथा त्रिदोष संबन्धी और कृमिज इस भाँति  
पाँच प्रकारका हृदयरोग होता है ॥ १ ॥

#### अथ हृदयरोगसंप्राप्तिलक्षणे ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयङ्गताः ॥

हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

विगुणाः दुष्टाः । बाधां दोषभेदेन नाना-  
विधां व्यथाम् । भङ्गवत्पीडामिति गणदासः ॥

दूषित हुए वातादि दोष हृदयमें रहकर रसको दूषित  
कर अनेक प्रकारकी पीडा उत्पन्न करै हैं, उसको हृदय  
रोग कहते हैं ॥ २ ॥

#### अथ वातजहृदयरोगलक्षणम् ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ॥

निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यते-  
ऽपि वा ॥ ३ ॥

मारुतजे हृद्रोग इति शेषः । आयम्यते  
व्यथया विस्तार्यत इव । तुद्यते सूचीभिरिव  
विद्ध्यते । निर्मथ्यते मन्थनेनेव । दीर्यते  
करपत्रेण द्विधा क्रियत इव । स्फोट्यते अस्त्रे-  
णैव । पाट्यते कुठारेण बहुधा क्रियत इव ॥

वायुसंबन्धी हृदयरोगमें सम्पूर्ण हृदयमें पीडा व्याप्त हो  
जाती है । सुई चुभोनेकीसी, मथनेकी सदृश, चीरनेकी समान,  
शस्त्रसे फाड़ने सरीखी और कुल्हाड़ीसे काटनेकी सदृश  
अनेक प्रकारकी पीडा होती है ॥ ३ ॥

#### अथ पित्तजहृदयरोगलक्षणम् ।

तृष्णोष्मदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदये  
क्लमः ॥ धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो  
मुखस्य च ॥ ४ ॥

उष्मा शीतगात्रस्येव शीतवाताभिलाष-  
हेतुः किञ्चिदन्तरौष्ण्यम् । दाहः पार्श्वस्थेन  
वह्निनेव दुःखहेतुर्गात्रस्य सन्तापः । चोषं चूष-  
णं नैव पीडा । हृदये क्लमः हृदयाकुलत्वं ग्ला-  
निवदित्यर्थः । धूमायनम् कण्ठाद्धूमनिर्गमः ।  
क्लेदः किञ्चिद्गुर्गन्धः शठित इव ॥

पित्तसन्ध्या हृदयरोगमें तृपा जिससे शीतल पवनकी  
दृष्ट्या होत ऐसी भीतर किञ्चित् गरमी रहती है, जैसे आग्नि  
शरीरके समीपमें ही रहती हो ऐसा शरीरको दुःखदायी  
सन्ताप होता है, चूषनेकी सदृश पीडा होती है, हृदयको  
व्याकुल करनेवाली ग्लानि होती है, कंठसे धुआँ निकलता-  
है, मूर्च्छा होती है, सडा हुआ पसीना आता है और मुख  
खुर जाता है ॥ ४ ॥

अथ कफयुक्तहृदयरोगलक्षणम् ।

गौरवं कफसंस्त्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमा-  
र्दवम् ॥ माधुर्यमपि चास्यस्य बलासाव-  
तते हृदि ॥ ५ ॥

बलासावतते हृदि कुपितकफव्याप्ते । गौ-  
रवं हृदयस्य । स्तम्भो जडता । मार्दवं जल-  
प्लुतमिव । माधुर्य मुखे ॥

कफसन्ध्या हृदयरोग हुआ होय तो कुपित कफसे व्याप्त  
हुए हृदयमें भागीयन रहता है, तथा कफका नाव, अरुचि,  
जडता, जठराग्नि मृदुता और मुखमें मीठापन रहता है ॥ ५ ॥

अथ त्रिदोषजहृदयरोगलक्षणम् ।

विद्यात्रिदोषमप्येवं सर्वलिङ्गं हृदामयम् ६ ॥

तीनों दोषोंके जोरसे जो हृदयरोग हुआ होय तो उप-  
रोक्त तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

अथ कृमिजहृदयरोगनिदान-  
संप्राप्ती ।

त्रिदोषहेतुहृदंगे यो दुरात्मा निषेवते ॥

तिलक्षोरगुडादींश्च ग्रन्थिस्तस्योपजायते ॥  
॥ ७ ॥ मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपग-  
च्छति ॥ संक्लेदात्कृमयश्चास्य पतन्त्युपह-  
तात्मनः ॥ ८ ॥

अत्र किमयो जायन्ते अस्मिन्निति किमिजनि  
रुक्तिः । मर्मैकदेशे हृदयैकदेशे संक्लेदं शठितत्वं  
रस उपगच्छति । संक्लेदाद्रसस्य शठितत्वा-  
दुपहतात्मनः तिलाद्यहिताहारेण ॥

तीनों दोषोंसे हुए हृदय रोगमें जो मूर्ख मनुष्य तिल  
दूध तथा गुडादिक पदार्थोंका सेवन करता है उसका रस  
हृदयके एक भागमें सज जाता है, उसके सजनेसे इस दूषित  
हृदयमें कृमि ( कीड़े ) उत्पन्न होजाते हैं । जिस हृद-  
यरोगमें कृमियें उत्पन्न होते हैं इस लिये इसको कृमिज  
कहते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ कृमिजहृदंगलक्षणम् ।

उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हल्लासक-  
स्तमः ॥ अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च  
कृमिजे भवेत् ॥ ९ ॥

उत्क्लेदः वमनमिव उपस्थितत्वम् । शो-  
षो यक्ष्मा ॥

जो कृमियोंसे हृदयरोग हुआ होय तो उत्क्लेद (मानों  
वमन होनेवाली है), मुखसे पानी गिरना, सुईसे छेदने  
सरीखी पीडा, शूल, हल्लास, अघेरेका आना, अरुचि,  
नेत्रोंका काला होना और क्षयरोग यह लक्षण होते हैं ॥ ९ ॥

अथ हृदयरोगोपद्रवाः ।

क्लोन्नः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुप-  
द्रवाः ॥ किमिजे तु किमीणां ये श्लेष्मिका-  
णां हि ते मताः ॥ १० ॥

क्लोन्नः पिपासास्थानस्य सादः शोषः ।  
शोषो मुखस्य । तेषां हृदंगाणाम् । किमि-

जे तु हृद्रोगे श्लैष्मिकाणां क्रिमीणां ये उपद्रवा  
हृत्तासास्यस्रवणविपाकादयः ते मताः ॥

तृषा लगनेके स्थानमे शोष, मुखका सूखना और  
भ्रम होता है, और हृदयरोगोंके जो उपद्रव हैं, परन्तु यदि  
कृमिज हृदयरोग होय तो कफसे हुए कृमियोंके हृत्तास  
और मुखलाव आदि उपद्रव भी होतेहैं ॥ १० ॥

अथ हृदयरोगचिकित्सा ।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति  
चूर्णं ककुभत्वचो ये ॥ हृद्रोगजीर्णज्वर-  
रक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ११ ॥  
हरीतकीवचारास्त्रापिप्पलीनागरोद्भवम् ॥  
शटीपुष्करमूलोत्थं चूर्णं हृद्रोगनाशनम् ॥  
॥ १२ ॥ पुटदग्धं हरिणशृंगं पिष्टं गव्येन  
सर्पिषा पिवतः ॥ हृत्पृष्ठशूलमचिरादुपैति  
शान्तिं सुकष्टमपि ॥ १३ ॥ तैलाज्य-  
गुडविपकं चूर्णं गोधूमपार्थोत्थम् ॥  
पिबति पयोभुक्स भवति गतसकलहृदा-  
मयः पुरुषः ॥ १४ ॥

पार्थः कौह इति लोके ॥

गोधूमककुभचूर्णं पक्कमजाक्षीरगव्यसर्पि-  
भ्याम् ॥ मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोग-  
मुद्धतं पुंसाम् ॥ १५ ॥

घीके साथ, दूधके साथ, अथवा गुडके पानीके साथ  
कोहकी छालका चूर्ण पिये तो इससे हृदयरोग, जीर्णज्वर,  
तथा रक्तपित्तका नाश होताहै और आयुकी वृद्धि होतीहै ।  
अथवा हरड, वच, रायसन, पीपल, सोंठ, कचूर और  
पोहकरमूल, इनका चूर्ण करके खाय तो हृदयरोगका नाश  
होताहै । अथवा हिरनके सींगको संपुटमे रख भस्म करके  
चूर्ण कर लेवै, पश्चात् गायके घीके साथ पिये तो इससे  
हृदयका, पीठका शूल महादुःखदायी होय तो भी तत्काल  
शांत होजाताहै । अथवा गेहूँ तथा कोहके चूर्णको बराबर-  
के दूधमे अथवा गायके घीमे पकावै, पश्चात् सहत तथा  
मिश्रीके साथ भक्षण करे तो इससे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त  
हुआ हृदयरोग भी शांत होजाताहै ॥ ११-१५ ॥

अथार्जुनघृतम् ।

पार्थस्य कल्केन रसेन सिद्धं शस्तं घृतं  
सर्वहृदामयेषु ॥ १६ ॥

कोहकी छालके कल्कसे तथा स्वरसे पकायाहुआ घी  
सम्पूर्ण हृदयरोगोंमे हितकारी होता है ॥ १६ ॥

अथ बलाद्यघृतम् ।

घृतं बलानागवलार्जुनानां काथेन कल्केन  
च यष्टिकायाः ॥ सिद्धन्तु हन्याद्दृदयामयं  
हि सवातरक्तक्षतरक्तपित्तम् ॥ १७ ॥

इति हृद्रोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

खिरैटी, गुलसकरी तथा कोह, इनके काथसे और  
मुलेठीके कल्कसे पकायाहुआ घी हृदयरोग, वातरक्त, क्षत  
और रक्तपित्तको नष्ट करैहै ॥ १७ ॥

इति हृदयरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः ।

तत्र मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनृत्यद्रुत-  
पृष्ठयानात् ॥ आनूपमत्स्याध्यशनादजी-  
र्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ ॥ १ ॥

तीक्ष्णौषधं राजिकासूरणादिकयुक्तम् ।  
रूक्षेति मद्यविशेषणम् । प्रसंगः सन्ततं  
सेवा । नृत्यं नर्तनम् । नित्येति द्वितीयः  
पाठः । द्रुतपृष्ठयानात् अश्वादिना गमनात् ।  
आनूपं प्रचुरजलदेशसम्भवम् । अष्टौ वाति-  
कपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकशल्यजपुरीषज  
शुक्रजाश्मरीजानि ॥

अत्यन्त व्यायाम ( कसरत ) करनेसे राई आदि तीक्ष्ण  
पदार्थोंकी औषधिका तथा रूक्ष मद्यका अत्यन्त सेवन कर-  
नेसे, बहुत नाचनेसे, घोडा आदिकी सवारीपै चढकर बहुत  
दौडानेसे, अधिक जलवाले देशकी मछलियोंको खानेसे,  
भोजनपर भोजन और अजीर्णसे, मनुष्योंके आठ प्रकारका  
मूत्रकृच्छ्र होताहै । वातसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे,  
शल्यसे, विषसे, वीर्यसे और पथरीमे हुआ, इस प्रकार  
मूत्रकृच्छ्रके आठ भेद जानने ॥ १ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रसम्प्राप्ति-  
सामान्यलक्षणे ।

प्रथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वे-  
ष्य वा कोपमुपेत्य वस्तौ ॥ मूत्रस्य मार्गं  
परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह  
कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

अपने अपने कारणोंसे कुपित हुआ एक एक दोष  
अथवा इसी प्रकार कुपित हुए सम्पूर्ण दोष मूत्राशयमें  
कुपित होकर जब मूत्रके मार्गको पीडित करते हैं तब  
मनुष्य बहुत कष्टसे मूत्र करसका है ॥ २ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

तीव्रा च रुग्णवक्षणावस्तिमेद्वे स्वल्पं मुहुर्मू-  
त्रयतीह वातात् ॥ ३ ॥

ताव्रा मारणात्मिका । वक्षणाः ऊरुमेढ्रा-  
गामन्यन्तरालसन्धिः ॥

जो वायुसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वक्षण तथा मूत्रा-  
शयमें और लिंगमें अत्यन्त तीव्र पीडा होती है और वार-  
वार जन्म २ मूत्र आता है ॥ ३ ॥

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मू-  
त्रयतीह पित्तात् ॥ ४ ॥

कृच्छ्रमिति क्रियाविशेषणम् ॥

जो पित्तसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वारवार, पीला  
रक्तियुक्त, वेदनासहित और दाहयुक्त थोडा २ मूत्र  
उतरता है ॥ ४ ॥

अथ कफजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

वस्तेः सलिंगस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपि-  
च्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५ ॥

सपिच्छं पिच्छिलम् ।

जो कफसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो मूत्राशय और  
लिंगमें भारीपन तथा क्षान होती है और चिकनासा मूत्र  
उतरता है ॥ ५ ॥

अथ सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति  
न कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम् ॥ ६ ॥

जो तीनों दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो उपरोक्त  
तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, यह मूत्रकृच्छ्र बहुत दुःख-  
दायी है ॥ ६ ॥

अथ शल्यजनितमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ॥  
मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम् ॥  
वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिंगानि  
निर्दिशेत् ॥ ७ ॥

मूत्रवाहिषु स्रोतःसु शल्येन कण्टकेन  
क्षतेषु सक्षतीकृतेषु । अथ वा । अभिहतेषु  
मुष्ट्यादिभिः अभिहतेषु तदाघातान्मूत्रमा-  
र्गाघातात्तत्कृच्छ्रं जायते । भृशदारुणं मार-  
कम् । तस्य शल्यजस्य ॥

मूत्रका बहन करनेवाले स्रोत ( मार्ग ) काटे आदि  
शल्यसे क्षतयुक्त होजायें, अथवा मुष्टी आदिकी चोट लगी  
तो मूत्रके मार्गका आघात होनेसे मृत्युकी सदृश महादा-  
रुण मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है और वह शल्यज मूत्रकृच्छ्र  
कहलाता है, इस मूत्रकृच्छ्रके लक्षण वायुसे हुए मूत्रकृ-  
च्छ्रकी सदृश ही होते हैं ॥ ७ ॥

अथ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥  
आध्मानं वातशूलञ्च मूत्रसंगं करोति  
च ॥ ८ ॥

विष्टाका प्रतिघात ( अवरोध ) होनेसे दूषित हुआ  
वायु षट्गुण अफारेको उत्पन्न करे है और मूत्रका अवरोध  
होता है ॥ ८ ॥

अथ वीर्यजन्यमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते ॥ स-  
शुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्रादस्तिमेहनशूलवान् ॥ ९ ॥  
उपहते दूषित ॥

वीर्यके दोषोंसे दूषित होकर मूत्रका मार्ग संकुचित  
होता है तब अन्य २ मूत्र उतरता है मूत्रके साथ वीर्यनिक-  
लता है और मूत्राशय तथा लिंगमें शूल होता है ॥ ९ ॥

अथाश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

अश्मरीहेतुकश्चापि मूत्रकृच्छ्रमुदाहृतम् १०

सुश्रुते शर्कराजमपि मूत्रकृच्छ्रमुक्तमत्र  
तु तस्य नवमसंख्यानियमार्थमश्मरीशर्क-  
रयोः साम्यमाह-

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे ॥  
विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्तयतो  
मम ॥ ११ ॥

सम्भवः कारणम् ॥

पच्यमानाश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च  
वायुना ॥ विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती  
शर्करा मता ॥ १२ ॥

पित्तेन पच्यमाना मूत्रशुक्रश्लेष्मसंहतिः  
प्रथमं पित्तेन इन्धनकर्मणा पच्यमाना पश्चा-  
द्वातेन शोषिता कफेनाश्लिष्टा अश्मरी सैव  
विमुक्तकफसन्धाना त्यक्तकफाश्लेषा सती  
शर्करारूपा मूत्रमार्गाक्षरन्ती शर्करा मता  
एतावता किञ्चिदेव भेदः ॥

पथरी होनेसे मूत्र जो कष्टसे होताहै वह अश्मरीज  
मूत्रकृच्छ्र कहाताहै । जो कि सुश्रुतमे 'शर्कराज' ( कंक-  
रीसे हुआ ) नामक नवमा मूत्रकृच्छ्रभी कहा है तो भी  
इस प्रकरणमें मूत्रकृच्छ्रकी आठ संख्याका नियम रखनेके  
कारण और पथरी तथा कंकरी यह समानही होनेके कारण  
शर्कराज मूत्रकृच्छ्रको पृथक् नहीं गिना । कहा है कि  
“पथरी और कंकरी इनके निदान तथा लक्षण तुल्यही  
है तो भी पथरीसे कंकरीमें जो भेद हैं उनको कहतेहैं  
सुनो, पित्त-कि जो पकानेका काम करताहै उससे पककर  
पश्चात् वायुसे सूखकर और कफके संयोगको प्राप्त हुई  
पथरी नामक वस्तु-कि जो मूत्र वीर्य और कफका समुदा-  
यरूप है वह पथरी जब कफके संयोगसे छूटकर मूत्रके  
मार्गमेंसे कंकरीरूप झरने लगतीहै तब वह कंकरी कहा-  
तीहै” इस प्रकार पथरी और कंकरीमें केवल इतनाही  
भेद है ॥ १०-१२ ॥

अथ शर्करोपद्रवाः ।

हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावभिश्च दुर्बलः ॥  
तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रश्च दारु-  
णम् ॥ १३ ॥

हृदयमे पीडा, कम्प, शूल, पेटमें अग्निकी मन्दता,  
मूर्च्छा और दारुण मूत्रकृच्छ्र ये शर्करासे हुए मूत्रकृच्छ्रमें  
उपद्रव होतेहैं ॥ १३ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तर-  
वस्तिसेकान् ॥ स्थिरादिभिर्वातहरैश्च  
सिद्धान्दद्यादसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १४ ॥  
अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धात्रिक-  
ण्टकैः ॥ प्रपिबेद्वातरोगार्तः शूलवान्मूत्र-  
कृच्छ्रवान् ॥ १५ ॥

वायुसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वैद्य रोगीको अभ्यंग  
( तैलादिकी मालिश ) स्नेहन, निरूहवस्ति तथा उत्तर-  
वस्ति देवै, अगोंमे योग्य औषधिये बंधवावै घी आदिसे  
सिकवावे, तथा वातनाशक, शालिपर्णी आदि पदार्थोंसे  
पकाये हुए रस पिलावै । अथवा गिलोय, सोंठ, आंवला,  
असगन्ध और गोखुरू, इनका काथ करके पिलावै तो  
इससे वायुसम्बन्धी रोग, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता-  
है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ पुनर्नवाद्यमिश्रकम् ।

पुनर्नवैरण्डशतावरोभिः पत्तूरवृश्चीववला-  
श्मभिर्द्विः ॥ द्विपञ्चमूलेन कुलत्थकेन  
यवैश्च तोयोत्कथिते कषाये ॥ १६ ॥ तैलं  
वराहर्क्षवसावृतश्च तैरेव कल्कैर्लवणैश्च  
सिद्धम् ॥ तन्मात्रयाऽत्र प्रतिहन्ति पीतं  
शूलान्वितं मारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ १७ ॥

पुनर्नवा, एरण्ड, शतावर, पत्तूर, सफेद फूलवाली  
सांठ, खिरेटी, पाखानभेद, बृहत्पञ्चमूल, लघुपञ्चमूल,  
कुलथी और जौ, इनका काथ करके उस काथमे इनहीं  
पदार्थोंका कल्क डालकर तथा सैद्यानोन डालकर पकाया  
हुआ तेल, सुअरकी चरबी, रीछकी चरबी और घी  
इनको योग्यमात्रानुसार पियै तो इससे शूलसाहित वायुस-  
बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा त्रैण्मो  
विधिर्वस्तिपयोविकाराः ॥ द्राक्षाविदा-



रीक्षुरसैर्वृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु  
कार्याः ॥ १८ ॥

मूत्रकृच्छ्र पित्तसे हुआ होय तो वैद्य रोगीके अगोपर  
जल आदि शीतल पदार्थोंका सेचन करावे, रोगीको  
ऐसेही शीतल पदार्थों युक्त कोठीमें अवगाहन करावे,  
शीतल लेप करे, ग्रीष्म ऋतुके योग्य उपचार करे और  
दाहका रस, विदारीकदका, रस, ईखका रस तथा घी,  
दनवी पिचकारी लगावे, तथा इनही पदार्थोंको डालकर  
दूधके विज्ञान सिलाने ॥ १८ ॥

अथ तृणपञ्चमूलम् ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भ-  
वम् ॥ पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिवि-  
शोधनम् ॥ १९ ॥

कुश, काँस, रामसर, ठाम, और ईख, इन पौधोंकी  
जड़ें। तृणपञ्चमूल कहनेहैं, इन पञ्चमूलका उपयोग करनेसे  
पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै और वस्त्यागय शुद्ध  
होताहै ॥ १९ ॥

अथ शतावर्यादिकाथः ।

शतावरीकाशकुशश्चदंष्ट्राविदारिशालीक्षुक-  
सेरुकाणाम् ॥ काथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां  
युक्तं पिवेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ २० ॥

शतावर, काँस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, शालि  
भाव, ईख और कथेन. इनका काथ करके सहित और  
मि मि उल्लेख जल होजाय तब पिये तो पित्तसम्बन्धी  
मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ २० ॥

अथैर्वारुजादिपानम् ।

एर्वारुजीं मधुकश्च दार्वी पित्ते पिवेत्तण्डु-  
लधावेन ॥ दार्वी तथैवामलकीरसेन  
समाश्लिष्य पित्तकृतं तु कृच्छ्रे ॥ २१ ॥

रोगीके शीतमुण्डी और दाहलदी इन सबको चाव-  
नीके लकड़ोंके पोटकर चावनीके जालेही पिये तो इससे  
पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै। जयना दाहलदीको  
आमलेके रसमें पीसकर सहित डालकर पिये तो इससे  
पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ २१ ॥

अत्र हरीतक्यादिकाथः ।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्वन्वयवा-  
सकानाम् ॥ काथं पिवेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं  
कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विवन्धे ॥ २२ ॥

हरड, गोखरू, अमलतासका गूदा, पाखानभेद, घनि-  
या और धमासा, इनका काथ करके सहित डालकर पिये  
तो इससे दाहयुक्त तथा वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र और मलब्रंघ  
नष्ट होताहै ॥ २२ ॥

अथ शतावरीवृतम् ।

शतावरीकाशकुशश्चदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वाम-  
लकेषु सिद्धम् ॥ सर्पिः पयो वा सितया  
विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ २३ ॥

शतावर, काँस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, ईखका  
रस और आमले, इनको दूध अथवा घीमें पकाकर मिश्री  
डाले, पश्चात् इसको पिये तो इससे पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र  
नष्ट होजाताहै ॥ २३ ॥

अथ त्रिकण्टकाद्यवृतम् ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेषु स्वर-  
सेषु सिद्धम् ॥ सर्पिर्गुडाद्धाशयुतं प्रयोज्यं  
कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातदोषे ॥ २४ ॥ अथ  
विशेषेण पुनर्विधेयः सर्वाश्मरीणां प्रवरः  
प्रयोगः ॥ २५ ॥

गोखरू, एरण्ड, कुशा आदिकी जड़, शतावर, कक-  
डीके बीज और ईखका स्वरस, इनको घीमें पकावे, फिर  
इसमें आधाभाग गुड डालकर खाय तो इससे मूत्रकृच्छ्र,  
पथरी और मूत्रावात ये नष्ट होतेहैं। यह उत्तम प्रयोग,  
सब प्रकारकी पथरियोंमें विशेष करके देवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ कफजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

क्षारोष्णतीव्रापथमन्नपानं स्वेदो यवात्र  
वमनं निरुहः ॥ तक्रश्च तिक्तोपणसिद्ध-  
तैलान्यभ्यंगपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २६ ॥  
मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा ॥  
कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मं पिष्टा द्रुति  
पिवेत् ॥ २७ ॥ तत्रेण युक्तं शितिवार-

कस्य बीजं पिबेन्मूत्रविघातहेतोः ॥  
 पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं  
 कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २८ ॥ त्रिकटु त्रिफला  
 मुस्तं गुग्गुलुश्च समाक्षिकम् ॥ गोक्षुर-  
 काथसंयुक्तं गुटिकां भक्षयेद्बुधः ॥ २९ ॥  
 प्रमेहं मूत्रकृच्छ्रश्च मूत्राघातं तथैव च ॥  
 अश्मरीं प्रदरश्चैव नाशयेदविक-  
 ल्पतः ॥ ३० ॥

खार, उष्ण तथा तीव्र औषधि और अन्नपान, स्वेदन, जौका भोजन, वमन, निरुहणवस्ति, तक्र और कडवे पदार्थोंसे तथा काली मिरचोंसे पकाये हुए तेलका अभ्यग अथवा पीनेसे कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥

अथवा गोमूत्रसे, मदिरासे तथा केलेके स्वरससे छोटी इलायचीको वारीक पीसकर पिये तो कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । अथवा शितिवार ( शिरिआरी ) के बीजोंको तक्रमे पीसकर पिये तो कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । अथवा मूँगेकी भस्मको चावलोके धोवनसे पिये तो कफ-संबंधी मूत्रकृच्छ्र दूर होता है । अथवा सोठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मोथा, गूगल और सहत, इनकी गोली बनाकर गोखरूके काथके साथ खाय तो इससे प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और पथरी इनको नष्ट करेहै, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २६-३० ॥

### अथ त्रिदोषजमूत्रकृच्छ्र- चिकित्सा ।

सर्वत्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या  
 प्रसमीक्ष्य कार्यम् ॥ त्रिभ्योऽधिके  
 प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु  
 वस्तिः ॥ ३१ ॥ बृहती धावनी पाठा  
 यष्टीमधुकलिंगका ॥ पाचनीयो बृहत्यादिः  
 कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ ३२ ॥ गुडेन  
 मिश्रितं क्षीरं कटूष्णं कामतः पिबेत् ॥  
 मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोग-  
 नुत् ॥ ३३ ॥

तीनो दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो रोगीके बलको विचारकर तीनों दोषोंकी चिकित्सा करै । कफ अधिक होय तो प्रथम वमन करावै, पित्त अधिक होय तो प्रथम

विरेचन देवै और वायु अधिक होय तो प्रथम पिचकारी लगावै । अथवा बड़ी कटेरी, पिठवन, पाढ, मुलहठी और इन्द्रजौ इनका काथ तीनों दोष संबधी मूत्रकृच्छ्रको दूर करताहै अथवा दूधमे गुडको मिलाकर उसको किंचित् उष्णकर इच्छानुसार पिलावै तो इससे सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र शर्करा और वायुसंबंधी रोग नष्ट होते-हैं ॥ ३१-३३ ॥

### अथाभिघातजन्यमूत्रकृच्छ्र- चिकित्सा ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रिया  
 मता ॥ ३४ ॥ मद्यं पिबेद्वा ससितं  
 ससर्पिः शृतं पयो वाऽर्द्धसिताप्रयुक्तम् ॥  
 धात्रीरसश्चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते  
 मधुना विमिश्रम् ॥ ३५ ॥

चोटके लगनेसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वायुसे हुए मूत्रकृच्छ्रके लिये जो क्रिया कही हैं वो करै, रुधिर सहित मूत्र उतरता होय तो घी, मिश्री तथा सहत, इनसे मिलाकर मद्य पिये अथवा औटाया हुआ दूध सहतके साथ तथा आधाभाग बूरा डालकर पिये । वा आमलोंका रस तथा ईखका रस, इनको मिलाकर उसमें सहत डालकर पिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

### अथ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यंगवस्तयः स्युः पुरीषजे ॥  
 काथो गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतः सदा ॥  
 मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जन्म पीतं शीघ्रं निय-  
 च्छति ॥ ३६ ॥

मूत्रकृच्छ्र विष्टाके रोकनेसे हुआ होय तो स्वेदन, दस्तावर चूर्णोंका सेवन, तैलादिक अभ्यग और वस्तिकर्म करै । अथवा गोखरूके बीजोंका काथ करके उसमें जवा-खार डालकर नित्य पिये तो विष्टासे हुआ मूत्रकृच्छ्र तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ३६ ॥

### अथ वीर्यजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

लेहः शुक्रविबन्धोत्थे सशिलाजतु माक्षि-  
 कम् ॥ एलाहिगुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं  
 पिबेन्नरः ॥ ३७ ॥ मूत्रदोषप्रशुद्ध्यर्थं  
 शुक्रदोषहरश्च तत् ॥ वृष्यबृंहितधातोश्च  
 विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ ३८ ॥

मिलाजीत, तथा सहत, इनको मिलाकर चाँट तो उससे वीर्यजनित मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है अथवा दूधमें इलायची, हीरा तथा घो, इनको मिलाकर पिये तो मूत्रके दोष स्वच्छ होजाते हैं और वीर्यके दोष नष्ट होजाते हैं । अथवा जिसको वीर्यके दोषसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो उसको वृष्य पदार्थ खिलकर वीर्यको बढ़ावे, पश्चात् उस पुरुषको उत्तम स्त्रियोंसे रमण करावे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथाश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

सप्तच्छदारग्वधकेकुकेला निम्बः करञ्जः  
कुटजो गुडूची ॥ साध्या जले तेन पचे-  
द्यवागूं सिद्धं कषायं मधुसंयुतं वा ॥ ३९ ॥  
एवार्खीजकल्कश्च श्लक्ष्णपिष्टोऽक्षसंमितः ॥  
धान्याम्ललवणैः पेयो मूत्रकृच्छ्रविना-  
शनः ॥ ४० ॥ त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाश-  
दुरालभापर्वतभेदपथ्याः ॥ निघ्नन्ति  
पीता मधुनाश्मरीन्तु संप्राप्तमृत्योरपि  
मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४१ ॥

ननोना, अमलनास, सुसारी, इलायची, नीम, करंज, कुटेकी छाल और गिलोय, इनका काथ करके उसमें सहत डालकर पिये, अथवा इस काथमें यवागू बनाकर गाय तो पथरीने हुआ मूत्रकृच्छ्र नष्ट होजाता है । अथवा करुटीके बीजोंका कल्क करके मूत्र पीसलेवे, इसको एक तोला केसर काजी तथा मैथुनके साथ गाय तो मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । वा गोपन्, अमलतास, डाम, काँस, गंगाग, पागानभेद, और हरट, इनको पीस सहतके साथ पिये तो इससे मृत्युकी मध्य मूत्रकृच्छ्रभी नष्ट होजाता है ॥ ३९-४१ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रसामान्यचिकित्सा ।

निदिग्धिकायाः स्वरसं कुडवं मधुसम्पि-  
तम् ॥ मूत्रदोषहरं पीत्वा नरः सम्पद्यते  
सुखी ॥ ४२ ॥ कषायोऽतिबलामूलसा-  
धितोऽशेषकृच्छ्रजित् ॥ पीतञ्च त्रपुसी-  
वीजं सतिलान्यपयोन्वितम् ॥ ४३ ॥

त्रिफलायाः मुपिष्टायाः कल्कं कोलसम-  
न्वितम् ॥ वारिणा लवणीकृत्य पिबेन्मू-  
त्ररुजापहम् ॥ ४४ ॥ यवोरूकतृणप-  
ञ्चमूलीपाषाणभेदैः सशतावरीभिः ॥  
कृच्छ्रेषु गुग्गुल्वभयाविमिश्रैः कृतः कषा-  
यो गुडसंप्रयुक्तः ॥ ४५ ॥ मूलानि कुश-  
कापेक्षुशराणां चक्षुबालिका ॥ मूत्रघाता-  
श्मरीकृच्छ्रे पञ्चमूली तृणात्मिका ॥ ४६ ॥  
गुडमामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं प्रियम् ॥  
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥  
॥ ४७ ॥ सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्र-  
प्रसाधनः ॥ द्राक्षासितोपलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं  
मस्तुना युतम् ॥ ४८ ॥ विदारी सारिवा-  
छागशृंगी वत्सादनी निशा ॥ कृच्छ्र-  
पित्तानिलाद्घ्नन्ति वह्निजं पञ्चमूलकम् ॥  
॥ ४९ ॥ एलाश्मभेदकाशिलाजतुपिप्पली-  
नामेवार्खीजलवणोत्तमकुंकुमानाम् ॥  
चूर्णानि तण्डुलजले लुलितानि पीत्वा  
प्रत्यग्रमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ ५० ॥  
अयोरजः सूक्ष्मपिष्टं मधुना सह योजि-  
तम् ॥ मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिल्लैर्हर्न  
संशयः ॥ ५१ ॥

कुटेरीका मोलहतोले स्वरस सहत डालकर पिये तो मूत्रदोष दूरहोकर मनुष्यको सुखकी प्राप्ति होती है । आति-  
बल्य ( कधी ) की जड़का काथ करके पिये तो इससे  
सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं । अथवा ग्वीराके  
बीज और तिल, इनको घीमें तथा दूधमें पीसकर पिये  
तो मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । हरट, बहेडा और आमला,  
इनका पल्क करके इसमें बेरकी मींग और मैधानां  
डालकर पानीसे पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होजाता है  
जा, एरट, तृणपञ्चमूल, पाषाणभेद, शतावर, गुग्गु  
और हरट इनका काथ करके गुड डालकर पिये तो  
इससे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । अथवा कुशा, काँस, ईर, र  
गन्धमर और नरसंय इनकी जड़का पीसकर पिये तो मूत्रा-

चात और पथरसिवधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । गुड और आमलोका सेवन—वृष्य, श्रमनाशक, तृप्तिदायक, प्रिय और पित्त, रुधिरविकार, दाह तथा शूल नाशक है । मिश्री मिलकर जवाखार खाय तो सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं । अथवा दाख और मिश्री इनका कल्क करके दहीके पानीके साथ पियै तो मूत्रकृच्छ्र दूर होता है । विदारी कद, सारिवा, मेंढासिगी, गिलोय, हलदी, वायविडग र्ण, तृणपंचमूल, इनको पीसकर पियै तो तत्काल मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । अथवा इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, पीपल, ककडीके बीज, सैधानिमक और केसर, इनका चूर्ण करके चावलोके पानीमें मिलाकर पियै तो मृत्युको प्राप्त होनेवाला भी मूत्रकृच्छ्ररोगी रोगरहित होकर जीवित रहता है । वा लोहेकी भस्मको वारिक पीस सहतमें मिलाकर तीन दिनतक चाटै तो इससे शीघ्र मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है, इसमें किंचित् भी सदेह नहीं है ॥ ४२-५१ ॥

अथ सुकुमारकुमारकपुनर्नवावलेहः ।

पुनर्नवामूलतुलां दर्भमूलं शतावरीम् ॥  
बला तुरङ्गगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्ट-  
कम् ॥ ५२ ॥ विदारिकन्दनागाह्वगुड-  
च्यतिबलास्तथा ॥ पृथग्दशपलान्भागा-  
नपां द्रोणे विपाचयेत् ॥ ५३ ॥ तेन  
धादावशेषेण घृतस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥  
मधुकं शृङ्गवेरश्च द्राक्षां सैन्धवपिप्प-  
लीम् ॥ ५४ ॥ द्विपलांशान्पृथग्दत्त्वा-  
न्यवान्याः कुडवं तथा ॥ त्रिंशद्गुडपला-  
न्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ५५ ॥ एत-  
दीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् ॥  
राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये  
॥ ५६ ॥ मूत्रकृच्छ्रे कटिस्रस्ते तथा  
गाढपुरीषिणाम् ॥ भेट्वंक्षणशूले च  
योनिशूले च शस्यते ॥ ५७ ॥ यथो-  
क्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितनिश्चये ॥  
बल्यं रसायनं श्रीदं सुकुमारकुमारकम् ॥  
पुनर्नवाशते द्रोणे प्रदेयः सोऽपि  
चापरः ॥ ५८ ॥

मूत्राघातादिविधानमपि कार्यम् ॥

इति सुकुमारकुमारकावलेहः ।

चारसौ तोले पुनर्नवाकी जड़ और दामकी जड़, सता-  
वर, खिरेटीकी जड़, असगध, तृणपंचमूल, गोखरू, विदा-  
रीकद, नागकेसर, गिलोय तथा ये प्रत्येक चालीस चालीस  
तोले लेकर एक हजार चौबीस ( १०२४ ) तोले जलमें  
काथ करे, जब चौथा भाग शेष रहे तब उस काथमें  
एकसौ अठाईस ( १२८ ) तोले घी पकावे, इस घीमें—  
मुलैठी, अदरख, मुनक्का, सैधानिमक और पीपल, इन  
प्रत्येक पदार्थके चूर्णको आठ आठ तोले डाले और एकसौ  
बीस ( १२० ) तोले अंडीका तेल डाले तब 'सुकुमार-  
कुमारकपुनर्नवा अवलेह' सिद्ध होता है, इस अवलेहको  
सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, कमरकी गिथिलता, विष्टाकी  
अत्यंत दृढता, लिंगका शूल, वक्षणशूल, योनिका शूल,  
सर्व प्रकारके गुल्म और वातरक्त, इनका नाश होता है ।  
यह अवलेह—राजाओंको, राजाके सदृश पुरुषोंको और  
अधिक स्त्रीवाले पुरुषको सेवन करावे । यह लेह—बलव-  
र्द्धक, लक्ष्मीदायक और बालकोंको सुकुमार ( शोभायमान )  
करनेवाला है ॥ ५२-५८ ॥

और भी मूत्राघातमें जो चिकित्सा कही है सो करे ॥

इति मूत्रकृच्छ्राधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मूत्राघाताद्यधिकारः ।

तत्र मूत्राघातकारणम् ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश ॥  
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिका-  
दयः ॥ १ ॥

विशेष करके मूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे कुपित हुए  
दोष वातकुण्डलिका आदि तेरह प्रकारके मूत्राघातोंको  
उत्पन्न करें हैं ॥ १ ॥

अथ वातकुण्डलिकालक्षणम् ।

रौक्ष्याद्देगविघाताद्वा वायुर्वस्तौ सवे-  
दनः । मूत्रमाविश्य चरति विगुणः  
कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा  
सरुजं सम्प्रवर्तते ॥ वातकुण्डलिकां तां  
तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३ ॥

रौक्ष्यात्कायस्य । वेगविधातान्मूत्रादि-  
वेगनिराधात्, आविश्य आवृत्य मूत्रमिति,  
रौक्ष्यादिभिर्वेगविधातादिभिश्च विगुणः दुष्टः  
कुण्डलीकृतः वातावर्तो वस्तावेव भ्रमन्  
तिष्ठति । कुण्डलीभूतो वायुः वस्तौ मूत्रा-  
शये चरति प्रधावति । आवद्धत्वाद् भ्रमन्  
तिष्ठति ॥

शरीरके रुक्ष होनेसे अथवा मूत्रआदिके वेगोंको रोक-  
नेसे दूषित हुई वायु कुण्डलीकार ( गोलाकार ) हो मूत्रमें  
मिलकर पीटाको उत्पन्न करतीहै तब मूत्रमें मिली हुई  
होनेसे मूत्राशयमेंही विचरती रहतीहै इससे अल्प अल्प  
और पीटायुक्त मूत्र उतरता है, यह तीव्र और महादारुण  
रोग वातकुण्डलिका कहाताहै ॥ २ ॥ ३ ॥

### अथाष्ठीलालक्षणम् ।

आध्मापयन्वस्तिगुदं रुद्धा वायुश्चलान्न-  
ताम् ॥ कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मा-  
र्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥

वातः वस्तिगुदं रुद्धा अर्थात्तदन्तर्गतं  
मूत्रं मलञ्च निरुध्य वस्ति गुदञ्च आध्मा-  
पयन् आध्मानं कुर्वन् अष्ठीलाम् अष्ठी-  
लातुल्यां ग्रंथिं कुर्यात् । चलान्नतां चला-  
मुन्नताञ्च ॥

वायु, मूत्र तथा मलको रोककर मूत्राशय तथा गुदामें  
अन्तरा करके चंचल, ऊँची, तीव्रपीटावाली और मूत्रके  
तथा विशाके मार्गको रोकनेवाली पिटीकी सदृश गाठको  
उत्पन्न करेहै, इसको अष्ठीला कहतेहै ॥ ४ ॥

### अथ वातलक्षणम् ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ॥  
निरुणद्धि मुखं तस्य वस्तेर्वस्तिगतानिलः  
॥ ५ ॥ मूत्रसङ्गां भवेत्तेन वस्तिकुक्षिनिपी-  
डितः ॥ वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः  
कृच्छ्रप्रमाधनः ॥ ६ ॥

अकुशलो मूर्खः । पुरुषस्य वस्तेर्मुखं  
निरुणद्धि वस्तिगतो वायुः । तेन वायुना

मूत्रसंगः विधातो भवति, वस्तिकुक्षिनिपी-  
डित इति, वस्तौ कुक्षौ निपीडितः संपीडितो  
वायुरिति सम्बन्धः । मूत्रसङ्गः मूत्रावरोधः ॥

जो मूर्ख मनुष्य मूत्रके वेगको रोकताहै उसके मूत्रा-  
शयमें रहनेवाली वायु वस्ति ( मूत्राशय ) के मुखको  
बंदकरदेतीहै, तब मूत्र रुकजाताहै और वस्त्याशय तन्म  
कोखमें पीडा होतीहै इसको वातवस्ति कहतेहै । य  
वातवस्तिरोग कष्टसाध्य जानना ॥ ५ ॥ ६ ॥

### अथ मूत्रातीतलक्षणम् ।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते ॥  
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स  
उच्यते ॥ ७ ॥

मेहमानस्य मूत्रमुत्सृजतः मन्दं वा अल्पं वा ।

मूत्रको अधिक समय रोकनेसे फिर मूत्र तत्काल नही  
उतरे अथवा थोडा थोडा उतरे उसको मूत्रातीत रोग  
कहतेहै ॥ ७ ॥

### अथ मूत्रजठरलक्षणम् ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तददुदावर्तहेतुकः ॥  
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥  
॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्ती-  
व्रवेदनाम् ॥ तन्मूत्रजठरं विद्यादधोव-  
स्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥

तदुदावर्तहेतुक इति मूत्रवेगधारणग-  
णितोदावर्तनिदानम् । आध्मानं कुर्यात्  
अधोवस्तिनिरोधनम् वस्तेरधोदेशे विव-  
न्धकारकम् ।

मूत्रका वेग रुकनेसे कुपित हुआ अपानवायु पेटके  
अत्यंत भरदेताहै तब इस प्रकारका उदावर्त हुआ नाभिसे  
नीचे तीव्रवेदनायुक्त अपाना करताहै कि जिससे अधोवस्ति  
( मूत्राशयके नीचेका भाग ) रुकजाताहै, इस रोगको  
मूत्रजठर कहतेहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

### अथ मूत्रात्संगलक्षणम् ।

वस्तौ वाप्यथवा नाले मणौ वा यस्य



देहिनः ॥ मूत्रं प्रवृत्तं सज्येत सरक्तं वा  
प्रवाहतः ॥ १० ॥ स्रवेच्छनैरल्पमल्पं  
सरुजं वापि नीरुजम् ॥ विगुणानिलजो  
व्याधिः स मूत्रोत्संगसंज्ञितः ॥ ११ ॥

नाले मेढ्रे । मणौ मेहनग्रन्थौ । सज्येत  
निरुद्धं स्यात् । सरक्तं प्रवाहतः कण्ठहृद्-  
लेन सशब्दं मूत्रपुरीषवातानामधः प्रेरणम्  
प्रवाहणं तेन कुपितेन वायुना वस्त्यादिभे-  
दान् सरक्तं मूत्रं स्रवेदित्यर्थः ॥

जिस पुरुषका प्रवर्ता हुआ मूत्र मूत्राशयमें लिगसे  
अथवा लिगके अग्रभागमें रुका रहै और हृदयके श्वासा-  
दि बलसे करै तब वायु वस्तिको भेदन करके पीडा युक्त  
अथवा विना पीडाके रुधिरयुक्त थोडा थोडा मूत्र धीरे  
धीरे स्रवे ऐसे दूषित वायुसे उत्पन्न हुआ मूत्रोत्सर्ग नामक  
रोग कहाताहै ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ मूत्रक्षयलक्षणम् ।

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमा-  
रुतौ ॥ मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदा-  
ह्वयम् ॥ १२ ॥

क्लान्तदेहस्य म्लानदेहस्य । तदाह्वयं  
मूत्रक्षयसंज्ञम् ॥

जिसका शरीर रूक्ष और ग्लानियुक्त हो ऐसे मनुष्यके  
मूत्राशयमें रहनेवाले पित्त और वायु मूत्रका क्षय करके  
पीडा तथा दाहको उत्पन्न करते हैं यह रोग मूत्रक्षय  
कहाताहै ॥ १२ ॥

अथ मूत्रग्रन्थिलक्षणम् ।

अन्तर्वस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा  
भवेत् ॥ अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः  
स उच्यते ॥ १३ ॥

अन्तर्वस्तिमुखे वस्त्यभ्यन्तरे । अल्पः  
क्षुद्रामलकप्रमाणः । ननु अस्य अश्मर्या  
सह को भेदः । उच्यते-अश्मरी क्रमशः  
सञ्चयेन स्यात् अयन्तु सहसा भवेत् इति  
भेदः । अपरो भेदः अश्मर्या पित्ताधिक्यम्  
मन्यते अत्र तु रक्तमेव । यत उक्तं  
तन्त्रान्तरे-

“रक्तं वातकफादृष्टं वस्तिद्वारे सुदारुण-  
म् । ग्रन्थि कुर्यात्स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं  
तदावृतम् ॥”

मूत्राशयके भीतर सहसा गोल आकारवाली स्थिर  
छोटे आमलेकी सदृश बड़ी और पथरीकी समान  
पीडायुक्त गांठ उत्पन्न होती है उसको मूत्रग्रन्थि कहते  
हैं ॥ १३ ॥

शका-इस मूत्रग्रन्थिमें और पथरीमें क्या अन्तर है ?

समाधान-पथरी क्रम क्रमसे मूत्र आदिका संचय  
होकर होती है और यह गांठ तो सहसा होजाती है  
इतनाही अन्तर है । दूसरा भेद यह भी है कि पथरीमें  
पित्त अधिक होताहै और इस मूत्रग्रन्थिमें तो रुधिरही  
अधिक होताहै । अन्य ग्रन्थोमें कहा है कि “वायुसे तथा  
कफसे दूषित हुआ रुधिर मूत्राशयमें अत्यंत दारुण गांठको  
उत्पन्न करे है कि-जिससे बहुत पीडायुक्त मूत्र उतरता है  
वह मूत्र रुधिरसहित होताहै” ।

अथ मूत्रशुक्रलक्षणम् ।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्ध-  
तम् ॥ स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चा-  
द्वा प्रवर्तते ॥ भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं  
तदुच्यते ॥ १४ ॥

मूत्रितस्य मूत्रवेगयुक्तस्य शुक्रं स्थाना-  
च्च्युतं पश्चाद्वायुना उद्धृतम् ऊर्ध्वं नीतं  
भस्मोदकप्रतीकाशं भस्मसहितजलसदृशम्,  
मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥

जो पुरुष मूत्रका वेग होनेपर विना मूत्रे स्त्रीका संग  
करै उसका स्थानसे अष्ट हुआ और पश्चात् वायुसे ऊप-  
रको चढा वीर्य मूत्रनेसे प्रथम अथवा पीछे राखमिले  
हुए पानीकी सदृश निकलताहै, इस रोगको मूत्रशुक्र  
कहते हैं ॥ १४ ॥

अथोष्णपातलक्षणम् ।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्यानि-  
लावृतम् ॥ वस्तिं मेढं गुदञ्चैव प्रदहन्सा-  
वयेदधः ॥ १५ ॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं  
रक्तमेव वा ॥ कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्ण-  
वातं वदन्ति तम् ॥ १६ ॥

सरक्तम् ईषल्लोहितम् ॥

व्यायाम ( परिश्रम ) करनेसे, अत्यत मार्ग चलनेसे, तथा घूममें फिरनेसे पित्त मूत्राशयसे प्राप्त हो वायुसे लिपट कर मूत्राशय, लिग, योनि और गुदा, इनमें दाह करके मनुष्यको अधिक कष्टसे बारंवार हलदीकी समान वर्णवाला किंचित् लाल अथवा रुधिर युक्त मूत्र उतरताहै इसको उष्णवात कहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

### अथ मूत्रसादलक्षणम् ।

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चैत् ॥ कृच्छ्रान्मूत्रं तथा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सवेत् ॥ १७ ॥ सदाहं रोचनाशं ख-  
चूर्णवर्णं भवेच्च तत् ॥ शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८ ॥

संहन्येते घनीक्रियेते शुष्कम् अल्पम् ।  
समस्तवर्णम् उक्तसकलवर्णयुक्तम् ॥

पित्त कफ अथवा दोनों पवनसे गाढे हुए होंयें तो बारंवार पीला, लाल, अथवा सफेद वा शखकी भस्मकी सदृश, वा इन सब रंगोंवाला, गाढा दाहयुक्त और थोडा थोडा मूत्र नवताहै उसको मूत्रसाद कहते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

### अथ विडविधातलक्षणम् ।

रूक्षदुर्बलयोर्वीतेनोदावर्तशकृद्यदा ॥ मूत्र-  
स्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः ॥  
विट्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विधातं विनि-  
र्दिशेत् ॥ १९ ॥

उदावर्तम् ऊर्ध्वनीतं विट्गन्धं वा शब्दोऽत्र  
योजनीयः ॥

रूक्ष १९ मनुष्यकी अथवा दुर्बल मूत्र मनुष्यकी वायुसे ऊपरकी चटी की विट्गन्ध मूत्रके स्रोत ( मार्ग ) को प्राप्त होनी है तब यह मनुष्य विटयुक्त वा विटकी गन्धयुक्त वा १९ नर कहलाए इसको विडुवात कहते हैं ॥ १९ ॥

### अथ वस्तिकुण्डललक्षणम् ।

दुताध्वलं वनायामैरभिवातात्प्रपीडनात् ॥  
स्वन्यानाद्वस्तिरुद्धतः स्थूलस्तिष्ठति गर्भ-

वत् ॥ २० ॥ मूलस्पन्दनदाहातो विन्दुं  
विन्दुं स्रवत्यपि ॥ पीडितस्तु सृजेद्वारां  
संस्तम्भोद्रेष्टनार्तिमान् ॥ २१ ॥ वस्ति-  
कुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् ॥  
पवनप्रवलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥  
॥ २२ ॥ तस्मिन् पित्तान्विते दाहः  
शूलं मूत्रविवर्णता ॥ श्लेष्मणा गौरवं  
शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २३ ॥

दुताध्वलं घनं शीघ्रं मार्गचलनम् । उ-  
द्धतः उत्थितः । स्पन्दनं किञ्चित् चलनम् ।  
घोरं मारकम् । शस्त्रविषोपमं शस्तं  
खड्गादि तद्वच्छीघ्रमारकम्, विषमत्र गर-  
लस्तद्वद्विलम्ब्य मारकम् । एतावता मार-  
कमवश्यं शीघ्रं विलम्बेन वा ॥

वेगपूर्वक अत्यत चलनेसे, अत्यत परिश्रम करनेसे, अभिवात ( चोट ) से अथवा दवानेसे वस्ति अपने स्थान-  
से उठकर गर्भकी सदृश मोटी तथा शूलयुक्त होजाती है किञ्चित् कौपती रहती है दाहसे पीडा करती है, मूत्र बूँद २ नवताहै और दवानेसे मूत्रकी बारभी निकलती है, परन्तु धार निकलनेसे जडतायुक्त होजाती है और पीडा होती-  
है इसको वस्तिकुण्डल कहते हैं । यह रोग भयकर है, खड्ग आदि शस्त्रकी सदृश तत्काल मृत्यु करनेवाला है, विषकी सदृश विलम्बसे भी मार डालता है, वायुकी प्रबलतायुक्त है और अधिक करके मूर्ख लोगोंसे निवारण भी नहीं होसक्ता । यही रोग पित्तसे युक्त हो तो दाह, शूल, तथा मूत्रकी विवर्णता होती है । और यदि कफसे युक्त होय तो भारीपन तथा शोथ ( सूजन ) होताहै और मूत्र स्निग्ध, गाढा तथा सफेद होताहै, यह रोग थोडे समयमें वा अधिक समयमें मार डालताहै ॥ २०-२३ ॥

### अथ वस्तिकुण्डलासाध्यलक्षणम् ।

श्लेष्मरूक्षविलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न  
सिद्ध्यति ॥ अविघ्नान्तविलः साध्यो न  
च यः कुण्डलीकृतः ॥ स्याद्वस्तौ कुण्ड-  
लीभूते तृणमोहः श्वास एव च ॥ २४ ॥

विलं वस्तिमुखरन्ध्रम् । पित्तोदीर्णः पि-  
त्तेन उद्धृतः । अविभ्रान्तविलः कफेन अना-  
वृतविलः पश्चात्कुण्डलीकृतः स साध्यः ।  
एतेन कुण्डलीभृतोऽसाध्यः । कुण्डलीभूतस्य  
लक्षणमाह-तृडित्यादि । कुण्डलीभूतस्य  
अयमर्थः, कफेन बिलावरोधात्तत्र वातः कुण्ड-  
लाकारेण तिष्ठति इत्यर्थः ॥

जो मूत्राशय पित्तसे ऊँचा होगया हो और मूत्राशयका  
मुख कफसे रुक गया हो वह वस्तिकुण्डल असाध्य होता-  
है । जिस मूत्राशयका मुख कफसे न ढका हो और कुण्ड-  
लाकार न हुआहो वह वस्तिकुण्डल साध्य जानना । जिस  
मूत्राशयमे वायु कुण्डलाकार होगया होय तो तृषा, मोह,  
तथा श्वास होताहै अर्थात् यह लक्षण कुण्डलीभूत हुएके  
जानने ॥ २४ ॥

### अथ मूत्राघातचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् ॥  
दद्यादुत्तरवस्तीश्च मूत्राघाते सवेदने ॥  
॥ २५ ॥ नलकुशकाशेक्षुबलाकाथं प्रातः  
सुशीतलं ससितम् ॥ पिवतो नश्यति  
नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कविः ॥ २६ ॥  
गोजानाम्नो मूलं पलमेकं कथितशेषितं  
पीतम् ॥ क्षिप्त्वा मधु च सिताञ्च प्रणुदति  
मूत्रस्य संरोधम् ॥ २७ ॥ गोधापद्या मूलं  
कथितं वृततैलगोरसोन्मिश्रम् ॥ पीतं  
निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संघातम् ॥  
॥ २८ ॥ पिवेच्छिलाजतुक्काथे युक्तं वीर-  
तरादिजे ॥ काथं सपत्नमूलस्य गोक्षुरस्य  
फलस्य च ॥ २९ ॥ पिवेन्मधुसितायुक्तं  
मूत्रकृच्छ्ररुजापहम् ॥ घनसारस्य चूर्णेन  
दस्तस्याथाविकाम्बुना ॥ गुण्डयित्वा  
ध्वजे क्षिप्त्वा मूत्ररोधं जहाति तम् ॥  
॥ ३० ॥ सदाभद्राश्मभिन्मूलं शतावर्याः  
सचित्रकम् ॥ रोहिणीकोकिलाक्षौ च

वचाशैलत्रिकण्टकम् ॥ ३१ ॥ श्लक्ष्ण-  
पिष्टः सुरापीतो मूत्राघातप्रबाधनः ॥  
पिवेद्दहिंशिखामूलं दुग्धमुक्तण्डुलाम्भसा  
॥ ३२ ॥ वस्तिमुत्तरवस्तिं वा सर्वेषामेव  
दापयेत् ॥ निदिग्धिकायाः स्वरसं पिवेद्वा  
तत्परिस्त्रुतम् ॥ ३३ ॥ जले कुंकुमकल्कं  
वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ सतैलं पाटला-  
भस्मक्षारं बद्धा परिस्त्रुतम् ॥ ३४ ॥  
त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो  
वा तृणपंचमूले ॥ गुडप्रगाढं सघृतं पयो  
वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ३५ ॥  
सितक्षारान्वितं मूलं वायसीतैलकूर्चयोः ॥  
कोशकाररसैः पीतं वस्तिकुण्डलजिद्ध-  
वेत् ॥ ३६ ॥ शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं  
तंडुलांबुना ॥ पिवेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते  
सशोणिते ॥ ३७ ॥

पीडायुक्त मूत्राघात होय तो स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया  
करके पश्चात् स्नेहयुक्त पदार्थोंसे विरेचन देवै तथा  
उत्तरवस्ति भी देवै, यह हितकारी है । अथवा नरसल,  
कुशा, कास, ईख और खिरैटी, इनका काथ बनावे  
शीतल होनेपर मिश्री डालकर पिये तो इससे मूत्राघात  
अवश्य नष्ट होता है ऐसा शुक्राचार्यने कहा है । वा  
चार तोले गोजियाकी जड़ लेकर इसका काथ करै इसमें  
सहत तथा मिश्री डालकर पिये तो मूत्रका अवरोध नष्ट  
होजाताहै । अथवा गोधापदी ( काली मुसली ) की  
जड़का काथ करके इसमें घी, तेल तथा दहीका पानी  
डालकर पिये तो इससे अधिक समयका रुका हुआ  
मूत्रभी उतरताहै । अथवा वीरतरादिगण ( पथरीकी  
चिकित्साके प्रकरणमें कहेंगे ) का काथ करकै उसमें  
शिलाजीत डालकर अथवा धमासेका काथ डालकर वा  
अडूसेका काथ डालकर पिये तो इससे मूत्राघात नष्ट  
होताहै । पत्ते जड़ तथा फलसहित गोखरू लेकर  
उसका काथ करकै उसमे सहत तथा मिश्री डालकर  
पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्रकी पीडा नष्ट होतीहै । कपूरका  
चूर्णकर बकरी और भेडके मूत्रमें पीस कपडेकी वस्ती-

पर छेदकर लिये डाले तो इससे मूत्रका रोग नष्ट होता है । अथवा कभारी, पाखानभेद तथा शतावरकी जड़, चीता, कुटकी, तालमखाने, वच, छारछवीला और गोखरू इनको गरीक पीस मदिराके साथ पिये तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है । मोरशिखाकी जड़ पीसकर चावलके घोंघनसे पिये और दूधका भोजन करे तो मूत्राघात दूर होता है । अथवा सब मूत्राघातोंमें वस्ति और उत्तरवस्ति देवे । वा कटेरीकी जड़का स्वरस निकालकर पिये तो मूत्राघात दूर हो । केशरका कल्क करके उसमें सहत डालकर रात्रिमें रखा रहने देवे, फिर प्रातःकाल पिये तो मूत्राघात दूर होता है । अथवा पाढलकी मसम और जवाखार जलमें घोलकर तेल डालके पिये तो मूत्राघात नष्ट होता है । गोखरू, अण्डकी जड़ और शतावर इनका काय करके पिये तो मूत्राघात नष्ट होता है । तृणपचमूलका काय करके पिये तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है गुहसे मिश्रित किया हुआ घी दूधमें डालकर पीये तो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगोंपर हितकारी होता है, मालकागनी और चौयेकी जड़ इनको पीस इसमें मिश्री तथा जवाखार डालकर गाढ़े ईखके रसके साथ पीये तो मूत्राघात नष्ट होता है । चन्दनको घिस उसमें मिश्री मिलाकर चावलके जलके साथ पीये और औटया हुआ शीतल दूधके साथ अन्न खाये तो इससे रुधिरसहित उष्णवातका नाश होता है ॥ २५-३७ ॥

अथ शिलोद्विदादितैलम् ।

शिलोद्विदैरण्डशमस्थिरादिपुनर्नवाभीरु-  
रसेषु सिद्धम् ॥ तैलं शृतं क्षीरमथानुपानं  
कालेषु कृच्छ्रादिषु सम्प्रयोज्यम् ॥ ३८ ॥

पाखानभेद, एरण्डकी जड़, शालपर्णी, पुनर्नवा और शतावर, इनके रससे तेल पकावे और दूधके अनुपानसे भोजन करे इससे मूत्रकृच्छ्रादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

अथ धान्यगोक्षुरकवृतम् ।

धान्यगोक्षुरककायकल्कयुक्तं घृतं हित-  
म् ॥ मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे शुक्रदोषे च  
दारुणे ॥ ३९ ॥

धान्य तथा गोक्षुर, इनके कायसे तथा कल्कसे घृत बना हुआ पी गया तो मूत्राघात, मूत्रदोष और वीर्यके दोषोंमें हितकारी होता है ॥ ३९ ॥

अथ भद्रावहघृतम् ।

अम्बुष्ठा पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च ॥  
विदारीकन्दः काशश्च कुशमोरदगोक्षुराः ॥  
॥ ४० ॥ पाषाणभेदो वाराही शालिमूलं  
शरस्तथा ॥ भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषा-  
मथाहरेत् ॥ ४१ ॥ समभागानि सर्वाणि  
काथयित्वा विचक्षणः ॥ पादशेषकषायेण  
घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४२ ॥ कल्कं  
दत्त्वाऽथ मतिमान्गिरिजं मधुकं तथा ॥  
नीलोत्पलञ्च काकोलीं बीजं त्रापुसमेव  
च ॥ ४३ ॥ कूष्माण्डञ्च तथैर्वाहसम्भ-  
वञ्च समं भवेत् ॥ उष्णवातं निहन्त्येतद्  
घृतं भद्रावहं स्मृतम् ॥ ४४ ॥

पाठा, पाढल, साठ, विसखपरा, विदारीकन्द, कास, कुशा, ईखकी जड़, गोखरू, पाखानभेद, वाराहीकन्द, शालिधान्यकी जड़, रामसर, मिलावा और सिरसकी जड़, इनको समान भाग लेकर काय करे जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें शिलाजीत, मुलेठी, नील कमल, काकोली, खीरेके बीज, पेठेके बीज और ककडीके बीज समान भाग ले कल्क डालकर चौसठ तोले घी पकावे, यह भद्रावह नामक घी उष्णवात ( मूत्रकृच्छ्र ) को नष्ट करता है ॥ ४०-४४ ॥

अथ विदारीघृतम् ।

विदारी वृषको यूथी मातुलुंगी च भूस्तृ-  
णम् ॥ पाषाणभेदः कस्तूरी वसुको व-  
शिरोऽनलः ॥ ४५ ॥ पुनर्नवा वचा रास्ना  
बला चातिबला तथा ॥ कशेरुविषशृंगा-  
दतामलक्यः स्थिरादयः ॥ ४६ ॥ शरे-  
क्षुदर्भमूलञ्च कुशः काशस्तथैव च ॥ पलद्वा-  
यन्तु संहृत्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४७ ॥  
पादशेषे रसे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचये-  
त् ॥ शतावर्यास्तथा धान्याः स्वरसो घृत-  
सम्मितः ॥ ४८ ॥ पट्पलं शर्करायाश्च

कार्षिकाण्यपराणि च ॥ यष्ट्याहं पिप्पली  
द्राक्षा काश्मर्यं सपरूषकम् ॥ ४९ ॥  
एला दुरालभा कौन्ती कुंकुमं नागके-  
सरम् ॥ जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च  
द्विगुणं पयः ॥ ५० ॥ एतत्सर्पिर्विपक्त-  
व्यं शनैर्मृद्वग्निना बुधैः ॥ मूत्राघातेषु  
सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च ॥ ५१ ॥  
शर्कराऽश्मरिशूलेषु शोणितप्रभवेषु च ॥  
हृद्रोगे पित्तगुल्मे च वातासृक्पित्तजेषु  
च ॥ ५२ ॥ कासश्वासक्षतोरस्कधनुःस्त्री-  
भारकर्षिते ॥ तृष्णाच्छर्दिमनःकम्पशो-  
णितच्छर्दने तथा ॥ ५३ ॥ रक्ते यक्ष्मण्य-  
पस्मारे तथोन्मादे शिरोग्रहे ॥ योनिदोषे  
रजोदोषे शुक्रदोषे स्वरामये ॥ ५४ ॥  
एतस्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥  
पुत्रदं बलवर्णार्घ्यं विशेषाद्वातनाशनम् ॥  
॥ ५५ ॥ पानभोजननस्येषु न क्वचित्प्र-  
तिहन्यते ॥ विदारीघृतमित्युक्तं रसाय-  
नमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥

विदारीकंद, अड्डसा, जुही, विजोरा, भूतण, पाखा-  
नभेद, कस्तूरी, सौभरनोन, दरियाई नोन, चीता,  
पुनर्नवा, वच, रासना, खिरैटी, गगेरन, कसेरु, भसीडा,  
सिवाडे, मुँई आमला, स्थिरादि गण, रामसर, ईख,  
डाम, कुशा और काँस, ये प्रत्येक पदार्थ आठ आठ  
तोले लेकर १६ सोलह सेर जलभे पकावै, जब चौथा  
भाग जल शेष रहै तब उसमें एक सेर घी, शतावर  
तथा आमलोंका ६४ तोले स्वरस, चौबीस तोले बूरा  
और मुलहठी, पीपल, दाख, कंभारी, फालसे, इलायची,  
धमासा, रेणुक, केसर, नागकेसर और जीवनीयगणकी  
आठो औषधि ये प्रत्येक एक एक तोला और दो सेर  
दूध ये सब डालकर मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावै  
तो यह विदारी घृत सिद्ध होताहै । यह घृत सब  
प्रकारके मूत्राघात, विशेषकरकै पित्तसे हुए मूत्राघात,  
शर्करा, पथरी, शूल, रुधिरविकारसे हुए शूल, हृदय-  
रोग, पित्तसे हुआ गुल्म, पित्तज वातरक्त, खँसी,  
श्वस, क्षत, धनुष चढ़ानेसे कर्षित हुए तथा स्त्रीप्रसंग

करनेसे कर्षित हुए, तृषा, वमन, मनकी पीडा, कंप,  
रुधिरकी वमन, क्षयरोग, अपस्मार, उन्माद, शिरोग्रह,  
योनिदोष, रजके दोष, वीर्यके दोष और स्वरभंग आदि  
स्वरके रोग, इन सब रोगोंमें हितकारी है । यह घी स्मृ-  
तिको बढ़ानेवाला, वृष्य, उत्तम वाजीकरण, पुत्रदायक,  
बलवर्णकर्ता, और विशेषकरकै वातविनाशक है और  
पीनेमें, खानेमें तथा नस्यमे सर्वत्र उपयोगी है और उत्तम  
रसायन है ॥ ४५-५६ ॥

पिष्टाखमूलमुष्णेन चारनालेन पेय्यते ॥  
बद्धमूत्रं निहन्त्याशु तथैव करभीभवम्  
॥ ५७ ॥ स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं  
यस्य रिच्यते ॥ मैथुनोपरमश्वास्य बृंहणीयो  
विधिर्हितः ॥ ५८ ॥ ताम्रचूडवसातैलं  
हितं चोत्तरवस्तिषु ॥ स्वगुप्ताफलमृद्धीका-  
कृष्णेशुरसितारजः ॥ ५९ ॥ समांशमर्द्ध-  
भागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ॥ सर्वं सम्य-  
ग्विमथ्याक्षमात्रं लीढा पयः पिबेत् ॥ ६० ॥  
हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्र-  
दम् ॥

मूसाकानीकी जडको अथवा सफेद अरनीकी जडको  
पीसकर उष्ण आरनाल ( काँजी ) से पिये तो मूत्रका  
अवरोध तत्काल दूर होताहै । अथवा जिसके अत्यंत  
मैथुन करनेसे मूत्रमें रुधिर आवै उसको मैथुनसे रोककर  
घातुको बढ़ानेवाले उपाय करै पश्चात् सुरगेकी चरबी और  
तेलसे उत्तरवस्ति देवै यह अत्यंत हितकारी है । अथवा  
कौँछके बीज, दाख, काली ईखका रस और काली मिट्टी  
इनको समान भाग लेवै और दूध, सहत तथा घी इनका  
आधा भाग लेवै, सबको मिलाकर एक तोलाभर खाय  
और ऊपरसे दूधको पिये तो इससे वीर्यके क्षयसे उत्पन्न  
हुई पीडा नष्ट होतीहै और वध्या स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति  
होतीहै ॥ ५७-६० ॥

अथ क्षौद्रार्द्धभागघृतम् ।

क्षौद्रार्द्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात्क्षीर-  
सर्पिषोः ॥ ६१ ॥ शर्करायाश्च चूर्णं च  
द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् ॥ स्वयंगुप्ताफल-



अथैव तथैवैक्षुरकस्य च ॥ ६२ ॥ पिप्प-  
लीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् ॥  
तदैकध्वं समानीय खल्लेनातिविमथ्य च  
॥ ६३ ॥ तस्य पाणितलं चूर्णं लिहेत्क्षीरं  
ततः पिबेत् ॥ एतत्सर्पिः प्रयुज्जाना योनि-  
दोषात्प्रमुच्यते ॥ ६४ ॥

एक भाग दूध, एकभाग घी, आधाभाग सहत, एक  
भाग मिश्री, दाख, कौंछके बीज, तालमखाना और पीपल,  
ये एक एक भाग लें । इनको एकत्र करके रईसे भली-  
भाँति मयकर इसमेंसे एक तोला घी चाटें और उसके  
ऊपर दूध पियें । इस घीको सेवन करनेवाली स्त्री योनिके  
दोषमें मुक्त होती है ॥ ६३-६४ ॥

अथ वर्तिः ।

कर्पूररसजा युक्ता वस्त्रवर्तिः शनैःशनैः ॥  
भेदमार्गान्तरे न्यस्ता सूत्राघातं व्यपो-  
हति ॥ ६५ ॥

वस्त्रको कपूरके चूर्णसे भलीभाँति लपेटकर लिंगके  
मार्गमें रखें तो इससे सूत्राघात नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

अथातिदेशः ।

सूत्रकृच्छ्रेऽश्मरीरोगे भेषजं यत्प्रकीर्ति-  
तम् ॥ सूत्राघातेषु कृच्छ्रेषु तत्कुर्याद्देश-  
कालवित् ॥ ६६ ॥

इति सूत्राघाताधिकारः ।

सूत्रकृच्छ्रेण जो औषधि कही है तथा पथरीरोगमें जो  
औषधि कही है वे सब औषधि देशके तथा कालके अनु-  
सार सूत्राघात और सूत्रकृच्छ्ररोगमें दें ॥ ६६ ॥

इति सूत्राघाताधिकारः समाप्तः ।

अथाश्मयधिकारः ।

तथाश्मरीनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजा मता ॥  
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः सूर्य-  
मोपमाः ॥ १ ॥

श्लेष्माश्रयाः श्लेष्मसमवायिकारणाः  
शुक्रजां विना शुक्रजायास्तु शुक्रस्यैव  
समवायिकारणत्वात् अन्ये तु शुक्राश्मर्यामपि  
कफकारणत्वमिच्छन्ति । प्रायः शब्दश्च मात्र-  
विशेषार्थः । यमोपमाः चिकित्सां विना ॥

वात, पित्त और कफसे, ऐसे तीनप्रकारकी और  
चौथीपथरी वीर्यसे होती है । वीर्यसे हुई पथरीको  
छोड़कर शेष तीनों प्रकारकी पथरी अधिक करके कफाश्र-  
यसे होती है और वीर्यसे हुई पथरीमें वीर्यही कारण है ।  
कोई कोई वैद्य तो वीर्यसे हुई पथरीमेंभी कफको कारण  
मानते हैं । सर्वप्रकारकी पथरी विना चिकित्साके अवश्य  
यमरूप ( मृत्युकर्ता ) होजाती है ॥ १ ॥

अथाश्मरीसम्प्राप्तिः ।

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं  
पवनः कफं वा ॥ यदा तदाश्म-  
र्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना  
गोः ॥ २ ॥

यदा पवनो वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं स-  
पित्तं कफं वा शोषमुपनयेत्तदाश्मरी भ-  
वति क्रमेण क्रमशो वर्द्धमाना । यथा गो-  
पित्तेषु रोचना इव इति अन्वयः । तस्याः  
अनेकदोषाश्रयत्वमाह । नैकदोषाश्रयाः  
सर्वाः ॥

जब वायु मूत्राश्रयमें रहनेवाले वीर्यसहित मूत्रको  
अथवा पित्त सहित कफको सुखाती है तब पथरी उत्पन्न  
होती है, यह पथरी जिसप्रकार गायके पित्तमें गोरोचन  
वर्द्धना है उसीप्रकार अनुक्रमसे बढ़ती है । सब प्रकारकी  
पथरी अनेक दोषोंके समागमसे होती है ॥ २ ॥

अथाश्मरीपूर्वरूपम् ।

वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽति  
रुक् ॥ मूत्रे वस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्व-  
रोऽरुचिः ॥ ३ ॥

वस्तः छगलकः ॥

जब पथरी होनेकी होती है तब मूत्राश्रयमें अपारा,  
मूत्राश्रयके चारों ओर अत्यन्त पीडा, मूत्रमें बकरेके

मूत्रकी दुर्गन्ध, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि ये लक्षण होतेहैं ॥ ३ ॥

अथाश्मरीसामान्यलक्षणम् ।

सामान्यलिंगं रुद्धनाभिसेवनीवस्तिमूर्द्धसु ॥  
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने ॥  
॥ ४ ॥ तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमे-  
दकोपमम् ॥ तत्संक्षोभाक्षते सास्रमाया-  
साञ्चातिरुग्भवेत् ॥ ५ ॥

वस्तिमूर्द्धा नाभेरधोदेशः, विशीर्णधारं सविच्छेदधारम्, तया अश्मर्या । मार्गः मूत्रवाहिस्रोतः । तद्व्यपायात्कदाचिद्वायुना अश्मर्या मूत्रमार्गादन्यत्र गमनात्सुखं मेहे-  
न्मूत्रयेदोमेदकोपमं गोमेदको मणिः किञ्चि-  
ल्लोहितः तद्वर्णम् । तत्संक्षोभात्तस्याः अश्मर्याः सञ्चाराद्धर्षणेन मूत्रवह स्रोतसि क्षते जाते सास्रं सरक्तं मेहेत् । आयासात्प्रवाहनादि-  
जनितात् ॥

पथरी हुई होय तो नाभिमें, सोमनमें तथा नाभिसे नीचेके प्रदेशमें पीडा होतीहै, पथरीसे मूत्रके वहन करने-  
वाले स्रोतोका रोध होनेपर मूत्रकी धार बीचमेही कटजाती है, किसी समय वायुसे पथरी मूत्रके मार्गसे अन्यस्थानको चलीजातीहै तब गोमेद मणिके सदृश वर्णवाला स्वच्छ मूत्र सुखसे उतरताहै, पथरीके संचारसे मूत्रका मार्ग घिसकर मूत्र रुधिरयुक्त उतरताहै और अत्यंत पीडा होती-  
है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वातोल्वणाश्मरीलक्षणम् ।

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान्खादति  
वेपते ॥ मृद्राति मेहनं नाभि पीडयत्य-  
निशं कणन् ॥ ६ ॥ सानिलं मुञ्चति  
शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः ॥ श्यावा रूक्षा-  
श्मरी सा स्यात्सञ्चिता कण्टकैरिव ॥ ७ ॥

पथरीमे यदि वायुकी उल्बणता होय तो मनुष्य अत्यंत पीडायुक्त होताहै, तथा दाँतोको चबावै, कौपता है, लिग तथा नाभिको दबावै और निरंतर पीडासे चिह्णताहै और

अधोवायुके साथ विष्टा आतीहै, बारंवार वूदवूद मूतताहै । यह पथरी नीली, रूखी और मानों ऊपर कांटे लगे हैं ऐसी होती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ वातोल्वणाश्मरीचिकित्सा ।

तस्याः पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम  
इष्यते ॥ ८ ॥

पथरीके पूर्वरूप होनेपर स्नेहन आदि प्रयोग करने चाहिये ॥ ८ ॥

अथ शुभ्यादिकषायः ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिशुवरुणगोक्षुरैः ॥  
काश्मर्यारग्वधफलैः काथं कृत्वा विच-  
क्षणः ॥ रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबे-  
न्नरः ॥ ९ ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रं दीपनं  
पाचनं परम् ॥ हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं  
कट्यूरुगुदमेदूजम् ॥ १० ॥

सोंठ, अरनी, पाखानभेद, सहजना, वरना, गोखरू, कंभारी और अमलतास, इनका काथ करके उसमें हींग, जवाखार और सैधानिमक, इनका चूर्ण डालकर पिये तो इससे पथरी, मूत्रकृच्छ्र, कोठेकी वायु तथा कमर, बुँडने, गुदा और लिगकी वायु नष्ट होतीहै, अग्नि दीपन होतीहै, और अन्न आदि भलीभौति पचतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथैलादिकाथः ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रा-  
वृषकोरुबूकैः ॥ शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं  
सशर्करश्चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ ११ ॥

इलायची, पीपल, मुलेठी, पाखानभेद, रेणुक, गोखरू, अदुसा और अण्डकी जड़, इनके काथमे शिलाजीतको भलीभौति पकाकर काथ पिये तो पथरी और मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ ११ ॥

अथ वरुणादिकाथः ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीं गोक्षुरसंयु-  
ताम् ॥ यवक्षारगुडं दत्त्वा काथयित्वा  
पिबेद्धिमम् ॥ अश्मरीं वातजां हन्ति  
चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १२ ॥

बनकी छाल, सोंठ, गोखरू, जवाखार और गुड, इनका काय करके पिये तो वायुकी उत्त्वणतासे हुई पथरी अधिक कालकी होय तो भी नष्ट होजातीहै ॥ १२ ॥

अथ पापाणभेदाद्यवृतम् ।

पापाणभेदा वसुको वशीरोऽश्मन्तक-  
स्तथा ॥ शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती  
कण्टकारिका ॥ १३ ॥ कपोतवङ्कतगल-  
काश्वनोशीरगुन्द्रकाः ॥ वृक्षादनी भल्लु-  
कश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ १४ ॥  
यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि  
च ॥ ऊषकादिप्रतीवापमेषां काथे शृतं  
घृतम् ॥ भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरी  
क्षिप्रमेव तु ॥ १५ ॥

पापाणभेद, आककी जट, लालचिरचिटा, कोविदार, सतावर, गोखरू, भटकटैया, कटेरी, ब्राह्मी, नीलेफूलकी कटसरैया, कचनार, खस, गुन्द्रतृण, वदा, वरना, सागोनके फल, जौ, कुलथी, बेर और निर्मलीफल इनका काय करके उसमें ऊषकादिगणकी औषधि डालकर उस काथमें पकावाहुआ घी गाय तो वायुकी उत्त्वणतासे हुई पथरी उत्काट नष्ट होजातीहै ॥ १३-१५ ॥

अथ वीरतरादिगणः ।

क्षारान्यवागूं पेयां च कपायांश्च पयांसि  
च ॥ भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वात-  
नाशने ॥ १६ ॥ वीरवृक्षोऽस्मिन्मन्यश्च  
काशवृक्षादनीकुशाः ॥ मोरटेन्दीवरः सूर्य-  
भक्ता गोलुरुटण्डकाः ॥ १७ ॥ वसुको  
वशीरो दर्भशरीयावश्मभेदकः ॥ गुन्द्रो  
नलः कुरुण्डश्च गणा वीरतरादिकः ॥  
॥ १८ ॥ अश्मरीशर्कराकृच्छमारुतार्ति-  
हरो मतः ॥ बृहदात वीरतरस्तदभावे  
मतः शरः ॥ १९ ॥

इति वाताश्मरी ।

पेय, नरकी, पय, सदा, दुग्धा, मोरट ( ईनकी ), नीलेफूलकी, कटसरैया, गोखरू, वैद, आककी जट,

लाल चिरचिटा, डाम, कटसरैया, पाखानभेद, गुन्द्रतृण, नरसल और कुरुण्ड, यह वीरतरादिगण कहाताहै । ये सब औषधि-पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ और वायुके रोगको नष्ट करेहैं, इस लिये इन औषधियोंमें क्षार, यवागू, पेया, काथ, दूध और भोजन सिद्ध करके देवे तो इससे पथरी आदि वायुसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट हो-जातेहैं ॥ १६-१९ ॥

इति वाताश्मरीचिकित्सा ।

अथ पित्तोत्त्वणाश्मरीलक्षणम् ।

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्म-  
णा ॥ भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता  
सिताश्मरी ॥ २० ॥

पित्तकी उत्त्वणतासे पथरी हुई होय तो वस्तीमें दाह और अग्निसे पकानेकी सदृश पीडा होतीहै, और पथरी भिलावेकी गुठलीकी सदृश, लाल, पीली, तथा सफेद होतीहै ॥ २० ॥

अथ पित्ताश्मरीचिकित्सा ।

तत्र कुशादिघृतम् ।

कुशः काशः शरो गुन्द्र उत्कटो मोरटा-  
श्मभित् ॥ दर्भो विदारी वाराही शालि-  
मूलं त्रिकण्टकः ॥ २१ ॥ भल्लुकः पाटला  
पाठा पत्तूरोऽथ कुरुण्टकः ॥ पुनर्नवा  
शिरीषश्च कथितास्तेषु साधितम् ॥ २२ ॥  
घृतं शिलाह्वमधुकैर्वीजैरिन्दीवरस्य च ॥  
त्रपुसैर्वारुकादीनां बीजैश्चावापितं शुभम् ॥  
भिनत्ति पित्तसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव च २३  
बीजं बीजसारः सरोबीजं वा ॥

कुश, काश, रामसर, गुन्द्रतृण, उत्कट ( एक प्रका-  
रके तृण ) मोरट ( ईनकी जट ), पाखानभेद, डाम,  
विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शालिपर्णीकी जट, गोखरू,  
भिलावे, पाटल, पाठ, पत्तूर, कटसरैया, पुनर्नवा, और  
शिरिष इनके कायमें घी पकावे, उसमें शिलाजीत, मुलेठी,  
महुएके बीज खीरे और ककड़ीके बीज इनका चूर्ण  
डालकर राख तो इससे तत्काल पित्ताश्मरी नष्ट होती-  
है ॥ २१-२३ ॥

क्षारान्यवागूं पेयाश्च कषायांश्च पयांसि  
च ॥ २४ ॥ भोजनानि च कुर्वीत  
वर्गेऽस्मिन्पित्तनाशने ॥ शिलाजतु  
शिलाह्वं स्यात्पटीरो गुत्थगुन्द्रकौ ॥ २५ ॥  
मधुकः कृतहस्वत्वाद्बीजैर्बीजकमुच्यते ॥  
कुर्यात्क्षीरादिकं काथे तस्मिन्क्षेपमवा-  
पकैः ॥ वर्गत्वेन यथालाभं परिभाषा  
प्रवर्तते ॥ २६ ॥

इति पित्ताश्मरी ।

पित्तको नष्ट करनेवाला वीरतरादि वर्ग जो ऊपर कहा  
है उसमें क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध और भोजन  
सिद्ध करके पित्तकी उत्त्वणतासे हुई पथरीवालेको देवै ।  
वर्गके लिये वैद्यक ग्रंथोंकी यह परिभाषा है कि—वर्गमें  
की सब औषधि नहीं मिले तो उनमेंसे जितनी मिले उन-  
काही उपयोग करै ॥ २४—२६ ॥

अथ कफोत्वणाश्मरीलक्षणम् ।

वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो  
गुरुः ॥ अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुव-  
र्णाऽथवासिता ॥ २७ ॥ एता भवन्ति  
वालानां तेषामेव तु भूयसाम् ॥ आश्रयो-  
पचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः ॥ २८ ॥

कफकी उत्त्वणतासे पथरी हुई होय तो नोचने सरी-  
खी पीडा होतीहै और पथरी शीतलता युक्त, भारी,  
मोटी, सहतके समान वर्णवाली, अथवा सफेद होतीहै ।  
यह पथरी अधिक करके बालकोंकेही होतीहै, और  
बालकोंके वृद्धिका आश्रय अल्प होताहै इससे बालकोंकी  
पथरी निकालनेमें सुगम होतीहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ कफाश्मरीचिकित्सा ।

तत्र वरुणादिघृतम् ।

गणे वरुणकादौ तु गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः ॥  
कुष्ठभद्राह्वमरिचचित्रकैः समुराह्वयैः ॥ २९ ॥  
एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन वा ॥  
भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव  
च ॥ शक्यादिस्तेन चात्रेष्टो गणः श्यामा-  
दिको बुधैः ॥ ३० ॥

वरुणादि गण ( जो नीचे कहा है ), गुग्गुल, इलायची,  
रेणुका, कूट, नीम, काली मिर्च, चीता और देवदार  
इनको डालकर अथवा ऊषकादि गणकी औषधि डालकर  
इनमें पकाया हुआ बकरीका घी खाय तो कफकी उत्त्वण-  
तासे हुई पथरी तुरत नष्ट होजातीहै । शक्यादि गणके  
काथमें अथवा श्यामादि गणके काथमें घी पकाकर उसका  
उपयोग करनेसे भी कफकी उत्त्वणतासे हुई पथरी नष्ट  
होतीहै ऐसा पंडितोंने माना है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ वरुणादिगणः ।

वरुणार्तगलौ शिशुस्तर्कारी नक्तमालकौ ॥  
मोरदारणिविल्वाश्च बिम्बीवमुकचित्र-  
काः ॥ ३१ ॥ शैरीयो वशिरः क्षौद्र-  
मजशृङ्गी शतावरी ॥ दर्भो बृहतिका  
व्याघ्री मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ ३२ ॥  
वरुणादिगणो ह्येष कफमेदोनिवारणः ॥  
विनिहन्ति शिरःशूल गुल्माभ्यन्तरवि-  
द्रधीन् ॥ ३३ ॥

वरना, झिटी, सहजना, तर्कारी (जैती), करज, ईखकी  
जड़, अरनी, वेल, कुदरु, आककी जड़, चीता, शैरेय  
( कटसुरैया ), लाल चिरचिटा, सहत, भेंडासिंगी, शता-  
वर, डाम, भटकटैया और बड़ी भटकटैया, इन औषधि-  
योंको वरुणादिगण कहतेहैं, यह वरुणादि गण—कफ तथा  
भेदाको निवारण करे है और मस्तकशूल, गुल्म तथा  
भीतरके विद्रधिको नष्ट करैहै ॥ ३१—३३ ॥

क्षारान्यवागूं पेयां च कषायांश्च पयांसि  
च ॥ भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्क-  
फनाशने ॥ ३४ ॥

कफको नष्ट करनेवाले इस वर्गमें क्षार, यवागू, पेया,  
कषाय, दूध तथा भोजनको सिद्ध करके कफके रोगोंमें  
देवै ॥ ३४ ॥

अथ शुक्राश्मरीनिदानम् ।

शुक्राश्मरी तु महती जायते शुक्रधार-  
णात् ॥

अव्ययानामनेकार्थत्वात्तुशब्दोऽत्र अव-  
धारणार्थः तेन महतामेव न तु वालानां वक्ष्य-

माणसम्प्राप्तेरसम्भवान्नतु शुक्राभावो वाच्यः  
शुक्रधारणाच्छुक्रवेगागमस्य धारणात् ॥

वीर्यकी पथरी अधिक अवस्थावालोंके ही होती है, बालकोंके नहीं होती. पद्यपि बालकोंके भी वीर्य होता है तो भी शुक्राश्मरीकी जो संप्राप्ति कहेंगे वह बालकोंके होनी असम्भव है इसलिए बालकोंके वीर्यकी पथरी होती ही नहीं । स्थानसे अष्ट होकर प्रवर्त हुए वीर्यके टुकनेसे वीर्यकी पथरी होजाती है ।

अथ शुक्राश्मरीसंप्राप्तिः ।

स्थानाच्च्युतमुक्तं हि मुष्कयोरन्तरे-  
ऽनिलः ॥ शोषयित्वोपसंहृत्य शुक्रं तच्छु-  
क्रमश्मरी ॥ ३५ ॥

अनिलः मैथुनवेगेन स्थानाच्च्युतं शुक्रं  
मैथुनवेगनिवारणेन धृतं शुक्रं मुष्कयोः  
मेदूंसहितयोः मेदूवृषणयोरंतर इति सुश्रु-  
तवचनात्तेन मेदूवृषणमध्यगतवस्तिमुखे उ-  
पसंहृत्य एकीकृत्य शोषयति तच्छुक्राश्मरी  
तथाहृतं शुक्रमेवाश्मरी ॥

मैथुनका वेग होनेपर स्थानसे पतित हुए और पीछे  
मैथुनका वेग शांत होनेपर नहीं निकले हुए वीर्यको वायु  
लिगके तथा अटकोलोंके मध्यमें मूत्राशयके मुखपर एक-  
त्रारके गुहादेनांत तक वह वीर्य पथरीरूप होजाता-  
है ॥ ३५ ॥

अथ शुक्राश्मरीलक्षणम् ।

वस्तिरुक्कृच्छ्रमृत्रत्वमुष्कश्चयथुकारिणी ॥  
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥  
पीडितं त्वक्काशेऽस्मिन्नश्मर्येव च श-  
करा ॥ ३६ ॥

तस्यां शुक्राश्मर्याम् उत्पन्नमात्रायां यदा  
मा कथमपि विलीयते विलयं याति तदा  
शुक्रम एति मूत्रमार्गात् प्रवर्तते । पीडितं  
तु अवकाशेऽस्मिन् । तुगच्छेऽवधारणे तेन  
अस्मिन्नेव अवकाशे स्थाने मेदूवृषणयोर-  
न्तरं पीडिते सति सा विलीयते अन्तर्लीना

भवति । अवस्थाभेदात् अश्मरी शर्करा  
सिकता भवतीति आह—‘अश्मर्येव च  
शर्करा’ । चकारात् सिकता च भवति  
शर्करासिकतयोश्च भेदो महत्वाल्पत्वाभ्यां  
बोद्धव्यः ॥

वीर्यकी पथरी होते ही मूत्राशयमें पीडा, बूद बूद  
मूत्रका उतरना और अडकोपोंमें सूजन होती है । लिग  
और अडकोपोंका मध्यभाग दधानसे यह पथरी भीतर  
लीन होजाती है, इसप्रकार जब लीन होजाती है तब ही  
मूत्रके मार्गसे वीर्य प्रवर्तता है, जिस वीर्यकी पथरी होती-  
है वह अपनी स्थितिके भेदसे शर्करारूप तथा स्तेररूप  
होजाता है । वीर्यके कण मोटे होयें तो शर्करारूप और  
सूक्ष्म होयें तो स्तेरकी समान होता है ॥ ३६ ॥

अथ शुक्राश्मर्याः शर्करारूपत्वमाह ।

सा भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधी-  
यते ॥ ३७ ॥

सा अश्मरी ॥

इस वीर्यकी पथरी जब वायुसे विखर जाती है तब शर्करा  
कहानी है ॥ ३७ ॥

अथ शर्करानिःसरणावरोधकारणम् ।

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननु-  
लोमगे ॥ निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे  
विवध्यते ॥ मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सा सक्ता  
कुर्यादुपद्रवान् ॥ ३८ ॥

अश्मरी तस्मिन् आश्रये सा शर्करा  
सक्ता लम्बा सती ॥

वायुसे विखर २ कर टुकड़े टुकड़े रूपवह पथरी वायुके  
सीधे चलनेसे मूत्रके साथ निकलती है और वायु उल्टा  
चले तब चकती है । मूत्रके मार्गमें प्रवर्तकर अनेक उपद्रवोंको  
करती है ॥ ३८ ॥

अथाश्मर्युपद्रवाः ।

दौर्वलयं सदनं काष्ठ्यं कुक्षिरोगमथारु-  
चिम् ॥ पाण्डुत्वमुष्णवातश्च तृष्णां हृत्पी-  
डनं वमिम् ॥ ३९ ॥

उष्णवातं मूत्राघातविशेषणम् ॥



शर्करासे दुर्बलता, ग्लानि, शरीर कृश, कूखमें पीडा, अरुचि, पाण्डुता, उष्णवात ( मूत्राघात ), तृषा, हृदयमें पीडा और वमन होतीहै ॥ ३९ ॥

अथाश्मरीशर्करारिष्टम् ।

प्रसूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजातुरम् ॥  
अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकता-  
न्विता ॥ ४० ॥

शर्करा सिकतेति नामद्वयमन्वर्थम् ॥

जिसकी नाभि और अङ्कोष सूखजायँ, मूत्र रुक रहा हो और पीडासे व्याकुलता हो, तो वह मनुष्य तत्काल मरजाताहै । वीर्यकी पथरी ही शर्करारूप होजाय तो शर्करा और रेतल होजायतो सिकता कहातीहै ॥ ४० ॥

अथाश्मरीचिकित्सा ।

शुक्राश्मर्यान्तु सामान्यो विधिरश्मरि-  
नाशनः ॥ यवक्षारगुडोन्मिश्रं रसं पुष्प-  
फलोद्भवम् ॥ ४१ ॥ पिवेन्मूत्रविबन्धनं  
शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ तिलापामार्गक-  
दलीपलाशयवविल्वजः ॥ ४२ ॥ काथः  
पेयोऽविमूत्रेण शर्कराश्मरिनाशनः ॥  
केवुकांकोलकतकशाकेन्दीवरजैः फलैः ॥  
पीतमुष्णाम्बु सगुडं शर्करां पातयत्यधः ॥  
॥ ४३ ॥ पाषाणभिद्रोक्षुरकोरुबूकौ द्वौ  
कण्टकार्यौ क्षुरकाह्वमूलम् ॥ दध्ना  
पिवेत्क्षीरमुपिष्टमेतत्स्याद्भेदनार्थं सिकता-  
श्मरीणाम् ॥ ४४ ॥ यः पिवेद्रजनीं  
सम्यक् सगुडां तुषवारिणा ॥ तस्याशु  
चिरगूढापि यात्यस्तं मेढ्रशर्करा ॥ ४५ ॥  
पिबतः कटजं दध्ना पथ्यमन्नञ्च खादतः ॥  
निपतत्यचिरात्तस्य नियतं मेढ्रशर्करा ॥  
॥ ४६ ॥ त्रापुसबीजं पयसा पीतं वा  
नालिकेलजं कुसुमम् । विण्मूत्रशर्करायां  
भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ ४७ ॥  
श्वदंष्ट्रा वरुणः शुण्ठी काथं क्षौद्रयुतं  
पिबेत् ॥ शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रहरं  
परम् ॥ ४८ ॥ कूष्माण्डकरसो हिङ्गुय-

वक्षारसमायुतः ॥ वस्तौ मेढ्रे च शूलघ्नो  
मूत्रकृच्छ्रहरस्तथा ॥ ४९ ॥ पुनर्नवा-  
योरजनीश्वदंष्ट्राफलप्रवालश्च सदर्मपु-  
ष्पः ॥ क्षीराम्रमद्येक्षुरसप्रविष्टो हितो  
भवेदश्मरिशर्करासु ॥ ५० ॥ वरु-  
णत्वक्छिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः कृतः ॥  
कषायः क्षारसंयुक्तः शर्कराश्च भिन-  
त्यपि ॥ ५१ ॥

जो अन्य पथरियोंकी चिकित्सा कही है वह भी शुक्रा-  
श्मरीभे करै । अथवा नारियलके रसमें जवाखार तथा  
गुड मिलाकर पियै तो इससे मूत्रकी रुकावट, पथरी तथा  
शर्करा नष्ट होजातीहै । वा तिल, चिराचिटा, केला, ढाक,  
जौ और वेल, इनका काथ करकै बकरीके मूत्रके साथ  
पिये तो शर्करा तथा शुक्राश्मरीका नाश होताहै । सुपारी,  
अंकोल, निर्मलीके फल, सागोनके फल और कमलगट्टे  
इनका काथ करकै गुड डालकर पिये तो शर्करा नष्ट  
होतीहै । पाखानभेद, गोखुरु, एरडकी जड़, छोटी और  
बड़ी कटेरी तथा तालमखाने इनको दूधमें पीसकर दहीमें  
डालकर खाय इससे पथरी तथा शर्करा नष्ट होजातीहै ।  
अथवा हलदीको गुडके साथ भली भौंति मिलाकर  
तुपोदकके साथ पियै तो इससे अधिक कालकी पथरी भी  
नष्ट होजातीहै । कुडेकी छालके कल्कको दहीमें डालकर  
पियै और पथ्य अन्न खाय तो शर्करा अवश्य नष्ट होजाती  
है । खीरेके बीजोंको अथवा नारियलके फूलोंको पीसकर  
दूधमें डालकर पिये तो मूत्रसे पीडित तथा शर्करासहित  
मनुष्य किंचित् दिनोंमें सुखी होताहै । गोखरू, वरना  
और सोंठ इनका काथ करकै सहित डालकर पियै तो  
इससे पथरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र भली भौंति नष्ट  
होताहै । अथवा पेटके रसमें हींग, तथा जवाखार डाल  
कर पिये तो इससे मूत्राशयकी पीडा, लिगका शूल, पथरी  
तथा मूत्रकृच्छ्र अवश्य नष्ट होताहै। पुनर्नवा, लोहेकी भस्म,  
हलदी, गोखुरु, मूँगेकी भस्म, और डाभके फूल, इन  
सबको दूध, आमका रस, मदिरा, और ईखका रस  
इनमें पीसकर पिये तो इससे वीर्यकी पथरी तथा शर्करा  
नष्ट होतीहै । अथवा वरनाकी छाल, पाखानभेद, सोंठ  
और गोखरू, इनका काथ करकै उसमें जवाखार डालकर  
पिये तो शर्करा नष्ट होजातीहै ॥ ४१-५१ ॥

अथ तृणपञ्चमूलाद्यवृतम् ।

पञ्चमूल्यास्तृणाख्यायास्तथा गोक्षुरकस्य  
तु ॥ पृथग्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपा-  
चयेत् ॥ ५२ ॥ चतुर्भागावशिष्टेन घृत-  
प्रस्थं विपाचयेत् ॥ गुडगोक्षुरबीजञ्च  
कल्कं तत्र प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥ तत्सिद्धं  
मूत्रदोषेषु शर्करास्वश्मरीषु च ॥ स्नेहने  
भोजने चैव प्रयोज्यं सर्पिरुत्तमम् ॥ ५४ ॥

तृणपञ्चमूल और गोखुर, इन प्रत्येकको चालीस चाली  
स तोले लेकर १६ सेर जलमें पकावे, जब चौथा भाग  
जल शेष रहे तब उसमें गुड तथा गोखरुका कल्क डाल  
कर एक सेर भी पकावे । इस उत्तम बीको स्नेहने तथा  
भोजनमें सेवन करे तो इससे मूत्रस्रवधी विकार, पथरी  
और शर्करा नष्ट होजातीहै ॥ ५२-५४ ॥

अथ वरुणतैलम् ।

त्वक्पत्रफलमूलस्य वरुणस्य त्रिकण्टका-  
त् ॥ कषायेण पचेत्तैलं वस्तिनास्थापनेन  
च ॥ शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रात्प्रमु-  
च्यते ॥ ५५ ॥

शाफ, पत्ते, पाल तथा मूलसहित वरुण तथा गोखरु  
के इनके काथमें पकाये हुए तैलसे निरुद्ध वस्ति देवे  
तो इससे पथरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता-  
रे ॥ ५५ ॥

अथ कुशाद्यतैलम् ।

कुशाग्रिमन्थशैरयनलदभक्षुगोक्षुराः ॥ क-  
पोतवंकावमुकवशीरेन्दीवरीशराः ॥ ५६ ॥  
धातक्यरलुवन्दाकाः कणपूराश्मभेटकाः ॥  
एषां कल्ककषायान्भ्यां सिद्धं तैलं प्रयो-  
जयेत् ॥ ५७ ॥ पानान्धजनयोगेन  
वस्तिनोत्तरवस्तिना ॥ शर्कराश्मरिरोगेषु  
मूत्रकृच्छ्रे च दारुणे ॥ ५८ ॥ प्रदरे  
योनिगुले च शुक्रदोषे तथैव च ॥

वन्ध्यागर्भप्रदं प्रोक्तं तैलमेतत्कुशादि-  
कम् ॥ ५९ ॥

कुशा, अरणी, पियावासा, नरसल, डाम, ईख,  
गोखरु, ब्राह्मी, आककी जड़, लाल चिरचिटा, सतावर,  
रामसर, आमला, अरलू, बौदा, सिरस और पाखान-  
भेद, इनके काथसे पकायाहुआ तेल कुशाद्यतैल कहाता-  
है । इस तेलको पीनेमें, अभ्यंगमें, वस्तिमें और उत्तर-  
वस्तिमें उपयोग करे तो इससे शर्करा, पथरी, दारुण  
मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, योनिशूल और वीर्यके दोष नष्ट होजातेहैं-  
यह तेल वन्ध्याओंको गर्भदायक है ॥ ५६-५९ ॥

अथाश्मरीणां सामान्यचिकित्सा ।

नागरवरुणगोक्षुरपाषाणभित्कपोतवंकजः  
काथः ॥ गुडयवशूकविमिश्रः पीतो  
हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥ ६० ॥ त्रिकण्टकस्य  
बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ॥ अवि-  
क्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिनाशनम् ॥  
॥ ६१ ॥ पिवेद्वरुणजं मूलं काथं तत्क-  
ल्कसंयुतम् ॥ काथः शिशुमलोत्थश्च  
कटूष्णोश्मरिनाशनः ॥ ६२ ॥ शृङ्गवे-  
रयवक्षारपथ्याकालीयकान्वितः ॥ दधि-  
मण्डो भिनत्त्युग्रामश्मरीमाशु पानतः ॥  
॥ ६३ ॥ पाषाणभेदवरुणगोक्षुरककपो-  
तवंकजः काथः ॥ गिरिजतुगुडप्रगाढः  
कर्कटिकात्रपुसबीजयुतः ॥ ६४ ॥  
पेयोश्मरीमवश्यं दुर्भेदामपि भिनत्ति  
योगवरः ॥ शिखरिणमिव शतकोटिः  
शतमन्योर्हस्तनिर्मुक्तः ॥ ६५ ॥  
श्रीकरिणीफलबीजं पिष्टं मथितेन यः  
पुमानद्यात् ॥ शाकमशितमथवास्या  
हन्यादश्मरी भवौ पीडाम् ॥ ६६ ॥ श्वदंष्ट्रेर-  
ण्डबीजानि नागरं वरुणत्वचः ॥  
एतत्काथवरं प्रातः पिवेदश्मरिनाश-  
नम् ॥ ६७ ॥ रक्तोद्भवे रुक्षमृणालता-  
लकाशेषुवालेषु कुशादकानि ॥ पिवे-

त्सिताक्षौद्रयुतानि खादेद्विदारिमिक्षुन्नपु-  
सानि चैव ॥ ६८ ॥ पलान्यष्टौ तु  
कुर्वीत क्षाराणां वरुणत्वचम् ॥ तद्  
यावशूकन्तु ततोऽप्यर्द्धं गुडात्स्मृतम् ॥ ६९ ॥  
एकोकृत्य विमृद्यैतत्खादेत्कर्षप्रमाणतः ॥  
घर्माभ्युपानतोऽवश्यं कृच्छ्राश्मरिविना-  
शनम् ॥ ७० ॥

सोठ, वरना, गोखरू, पाखानभेद और ब्राह्मी इनका  
क्वाथ करके उसमें गुड तथा जवाखार डालकर पिये तो  
इससे उग्र पथरी भी नष्ट होजातीहै । अथवा गोखरूके  
बीजोंका चूर्णकर सहतमे मिलावै और सात दिनतक  
बकरीके दूधके साथ पिये तो इससे पथरीका नाश  
होताहै । वरनाकी जड़का क्वाथ करके उसमें वरनेकी  
जड़काही कल्क डालकर पिये तो इससे पथरीका नाश  
होताहै । सहेँजनेकी जड़का क्वाथ करके किंचित् उष्ण  
पिये तो इससे पथरी दूर होतीहै । अदरख, जवाखार,  
हरड, और दारुहलदी, इनका चूर्णकर दहीके मडके  
साथ पिये तो उससे भयंकर पथरी भी तत्काल नष्ट होजा-  
तीहै । अथवा पाखानभेद, वरना, गोखरू और ब्राह्मी,  
इनका क्वाथ करके उसमें शिलाजीत तथा गुडको भली-  
भौति मिलावै और ककडी तथा खीरेके बीजोंका कल्क  
डालकर पिये तो इस उत्तम उपायसे जो पथरी किसीसे  
न भिदै वह भी अवश्य भिदजातीहै । जिस प्रकार इन्द्रके  
हाथमे से निकला हुआ वज्र पर्वतोंको भेद डालताहै तिसी  
प्रकार यह योग पथरीको भेद डालताहै । अथवा श्रीक-  
रिणी ( अरणी ) के फलोंके बीजोंको विना पानी पड़े  
तक्र ( मठे ) में पीसकर खाय, अथवा इसके शाकको  
खाय तो इससे पथरीकी पीडा दूर होजातीहै । गोखरू,  
एरडके बीज, सोंठ और वरनाकी छाल, इनका उत्तम  
क्वाथ करके प्रातःकाल पिये तो इससे पथरीका नाश  
होताहै । अथवा पथरीसे मूत्रमें रुधिर देखनेमें आवै तो  
खुरे हुए कमलकी नाल, ताडका फल, कौंस, ईख,  
वाली ईख और डाभ, इनको पानीमें पीसकर उसमें  
सहत तथा मिश्री डालकर पिये और विदारीकद, ईख,  
तथा खीरेका भक्षण करै । वरनाकी छालका बत्तीस  
( ३२ ) तोले खार, सोलह तोले जवाखार और आठ  
तोले गुड, इनको एकत्र कर इसमेंसे एक तोला खाय

और ऊपरसे गरम जल पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्र तथा  
पथरीका नाश होताहै ॥ ६०-७० ॥

अथ वरुणाद्यचूर्णम् ।

वरुणकभस्मपरिष्कृतसलिलं तच्चूर्णयाव-  
शूकयुतम् ॥ कथनीयं तत्तावद्यावच्चूर्ण-  
त्वमायाति ॥ ७१ ॥ तद्गुडयुक्तं हन्या-  
दुदारामश्मरीं घोराम् ॥ प्लीहानं गुल्मवरं  
श्रोण्यां कुक्षौ रुजां तीव्राम् ॥ ७२ ॥  
आमचयं वस्तिगदान्कृच्छ्रं वा वातजं  
घोरम् ॥ वह्निसदनं सुकष्टमश्ममयीमश्म-  
रीश्चाशु ॥ ७३ ॥

वरनेकी भस्म करके उस भस्मको पानीमें डाले और  
वस्त्रमें डालकर नितारै, पश्चात् उस नितरे हुए पानीको  
जवाखारके चूर्णसे मिश्रित करके तबतक पकावै जबतक  
वह सब जलकर चूर्णरूप होय, फिर इस चूर्णको गुडमे  
मिलाकर खाय तो इससे भयंकर पथरी, प्लीहा, गुल्म,  
कमर तथा पेटकी पीडा, आमका संचय, वस्तिरोग,  
वायुसे हुआ भयंकर मूत्रकृच्छ्र, अग्निकी मदता, और  
पत्थरकी समान कठोरपथरी तत्काल नष्ट होजाती-  
है ॥ ७१-७३ ॥

अथ वरुणकगुडः ।

नो जग्धं कृमिभिर्घनं सुतरुणं स्निग्धं  
शुचिस्थानजं घसे पुण्यनिरीक्षिते वरुणकं  
छित्त्वा तुलां ग्राहयेत् ॥ संगृह्याशु चतुर्गु-  
णासु विपचेत्पादावशेषं जलं तत्तुल्येन  
गुडेन वै दृढतरे भाण्डे पचेत्तप्तुनः ॥ ७४ ॥  
ज्ञात्वैवं घनतां गुडे परिणते प्रत्येकमेषां  
पलं शुण्ठ्यैर्वारुकबीजगोक्षुरकणापाषाण-  
भिच्छीतलाः ॥ कूष्माण्डत्रपुसाक्षबीज-  
कुनटीवास्तूकशोभाञ्जनैर्द्राक्षैलागिरिजाभ-  
याकृमिहतां चूर्णीकृतानां क्षिपेत् ॥ ७५ ॥  
पथ्याशीप्रतिवासरं गुडममुं युञ्ज्यात्प्रमाणं  
नरः ॥ खादेत्तस्य समस्तदोषजनिताश्म-  
र्यः पतन्ति द्रुतम् ॥ ७६ ॥

## अथ प्रमेहाधिकारः ।

तत्र प्रमेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्रसुखं दधीनि ग्राम्यौद-  
कानूपरसः पर्यासि ॥ नवान्नपानं गुडवै-  
कृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

वैटरनेका सुख, निद्राका सुख, दही, ग्राम्य जीवोंका मांस, जन्वरजीवोंका मांस, जलवाले देशके प्राणियोंका मांस, दूध, नवीन अन्न, नवीन पान, गुड, गुडके विकार (गन् आदि) और सम्पूर्ण कफकारी पदार्थ, ये सब प्रमेह होनेके कारण हैं ॥ १ ॥

अथ प्रमेहसंप्राप्तिः ।

मेदश्च मांसश्च शरीरजश्च क्लेदं कफो  
वस्तिगतं प्रदूष्य ॥ करोति मेहान्समुदी-  
र्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥  
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहा-  
न्कुरुतेऽनिलश्च ॥ २ ॥

कफ-मृदान्नाम रहनेवाली मेदा (चरबी) को, मांसको और शरीरके क्लेदको दूषित करके प्रमेहको उत्पन्न करे। उष्ण पदार्थोंसे बढ़ाहुआ पित्तभी सौम्यधातु कफ आदिका क्षय होनेपर इनही मेद आदि पदार्थोंको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करे। कफ आदि सब धातु क्षीण होने पर वायु भी प्रमेहकी सहायन करनेवाली धातुओंको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करे ॥ २ ॥

अथ प्रमेहसंख्यासाध्यत्वादिके ।

साध्याः कफाद्या दश पित्तजाः षट्  
याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः ॥ सम-  
क्रियत्वादिपमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च  
यथाक्रमं ते ॥ ३ ॥

इसमें दशप्रकारके प्रमेह होते हैं वे साध्य हैं, पित्तसे छ-  
ट्प्रकारके प्रमेह होते हैं वे साध्य हैं वायुसे चार प्रका-  
रके प्रमेह होते हैं वे असाध्य हैं । कफसे हुए प्रमेह  
साध्य हैं कारण होनेके कि-वे केवल मेदा आदिके  
द्वारा होते हैं और पर्याप्त एक क्रियासे ही नष्ट  
होते हैं । पित्तसे हुए प्रमेह साध्य हैं कारण है

कि-वे कफ आदि सौम्य धातुके क्षय होनेपर मेदा  
आदिके दूषितपनेसे होते हैं और मधुर तथा रुक्ष आदि  
विषम क्रियासे नष्ट होते हैं, वायुसे हुए प्रमेह असाध्य इस  
कारण हैं कि सम्पूर्ण धातुओंके क्षयसे होते हैं और शरीरका  
क्षय करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

अथ प्रमेहदोषदूष्यज्ञानम् ।

कफश्च पित्तं पवनश्च दोषा मेदोऽसृग्गुक्का-  
म्बुवसालसीकाः ॥ मज्जारसौजः पिशितश्च  
दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ४ ॥

कफ, पित्त और वायु यह दोष हैं और उनसे मेदा,  
रक्षिर, वीर्य, रस, वसा, लसीक, मज्जा तथा ओज और  
मांस ये दूषित होते हैं, जो दूषित होते हैं वे दूष्य कहते हैं ।  
उपरोक्त प्रमेह बीस प्रकारके हैं ॥ ४ ॥

अथ प्रमेहपूर्वरूपम् ।

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपा-  
दयोः ॥ दाहश्चिकणता देहे तृट् स्वादा-  
स्यश्च जायते ॥ ५ ॥

प्रमेह होनेवाला होय तो दांत आदिमें मेल, हाथ  
पावोंमें दाह, शरीरमें चिकनापन, तृप्ता और मुखमें मीठा-  
पन होता है ॥ ५ ॥

अथ प्रमेहसामान्यलक्षणम् ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलम्बता ॥  
दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥  
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ ६ ॥

मूत्रकी अधिकता और मेलापन, यह प्रमेहोंका सामान्य  
लक्षण है । दोष और दूष्य इनकी विशेषतासे और संयो-  
गकी विशेषतासे मूत्रके वर्ण आदिमें जो अंतर होता है  
उससे प्रमेहोंके भेदोंकी कल्पना करी है ॥ ६ ॥

अथ कफजप्रमेहलक्षणम् ।

अच्छं बहुतरं शीतं निर्गन्धमुदकोप-  
मम् ॥ मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविल-  
पिच्छिलम् ॥ ७ ॥ इक्षो रसमिवा-  
त्यर्थं मधुरं चक्षुमेहतः ॥ सान्द्रीभवेत्प-

र्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥ ८ ॥ सुरा-  
मेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥  
संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥  
॥ ९ ॥ शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही  
प्रमेहति ॥ मूत्राणून्सिकतामेही सिकता-  
रूपिणो मलान् ॥ १० ॥ शीतमेही सुव-  
हुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ शनैः शनैः  
शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ लालातं-  
तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ ११ ॥

जो उदकमेह हुआ होय तो स्वच्छ, अधिक सफेद,  
शीतल, गन्धरहित, पानीकी सदृश, किंचित् गदला और  
चिकना मूत्र आताहै ( १ ) इक्षुमेह हुआ होय तो  
ईखके रसके सदृश अत्यन्त मीठा मूत्र होताहै ( २ )  
सान्द्रमेह हुआ होय तो मूत्र रात्रिमें धरा हुआ जैसा  
गाढा होताहै ऐसा आताहै ( ३ ) सुरामेह हुआ होय  
तो मदिराकी सदृश मूत्र उतरताहै और वह मूत्र रात्रिमें  
रखे हुए की सदृश ऊपर स्वच्छ और नीचे गाढा होता-  
है ( ४ ) पिष्टमेह हुआ होय तो चावलोंके धोवनके  
समान सफेद और अधिक मूत्रताहै तथा मूत्र करते समय  
रोमांच होजातेहैं ( ५ ) शुक्रमेह हुआ होय तो वीर्यकी  
सदृश तथा वीर्य मिला मूत्र आताहै ( ६ ) सिकतामेह  
हुआ होय तो मूत्रमें रेतकी सदृश सूक्ष्म और परस्परमें  
नहीं मिले कफके कण होतेहैं ( ७ ) शीतमेह हुआ  
होय तो बारंबार मीठा और शीतल मूत्र आताहै ( ८ )  
शनैर्मेह हुआ होय तो धीरे धीरे मन्द मन्द मूत्र उतरता-  
है ( ९ ) और लालामेह हुआ होय तो लारके तन्तुकी  
समान तारवाला और चिकना मूत्र आताहै ( १० )  
॥ ७-११ ॥

### अथ पित्तजप्रमेहलक्षणम् ।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥  
॥ १२ ॥ नीलमेहेन नीलाभं कालमेही  
मषीनिभम् ॥ हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रा-  
सन्निभं दहत् ॥ १३ ॥ विसं माज्जिष्ठमेहेन  
माज्जिष्ठासलिलोपमम् ॥ विस्रमुष्णं सल-  
वणं रक्ताभं रक्तमेहिनः ॥ १४ ॥

क्षारमेह हुआ होय तो जिसमें खारी जलकी सदृश  
गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श होय ऐसा मूत्र आताहै  
( ११ ) नीलप्रमेह हुआ होय तो नीलकी सदृश मूत्र  
होताहै ( १२ ) कालप्रमेह हुआ होय तो स्याहीकी सदृश  
श्यामवर्णका मूत्र आताहै ( १३ ) हारिद्रमेह हुआ  
होय तो हलदीकी सदृश वर्णवाला, दाहयुक्त और तीक्ष्ण  
मूत्र आताहै ( १४ ) माज्जिष्ठ मेह हुआ होय तो  
कच्चे पदार्थकी सदृश गंधवाला और मजीठके पानी सदृश  
रगका मूत्र होताहै ( १५ ) रक्तमेह हुआ होय तो  
गन्धयुक्त, गरम, खारी और रक्तकी सदृश लाल मूत्र  
आताहै ( १६ ) ॥ १२-१४ ॥

### अथ वातजप्रमेहलक्षणम् ।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥  
मज्जाभं मज्जामिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः  
॥ १५ ॥ कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदे-  
द् बुधः ॥ हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रवेग-  
विवर्जितम् ॥ सलसीकं विवद्धश्च हस्ति-  
मेही प्रमेहति ॥ १६ ॥

वसामेह हुआ होय तो बारवार चरबीसे मिला और  
चरबीकी सदृश वर्णवाला होताहै ( १७ ) मज्जामेह  
हुआ होय तो मज्जासे मिश्रित और मज्जाकी सदृश वर्ण-  
वाला मूत्र बारवार आताहै ( १८ ) मधुमेह ( क्षौद्र-  
मेह ) हुआ होय तो कसेला, मीठा, और रूक्ष मूत्र होता-  
है ( १९ ) और हस्तिमेह हुआ होय तो उन्मत्त हस्ती-  
की सदृश निरन्तर वेगरहित लसीकासहित और रुकरुक  
कर मूत्र आताहै ( २० ) ॥ १५ ॥ १६ ॥

### अथ कफजप्रमेहोपद्रवाः ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपी-  
नसः ॥ उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफ-  
जन्मनाम् ॥ १७ ॥

यदि कफसे प्रमेह हुआ होय तो खाये हुए अन्नका  
नहीं पचना, अरुचि, वमन, निद्रा, खांसी और पीनस ये  
उपद्रव होतेहैं ॥ १७ ॥

### अथ पित्तजप्रमेहोपद्रवाः ।

वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः ॥



दाहस्तृष्णाम्लको मूर्च्छा विड्भेदः पित्त-  
जन्मनाम् ॥ १८ ॥

पित्तसे प्रमेह हुआ होय तो मूत्राशय तथा लिगमें शूल,  
अण्डकोषोंका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, खट्टी उकारोंका  
जाना मूर्च्छा और पतले दस्तका होना ये लक्षण होते-  
हैं ॥ १८ ॥

अथ वातजप्रमेहोपद्रवाः ।

वातजानामुदावर्तकम्पहृद्ग्रहलोलताः ॥  
शूलमुन्निद्रता शोषः श्वासः कासश्च  
जायते ॥ १९ ॥

यदि वायुसे प्रमेह हुआ होय तो उदावर्त, कंप, हृद-  
यका रुकना, चलना, शूल, निद्रासे रहितपना, शोष,  
श्वास और खांसी ये उपद्रव होतेहैं ॥ १९ ॥

अथ प्रमेहारिष्टम् ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रसृतमेव च ॥  
पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहां हन्ति मान-  
वम् ॥ २० ॥ मूर्च्छाच्छर्दिज्वरश्वासका-  
सर्वासर्पगौरवैः ॥ उपद्रवैरुपेतो यः प्रमे-  
हो दुष्प्रतिक्रियः ॥ २१ ॥

प्रमेहयुक्त मनुष्य जो उपरोक्त उपद्रवोंसे विरा हो, मूत्र  
अधिक आता हो और पिडिका ( फुन्सियों ) ओंसे अत्यन्त  
पीड़ित हुआ होय वह मनुष्य मरजानाहै । अथवा जो  
प्रमेही मनुष्य मूर्च्छा, ज्वर, श्वास, खांसी, विसर्प  
और गुदना, इन उपद्रवोंसे युक्त होय तो असाध्य  
जानना ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ स्त्रीणामप्रमेहं कारणम् ।

रजः प्रवर्तते यस्मान्मासिमासि विशो-  
ध्यन् ॥ सर्वाञ्छरीरदोषांश्च न प्रमेह-  
न्त्यतः स्त्रियः ॥ २२ ॥

मिनियोंके शरीरके महीने रज प्रवर्तताहै उससे ही शरी-  
रमें मज दोष नष्ट होजातेहैं, इस लिये मिनियोंके प्रमेह  
नहीं होता ॥ २२ ॥

अथासाध्यप्रमेहलक्षणम् ।

जातः प्रमेहो मधुमेहिना वा न साध्य-  
रोगः स हि बीजदोषात् ॥ ये चापि के-  
चित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्चापि

वदन्त्यसाध्यान् ॥ २३ ॥ सर्व एव  
प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ॥ मधुमे-  
हत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥  
॥ २४ ॥ मधुमेहो मधुनिभो जायते स  
किल द्विधा ॥ क्रुद्धे धातुक्षयाद्रायौ  
दोषावृतपथेऽथ वा ॥ २५ ॥ आवृतो  
दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ॥  
क्षीणः क्षणात्क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसा-  
ध्यताम् ॥ २६ ॥

जिसको जन्मसेही प्रमेह हुआ होय, अथवा माता  
पिताकी परंपरासे जिसको प्रमेह हुआ हो वह असाध्य है,  
क्यों कि—यह प्रमेह वीर्यके दोषसे ही उत्पन्न होताहै  
अन्य भी जो कोई रोग, कुलकी परंपरासे प्राप्त हुआ होय  
वह भी असाध्य है ऐसा विद्वानोंने कहा है । अथवा सब  
प्रकारके प्रमेह जो अधिक कालतक चिकित्सा विना रहे  
तो मधुमेह रूप होजातेहैं ये भी असाध्य हैं । मधुमेह  
दोषप्रकारका होताहै वह इस भाति है कि—धातुओंके क्षयसे  
वायुका कोप होनेपर होताहै, अथवा दोषसे वायुका मार्ग  
रुकजानेसे होताहै, दोषसे वायुका मार्ग रुकजानेपर  
वह वायु अकस्मात् दोषोंके चिह्नोंको दिखाने-  
तीहै और तैसेही क्षणमात्रमें मूत्राशयको खाळीकर डाले  
है तथा क्षणमात्रमें पूर्ण करदेहै, इसीसे प्रमेह कष्टसाध्य  
होजाताहै ॥ २३—२६ ॥

अथ मधुमेहशब्दप्रवृत्तौ कारणम् ।

मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति ॥  
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनो-  
रतः ॥ २७ ॥

अधिक करक सब प्रमेहोंमें मनुष्य मीठा और मधुकी  
सदृश मूत्र मूतता है और शरीरमें मधुरता होतीहै, इस  
लिये सब प्रमेहोंको मधुमेह इस नामसे कहतेहैं ॥ २७ ॥

अथ प्रमेहोपेक्षाजनितदशपिडिकानां

नामस्थानानि ।

शराविका कच्छपिका जालिनी विन-  
तालजी ॥ मसूरिका सर्पपिका पुत्रिणी  
सविदारिका ॥ २८ ॥ विद्रधिश्चेति

**पिडिकाः प्रमेहोपेक्षया दश ॥ सन्धिम-  
र्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २९ ॥**

प्रमेहोकी उपेक्षा करनेसे संधियोंमें, मर्मस्थानोंमें और अधिक मांसवाले प्रदेशोंमें दश प्रकारकी पिडिका (फुसी) होतीहैं और वे अनुक्रमसे शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्पपिका, पुत्रिणी, विदारिका तथा विद्रधि, इन नामोंसे कही है ॥ २८ ॥ २९ ॥

**अथ दशप्रकारकपिडिकालक्षणम् ।**

अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शरा-  
विका ॥ गौरसर्पसंस्थाना तत्प्रमाणा  
तु सर्पपी ॥ ३० ॥ सदाहा कूर्मसंस्थाना  
ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ जालिनी तीव्र-  
दाहा तु शिराजालसमावृता ॥ ३१ ॥  
अविगाढरुजा क्लेदा पृष्ठे वाप्युदरेऽपि  
वा ॥ महती पिडिका नीला सा बुधैर्वि-  
नता स्मृता ॥ ३२ ॥ महत्यल्पचिता  
ज्ञेया पिडिकापि च पुत्रिणी ॥ मसूरदल-  
संस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥ ३३ ॥  
रक्ता सितास्फोटचिता विज्ञेया त्वलजी  
बुधैः ॥ विदारीकन्दवद्धता कठिना च  
विदारिका ॥ विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया  
विद्रधिका तु सा ॥ ३४ ॥

जो पिडिका—अतमे ऊँची, मध्यमें नीची हो और मट्टीके सकोरे ( सरहया ) की सदृश हो, उसको शरा-  
विका जाननी । जो पिडिका दाह युक्त, तथा कछुएकी पीठकी सदृश होय उसको कच्छपिका जाननी । जो पिडिका तीव्र दाहवाली और सूक्ष्म सूक्ष्म नसोंके जालसे लिपटी हुई होय उसको जालिनी जाननी । जो पिडिका बड़ी, मोटी, नीलवर्णवाली और पीठ तथा पेटमें हुई होय वह विनता जाननी । जो पिडिका लाल तथा काली होय और अन्य फुसियोंसे व्याप्त होय वह अलजी जाननी । जो पिडिका मसूरकी दालकी बराबर बड़ी हो वह मसूरिका जाननी । जो पिडिका सफेद सरसोकी समान आकारवाली और इतनीही बड़ी होय वह सर्पपिका जाननी । जो पि-  
डिका बड़ी और सूक्ष्म सूक्ष्म फुसियोंसे व्याप्त हो

वह पुत्रिणी जाननी । जो पिडिका विदारीकंदकी सदृश गोल होय और कठोर होय वह विदारिका जाननी । जो पिडिका विद्रधिके लक्षणों ( जो आगे कहेगे ) से युक्त होय वह विद्रधिका जाननी ॥ ३०—३४ ॥

**अथ प्रमेहपिडिकादोषनिर्णयः ।**

**ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु  
तन्मयाः ॥ ३५ ॥**

जो प्रमेह जिस दोषयुक्त हो उस प्रमेहकी पिडिकाभी उसी दोषवाली होतीहै ॥ ३५ ॥

**अथ प्रमेहमन्तरा पिडिकोत्पत्तिः ।**

**विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ॥**

**तावच्चैतानलक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ३६**

जिस मनुष्यकी मेदा दूषित होय उसके विना प्रमेह-  
भी पिडिका होतीहैं, जबतक इन पिडिकाओंने अपने अपने स्थानको भलीभाँति पकड़ा न होय तबतक ये पिडिका नहीं दीखतीहैं ॥ ३६ ॥

**अथ पिडिकासाध्यत्वम् ।**

**गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः ॥**

**सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्ज-  
येत् ॥ ३७ ॥**

गुदा, हृदय, शिर, कंधा, पीठ, इनके मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुई, उपद्रवयुक्त और मदाग्निवालेके हुई पिडिका-  
ओंकी चिकित्सा नहीं करै ॥ ३७ ॥

**अथ पिडिकोपद्रवाः ।**

**तृट्च्छासमांससंकोचमेहहिक्कामदज्व-  
राः ॥ विसर्पमर्मसंरोधाः पिडिकानामुप-  
द्रवाः ॥ ३८ ॥**

तृषा, श्वास, मांसका संकोच, मोह ( बेहोसी ), हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प और मर्मस्थानोंका अवरोध ये पिडिकाओंके उपद्रव हैं ॥ ३८ ॥

**अथ प्रमेहपथ्यानि ।**

**श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमाश्रणकास्तथा ॥**

**आढक्यश्च कुलत्थाश्च पुराणा मेहिनां**

**हिताः ॥ ३९ ॥ मेहिनां तित्तशकानि**

**जाङ्गला हरिणाण्डजाः ॥ यवान्नविकृ-**

**तिर्मुद्राः शस्यन्ते शालिषष्टिकाः ॥ ४० ॥**

समा, कोदों, वनकोदो, गेहू, चना, अरहर और कुलथी, यह धान्य यदि पुराने हों तो प्रमेह रोगीको हितकारी हैं । कडवे शाक, जागल देशके हिरन तथा पक्षी, जौके आटेके बने पदार्थ, मूँग, लाल चावल और सांठीके चावल, ये प्रमेह रोगीको हितकारी हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ प्रमेहेऽहितवस्तूनि ।

सौवीरकंसुरा तक्रंतैलंक्षीरं वृतं गुडम् ॥

अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ४१

सौवीर, मदिरा, तक्र, तेल, दूध, घी, गुड, अम्ल-पदार्थ, ईखका रस, आटेके बने पदार्थ और अनूप देशके जीवोंका मांस, इनको प्रमेहरोगी त्याग देवे ॥ ४१ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

तत्र आदित एव प्रमेहिणमुपस्त्रिग्धमन्यत-  
मेन प्रियंगवादिसिद्धेन तैलेन वामयेत् प्रगाढं  
विरेचयेच्च । विरेचनादनन्तरं सुरसादिक-  
षायेण आस्थापयेत् । महौषधभद्रदारुमुस्ता-  
वापेन मधुसैन्धवयुक्तेन दह्यमानं वान्यग्रोधा-  
दिकषायेण निस्तैलेन ॥

वातोत्कटेषु मेहेषु स्नेनपानं विशेषतः ॥  
पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रिणां पृथक्  
॥ ४२ ॥ पाठायाः सागुरोः पीता  
द्रवस्य शारदस्य च ॥ जलेक्षुमद्यसिकता-  
शनैर्लवणपिष्टकान् ॥ सान्द्रमेहान्कमा-  
द्वन्तिक्काथाश्चाष्टौ समाक्षिकाः ॥ ४३ ॥  
हरीतकीकट्फलमुस्तलोधाः पाठाविड-  
ङ्गार्जुनधन्वनाश्च ॥ उभे हरिद्रे तगरं  
विडङ्गं कदंबशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ ४४ ॥  
दावीं विडङ्गः खदिरो धवश्च सुराहकु-  
ष्ठागुरुचन्दनानि ॥ दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफ-  
ला वचा च पाठा च मूर्वा च तथा  
श्वदंष्ट्रा ॥ ४५ ॥ वचाह्युशीराण्यभया  
गुडचीवृषं शिवाचित्रकसप्तपर्णाः ॥ पादैः

कषायाः कफमेहविज्ञेर्दशोपदिष्टा मधुस-  
म्प्रयुक्ताः ॥ ४६ ॥ उशीरलोधार्जुनच-  
न्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम् ॥ प-  
टोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयामुष्क-  
कवृक्षकाणाम् ॥ ४७ ॥ लोध्राम्रकाली-  
यकधातकीनां विश्वार्जुनैलानिविपात्पला-  
नाम् ॥ शिरीषधान्यार्जुनकेशराणां प्रियंगु-  
पद्मोत्पलकिंशुकानाम् ॥ ४८ ॥ अश्वत्थ-  
पाठासनवेतसानां कटंकटेर्युत्पलमुस्तका-  
नाम् ॥ पैत्तेषु मेहेषु दशोपदिष्टाः कषाय-  
योगामधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ४९ ॥ कफमेह-  
हरकाथसिद्धं सर्पिः कफे हितम् ॥ पित्त-  
मेहन्निर्युहसिद्धं पित्तहरं वृतम् ॥ ५० ॥  
कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरोही-  
तककौटजानि ॥ पटोलकालीयगदागुरु-  
णि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ ५१ ॥  
दूर्वाकसेरुपृतीककुम्भीकप्लवशैवलम् ॥ ज-  
लेन कथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥  
॥ ५२ ॥ त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो  
मधुसंयुतः ॥ पीतो निहन्ति फेनाभं  
प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ ५३ ॥ अश्वत्था-  
च्चतुरंगुल्या न्यग्रोधादेः फलत्रयात् ॥  
सरक्तसारमञ्जिष्ठाः काथाः पञ्च समा-  
क्षिकाः ॥ ५४ ॥ मधुना त्रिफलाचूर्ण-  
मथवाश्मजतूद्रवम् ॥ लोहजं वाभयोर्त्थं  
वा लिहेन्मेहनिवृत्तये ॥ ५५ ॥ कटंक-  
टेरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः ॥ सिद्धः  
कषायः पातव्यः प्रमेहाणां विनाशनः ॥  
॥ ५६ ॥ फलत्रिकं दारुनिशां विशालां  
मुस्तां च निष्काथ्य निशांशकल्कम् ॥  
पिवेत्कषायं मधुसम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु  
समुच्छिन्तेषु ॥ ५७ ॥ गोभक्षितान्यवा-  
न्मूत्रभावितान्केवलानपि ॥ चित्रितोद-  
श्चिन्ता खादन्निम्बमुद्गरसेन वा ॥ ५८ ॥

भक्षणीताम्बुना मांसं प्रमेही यवपि-  
ष्टकम् ॥ मेदोघ्ना बद्धमूत्राश्च समाः  
सर्वेषु धातुषु ॥ यवास्तस्माद्विशिष्यन्ते प्रमे-  
हेषु विशेषतः ॥ ५९ ॥

जिसको प्रमेह हुआ होय उसको प्रथमसेही प्रियगु आदिसे सिद्ध किये तैलसे स्निग्ध करके वमन तथा विरेचन करावै, विरेचन करानेके पीछे सुरसादिक्वाथमें सोंठ, देवदार तथा मोथेका चूर्ण डालकर सहत तथा सेंधा मिलावै और पश्चात् उस क्वाथसे निरूहवस्ति देवै, जो दाह होती होय तो तेल रहित न्यग्रोधादि क्वाथसे निरूहवस्ति देवै । वायुकी अधिकतावाले प्रमेहोंमें विशेष करके स्नेहपान करावै । पारिजात ( फरहद ) का क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे उदकप्रमेह नष्ट होता है । नीलीदूब अथवा अरनेका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे इधुमेह नष्ट होता है । नीमका क्वाथकर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे सुरामेह नष्ट होता है । चीतेका क्वाथकर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे सिकतामेह दूर होता है । खैरका क्वाथकर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे गन्नेमेह नष्ट होता है । कालीपाढका क्वाथकर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे क्षारमेह नष्ट होता है । अगरका क्वाथकर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे पिष्टप्रमेह नष्ट होता है । दोनों जातिकी हलदीका क्वाथकरके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे सान्द्रप्रमेह नष्ट होता है । हरड, कायफल, मोथा और लोध, इनका क्वाथ करके उसमें सहत मिलाकर पिये तो इससे कफसबधी प्रमेह नष्ट होता है । पाढ, वाय विडग, कोह और धमासा इनका क्वाथकरके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसबधी प्रमेह नष्ट होता है । हलदी, दारुहलदी, तगर और वायविडग, इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसबधी प्रमेह नष्ट होता है । कदव, शाल, कोह और चीता, इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है । दारुहलदी, वायविडग, खैर और घाय, इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह दूर होता है । देवदार, कूठ, अगर और चन्दन, इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है । दारुहलदी, अरनी, हरड, बहेडा, आमला और वच, इनका क्वाथ

करके सहत डालकर पिये तो कफसंबंधी प्रमेह दूर होता है । अथवा पाढ, मूर्वा और गोखरू इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है । वच, खस, हरड और गिलोय इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो उससे कफसबधी प्रमेह दूर होता है । अड्डसा, हरड, चीता और सतौना, इनका क्वाथकर उसमें सहत डालकर पिये तो कफसबधी प्रमेह नष्ट होता है । खस, लोध, कोह और चन्दन, इनका क्वाथकरके सहत डालकर पीनेसे पित्तसबधी प्रमेह दूर होता है । अथवा खस, मोथा, आमले और हरड इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो पित्तसबधी प्रमेह दूर होता है । परवल, नीम, आमले और गिलोय इनका क्वाथकर उसमें सहत डालकर पिये तो पित्तसबधी प्रमेह नष्ट होता है । मोथा, हरड और मोखा इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसबधी प्रमेह दूर होता है । लोध, आमकी छाल, दारुहलदी तथा घाय, इनका क्वाथकरके सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है । सोंठ, अर्जुन ( कोह ), इलायची, अतीस और कमल, इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीनेसे पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है । सिरस, धनियाँ, कोह और नागकेसर, इनका क्वाथ करके इसमें सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसबधी प्रमेह दूर होता है । प्रियगु, कमल उत्पल तथा कसूम इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसबधी प्रमेह नष्ट होता है । पीपलकी छाल, पाढ, पीतशाल, तथा वेंत इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो पित्तसबधी प्रमेह दूर होता है । दारुहलदी, उत्पल और मोथा, इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह दूर होता है । कफसबधी प्रमेहको नष्ट करनेवाले क्वाथोंसे पकाया हुआ घी कफसबधी प्रमेहको नष्ट करेहै । पित्तसबधी प्रमेहको नष्ट करनेवाले क्वाथोंसे पकाया हुआ घी पित्तसबधी प्रमेहको नष्ट करेहै । अथवा कबीला, सतौना, शाल, बहेडा, रोहेडा, कुडेके बीज, परवल, दारुहलदी, कूट और अगर इनका चूर्णकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफसबधी प्रमेह दूर होता है । दूब, कसेरु, करज, कायफल, मोथा तथा सिवार इनका क्वाथ पिये तो इससे शुक्रमेह अवश्य दूर होता है । हरड, बहेडा, आमला, अमलतास और दाख, इनका क्वाथकर उसमें सहत मिलाकर पिये तो फेनोकी सटश प्रमेह दूर होता है । त्रिफला अथवा त्रिन्नाजीत वा

हरडोका चूर्णकर सहतमें मिलाकर खाय तो प्रमेह नष्ट होजाताहै । दारुहल्ली, मुलहल्ली, त्रिफला और चीता, इन सबका काटा पीनेसे सब प्रकारके प्रमेह दूर होतेहैं । अथवा त्रिफला, दारुहल्ली, इन्द्रायन, मोथा और हल्ली इनका काय करके सहत डालकर पिये तो सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होतेहैं, इस काथको फलत्रिकादि काथ कहतेहैं । गायके खाये हुए जौको गोबरमेंसे निकालकर गोमूत्रकी भावना देवे, अथवा विना भावनाकेही चितकवरी गायके उदक्षित् ( आधापानी पडा हुआ मट्टा ) के साथ अथवा नीमके तथा मूगके रसके साथ खाय तो प्रमेह नष्ट होता है । अथवा एक मासतक पानीके साथ जौके आटेका भक्षण करनेसे प्रमेह नष्ट होजातेहैं, जो प्रमेहको नष्ट करनेवाले, मूत्रको रोकनेवाले और सब घातुओंमें समस्थितिवाले हैं, इस लिये विशेष करके प्रमेहमें जी बहुत हितकारी हैं ॥ ४२-५९ ॥

### अथ त्रिकटकाद्यभोदकः ।

त्रिकटु त्रिफला पाठा मूलं शोभाञ्जनस्य च ॥ ६० ॥ विडंगतण्डुला हिगु तथा कटुकरोहिणी ॥ बृहती कण्टकारी च हरिद्रे द्वे यवानिका ॥ ६१ ॥ केचुकं शालपर्णी च तथातिविषचित्रकौ ॥ सौवर्चलं जीरकश्च हपुषा धान्यमेव च ॥ ६२ ॥ एषां कर्षप्रमाणश्च श्लक्ष्णचूर्णश्च कारयेत् ॥ यवसक्तुपलानाश्च नवतिं द्वितयाधिकाम् ॥ ६३ ॥ वृततैलमधूनाश्च प्रत्येकश्च पलानि षट् ॥ एभिः कर्षप्रमाणश्च प्रत्यहं भोदकं सुधीः ॥ भक्षयन्नाशयेदुग्रान्प्रमेहानतिदारुणान् ॥ ६४ ॥

सोठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, पाठ, सहेजनेकी जड़, वायविडगके दाने, हींग, कुटकी, दोनों प्रकारकी कटेरी, हल्ली, दारुहल्ली, अजवायन, सुपारी, शालपर्णी, अतीस, चीता, कालानोन, जीरा, हाडवेर और वनिया, इन प्रत्येक पदार्थोंको एक एक तोले लेकर बारीक चूर्ण करके पश्चात् तीनसौ अडसठ

( ३६८ ) तोले जौके सत्तुओंमें यह चूर्ण डालकर चौबीस ( २४ ) तोले घी और चौबीस तोले सहत डालें और एक एक तोलेके लड्डू बनालेवै, इन लड्डूओंमेंसे नित्य एक एक लड्डू खाय तो अत्यंत दारुण प्रमेह भी नष्ट होजाताहै ॥ ६०-६४ ॥

### अथ न्यग्रोधाद्यचूर्णम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योनाकारगवधासनम् ॥ आश्रं कपित्थं जम्बूश्च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ६५ ॥ मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् ॥ पटोलं मेघशृंगी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥ ६६ ॥ करञ्जत्रिफला-सक्तुर्भल्लातकफलानि च ॥ एतानि सम-भागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६७ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह योजयेत् ॥ फलत्रयरसं चानु पीत्वा मूत्रं विशुध्यति ॥ ॥ ६८ ॥ एतेन विशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ॥ प्रशमं यान्ति योगेन पिडिका न च जायते ॥ ६९ ॥

वड, गूलर, पीपल, अरल, अमलतास, विजैसार, आम, कैय, जामुन, चिरोंजी, कोह, घाय, महुआ, मुलै-ठी, लोध, वरुणा, फरहद, परवल, मेढासिगी, दन्ती, चीता, अरहर, हरड, बहेडा, आमला, इन्द्रजौ और मिलावे इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करै, इस चूर्णको सहतमें मिलाकर खाय और ऊपरसे त्रिफलेका काय पिये तो इससे मूत्र शुद्ध होजाताहै, वीसों प्रकारके प्रमेह और सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र जात होजातेहैं तथा प्रमेह पिडिकाभी नहीं होती ॥ ६५-६९ ॥

### अथ लोहादिचूर्णगुडूचीस्वरसौ ।

चूर्णानि लोहत्रिफलासितानां क्षौद्रेण लि-ह्याच्च पृथक् समं वा । मेहान्समस्ता-नपि नाशयन्ति पीताः कदाचित्स्वरसा गुडूच्याः ॥ ७० ॥



लोहेकी भस्म, त्रिफला और मिश्री, इनका चूर्ण मिश्रित कर सहतमें मिलाकर चाटे अथवा केवल लोहेकी भस्म, अथवा त्रिफलेके चूर्णको तथा केवल मिश्रीके चूर्णको सहतमें मिलाकर पृथक् पृथक् चाटे तो सब प्रकारके प्रमेह नष्ट होजातेहैं । अथवा केवल गिलोयका स्वरस निकालकर पीनेसे भी प्रमेह नष्ट होजाताहै ॥ ७० ॥

अथ त्रिकटुगुटिका ।

त्रिकटु त्रिफलातुल्यं गुग्गुलुश्च समांशिकम् ॥ गोक्षुरकाथसंयुक्तां गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ७१ ॥ दोषकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम् ॥ न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥ ७२ ॥ प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च ॥ मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरं चाशु नाशयेत् ॥ ७३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा और आमला, इनका समानभाग चूर्णकर उसमें समानभाग गूगल डाले, पश्चात् गोखरूके काथसे इसकी गोली बनालेवे । वायुका अनुलोमन करनेवाली यह गोली दोष काल तथा शरीरके बलको विचारकर खाय तो प्रमेह, वायुसंबंधी रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष तथा प्रदरका नाश होताहै । यह गोली खानेवाले अपनी इच्छाके अनुसार प्रवर्तें और किसीप्रकारका परहेज नहीं करें ॥ ७१-७३ ॥

अथ दाडिमाद्यघृतम् ।

दाडिमस्य च बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः ॥ रजनी चविकाऽजाजी नागरं त्रिफला कणा ॥ ७४ ॥ त्रिकण्टकस्य च फलं यवानी धान्यकं तथा ॥ वृक्षाम्लचविकालोध्रसिन्धूद्रवसमाहितैः ॥ ७५ ॥ कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ भोज्ये पाने प्रदातव्यं सर्वर्तुषु च मात्रया ॥ ७६ ॥ प्रमेहान्विशतिं चैव मूत्राघातं तथाश्मरीम् ॥ कृच्छ्रं सुदारुणश्चैव हन्यादेव न संशयः ॥ ७७ ॥ विबन्धानाहशू-

लग्नं कामलाज्वरनाशनम् ॥ दाडिमाद्यं घृतं चैतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ ७८ ॥

दाडिमी अनारके दाने, वायविडग, हलदी, चव्य, जीरा, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, पीपल, गोखरू, अजवायन, धनिया, वृक्षाम्ल ( तंतडीक ), लोध और सैधानोंन, इन प्रत्येक पदार्थोंका एक एक तोले कल्कसे एकसेर घी पकावे तो 'दाडिमाद्य नामक घृत' सिद्ध होता-है । अश्विनीकुमारोका कहा यह घी सर्व ऋतुओंमें मात्राके अनुसार भोजन पानके उपयोगमें सेवनकरै, इससे बीसो प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, पथरी, महादारुण मूत्रकृच्छ्र, मलबन्ध, आनाह, शूल, कामला तथा ज्वर, ये अवश्यही नष्ट होतेहैं ॥ ७४-७८ ॥

अथ गोक्षुरादिचूर्णं गुटिका च ।

श्वदंष्ट्रा सकणा मुस्ता गुडूची फल्गुपल्लवाः ॥ दर्भाकुंरास्तु गण्डीरी रोहिषस्य च पल्लवाः ॥ ७९ ॥ काला पुनर्नवा श्यामा शारिवा देवदारु च ॥ पिप्पली शृंगवेरश्च विडंगं मरिचानि च ॥ ८० ॥ पाठां कम्पिल्लकं भार्ङ्गी द्वे हरिद्रे निदिग्धिका ॥ एरण्डमूलं दन्ती च चित्रकं कटुरोहिणी ॥ ८१ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि स्युस्तावत्स्यादयोरजः ॥ ८२ ॥ ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ अलाभे चापि मद्यानां प्रमेहान्हन्ति विंशतिम् ॥ ८३ ॥ श्वयथुश्च तथाशांसि पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ औदराण्यथ शूलानि ग्रीहानं चापकर्षति ॥ ८४ ॥ एभिर्गोमूत्रपिष्टैस्तु गुटिकाः कारयेद्भिषक् ॥ रोगेष्वेतेषु मुख्याः स्युर्वलमांसविवर्द्धनाः ॥ ८५ ॥

गोखरू, पीपल, मोथा, गिलोयके सूक्ष्मसूक्ष्म पत्ते, डामके अकुर, मजीठ, रोहिषके पत्ते, निसोत, पुनर्नवा, शारिवा, देवदार, पीपल, अदरक, वायविडंग, भिरच, पाद, कत्रीला, भारगी, दोनो हलदी, कटेरी, एरंडकी जड दन्ती ( जमालगोटेकी जड ), चीता और कुटकी, इनको

समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करै, पश्चात् सब चूर्णसे दूना लोहेका चूर्ण लेवै, इन सबको मिलानेसे गोक्षुरादि चूर्ण सिद्ध होताहै, यह चूर्ण मद्यसे और मग्न न मिले जो उष्ण पानीसे पियै तो बीसों प्रकारके प्रमेह, सूजन, बवासीर, पाण्डुरोग, हलीमक, सब प्रकारके उदररोग, शूल तथा प्लीहा नष्ट होतीहै । इस चूर्णको गोमूत्रमें पीसकर गोलियें बना लेवै इनको 'गोक्षुरादि गुटिका' कहतेहैं ये गोलीभी उपरोक्त रोगोंको नष्ट करनेमें मुख्य हैं, तथा बल और मांसको बढ़ानेवाली हैं ॥ ७९-८५ ॥

अथ सिंहामृतघृतम् ।

कण्टकार्या गुडूच्याश्च संहरेच्च शतं शतम् ॥ संकुटयोदूखले विद्वांश्चतुर्दोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ८६ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ त्रिकटुत्रिफला-रास्त्राविडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ ८७ ॥ काशमर्याणाश्च मूलानि पूतीकस्य त्वगेन च ॥ कलिङ्ग इति सर्वाणि सूक्ष्म-पिष्टानि कारयेत् ॥ ८८ ॥ अक्षमात्रां पिवेत्प्राज्ञः शालिभिः पयसा हितैः ॥ प्रमेहं मधुमेहश्च सूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ ८९ ॥ आलस्यं चान्त्रवृद्धिश्च कुष्ठरोगं विशेषतः ॥ क्षयश्चैव निहन्त्येतन्नाम्ना सिंहामृतं घृतम् ॥ ९० ॥

सौ सौ तोले कटेरी और गिलोय लेकर चारद्रोण ( एकहजार चौबीस १०२४ तोलेका एकद्रोण ) जलमें काथ करै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब उसमें १ सेर घी पकावै और पकातेसमय उस घीमें सोठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, रासना, वायविडग, चीता, खमारीकी जड़, करजकी छाल और इन्द्रजौ, इनका बारीक चूर्ण करके डालै, यह घी एकतोलाभर सेवन करै, और उसके ऊपर दूध चावल खाय तो प्रमेह, मधुमेह, सूत्रकृच्छ्र, भगदर, आलस्य, अन्त्रवृद्धि, कुष्ठरोग और क्षय, इनका नाश होता है । इसको 'सिंहामृत घृत' कहतेहैं ॥ ८६-९० ॥

अथ धान्वन्तरघृतम् ।

दशमूलं करजौ द्वौ देवदारु हरीतकी ॥

वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥ ९१ ॥ सुधानीपकदम्बाश्च विल्वं भल्ला-तकानि च ॥ शटी पुष्करमूलं च पिप्पली-मूलमेव च ॥ ९२ ॥ पृथग्दशपलान्भा-गानेतांस्तोयार्मणे पचेत् ॥ यवकोलकुल-त्थानां प्रस्थप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९३ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं पचेद्विषकम् ॥ निचुलं त्रिफला भार्ङ्गी रोहिषं गजपिप्प-ली ॥ ९४ ॥ शृङ्गवेरविडंगानि चव्यं कम्पिल्लकं तथा ॥ गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथावलम् ॥ ९५ ॥ एतद्धान्व-न्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ॥ कुष्ठप्रमेहगुल्मांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ ९६ ॥ प्लीहोदराणि चार्शांसि विद्रधिं पिडिकाश्च याः ॥ अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ ९७ ॥ पृथक्तो-यार्मणे ह्यत्र पचेद्व्याच्छतंशतम् ॥ शतत्रयाधिके तोये व्युत्सर्गः क्रमतो भवेत् ॥ ९८ ॥

दशमूल, दोनों प्रकारकी करज, देवदार, हरड, सफेद गदहपर्णा, वरना, दन्ती, चीता, पुनर्नवा, लालगदह पर्णा, दोनों प्रकारके करज, बेल, भिलावे, कचूर, पोह-करमूल और पीपलामूल इन प्रत्येक पदार्थोंका चालीस ४० तोले चूर्ण, चौसठ तोले जौ, चौसठ तोले मिरच और चौसठ तोले कुलथी, इनका एक द्रोण ( १०२४ तोले ) जलमें काथ करै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब इसमें १ सेर ( ६४ तोले ) घी पकावै, और उस घीमें पकातेसमय नीम, त्रिकला, भारगी, रोहिपतृण, गजपीपल, सोंठ, वायविडग, बच्च और कवीला, इनका चूर्ण डालै, इस भौति सिद्धकिया घी 'धान्वन्तरघृत' कहाताहै । शरीर आदिके बलके अनुसार यह उत्तम घी सेवन करै तो कौट, प्रमेह, गुल्म, सूजन, वातरक्त, प्लीहा, उदररोग, विद्रधि, प्रमेहसवधी पिडिका, अपस्मार और उन्माद इन सबका नाश होताहै ॥ ९१-९८ ॥

अथार्जुनाद्यघृततैले ।

अर्जुनपटोलनिम्बैः सवचादीप्यकरसास-

मञ्जिष्ठैः ॥ भल्लातकागुरुधनैः सगदान-  
लचन्दनोशीरैः ॥ ९९ ॥ गोक्षुरकसोम-  
वलकैर्नवपटोलैर्हरिद्रया त्रिफलाः ॥ अश्म-  
न्तकार्जुनाभ्यां दीप्यकयुक्तेन चैव लोघ्रेण ॥  
॥ १०० ॥ मञ्जिष्ठातिविषाभ्यां कल्क-  
कषायैः पचेत्तैलम् ॥ कफवातोत्थे मेहे  
पित्तकृते साधयेत्सर्पिः ॥ १०१ ॥

कोह, परवल, नीम, वच, अजमाइन, रास्ता, मजीठ,  
भिलावे, अगर, मोथा, कूठ, चीता, चन्दन, खस, गोखुरु  
और सफेद कत्था इनका काथ कर, उसमें नवीन परवल,  
हलदी, हरड, बहेडा, आमला, पाखानभेद, कोह, अज-  
मोद, लोध, मजीठ और अतीस, इनका कल्क डालकर  
पकाया हुआ घी 'अर्जुनाद्यघृत' कहाताहै, इस घीका उप-  
योग करनेसे पित्त संबंधी प्रमेह नष्ट होतेहैं, इसही का-  
थमे इसही कल्कसे पकाया हुआ तैल 'अर्जुनाद्यतैल' कहा  
ताहै, इस तेलका उपयोग करनेसे कफसंबंधी तथा वायु  
संबंधी प्रमेह दूर होतेहैं ॥ ९९-१०१ ॥

अथ सारलेहः ।

सारवर्गकषायं चतुर्थांशावशिष्टमवतार्य ।  
परिस्राव्य पुनरपनीय साधयेत् । सिध्याति  
चामलकलोध्रप्रियंगुदन्तीकृष्णायसताम्र-  
चूर्णान्यावपेत् । तदेतददग्धं लेहीभूतम-  
वतार्यानुगुप्तं निदध्यात् । ततो यथा-  
योगमुपयुञ्जीत । एष लेहः सर्वमेहानप-  
हन्ति ॥ १०२ ॥

सारवर्ग की औषधियोंका काथ करै, चौथाई पानी शेष  
रहनेपर उतारलेवै, वस्त्रसे छानकर फिर चूल्हे पै चढादेवै,  
पकनेपर उसमें आमले, लोध, प्रियंगू, दन्ती, लोहेकी भस्म  
और तौबेकी भस्म, इनका चूर्ण डालै, जब वह अवले-  
हके सदृश गाढा होजाय तो उसको उतार लेवै जिससे  
जल न जाय, फिर स्वच्छ पात्रमें करदेवै और योग्य शी-  
तिसे सेवन करै तो इससे सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होते-  
हैं ॥ १०२ ॥

अथ गोक्षुरकाद्यवलेहः ।

गोकण्टकं सदलमूलफलं गृहीत्वा संकु-  
टितं पलशतं कथितं तु तोये ॥ पादस्थि-  
तेन सलिलेन पलानि दत्त्वा पञ्चाशतं

तु विपचेदथ शर्करायाः ॥ १०३ ॥  
तस्मिन्धनत्वमुपगच्छति चूर्णितानि  
दद्यात्पलद्वयमितानि सुभाजनानि ॥  
शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलाजातीय-  
कोषककुभत्रपुसीफलानि ॥ १०४ ॥  
वांसीपलाष्टकमिह प्रणिधाय नित्यं लेहं  
तु शुद्धममृतं पलसंमितन्तु ॥ हन्त्याशु  
मूत्रपरिदाहविबन्धशुक्रकृच्छ्राश्मरीरुधिर-  
मेहमधुप्रमेहान् ॥ १०५ ॥

पत्र, जड तथा फलसहित चारसौ ( ४०० ) तोले  
गोखुरु लेवै, भलीभाँति कूटकर पानीमें काथकरै, चौथा  
भाग जलशेष रहनेपर उसमें दोसौ ( २०० ) तोले बूरा  
( चीनी ) डालकर पकावै, जब यह पानी गाढा होने लगै  
तब उसमें सोंठ, पीपल, मिरच, नागकेसर, तेजपात,  
इलायची, जायफल, ककोल, कोहके फल और खीरेके  
बीज, इन प्रत्येक पदार्थको आठ आठ तोले चूर्ण और  
वत्सीस तोले वशलोचनका चूर्ण डालकर उतार लेवै तो  
'गोक्षुरकाद्यवलेह' सिद्ध होताहै । यह शुद्ध अमृतकी सदृश  
अवलहेह नित्य चार तोले चाटै तो मूत्रका दाह, मल-  
वध, वीर्यके दोष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, रक्तप्रमेह और मधु-  
मेह इनको तत्काल नष्ट करैहै ॥ १०३-१०५ ॥

अथासनादियोगः ।

असनश्च प्रियालश्च शालं खदिरकं तथा ॥  
शालवर्गं तथा ग्राह्यं भवेच्चैतद्विचक्षणैः ॥  
॥ १०६ ॥ मधुमेहत्वमापन्नं भिषग्भिः  
परिवर्जितम् ॥ योगेनानेन मतिमान्प्रमे-  
हिणमुपाचरेत् ॥ १०७ ॥

पीतसाल, चिरोंजी, शाल, खैर और शालवर्गकी  
औषधि, इनका योगकर बुद्धिमान् वैद्य प्रमेह रोगीका  
उपचार करै तो जो प्रमेह मधुमेहताको प्राप्त होगयाहो  
तथा जिसकी चिकित्सा अन्य वैद्योंने छोड दी हो, वह प्रमे-  
हभी नष्ट होजाताहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ शिलाजतुस्वर्णमाक्षिकरौ-

प्यमाक्षिकप्रयोगाः ।

मासि शुके शुचौ वापि शैलाः सूर्याशु-  
तापिताः ॥ जतुप्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः

प्रस्रवन्ति हि ॥ १०८ ॥ शिलाजत्विति  
विख्यातं महाव्याधिनिवारणम् ॥ त्रप्वा-  
दीनां तु लोहानां षण्णामन्यतमश्च यत्  
॥ १०९ ॥ ज्ञेयं स्वगन्धतश्चापि षड्यो-  
निप्रथितं क्षितौ ॥ लोहाद्भवति तद्य-  
स्माच्छिलाजतु जतुप्रभम् ॥ ११० ॥  
तस्य लोहस्य तद्दीर्यरसं वापि विभर्ति  
तत् ॥ त्रपुसीसायसादीनि प्रधानान्युत्तरो  
त्तरम् ॥ १११ ॥ यथा तथा प्रयोगेऽपि  
श्रेष्ठे श्रेष्ठगुणाः स्मृताः ॥ तत्सर्वं तिक्त-  
कटुकं कषायातुरसं सरम् ॥ ११२ ॥  
रूटुपाक्युष्णवीर्यश्च शोषणं छेदनं तथा ॥  
तत्र यल्लघु कृष्णाभं स्निग्धं निःशर्करश्च  
यत् ॥ ११३ ॥ गोमूत्रगन्धि नीलं वा  
तत्प्रधानश्च वक्ष्यते ॥ तद्भावितां सारग-  
णैर्हृतदोषं दिनादितः ॥ ११४ ॥  
पिवेत्सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथावलम् ॥  
जांगलेन रसेनाद्यात्तस्मिञ्जीर्णे तु भोज-  
नम् ॥ ११५ ॥ उपयुज्य तुलामेकाम-  
मृतस्यास्य जन्मतः ॥ विजित्य मधुमे-  
हाख्यमातंकं रोगकारकम् ॥ ११६ ॥  
वपुर्वर्णवलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥  
शतंशतं तुलायां तु सहस्रं दशतौलि-  
कम् ॥ ११७ ॥ भल्लातकविधानेन  
परिहारविधिः स्मृतः ॥ मेहं कुष्ठमपस्मा-  
रमुन्मादं श्लेपदं परम् ॥ ११८ ॥ शोषं  
शोफार्शसी गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम् ॥  
व्यपोहत्यचिरात्कालगच्छिलाजतु निषेवि-  
तम् ॥ ११९ ॥ न सोऽस्ति रोगो यं  
वापि न निह्न्याच्छिलाजतु ॥ शर्करां  
शिरसम्भूतां भिनत्ति च तथाश्मरीम् ॥  
॥ १२० ॥ भावनालोडने चास्य कर्तव्ये  
श्लेषजैर्हितैः ॥ एवं च माक्षिकं धातुं  
तापीजममृतोपमम् ॥ १२१ ॥ मधुरं

काश्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम् ॥  
व्यपोहति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान् ॥  
तद्भावितांकुलत्थांश्च कपोतांश्च विवर्ज-  
येत् ॥ १२२ ॥

जेठ अथवा आपाढके महीनेमें सूर्यकी किरणोंसे तर-  
कर पर्वत अपनी शिलाओमेंसे लाखकी सट्टा रसको छोट-  
ताहै वह रस शिलाजीत कहाताहै और महारोगोंको नष्ट  
करताहै । सीसेको आदि लेकर लोहे पर्यंत छहों धातु-  
ओंका शिलाजीत होताहै इस भाँति शिलाजीत छै प्रका-  
रका है । अपनी अपनी गंधसे परीक्षा करनी चाहिये । जो  
शिलाजीत लोहसे लाखकी सट्टा उत्पन्न होताहै उसमें  
लोहेका रसवीर्य होताहै । राग, सीसा और लोहेमें जो ला-  
खकी सट्टा शिलाजीत उत्पन्न होतेहैं ये उत्तरोत्तर अधिक  
गुणवाले हैं । सब प्रकारके शिलाजीतोंमें लोहेका शिला-  
जीत श्रेष्ठ गुणवाला है । सब प्रकारके शिलाजीत कड़वे,  
चरपरे, कसैले रसके संवधी, दस्तावर, पाकमें चरपरे,  
वीर्यमें गरम, शोषण और मलच्छेदक हैं । जो शिलाजीत  
हल्का, काली तथा नीली कातियुक्त, स्निग्ध, शर्करारहित  
और गोमूत्रकी सट्टा गंधवाला होय वह श्रेष्ठ कहाताहै ।  
सारवर्गकी औषधियोंसे भावना देकर बारीक पीस शरीर  
आदिके बलानुसार सारगणके काथके साथ पिये और  
इसके पचनेपर जगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन  
करे । जन्मसे अमृतकी सट्टा यह शिलाजीत चारमां  
तोले खाय तो इससे मनुष्य महापीडायुक्त-मधुमेहनामक  
हाथीको जीतकर सौ वर्षतक आरोग्यतासे जीताहै और  
उसका, शरीर वर्ण तथा बल अति उत्तम होताहै । जब  
एक तुला ( ४०० तोले ) खानेसे सौ वर्षतककी आयु  
होतीहै तो दशतुला खानेसे हजार वर्षकी आयु होतीहै ।  
जितना परहेज मिलावे खानेमें होताहै, उतनाही परहेज  
इसमें करे । शिलाजीतका सेवन करनेसे प्रमेह, कोढ़, अन-  
स्मार, उन्माद, श्लेपद, क्षय, सूजन, बवासीर, गुल्म,  
पाण्डुरोग और विषमज्वर, ये तत्काल नष्ट होजातेहैं ।  
जिसको शिलाजीत नष्ट नहीं करसकै ऐसा कोई रोग  
भी नहीं है । शिलाजीत अधिक कालसे हुई पथरी  
शर्कराको भी नष्ट करदेताहै । हितकारी औषधियोंमें  
शिलाजीतकी भावना देवे तथा ऐसीही औषधियोंमें  
मिलावे । इसीप्रकार सोनामाखी अथवा रुपामाखी कि जो  
अमृतकी तुल्य हैं उनको सारगणकी औषधियोंसे भावन

देकर सारगणके काथके साथ पिये तो इससे ज्वर, कोढ़, प्रमेह, पांडुरोग तथा क्षय, इनका नाश होता है । जो सोनामाखी मधुर होय तथा सुवर्णकी सदृश वर्णवाली होय तथा जो रूपामाखी खारी और चाँदीके सदृश वर्णवाली होय वह उत्तम जाननी । सोनामाखी तथा रूपामाखी सेवन करनेवाले कुलथी और कबूतरका मांस त्याग देवें ॥ १०८-१२२ ॥

### अथ प्रमेहपिडिकाचिकित्सा ।

प्रमेहपिडिकानां प्राक्कार्य रक्तावसेचनम् ॥  
पाटनञ्च विपक्वानां तासां पाने प्रश-  
स्यते ॥ १२३ ॥ काथो वनस्पतेर्ब-  
स्तमूत्रं तीक्ष्णञ्च शोधनम् ॥ एलादिकेन  
कल्केन तैलं च व्रणरोपणम् ॥ १२४ ॥  
आरग्वधादिना काथं कुर्यादुद्धर्तनानि  
च ॥ शालसारादिना सेकान्भोज्यादींश्च-  
णकादिना ॥ १२५ ॥

प्रमेहसंबन्धी पिडिका होगई होय तो प्रथम उनमेंसे रुधिर निकलवावै और पकगई होय तो शस्त्रसे चिरवाना उत्तम है । वनस्पतियोंके काथसे, बकरीके मूत्रसे और तीक्ष्ण पदार्थोंसे पिडिकाओंकी जगह शुद्ध करै । शुद्ध करनेके पश्चात् इलायची आदि पदार्थोंके कल्कसे पकायाहुआ तेल लगावै कि जिससे व्रण भर आता है । पिडिकावालेको अमलतासआदिका काथ पिलावे और योग्य पदार्थोंसे उबटन और शालसारादिके योग्य काथसे सेचन करै, पिडिकावालेको चने आदि पदार्थोंका भोजन करावै ॥ १२३-१२५ ॥

### अथ प्रमेहिण आरोग्यपरीक्षा ।

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छि-  
लम् ॥ विशदं तिक्तकटुकं तदारोग्यं  
प्रचक्षते ॥ १२६ ॥

इति प्रमेहपिडिकानिदानचिकित्साधिकारः ।

जब प्रमेहरीगीका मूत्र स्वच्छ, पिच्छिलता रहित, विशद और तिक्त तथा कटुरसयुक्त होय, तब आरोग्य हुआ जानना ॥ १२६ ॥

इति प्रमेहाधिकारः समाप्तः ।

### अथ मेदोऽधिकारः ।

#### तत्र मेदोवृद्धिनिदानम् ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः ॥  
मधुराऽन्नरसप्रायःस्नेहान्मेदो विव-  
र्द्धते ॥ १ ॥

व्यायाम ( कसरत ) नहीं करनेसे, दिनमें सोनेके अभ्याससे, कफकारी आहारोंके सेवन करनेसे, मधुर अन्नसे, मधुर रसोंसे और घी आदि स्नेहोंके सेवनसे मेदकी वृद्धि होती है ॥ १ ॥

#### अथ मेदोवृद्धिसम्प्राप्तिः ।

मेदसावृतमार्गत्वात्पुण्यन्त्यन्ये न धा-  
तवः ॥ मेदस्तु चीयते तस्मादसक्तः  
सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

मेदसे मार्ग रुकनेके कारण अन्य धातुओंका पोषण नहीं होता इससे मेदा बढ़तीजाती है कि जिससे मनुष्य सर्व कामोंमें अशक्त होजाता है ॥ २ ॥

#### अथ मेदोवृद्धिलक्षणम् ।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नप्रकथनसादनैः ॥  
युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथु-  
नः ॥ ३ ॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरे हि  
व्यवस्थितम् ॥ अत एवोदरे वृद्धिः  
प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥ मेदसा-  
वृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः ॥ चर-  
न्सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥  
॥ ५ ॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारश्चापि  
कांक्षति ॥ विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चि-  
त्कालविपर्ययात् ॥ ६ ॥ एतावुपद्रवक-  
रौ विशेषादग्निमारुतौ ॥ एतौ हि दहतः  
स्थूलं वनं दावानलौ यथा ॥ ७ ॥  
मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः ॥  
विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु  
जीवितम् ॥ ८ ॥ मेदोमांसातिवृद्ध-  
त्वाद्वृद्धस्फिगुदरस्तनः ॥ मेदसोऽयथो-  
पचयान्नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥  
स्थूले स्युर्दुस्तराः कुष्ठा विसर्पाः सभ-



गन्दराः ॥ ज्वरातीसारमेहार्शःश्लीपदाप-  
चिकामलाः ॥ १० ॥ मेदसः स्वेददौर्ग-  
न्ध्याज्जायन्ते जन्तवोऽणवः ॥ ११ ॥

जिसके मेदकी वृद्धि हुई होय वह मनुष्य क्षुद्रावास, तृपा, मोह, निद्रा, पीडा, ग्लानि, क्षुधा, पसीना तथा दुर्गन्धतासे युक्त होता है और अल्पशक्तिवाला तथा अल्प-  
भैयुनवाला होजाता है । मेद सब प्राणियोंके पेटमें रहती है इस लिये मेदकी वृद्धिवाले मनुष्यका अधिक करके पेट बढजाता है । वायुका मार्ग मेदसे रुकनेके कारण वह वायु विशेष करके कोठेमें ही फिरती रहनेसे अग्निको प्रदीप्त करे है और खाये हुए अन्नको सुखाभी डाले है कि जिससे मेदवृद्धिवाले मनुष्यको आहार तत्काल पचजाता है और फिर भोजन करनेकी इच्छा होती है । कुछ कालके अनन्तर इस मनुष्यके भयकर विकार भी उत्पन्न होते हैं, अग्नि और वायु ये विशेष करके उपद्रवोको उत्पन्न करें हैं और जिस प्रकार दावानल ( अग्नि ) वनको जला देती है उसी प्रकार ये मेद उस मोटे मनुष्यको जला देती है । मेद अत्यन्त बढनेपर वायुआदि धातु सहसा दारुण विका-  
रोको उत्पन्न करके तत्काल जीवनका नाश करदेती है, मेद और मासकी अत्यन्त वृद्धि होनेपर मनुष्यके कूले पेट और स्तन हला करते हैं । जिसका मेद अयोग्य प्रकारसे बढता होय, वह मनुष्य बहुत मोटा कहाता है । मोटे मनु-  
ष्यको कोढ़, विसर्प, भगदर, ज्वर, अतीसार, प्रमेह, ववासीर, श्लीपद, अपची और कामला, ये रोग दुस्तर होजाते हैं । मेदसे पसीनेमें दुर्गन्धता होनेपर सूक्ष्म सूक्ष्म जीवभी होजाते हैं ॥ ३-११ ॥

अथ मेदोवृद्धिचिकित्सा ।

पुराणाः शालयो मुद्गाः कुलत्थोद्दालको-  
द्रवाः ॥ लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेद-  
स्विना सदा ॥ धूमपानं तथा क्रोधो  
रक्तमोक्षणमेव च ॥ १२ ॥ जीर्णे च  
भोजनं कार्यं यवगोधूमयोः सदा ॥  
उपवासोऽसुखा शय्या सत्त्वौदार्यं तमो-  
जयः ॥ १३ ॥ सन्तर्पणकृतैर्दोषैः  
स्थौल्याद्युत्तया विमुच्यते ॥ श्रमचिन्ता-  
व्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ॥ १४ ॥

हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभो-  
जनः ॥ सचव्यजीरकव्योषहिंशुसौवर्चला  
नलाः ॥ १५ ॥ मस्तुना सक्तवः पीता  
मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ फलत्रयं त्रिकटुकं  
सतैलं लवणान्वितम् ॥ १६ ॥ षण्मासा-  
दुपयोगेन कफमेदोऽनिलापहम् ॥ विडङ्गं  
नागरं क्षारः काललोहरजो मधु ॥ १७ ॥  
यवामलकचूर्णैस्तु योगोऽयं स्थौल्यनाश-  
नः । मूलं वा त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं मधू-  
दकम् ॥ १८ ॥ चित्वादिपञ्चमूलस्य  
प्रयोगः क्षौद्रसंयुतः ॥ अतिस्थौल्यहरः  
प्रोक्तो मण्डलं सेवितो ध्रुवम् ॥ १९ ॥  
कर्कशदलवह्निसलिलं शतपुष्पाहिगुसंयु-  
क्तम् ॥ पुटके निहन्ति नियतं सर्वभवां  
मेदसां वृद्धिम् ॥ २० ॥ क्षारं वातारि-  
पत्रस्य हिंशुयुक्तं पिबेन्नरः ॥ मेदोवृद्धिवि-  
नाशाय भक्तं मण्डसमन्वितम् ॥ २१ ॥  
गवेषुकानां पिष्टानां यवानाश्चाथ सक्तवः ॥  
सक्षौद्रत्रिफलाकाथाः पीता मेदोहरा  
मताः ॥ २२ ॥ गुडूची त्रिफलाकाथस्त  
था लोहरजोऽन्वितः ॥ अश्मजं महिषाक्षं  
वा तेनैव विधिना पचेत् ॥ २३ ॥ अति-  
मुक्ताद्वीजमध्यं मधुलीढं हन्त्युदरवृद्धिम् ॥  
मधुना चित्रकमूलं तथैव हितभोजनो  
भुंक्ते ॥ यद्वोरुवूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते  
निशां सकलाम् ॥ तस्य सलिलस्य  
पानाज्जठरे वृद्धिं शमं याति ॥ २४ ॥ प्रातर्म  
धुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ॥  
उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत्  
॥ २५ ॥ बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसा-  
धिता ॥ स्थौल्यनुत्स्यादग्निमन्थरसकाथः  
शिलाजतु ॥ २६ ॥ शैलेयकुष्ठागुरुदेव-  
दारुकौन्तीसमुस्तान्यथ पञ्चपत्रैः ॥

श्रीवासपृक्काखरपुष्पदेवपुष्पं तथा सर्व-  
मिदं प्रपिष्य ॥ २७ ॥ धत्तूरपत्रस्य  
रसेन गाढमुद्धर्तनं स्थौल्यहरं प्रदिष्टम् ॥ २८ ॥

मेदकी वृद्धिवाला मनुष्य सदा पुराने चावल, मूग, कुलथी, वनकुलथी और कोदों तथा लेखनवस्ति, इनका सेवन करे । यह मनुष्य धूमपान, क्रोध तथा रक्तमोक्षण ( फस्त खुलवाना ) इनका सेवन करे । उपवास, सुख न हो ऐसी शय्यामें शयन, मनकी उदारता और निद्रा आदि तमोगुणके जीतनेसे स्थूलता नष्ट होजातीहै । स्थूलता कि जो अत्यन्त तृप्त करनेवाले दोषोंसे हुई है उससे मुक्त होनेके लिये यह युक्ति है कि परिश्रम, मैथुन, मार्ग, मदिरा और रात्रिजागरण, इनसे प्रेम रक्खै, चितामें तत्पर रहे और जौ तथा समेके भोजन करे ऐसा मनुष्य अपनी अत्यन्त स्थूलताको अवश्य नष्ट करदेताहै । चव्य, जीरा, त्रिकुट्टा, हींग, कालानौन और चीता, इनका चूर्ण डालकर दहीके पानीके साथ सत्तू पिये तो इससे मेद नष्ट होजातीहै और अग्निदीपन होतीहै । अथवा हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, तेल और लवण, इनको छै महीनेतक भली भाँति उपयोग करे तो इससे कफ, मेद तथा वायु नष्ट होतीहै । वायविडग, सोंठ, जवाखार, कान्तिसार, जौ तथा आमला, इनके चूर्णमें सहत मिलाकर खाय तो इससे अत्यन्त स्थूलता नष्ट होतीहै । मूली, अथवा त्रिफलेका चूर्ण सहतमें मिलाकर सहत मिले पानीके साथ सेवन करे, अथवा बृहत्पञ्चमूलका चूर्ण सहतमें मिलाकर खाय, इसप्रकार जो चालीस दिनतक करे तो इससे अवश्य अत्यन्त स्थूलता नष्ट होतीहै । परवल और चीता, इनका काथ कर, इसमें सोफ तथा हीगका चूर्ण डालकर पिये तो इससे पेटमें सर्व प्रकारसे हुई मेदकी वृद्धि अवश्य नष्ट होतीहै अथवा एरडका क्षार हींग डालकर पिये और ऊपरसे मांडसहित भात खाय तो इससे मेदकी वृद्धि नष्ट होजातीहै । गवेधुक, ( मुनियोके खानेका अन्नविशेष ) अथवा जौके सत्तू और त्रिफलेके काथमे सहत डालकर पिये तो इससे मेदकी वृद्धि दूर होतीहै । गिलोय, हरड, बहेडा और आमला, इनके काथमे लोहभस्म डालकर पिये तो मेदकी वृद्धि नष्ट होतीहै । शिलाजीत अथवा गूगलको उपरोक्त गिलोय आदिके काथमें पकाकर खाय तो मेदकी वृद्धि दूर होतीहै । अतिमुक्त ( कुन्दपुष्पमेद या माधवीलता ) के

बीजके मध्यभागको सहतमें मिलाय चाटनेसे मेदोवृद्धि दूर होतीहै, चीतेकी जडका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे, अथवा एरडकी जडको रात्रिभर सहतमे भीजा रहनेदेवे उसके रसको प्रातःकाल पिये और हितकारी भोजनका नियम रक्खै तो उदरकी वृद्धि नष्ट होतीहै । प्रातःकाल नित्य सहत मिलाकर जल पिये तो मोटापन दूर होताहै । पकाये हुए भातका गरम मांड पिये तो शरीर कृश होताहै । बेरके पत्तोंका कल्क डालकर, कांजीसे पकाई पेया सेवन करे तो इससे मेदकी वृद्धि दूर होतीहै । अथवा अरनीके काथमे शिलाजीत डालकर पिये तो इससे स्थूलता नष्ट होतीहै । शिलाजीन, कूठ, अगर, देवदार, रेणुकानामक सुगंधित द्रव्य, मोथा, श्रीवास, स्पृक्का, पिण्डशाक, ब्राह्मी और लोग इन सबको धत्तूरेके पत्तोंके रससे पीसकर, शरीरको भलीभाँति मलै तो स्थूलता नष्ट होतीहै ॥ १२-२८ ॥

### अथामृतादिगुग्गुलुः ।

अमृताक्षुटिवेल्हवत्सकं कलिपथ्यामल-  
कानि गुग्गुलुः ॥ क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं  
पिडिकास्थौल्यभगन्दराञ्जयेत् ॥ २९ ॥

गिलोय एक भाग, इलायची दो भाग, वायविडग तीन भाग, इन्द्रजौ चार भाग, बहेडा पांच भाग, हरड छै भाग, आमला सात भाग और गूगल आठ भाग, इनको सहतमे मिलाकर खाय तो इससे पिडिका स्थूलता और भगदर इनका नाश होताहै ॥ २९ ॥

### अथ दशांगगुग्गुलुः ।

व्योषामित्रिफलामुस्ताविडंगैर्गुग्गुलुं समम् ॥  
खादन्सर्वाञ्जयेद्याधीन्मेदः श्लेष्मामवात-  
जान् ॥ ३० ॥

सोठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मोथा और वायविडग इनका चूर्णकर सबकी बराबर गूगल मिलाकर खाय तो मेद, कफ, आम और वायु इनसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोग नष्ट होतेहै ॥ ३० ॥

### अथ त्र्यूषणादिगुग्गुलुः ।

त्र्यूषणाग्निवनवेल्हवचाभिर्भक्षयन्समघृतं-  
महिषाक्षम् ॥ आशु हन्ति कफमारुतमे-  
दोदोषजान्बलवतोऽपि विकारान् ॥ ३१ ॥

सोठ, मिर्च, पीपल, चीता, मोथा और वच इनका वर्ग गूगलमें डालकर गूगलकी बराबर ही मिलावे तो शूषणादि गूगल सिद्ध होता है, यह गूगल कफसे, वायुसे, तथा, मेदके दोपेसे हुए बलवान् विकारोको तत्काल नष्ट करेहै ॥ ३१ ॥

### अथ लोहरसायनम् ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं  
वृषम् ॥ त्रिवृताऽलम्बुषी शुण्ठी निर्गुण्डी  
चित्रकस्तथा ॥ ३२ ॥ एषां दशपला-  
न्भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत् ॥ पाद-  
शेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥  
॥ ३३ ॥ पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहं  
सुचूर्णितम् ॥ ३४ ॥ पुराणसर्पिषः प्रस्थं  
शर्कराष्टपलान्वितम् ॥ पचेत्ताम्रमये  
पात्रे सुशीते चावतारिते ॥ ३५ ॥  
प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्व-  
यम् ॥ एलात्वचः पलार्द्धञ्च विडंगानि  
पलत्रयम् ॥ ३६ ॥ मरिचाञ्जनकृष्णे द्वे  
द्विपलञ्च फलान्वितम् ॥ पलद्वयन्तु  
कासीसं सूक्ष्मचूर्णकृतं बुधैः ॥ ३७ ॥  
चूर्णं दत्त्वा सुमथितं क्षिप्वे भाण्डे निधा-  
पयेत् ॥ ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमा-  
त्रकम् ॥ ३८ ॥ अनुपानं पिवेत्क्षीरं जां-  
गलानां रसं तथा ॥ वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं  
कुष्ठमेहोदरापहम् ॥ ३९ ॥ कामलां  
पाण्डुरोगञ्च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥  
सूक्ष्मामोहविषोन्मादगराणि विषनाणि  
च ॥ ४० ॥ स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे  
परमौषधम् ॥ कषयेच्चातिमात्रेण कुक्षि-  
पातालसन्निभम् ॥ ४१ ॥ वल्यं रसायनं  
मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ श्रीकरं पुत्र-  
जननं वलीपलितनाशनम् ॥ ४२ ॥  
नाश्रीयात्कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्द-

कम् ॥ करीरं कारवेल्लञ्च ककारादि  
विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

गूगल, मुसली, हरड, बहेडा, आमला, खैर, अह-  
सेकी छाल, निसोत, गोरखमुडी, सोठ, निर्गुण्डी और  
चीता ये प्रत्येक पदार्थ चालीस चालीस तोले लेकर  
पाँच आढक ( २० सेर ) जलमें कायकरे, चौथा भाग  
जल शेष रहै तब कायको उतार उसमें भली माँति  
चूर्णित किया हुआ अडतालीस ( ४८ ) तोले कानलोह,  
चौसठ तोले पुराना घी और बत्तीस तोले शर्करा ( बूरा,  
चीनी ) डालकर तौत्रेके पात्रमें फिर उसका पाककरे,  
शीतल होजानेपर उतारलेवे, फिर उसमें बत्तीस तोले  
सहत, आठ तोले शिलाजीत, दो तोले इलायची, दो  
तोले दालचीनी, बारह तोले वायविडग, आठ तोले मिर्च,  
आठ तोले रसोत, चार तोले पीपल और आठ तोले  
कसीस, इनका चूर्ण डाल मथकर क्षिप्व पात्रमें उसको  
रक्खै तो लोहरसायन सिद्ध होती है । वमन विरेचनादिसे  
शरीरको शुद्ध करके उसमेंसे एक तोलेभर खाय और  
उसके ऊपर दूध तथा जांगल देशके जीवोंके माशका  
रस पिये । यह रसायन श्रेष्ठ है और वायु, कफ, कोढ़,  
प्रमेह, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, भगदर,  
सूच्छा, मोह, विष, उन्माद और विषम विषको भी नष्ट  
करे है । यह रसायन स्थूलताको कर्षण करनेका उत्तम  
उपाय है, मेदरोगीकी परम औषधि है, पातालकी सदृश  
पेटको अत्यंत पतला करनेवाला है, तथा बलदा-  
यक, बुद्धिको स्वच्छ करनेवाला, उत्तम वाजीकरण, लक्ष्मी-  
दायक, पुत्रदाता और वलीपलितनाशक है । इस रसाय-  
नको सेवन करनेवालेने केला, कन्द, कौजी, करादे, करील,  
करेला, यह छै ककार त्याग करने चाहिये ॥ ३२-४३ ॥

### अथ लौहारिष्टः ।

शालसारादिनिर्यूहं चतुर्थांशावशेषितम् ॥  
परिस्मृत ततः शीतं मधुना मधुरीकृतम् ॥  
॥ ४४ ॥ फाणितीभावमापन्नं गुडे शोधि-  
तमेव च ॥ सूक्ष्मपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्या-  
दर्गणस्य च ॥ ४५ ॥ ऐकध्यमावपेत्कुम्भे  
संस्कृते घृतभाविते ॥ पिप्पलीचूर्णमधुभिः  
प्रलिप्ते चान्तरे शुचौ ॥ ४६ ॥ श्लक्ष्णानि  
तीक्ष्णलोहस्य तनुपत्राणि बुद्धिमान् ॥

खदिराङ्गारतप्तानि बहुशः प्रक्षिपेद् बुधः॥  
 ॥ ४७ ॥ सुपिधानं ततः कृत्वा यवखल्वे  
 निधापयेत् ॥ मासांस्त्रींश्चतुरो वापि याव-  
 द्वा लोहसंक्षयात् ॥ ४८ ॥ ततो जातरसं  
 जन्तुः प्रातःप्रातर्यथाबलम् ॥ उपयुञ्ज्या-  
 द्यथायोग्यमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ४९ ॥  
 एष स्थूलं समाकर्षेन्नष्टस्याग्नेः प्रशोधनः ॥  
 शोथघ्नः कुष्ठमेहघ्नो गुल्मपाण्डुमयापहः ॥  
 ॥ ५० ॥ प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वर-  
 नाशनः ॥ अभिष्यन्दापहरणे लोहारिष्ठो  
 महागुणः ॥ ५१ ॥

शालसार आदि औषधियोंका काथ कर चौथा भाग  
 जल शेष रहनेपर वस्त्रसे छान लेवै फिर शीतल होनेपर  
 सहत डालकै मधुर करै, पश्चात् गुडकी चासनीकर पिण-  
 ल्यादि गणका चूर्ण और वह काथ मिलावै, फिर धी  
 चुनडे पवित्र पात्रमें पीपलका चूर्ण और सहत लगाकर  
 उसको रक्खै, पश्चात् बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण लोहके पतले  
 पत्रोंको खैरके अग्निमें बारबार तपातपाकर उसमें डालै,  
 फिर पात्रका मुख भलीभाँति बंदकर उस घडेको तीन  
 चार सहीनेतक अथवा जबतक लोहा गले तबतक जौके  
 ढेरमें रक्खै, यह सब लोहा उसमें रसरूप होजाय तो  
 लोहारिष्ठ सिद्ध होताहै । शरीरादिकके बलानुसार प्रातः—  
 काल यह लोहारिष्ठ पिये और उसके ऊपर योग्य आहार  
 करै तो लोहारिष्ठ स्थूल शरीरको पतला करदेताहै, नष्ट  
 हुई जठराग्निकों प्रदीप्त करताहै और सूजन, कोढ़, प्रमेह,  
 गुल्म, पाण्डुरोग, प्लीहा, उदररोग और अभिष्यन्द इनको  
 नष्ट करैहै, विषमज्वरको तत्काल नष्ट करैहै और भी  
 अधिक गुण करैहै ॥ ४४-५१ ॥

अथ व्योषाद्यसक्तप्रयोगः ।

व्योषचित्रकाशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहि-  
 णीम् ॥ बृहत्यौ द्वे हरिद्रे च पाठामातिवि-  
 षां स्थिराम् ॥ ५२ ॥ हिगुकेमुकमूलानि  
 यवानीं धान्यचित्रकम् ॥ सौवर्चलमजा-  
 जीञ्च हपुषाश्चेति चूर्णयेत् ॥ ५३ ॥  
 चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः॥

सक्तूनां षोडशगुणे भागे सन्तर्पणं पि-  
 बेत् ॥ ५४ ॥ प्रयोगात्त्वस्य शाम्य-  
 न्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ॥ प्रमेहा  
 मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥  
 ॥ ५५ ॥ प्लीहा पाण्ड्वामयः शोथो  
 मूत्रकृच्छ्रमरोचकः ॥ हृद्गो राजयक्ष्मा  
 च कासश्वासौ गलग्रहः ॥ ५६ ॥ कृमयो  
 ग्रहणीदोषः श्वेत्यं स्थौल्यमतीव च ॥  
 नराणां दीप्यते वह्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च  
 वर्द्धते ॥ ५७ ॥

सोठ, भिरच, पीपल, दूनोचीता, सईजना, हरड,  
 बहेडा, आमला, कुटकी, दोनों प्रकारकी कटेरी, हलदी,  
 दारुहलदी, पाठ, अतीस, शालपर्णी, हींग, सुपारीकी जड़,  
 अजवायन, धनिया, कालानोंन, जीरा और हाउबेर  
 इनका चूर्ण करै, पश्चात् इस चूर्णको धीके और सहतके  
 समान ले सोलह गुने सत्तू डालकर सत्तू पियै । इस प्रयो-  
 गकी तृप्तिसे हुए रोग, प्रमेह, मूढवात, कोढ़, बवासीर,  
 कामला, प्लीहा, पाण्डुरोग, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृद-  
 यरोग, क्षयरोग, खासी, श्वैस, गलग्रह, कृमि, ग्रहणी,  
 श्वेतकोढ़ और अत्यत स्थूलता, इनको नष्ट करैहै, अग्नि  
 दीपन होतीहै और बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बढ़ती-  
 है ॥ ५२-५७ ॥

अथ त्रिफलाद्यतैलम् ।

त्रिफलातिविषा मूर्वा त्रिवृच्चित्रकवासकैः ॥  
 निम्बारग्वधषडग्रन्थासप्तपर्णनिशाह्वयैः ॥  
 ॥ ५८ ॥ गुडूचीन्द्रासुरीकृष्णाकुष्ठसर्ष-  
 पनागरैः ॥ तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसा-  
 दिरसप्लुतम् ॥ ५९ ॥ पानाभ्यञ्जनग-  
 ण्डूषनस्यवास्तिषु योजितम् ॥ स्थूलताल-  
 स्यपाण्डादीञ्जयेत्कफकृतान्गदान् ॥ ६० ॥

हरड, बहेडा, आमला, मूर्वा, निसोत, चीता, अड्डसा,  
 नीम, अमलतास, वच, सतवन, हलदी, गिलोय, इन्द्र-  
 वारुणी, पीपल, कूठ, सरसो और सोठ, इनको समान  
 भाग लेकर उनके कल्कसे पकाया हुआ तेल सुरसादि-  
 गणके काथके साथ पीनेमें, अभ्यङ्गमें, गण्डूय धारण  
 ( कुले करने ) में, नस्यमें और पिचकारी देनेमें, उप-

योग करै तो इससे स्थूलता, आलस्य तथा पाण्डुता आदि कफसंवन्धी सब रोग नष्ट होतेहैं ॥ ५८-६० ॥

अथ महासुगन्धितैलम् ।

चन्दनं कुंकुमोशीरप्रियंगुवृद्धिरोचनाः ॥  
तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥  
॥ ६१ ॥ जातीकंकोलपूगानां लवंगस्य  
फलानि च ॥ नलिका नलदं कुष्ठं हरेणु-  
तगरं प्लवम् ॥ ६२ ॥ नवव्याघ्रनखं  
स्पृक्का बोलो दमनकं तथा ॥ स्थौणेयकं  
चोरकश्च शैलेयं शैलवालुकम् ॥ ६३ ॥  
सरलं सप्तपर्णश्च लाक्षा तामलकी तथा ॥  
लामज्जकं पद्मकश्च धातक्याः कुसुमानि  
च ॥ ६४ ॥ प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः  
शाणमात्रकैः ॥ महासुगन्धमित्येतत्तैल-  
प्रस्थेन साधयेत् ॥ ६५ ॥ प्रस्वेदमल-  
दौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् ॥ अनेनाभ्य-  
क्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ॥ ६६ ॥  
युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तव-  
ल्लभः ॥ सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च  
प्रमदाशतम् ॥ ६७ ॥ बन्ध्यापि लभते  
गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ अपुत्रः पुत्रमा-  
प्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ६८ ॥

चन्दन, केसर, खस, प्रियंगु, इलायची, गोरोचन, लोवान, अगर, कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफल, ककोल, सुपारी, लोंग, नली, जयमोक्षी, कूठ, रेणुका, तगर, नागरमोथा, नवीन व्याघ्रका नख, स्पृक्का, वाल, दौना, स्थौणेयक, चोरक, शैलेय, एलुआ, सरल, सतवन, लाख, आमला, लामज्जकतृण, पद्माख, वायके फूल, पुण्डरीक और कर्चूर, ये प्रत्येक पदार्थ तीन तीन मासे लेकर इससे चौसठ तोले तैल पकावै, तो महासुगन्धि तैल सिद्ध होताहै । इस तेलसे पसीना, मलसे हुई दुर्गन्धता, खुजली तथा कोढ़, भली भौंति नष्ट होताहै । इस तैलका अभ्यग ( मालिश ) करै तो सत्तर वर्षका वृद्ध भी युवा, अधिक वरियवान्, स्त्रियोंको अत्यत प्रिय, भाग्यवान्, सुन्दर और सौ स्त्रियोंसे सग करने को समर्थ होताहै । व या स्त्रियोंके गर्भ रहताहै,

नपुंसक पुरुषताको प्राप्त होताहै, विना पुत्रवाली स्त्रीके पुत्रकी प्राप्ति होतीहै और आयु सौ वर्षकी होती- है ॥ ६१-६८ ॥

वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः ॥  
विल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः  
॥ ६९ ॥ अलम्बुपाभवं चूर्णं पीतं  
काञ्जिकसंयुतम् ॥ दौर्गन्ध्यं नाशयत्याशु  
दृष्टं मेदोभवं नृणाम् ॥ ७० ॥ विल्व-  
शिवासमभागा लेपाद्भुजमूलगन्धमपहर-  
ति ॥ परिणतपिडकामपि पृतिकरञ्जो-  
त्थवीजं वा ॥ ७१ ॥ चिञ्चापत्रस्वरसं-  
मिश्रितकक्षादियोजितं जयति ॥ ह्रस्व-  
हरिद्रोद्वर्तनमचिराच्चिरदेहदौर्गन्ध्यम् ॥  
॥ ७२ ॥ शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्व-  
ग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः ॥ पत्राम्बुलौहा-  
भयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः  
॥ ७३ ॥ हिलमोचिरसो युक्तश्चूर्णैरुद-  
धिफेनजैः ॥ प्रलेपेन हरत्याशु देहदौर्ग-  
न्ध्यमुत्कटम् ॥ ७४ ॥ हरीतकी तु सम्पि-  
ष्य गात्रमुद्वर्तयेत्तरः ॥ पश्चात्स्नानं प्रकु-  
र्वीत देहस्वेदप्रशान्तये ॥ ७५ ॥ हरीतकी  
लोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कल-  
श्च ॥ एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जम्बवाः  
कषायस्तु नराधिपानाम् ॥ ७६ ॥  
गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं वर्णोज्ज्वलं  
गोपयसा च युक्तम् ॥ कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं  
पयोभिः शस्तं वशीकृद्जननीद्वयेन ॥ ७७ ॥  
वम्बुलस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिपे-  
षितैः ॥ गात्रमुद्वर्तयेत्पश्चाद्धरीतक्या  
सुपिष्टया ॥ ७८ ॥ भूय उद्वर्तनं कृत्वा  
पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ प्रस्वेदान्मुच्यते  
शीघ्रं ततस्त्वेवं समाचरेत् ॥ ७९ ॥ विल्वा-  
म्रजम्बूफलपूरकाणां पत्रैः कपित्थस्य दला  
नुमिश्रैः ॥ अनूपवत्कर्माविधानयोगैर्वचा



विशोध्या वरगन्धहेतोः ॥ ८० ॥ पथ्या-  
नखीचन्दनकुष्ठसर्जैः पुनःपुनश्चागुरुशर्क-  
राभ्याम् ॥ धूपो जनानां हृदयापहारी  
विख्यातनामा मलयानिलोऽयम् ॥ ८१ ॥  
चण्डांगुगतिलैर्लोधशिरीषोशीरकेसरैः ॥  
उद्धर्तनं भवेद्ग्रीष्मे स्वेदकर्मनिवारणम् ॥  
॥ ८२ ॥ मुरया सममभयाफलचूर्णं मधु-  
ना विलिख्य प्रत्यूषे ॥ स्वेदान्हत्वा लभते  
पुरुषोऽप्यत्यन्तसौरभ्यम् ॥ ८३ ॥ मल्ली-  
कुसुमाभयकरिलेपो धर्मे विचर्चिकादाहे ॥  
विचकिलपत्रहरिद्रे पर्कटिपत्रञ्च दूर्वया  
सहितम् ॥ ८४ ॥ सम्पिष्य गात्रलेपाद्भ-  
र्मविचर्ची शमं याति ॥ ८५ ॥ हस्तपाद-  
स्रुतौ योज्यं गुग्गुलुः पञ्चतित्तकम् ॥ अश-  
क्तौ पञ्चतित्तं वा पक्वं खादेदतन्द्रितः ८६ ॥

इति मेदोरोगाधिकारः ।

अङ्गुलिके पत्तोंके रसमें शखका चूना मिलाकर लेप करनेसे अथवा बेलके पत्तोंके स्वरसका लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥

गोरखमुंडीको पीसकर कांजीके साथ पीनेसे मेदसे उत्पन्न हुई मनुष्यके शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥

बेलके पत्ते और हरड इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बगलकी दुर्गंध दूर होती है ॥

इमलीके पत्तोंका रस निकालकर किसी उत्तम औषधिके कल्कके साथ मिलाकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥

हलदीको दूधमें पीसकर उसका शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध बहुत दिनोंकी होय तो भी दूर होजाती है ॥

सिरस, लामजक, नागकेसर और लोध इनका चूर्ण करके शरीरपर मलनेसे त्वचाके दोष और पसीना दूर होजाता है ॥

बेलके पत्ते, सुगंधवाला, काली अगर, खस और चदन इनको पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥

समुद्रफेनको ब्राह्मीके रसमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी विगेष दुर्गंध तत्काल नष्ट होजाती है ॥

हरडोको पीसकर शरीरपर मलकर पश्चात् स्नान करनेसे शरीरका पसीना बंद होता है ॥

हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनको पीसकर लो और पुरुषोंके शरीरपर मलनेसे शरीरकी दुर्गंधता दूर होती है ॥

जामुनके पत्तोंका कल्क बनाकर उसका लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंधता दूर होती है ॥

हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कोढ़ दूर होजाता है । गायके दूधमें पीसकर लेप करनेसे वर्ण उज्ज्वल होता है । जलमें पीसकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है । और हलदी तथा दारुहलदीके साथ पीसकर लेप करनेसे उत्तम वगीकरण होता है ॥

बबूरके पत्तोंको उत्तम प्रकारसे जलमें पीसकर शरीरपर मले, फिर हरडको जलमें पीसकर उससे शरीरको मले और इन दोनों पदार्थोंको मलनेबाद स्नान करै तो पसीनेकी अधिकता तत्काल दूर हो जाती है ॥

स्नान करनेके पश्चात् हरड, छोटी नखी, चदन, कूठ, राल, अगर और खाड इनकी धूप बारंवार देवे, इससे शरीरमें सुगंधता उत्पन्न होती है । मनुष्योंके चित्तको हरनेवाली यह धूप 'मलयानिले' इस नामसे प्रसिद्ध है ॥

दारुहलदी, तिल, लोध, सिरसकी छाल, खस और केसर इनको पीसकर शरीर पर मलनेसे ग्रीष्म ऋतुमें पसीनेका अधिक आना बंद होता है ।

हरडके चूर्णको मद्य अथवा सहतके साथ चाटे तो पसीना दूर होकर अत्यंत सुगंध आती है ॥

पसीना अधिक आता होय और विचर्चिका तथा दाह होय तो मोतियाके पत्ते सुगंधवाला और नागकेसर इनका लेप करे ॥

मोतियाके पत्ते, हलदी, जलपीपलके पत्ते और दाख इनको पीसकर शरीरपर लेप करनेसे पसीना और विचर्चिका दूर होती है ॥

जो हाथ पोंव पसीजते होंय तो गूगल और पंचतित्त नामक सिद्ध किये घीका उपयोग करे । शरीरमें शक्ति न होय तो पथ्यसे रहकर पंचतित्त वृत्तको भक्षण करे ॥ ६९-८६ ॥

इति मेदोरोगाधिकारः ।

## अथ काश्याधिकारः ।

तत्र कृशतानिदानम् ।

वातो रुक्षान्नपानानि लंघनं प्रमिताशनम् ॥ क्रियातियोगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ॥ १ ॥ नित्यं रोगो रतिर्नित्यं व्यायामो भोजनाल्पता ॥ भीतिर्धनादिचिन्ता च काश्ये कारणमीरितम् ॥ २ ॥

लंघनमुपवासः । प्रमितमल्पम् । क्रियातियोगः वमनविरेकाद्यतिविधानम् । वेगनिद्राविनिग्रहः निद्रानिग्रहः विशोषाय ॥

वायु, रुध अन्नपान, लंघन, अल्पभोजन, वमन, तथा विरेचन आदि क्रियाओंका अतियोग, शोक, मूत्र आदिके वेगोका रोकना, निद्राका रोकना, सर्वदा रोग, नित्य मैथुन, नित्य कसरत, भोजनका थोड़ा मिलना, भय और धनआदिचिन्ता, इनसे कृशता (दुबलापन) होताहै, निद्राको रोकनेसे तुरन्त कृशता होती है ॥ १ ॥ २ ॥

## अथ कृशलक्षणम् ।

शुष्कस्फिगुदरग्रीवाधमनीजालसन्ततिः ॥  
त्वगस्थिशेषोऽतिकृशः स्थूलपर्वाननो  
मतः ॥ ३ ॥

जिसका कूला, पेट, तथा गरदन सूखीहुई होय, शरीर में नसोंका जाल दीखताहो, त्वचा तथा हड्डिये ही जेप होय, तथा सीधिये और मुख मोटा होय वह मनुष्य अत्यन्त कृश कहाताहै ॥ ३ ॥

## अथात्यन्तकृशतारोगाः ।

प्लीहकासक्षयश्वासगुल्माशांस्युदराणि च ॥  
भृशं कृशं प्रधावन्ति रोगाश्च ग्रहणीमुखाः ॥  
कश्चिदन्यः कृशोऽतीव बलवान्दृश्यते  
तदा ॥ ४ ॥

अत्यन्त कृश मनुष्यको प्लीहा, खोंसी, श्वास, गुल्म, ववासीर, उदररोग और ग्रहणीआदि रोग दौडकर प्राप्त होते हैं, कोई २ कृश मनुष्य भी अत्यन्त बलवान् दीखते हैं ॥ ४ ॥

अथ सत्यपिकृशे बलवत्त्व-  
कारणम् ।

आधानसमये यस्य शुक्रभागांश्चिको  
भवेत् ॥ मेदोभागस्तु हीनः स्यात्स कृशोऽ-  
पि महाबलः ॥ ५ ॥

यस्य आधानसमये जनयितुः शुक्रस्य आधिक्यं भवति, मेदसोऽल्पता तस्य कृशस्यापि बहुबलमित्यर्थः ॥

गर्भाधानके समय जिसमें पिताके वीर्यका भाग अधिक आया हो और मेदका भाग अल्प होय, वह मनुष्य कृश होनेपर भी बहुत बलवाला होताहै ॥ ५ ॥

अथ सत्यामपि स्थूलतायां  
बलहीनत्वकारणम् ।

मेदसस्त्वधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको  
भवेत् ॥ स स्निग्धोऽपि सुपुष्टोपि बलहीनो  
विलोक्यते ॥ ६ ॥

व्याख्यानं पूर्ववत् ॥

गर्भाधानके समय जिसमें पिताके वीर्यका भाग अल्प आया हो, और मेदका भाग अधिक हो, वह मनुष्य भली भौंति स्निग्ध होनेपर और भली भौंति पुष्ट होनेपर भी बलहीन देखनेमें आते हैं ॥ ६ ॥

## अथ काश्यचिकित्सा ।

रुक्षान्नादिनिमित्ते तु कृशे युञ्जीत भेष-  
जम् ॥ वृंहणं बलकृद्दृष्यं तथा वाजीकरञ्च  
यत् ॥ ७ ॥ पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमासं  
घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ॥ कृशस्य पुष्टिं  
वपुषो विधत्ते बालस्य शस्यस्य यथा-  
म्बुघृष्टिः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य रुक्ष अन्नपानादिसे कृश हुआ हो उसको बलदायक, धातुओंको पुष्ट करनेवाले, मैथुनमें रुचिकर्ता और वाजीकर औषधि देवै । अथवा एक पक्षतक दूधके साथ, घीके साथ, तैलके साथ,

अथवा उष्ण जलके साथही असगंधका चूर्ण पिये तो जिस प्रकार जलकी वृष्टिसे धान्योकी पुष्टता होती है उसी प्रकार, उसके शरीरकी पुष्टता होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथाश्वगंधातैलम् ।

अश्वगन्धस्य कल्केन काथे तस्मिन्पय-  
स्यपि ॥ सिद्धं तैलं कृशाङ्गानामभ्यंगादंग-  
पुष्टिदम् ॥ ९ ॥

असगंधके काथमें दूध तथा असगंधकाही कल्क डाल-  
कर पकाये हुए तेलसे अभ्यग करै तो मनुष्यके अंग पुष्ट  
होते हैं ॥ ९ ॥

अथाश्वगंधाघृतादि ।

पुष्टिकृद्भालरोगोक्तमश्वगन्धाघृतं भजेत् ॥  
वाजीकरोदितं तद्दश्वगन्धाघृतादि-  
कम् ॥ १० ॥

बालकोंके रोगोमें जो अश्वगन्धाघृत कहेंगे वह तथा  
वाजीकरणके प्रकरणमें जो अश्वगन्धा घृतादि कहेंगे वह सब  
पुष्टिकारक हैं ॥ १० ॥

अथासाध्यकृशता ।

स्वभावादतिकाश्र्यो यः स्वभावादल्पपा-  
वकः ॥ स्वभावादबलो यश्च तस्य नास्ति  
चिकित्सितम् ॥ ११ ॥

इति कार्श्यचिकित्साधिकारः ।

जो मनुष्य स्वाभाविक रीतिसेही अत्यंत कृश होय, अल्प  
अग्निवाला होय और निर्बल होय वह असाध्य है उसकी  
चिकित्सा नहीं करै ॥ ११ ॥

इति कार्श्यचिकित्साधिकारः समाप्तः ।

अथोदराधिकारः ।

तत्रोदरनिदानम् ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि  
च ॥ अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मल-  
सञ्चयात् ॥ १ ॥

अग्नौ मन्दे सर्वे रोगाः जायन्ते । किन्तु  
सुतराम् अतिशयेन उदराणि जायन्ते ।

अपरानपि हेतूनाह, अजीर्णात् मलिनैश्चान्नैः  
अत्यन्तदोषजनकैः । मलसञ्चयात् मलादीनां  
पुरीषस्य च अतिवृद्धेः । अत्र उदरशब्देन  
उदरस्थो रोग उच्यते । यत आह—

अर्थतो धर्मतः साम्यात्तत्समीपतयापि  
च ॥ तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरुक्ता  
चतुर्विधा ॥ २ ॥

यदि जठराग्नि मंद होगई होय तो सम्पूर्ण रोग होते हैं,  
और उनमें उदरके रोग तो अत्यंत होते हैं । अजीर्णसे,  
अत्यंत दोष उत्पन्न करनेवाले अन्नसे और दोष तथा विष्टा-  
की अत्यन्त वृद्धिसेभी उदररोग होते हैं ॥ १ ॥

मूलमें केवल उदर शब्द है, परन्तु उस शब्दसे यहाँ  
उदरमें रहनेवाले रोग जानने, क्योंकि कहा है कि—“कहीं  
अर्थसे, कहीं धर्मसे, तथा उस पदार्थमें रहनेसे, कहीं  
समीपमें रहनेसे, और कहीं साथ रहनेसे, इस भाँति  
शब्दोंकी वृत्ति चार प्रकारकी मानी जाती है ॥ २ ॥

अथोदररोगसम्प्राप्तिः ।

रुद्धा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि  
सञ्चिताः ॥ प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनय-  
न्त्युदरं नृणाम् ॥ ३ ॥

सचय हुए दोष पसीना तथा जलको वहन करनेवाले  
स्रोतोंको रोककर जठराग्नि, प्राणवायु और अपान वायुको  
दूषित करके उदरके रोगोंको उत्पन्न करे हैं ॥ ३ ॥

अथोदररोगसामान्यरूपम् ।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाऽ-  
ग्निता ॥ शोथः सदनमंगानां संगो वात-  
पुरीषयोः ॥ दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु  
भवन्ति हि ॥ ४ ॥

अफारा, चलनेमें अशक्तता, दुर्बलता, अग्निकी मंदता,  
सूजन, अग्नोमें ग्लानि, वायु तथा विष्टाका अवरोध,  
दाह और तन्द्रा, ये लक्षण सर्व प्रकारके उदर रोगोंमें  
होते हैं ॥ ४ ॥

अथोदररोगनिदानपूर्वकसंख्या ।  
पृथग्दोषैः समस्तैश्च ग्रीहवद्भक्षतोदकैः ॥

सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक्छृ-  
णु ॥ ५ ॥

वात, पित्त, कफ, तीनोंदोष, ग्रीहा, गुदाका अवरोध, क्षत, और पेटमें पानीकी एकत्रता, इनसे आठ प्रकारके उदररोग होतेहैं । इन आठ प्रकारके उदररोगोंके अनुक्रमसे वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, ग्रीहोदर, वदोदर, क्षतोदर और जलोदर, इस भाँति आठ नाम हैं । इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहतेहैं सुनो ॥ ५ ॥

अथ वातोदरलक्षणम् ।

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपन्नाभिकु-  
क्षिषु ॥ कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरूपवर्ध-  
नम् ॥ ६ ॥ शुष्ककासोऽगमर्दश्च गुरुता  
मलसंग्रहः ॥ श्यावारुणत्वगादित्वमक-  
स्माद्भासवृद्धिमत् ॥ ७ ॥ सतोदभेदमु-  
दरं तनुकृष्णशिराततम् ॥ आध्मातद्व-  
तिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥ वायु-  
श्चात्र स्रक्छब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः ॥ ८ ॥

कुक्षिपार्श्वोदरेत्यत्र कुक्षिशब्द उदरस्य  
वामदक्षिणभागद्वयवाची । सर्वतोगतिः सक-  
लकोष्ठे सञ्चरन् ॥

वातोदर हुआ होय तो हाथ पोंव, नाभि तथा पे-  
टमें सूजन होतीहै, पेटकी दोनों पसलियोंमें, को-  
खमें, पेट तथा कमर और पीठमें पीडा होतीहै, सबियें  
टूटतीहैं, सूखी खोंखी होतीहै तथा अंगोका दूटना,  
भारीपन, मलोंका संग्रह, त्वचा आदिमें कालापन तथा  
लाली, पीडाका अकस्मात् वदना घटना, पेटमें छेदन तथा  
भेदनकी भाँति पीडा, पेटका काली सूक्ष्म सूक्ष्म नसोंसे  
व्याप्त होना, पेटको हाथसे बजानेपर फुली मशककासा शब्द  
हो और सब कोठोंमें वायु विचरता हुआ पीडा तथा शब्द  
करताहै ये लक्षण होतेहैं ॥ ६-८ ॥

अथ पित्तोदरलक्षणम् ।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुका-  
स्यता ॥ भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादा-  
बुदरं हरित् ॥ ९ ॥ पीतताम्रशिरानङ्गं  
सस्वेदं सोष्म दह्यते ॥ धूमायते मृदुस्पर्श  
क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १० ॥

हरित् शाकवर्णात्मकम् । सोष्म अन्त-  
स्तापयुक्तम् । दह्यते बहिर्दाहयुक्तं भवति ।  
धूमायते धूममिव उद्गमति । क्षिप्रपाकं क्षि-  
प्रपाकाज्जलोदरं जायते । प्रदूयते व्यथते ॥

पित्तोदर हुआ होय तो ज्वर, मूर्च्छा, दाह, तृषा,  
मुखमें तीखापन, भ्रम, अतीसार और त्वचा आदिमें पीलापन  
होताहै । पेट शाककी भाँति हरे वर्णवाला, पीली तथा  
लाल नसोंसे बधेहुएकी समान, पसीने सहित हो, भीतर  
उष्णतायुक्त हो, बाहर दाह हो और आतोंसे धुआँसा  
निकलता हो, स्पर्शमें मृदु, पाक शीघ्रहोय और पीडायुक्त  
होताहै, तथा तुरन्त पकजावे उससे जलोदर होजाता-  
है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ कफोदरलक्षणम् ।

श्लेष्मोदरेऽगसदनं श्वयथुर्गौरवं तथा ॥  
तन्द्रोत्क्लेशोऽरुचिः स्वापः कासः शौक्ल्यं  
त्वगादिषु ॥ ११ ॥ उदरं स्तिमितं  
स्निग्धं शुल्कराजीततं महत् ॥ चिराभिष्टुद्धिं  
कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १२ ॥

गौरवमंगानाम् । तन्द्रा निद्राबाहुल्यम् ।  
उत्क्लेशो हल्लासः । स्वापः स्पर्शज्ज्ञता । शुक्ल-  
राजीततं शुक्लशिराव्याप्तम् ॥

कफोदर हुआ होय तो अंगोंमें ग्लानि, सूजन, गुरुता,  
तन्द्रा, उत्क्लेश ( वमन होनेवालीसी जातहो ), अरुचि,  
अंगोंमें स्पर्श करनेसे मालुम न हो, खोंखी, त्वचादिक श्वेत  
हों, और पेट बँधासा चिकना, सफेद नसोंसे व्याप्त, मोटा,  
अधिककालमें बढनेवाला, कठोर, स्पर्शमें शीतल, भारी  
तथा गडगडाहट रहित हो, यह लक्षण होतेहैं ॥ ११ ॥  
॥ १२ ॥

अथ सन्निपातोदरलक्षणम् ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखलोममूत्रविडार्तवैर्युक्त-  
मसाधुवृत्ताः ॥ यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो  
गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाच्च ॥ १३ ॥  
तस्याशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुप्युः

सघोरं जठरं त्रिलिंगम् ॥ तच्छीतवाते  
भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते  
च ॥ १४ ॥ स चातुरो मूर्च्छति हि  
प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्ण्या  
च ॥ दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं  
कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥

स्त्रिय इत्यविवेकिसन्निहितजनोपलक्षणम्।  
ताश्च स्वसौभाग्यमिच्छन्त्यः । विट् मा-  
र्जारादीनाम् । आर्तवं रजः । अरयः शत्रवः।  
गरान्संयोगजानि विषाणि । दुष्टमम्बु सवि-  
षमत्स्यतृणपर्णादियुक्तम् । दूषीविषं विषमेव  
अग्न्याद्युपघातेन स्वल्पप्रभावम् । यत उक्तम्  
“जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवाता-  
तपशोषितं वा । स्वभावतो वा गुणविप्र-  
युक्तं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥” गुणविप्र-  
युक्तं गुणवियुक्तं तदुदरं शीतादिषु कुप्यति ।  
तत्र दूषीविषस्य प्रकोपात् । मूर्च्छति विष-  
योगात् । प्रसक्तं निरन्तरम् । एतदेव सन्नि-  
पातोदरं तन्त्रान्तरे दूष्योदरं कीर्तितम् ।  
अथ वा परस्परं दूषयन्ति दोषा एव दूष्याः  
तैः कृतम् उदरं दूष्योदरम् ॥

खोटे आचरणयुक्त स्त्री-वशीकरण आदिकी इच्छासे  
जिस पुरुषको नख, रोम, मूत्र, विष्टा, आर्तव ( रजोदर्शका  
रक्त ), इनसे युक्त किया हुआ अन्न खिलावै उस पुरुषको  
अन्य भी पाका अविवेकी मनुष्य जिसको ऐसा अन्न  
खिलावै उसको, शत्रु जिसके सयोगसे विष खिलावै, अथवा  
विषैली मछली, विषैले पत्ते आदिका पानी जो पियै उसको  
और दूषित विष ( अग्निआदिसे उपघात होनेके कारण  
शल्य प्रभाव युक्त विष ) जिसके खानेपीनेमें आवै उसके  
कुपित हुआ रुधिर और कुपित हुए दोष तत्काल त्रिदो-  
षोंके चिह्नयुक्त अति भयंकर उदर रोगको उत्पन्न करैहै  
यह उदररोग शीतल पवनके समयमें और जिस समय  
आधिक वादल धिरे होय उस समय विशेष करके कुपित

होताहै तथा दाह और मूर्च्छित भी कर देताहै । क्योंकि  
इन समयोमे दूषित विषका प्रकोप होताहै, तथा विषके  
योगसे मूर्च्छा होना भी संभव है । यह रोगी मनुष्य नित्य  
पाण्डु, कृश और तृषासे व्याकुल रहताहै । यह उदररोगों  
‘सन्निपातोदर’ कहाताहै और अन्य ग्रन्थोंमें इसको  
‘ दूष्योदर ’ इस नामसे भी कहा है । परस्परसे दूषित  
हुए दोष भी दूष्य कहातेहैं इस कारण दूष्यके किये उद-  
ररोगको ‘ दूष्योदर ’ भी कहाहै अब प्लीहोदरके लक्षण  
कहतेहैं सुनो ॥ १३-१५ ॥

### अथ प्लीहोदरलक्षणम् ।

वर्द्धते प्लीहवृद्ध्या यद्विद्यात्प्लीहोदरं हि  
तत् ॥ तद्गमे वर्द्धते पार्श्वे निमित्तं तत्र  
तस्य यत् ॥ १६ ॥ प्रवृद्धे प्लीहि लिगानि  
यान्युक्तानि भिषग्वरैः ॥ प्लीहोदरेऽपि दृ-  
श्यन्ते तानि सर्वाणि देहिनाम् ॥ प्लीहोदर-  
स्यैव भेदो यकृद्वाल्युदरं तथा ॥ १७ ॥

तस्य पुनरपि विशेषकमित्याह ।

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्वा-  
ल्युदरं तदेव ॥ १८ ॥

यकृद्वालयति दोषैर्भिनत्तीति यकृद्वाल्यु-  
दरम् । तदेव उदरमेव ॥

प्लीहाके बढनेसे पेट जो बढजाताहै उसको ‘प्लीहोदर’  
कहतेहैं, ‘प्लीहा बॉई’ पसलीमें होतीहै इससे पेटभी वाम-  
ओरका बढताहै । उत्तम वैद्योंने प्लीहा बढनेके जो लक्षण  
कहेहैं वे लक्षण सब प्राणियोंके प्लीहोदर नामक रोगमें  
भी दीखतेहैं । ‘यकृद्वाल्युदर’ नामक जो उदररोगका एक  
भेद है वह भी प्लीहोदरकी एक जाति है । प्लीहो-  
दरसे यकृद्वाल्युदरमें पृथक्ता इतनीही है कि जो दाहिनी  
ओरकी गाठ है वह ‘यकृत्’ कहाती है, उसके बढनेसे  
दाहिनी ओरका पेट बढजाताहै, उसको ‘यकृद्वाल्युदर’  
कहतेहैं । इस रोगमे दोषोंके कारण यकृत् भिदजाताहै  
इस लिये इस रोगका नाम यकृद्वाल्युदर है ॥ १६-१८ ॥



जिसकी अन्नमें अरुचि हो, सूजन तथा दस्त होते हैं और विरेचन देनेपर भी पेट पूर्ण होगया हो उसकी चिकित्सा नहीं करें ॥ २६-३१ ॥

**अथोदररोगचिकित्सा ।**

**ऐरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तं त्रिफ-  
लारसो वा ॥ निहन्ति वातोदरशोथशूलं  
काथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ ३२ ॥**

अण्डीका तेल, दशमूलका काथ मिलाकर अथवा गोमूत्र, त्रिफलेका रस मिलाकर वा दशमूलके काथमें गोमूत्र मिलाकर पिये तो इससे वायुसम्बन्धी उदररोग सूजन तथा शूल नष्ट होताहै ॥ ३२ ॥

**अथ कुष्ठादिचूर्णम् ।**

**कुष्ठं दन्ती यवक्षारो व्योषं त्रिलवणं  
वचा ॥ अजाजी दीप्यकं हिंगु स्वर्जिका  
चव्यचित्रकम् ॥ शुण्ठी चोष्णाम्भसा  
पीता वातोदररुजापहा ॥ ३३ ॥**

कृठ, दन्ती ( जमालगोटेकी जड़ ), जवाखार, सोंठ, मिरच, पीपल, सैधा, साभर, सौचलनोंन, वच, जीरा, अजनायन, हींग, सजी, चव, चीता और सोंठ इनका चूर्णकर उष्ण जलसे पिये तो वायुसम्बन्धी उदररोग नष्ट होताहै, इसको 'कुष्ठादि चूर्ण' कहतेहैं ॥ ३३ ॥

**अथ लशुनतैलम् ।**

लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपाचयेत् ॥  
त्रिकटु त्रिफला दन्ती हिंगु सैन्धवचि-  
त्रकम् ॥ ३४ ॥ देवदारु वचा कुष्ठं मधु  
शिशुः पुनर्नवा ॥ सौवर्चलं विडंगानि  
दीप्यको गजपिप्पली ॥ ३५ ॥ एतेषां  
पलिकान्भागान्निवृतः षट्पलानि च ॥  
पिष्ट्वा कषायेणानेन तैलं मृद्वग्निना प-  
चेत् ॥ ३६ ॥ तत्पिवेत्प्रातरुत्थाय यथा-  
मिवलमात्रया ॥ निहन्ति सकलात्रोगा-  
नुदराणि विशेषतः ॥ ३७ ॥ सूत्रकृच्छ्र-  
मुदावर्तमन्त्रवृद्धि गुदक्रिमीन् ॥ पार्श्वकु-  
क्षिभवं शूलमामशूलमरोचकम् ॥ ३८ ॥  
यकृदष्टीलिकानाहान्छीहानं चांगवेदना-

**म् ॥ मासमात्रेण नश्यन्ति अशीतिर्वात-  
जा गदाः ॥ ३९ ॥**

एक तुला ( चारसौ तोले ) लहसनका एक द्रोण (१०२४ तोले ) जलमें काथकरै, पश्चात् सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दन्ती, हींग, सैधा, चीता, देवदारु, वच, कृठ, मुलेठी, सहजना, पुनर्नवा, सौचलनोंन, वायविडंग, अजमाइन, तथा गजपीपल, ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोलेभर और निसोत २४ तोले लेकर पीस लेवै, यह कल्क उस काथमें डालकर कोमल अग्निसे तैल पकावै । प्रातःकाल उठकर अग्नि तथा बलानुसार योग्य मात्रासे यह तेल पिये तो इससे सब रोग नष्ट होतेहैं और उदररोग विशेष करके दूर होतेहैं । सूत्रकृच्छ्र, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाकी कृमि, पसली तथा कोखका शूल, आमशूल, अरुचि, यकृत, अष्टीलिका, आनाह, छीहा और अंगमें हुई पीडा, इस तेलके प्रयोगसे नष्ट होतीहै । तथा वायुसम्बन्धी अस्सी प्रकारके वायुरोग एक महीनेतक इस तेलका सेवन करनेसे नष्ट होतेहैं, इसको 'लशुनतैल' कहतेहैं ॥ ३४-३९ ॥

**अथ पित्तोदरकफोदरचिकित्सा ।**

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् ॥  
पयसा च त्रिवृत्कल्कै रुबूकस्य श्रुतेन  
च ॥ ४० ॥ पिप्पल्यादिगणेनाज्यं पाचितं  
पाययेद्विषक् ॥ नरं पथ्यभुजं नित्यं  
कफोदरनिवृत्तये ॥ ४१ ॥ नागरत्रिफ-  
लाकल्कैर्दध्यम्बुपरिपेषितैः ॥ पाचितं  
तैलमाज्यं वा पिवेत्सर्वोदरेषु च ॥ ४२ ॥  
शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम् ॥  
निरुहो रेचनं श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥  
॥ ४३ ॥ आनूपमौदकं मांसं शाकं  
पिष्टकृतं तिलाः ॥ व्यायामाध्वदिवा-  
स्वप्नस्नेहपानानि वर्जयेत् ॥ ४४ ॥  
तथोग्निलवणोष्णानि विदाहीनि गुरुणि  
च ॥ नाद्यादन्नानि जठरे तोयपानञ्च  
वर्जयेत् ॥ ४५ ॥ उदराणां मलाढयत्वा-  
द्बहुशः शोधनं हितम् ॥ क्षीरमेरण्डजं  
तैलं पिवेन्मूत्रेण वा शकृत ॥ ४६ ॥  
वातोदरी पिवेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वि-

तम् ॥ शर्करामारिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी  
पिबेत् ॥ ४७ ॥ यवानीहपुषाजाजीव्यो-  
षयुक्तं कफोदरी ॥ सन्निपातोदरी युक्तं  
त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥ ४८ ॥

पित्तसंबन्धी उदररोग हुआ होय और रोगी बलवान् हो तो उसको प्रथमही दूध, निसोतका कल्क और अडीका काथ, इनसे विरेचन देवै । और यदि उदररोग कफसे हुआ होय तो रोग नष्ट करनेके लिये नित्य पथ्य खानेका रोगी नियम रखै, वैद्य पिप्पली आदि गणकी औषधियोसे पकाया हुआ तेल पिलावे । सोंठ, हरड, बहेडा तथा आमला, इनको दहीके पानीमे पीस कल्क करै, फिर उस कल्कसे पकाया हुआ तेल अथवा घी पिलावे तो सर्वप्रकारके उदररोग नष्ट होजातेहैं । ये नागरादि तैल वा घृत इन नामोंसे कहेहैं । शालिचावल, साठीके चावल, गेहूँ, जौ तथा नीवार इनका भोजन, निरुहवास्ति और विरेचन, ये सब विधि उदररोगोंमें हितकारी हैं । अथवा उदररोगी अनूप देशके जीवोंका तथा जलजंतुओंका मांस, शाक, पिष्टीसे बने पदार्थ, तिल, व्यायाम ( कसरत ), मार्गका चलना, दिनमें सोना और स्नेहपान, इनका त्याग करै । उदररोग हुआ होय तो उग्र ( तीक्ष्ण ), खारी, गरम, दाहकारक, और भारी पदार्थ नहीं खाय तथा पानीभी नहीं पियै । इस रोगमे पेट अधिक मलके समूहसे युक्त रहताहै इस कारण अधिकवार विरेचनसे शुद्ध करै यह हितकारी होताहै । दूधमें अण्डीका तेल मिलाकर पियै, अथवा गायका गोबर मूत्रमें डालकर पियै । वायुसे हुआ उदररोगी पीपल तथा सैन्धा, इनका चूर्ण डालकर गाढा-तक्र ( मट्ठा ) पियै, पित्तसे हुआ उदररोगी बूरा तथा मिरचोंको डालकर मीठा मट्ठा पियै और कफसे हुआ उदररोगी अजवायन, हाऊवेर, जीरा, सोंठ, मिरच तथा पीपल इनका चूर्ण डालकर गाढा मट्ठा पियै, और त्रिदोष ( सन्निपात ) से हुआ उदररोगी सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और सैन्धानिमक, इनका चूर्ण डालकर गाढा मट्ठा पिये ॥ ४०-४८ ॥

अथ नारायणचूर्णम् ।

यवानी हपुषा धान्यं त्रिफला चोपकु-  
श्विका ॥ कारवीपिप्पलीमूलमजगन्धा  
शटी वचा ॥ ४९ ॥

उपकुश्विका कारवी च बृहज्जीरकः मंग-  
रैला इति लोके ॥

शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी च चित्र-  
कम् ॥ द्वौक्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवण-  
पञ्चकम् ॥ ५० ॥ विडंगश्च समांशानि  
दन्त्या भागत्रयं भवेत् ॥ त्रिवृद्धिशाला  
द्विगुणा शातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ ५१ ॥

विशाला इन्द्रवारुणी । शातला सेहुण्ड  
इति प्रसिद्धः ॥

एष नारायणो नाम्ना चूर्णो रोगगणापहः ॥  
एनं प्राप्य निवर्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः  
॥ ५२ ॥ तक्रेणोदारिभिः पेयो गुल्मिभि-  
र्बदराम्बुना ॥ आनद्धवाते सुरया वात-  
रोगे प्रसन्नया ॥ ५३ ॥ दधिमण्डेन विड्-  
भेदे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ॥ परिकर्तिषु  
वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ ५४ ॥

परिकर्तिः गुदे परिकर्तनवत्पीडा ॥

भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥  
हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुब्जे मन्देऽनले ज्वरे  
॥ ५५ ॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे  
विषे ॥ यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्वि-  
रेचनम् ॥ ५६ ॥

अजवायन, हाऊवेर, धनिया, हरड, बहेडा, आमला, कालाजीरा, कलौंजी, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, वच, सतावर, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, चोक्र, चीता, जवा-खार, सजी, पोहकरमूल, कूठ, पोंचोनोन और वायविडंग, इनको समान भाग लेवै, तथा दन्ती ( जमालगोटकी जड़ ), तीन भाग, निसोत दो भाग, इन्द्रायन दो भाग और थूहर चार भाग लेव, फिर इन सबका चूर्ण करै तो 'नारायणचूर्ण' बनताहै । यह चूर्ण रोगोंके समूहको नष्ट करताहै, जिस प्रकार विष्णुके प्रभावसे दैत्य भागजाते हैं, उसी प्रकार

इस चूर्णके प्रभावसे रोग भागजाते हैं । यह चूर्ण उदर-रोगवाले गाढे मूँठके साथ पिये, गुल्मरोगी बेरकी छालके साथसे पिये, आनाहरोगमें मदिरेके साथ पिये, वायु रोग-वाले मदिरेकी कांजीके साथ पिये, दस्तोंमें दहीके मूँठसे पिये, बवासीर रोगवाला दाडिमके रससे पिये, पेटमें कत रनेकेसी पीडा होय तो तितडीकसे पिये और अजीर्ण रोगी गरम पानीके साथ पिये। भगदर, पाण्डुरोग, खासी, श्वास, गलगण्ड, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, कुब्जवात रोग, मदाग्नि, ज्वर, दातका विष, मूलका विष और अकृत्रिम विषसे बनावे हुए विष, इनमें भी प्रथम कोठेको स्निग्ध करके पश्चात् योग्य पदार्थके साथ यह विरेचन करनेवाला नारा-चूर्ण पिये ॥ ४९-५६ ॥

### अथ नाराचघृतम् ।

स्तुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडंगासिंहीत्रिवृच्चि-  
त्रककर्षकर्षम् ॥ घृतं विषकं कुडवप्रमाणं  
तोयन तस्याक्षमथार्द्धकर्षम् ॥ ५७ ॥ पी-  
त्वोष्णमम्भोऽनुपिचेद्विरेके पेयां रसं वा  
प्रपिबेद्विधिज्ञः ॥ नाराचमेतज्जठरामयानां  
युक्त्योपयुक्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ५८ ॥

शुद्धका दूध, दन्ती, हरड, बहेडा, आमला, वाय-  
विडंग, कटेरीकी जड़, निसोत और चीता, ये प्रत्येक  
पदार्थ एक एक तोलाभर ले, उनके कल्कसे सोलह तोले  
घी पकाये, तो 'नाराचघृत' सिद्ध होता है । विरेचनके लिये  
पानीके साथ एक तोला अथवा आधा तोला, घी पीकर-  
ऊपरसे गरम पानी पिये । विधि जाननेवाला पुरुष इस  
चीसे विरेचन होनेपर योग्य पेया अथवा योग्य रस पिये ।  
जिस प्रकार वाण निशानको तोड़ता है तिसी प्रकार युक्तिके  
उपयोगमें लाया हुआ यह घी उदरके रोगोंको नष्ट कर-  
देता है ऐसा वैद्य कहते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

### अथ वज्रकल्कः ।

वज्रायाः कर्षमात्रायाः कल्कं दध्यादिवे-  
ष्टितम् ॥ निगिलेद्धारिणा नित्यमुदरव्या-  
धिशान्तये ॥ ५९ ॥

वज्राण्डोति वनसूरणेति लोके ॥

वनसूरणका एक तोला कल्क करके उस कल्कको  
दही ग्राहसे भिलाकर नित्य पानीसे खाये तो उदररोग  
जात होते हैं ॥ ५९ ॥

### अथ पुनर्नवादिकाथः ।

पुनर्नवा दारुनिशा सतिक्ता पटोलपथ्या-  
पिचुमन्दमुस्ताः ॥ सनागरच्छिन्नरुहेति  
सर्वैः कृतः कषायो विधिना विधिज्ञैः  
॥ ६० ॥ गोमूत्रयुग्गुग्गुलुना च युक्तः  
पीतः प्रभाते नियतं नराणाम् ॥ सर्वांग-  
शोथोदरपाण्डुशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं  
निहन्ति ॥ ६१ ॥

पुनर्नवादिः काथः ॥

इति उदररोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

पुनर्नवा, दारुहलदी, कुटकी, परवल, हरड, नीम,  
मोथा, सोंठ और गिलेय, इन सब पदार्थोंको एकत्र  
करके विधिअनुसार काय करे, उस काथमें गोमूत्र तथा  
गूगल डालकर प्रातःकाल पिये तो इससे सब प्रकारके  
अंगकी सूजन, उदररोग, पाण्डुरोग, शूलरोग और श्वास  
आदि रोगोंका समूह अवश्य नष्ट होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति उदररोगाधिकारः संपूर्णः ।

### अथ शोथाधिकारः ।

तत्र शोथनिदानम् ।

शुद्ध्यामयाभक्तकृशावलानां क्षाराम्लती-  
क्ष्णोष्णगुरूपसेवा ॥ दध्याममृच्छाकविरो-  
धिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ १ ॥  
अशीस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मर्माभिघातो  
विषमा प्रसूतिः ॥ मिथ्योपचारः प्रतिकर्म-  
णाश्च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥ २ ॥

शुद्धिः-वमनविरेकादिः । आमयाः पाण्डु-  
रोगादयः । अभक्तम्-अभोजनम् । आमः  
अपको भुक्तस्य रसः । पिष्टगरोपसृष्टान्नम्  
पिष्टो यो गरः संयोगजं विषं तेन संसृष्टम-  
न्नम् । वपुषो ह्यशुद्धिः शोधनार्हस्य वपु-

षोऽशोधनम् । मर्मोपघातः दोषकृत् एव ज्ञेयः । बाह्यहेतुकृतस्तु मर्मोपघात आगन्तुजशोथहेतुरेव । विषमा प्रसूतिः आमगर्भपतनादिका । प्रतिकर्मणां वमनादिपञ्चकर्मणाम् । मिथ्योपचारः असम्यक्करणम् । श्वयथोः शोथस्य । निजस्य आत्मीयस्य सन्निकृष्टस्य हेतुर्वाताद्यात्मकस्य उक्तः ॥

वमन, विरेचन आदि शोधनसे, पाण्डुरोगादि रोगोंसे अथवा उपवासोंसे कृश हुए अथवा निर्बल हुए लोगोंके सूजन होती है । खारी, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण अथवा भारी पदार्थोंको सेवन करनेसे भी सूजन होती है । दहीके सेवनसे, खाये हुए अन्नके अपक्करसे, मट्टी, शाकपरस्परमे विरुद्ध अथवा संयोगसे विरुद्ध हुए ऐसे अन्नोके सेवनसे, बवासी रसे, शरीरको परिश्रम नहीं होनेसे, शोधनके योग्य हुए शरीरको वमन विरेचनादि देकर शुद्ध नहीं करनेसे, दोषोंसे हुए मर्मस्थलोंके उपघातसे, कच्चा गर्भ गिरना आदि विषम प्रसवसे और वमन आदि पाँचो कर्म अयोग्य रीतिके होनेसे, वायु आदि दोषसम्बन्धी सूजन उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शोथस्य सम्प्राप्तिपूर्वकसामान्य-  
लक्षणम् ।

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिः शिराः ॥ नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥ उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥ ३ ॥ सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माश्च शिरातनुत्वम् ॥ सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिंगं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ४ ॥

उत्सेधम् उन्नतत्वम् । किंविशिष्टम् उत्सेधम् । अतः पूर्वोक्तान्निचयादक्तपित्तकफवातानां समुदायात् संहतं घनम् । तमुत्सेधं शोथमाहुरित्यन्वयः । तस्य शोथस्य किं स्यात् । इत्याकांक्षायामाह अनवस्थितत्वं स्यात्, अनियता स्थितिः स्यादित्यर्थः । चिकित्साव्यतिरेकेणापि निवृत्तेः । तच्च

अनवस्थितत्वं सगौरवं स्यात् । गौरवमपि अनवस्थितं स्यात् । अथ च सोत्सेधं स्यात् । उन्नतत्वमपि अनवस्थितं स्यादित्यर्थः ॥

दूषित वायु रुधिर, पित्त तथा कफ यह बाहरकी शिराओंमें प्राप्त होय और गति रुकजाय तो त्वचा तथा मांसमें रुधिर, पित्त तथा कफके समुदायसे अधिक ऊँचाईको उत्पन्न करैहै उसको सूजन कहतेहैं, इस सूजनकी स्थिति अनियमित होतीहै, क्योंकि वह सूजन समयपर चिकित्सा न होनेसे भी उतर जातीहै, यह अनियमितपन गुरुतायुक्त होताहै, गुरुता ( भारीपन ) भी बिना नियमके होतीहै और सूजनकी ऊँचाई भी बिना व्यवस्थाके होतीहै । सूजनसे उष्णता, शिराओंकी दुर्बलता, रोमोंका खडा होना और वर्णका बदलना ये सामान्य लक्षण सूजनमें होतेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वातजशोथलक्षणम् ।

चरस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः प्रसुप्तिहर्षार्त्तियुतोऽनिमित्ततः ॥ प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवाबली स्याच्छ्वयथुः समीरणात् ॥ ५ ॥

चरः सञ्चारी । प्रसुप्तिः स्पर्शाज्ञता । हर्षोऽत्र फिनिफिनी रोमाश्चो वा । अर्त्तिः पीडा । एतद्युतः दिवाबली विकृतिविषमसमवायारब्धत्वात् । अत एव उक्तं चरकेण—  
स्नेहोष्णवमनाद्यैर्यः प्रशाम्येत स वातिकः ॥  
यश्चाप्यरुणवर्णः स्याच्छ्वयथो नक्तं प्रशाम्यति ॥ ६ ॥

वायुसंबन्धी सूजन—चंचल, पतली त्वचावाली, कठोर, लाल, काली, स्पर्शमें अज्ञान, रोमाच तथा पीडा सहित, बिना कारणही शात होनेवाली, दवानेसे ऊँची और दिनमें बलवान् होतीहै । इस सूजनमें दिनको बलवान् होनेका कारण यह है कि, वह विकृतिविषमसमवायसे होतीहै, इस कारणही चरकमें कहा है कि “जो सूजन स्नेहसे, उष्णसे तथा वमन आदिसे

शांत होय और लालवर्णकी हो वह सूजन वायुसंबंधी जाननी" ॥ ५ ॥ ६ ॥

### अथ पित्तजशोथलक्षणम् ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ॥ यस्तूप्यते स्पर्शसहोऽक्षिरागवान्स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ७ ॥

उप्यते सन्तप्यते । भृशदाहपाकवान् भृशं दाहो यः पाकस्तद्युक्तः ॥

जो सूजन—मृदु, गन्धसहित, काले तथा पीलेवर्णवाली हो, भ्रम, ज्वर, स्वेद ( पसीना ), तृष्णा, तथा मद्दसे संयुक्त हो, दाह हो, स्पर्शको सहै, नेत्रोंमें लाली होजाय, और पकते समय अत्यंत दाह हो उसको पित्त संबंधी जानना ॥ ७ ॥

### अथ कफजशोथलक्षणम् ।

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्विमान्धकृत् ॥ सकृच्छृजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिवली कफात्मकः ॥ ८ ॥

जो सूजन भारी, स्थिर, पाण्डुवर्णवाली होय, अरुचि, लारकां झरना, निद्रा तथा वमनसे युक्तहो, आंशिको मंद करनेवाली हो, दवानेसे ऊँची न होती हो, रातमें बलवान् हो और जिसकी उत्पत्ति तथा शांति बहुत दुःखदायक हो उसको कफ संबंधी जानना ॥ ८ ॥

### अथ द्विदोषजशोथलक्षणम् ।

निदानाकृतिसंसर्गाज्ज्ञेयः शोथो द्विदोषजः ॥ ९ ॥

जिनमें दो प्रकारके कारण दीखें और उपरोक्त प्रकारोंमें दोके लक्षण मिलते होयें तो वह सूजन दो दोषोंसे उत्पन्न हुई जाननी ॥ ९ ॥

### अथ सन्निपातजशोथलक्षणम् ।

सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥

व्यामिश्रलक्षण इत्युक्ते सर्वाकृतिरिति उक्तवातजादिशोथसकललक्षणनियमार्थम् ॥

जो सूजन मिश्रित लक्षणोंवाली, अथवा उपरोक्त सब सूजनोंके लक्षणोंवाली होय उसको सन्निपातिज जानना ॥ १० ॥

### अथाभिघातजशोथलक्षणम् ।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ॥ हिमानिलोदध्यनिलैर्भङ्गातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥ रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छुयथुः स्याद्विसर्पवान् ॥ भृशोष्मालोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥

छेदः खड्गादिना । भेदः पाषाणादिना । क्षतं शरादिना । आदिना व्रणादि । आदिशब्देन लगुडप्रहारादि गृह्यते । भङ्गातजैः रसैः । कपिकच्छुजैः शूकैः । विसर्पवान्प्रसरणशीलः । पित्तलक्षणः पैत्तिकशोथलक्षणः ॥

जो सूजन खड्ग आदिके छेदनसे, पत्थर आदिके भेदनसे, बाणआदिके घाव हो जानेसे, अथवा लकड़ी आदिके प्रहार होने आदि कारणोंसे हुई हो, अथवा भिलवेके रससे वा कौलकी फलीके स्पर्शसे हुई होय, फैलतीहो, दाहयुक्त, लालवर्णवाली और अधिक करके पित्तसे हुई सूजनके लक्षणोंयुक्त हो वह सूजन अभिघातसे हुई जाननी ॥ ११ ॥ १२ ॥

### अथ विषजशोथलक्षणम् ।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ॥ दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्तुसङ्गरात् ॥ विषवृक्षानिलस्पर्शाद्भ्रयोणावचूर्णनात् ॥ मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥ १४ ॥

परिसर्पणाच्छरीरोपरि सञ्चरणात् । दंष्ट्रा द्विगुणीकृता दन्तावलिः चोद् इति लोके । दन्ताः अग्रेभवाः । अविषप्राणिनां दंष्ट्रादिविषं शोथव्यथादिकरं भवतीति विशेषः । विण्मूत्रेत्यादि । विडाद्युपहतं मलिनञ्च यद्वस्तु, तथा संकरः सम्मार्जनीभिः क्षितो-



धूल्यादिः तेषां सम्पर्कात् । गरयोगावचूर्ण-  
नात्, गरः संयोगजं विषं तस्य योगो यस्य  
तेन वस्तुना अवधूलनात् । अवलम्बी लम्ब-  
मानः । अयमपि आगन्तुजस्तथापि सामा-  
न्यागन्तुजशोथचिकित्सातोऽस्य विशिष्टचि-  
कित्साभिधानात्पृथक्पठितः ॥

शरीरके ऊपर विपैले जीवोंके फिरनेसे, अथवा मूत-  
नेसे, जो जीव विपैले नहीं हैं उनके भी दाढ़ दाँतोंसे,  
नखोंसे, आघात होनेसे, ( विना विषवाले जीवोंके भी  
दाढ़ आदिका विष सूजन तथा पीडा आदिको उत्पन्न  
करताहै ) विष्टासे, मूत्रसे, वीर्यसे, उपहत हुई वस्तुके  
संबंधसे, बृंहारकर फेंकी हुई धूल आदि कूड़ेके संबंधसे,  
विपैले वृक्ष अथवा विपैली पवनके स्पर्शसे और जिसमें  
संयोगज विषका योग हुआ होय वह वस्तु शरीरके मिल-  
नेसे जो सूजन उत्पन्न हुई हो उसको विषसे उत्पन्न हुई  
जाननी । यह सूजन—मृदु, चंचल, लटकती हुई, तत्काल  
होनेवाली और पीडा अधिक करनेवाली होती है १३ ॥ १४ ॥

### अथ दोषस्थानस्थितिविशेषेण शोषस्थानविशेषः ।

दोषाः श्वयथुमूर्द्धं हि कुर्वन्त्यामाशये  
स्थिताः ॥ पित्ताशयस्था मध्ये तु वर्चः-  
स्थानगतास्त्वधः ॥ कृत्स्नं देहमनुप्राप्य  
कुर्युः सर्वसरास्तथा ॥ १५ ॥

ऊर्द्धम् उरःप्रभृत्यूर्द्धम् । मध्ये उरःपका-  
शयमध्ये । अधः पकाशयादधः ॥

दोष आमाशयमें रहनेवाले होयें तो हृदयसे ऊपरके  
भागमें सूजनको उत्पन्न करें हैं, पित्ताशयमें रहनेवाले होयें  
तो हृदय और पकाशयके बीचमें सूजनको उत्पन्न करें हैं,  
मलाशयमें रहनेवाले दोष होयें तो पकाशयसे नीचेके भागमें  
सूजनको उत्पन्न करें हैं, और सम्पूर्ण स्थानमें फैलेहुए  
होयें तो सम्पूर्ण शरीरमें सूजन उत्पन्न करें हैं ॥ १५ ॥

### अथ शोथोपद्रवाः ।

छर्दिः श्वासोऽरुचिस्तृष्णाज्वरोऽतीसार  
एव च ॥ सम्पाक आमदौर्बल्यं शोथस्यैत  
उपद्रवाः ॥ १६ ॥

वमन, श्वास, अरुचि, तृष्णा, ज्वर, अतीसार, अत्यंत  
पाक और अत्यंत निर्बलता ये सूजनके उपद्रव  
हैं ॥ १६ ॥

### अथ शोथासाध्यता ।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर  
एव च ॥ यस्य चात्रे रुचिर्नास्ति शोथिनं  
तं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

जिस सूजनवालेको श्वास, तृष्णा, वमन, निर्ब-  
लता, ज्वर और अन्नमें अरुचि हो उसकी चिकित्सा  
नहीं करें ॥ १७ ॥

### अथ शोथकष्टसाध्यत्वादिः ।

यो मध्यदेशे श्वयथुः कष्टः सर्वांगगश्च यः ॥  
अर्द्धांगोऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्द्धं परिस-  
र्पति ॥ १८ ॥

मध्यदेशे उरःपकाशयमध्ये । सर्वांगः  
सकलशरीरव्यापी । सर्वांगज इति  
वा पाठः । सान्निपातिकः । अर्द्धांगः  
अर्द्धनारीश्वराकारः । यश्चोर्द्धं परिसर्पतीति  
पुरुषविषयः । तथाच—

ऊर्द्धगामी नरं पद्म्यामधोगामी तथा  
स्त्रियम् ॥ उभयं वस्तिमज्जातः शोथो  
हन्ति न संशयः ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वगामी मुखगामी । उभयं नरं नारीञ्च ।  
तथाच तन्त्रांतरे—

पादात्प्रवृत्तः श्वयथुर्नृणां यः प्राप्नुयान्मुख-  
मिति ॥ २० ॥

स न सिध्यतीति शेषः । अधोगामी  
पदगामी । तथाच तन्त्रान्तरे—

नृणां वक्रात्पदं याति वस्तिजश्च न सि-  
ध्यतीति ॥ २१ ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ॥  
पुरुषं हन्ति नारीन्तु मुखजो वस्तिजो  
द्वयम् ॥ २२ ॥

अयमर्थः । पादसमुत्थितः पादान्यामु-  
त्थितो मुखगामीति यावत् । शोथः पुरुषं  
हन्ति । स किंविशिष्टः ? अन्योपद्रवकृतः  
शोथादन्ये व्याधयोऽतिसारग्रहण्यर्शःप्रभृ-  
तयः तेषामुपद्रवैः कृतः तदुपद्रवत्वेन जात  
इत्यर्थः । न अन्योपद्रवकृतः अनन्योपद्रव-  
कृतः अर्थात् स्वहेतुभिरेव जातः । द्वयम्  
पुरुषश्च नारीश्च हन्ति सोऽपि अनन्योपद्रव-  
कृत एव ॥

जो सूजन हृदय तथा पक्वाग्रयके मध्यमें हुई हो अथ  
वा जो सूजन सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होय ( सान्निपातिक  
होय ) वह सूजन कष्टसाध्य है । जो सूजन अर्द्धनारीश्व  
रके आकारकी आधे शरीरमें हुई होय वह सूजन मृत्यु-  
दायक है । पुरुषके हुई सूजन ज्यों ज्यों ऊपरको चढती  
है त्यों त्यों मृत्युको ईदकर, लातीहै । पुरुषोंके हुई  
सूजन पाँवोंके ऊपरको चढे वह सूजन अवश्य मृत्यु  
करतीहै । स्त्रीके हुई जो सूजन मुखसे नीचे नीचे को  
जाय वह सूजन स्त्रीको अवश्य मारडालतीहै । जो सूजन  
मूत्राग्रयमें हुई हो वह सूजन पुरुष और स्त्री दोनोंको  
मारडालतीहै, इसमें कुछ भी सशय नहीं है । अन्य  
ग्रथोंमें भी कहा है कि—“ पुरुषोंके पाँवोंसे चढा जो शोथ  
मुखको प्राप्त होय और स्त्रीके मुखसे हुआ जो शोथ पाँवों  
को प्राप्त होय वह सूजन असाध्य है, पुरुष अथवा स्त्रीके  
मूत्राग्रयमें हुआ शोथभी असाध्यही है ” । और भी कहा  
है कि—“ पुरुषके पाँवोंमें हुई सूजन जो मुखमें जाय और  
अतीसार, ग्रहणी तथा बवासीर आदि अन्य रोगोंके उप-  
द्रव रूप नहीं हुई हो अर्थात् अपने कारणोंसे ही हुई हो  
तो पुरुषको मारडालतीहै । स्त्रीके मुखमें हुई सूजन जो  
पाँवोंपर जाय और वह सूजन अतीसार, ग्रहणी तथा बवा-  
सीर आदि अन्य रोगोंके उपद्रवरूप न हुई हो, अर्थात्  
अपने कारणोंसे हुई वह स्त्रीको मारडालतीहै । मूत्राग्रयमें  
हुई जो सूजन अन्य रोगोंके उपद्रव रूप नहीं हुई हो,  
अर्थात् अपने कारणोंसेही हुई हो वह सूजन पुरुष और स्त्री  
दोनोंको मारडालतीहै ॥ १८-२२ ॥

अथ शोथचिकित्सा ।

शुष्ठीपुनर्नवेरण्डपञ्चमूलीशृतं जलम् ॥

वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे  
॥ २३ ॥ पटोलत्रिफलारिष्टदार्वाकाथः  
सगुग्गुलुः ॥ तद्वत्पित्तकृतं शोथं हन्ति  
श्लेष्मोद्भवं तथा ॥ २४ ॥ मिश्रे मिश्रकर्म  
कुर्यात्सर्वजे सर्वमेव हि ॥ विश्वपत्ररसं  
पूतं शोषणं त्रिभवे पिबेत् ॥ २५ ॥  
शोथे त्वागन्तुजे कुर्यात्सेकलेपादि शो-  
तलम् ॥ भल्लातक्या हरेच्छोथं सतिला  
कृष्णमृत्तिका ॥ २६ ॥ महिषीक्षीरसं-  
पिष्टैर्नवनीतसमन्वितैः । तिलैर्लिप्तः  
शमं याति शोथो भल्लातकोत्थितः ॥  
॥ २७ ॥ यष्टीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन  
संयुतः ॥ शोथमारुण्करं हन्ति चूर्णैः  
शालदलस्य च ॥ २८ ॥

विषजशोथचिकित्सा तु विषचिकित्सायां  
द्रष्टव्या ॥

सोंठ, पुनर्नवा, एरड और बृहत्पंचमूल, इनका काथ  
करके पिये और भोजनमें ही उस काथको ही सेवनकरै  
तो इससे वायुसंघी सूजन नष्ट होतीहै । परवल, हरड,  
बहेडा, आमला, नीम और दारुहलदी, इनका काथकर  
उसमें गुगल डालकर पिये तो इससे पित्तसंघी और  
कफसंघी सूजन दूर होतीहै । जो सूजन दो दोपोंसे  
हुई हो उसमें दो दोपकी मिश्रित चिकित्सा करै और जो  
सूजन तीनों दोपोंमें हुई हो उसमें त्रैलोक्यके पत्तोंका रस  
निकाल करके वस्त्रसे छानके फिर उसमें सोंठ,  
मिरच तथा पीपलका चूर्ण डालकर पिये तो इससे सान्नि-  
पातिक सूजन नष्ट होतीहै । अथवा उपरोक्त तीनों दोपोंकी  
मिश्रित चिकित्सा करै । जो आगन्तुज ( अभिघात आ-  
दिसे ) सूजन हुई हो तो उसके ऊपर गीतल सेचन तथा  
गीतल लेप आदिक करै । तिल और काली मिट्टी इनको  
पीसकर लेप करै तो इससे भिलवेकी सूजन दूर होतीहै ।  
भैसके दूधमें तिल पीसकर उसमें भैसका म-  
क्खन मिलाकर लेप करै तो भिलवेकी सूजन  
दूर होतीहै । मुलेठी, दूध, तिल और मक्खन इनका  
लेप करै तो भिलवेकी सूजन दूर होतीहै । अथवा  
शालके पत्तोंका चूर्ण पानीसे पिये तो भिलवेकी

सूजन दूर होती है । विषसे हुए शोथकी चिकित्सा तो विषकी चिकित्साके प्रकरणमें कहेंगे इसलिये उस प्रकरण-  
मेंसे देख लेना ॥ २३-२८ ॥

अथ शोथसामान्यचिकित्सा ।

महिष्या नवनीतं वा लेपाहुग्धतिला-  
न्वितम् ॥ २९ ॥

अत्र दुग्धञ्च महिष्या एव ॥

पथ्यानिशाभाङ्गचर्मृताभिदार्वापुनर्नवा-  
दारुमहौषधानाम् ॥ काथः प्रसहो-  
दरपाणिपादमुखाश्रितं हन्त्यचिरेण  
शोथम् ॥ ३० ॥

भैंसका मक्खन और भैंसका दूध इनमें तिल पीसकर  
छपकरै तो सूजन दूर होती है । हरड, हलदी, भारगी,  
गेलोय, चीता, दारुहलदी, पुनर्नवा, देवदार और सोंठ,  
इनका काथ पेटमें, हाथमें, पाँवोंमें तथा मुखमें हुई सूजन  
तत्काल बलात्कारसे नष्ट करदेता है । यह काथ 'पथ्यादिका-  
थ' इस नामसे कहाजाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

फलत्रिकोद्भवं काथं गोमूत्रेणैव साधि-  
तम् ॥ वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्याद्दृषण-  
सम्भवम् ॥ ३१ ॥ वृश्चीवदेवद्रुमना-  
गरैर्वादन्तीत्रिवृद्दृषणचित्रकैर्वा ॥ दुग्धं  
सुसिद्धं विधिना निपीतं गीतं परं शोथ-  
हरं भिषग्भिः ॥ ३२ ॥

अत्र वृश्चीवः श्वेतवर्षाभिः ॥

सेकस्तथार्कवर्षाभूनिम्बकाथेन शोथहृत् ॥  
गोमूत्रेणापि कुर्वीत सुखोष्णेनावसेचनम्  
॥ ३३ ॥ पुनर्नवा दारु शुण्ठी शिशुः  
सिद्धार्थकस्तथा ॥ अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽ-  
यं प्रलेपः सर्वशोथहृत् ॥ ३४ ॥ गुडार्द्रकं  
वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपि-  
प्पलीं वा ॥ कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्र-  
माणं खादेन्नरः पक्ष्मथापि मासम् ॥  
॥ ३५ ॥ शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगा-  
न्सश्वासकासारुचिपीनसादीन् ॥ जीर्ण-

ज्वराशोग्रहणीविकारान्हन्यात्तथान्यान्क-  
फवातरोगान् ॥ ३६ ॥ विश्वं गुडेन  
तुल्यं वृश्चीवरसानुपानमभ्यस्तम् ॥ विनि-  
हन्ति सर्वशोथं घनवृन्दं चण्डवायुरिव ॥  
॥ ३७ ॥ कणानागरकं चूर्णं सगुडं  
शोथनाशनम् ॥ आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं  
वस्तिशोधनम् ॥ ३८ ॥

हरड, बहेडा तथा आमला, इनका काथ कर गोमूत्रमें  
मिलाकर पिये तो इससे वृषणो ( पोतो ) में हुई वायुसं-  
धी तथा कफसंधी सूजन नष्ट होती है । अथवा सफेद  
पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ, इनसे अथवा दन्ती, निसोत,  
सोंठ, भिरच, पीपल और चीता इनसे भलीभाँति पकाया-  
हुआ दूध योग्यविधिसे पिये तो सूजन अवश्य दूर होजाती-  
है ऐसा वैद्योंने कहा है । आक, पुनर्नवा और नीम, इनका  
काथ करके उस सूजनके ऊपर सेचन करै तो सूजन दूर  
होती है । गोमूत्रको किञ्चित् गरम करके उस सूजनके ऊपर  
सेचन करै तो सूजन दूर होती है । पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ,  
सहजना और सरसों इनका काथ करके अम्लरसमें पीस  
किञ्चित् गरम करके लेप करै तो सर्व प्रकारकी सूजन नष्ट  
होती है । गुड और अदरक, अथवा गुड और सोंठ,  
अथवा गुड और हरड वा गुड और पीपल इनका नित्य  
एक एक तोला अधिक करके बारह तोलतक सेवन करै  
इस भाँति एक मास अथवा एक पक्षतक खाय तो इससे  
सूजन, प्रतिश्याय, गलेके रोग, मुखके रोग, श्वास, खाँसी,  
अरुचि, पीनस, जीर्णज्वर, बवासीर, सग्रहणी और अ-  
न्यभी कफसंधी तथा वायुसंधी रोग दूर होजाते हैं  
अथवा सोंठ और गुड इनको समान भाग लेकर खाय और  
इसके ऊपर सफेद पुनर्नवाका रस पीनेका अभ्यास करै  
तो जिस प्रकार प्रचंड पवनसे बादलोंका समूह नष्ट होजा-  
ता है उसी प्रकार सर्व प्रकारकी सूजन भी दूर हो जाती  
है । वा सोंठ और पीपल इनके चूर्णको गुडमें मिलाकर  
खावे इससे सूजन, आमाजीर्ण तथा शूल दूर होता है  
और मूत्राशय शुद्ध होता है ॥ ३१-३८ ॥

अथ गुडादिवटिका ।

गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गवेरपलत्रयम् ॥  
शृङ्गवेरसमा कृष्णा लोहविट्ठतिलयोः

पलम् ॥ चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुना-  
शनम् ॥ ३९ ॥

बारह तोले गुड, बारह तोले सोंठ, बारह तोले पीपल,  
चार तोले कीटीकी भस्म और चार तोले तिल, इनको  
चूर्ण करके खाय तो सर्व प्रकारकी सूजन दूर होती है ॥ ३९ ॥

अथ मानकघृतम् ।

मानककाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाच-  
येत् ॥ एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषञ्च  
व्यपोहति ॥ ४० ॥

मानकदके काथमे मानकदकाही कल्क डालकर ६४  
तोले घी पकावे तो 'मानकघृत' सिद्ध होता है । इस घीके  
सेवन करनेसे एक दोष सबधी, दो दोषसंबधी, और तीनों  
दोष सबधी सूजन दूर होती है ॥ ४० ॥

अथ शुष्कमूलकतैलम् ।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्त्रामहौषधैः ॥  
पक्वमभ्यञ्जनं तैलं सशूलं श्वयथुं  
हरेत् ॥ ४१ ॥

इति शोथनिदानचिकित्साधिकारः ।

सूखीमूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन और सोंठ इन  
औषधियोंके बल्कके द्वारा तैलको सिद्धकरे यह तैल शूल  
सहित सूजनको दूर करे है ॥ ४१ ॥

इति शोथाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ वृद्धिब्रथाधिकारः ।

तत्र वृद्धिनिदानसंख्ये ।

दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा  
गदः ॥ मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु  
केवलः ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ, रुधिर, मेद, मूत्र और आँतें इन  
भेदोंसे वृद्धिरोग सात प्रकारका है । इनमें मूत्र और  
अत्रजन्य वृद्धि वातरूप निदानके होनेसे एकही प्रकारकी  
है तथापि निदान और चिकित्सा में भेद होनेसे अलग  
गिनी है ॥ १ ॥

अथ वृद्धिसम्प्राप्तिः ।

वृद्धिं करोति कौषस्थः फलकोषाभिवा-

हिनीः ॥ रुद्धा रुद्धगतिर्वायुर्धमनीर्मुष्क-  
गामिनीः ॥ २ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायु अङ्कोषोंमें प्राप्त  
होकर अङ्कोषोंकी शिराओंको ( नसोंको ) रोककर अं-  
डोंकी तथा त्वचाकी वृद्धि करता है ॥ २ ॥

अथ वातवृद्धिलक्षणम् ।

वातपूर्णद्वतिस्पर्शो रुक्षो वातादहेतु-  
रुक् ॥ ३ ॥

अहेतुरुक् अत्रेषदर्थे नञ् । तेन स्वल्पादपि  
विप्रकृष्टात् कारणादुक् पीडा यत्र सः ॥

जो वृद्धि वायुसे भरी हुई मसककी समान स्पर्शवाली  
हो, रुक्ष हो, और जिसमें अङ्कोषोंमें स्वल्प कारणोंसे  
पीडा हो, उसको वातकी वृद्धि जानना ॥ ३ ॥

अथ पित्तजन्यवृद्धिलक्षणम् ।

पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्तादाहोष्मपाके-  
वान् ॥ ४ ॥

दाहः आभ्यन्तरः ऊष्मा बहिस्तप्तता ॥

जो वृद्धि पके हुए गूलरके फलकी समान हो, दाह,  
गरमी और पकनेवाला हो उसको पित्तकी वृद्धि  
जानना ॥ ४ ॥

अथ कफवृद्धिलक्षणम् ।

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डुमान्क-  
ठिनोल्परुक् ॥

जो वृद्धि शीतल होय, भारी होय, स्निग्ध ( चिकनी )  
होय, खुजलीयुक्त होय, कठिन होय और जिसमें अल्प  
पीडा होय, उसको कफकी वृद्धि जानना ॥

अथ रुधिरवृद्धिलक्षणम् ।

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्त-  
जः ॥ ५ ॥

कृष्णस्फोटावृत इति पैत्तिकोद्भवः ॥

जो वृद्धि काले फोड़ोंसे व्याप्त हो और जिसमें पित्तकी  
वृद्धिके सब लक्षण होयें उस वृद्धिको रक्तकी जानना ॥ ५ ॥

अथ मेदोवृद्धिलक्षणम् ।

कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ६ ॥

जो वृद्धि नरम होय, तालके फलकी समान नीली और  
गोल होय तथा जिसमें कफकी वृद्धिके सम्पूर्ण लक्षण  
मिलते होंयें उस वृद्धिको मेदकी जानना ॥ ६ ॥

अथ मूत्रवृद्धिलक्षणम् ।

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ॥  
अम्भोभिः पूर्णदतिवक्षोभं याति सरुद्ध-  
मृदुः ॥ मूत्रकृच्छ्रमधः कुर्यात्सञ्चलन्फल-  
कोषयोः ॥ ७ ॥

सञ्चलन्फलकोषयोः अधः मूत्रकृच्छ्रं मूत्रेण  
च्यथा कुर्यात् इत्यर्थः ॥

जिस मनुष्यको मूत्र रोकनेका अभ्यास होय अथवा  
स्वभाव होय उस मनुष्यको मूत्रकी वृद्धि होती है, मूत्रकी  
वृद्धि चलते समय जलसे भरी हुई, पखाल या मसककी  
समान हिलती है, पीडा होती है, नरम होती है, उसमें  
मूत्रकृच्छ्रकी समान वेदना हो और अंडकोषोंको चला-  
यमान करती है ॥ ७ ॥

अथात्रवृद्धिलक्षणम् ।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ॥  
धारणै रणभाराध्वविषमांगप्रवर्तनैः ॥ ८ ॥  
क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यैश्च क्षुदान्त्रावयवं  
यदा ॥ पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो  
नयेत् ॥ कुर्याद्विक्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं  
श्वयथुं तदा ॥ ९ ॥

धारणम् उपस्थितस्य वेगस्य । ईरणमनु-  
पस्थितस्य वेगस्य प्रेरणम् । विषमांगप्रवर्तनं  
वक्रत्वेनांगमोटनम् । अन्यानि क्षोभणानि  
बलवद्विग्रहकठोरधनुराकर्षणादीनि तैः क्षोभि-  
तः सन्दूष्य सञ्चालितः पवनः यदा क्षुद्रा-  
न्त्रावयवं विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत्  
तदा वंक्षणसन्धिस्थः सन्वंक्षणसन्धौ ग्रन्थि-  
रूपं श्वयथुं कुर्यात् इत्यर्थः ॥

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरु-  
क्स्तम्भवती स वायुः ॥ प्रपीडितोऽन्तः-  
स्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च  
मुक्तः ॥ १० ॥

तत्र आध्मानमुदरे रुग् वृद्धयोर्मुष्कयोः  
स्तम्भो गात्रे तद्युक्तां कुर्यात् इत्यर्थः ॥

अन्त्रं विगुणमादाय वातो नयति वंक्ष-  
णम् ॥ वंक्षणात्तदुजा युक्तं फलकोषं प्रप-  
द्यते ॥ ११ ॥

स मुष्कवृद्धिम् अन्तः उदरे प्रध्मापयन्  
आगमनमार्गं निरुद्धं कुर्वन् एति आयाति ॥

वायुको कुपित करनेवाले आहारोंके सेवन करनेसे,  
शीतल जलमें घुसकर स्नान करनेसे, मूत्रादिके वेगोंको  
रोकनेसे, मूत्रादिको बलात्कारसे प्रवर्तन करनेसे, बहुत  
बोझको उठानेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, अगोंकी विषम  
चेष्टा करनेसे और बलवानके साथ युद्ध तथा कठिन धनुष  
आदिको चढानेसे, इत्यादि कारणोंसे अत्यंत क्षोभको प्राप्त  
हुई वायु छोटीछोटी आंतोंके प्रदेशको दूषित करके उनके  
स्थानसे नीचे लेजाती है तब वह वायु वृषण और कोषकी  
संधियोंमें प्राप्त होकर उन संधियोंमें गाठकी समान सूज-  
नको उत्पन्न करती है । यह अन्त्रवृद्धि कहीजाती है ।  
जो इस अन्त्रवृद्धिकी उपेक्षा की जावे तो पेट अफरआता-  
है, बढेहुए वृषणोंमें पीडा होती है और शरीर स्तम्भितसा  
होजाताहै । इस वृद्धिको जो हाथसे दबायाजाय तो शब्द  
होकर भीतरको बैठजाती है और दबानेसे छोटी होकर  
फिर फूलजाती है ॥ ८-११ ॥

अथात्रवृद्धिसाध्यलक्षणम् ।

यस्यान्त्रावयवाश्लेषो मुष्कयोर्वातसञ्च-  
यात् ॥ अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धि-  
समाकृतिः ॥ १२ ॥

अन्त्रवृद्धि कि जिसमें वायुके संचय होनेसे दोनों वृष-  
णोंमें आंतोंके अवयव मिलजाते हैं वह यदि वायुकी  
वृद्धिकी समान आकारवाली होय तो उसको असाध्य  
जानना ॥ १२ ॥

अथ ब्रध्नस्यापि वृद्धिसमीपोत्पन्नत्वाद्वा  
तन्निदानलक्षणमाह ।

अत्यभिप्यन्दिगुर्वन्नशुष्कपूत्यामिषाशनात् ॥  
करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वंक्षणस-



न्धिषु ॥ ज्वरशूलंगसादाह्यं तं ब्रधति  
विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अत्यत अभिप्रायान्दिपदार्थ, भारी अन्न, सूखा तथा दूर्ग-  
धित सडाहुआ मास, इनको भक्षण करनेसे कोपको प्राप्त  
हुये दोष साथलकी सधियोंमें गाठकी समान मूजनको  
उत्पन्न करते हैं उस मूजनकी समान गिलटीके होनेसे  
ज्वर, शूल तथा शरीरमें अत्यत ग्लानि होती है,  
यह मूजन ब्रध ( बढ़ ) इस नामसे कही-  
जाती है ॥ १३ ॥

अथ वृद्धि रोगचिकित्सा ।

वृद्धावत्यशनं मार्गमुपवासं गुरुणि च ॥  
वेगाघातं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं त्यजे-  
त् ॥ १४ ॥ वातवृद्धौ पिवेत्तिग्धं यथा-  
प्राप्तं विरेचनम् ॥ सक्षीरञ्च पिवेत्तैलं  
मासमेरण्डसम्भवम् ॥ १५ ॥

वृद्धिरोगवाले मनुष्यको अधिकतर भोजन, मार्ग, मूत्रा-  
दि वेगोंका रोकना, चलना, उपवास, भारी पदार्थोंका  
खाना, घोंडे आदिकी सवारी, दड कसरत आदि परिश्रम  
और मैथुन ये सब त्यागदेने चाहिये । जो मिलसके ऐसे  
स्निग्ध विरेचन पीनेसे वातसम्बन्धी वृद्धि दूर होजाती है,  
दूध और अटीके तेलको एक महीनेतक पीनेसे वातकी  
वृद्धि दूर होजाती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

गुग्गुल्वेरण्डजं तैलं गोमूत्रेण पिवेत्ररः ॥  
वातवृद्धिं जयत्याशु चिरकालानुबन्धि-  
नीम् ॥ १६ ॥ पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्त-  
वृद्धिसुपाचरेत् ॥ जलौकाभिर्हरिद्रक्तं वृद्धौ  
पित्तसमुद्रवे ॥ १७ ॥ चन्दनं मधुकं पद्म-  
मुशीरं नीलमुत्पलम् ॥ क्षीरपिष्टं प्रले-  
पेन दाहशोथरुजापहम् ॥ १८ ॥

अंडीका तेल और गुग्गुल इनको मिलाकर गोमूत्रके  
साथ पीनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी वातकी वृद्धि तत्काल  
नष्ट होजाती है । जो चिकित्सा पित्तग्रन्थिकी कही है वही  
चिकित्सा योग्यायोग्य विचारकर पित्तकी वृद्धिकी भी  
करनी चाहिये, इससे पित्तकी वृद्धि नष्ट होजाती है ।

जोंक लगाकर रुधिर निकलवानेसे पित्तसम्बन्धि  
वृद्धि नष्ट होजाती है । लालचन्दन, मुलेटी, कमल,  
खस और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर लेप करनेसे  
पित्तकी वृद्धिकी मूजन तथा दाहकी पीडा शांत होजाती-  
है ॥ १६-१८ ॥

त्रिकटुत्रिफलाकाथं सक्षारलवणं पिवे-  
त् ॥ विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाश-  
नम् ॥ १९ ॥

सोंट, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा और आमला  
इनका काथ बनाकर उसमें जवाखार तथा सेंधानिमक  
डालकर पीनेसे कफकी वृद्धि दूर होती है । यह विरेचन  
कफकी वृद्धिको दूर करनेके लिये उत्तम है ॥ १९ ॥

लेपनाः कटुतीक्ष्णोष्णाः स्वेदनं सूक्ष्ममेव  
च ॥ परिषेकोपनाहौ च सर्वमुष्णमिहे-  
ष्यते ॥ २० ॥

तीखे, तीक्ष्ण तथा उष्णप्रलेप, सूक्ष्मस्वेदन, और  
सपूर्ण गरम सेचन और उष्ण वंघन, कफकी वृद्धिपर  
करने चाहिये ॥ २० ॥

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरे-  
त् ॥ पिवेद्विरेचनं वापि शर्कराक्षौद्रसंयु-  
तम् ॥ २१ ॥

जो रुधिरकी अंडवृद्धि होय तो बारंबार जोंक लगावा-  
कर रुधिर निकलवावे और खांड तथा सहत मिलाकर  
विरेचन पिये ॥ २१ ॥

शीतमालेपनं शस्तं सर्वं पित्तहरं तथा ॥  
पित्तवृद्धिक्रमं कुर्यादामे पक्वे च-  
रक्तजे ॥ २२ ॥

रुधिरकी अंडवृद्धि कच्ची होय अथवा पक्की होय तो  
भी उसके ऊपर शीतल प्रलेप करे और पित्त नाशक  
सपूर्ण क्रिया करे । रुधिरकी वृद्धिमें पित्तकी वृद्धिकी जो  
चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिये ॥ २२ ॥

स्विन्नमेदःसमुत्थन्तु लेपयेत्सुरसादिना ॥  
शिरोविरेचनद्रव्यैः सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥  
२३ ॥ संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन  
वेष्टयेत् ॥ सीवण्याः पार्श्वतोऽधस्तादि-  
ध्येद्रीहिमुखेन वै ॥ २४ ॥ मुष्कको-

शमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विचक्षणः ॥  
वातवृद्धिक्रमं कुर्यात्स्वेदं तत्राग्निना हि-  
तम् ॥ २५ ॥

ब्रीहिमुखेन शस्त्रविशेषेण । अगच्छन्त्याम्  
अस्रवन्त्याम् ॥

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धं यथोचि-  
तम् ॥ आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं  
जयेन्नरः ॥ २६ ॥ रास्त्रायष्टयमृतैरण्डब-  
लारग्वधगोक्षुरैः ॥ पटोलेन वृषेणापि  
विधिना विहितं शृतम् ॥ रुवुतैलेन संयु-  
क्तमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥ २७ ॥

भेदकी वृद्धिमें सेकादिक करके उसके ऊपर सुरसादि  
गणकी सम्पूर्ण औषधियोंका प्रलेप करे ।

मूत्रसम्बन्धी वृद्धि होय तो शिरको खाली करनेवाली  
जो औषधि कही है उनमें गोमूत्र डालकर जरा गरम  
करके उनसे सेककरे फिर वस्त्रकी पट्टीसे खूब बाँध देवे ।

अत्रवृद्धि जो खती न होय तो विचक्षण वैद्य सीवि-  
नीके पडखेके नीचेके भागमें ब्रीहिमुख नामक शस्त्रसे  
वेध देवे और फिर वातसम्बन्धी वृद्धिकी समान चिकित्सा  
करे । अत्रवृद्धिपर अग्निसे सेककर स्वेदन करना हितकारी है ।

खिरैटीका चूर्ण डालकर पकाया हुआ अंडीका तेल  
यथारीतिसे पिये तो अफारे सहित तथा शूल सहित अत्र-  
वृद्धि नष्ट हो जाती है । रासना, मुलैठी, गिलोय, अंडकी  
जड़, खिरैटी, अमलतास, गोखरू, कडवे परवल और  
अडूसा इनका विधिपूर्वक काथ बनाकर उसमें अंडीका  
तेल डालकर पान करनेसे अत्रवृद्धि नष्ट होजाती है ।  
इसको रास्त्रादि काथ कहते हैं ॥ २३-२७ ॥

गन्धर्वहस्ततैलेन क्षीरेण विहितं शृतम् ॥  
विशालामूलजं चूर्णं वृद्धिं हन्ति न  
संशयः ॥ २८ ॥

विशाला इन्द्रवारुणी ॥

वचासर्षपकल्केन प्रलेपः शोथनाशनः ॥  
शिशुत्वक्सर्षपैलेपाच्छोथश्लेष्मानिलाप-  
हः ॥ २९ ॥

अंडीका तेल, दूध और इन्द्रायनकी जड़का चूर्ण  
इनका काथ बनाकर पीनेसे निःसन्देह अंडवृद्धि रोग नष्ट  
होता है ।

वच और सरसोका कल्क बनाकर लेपकरनेसे वृद्धि-  
की सृजन दूर हो जाती है । सैजिनेकी छाल और  
सरसो इनको एकत्र पिसकर लेप करनेसे वृद्धिकी सृजन  
कफ और वायु नष्ट होजाती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

वृद्धिबाधिका वटिका ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योज-  
येत् ॥ लौहं रंगं तथा ताम्रं कांस्यश्चाथ  
विशोधितम् ॥ ३० ॥ तालकं तुत्थक-  
श्चापि तथा शङ्खवराटकम् ॥ त्रिकटु त्रि-  
फला चव्यं विडङ्गं वृद्धदारकम् ॥ ३१ ॥  
कूर्चूरं मागधीमूलं पाठां सहपुषां वचाम् ॥  
एलाबीजं देवकाष्ठं तथा लवणपञ्चकम्  
॥ ३२ ॥ एतानि समभागानि चूर्णयेद्यथ  
कारयेत् ॥ कषायेण हरीतक्या वटिकां  
टंकसंमिताम् ॥ ३३ ॥ एकां तां वटिकां  
यस्तु निर्गिलेद्वारिणा सह ॥ अण्डवृद्धिर-  
साध्यापि तथ्यं नश्यति सत्वरम् ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्धगंधक, लोहेकी भस्म, रंगेकी  
भस्म, तांबेकी भस्म, काँसीकी भस्म, शुद्ध हरितालकी  
भस्म, शुद्ध तूतिया, शखकी भस्म, कौडीकी भस्म, सोंट,  
मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, वायविडंग,  
विधारा, कचूर, पीपलामूल, पाठ, गंधपलाशी, वच, इला-  
यचीके दाने, देवदारु और पाचोनिमकइन सबको समान  
भाग लेकर चूर्ण बनाकर हरडके काथमें खरल करके  
चौबीस २ रत्तीकी गोलियां बना लेवें । इन गोलियोंमेंसे  
एक गोली नित्य जलके साथ निगल जाय तो अत्रसम्बन्धी  
असाध्य वृद्धिभी तत्काल नष्ट होजाती है ॥ ३०-३४ ॥

अथ ब्रध्न ( बद ) चिकित्सा ।

अष्टश्वैरण्डतैलेन सम्यक्कल्कोऽभयाभवः ॥

कृष्णासैन्धवसंयुक्तो ब्रध्नरोगहरः परः  
॥ ३५ ॥ अजाजी हपुषा कुष्ठं गोमेदवद-  
रान्वितम् ॥ काञ्जिकेन तु संपिष्टं तल्लेपो  
ब्रध्नजित्परः ॥ ३६ ॥

गोमेदं पत्रकम् । तथा निघण्टौ धन्व-  
न्तारिः—

पत्रं दलाह्वयं रासं गोमेदं वसनाद्वय-  
मिति ॥ ३७ ॥

इति वृद्धिब्रध्नरोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

हरडका अच्छे प्रकारसे कल्क बनाकर उसको अडीके तेलमें भूनकर पीपल तथा सैन्धेनिमकका चूर्ण मिलाकर खाय तो ब्रध्न रोग अवश्य नष्ट होजाताहै ।

जीरा, पलाशी, कूठ, तेजपात और बेर इनको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे ब्रध्न रोग अवश्य नष्ट होजाताहै (मूल श्लोकमें जो गोमेद शब्द है उसका हमने यहा तेजपत्र ऐसा अर्थ किया है यह धन्वन्तरिनिघण्टुके अनुसार किया है, धन्वन्तरिनिघण्टुमें कहा है कि, पत्र, रास और गोमेद ये सब तेजपत्रके नाम हैं । जो जो नाम पत्रके अथवा वस्त्रके हैं वे सब तेजपत्रके जानने ) ॥ ३५—३७ ॥

इति वृद्धिब्रध्नाधिकारः संपूर्णः ।

अथ गलगण्डगण्डमालाग्रंथ्य-

बुद्धाधिकारः ।

तत्र गलगण्डलक्षणम् ।

निवद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले ॥  
महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमा-  
दिशेत् ॥ १ ॥

निवद्धः दृढः अचलो वा । मुष्कवदण्ड-  
वत् । गले इति हनुमन्ययोरुपलक्षणम् ।  
तथाच भोजः—

महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्र-  
यम् । मुष्कवल्लम्बमानन्तु गलगण्डं विनि-  
दिशेत् ॥ २ ॥

गलेमें बड़ी अथवा छोटी, दृढ, और अचल सूजन अडकोपकी समान लटकती होय उसको गलगण्ड कह-  
तेहैं । 'गलेमें जो सूजन लटकती हो' ऐसा कहना तो

उपलक्षणमात्र है इसकारण ऐसा जानना कि ठोड़ी, डाढी और नाडमें जो ऐसी सूजन लटकती होय तो उसको भी गलगण्ड कहतेहैं । भोज कहताहै कि "बड़ी अथवा छोटी सूजन डाढीमें अथवा ठोड़ीमें, नाडमें और गलेमें अडकोपकी समान लटकती होय उसको भी गलगण्ड कहतेहैं" ॥ १ ॥ २ ॥

अथ गलगण्डसम्प्राप्तिः ।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्ये तु  
संश्रित्य तथैव मेदः ॥ कुर्वन्ति गण्डं  
क्रमशः स्वलिगैः समाचितं तं गलगण्ड-  
माहुः ॥ ३ ॥

स्वलिगैः वातकफमेदोलक्षणैः ॥

गलेमें दुष्ट हुए वायु, कफ और मेद ये सब गलेके मध्यमें प्राप्त होकर अनुक्रमसे अपने अपने लक्षणोंवाली सूजन करतेहैं वह रोग गलगण्ड कहाजाताहै ॥ ३ ॥

अथ वातजगलगण्डलक्षणम् ।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावारुणो  
वा पवनात्मकस्तु ॥ पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्य-  
पाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥  
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा  
तालुगलप्रशोषः ॥ ४ ॥

चिरवृद्ध्यपाकः चिरेण वृद्धिः अपाकश्च  
यस्य सः ॥

जो गलगण्ड तोदने सरीखी पीड़ायुक्त हो, काली शिरा-  
ओंसे व्याप्त हो, कालापन तथा लाली लिये हो, उसको वातका जानना । यह गलगण्ड कठिन होताहै, बहुत दिनोंमें बढ़ताहै, पकता नहीं है और किसीसमय अपनी हृच्छासे पकभी जाताहै, तथा उस रोगीका मुख नीरस रह-  
ताहै और तालु तथा गला सूखा रहताहै ॥ ४ ॥

अथ कफगलगण्डलक्षणम् ।

स्थिरः सवर्णो गुरुग्रकण्डूः शोतो महा-  
श्चापि कफात्मकस्तु ॥ चिराच्च वृद्धिं  
भजतेऽचिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदा-  
चित् ॥ माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तो-  
र्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

कदाचित्प्रपच्यते वा पाकोऽपि चिराद्भवति । प्रलेपः श्लेष्मणा ॥

जो गलगण्ड स्थिर होय, जिस स्थानमें उत्पन्न हो उसी स्थानकी त्वचाके वर्णकी समान हो, मारी हो, तीक्ष्ण खुजली हो, शीतल हो और बड़ा हो उसको कफजन्य गलगण्ड जानना । यह गलगण्ड बहुत दिनोंमें बढ़ता है, बहुत दिनोंमें किसी समय पकजाता है और मन्द पीड़ा होती है और उस रोगीके मुखका स्वाद स्निग्ध और मधुर रहता है सदैव गलेसे शब्द होता है और तालू तथा गला कफसे लिप्त रहता है ॥ ५ ॥

अथ मदोजन्यगलगण्डलक्षणम् ।

स्निग्धो मृदुः पाण्डुरनिष्ठगन्धो मेदोऽन्वितः कण्डुयुतोऽरुजश्च ॥ प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥ स्निग्धास्पता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ ७ ॥

जो गलगण्ड नरम, पाण्डुवर्ण, दुर्गन्धित, खुजलीयुक्त, पीढाराहित, तोम्बीकी समान लटकता हो, अल्प जड़वाला हो और शरीरके बढ़नेसे बढ़ता हो तथा शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होता हो, उस गलगण्डको मेदसम्बन्धी जानना । यह गलगण्ड जिस मनुष्यके उत्पन्न होता है उस मनुष्यका मुख स्निग्ध रहता है और सदैव गलेमेंसे शब्द होतारहता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथासाध्यगलगण्डलक्षणम् ।

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदु सर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥ क्षीणश्च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं नैव नरं चिकित्सेत् ॥ ८ ॥

जिस गलगण्डमें बड़े कष्टसे धीरे धीरे श्वास लेसके, संपूर्ण शरीर नरम पड़ गया हो, अरुचि तथा क्षीणता होगई हो, स्वर बैठगया हो, तथा जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीतगया हो ऐसे गलगण्डकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥ ८ ॥

अथ गण्डमालालक्षणम् ।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवक्ष्णेषु ॥ मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः ॥ ९ ॥

कर्कन्धुः क्षुद्रबदरम् । कोलं बृहद्बदरम् । चिरमन्दपाकैः चिरेण मन्दोऽल्पः पाको येषां तैः ॥

कोखमें, कन्धोंमें, अथवा खवोंमें, नाडके पीछे मन्या नाडीमें, गलेमें, तथा वक्ष्ण स्थानमें मेद और कफसे छोटे बेरकी समान अथवा बड़े बेरकी समान आमलेकी समान बहुतसी गड ( गांठें ) उत्पन्न होंयें उसको गण्डमाला कहते हैं । ये गण्ड बहुत दिनोंमें थोड़े थोड़े पकते हैं ॥ ९ ॥

अथापचीलक्षणम् ।

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ॥ कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ १० ॥

ते ग्रन्थयः गण्डमालाया एव गण्डाः केचिदवाप्तपाकाः सन्तः स्रवन्ति । केचिन्नश्यन्ति संरोहन्ति । अन्ये भवन्ति च कालानुबन्धं चिरमादधाति सा गलगण्डमाला चिरं तिष्ठति सैवापचीति केचिद्वदन्ति ॥

उस गण्डमालाकी कोई कोई गड पककर खवने लगती हैं, कोई कोई नष्ट होजाती हैं, और कोई कोई नवीन उत्पन्न होजाती हैं उन गडोंकी ऐसी स्थिति बहुत दिनोंतक रहती है, बहुत वैद्य इस गण्डमालाकोही 'अपची' कहते हैं ॥ १० ॥

अथापचीसाध्यासाध्यता ।

साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता त्वसाध्या ॥ ११ ॥

विना उपद्रवकी अपची साध्य है किन्तु जो पीनस, पार्श्वशूल, खासी, ज्वर तथा वमनयुक्त होय तो असाध्य है ॥ ११ ॥

अथ ग्रन्थिलक्षणम् ।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः सन्दूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ॥ वृत्तोन्नतं विग्रथितन्तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १२ ॥

विग्रथितं ग्रन्थिरूपम् अत एव ग्रन्थिः स पञ्चधा वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिको मेदोजः शिराजश्च इति ॥

वात, पित्त, कफ, मेद और गिरा ये मांस तथा रुधिरको दूषितकरके ऊँची तथा गोलाकार गाँठ रूप सूजनको उत्पन्न करें हैं उन गाँठोंको ग्रंथि कहते हैं । वातज, पित्तज, कफज, मेदोज, और गिरासम्बन्धी इस प्रकार ग्रन्थिके पांच भेद हैं ॥ १२ ॥

अथ वातजग्रन्थिलक्षणम् ।

आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रभ्रंशते मथ्यति भिद्यते च ॥ कृष्णो मृदुर्वस्तिरिवाततश्च भिन्नः सवेच्चानिलजोऽसमच्छम् ॥ १३ ॥

आयम्यते आकृष्य दीर्घं क्रियत इव । वृश्चति आश्रयं छिनत्ति इव । प्रभ्रंशते स्खलतीव । भिद्यते विदार्यत इव । आततः विस्तारित इव । मृदुः न तु अत्यन्तकठिनः । असम् रुधिरम् । अच्छम् प्रकृतं सवेदित्यर्थः ॥

जो ग्रंथि मानो खींचकर बढाई गई हो ऐसी मालूम हो, अपने स्थलको छेदती हो, गिरीसी पड़े, सुई चुभोने सरीखी पीड़ा हो, मथनेकी समान, चीरने सरीखी पीड़ा हो और रबरकी समान फैल जाय, तथा काले रंगकी, अत्यन्त कठिन न होय, भेदने सरीखी पीड़ा हो और स्वाभाविक स्वच्छ रुधिर उसमेंसे खसता हो उसको वायु-संबंधी ग्रंथि जानना ॥ १३ ॥

अथ पित्तजग्रन्थिलक्षणम् ।

दन्दद्यते धूप्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ॥ रक्तः सपीतोप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः सवेदुष्टमतीव चासम् ॥ १४ ॥

दन्दद्यते भृशं दाहं करोति सकलशरीरे । धूप्यति अन्तस्तापं करोति । चूष्यते शृंगेण इव । पापच्यते भृशं पाकं करोति । प्रज्वलति इव अग्निरिव ज्वालायुक्त इव भवति

ग्रन्थिः । असम् रुधिरम् । अतीव दुष्टं कृष्णतादियुक्तम् ॥

जो ग्रंथि शरीरमें अग्निकी समान अत्यन्त दाह करती-हो, अत्यन्त सताप देती हो, अत्यन्त पकतीहो, लाल अथवा पीली हो, जब वह फूटे तब उसमेंसे मज्जासहित दुष्ट और काला रुधिर निकले, उसमें चूसने सरीखी पीड़ा होय अर्थात् सींगी लगाकर चूसते हैं ऐसी पीड़ा हो, तथा अग्निकी समान ज्वालासे युक्त हो उसको पित्तकी ग्रन्थि जानना ॥ १४ ॥

अथ कफजग्रन्थिलक्षणम् ।

शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ॥ चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नं सवेच्छुक्लघनश्च पूयम् ॥ १५ ॥

अविवर्णः प्रकृतिवर्णः । पाषाणवत् संहननोपपन्नः संहततायुक्तः ॥

जो ग्रंथि शीतल हो, स्वाभाविक वर्णवाली हो, थोड़ी पीड़ावाली हो, अत्यन्त खुजलीयुक्त हो, पत्थरकी समान अत्यन्त कठिन हो, बहुत दिनोंमें वृद्धिको प्राप्त हो, जब वह फूटे तब उसमेंसे सुफेद तथा गाढ़ी राख निकले उसको कफकी ग्रन्थि कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ मेदोजग्रन्थिलक्षणम् ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान् कंडुयुतोऽरुजश्च ॥ मेदः कृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमन्तु मेदः ॥ १६ ॥

तिलसदृशं घृतसदृशं वा मेदः गच्छति सवतीत्यर्थः ॥

जो ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे, शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होती हो, स्निग्ध हो, बड़ी हो, खुजलीयुक्त हो, पीड़ारहित और फूटते समय खलकी समान अथवा घीकी समान उसमेंसे मेद खसे उस ग्रन्थिको मेदसंबंधी जानना ॥ १६ ॥

अथ शिराजन्यग्रन्थिलक्षणम् ।

व्यायामजातैरवलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुश्च शिराग्रतानम् ॥ संकोच्य सम्पीड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ १७ ॥



निर्बल मनुष्य बलवान्के साथ युद्ध आदि परिश्रम करे तो उससे कुपित हुई वायु शिराओके समूहको चलायमान करके दबाकर, स्रव्य करके और सुखाकर तत्काल ऊँची तथा गोल आकारवाली ग्रथिको उत्पन्न करती है, इस ग्रथिको शिरासम्बन्धी जानना ॥ १७ ॥

अथ ग्रन्थिकष्टसाध्यासाध्यता ।

ग्रन्थिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥ अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ १८ ॥

तैस्तैर्बलवद्विग्रहादिभिः । आक्षिप्य चालयित्वा । सम्पीड्य संहतीकृत्य । अरुजत्वादियुक्ता अन्येऽपि ग्रन्थयोऽसाध्याः ॥

पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन्मर्मजानचलांस्त्यजेत् ॥ कपोलगलमन्यासु दुश्चिकित्स्या हि सन्धिषु ॥ १९ ॥

जो शिराजन्य ग्रथि पीडासहित हो और चंचल होय तो कष्टसाध्य है, जो शिरासम्बन्धी ग्रथि पीडासहित हो, अचल हो, बड़ी हो और मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई होय तो असाध्य है इसकारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। दूसरी ग्रथिभी जो पीडासहित, अचल, बड़ी और मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई होय तो उसको भी असाध्य जानना क्योंकि भोजने भी कहा है कि “पांचप्रकारकी ग्रथियोंमें जो ग्रथि पीडासहित होय, मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई हो और अचल हो उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये” । गाल ( कपोल ), नाड और संधियोंमें उत्पन्न हुई ग्रथियोंकी चिकित्सा करनी बहुत कठिन है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथाबुर्दस्य सम्प्राप्तिपूर्वक-

सामान्यलक्षणम् ।

गात्रप्रदेशे कचिदेव दोषा संमूर्च्छिता मांसमसृक्प्रदूष्य ॥ २० ॥ वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥ कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदबुर्दं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ २१ ॥

महान्तं ग्रन्थ्यपेक्षया । चिरेण वृद्धिः यस्य तत् चिरवृद्धिः । अपाकम् इति ग्रन्थेः सकाशादस्य भेदज्ञापकम् । अत्यगाधं दूषणुग्रविष्टम् ॥

कोपको प्राप्त हुए दोष शरीरके किसी प्रदेशमेंभी मांसको तथा रुधिरको दूषित करके गोल आकारवाली, स्थिर, अल्प पीडावाली, ग्रथिकी अपेक्षा बड़ी, बहुत उठी हुई, बड़ी जड़वाली, बहुत समयमें बढ़नेवाली और बहुत दिनोंमें भी नहीं पकनेवाली मांसकी ऊंचाईको उत्पन्न करे है । शास्त्रवेत्ता इस मांसकी ऊंचाईको अबुर्द कहते हैं, देशभाषामें इसको रसोली कहते हैं । ग्रथि पकती है और अबुर्द नहीं पकता है ॥ २० ॥ २१ ॥

अथाबुर्दनिदानपूर्वकविशिष्टलक्षणम् ।

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च भेदसा च ॥ तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ २२ ॥

ग्रन्थेः समानानि वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकमेदोजानाम् अबुर्दानां लक्षणानि तुल्यानि भवन्ति ॥

यह अबुर्द-वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस और भेदसे उत्पन्न होता है, और इसमें वात, पित्त, कफ तथा भेदके अबुर्दके लक्षण सर्वदा ग्रथियोंके लक्षणोंकी समान होते हैं ॥ २२ ॥

अथ रुधिरजन्याबुर्दनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च संकोच्य सम्पीड्य ततस्त्वपाकम् ॥ सास्त्रावमुन्नहति मांसपिण्डं मांसांकुरैरावृतमाशु वृद्धिम् ॥

॥ २३ ॥ स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्टमसाध्यमेतद्गुधिरात्मकं तु ॥ रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेदबुर्दपीडितस्तु ॥ २४ ॥

दोषोऽत्र पित्तम् । रुधिरं शिराश्च संकोच्य सम्पीड्य संहतीकृत्य मांसासृजोः सर्वेषु अबुर्देषु दूष्यत्वम् । रक्तजे तु

विशेषतो रक्तदुष्टिः । एवं मांसार्बुदे विशेष-  
पतो मांसदुष्टिर्वोद्धव्या । ततः मांसपि-  
ण्डम् उन्नहति उद्गतं करोति । अपाकम्  
ईषत्पाकं यथा स्यादेवमिति क्रियाविशेषणम् ।  
ईषत्पाकश्चैकदेशपाकेन । रक्तक्षयोपद्रवाः  
सुश्रुतोक्ताः तैः पीडितत्वात् । अर्बुदपीडितः  
रक्तार्बुदपीडितः ॥

दुष्ट हुआ पित्त रुधिरको तथा गिराओंको सकुचित  
करके तथा जिससे एकत्रित होजाय ऐसी रीतिसे दबाकर,  
त्नावयुक्त, मांसके अकुरोंसे व्याप्त, और तत्काल बढनेवाले  
तथा यत्किंचित् पकनेवाले मांसके पिडको उत्पन्न करते  
हैं और उसमेसे दूषित रुधिर नित्य लवताहै इसको रवि-  
रजन्य अर्बुद कहतेहैं । यह अर्बुद असाध्य है । इस  
अर्बुदसे पीडित मनुष्य सुश्रुतमें कहे हुए रुधिरके क्षयके  
उपद्रवोंसे पीडित होकर पाडुवर्ण होजाताहै । सर्वप्रकारके  
अर्बुदोंमें मांस तथा रुधिर दूषित होताहै और रुधिरसे  
उत्पन्न हुए अर्बुदमें तो विशेष करके रुधिर दूषित होताहै  
तथा मांसके अर्बुदमें विशेष करके मांस दूषित होताहै ॥  
॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ मांसार्बुदसम्प्राप्तिः ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽंगे मांसं प्रदुष्टं  
समुपैति शोथम् ॥ अवेदनं स्निग्धमनन्य-  
वर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ २५ ॥

मांसं प्रदुष्टं वातेन । अवेदनम् वेदनार-  
हितभीषद्वेदनं वा । अपाकं पाकरहितभीष-  
त्पाकं वा ॥

मुष्टि आदिके प्रहारसे अंग पीडित होकर उस अंगके  
पीटित होनेसे वात कुपित होकर मांसमें वेदनारहित,  
अथवा अल्पवेदनासहित स्निग्ध, अभिन्न वर्णवाली, वा नहीं  
पकनेवाली, अथवा कुछेक पकनेवाली, पत्यरकी समान  
और अचल ऐसी वृत्तको उत्पन्न करेहै ॥ २५ ॥

अथ मांसजन्यार्बुदनिदानम् ।

प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांस-  
परायणस्य ॥ २६ ॥

मांसाशनाभ्यासेन यः प्रदुष्टमांसस्तस्य  
एतद्भवतीत्यर्थः ॥

मांसको भक्षण करनेके अभ्याससे जिसका मांस दुष्ट हो  
जाताहै उसके यह दृढ अर्बुद उत्पन्न होताहै ॥ २६ ॥

अथासाध्यार्बुदलक्षणम् ।

मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमाहुः साध्येष्वपी-  
मानि विवर्जयेच्च ॥ सम्प्रसृतं मर्मसु यच्च  
जातं स्रोतःसु वा यत्तु भवेदचाल्यम् ॥ २७ ॥

साध्येष्वपि वातजादिष्वपि इमानि वक्ष्य-  
माणानि विवर्जयेच्च सम्प्रसृतादीनि ॥

मांससे उत्पन्न हुआ अर्बुद असाध्य है ऐसा वैद्योंने  
कहा है, वातादिसे जो उत्पन्न हुये अर्बुदवे साध्य हैं, उनमें  
भी जो अर्बुद त्नावयुक्त, मर्मस्थलमें उत्पन्न हुआ, स्रोतोंमें  
उत्पन्न हुआ और अचल होय उसकी भी चिकित्सा नहीं  
करनी चाहिये ॥ २७ ॥

अथार्बुदापाके कारणम् ।

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बु-  
दमर्बुदज्ञैः ॥ यद्वन्दजातं युगपत्कमाद्रा-  
द्विर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ २८ ॥

प्रथम उत्पन्न हुये अर्बुदमें जो दूसरा अर्बुद उत्पन्न हो  
जाय तो उसका नाम अन्यर्बुद, कहा जाताहै । यह अ-  
न्यर्बुद एकही समय अथवा अनुक्रमसे उत्पन्न हुआ होय  
और दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य है ॥ २८ ॥

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहु-  
त्वाच्च विशेषतस्तु ॥ दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च  
तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ २९ ॥

ग्रथनाद्ग्रन्थिरूपत्वात् । ननु अपचयां कफ-  
मेदसोराधिक्येऽपि पाको दृश्यते, तथा अत्र  
कथं न पाक इत्याह । निसर्गतः स्वभावात् ॥

सर्व प्रकारके अर्बुद कफकी तथा मेदकी अधिकता-  
वाले और विशेष करके दोषोंको स्थिरतावाले तथा गाढ-  
रूप होयें वेभी नहीं पकते हैं ।

श्लेष्मा-अपचीमें कफ तथा मेद अधिक होताहै,

तो भी अपचीका पाक होता है । फिर अर्बुदका पाक क्यों नहीं होता ।

समाधान—अर्बुदका स्वभाव ही ऐसा है कि जिससे पाक बहुत कालतक नहीं होता और होय तो बहुत थोड़ा पकता है ॥ २९ ॥

### अथ गलगण्डचिकित्सा ।

सर्षपाञ्छिब्रीजानि शणबीजातसीय-  
वान् ॥ मूलकस्य च ब्रीजानि तक्त्रेणाम्ले-  
न पेषयेत् ॥ ३० ॥ गलगण्डो गण्डमाला  
ग्रन्थयश्चैव दारुणाः ॥ प्रलेपादेव नश्यन्ति  
विलयं यान्ति सत्वरम् ॥ ३१ ॥ रक्षोघ्नतै-  
लयुक्तेन जलकुम्भीकभस्मना ॥ लपनं  
गलगण्डस्य चिरोत्थस्यापि शस्यते ॥ ३२ ॥  
रक्षोघ्नः सर्षपः ॥

श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः ॥  
सर्पिषा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥  
॥ ३३ ॥ तिक्तालावूफले पके सप्ताहमु-  
षितं जलम् ॥ सद्यः स्याद्गलगण्डघ्नं  
पानात्पथ्यान्नसेविनाम् ॥ ३४ ॥ तैलं  
पिबेद्वाऽमृतवल्लिनिम्बहिंसाभयावृक्षकपि-  
प्पलीभिः ॥ सिद्धं बलाभ्यां सह देवदा-  
रुणा हिताय नित्यं गलगण्डरोगिणः ॥ ३५ ॥  
वृक्षकोऽत्र तुणिः । उक्तश्च निघण्टौ धन्व-  
न्तरिणा-

तुणिस्तूणीकशीतश्च नन्दिवृक्षश्च वृक्षकः ३६  
बलाभ्यां बलातिबलाभ्याम् ॥

सरसों, सैजिनेके बीज, सनके बीज, अलसी, जौ और मूलीके बीज इनको खट्टे मट्टेमें पीसकर गाढ़ा लेपकरे, इससे गलगण्ड, गण्डमाला और दारुण ग्रन्थि तत्काल नष्ट होजाती और गलजाती है ।

सिवारकी भस्म बनाकर उसको सरसोंके तेलमें पकाकर लेपकरे तो बहुत दिनोंका गलगण्डभी शांत होजाता है

श्वेत अपराजिता ( कोइली ) की जड़को पीसकर प्रातःकाल घीके साथ पिये और इसपर पथ्य आहार करे तो गलगण्ड शांत होजाता है ।

कडवी तोम्बीके पके हुए फलमें पानीको भरकर सात दिनतक रख देवे, फिर उसको पीवे और पथ्य आहार सेवन करे तो उससे गलगण्ड तत्काल नष्ट होजाता है ।

गिलोय, नीम, हिस्सकवृक्ष, हरड, वेलियापीपल, पीपल, दोनोंप्रकारकी खिरैटी और देवदारु इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल नित्य पिये तो गलगण्ड रोग अवश्य नष्ट होजाता है । इसको अमृतादि तैल कहते हैं ॥ ३०-३६ ॥

यवमुद्गपटोलादिकटुरूक्षान्नभोजनम् ॥  
वमनं रक्तमोक्षश्च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥  
॥ ३७ ॥ दापयेत्प्रच्छनान्यन्नं गण्डगो-  
पालिकोद्भवः ॥ प्रलेपस्त्वनुभूतोऽयं बहुधा  
बहुभिर्जनैः ॥ ३८ ॥

प्रच्छनानि पच्छना इति लोके । गण्ड-  
गोपालिका गण्डगुयालीति च प्रसिद्धा ।  
आम्रवाटिकायां सुलभः कीटविशेषो भवति ॥  
लवणं जलकुम्भश्च कणाचूर्णेन संयु-  
तम् ॥ प्रभाते नित्यमश्रीयाद्गलगण्डप्र-  
शान्तये ॥ ३९ ॥

गलगण्ड रोगमें जौ, मूँग, कडवे परवल, तीक्ष्ण तथा रुक्ष पदार्थ भोजन करने चाहियें, वमन करनी, और रुधिर निकलवाना चाहिये ।

गलगण्डपर पछने लगावे और उसपर गण्डगोपाल नामक कीड़ेका लेप करे इससे गलगण्ड नष्ट होजाता है यह प्रयोग बहुतसे मनुष्योंने बहुतही बार अनुभव किया है ।

सियारकी भस्म बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर नित्य प्रातःकाल पिये तो गलगण्ड नष्ट होजाता है ॥ ३७-३९ ॥

### अथ गण्डमालाचिकित्सा ।

काश्चनारत्वचः काथः शुण्ठीचूर्णेन सं-  
युतः ॥ माक्षिकाव्यः सकृत्पीतः काथो

वरुणमूलजः ॥ ४० ॥ गण्डमालां हर-  
त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ४१ ॥  
पलमर्द्धपलश्चापि पिष्टां तण्डुलवारिणा ॥  
काञ्चनारत्वचं पीत्वा गण्डमालां व्यपो-  
हति ॥ ४२ ॥

कचनारकी छालका काथ बनाकर उसमें सोठका चूर्ण  
डालकर पिये तो एकही बारमें गण्डमाला नष्ट होजाती है ।

वरनाकी जड़का काथ बनाकर उसमें सहत डालकर  
पिये तो एकही बारमें तत्काल बहुत दिनोंकी पुरानी  
गण्डमाला नष्ट होजाती है ।

दो तोले अथवा चार तोले कचनारकी छाल लेकर  
उसको चावलोंके पानीमें पीसकर पिये तो गण्डमाला नष्ट  
होती है ॥ ४०-४२ ॥

अथ काञ्चनारगुग्गुलुः ।

काञ्चनारस्य गृह्णीयात्वचं पञ्चपलोन्मि-  
ताम् ॥ नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य  
पलं पलम् ॥ ४३ ॥ पथ्याविभीतथा-  
त्रीणां पलमर्द्धं पृथक्पृथक् ॥ वरुणस्याक्ष-  
मेकं च पत्रकैलात्वचं पुनः ॥ ४४ ॥  
टंकटंकं समादाय सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥  
यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवात्र गुग्गुलुः  
॥ ४५ ॥ संकुट्य सर्वमेकत्र पिष्टं कृत्वा  
विधारयेत् ॥ गुटिकाः शाणिकाः कृत्वा  
प्रभाते भक्षयेन्नरः ॥ ४६ ॥ गलगण्डं  
जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च ॥ ग्रन्थीन्त्र-  
णानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥  
॥ ४७ ॥ प्रदेयश्चानुपानार्थं काथो मुण्डि-  
तिकाभवः ॥ काथः खदिरसारस्य काथः  
कोष्णाऽभयाभवः ॥ ४८ ॥

कचनारकी छाल २० तोले, सोंठ ४ तोले, पीपल  
४ तोले, मिर्च ४ तोले, हरट २ तोले, बड़ेडे २ तोले,  
आंवले २ तोले, वरना १ तोला, तेजपात २४ रस्ती,  
इलायची २४ रस्ती और दालचीनी २४ रस्ती लेवे, इन  
सबको एकत्र करके चारोंक चूर्ण बनावे, फिर इस स

चूर्णकी बराबर गूगल मिलाकर उत्तम विधिसे कूटकर  
गोली बनालेवे । इसको कांचनार गूगल कहतेहैं । इस  
गूगलकी चौबीस चौबीस रस्तीकी गोलिया बनावे । प्रातः-  
काल एक गोली नित्य ग्वाय तो महाउग्र गलगड, अपची,  
अर्बुद, ग्रन्थि, व्रण, गुल्म, कोढ़ तथा भगन्दर यह सब  
नष्ट होजातेहैं । इन गोलियोंपर अनुपानके लिये कुछ  
कुछ गरम गोरखमुण्टीका अथवा खैरसारका वा हरटक  
काथ पिये ॥ ४३-४८ ॥

अथ चक्रमर्दतैलम् ।

चक्रमर्दकमूलस्य पले कल्के विपाचयेत् ॥  
केशरागरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥  
॥ ४९ ॥ पादांशिकं विनिक्षिप्य सिन्दू-  
रमवतारयेत् ॥ एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्ड-  
मालां सुदारुणाम् ॥ ५० ॥

केशरागो भृंगराजः ॥

पमारकी जड़का कल्क चार तोले डालकर भांगरेक  
रसमें सरसोंके तेलको मद मद अग्निसे पकावे जब पकजा  
तब उसमें चौथाई भाग सिन्दूर डालकर उतार लेवे तं  
चक्रमर्दतैल सिद्ध होताहै इस तेलकी मालिस करनेसे  
तत्काल महादारुण गण्डमाला नष्ट होजातीहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ गुञ्जातैलम् ।

गुञ्जामूलफलैस्तैलं विपक्वं द्विगुणाम्भ-  
सा ॥ हरेदभ्यंगनस्याभ्यां गण्डमालां  
सुदारुणाम् ॥ ५१ ॥

चौटलीकी जड़ तथा चौटलीके बीज इनका कल्क  
डालकर दुगुने जलसे तेलको पकावे तो यह 'गुजातैल'  
सिद्ध होताहै । इस तेलका अभ्यंग और नस्य लेनेसे महा  
दारुण गण्डमाला नष्ट होजातीहै ॥ ५१ ॥

अथापचीचिकित्सा ।

तत्र चन्दनादितैलम् ।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरो-  
हिणी ॥ एतत्तैलं शृतं पीत्वा समूलाम-  
पची हरेत् ॥ ५२ ॥

लालचदन, हरड, लाख, वच और कुटकी, इनके काथमें पकाया हुआ तेल 'चदनादितैल' कहा जाता है इस तेलको पीनेसे जडसाहित अपची नष्ट होजाती है ॥ ५२ ॥

### अथ व्योषादितैलम् ।

व्योषं विडंगमधुकं सैन्यवं देवदारु च ॥ तैलमेभिः शृतं नस्यात्सकृच्छाम-  
पचीं हरेत् ॥ ५३ ॥

सोठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, मुलैठी, सैधानिमक और देवदारु इनके काथमें पकाया हुआ तेल 'व्योषादितैल' कहा जाता है । इस तेलका नास देनेसे दारुण अपची नष्ट होजाती है ॥ ५३ ॥

### अथ ग्रन्थ्यर्बुदचिकित्सा ।

स्वर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः ॥  
एतेन विहितो लेपो हन्ति ग्रन्थिं तथा र्बुदम् ॥ ५४ ॥  
ग्रन्थिर्न यो नश्यति भेषजेन निष्कास्य तं शस्त्रचिकित्सितेन ॥ जात्या-  
दिपक्वेन घृतेन वैद्यो व्रणेन चान्येन च संचिकित्सेत् ॥ ५५ ॥  
ग्रन्थिसुद्धृत्य तत्रापि व्रणोक्तं क्रममाचरेत् ॥ शिराग्रन्थि-  
विहायान्ये शेषे शस्त्रं प्रयुज्जते ॥ ५६ ॥

सजी, मूलीका खार और शखका चूर्ण इनको पीसकर लेप करनेसे ग्रन्थि तथा अर्बुद नष्ट होजाता है ॥

जिस ग्रन्थिमें औषधिसे आराम न होय तो उसको वैद्य-शस्त्रचिकित्सासे निकाल देवे फिर व्रणकी समान जात्यादिघृत अथवा अन्यान्य व्रणमें हितकारक औषधियोंको उपयोग करे ॥

गाठको निकालकर फिर व्रणकी समान चिकित्सा करनी चाहिये केवल शिराजन्य ग्रन्थिको छोड़कर बाकी सर्वप्रकारकी ग्रन्थियोंकी शस्त्रसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५४-५६ ॥

ग्रन्थ्यर्बुदानां नयतो विशेषः प्रदेशहेत्वा-  
कृतिदोषदृष्यैः ॥ अतश्चिकित्सेद्विषगर्बु-  
दानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ५७ ॥

अन्य आचार्य ऐसा कहते हैं कि, ग्रन्थि और अर्बुदोंके प्रदेशोंमें, निदानोंमें, आकारोंमें, दोषोंमें और दृष्योंमें कुछभी अन्तर नहीं है । इस कारण शस्त्रचिकित्साको जाननेवाले वैद्य अर्बुदपरभी ग्रन्थिकी समान चिकित्सा करें ॥ ५७ ॥

हरिद्रालोधपत्राङ्गहृद्ममनःशिलाः ॥  
मधुप्रगाढलेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः, परः ॥  
॥ ५८ ॥ मूलकस्य कृतः क्षारो हरिद्रा-  
यास्तथैव च ॥ शंखचूर्णेन संयुक्तो लेपः  
सिद्धोऽर्बुदापहः ॥ ५९ ॥

हलदी, लोध, पतंग, घरका धुआँसा और मैनशिल इनको सहतमें मिलाकर लेप करनेसे मेदसम्बन्धी अर्बुद नष्ट होजाता है ॥

मूलीकी भस्म, हलदीकी भस्म और शंखका चूर्ण इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अर्बुद नष्ट होजाता है । अर्बुद दूर करनेका यह सिद्ध उपाय है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

वटदुग्धकुष्ठरोमकलिसं बद्धं वटस्य पत्रेण ॥  
अध्यस्थ सप्तरात्रान्महदप्युपशान्तिमर्बुदं  
गच्छेत् ॥ ६० ॥

बडका दूध, कूठ और सांभरनिमक इनका अर्बुदके ऊपर लेप करे और ऊपरसे बडके पत्ते बाँध देवे तो हड्डीके ऊपर उत्पन्न हुआ भी अर्बुद नष्ट होजाता है ॥ ६० ॥

शिशुमूलकयोर्वीजं रक्षोग्नं सुरसा यवम् ॥  
तत्रेणाश्वरिपोः पिष्ट्वा लिम्पेदर्बुदशा-  
न्तये ॥ ६१ ॥

रक्षोग्नं सर्षपम् । सुरसा तुलसी । यवम्  
इन्द्रयवम् । अश्वरिपुर्महिषी ।

इति गलगण्डगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदनिदानचि-  
कित्साधिकारः ।

सैंजिनेके बीज, मूलीके बीज, सरसो, तुलसी और इन्द्रजौ इनको भैसके तक्रमें पीसकर लेप करनेसे अर्बुद नष्ट होजाता है ॥ ६१ ॥

इति गलगण्डगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदाधिकारः सम्पूर्णः ।



**अथ श्लीपदाधिकारः ।**

तत्र श्लीपदसामान्यकारणम् ।

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः ॥

ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ १ ॥

विशेषत इति वचनेन अन्यत्रापि श्लीपदं भवतीति बोध्यते ॥

जिस देशमें मेहका जल बहुत दिनोंतक भरा रहताहै और सब ऋतुओंमें जिसमें शीतलता रहतीहै उस देशमें श्लीपद रोग विशेष करके उत्पन्न होताहै ॥

“विशेष करके” ऐसा कहनेसे यह समझना चाहिये कि अन्य देशोंमें भी श्लीपद रोग उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥

अथ श्लीपदसामान्यलक्षणम् ।

यः सज्वरो वद्वक्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ॥ तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिथ्रोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ २ ॥

तत्रिविधम् । वातिकं पैत्तिकं श्लेष्मिकश्चेति ॥

मनुष्योंकी साथलेकी जड़में जो सूजन ज्वरसहित और अत्यंत पीडायुक्त अनुक्रमसे धीरे धीरे पावमें पहुंचे उस सूजनको श्लीपद कहतेहैं । कितनेक आचार्य कहतेहैं कि हाथ, कान, नेत्र, लिंग, होठ और नाक इनमेंभी श्लीपद होताहै ॥

वातिक, पैत्तिक और कफज ऐसे श्लीपद रोग तीन प्रकारका है ॥ २ ॥

अथ त्रिविधश्लीपदसामान्यलक्षणम् ।

वातजं कृष्णरूक्षं हि स्फुटितं तीव्रवेदनम् ॥ अनिमित्तरुजश्चास्य बहुशो ज्वर एव च ॥ ३ ॥ पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं भृशम् ॥ श्लेष्मिकन्तु भवेत्क्षिग्धं तथा पाण्डुरमस्थिरम् ॥ ४ ॥

वातिक श्लीपद काला, रुखा, फटाहुआ, तीव्र पीडा-युक्त होताहै उसमें अकस्मात् वेदना होतीहै तथा बारबार ज्वर आताहै ।

पैत्तिक श्लीपद पीले रंगका, अत्यंत दाह और ज्वर-युक्त होताहै । कफका श्लीपद सिग्ध, पाण्डुवर्ण और अल्प पीडायुक्त होताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ॥ गुरुत्वञ्च महत्त्वञ्च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥

यह तीनों प्रकारके श्लीपद कफके उत्कर्षसे होतेहैं क्योंकि कफके बिना भारीपन और महत्पन नहीं हो-सक्ता ॥ ५ ॥

अथ श्लीपदासाध्यता ।

वल्मीकमिव सञ्जातं कण्टकैरुपचीयते ॥ अन्दात्मकं महत्तत्तु वर्जनीयं विशेषतः ॥ ६ ॥ यच्छ्लेष्मिकाहारविहारजातैर्जातं तथा भूरिकफस्य पुंसः ॥ सास्त्रावमत्युन्नतसर्वलिगं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्य ॥ ७ ॥

जो श्लीपद सोंपकी बोंबीकी समान, अनेक काँटा युक्त बड़ा हो और जिसको उत्पन्न हुये एक साल बीत गया हो उस श्लीपदकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । जो श्लीपद कफजन्य आहार विहारोंसे उत्पन्न हुआ हो, अधिक कफवाले मनुष्यके उत्पन्न हुआ हो, खवता हो, अत्यंत ऊँचा हो, तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त हो और खुजलीयुक्त हो, उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ श्लीपदचिकित्सा ।

लंघनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः ॥ प्रायः श्लेष्महरैरुणैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ ८ ॥ सिद्धार्थशोभाञ्जनदेवदारुविश्वौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ पुनर्नवानागरस-र्षपाणां कल्केन वा काल्जिकमिश्रितेन ॥ ९ ॥

श्लीपदमिति शेषः ॥

लघन, लेपन, स्वेदन, विरेचन, रक्तमोक्षण और विशेष करके कफको हरनेवाली गरम औषधियोंसे श्लीपदकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

सरसों, सैजिना, देवदारु और सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर श्लीपदके ऊपर लेप करनेसे श्लीपद नष्ट होजाताहै ।

पुनर्नवा, सोंठ, और सरसो इनका कल्क बनाकर उसमें कांजी डालकर लेप करनेसे श्लीपद नष्ट होजाताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

धतूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिशुसर्षपैः ॥ प्र-  
लेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारु-  
णम् ॥ १० ॥ असाध्यमपि यात्यस्तं  
श्लीपदं चिरकालजम् ॥ मूलेन सहदे-  
वायास्तालमिश्रेण लेपनात् ॥ ११ ॥  
सप्तताम्बूलपत्राणां कल्कं तप्तेन वा-  
रिणा ॥ संसृष्टं लवणोपेतं सेवितं श्लीपदं  
हरेत् ॥ १२ ॥

धतूरा, एरड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सैंजिना और सरसों इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका दारुण श्लीपद नष्ट होजाताहै । खिरैटी अथवा सहदेवीकी जड़को ताड़के फलोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे बहुत कालसे उत्पन्न हुआ असाध्य श्लीपद भी नष्ट होजाताहै । नागरवेलके सात पानोंका कल्क बनाकर उसमें सैंधानिमक डालकर गरम जलके साथ नित्य पिये तो श्लीपद नष्ट होजाताहै ॥ १०-१२ ॥

शाखोटवल्कलकाथं गोमूत्रेण युतं पि-  
बेत् ॥ श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनि-  
वृत्तये ॥ १३ ॥ रजनीं गुडसंयुक्तां  
गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥ वर्षाभूत्रिफलाचूर्णं  
पिप्पल्या सह योजितम् ॥ सक्षौद्रं श्लीपदे  
लिह्याच्चिरोत्थं श्लीपदं जयेत् ॥ १४ ॥  
गन्धर्वतैलसिद्धां हरीतकीं गोम्बुना पिबे-  
न्नित्यम् ॥ श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ  
सप्तरात्रेण ॥ १५ ॥

गन्धर्वतैलम् एरण्डतैलम् । गोम्बु  
गोमूत्रम् ॥

इति श्लीपदनिदानचिकित्साधिकारः ।

सिहोरेकी छालका काथ बनाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे श्लीपदका नाश होताहै और भेद दोषभी नष्ट होताहै ॥

हलदी और गुडको एकत्र मिलाकर गोमूत्रमें घोलकर पीनेसे श्लीपद नष्ट होजाताहै ।

पुनर्नवा, हरड, बहेडा, आमला और पीपल इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बहुत दिनोंका श्लीपद नष्ट होजाताहै ।

अण्डीके तेलमें हरडोंको पकाकर नित्य गोमूत्रके साथ पीनेसे सात दिनमें श्लीपद रोग नष्ट होजाता-  
है ॥ १३-१५ ॥

इति श्लीपदाधिकारः संपूर्णः ।

## अथ विद्रध्यधिकारः ।

तत्र विद्रध्याः सम्प्राप्तिपूर्वक-  
सामान्यलक्षणम् ।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रि-  
ताः ॥ दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्यु-  
च्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥ महामूलं रुजा-  
वन्तमल्पं वाप्यथ वायतम् ॥ स विद्र-  
धिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च  
सः ॥ २ ॥

अस्थिसमाश्रिता दोषा इति वक्ष्यमाण-  
शोथाद्विद्रधेर्भेदार्थम् । यतो व्रणशोथे दोषा-  
णामस्थिसमाश्रयनियमो नास्ति । घोरं  
दारुणम् । आयतं दीर्घम् ॥

अस्थियोमें रहनेवाले और अत्यत वृद्धिको प्राप्त हुए दोष, त्वचाको, रधिरको, मांसको तथा मेदको दूषित करके धीरे धीरे छोटी अथवा बड़ी, बहुतबड़ी जड़वाली और वेदनायुक्त भयकर सूजनको उत्पन्न करतेहैं यह सूजन 'विद्रधि' कहीजातीहै और यह छै प्रकारकी है ।

इस विद्रधि अधिकारके पश्चात् जो व्रणसम्बन्धी सूजन कही जायगी उससे पृथक्ता दिखलानेके लिये 'अस्थि-  
योमें रहनेवाले' ऐसा कहा है क्योंकि व्रणसम्बन्धी सूजनमें दोषोंका अस्थियोंमें रहनेका नियम नहीं है ॥ १ ॥ २ ॥

## अथ विद्रधिषट्प्रकाराः ।

यथा दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा  
तथा ॥ षण्णां तेषां तुल्यमेव लक्षणं  
संप्रचक्षते ॥ ३ ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, धनज और रधिर-  
जन्य ऐसे विद्रधि छै प्रकारकी हैं । समस्त विद्रधियोंके  
सामान्य लक्षण एकसेही होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ वातजविद्रधिलक्षणम् ।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवे-  
दनः ॥ चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वात-  
सम्भवः ॥ ४ ॥

विषमो भृशं क्षणमल्पः क्षणं महान् ।  
चिरोत्थानप्रपाकः चिराद्विलंबादुत्थानप्रपा-  
कौ यस्य सः ॥

जो विद्रधि काली अथवा लाल हो, क्षणमें छोटी  
और क्षणमें बड़ी होजाय, अत्यन्त वेदनायुक्त और  
जिसका उठना तथा पकना बहुत कालमें होय उसको  
वातज विद्रधि जानना इस विद्रधिमें पतला स्त्राव होता-  
है ॥ ४ ॥

अथ पित्तजविद्रधिलक्षणम् ।

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदा-  
हवान् ॥ क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः  
पित्तसंभवः ॥ ५ ॥

जो विद्रधि पके गूलरकी समान अथवा कलौज लिये  
हो, ज्वरसे तथा दाहसे युक्त हो, जिसका उठना और  
पकना शीघ्र हो, उसको पित्तकी विद्रधि जानना । इस  
विद्रधिका स्त्राव पीला होताहै ॥ ५ ॥

अथ कफजविद्रधिलक्षणम् ।

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवे-  
दनः ॥ चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफ-  
संभवः ॥ तनुपीतसिताश्चैषामास्त्रावाः  
क्रमशो मताः ॥ ६ ॥

जो विद्रधि मट्टीके सिकोरेकी समान बड़ी हो, पाण्डुवर्ण  
हो, शीतल हो, स्निग्ध हो, थोड़ी पीटा युक्त हो और  
जिसका उठना तथा पकना बहुत देरमें होय उसको  
कफकी विद्रधि कहतेहैं । इस विद्रधिका स्त्राव सफेद  
होताहै ॥ ६ ॥

अथ सान्निपातिकविद्रधिलक्षणम् ।

नानावर्णरुजास्त्रावो घाटलो विषमो महा-  
न् ॥ विषमं पच्यते वापि विद्रधिः सान्नि-  
पातिकः ॥ ७ ॥

नाना अनेकविधाः वर्णाः कृष्णरक्तपाण्डु-  
रूपाः रुजः तोददाहकण्डूदिरूपाः स्त्रावाः

तनुपीतसिताः यस्य सः । घाटलः घाटा  
कोटिः सा अस्य अस्तीति घाटलः अत्यु-  
च्छ्रिताग्र इत्यर्थः । विषमः निम्नोन्नतः ।  
विषमं पच्यते वापि चिराच्चिरगम्भीरोत्ता-  
नोर्द्धानूर्द्धभेदेन विषमं यथा स्यात्तथा पच्यते ।

जो विद्रधि काली, लाल तथा पाण्डुवर्ण हो, भेदन  
छेदने सरीखी पीटा, दाह तथा खुजली आदि अनेक  
उपद्रव युक्त हो, पतले, पीले तथा सफेद स्त्राववाली हो,  
अत्यंत ऊँची अनीदार हो, नीची ऊँची हो, बड़ी हो और  
जो बहुत दिनोंमें थोड़े दिनोंमें विषम रूपसे अनियमित  
कालमें पके उसको त्रिदोषविद्रधि जानना ॥ ७ ॥

अथाभिघातजविद्रधिसम्प्राप्ति-  
लक्षणम् ।

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणाम् ॥  
क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीर-  
येत् ॥ ८ ॥ ज्वरस्तृषा च दाहश्च जायते  
तस्य देहिनः ॥ आगन्तुर्विद्रधिर्ह्येष पित्त-  
विद्रधिलक्षणः ॥ ९ ॥

तैस्तैर्भावैः काष्ठलोष्ठपाषाणादिभिः अभि-  
हिते यथा रक्तस्त्रावो भविष्यति तथा क्षते  
कृते क्षतोष्मा । अत्र क्षतशब्देन हतमात्र-  
मुच्यते । तेनाभिहतक्षतयोरुभयोरप्यूष्मा  
वायुना विसृतः । अभिहते अभिघाताक्षते  
रक्तक्षयात्कुपितेन वायुना प्रसृतः ईरयेत्को-  
पयेत् ॥

लकड़ी, ईंट, पत्थर, तलवार, बरछी आदिके अभि-  
घातसे घाव होजानेसे अथवा जिसमें रुधिरका स्त्राव होताहो  
ऐसे घावके होनेसे अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्योंके अर्गोंमें  
अभिघातसे अथवा घावके होनेसे रुधिरका क्षय होनेसे  
कोपको प्राप्त हुई वायु विसृत होकर अभिघातकी अथवा  
घावकी गरमी, रुधिर और पित्तको प्रकुपित करतीहै  
जिससे मनुष्योंके ज्वर, तृषा और दाह उत्पन्न होतीहै ।  
इस आगन्तुज विद्रधिके लक्षण पित्तजन्य विद्रधिके लक्ष-  
णोंकी समान होतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ रुधिरजन्यविद्राधिलक्षणम् ।

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजा-  
ज्वरः ॥ पित्तविद्राधिलिङ्गस्तु रक्तविद्राधि-  
रुच्यते ॥ १० ॥

जो विद्राधिकाले फोड़ोंसे व्याप्त हो, कालोंसे लिये हो, तीव्र  
पीडा युक्त, तीव्रदाहयुक्त, तीव्रज्वरयुक्त, और बाकी सब  
लक्षण इसके पित्तविद्राधिके समान होते हैं इसको रुधि-  
रकी विद्राधि जानना ॥ १० ॥

अथाभ्यन्तरविद्राधिनिदाना-  
श्रयलक्षणानि ।

आभ्यन्तरानतस्तूर्द्ध विद्राधीन्परिचक्षते ।  
गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कशकाम्लभोज-  
नाः ॥ ११ ॥ अतिव्यवायव्यायामवेगा-  
घातविदाहिभिः ॥ पृथक् सम्भूय वा  
दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥ १२ ॥  
वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रा-  
धिम् ॥ गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ  
वंक्षणयोस्तथा ॥ १३ ॥ वृक्कयोः प्ली-  
हि यकृति हृदि वा क्लोम्नि चाप्यथ ॥  
एषां लिङ्गानि जानीयाद्वाह्यविद्राधिल-  
क्षणैः ॥ १४ ॥

सम्भूय वा मिलित्वा वा । समुन्नद्धं सम-  
न्तादुन्नतम् ॥

अब भीतरकी विद्राधियोंको कहते हैं । भारी अन्नके  
भोजन करनेसे, असात्म्य ( जो अपनेको प्रतिकूल हो )  
विरुद्ध भोजन, सूखा हुआ शाक और खट्टे पदार्थोंके  
खानेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, आमसे, मलमूत्रादिके वेगो-  
को रोकनेसे, अत्यंत उष्णपदार्थोंसे और दाहजनक पदार्थोंसे  
अलग अलग अथवा सब एकत्र मिलकर कोपको प्राप्त  
हुये दोष गुदाके भीतर, मूत्राशयके मुखमें, नाभिके भीतर,  
पेटके भीतर, सांथलकी सधियोंके भीतर, कोखमें,  
ब्रूकमें, प्लीहा और यकृतमें, हृदयमें अथवा तृषा लगनेके  
स्थानके भीतर, सोंपकी बॉबीकी और ऊँची गुल्मकी  
समान विद्राधि उत्पन्न होती है । इन विद्राधियोंके लक्षण  
बाहरको विद्राधियोंकी समान ऊपरसे जाननी ॥ ११-१४ ॥

अथ स्थानविशेषेण रूपविशेषः ।

गुदे वातनिरोधस्तु वस्तौ कृच्छाल्प-  
मूत्रता ॥ नाभ्यां हिक्काजृम्भणे च कुक्षौ  
मारुतकोपनम् ॥ १५ ॥ कटिपृष्ठग्रह-  
स्तीव्रो वंक्षणोत्थे तु विद्राधौ ॥ वृक्कयोः  
पार्श्वसंकोचः प्लीहयुच्छासावरोधनम् १६ ॥  
सर्वांगग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते ।  
श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपी-  
यते पयः ॥ १७ ॥

गुदाके भीतर विद्राधि होती है तौ अपानवायु रुक-  
जाती है । मूत्राशयके मुखमें जो विद्राधि होती है तो  
उसमें धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा मूत्र उतरता है । नाभिके  
भीतर जो विद्राधि होती है तो हिचकी और जम्माई  
आती है । पेटके भीतर जो विद्राधि होती है तो वायुका  
प्रकोप होता है, सांथलकी जड़के भीतर जो विद्राधि होती है  
तो तीव्रतर कमर और पीठ जकड़ जाती है, कोखमें वि-  
द्राधि होती है तो पसलियोंमें संकोच होता है, प्लीहाके  
भीतर जो विद्राधि होती है तो श्वास रुकजाता है, हृद-  
यके भीतर जो विद्राधि होती है तो तीव्र रीतिसे सम्पूर्ण  
अंग रहजाते हैं और खाँसी होजाती है, जो यकृतके  
भीतर विद्राधि होती है तो श्वास तथा हिचकी होती है  
और जो तृषा लगनेके स्थानमें विद्राधि होती है तो अत्यंत  
तृषा लगती है ॥ १५-१७ ॥

अथ विद्राधिस्रावमार्गः ।

नाभेरुपरिजाः पक्वा यान्त्यूर्द्धमितरे  
त्वधः ॥ १८ ॥

उपरिजाः कक्षादिजाताः यान्ति स्रव-  
न्ति । ऊर्द्धं मुखात् । इतरे वस्त्यादिजाः अधः  
गुदात् । नाभिजस्तु उभाभ्यां मार्गाभ्याम् ।  
तथा च हारीतः—

ऊर्द्धं प्रभिन्नेषु मुखान्तराणां प्रवर्ततेऽसृ-  
क्सहितो हि पूयः ॥ अधः प्रभिन्नेषु तु  
पायुमार्गाद् द्वाभ्यां प्रवृत्तिस्त्विह नाभि-  
जेषु ॥ १९ ॥

नाभिसे ऊपरके भागोंमें ( कोख आदिमें ) उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब पकतीहै तब उनका खाव मुख-मेसे होताहै । और नाभिसे नीचेके भागोंमें ( मूत्राशय आदिमें ) उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब पकतीहै तब उनका खाव गुदामेंसे होताहै । नाभिके भीतर विद्रधि जब पकतीहै तब उनका खाव मुख तथा गुदा दोनोंमें से होताहै ॥

क्योंकि हारीतसहितामें कहा है कि “ नाभिके ऊपर उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटतीहै तब मनुष्योंके मुखमेंसे रुधिरसहित राध गिरतीहै और नाभिसे नीचे उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटतीहै तब मनुष्योंकी गुदामेंसे रुधिर सहित राध गिरतीहै । नाभिमें उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटतीहै तो गुदा और मुख दोनोंमेंसे रुधिरसहित राध निकलतीहै ” ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ विद्रधिसाध्यासाध्यत्वम् ।

अथः श्रुतेषु जीवेत्तु सुतेषूद्धं न जीवति ॥  
हृन्नाभिवस्तिवर्जेषु तेषु भिन्नेषु बाह्यतः ॥  
जीवेत्कदाचित्पुरुषोनेतरेषु कदाचन २० ॥

हृन्नाभिवस्तिवर्जेषु ग्राहकौमादिजाः तेषु  
तथा भिन्नेषु न जीवेत् । हृदादीनां मर्मत्वात् ।

विद्रधि गुदामेंसे लवती होय तो मनुष्य जीतारहताहै किन्तु जो मुखमेंसे लवती होय तो मनुष्य नहीं जीता । हृदय, नाभि और मूत्राशय इन स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो बाहर फूटजाय तो मनुष्य कदाचित् जीजाताहै किन्तु हृदय, नाभि और मूत्राशय इनमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो बाहर फूटजाय तो मनुष्य कभी भी नहीं जीता क्योंकि हृदय आदि स्थान मर्मस्थल हैं ॥ २० ॥

असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्वोऽपक्वश्च विद्रधिः ॥ सन्निपातोत्थितोऽप्येवं पक्व एव हि वस्तिजः ॥ २१ ॥ त्वग्जो नाभेरधो-जश्च साध्यो यश्च समीपजः ॥ अपक्वश्चैव पक्वश्च साध्यो नोपरि नाभितः ॥ २२ ॥ आध्मानं वद्धनिश्शब्दं छर्दिहिकातृषान्वितम् ॥ रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २३ ॥

इसपर भोज कहताहै कि “ मर्म स्थलोंमें उत्पन्न हुई विद्रधि पकी होय अथवा नहीं पकी होय तोभी असाध्यही समझना चाहिये । तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई विद्रधि भी असाध्य है । मूत्राशयमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो पकजाय तो असाध्य है । जो विद्रधि त्वचामें उत्पन्न हुई होय, नाभिके नीचे उत्पन्न हुई होय अथवा नाभिके समीपमें उत्पन्न हुई होय तो साध्य है । नाभिसे ऊपर उत्पन्न हुई विद्रधि पकी हो अथवा नहीं पकी हो तोभी असाध्य है । जिस विद्रधिवाले मनुष्यके अफारा, अशक्तता, वमन, हिचकी, तृपा, वेदना तथा श्वास होय तो वह मनुष्य विद्रधिसे अवश्य मरजाताहै ॥ २१-२३ ॥

अथ वहिर्विद्रधिसाध्यासाध्यता ।

साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः ॥ आमपक्वविदग्धत्वं तेषां ज्ञेयञ्च शोथवत् ॥ २४ ॥

शोथवत् वक्ष्यमाणव्रणशोथवत् ॥

बाहरकी विद्रधियोंमें वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, क्षतज और रुधिरजन्य ये पाँचों विद्रधि साध्य हैं किन्तु तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई विद्रधि असाध्य है । विद्रधिकी अपक्वता, पक्वता और विदग्धता व्रणशोथकी समान जानना । व्रणशोथकी पक्वता, अपक्वता और विदग्धता आगेको अधिकारमें कहेंगे ॥ २४ ॥

अथ विद्रधिचिकित्सा ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ॥ रेको मृदुर्लघनश्च स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २५ ॥ अपक्वे विद्रधौ युञ्ज्याव्रणशोथवदौषधम् ॥ वातघ्नमूलकलैस्तु वसातैलवृत्तान्वितैः ॥ २६ ॥ सुखोष्णैर्वहुलैर्लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ यवगोधूममुद्गैश्च पिष्टैराज्येन लेपयेत् ॥ २७ ॥ विलीयते क्षणेनैव ह्यविपक्वस्तु विद्रधिः ॥ पैत्तिकं विद्रधि वैद्यः प्रदिह्यात्सर्पिषा युतैः ॥ पयस्यौशीरमधुकचन्दनैर्दुग्धपेषितैः ॥ २८ ॥



**पयस्याऽनेकार्थत्वादत्र क्षीरकाकोली गुणा-  
धिक्यात्तस्या अलाभे अश्वगंधा ग्राह्या ॥**

सर्वप्रकारकी विद्रधियोंमें जोक लगवानी चाहियें । मृदु विरेचन देना और लघन कराना ये उत्तम हैं । पित्तकी विद्रधिको छोड़कर बाकी सब विद्रधियोंमें स्वेदन करना उत्तम है ॥

जो विद्रधि पकी न होय तो उसपर व्रणशोथकी औषधि जो कि आगेके अधिकारमें कहीजायगी उनकी योजना करे ॥

आल अंडकी जड़का कल्क बनाकर उसमें चरबी, तेल तथा घी डालकर कुछेक गरम करकै उसका गाढा लेप करनेसे वातकी विद्रधि दूर होजाती है । जौ, गेहूँ, और मूँग इनको धीमे पीसकर लेप करनेसे नहीं पकीहुई विद्रधि क्षणमात्रमें लुप्त होजाती है ॥

क्षीरकाकोली, खस, मुलैठी और लालचदन इनको दूधमें पीसकर गाढा लेप करे तो पित्तजन्य विद्रधि नष्ट होती है । मूल श्लोकमें जो 'पयस्या' शब्द है उसके अनेक अर्थ हैं परन्तु हमने उनमेंसे यहां क्षीरकाकोली ली है क्योंकि क्षीरकाकोली बहुत गुणवाली है जो क्षीरकाकोली न मिले तो उसके अभावमें असगंध लेना चाहिये ॥ २५-२८ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपयेत्  
पिवेद्रा त्रिफलाकाथं त्रिवृत्कल्काक्षसं-  
युतम् ॥ २९ ॥ इष्टिकासिकतालोह-  
किट्टा गोशकृता सह ॥ मूत्रैः सुखोष्णै-  
ल्लेपेन स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥ ३० ॥  
दशमूलीकषायेण सस्त्रेहेन रसेन वा ॥  
शोथव्रणं वा कोष्णेन स नूनं परिषेच-  
येत् ॥ ३१ ॥ पित्तविद्रधिवत्सर्वाः क्रिया  
निरवशेषतः ॥ विद्रध्योः कुशलः कुर्या-  
द्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ ३२ ॥ रक्तचन्द-  
नमस्त्रिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ॥ क्षीरेण  
विद्रधौ लेपो रक्तागन्तुनिमित्तके ॥ ३३ ॥

पंचवल्कलका कल्क बनाकर उसमें घी डालकर उसका लेप करनेसे पित्तकी विद्रधि दूर होती है ॥

हरड, बहेडा तथा आमला इनका काथ बनाकर उसमें एक तोलाभर निसोतका कल्क डालकर पीनेसे पित्तजन्य विद्रधि दूर होजाती है । ईटका चूर्ण, रेता लोहेकी कीट और गायका गोबर इनको गायके मूत्रमें पीसकर कुछेक गरम करकै उसका लेप करे तो उसके स्वेदनसे कफजन्य विद्रधि नष्ट होजाती है ।

दशमूलके काथ, अथवा दशमूलके स्वरसमें घी डालकर कुछेक गरम करकै उसका सेचन करनेसे विद्रधि तथा व्रणशोथ नष्ट होजाता है । रुधिरसम्बन्धी विद्रधि अथवा अभिघातजन्य वा घावके होनेसे विद्रधि उत्पन्न हुई होय तो वैद्य उसपर पित्तसम्बन्धी, रुधिरसम्बन्धी, और क्षतसम्बन्धी विद्रधिकी समान लालचदन, मजीठ, हलदी मुलैठी और पीला गेरु इनको दूधमें पीसकर उसका लेप करे, विद्रधिको नष्ट करनेवाली जो क्रिया है वे सब करनी चाहिये ॥ २९-३३ ॥

**पीता ह्येते निहन्त्याशु विद्रधिं कोष्ठस-  
म्भवम् ॥ कृष्णाऽजाजी विशाला च धामा-  
र्गवफलं तथा ॥ ३४ ॥**

**धामार्गवफलं कोशातकीफलम् ॥**

कालाजीरा, इन्द्रायन और कडवी तोरई इनको एकत्र पीसकर पीनेसे कोठेमें उत्पन्न हुई विद्रधि नष्ट होजाती है ॥ ३४ ॥

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वा वरुणस्य च ॥  
जलेन कथितं पीतमन्तर्विद्रधिहृत्परम् ॥  
॥ ३५ ॥ गायत्री त्रिफला निम्बः कटुका  
मधुकं समम् ॥ त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां  
चत्वारोऽशाः पृथक्पृथक् ॥ ३६ ॥ मसूरा-  
न्निस्तुषान्दद्यादेष काथो व्रणाञ्जयेत् ॥  
गुल्मविद्रधिवीसर्पदाहमोहज्वरापहः ३७ ॥  
तृणमूर्च्छाच्छर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकाम-  
मलाः ॥ शिशुमूलं जले धौतं पिष्टं वस्त्रेण  
गालयेत् ॥ तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्त-  
र्विद्रधिं नरः ॥ ३८ ॥ शोभाञ्जनकनिर्यूहो  
हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ॥ हन्त्यन्तर्विद्रधिं  
शीघ्रं प्रातःप्रातर्विशेषतः ॥ ३९ ॥

इति विद्रधिनिदानचिकित्साधिकारः ।

सफेद पुनर्नवेकी जड अथवा वरनाकी जड इनको पानीमें औटाकर काढेको पीनेसे भीतरकी विद्रधि अवश्य नष्ट होजाती है ।

खैर, हरड, बहेडा, आमला, नीम, कुटकी और गुलेटी इन सबको समान भाग लेवै, चार भाग निसोतकी जड और कडवे परवलकी जड चार भाग लेवै, फिर इन सब पदार्थोंको तथा छुकले रहित मसूरकी दालको डालकर काय बनावे । यह काय व्रण, विद्रधि, गुल्म, वीसर्प, दाह, मोह, ज्वर, तृषा, मूर्च्छा, वमन, हृदयकी पीडा, रक्तपित्त, कोढ़ और कामलाको दूर करदेताहै ।

सैजिनेकी जडको जलमें धोकर जलमें पीसकर वस्त्रमें छान लेवे, फिर उसमें सहित मिलाकर पीनेसे भीतरकी विद्रधि शमन होती है ।

सैजिनेका काय बनाकर उसमें हींग तथा सैवानिमक डालकर विशेष करके प्रातःकाल पिये तो भीतरकी विद्रधि नष्ट होजाती है ॥ ३५-३९ ॥

इति विद्रध्यधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ व्रणशोथाधिकारः ।

तत्र व्रणशोथस्य संख्यापूर्वक-  
सामान्यलक्षणम् ।

पृथक्समस्तदोषोत्था रक्तजागन्तुजौ  
तथा ॥ व्रणशोथाः षडेते स्युः संयुक्ताः  
शोथलक्षणैः ॥ १ ॥

शोथलक्षणैः पूर्वोक्तैः ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रुधिरजन्य और आगन्तुज ऐसे व्रणशोथ छै प्रकारका है । इन छैओमें पूर्वोक्त सृजनके लक्षण होतेहैं ॥ १ ॥

## अथव्रणशोथविशिष्टरूपम् ।

विषमं पच्यते वातापित्तोत्थं चाचिरा-  
च्चिरम् ॥ कफजः पित्तवच्छोथौ रक्तागन्तु-  
समुद्भवौ ॥ २ ॥

वातज व्रणकी सृजन विषम रीतिसे पकती है, पित्त-  
ज व्रणकी सृजन तत्काल पकजाती है, कफज व्रणकी  
सृजन वह तत्कालमें पकती है और रुधिरजन्यव्रणकी  
सृजन तथा आगन्तुजव्रणकी सृजन पित्तज व्रणशोथकी  
सृजनकी समान तत्काल पकजाती है ॥ २ ॥

## अथापक्वव्रणशोथलक्षणम् ।

मन्दोष्णताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सव-  
र्णता ॥ मन्दवेदनता चाऽपि शोथस्यामस्य  
लक्षणम् ॥ ३ ॥

जिसमें गरमी मंद हो, सृजन कम हो, घावका स्थान  
कठोर हो, सृजनका रंग शरीरकी त्वचाकी समान हो  
और वेदना थोड़ी हो, तो उसको अपक्व सृजन जानना ३

## अथ पच्यमानव्रणशोथलक्षणम् ।

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव प्रपच्यते ॥ पिपी-  
लिकागणेनेव दृश्यते छिद्यते तथा ॥ ४ ॥

भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते ॥

पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते

॥ ५ ॥ ऊषचोषौ विवर्णः स्यादङ्गुल्ये-

वावपीड्यते ॥ आसने शयने स्थाने शा-

न्ति वृश्चिकविद्धवत् ॥ ६ ॥ न गच्छेदा-

ततः शोथो भवेदाध्मातवस्तिवत् ॥ ज्वर-

स्तृष्णाऽरुचिश्चैतत्पच्यमानस्य लक्षणम् ७

छिद्यते द्विधा क्रियत इव । भिद्यते विदी-  
र्यत इव । ऊषो दाहः । चोषः पार्श्वस्थाभि-  
नेव सन्तापः ताभ्यां युक्तः । आततः त्वक्स-  
ङ्कोचरहितः । वस्तिर्मूत्राशयश्चर्मपुटो वा ।

जो सृजन अभिसे जलते हुएकी समान हो, क्षारके  
लगानेकी समान रेंधताहो, चींटिओसे काटनेकी समान  
मालूम हो, शस्त्रसे छेदने तथा चीरने सरीखा मालूम हो,  
अथवा दो टुकड़े होजाय ऐसा जान पड़े, डंडे आदिसे  
मारनेकी समान पीडा हो, हाथसे दवानेकी समान मालूम  
हो, भीतर सूई छेदने सरीखा मालूम हो और अंगुलियोंसे  
उखाटने सरीखी पीडा हो, दाहसे व्याप्त हो, अभिसे  
सततकी समान हो, त्वचाके रंगसे दूसरा रंग होजाय,  
मूत्राशयकी समान अथवा चमड़ेकी पुटकी समान फूला  
हुआ हो, बीछू काटनेकी समान बैठते, सोते और उठते  
समय घोर पीडा हो अर्थात् कभी चैन नहीं पड़े और  
ज्वर, तृषा तथा अरुचिसे संयुक्त हो, उसको पक्वता हुआ  
व्रणशोथ जानना ॥ ४-७ ॥

अथ पक्वव्रणशोथलक्षणम् ।

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः ॥ प्रादुर्भावो वलीनाश्च तोदः कण्डू-  
र्भुर्मुर्मुहुः ॥ ८ ॥ उपद्रवाणां प्रशमो निम्न-  
ता स्फुटनं त्वचाम् ॥ वस्ताविवाम्बुसञ्चारः  
स्याच्छोथेऽङ्गुलिपीडिते ॥ ९ ॥ पूयश्च  
पीडयेदेकमन्तमन्ते च पीडिते ॥ बुभुक्षा  
व्रणशोथस्य भवेत्पक्वस्य लक्षणम् ॥ १० ॥

वेदनोपशमः दाहादिदुःखोपशमः । अल्पो  
लोहित इति अन्वयः । न च उन्नतः पच्यमा-  
नापेक्षया । उपद्रवाणां ज्वरादीनाम् । निम्नता  
स्वरूपतोऽङ्गुलिपीडनाद्वा अवनतत्वम् ।  
स्फुटनं किञ्चिद्विदारणम् । वस्ताविवेत्यादि  
शोथेऽङ्गुलिपीडिते सति अङ्गुलिपीडिता-  
देशादन्यदेशे अम्बुसञ्चारः । वस्तौ चर्मपु-  
टके । एवमन्ते एकदेशे पीडिते एकमन्तम-  
परमन्तमापूर्य पीडयति ।

दाहादिक पीडा शमन होजाय, सूजनमे थोड़ी लाली  
हो उँचाई जातीरहै, बली पडने लगे, सुई चुभोने  
सरीखी वेदना हो, बारंवार खुजली चलती हो, ज्वरादि  
उपद्रव शांत होजाय, अंगुलीसे दबानेकी समान नम जाय,  
चमड़ा कुछेक फटजाय, सूजनको अगुलीसे दबानेसे जिस-  
प्रकार चमड़ेकी पखालमेंसे पानी एक स्थानसे दूसरे  
स्थानमें चलाजाताहै उसी प्रकार इसमेसे एक स्थानमेंसे  
राघ दूसरे स्थानमे चली जातीहै, एक प्रदेशको दबानेसे  
दूसरे प्रदेशमें राघ जाकर भरजाय तथा मुख लगजाय तो  
जानना कि सूजन पक्वजाती है ॥ ८-१० ॥

अथैकदोषजोऽपि शोथः पाककाले

सकलैर्दोषैः संवर्ध्यत इत्याह ।

ऋतेऽनिलादुद्धं न विना न पित्तं पाकः  
कफश्चापि विना न पूयः ॥ तस्माद्वि-  
सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोफास्त्रिभिरेव  
दोषैः ॥ ११ ॥

पचन्ति पाकं प्राप्नुवन्ति । एवशब्दोऽत्र  
अप्यर्थः । अव्ययानामनेकार्थत्वात् ॥

वातके विना पीडा नहीं होती, पित्तके विना पाक  
नही होता और कफके विना राघ नहीं होती, इसका-  
रण सर्वप्रकारकी सूजनमें तीनों दोषोका संबन्ध  
होताहै ॥ ११ ॥

अथ शोथपाकमतांतरम् ।

कालान्तरेणाभ्युदितन्तु पित्तं कृत्वा वशे  
वातकफौ प्रसह्य ॥ पचत्यतः शोणित-  
मेष पाको मतः परेषां विदुषां द्विती-  
यः ॥ १२ ॥

वशे कृत्वा हीनीकृत्य शोणितं कर्म । पूर्वत्र  
कफात्पूयोऽत्र शोणितात्पूय इति भेदः ॥

कालान्तरसे उदय हुआ पित्त वायु और कफको कम  
करके बलात्कारसे रुधिरको पकाताहै, ऐसा अन्य विद्वा-  
नोने माना है ।

पहिले मतमें कफसे राघ होतीहै ऐसा माना है और  
इस दूसरे मतमे रुधिरसे राघ होतीहै ऐसा माना है इनमें  
इतना भेद है ॥ १२ ॥

अथ गम्भीरपाकलक्षणम् ।

कफजेषु च शोथेषु गम्भीरं पाकमेत्य-  
सृक् ॥ पक्वल्लिङ्गं ततः स्पष्टं यतः स्या-  
च्छोथशीतता ॥ त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं  
घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥ १३ ॥

कफजेषु च शोथेषु गंभीरमसृक्पाकमेति ।  
तत्र कथं पाकज्ञानमित्याह । तत्र ततः कार-  
णात् । पक्वल्लिङ्गं स्पष्टम् । यतः पच्यमानाव-  
स्थान्तर्गतरागदाहव्यथाघनांतरशोथशीता-  
दयो भवन्ति । घनस्पर्शत्वं स्पर्शोऽव्य-  
थत्वम् ॥

कफसे उत्पन्न हुई सूजनमे रुधिर गम्भीर रीतिसे  
पकताहै तो भी पक्वजानेकी परीक्षा स्पष्ट होतीहै और  
जिस समयसे सूजन पक्वनेलगजातीहै उस समय लाली  
तथा दाहादि पीडा होकर पश्चात् सूजनमें पक्वजानेकी  
अवस्था होजातीहै, तब शीतलपन होजाताहै, सूजनका  
रंग चमड़ेकी रंगकी समान होजाताहै, अल्पवेदना होतीहै

यह प्रमाण है इस कारण पक्कजनेकी खबर कैसे मालूम  
सक्ती यह वैद्य नहीं समझ सके ॥ १३ ॥

अथ पक्कव्रणशोथात्पूयानिः-  
सृतौ दोषः ।

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वातिरितः संद-  
हति प्रसह्य ॥ तथैव पूयो ह्यविनिःसृतस्तु  
मांस शिराः स्नायुमपीह खादेत् ॥ १४ ॥

जिस प्रकार वायुसे प्रेरणाकी हुई अग्नि तृणोंके वनमें  
प्राप्त होकर बलात्कारसे जलादेती है उसी प्रकार पक्केहुये  
व्रणमेंसे राधको नहीं निकालनेसे मांस शिरा और स्नायु-  
ओंको खाजाती है ॥ १४ ॥

अथ व्रणशोथपक्वापक्कज्ञानाज्ञाने  
वैद्यगुणदोषौ ।

आमं विदह्यमानश्च सम्यक्पक्वन्तु यो  
भिषक् ॥ जानीयात्स भवेद्द्वैद्यः शेषास्त-  
स्करवृत्तयः ॥ १५ ॥

विदह्यमानं विपच्यमानम् । तस्करवृत्तयः  
तेषां तस्कराणामिव द्रव्यलाभमात्रप्रयोजनं  
भवति न तु धर्मयशोमैत्रीलाभः ॥

यश्छिन्नस्याममज्ञानाद्यश्च पक्कमुपेक्षते ॥  
श्वपचाविव विज्ञेयौ तावनिश्चितका-  
रिणौ ॥ १६ ॥

जो वैद्य सूजनको नहीं पकाहुआ और पका हुआ  
जानसक्ता है वही उत्तम वैद्य कहाजाता है, बाकी जो  
व्रणशोथकी पक्वापक्क अवस्थाको नहीं जानते उनको चोर  
समझना । क्योंकि उनको चोरोंकी समान केवल धन लेने  
काही प्रयोजन होता है किन्तु धर्म, यश और मित्रताका  
कुछ प्रयोजन नहीं होता ।

जो वैद्य अपनी मूर्खतासे कच्चे फोड़ेको पका जानकर  
चीरदेता है, और जो वैद्य पक्केहुए फोड़ेको कच्चा समझकर  
नहीं चीरता उन दोनोंको चाण्डालकी समान समझना,  
क्योंकि वे बिना समझे क्रिया करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ व्रणशोथचिकित्सा ।

आदौ शोथहरो लेपस्ततस्तु परिपेचनम् ॥  
विम्लापनमसृङ्मोक्षस्ततः स्यादुपनाहनम्  
॥ १७ ॥ पाचनं भेदनं पश्चात्पीडनं शोधनं  
तथा ॥ रोपणं वर्णकरणं व्रणस्यैते क्रमाः  
स्मृताः ॥ १८ ॥

अत्र क्रमाः चिकित्साः । सुश्रुते व्रणस्य  
षष्टिरूपका लिखिताः सन्ति ते सर्वेऽत्र  
विस्तरभयान्न लिखिताः ॥

प्रथम सूजनके हरनेवाली औषधियोंका लेपकरे फिर  
सूजनके ऊपर क्वाथ आदिका सेचनकरे, फिर विम्लापन  
कर्मकरे, पश्चात् सूजनमेंसे रुधिरादि निकलवावे, फिर  
सूजनके ऊपर थोड़ी थोड़ी गरम औषधियोंको बौधकर  
वाफदेवे, फिर सूजनको पकानेके लिये उपचार करके  
पकावे, फिर सूजनको शल्यसे अथवा औषधियोंसे भेदन  
करे, फिर सूजन को दबाकर राध निकालनेके लिये उसके  
ऊपर औषधियोंका गाढा लेप करे, फिर सूजनको क्वाथ  
आदिसे धोकर साफ करे, फिर सूजनके भरनेकी चिकित्सा  
करे पश्चात् व्रणको शरीरके वर्णकी समान करे । इस  
भाँति व्रणकी ग्यारह प्रकारसे चिकित्सा करे ।

सुश्रुतमें व्रणपर साठ उपक्रम कहे हैं वे सब यहाँ  
प्रथ व्रदनेके भयसे नहीं लिखे ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ शोथनाशकलेपः ।

यथा प्रज्वलिते वेष्मन्यम्भसा परिपेच-  
नम् ॥ क्षिप्रं प्रशमयत्यग्निमेवमालेपनं  
रुजः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार जलतेहुए मकानको पानीका सेचन  
अग्निको तत्काल शांत करदेता है उसी प्रकार औषधियोंका  
लेप तत्काल पीडाको शमन कर देता है ॥ १९ ॥

बीजपूरजटा हिंसा देवदारु महौषधम् ॥  
रास्नाग्निमन्थालेपोऽयं वातशोथविनाश-  
नः ॥ २० ॥ कल्कः काञ्जिकसम्पिष्टः  
स्निग्धो मधुकचन्दनैः ॥ दूर्वा च नलमू-  
लश्च पद्मकाष्ठश्च केसरम् ॥ २१ ॥ उ-

शीरं बालकं पद्मं लेपोऽयं पित्तशोथहा ॥  
 न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ॥ २२ ॥  
 ससर्पिकैः प्रदेहः स्याच्छोथे पित्तसमुद्भवे ॥  
 आगन्तुजे रक्तजे च लेप एषोऽभिष्टुजि-  
 तः ॥ २३ ॥ अजगन्धाजशृङ्गी च म-  
 ज्जिष्ठा सरलस्तथा ॥ एकेशिकाश्वगन्धा  
 च लेपोऽयं श्लेष्मशोथहा ॥ २४ ॥  
 अजशृङ्गी [ मेढाशिङ्गी ] ।

कृष्णा पुराणपिण्याकं शिशुत्वक् सिक-  
 ता शिवा ॥ मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः  
 श्लेष्मशोथहा ॥ २५ ॥ न रात्रौ लेपनं  
 दद्यादत्तश्च पतितं तथा ॥ न च पर्युषि-  
 तं शुष्यमाणं तन्नैव धारयेत् ॥ २६ ॥

दत्तमेव पुनर्न दद्यात् । पतितं दीयमानं  
 सत् यदङ्गात् पतितं पर्युषितं लेपनद्रव्यं क-  
 ल्कीकृतं यत् पर्युषितम् ॥

तमसा पिहितोऽत्यूष्मा रोमकूपमुखोत्थि-  
 तः ॥ विना लेपेन निर्य्याति रात्रौ नाले-  
 पयेदतः ॥ २७ ॥ रात्रावपि प्रलेपस्तु  
 विधातव्यो विचक्षणैः ॥ अपाकिशोथे  
 गम्भीरे रक्तपित्तसमुद्भवे ॥ २८ ॥

विजोरेकी जड, बालछड, देवदारु, सोठ, रासना और  
 अरणी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वातकी सूजन  
 दूर होजातीहै ।

दूब, नरसलकी जड, पद्माख, केसर, खस, सुगन्ध-  
 वाला और कमल इनको पीसकर लेप करनेसे पित्तकी सूजन  
 दूर होजातीहै ।

वड, गूलर, पीपल, पाकर और वेत इनकी छालको  
 पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तजन्य सूजन दूर  
 होजातीहै ।

आगन्तुज सूजन पर और रुधिरजन्य सूजन परभी ऊपर  
 कहा हुआ वड आदिकी छालका लेप हितकारी है ।

मेढाशिङ्गी, वनतुलसी, मजीठ, देवदारु, पाठ और  
 असगन्ध इनका लेप कफकी सूजनको दूर करै है । पीपल,

पुरानी खल, सैजिनेकी छाल, रेती और हरड इनको  
 गोमूत्रमें पीसकर कुछेक गरम करके लेप करनेसे कफकी  
 सूजन दूर होजातीहै ।

रात्रिमें लेप नहीं करना चाहिये । लेप किये पदार्थको  
 छुडाकर फिर दुबारा लेप नहीं करना चाहिये । लेप किया  
 हुआ पदार्थ जो शरीरसे गिरकर छूट पड़े तो फिर उसका  
 लेप न करे । लेप करनेका कल्क जो बासी रहजाय तो  
 उसका लेप नही करे । और जो लेप सूखजाय तो उसको  
 शरीरसे तत्काल छुडा देवे । यह लेप करनेकी पद्धति है ।  
 रात्रिमें अधकारके होनेसे गरमीके कारण रोमकूप आच्छा-  
 दित रहतेहैं इसलिये रात्रिमें लेप करनेसे रोमकूप बन्द  
 होजातेहैं और नहीं लेप करनेसे रोमकूप खुले रहतेहैं,  
 इस लिये रात्रिमें लेप नही करना चाहिये । परन्तु जो  
 सूजन नहीं पकतीहो, गम्भीर हो और रुधिर तथा पित्तसे  
 उत्पन्न हुई हो उनपर वैद्यको रात्रिमेंही लेप करना  
 चाहिये ॥ २०-२८ ॥

अथ शोथोपरिकाथादिसेचनम् ।

यथाम्बुभिः सिच्यमानः शान्तिमग्निर्हि  
 गच्छति ॥ दोषाग्निरेव सहसा परिषेकेण  
 शाम्यति ॥ २९ ॥

जिसप्रकार जलसे सेचन करनेसे अग्नि तत्काल शान्त  
 होजातीहै उसी प्रकार व्रणशोथको क्वाथ आदिसे सेचन  
 करनेसे दोषरूपी अग्नि तत्काल शान्त होजातीहै ॥ २९ ॥

वातघ्नौषधनिष्काथैस्तैलैर्मासरसैर्वृतैः ॥  
 उष्णैः संसेचयेच्छोथं वातिकं काञ्जिकेन  
 च ॥ ३० ॥ पित्तरक्ताभिघातोत्थं शोथं  
 सिंचेत्सुशीतलैः ॥ क्षीराज्यमधुखण्डेक्षुर-  
 सैः पित्तहरैः शृतैः ॥ ३१ ॥

वातनाशक क्वाथ, तेल, मासरस, घी और कांजीकी  
 गरम करके वातकी सूजनपर सेचन करना चाहिये ।

पित्तसे रुधिरसे और क्षतसे जो सूजन उत्पन्न हुई होय  
 तो उसके ऊपर शीतल औषधियोंके रसोंसे, दूधसे, घीसे,  
 मद्यसे, खांडसे, ईखके रससे और पित्तको नष्ट करनेवाले  
 क्वाथोंसे सेचन करै ॥ ३० ॥ ३१ ॥



कफघ्नोषधनिष्कायैः शीतैस्तु परिषेचये-  
त् ॥ तैलक्षाराम्बुमूत्रैश्च शोथं श्लेष्मसमु-  
द्रवम् ॥ ३२ ॥

कफकी सूजन होय तो उसको कफको हरनेवाली शीतल  
औषधियोंके शीतल काथोंसे, तैलसे, धारसे, जलसे और  
मूत्रमे सेचन करना चाहिये ॥ ३२ ॥

अथ विम्लापनम् ।

जातस्य कठिनस्यास्य कार्यं विम्लापनं  
शनैः ॥ ३३ ॥

अस्य शोथस्य विम्लापनस्य विधिमाह  
सुश्रुतः-

अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाड्या शनैः  
शनैः ॥ विमर्दयेद्विषड्मन्दं तलेनांगुष्ठ-  
केन वा ॥ ३४ ॥

वेणुनाड्या वंशनलिकया स्वेदयित्वा  
उष्णस्वेदं कृत्वा ॥

उत्पन्न हुई कठिन सूजनको विम्लापन कर्म करे, विम्ला-  
पन कर्म करनेकी विधि सुश्रुतमें कही है सो कहतेहैं कि  
“वैद्य सूजनके ऊपर अभ्यङ्ग करके स्वेद देकर धीरे धीरे  
वांसकी नलीसे अथवा हाथके तलवेसे वा अंगूठेसे धीरे  
धीरे मन्द मन्द विसे” ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ रक्तमोक्षणम् ।

वेदनोपशमार्थाय तथा पाकशमाय च ॥  
अचिरोत्पतिते शोथे शोणितस्त्रावणं  
चरेत् ॥ ३५ ॥

चरेत् कुर्यात् ॥

एकतस्तु क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमे-  
कतः ॥ रक्तं हि वेदनामूलं तच्चैत्रास्ति  
न चास्ति रुक् ॥ ३६ ॥ विवर्णः कठिनः  
श्यावो व्रणवच्चाल्पवेदनः ॥ विषाणैश्च  
विशेषण जलौकाभिः पदैरपि ॥ ३७ ॥  
शोणितस्त्रावणं चरेदित्यनेन अन्वयः ॥

तत्कालकी उत्पन्न हुई सूजनको वेदनाकी शान्तिके  
लिये और पाककी शान्तिके लिये सूजनमस रुधिर निकल  
लवाना चाहिये । सम्पूर्ण क्रिया एक ओर, और रुधिर  
निकलवाना एक ओर है इस कारण सर्व क्रिया मिल

कर जितना काम करतीहैं उतना काम एक रुधिर निकल  
वानेसेही होजाताहै, वेदनाकी जड़ रुधिरही है और जो  
रुधिर न होय तो वेदना नहीं होती । विशेष करके सींगी-  
लगाकर, जोक लगाकर अथवा पछन लगाकर रुधिर निक-  
लवाना चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

उपनाहः स्वेदस्तस्य विधिर्भेषज-  
साधनप्रकरणे कथित एवास्ति ।

रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च ॥  
शोथानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा  
व्रणाः ॥ ३८ ॥

शोथानां सामान्यानाम् । व्रणाः व्रण-  
शोथाः तेषामपि स्वेदनं कार्यम् ॥  
शोथयोरुपनाहश्च दद्यादामविदग्धयोः ॥  
प्रशाम्यत्याविदग्धस्तु विदग्धः पक्वतां  
व्रजेत् ॥ ३९ ॥  
आमविदग्धौ अपक्वपाकोन्मुखौ ॥

स्वेद देनेकी विधि प्रथम खण्डके औषधियोंके सिद्ध  
करनेके प्रकरणमें उपनाहस्वेद कह आये हैं । जो सूजन  
वेदनायुक्त, दारुण और कठिन होय उसके ऊपर स्वेदन  
करना चाहिये । और व्रणकी सूजन भी इसी प्रकार की  
होय तो उसके ऊपर भी स्वेदन करना चाहिये । जो  
सूजन कच्ची अथवा पक गई होय तो उसके ऊपरभी उप-  
नाह स्वेद देना चाहिये । सूजन कच्ची होय तो उपनाह  
स्वेदसे शांत होजातीहै और पकने लगे तो तत्काल पक-  
जातीहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

दशमूली बला रास्त्रा वाजिगन्धा प्रसा-  
रिणी ॥ मूलं वातरिपोः सिन्धुर्वारिपूर्णं  
घटे क्षिपेत् ॥ ४० ॥ शोभाञ्जनः कणा  
चापि सैन्धवं विश्वभेषजम् ॥ शणकार्पा-  
सयोर्वीजमतसी च कुलत्थिका ॥ ४१ ॥  
तिला यवाश्च सिद्धार्थः कुठेरो मूलकं  
मिसिः ॥ यथाप्राप्तैरमीभिस्तु द्रव्यैरम्लेन  
संयुतैः ॥ ४२ ॥ कल्कीकृतैः सुखोष्णैश्च  
स्वेदयेद्विधिवच्छनैः ॥ अनेन प्रशमं  
याति वातशोथो न संशयः ॥ ४३ ॥

कुठेरः कृष्णवर्वरो इति दशमूल्यादिरुप-  
नाहः ॥

पुनर्नवा दारु शुण्ठी शिग्रुः सिद्धार्थ एव  
च ॥ अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्व-  
शोथहा ॥ ४४ ॥

सैजिना, पीपल, सैधानिमक, सोंठ, सनके बीज, कपा-  
सके तिनोले, अलसी, कुलथी, तिल, जौ, सरसो,  
कालीतुलसी, मूली और सोया इनमेंसे जितनी मिलसके  
उननीही औषधियोंको लेकर खट्टे रसमें पीसकर कल्क  
रूप बनाकर कुछ कुछ गरम करके लुगदी बनाकर  
बाँधे । धीरे धीरे सूजनपर विधिपूर्वक स्वेद देवे । इस  
प्रकार करनेसे वातसम्बन्धी सूजन दूर होजातीहै इसमें  
कुछ सदेह नहीं है । यह उपनाह स्वेद 'शोभाञ्जनादि'  
इस नामसे कहाजाताहै । पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ,  
सैजिना और सरसो इनको खट्टे रसमें पीसकर सुहाता  
सुहाता गरम लेपकरे तो सर्वप्रकारकी सूजन दूर हो-  
जातीहै । यह लेप 'पुनर्नवादि' इस नामसे कहाजाता-  
है ॥ ४०-४४ ॥

अथ शोथपाचनम् ।

न प्रशाम्यति यः शोथः प्रलेपादिविधा-  
नतः ॥ द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रो-  
पनाहने ॥ ४५ ॥

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः ॥  
अतसी सक्तवः किण्वमुष्णद्रव्यञ्च पाच-  
नम् ॥ ४६ ॥

शणफलादीनामतस्यन्तानां सक्तवः कर्त-  
व्याः । किण्वं सुराबीजम् । यवगोधूम-  
धान्यादिप्रकारः अन्यच्च उष्णं द्रव्यं व्रणस्य  
पाचनं भवति ॥

जो सूजन प्रलेपादि करनेसे शांत नहीं हो उसपर  
पाचनीय पदार्थ बाँधने चाहिये । सनके बीज, मूलीके  
बीज, सैजिनेके फल, तिल, सरसो, अलसी, सत्तू, सुराका  
बीज और अन्य सकल उष्ण पदार्थ पकानेके लिये प्रयोग  
करै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ शोथभेदनम् ।

अन्तःपूयेष्ववक्रेषु तथा चोत्सङ्गवत्स्वपि ॥  
गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं सम्प्रयु-  
ज्यते ॥ ४७ ॥

उत्सङ्गवत्सु कोटरवत्सु । गतिमत्सु नाडी-  
व्रणेषु । भेदनम् शस्त्रमौषधङ्गम च ॥

रोगे व्यधेन साध्ये तु यथादेशं प्रमाणतः ॥  
शस्तं निधाय दोषांस्तु स्नावयेत्कथितं  
यथा ॥ ४८ ॥

जिसमें भीतर राध भर रही हो, जिसका मुख नहीं  
हुआ हो, जो भीतरसे खाली हो उसको तथा नाडीव्रणको  
शस्त्रसे अथवा औषधियोंसे भेदन करना चाहिये ॥

जो रोग शस्त्रके चीरनेसे ही शमन हो उसको स्थाना-  
नुसार शस्त्रसे छेदकर उसमेंसे दोषोंको निकलवा दे, यह  
प्रकार सुश्रुत आदि ग्रंथोंमें कहा है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ व्रणविशेषे शस्त्रभेदननिषेधः ।

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि ॥  
व्रणेषु मर्मजातेषु भेदनं द्रव्यलेप-  
नम् ॥ ४९ ॥

बालक, वृद्ध, शस्त्र भेदनको न सह सके ऐसा मनुष्य,  
क्षीण मनुष्य, डरपोक तथा स्त्रिये जिनके मर्म स्थानोंमें  
व्रण उत्पन्न हुये होंय तो उनको औषधियोंके लेपसे भेदन  
करे, शस्त्रसे नहीं चीरे ॥ ४९ ॥

चिरविल्वोऽग्निको दन्ती चित्रको हय-  
मारकः ॥ कपोतकाकगृध्राणां मललेपेन  
भेदनम् ॥ ५० ॥

करज, भिल्वे, जमालगोटे, कनेर, कबूतरकी विष्टा,  
कौवेकी विष्टा और गिद्धकी विष्टा इनका लेप करनेसे  
व्रण फूटजाताहै ॥ ५० ॥

क्षारद्रव्यं तथा क्षारो दारुणः परिकीर्तितः ॥  
क्षारद्रव्यमपामार्गादिक्षारः स्वर्जिकायव-  
क्षारादिः ॥

हस्तिदन्तो जले पिष्टो बिन्दुमात्रप्रलेपितः ॥  
अत्यर्थकठिने शोथे कथितो भेदनः परः ५१ ॥

चिराचिटा आदि खारवाले पदार्थ और सजीखार  
तथा जवाखार आदि खार इनका लेप करनेसे व्रण फूट  
जाताहै । हाथीके दांतको जलमें बारीक पीसकर बूंद  
भर लगानेसे अत्यंत कठिन सूजन अवश्य नष्ट होजा-  
तीहै ॥ ५१ ॥

अथ शोथपीडनम् ।

द्रव्याणां पिच्छिलानान्तु त्वङ्मूलानि  
प्रपीडनम् ॥ यवगोधूममाषाणां चूर्णानि  
च समासतः ॥ ५२ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत  
प्रलेपं पीडनं प्रति ॥ न चापि मुखमालिम्पे-  
त्तथा दोषः प्रसिच्यते ॥ ५३ ॥

पीडनं प्रति पीडनद्रव्यलेपं प्रति पीड-  
नद्रव्यलेपं शुष्यन्तमपि । धारयेदित्यर्थः ।  
तथा व्रणस्य मुखलेपं विना प्रसवति ॥

चिकनी औषधियोंकी छाल तथा जड़की पीसकर लेप  
करनेसे सूजन दब जाती है । जौ, गेहूँ और उड़द  
इनको पीसकर लुबरी बनाकर लगानेसे सूजन दब जाती  
है । सूजनको सुखानेके लिये जो लेप कहा है उसको  
सुखा देना चाहिये । और सूजनके मुखपर लेप नहीं करना  
चाहिये क्योंकि इस प्रकार करनेसे सूजनमेंसे दोष खव  
जातेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ व्रणशोधनम् ।

व्रणस्य तु विशुद्धस्य काथः शुद्धिकरः  
परः ॥ पटोलनिम्बपत्रोत्थः सर्वत्रैव प्रयु-  
ज्यते ॥ ५४ ॥ वातिके दशमूलानां क्षी-  
रिणां पैत्तिके व्रणे ॥ आरग्वधादेः कफजे  
कषायः शोधने हितः ॥ ५५ ॥

व्रणमेंसे राध निकल जानेपर परबल तथा नीमके  
पत्तोंका काथ बनाकर उस कायसे व्रणको धोवे तो व्रण  
साफ होजाताहै । यह काथ सर्व प्रकारके व्रणोंपर उप-  
योगी है ॥

वातके व्रणको दशमूलके कायसे धोवे, पित्तके व्रणको  
चट आदि क्षीरवाले वृक्षोंके कायसे धोवे, और कफके  
व्रणको आरग्वधादि गणके कायसे धोवे, इस प्रकार कर-  
नेमें व्रण साफ होजाताहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं शृतम् ॥  
व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्सृ-  
तम् ॥ ५६ ॥

पीपल, गूलर, पिलखन, बड और वेत इनके कायसे  
धोनेसे व्रणकी सूजन और उपदंश ( आतंशक ) का वाव  
दूर होजाताहै ॥ ५६ ॥

तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायुगैः ॥  
त्रिवृट्पृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशो-  
धनः ॥ ५७ ॥

तिल, सैन्धानिमक, मुलैठी, नीमके पत्ते, हलदी, दारु-  
हलदी और निसोत इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर  
लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजाताहै ॥ ५७ ॥

एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ॥  
निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमा-  
क्षिकम् ॥ दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोध-  
न केशरी ॥ ५८ ॥

केशरी श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥

इकली सारिवाकी जड़की पीसकर लेप करनेसे सर्व  
प्रकारके व्रण शुद्ध होजातेहैं । नीमके पत्ते, तिल, दन्ती,  
निसोत, सैन्धानिमक और सहत इनका लेप व्रणको शांत  
करनेवाला है और साफ करनेवालाभी है ॥ ५८ ॥

लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः ॥  
भक्षणाच्छर्दिमन्दामिपित्तश्लेष्मकृमीन्ह-  
रेत् ॥ व्रणान्विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मान्हि  
सन्धिर्मर्मजान् ॥ ५९ ॥

नीमके पत्तोंका कल्क बनाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध  
होजाताहै तथा भरने लगता है । और इसको भक्षण  
करनेसे वमन, मदाग्नि, पित्त, कफ तथा कृमिओंको नष्ट  
करेहै, नीमके पत्तोंका कल्क बनाकर व्रणके मुखमें रखनेसे  
सधियोंमें तथा मर्मस्थलमें उत्पन्न हुए सूक्ष्म व्रण साफ  
होजातेहैं ॥ ५९ ॥

अभयात्रिवृतादन्तीलांगलीमधुसैन्धवैः ६०  
निम्बपत्रवृत्तक्षौद्रदार्वामधुकसंयुतैः ॥ व-  
र्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपये-  
द् व्रणम् ॥ ६१ ॥

हरद, निसोत, दन्ती, कलिहारी, दुगुना सहत, सैन्धा-  
निमक, नीमके पत्ते, धी, दारुहलदी और मुलैठी इनको  
पीसकर लगानेसे अथवा तिलोंका कल्क बनाकर लगानेसे  
व्रण शुद्ध होताहै और भरताहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ व्रणरोपणम् ।

अपेतश्रुतिमांसानां मांसस्थानामरोहता-  
म् ॥ कल्कस्तु रोपणो देयस्तिलजो मधु-  
संयुतः ॥ ६२ ॥

जो व्रण मांसमे होनेके कारण उसमेसे सडाहुआ  
मांस निकल गयाहो और भरता न होय उसके ऊपर  
तिलोका कल्क शहदमे मिलाकर लगानेसे व्रण भरने  
लगताहै ॥ ६२ ॥

अश्वगन्धा रुहा लोभ्रं कट्फलं मधुय-  
ष्टिका ॥ समंगा धातकीपुष्पं परमं  
व्रणरोपणम् ॥ ६३ ॥

मधुयुक्ता सुरा पुंसां सर्वव्रणरोपणी  
कथिता ॥

असगंध, कुटकी, लोघ, कायफल, मुलैठी, मजीठ  
और धायके फूल इनका कल्क बनाकर लगानेसे व्रण  
अच्छे प्रकारसे भरजाताहै । सहत मिलाकर सरावका लेप  
करनेसे व्रण भरने लगतेहैं ॥ ६३ ॥

सुषवीपत्रधत्तूरबलामोटाकुठेरकाः ॥ पृथ-  
गेतैः प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणम् ॥ ६४ ॥

सुषवीपत्रं मगरैलापत्रम् । कुठेरकः  
कृष्णवर्बरी ॥

छोटी इलायचीके पत्ते, अथवा धतूरे वा खिरैटी, मोटा  
( दूसरे प्रकारकी खिरैटी ) अथवा कार्ली तुलसीके  
पत्तोको पीसकर लेप करनेसे गम्भीर व्रण भी भरजा-  
ताहै ॥ ६४ ॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थजम्बूकफललोभ्रजैः ॥  
त्वक्चूर्णैर्धूपिताः क्षिप्रं संरोहन्ति व्रणा  
ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

अर्जुन, गूलर, पीपलवृक्ष, जामुन, कायफल और लोघ  
इनकी छालोंका चूर्ण बनाकर व्रणोंपर बुरकानेसे निश्चय  
व्रण भरजातेहैं ॥ ६५ ॥

प्रियंगुधातकीपुष्पं यष्टीमधुजतूनि च ॥  
सूक्ष्मचूर्णीकृतानि स्यू रोपणान्यवधूल-  
नात् ॥ ६६ ॥

फूलप्रियंगू, धायके फूल, मुलैठी और लाख इनका

वारीक चूर्ण बनाकर व्रणपर बुरकानेसे भयंकर व्रणभी  
भरजाताहै ॥ ६६ ॥

यवचूर्णं समधुकं सतैलं सह सर्पिषा ॥  
दद्यादालेपनं कोष्णं दाहशूलोपशा-  
न्तये ॥ ६७ ॥

जौका चून और मुलैठीका चून, तेल तथा घीमें मिला  
कर सुहाता सुहाता गरम लेप करनेसे व्रणका दाह और  
पीडा, शूल नष्ट होजाते हैं ॥ ६७ ॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीलेपो हन्याद्व्रणकिमीन् ॥  
लशुनस्याथवा लेपो हिंगुनिम्बकृतोऽ-  
थवा ॥ ६८ ॥

करज, नीम और निर्गुण्डी इनका लेप करनेसे व्रणभे  
पडे हुए कीडे नष्ट होजाते हैं । लसुनका लेप करनेसे  
व्रणमें पडे हुए कीडे शमन होजाते हैं । नीम और हींग  
इनका लेप करनेसे व्रणके कीडे दूर होजाते हैं ॥ ६८ ॥

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पिलवणसर्षपैः ॥ धूपनं  
स्याद्व्रणे रूक्षकृमिकण्डूरुजापहम् ॥ ६९ ॥  
ये क्लेदपाकमृतिगन्धवन्तो व्रणाश्चिरोत्थाः  
सतताश्च शोथाः ॥ प्रयान्ति ते गुग्गुलुमि-  
श्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलाश्रितेन ७० ॥

नीमके पत्ते, वच, हींग, घी, सैवानिमिक और सरसो  
इनकी धूनी देनेसे व्रणकी रूक्षता, व्रणके कृमि, व्रणकी  
खुजली तथा व्रणकी पीडा सम्पूर्ण नष्ट होजाती है ॥ ६९ ॥

जो व्रण पकाहो, खवताहो, गंधवाला हो और बहुत  
कालसे उत्पन्न हुआहो, तथा जो सूजन सदैव हो उसमे  
गूगल डालकर त्रिफलेका रस पिये ॥ ७० ॥

पटोलनिम्बासनसारधात्रीपथ्याक्षनिर्यूहम-  
हर्मुखेष ॥ पिबेद्युतं गुग्गुलुना विसर्पवि-  
स्फोटदुष्टव्रणशान्तिमिच्छन् ॥ ७१ ॥

कडवे परवल, अथवा कडवी तोरई, नीमके अतरकी  
छाल, विजयसार, आमले, हरड और बदेडा, इनका काय  
बनाकर उसमें गूगल डालकर नित्य प्रातःकाल घीनेसे  
विसर्प, विस्फोटक तथा दुष्ट व्रण शांत होजाताहै ॥ ७१ ॥

अथ संवर्णताकारकलेपः ।

मनःशिला समञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनी-  
द्रयम् ॥ प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वचः साव-  
र्ण्यकृत्स्मृतः ॥ ७२ ॥

मैनशिल, मजीठ, लाख, हलदी और दाहलदी इनका चूर्ण बनाकर उसमें घी तथा सहत मिलाकर लगानेसे व्रणके स्थानका वर्ण शरीरकी त्वचाके वर्णकी समान होजाताहै ॥ ७२ ॥

अथ व्रणरोगिभोजनम् ।

जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवान्त-  
रम् ॥ भुञ्जानो जांगलैर्मांसैः शीघ्रं  
व्रणमपोहति ॥ ७३ ॥ तण्डुलीयकजी-  
वन्तीवास्तूकसुनिषण्णकैः ॥ वालमूलक-  
वार्ताकुपटोलैः कारवेल्लकैः ॥ ७४ ॥  
सदाडिमैः सामलकैर्घृतभृष्टैः ससैन्धवैः ॥  
अन्यैरेवंगुणैर्वापि मुद्रादीनां रसेन  
वा ॥ ७५ ॥

एभिः सह जीर्णशाल्योदनं भुञ्जानः शीघ्रं  
व्रणमपोहतीत्यन्वयः ॥

जागल प्रदेशके पशुओंका मांसरस, चौलाई, जीवन्ती, वथुआ, शिरिआरी, कच्चीमून्की, बैंगन, परवल, करेले, अनार और आमले इनको घीमें भूनकर सैधानिमक डालकर इनके साथ अथवा इनकी समान अन्य गुणोंवाली वस्तुओंके साथ वा भूँग आदिके रसके साथ, किंचित् गरम, स्निग्ध और पतले पुराने लाल शालिचावलोंका भात खानेसे व्रण नष्ट होजाताहै ॥ ७३-७५ ॥

अम्लं दधि च शाकश्च मांसमानूपमौद-  
कम् ॥ क्षीरं गुरुणि चान्नानि व्रणे च  
परिवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

खट्टा दही, खट्टा शाक, अनूपदेशके और जलचर जीवोंका मांस, दूध और भारी अन्न ये सब व्रणरोगी त्याग देवे ॥ ७६ ॥

अथ व्रणे श्रमादिजोषद्रवाः ।

व्रणे श्वयथुरायासास च रागश्च जाग-  
रात् ॥ तौ च रुक्च दिवास्वापात्ते च  
मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ७७ ॥

व्रणरोगमें परिश्रम करनेसे सूजन आतीहै, रात्रिमें जागनेसे लाली बढ़तीहै और सूजन आतीहै, दिनमें सोनेसे सूजन, लाली तथा पीडा ये तीनों होतीहैं, और मैथुन करनेसे सूजन, लाली, पीडा और मृत्यु ये चारों होतेहैं ॥ ७७ ॥

अथागन्तुजव्रणचिकित्सा ।

कुद्धे सद्योव्रणे कुर्याद्दूर्ध्वं चाधश्च शोध-  
नम् ॥ क्रिया शीता प्रयोक्तव्या रक्तापि-  
त्तोष्मनाशिनी ॥ ७८ ॥ लंघनश्च बलं  
ज्ञात्वा भोजनं चास्रमोक्षणम् ॥ घृष्टे-  
विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ॥  
॥ ७९ ॥ छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते  
वासृगतिस्रवेत् ॥ रक्तक्षयात्तत्र रुजः  
करोति पवनो भृशम् ॥ ८० ॥ परिषेकं  
स्नेहपानं लेपं तत्रोपनाहनम् ॥ कुर्वन्ति  
स्नेहवस्तिश्च रुजाग्रं चौषधं पृथक् ॥ ८१ ॥  
खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्काले पूरितो  
व्रणः ॥ गाङ्गेरुकीमूलरसैः सद्यः स्याद्ग-  
तवेदनः ॥ ८२ ॥

गाङ्गेरुकी नागबला । गुलसकरीति लोके ॥

आगन्तुज व्रणका प्रकोप होय तो वमनसे तथा विरेचनसे शरीरको शुद्ध करे और रुधिरकी तथा पित्तकी गरमीको नष्ट करनेवाली शीतल क्रिया प्रयोग करे, बला-बल विचारकर लंघन करावे, योग्य भोजन देवे और विचारकर रुधिर निकलवावे । जो आगन्तुज व्रण घस जाय अथवा फटजाय तो योग्यानुसार यह विधि करनी चाहिये ॥

अग छिन्न, भिन्न, विद्ध होजाय और घावोंमेंसे रुधिर निकलनेलगताहै, इस प्रकार रुधिरके क्षय होनेसे वायु अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करतीहै, जो इस प्रकार होय तो स्नेहपानकरे, सेचनकरे, लेप करे, उपनाह ( स्वेद ) देवे, स्नेहकी पिचकारी लगावे और वेदनाको हरनेवाली औषधिप्रयोग करे । तलवार आदिके घावमें तत्काल गगेरनके जटके रसको भर देवे तो उसकी वेदना दूर होजातीहै ॥ ७८-८२ ॥



कषाया मधुराः शीताः क्रियाः सर्वाः  
प्रयोजयेत् ॥ सद्योव्रणानां सप्ताहा-  
त्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ८३ ॥ आ-  
माशयस्थे रुधिरं विदध्याद्वमनं नरः ॥  
तस्मिन्पक्वाशयस्थे तु प्रकुर्वीत विरेच-  
नम् ॥ ८४ ॥

आगन्तुज व्रणके ऊपर प्रथम सातदिनतक सम्पूर्ण  
कसैली, मधुर और शीतल क्रिया करे और फिर आठवे  
दिन अन्य व्रणोंके लिये जो क्रिया कही है वह करनी  
चाहिये, रुधिर आमाशयमें प्राप्त होय तो वमन करावे,  
और पक्वाशयमें प्राप्त होय तो विरेचन करावे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

क्वाथो वंशत्वगैरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदा कृतः ॥  
हिंणुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्त्रावपेद-  
सूक्त ॥ ८५ ॥

बाँसकी छाल, अण्ड, गोखरु, और पाखानभेद  
इनका क्वाथ बनाकर उसमें हींग तथा सैन्धानिमक  
डालकर पिये तो कोष्ठमें प्राप्त हुआ रुधिर बहजाता  
है ॥ ८५ ॥

यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहं रसेन च ॥  
भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिवेत्सैन्धवसंयु-  
तम् ॥ ८६ ॥

आगन्तुज व्रणवाले मनुष्य जौ, बडे बेर और कुलथी  
इनको चिकनाईके बिना रसके साथ भात भोजन करे  
अथवा सैन्धानिमक डालकर यवागू पिये ॥ ८६ ॥

अथ जात्यादिघृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वांनिशासा-  
रिवामञ्जिष्ठाऽभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्व-  
बीजैः समैः ॥ सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्म-  
वदना मर्माश्रिताः स्त्राविणो गम्भीराः  
सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति  
रोहन्ति च ॥ ८७ ॥ वृद्धवैद्योपदेशेन  
पारम्पर्योपदेशतः ॥ जातीघृते तु संसिद्धे  
क्षेत्रव्यं सिक्थकं बुधैः ॥ ८८ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवल, कुटकी, दारु-  
हलदी, सारिवा, मजीठ, खस, मोम, नीलाथोया, मूलेठी  
और करजके बीज इन सबको समान भाग लेकर कल्क

बनाकर इस कल्कसे पकाये हुए घीको जात्यादिघृत  
कहतेहैं । इस घृतको लगानेसे छोटे मुखवाले, मसोंमें  
उत्पन्न हुए, खाववाले, गम्भीर, वेदनायुक्त और अगोंमें  
गति करनेवाले व्रण शुद्ध होजातेहैं और भरजातेहैं ॥

यद्यपि ऊपरके पाठमें मोमको प्रथमही घीमें डालन  
कहा है तथापि वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे और गुरुओंकी  
परंपरासे यह सिद्ध होताहै कि जात्यादिघृत पकनेके पश्चात्  
उसमें मोम डालना चाहिये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ जात्यादितैलम् ।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्ल-  
वाः ॥ सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे  
कटुरोहिणी ॥ ८९ ॥ मञ्जिष्ठां पद्मकं  
पथ्यां लोध्रत्वङ्नीलमुत्पलम् ॥ सारिवा  
तुत्थकश्चापि नक्तमालफलं तथा ॥ ९० ॥  
एतानि समभागानि कल्कीकृत्य प्रय-  
त्नतः ॥ तिलतैलं पचेत्सम्यग्वैद्यः पाक-  
विचक्षणः ॥ ९१ ॥ विषव्रणे समुत्पन्ने  
स्फोटके कुक्षिरोगिणि ॥ दद्रुवीसर्परोगेषु  
कीटदष्टेषु सर्वथा ॥ ९२ ॥ सद्यः शस्त्र-  
प्रहारेण दग्धविद्धेषु चैव हि ॥ नखदन्त-  
क्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणे ॥ ९३ ॥  
म्रक्षणेन हितं तैलमिदं शोधनरोपणम् ॥  
तैलं जात्यादिनाम्रैतत्प्रसिद्धं भिषगा-  
दृतम् ॥ ९४ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, कडवे परवल, करजके  
पत्ते, मोम, मूलेठी, कटु, हलदी, दारुहलदी, कुटकी,  
मजीठ, पद्माख, हरड, लोधकी छाल, नीले कमल, सारिवा,  
नीलाथोया, और करजके फल इनको समान भाग-  
लेकर कल्क बनाकर इस कल्कसे बुद्धिमान् वैद्य  
तिलके तैलको उत्तम विधिसे पकावे तो यह जात्यादि  
तैल सिद्ध होताहै । यह तैल-विषजन्य व्रण, विस्फो-  
टक, कहारी, विसर्प, विपैले कीड़ेका काटाहुआ व्रण,  
तत्काल शस्त्रके प्रहारसे उत्पन्न हुआ व्रण, दग्धव्रण,  
विद्धव्रण, नखका घाव, दांतका घाव इनके ऊपर यह

तेल लगानेसे व्रण भरनेलगाताहै, व्रणमेंसे खराब मांस निकालनेके लिये यह तैल उत्तम है । वैद्योंका आदर किया हुआ यह जात्यादितैल व्रणको साफ करनेवाला और भरनेवाला है ॥ ८९-९४ ॥

### अथ विपरीतमल्लतैलम् ।

चित्रकरसोनरामठशरपुङ्खालांगलीकसिन्दूरैः ॥ सविषैस्तथा सकुष्ठैः कटुतैलं साधु सम्पक्कम् ॥ ९५ ॥ विपरीतमल्लसंज्ञं तैलं दुष्टव्रणं तथा नाडीम् ॥ बहुभेषजैरसाध्यामपथ्यंभोक्तुश्च निस्तुदति ॥ ९६ ॥

चोता, लसुन, हींग, सरसोंका, कलहारी, सिन्दूर, वत्सनाभ और कूठ इनके कल्कसे विधिपूर्वक बनाया हुआ सरसोंका तेल 'विपरीतमल्ल' तेल कहाजाताहै । इस तेलके लगानेसे दुष्टव्रण नष्ट होजाताहै, जो अनेक औषधियोंसे भी नष्ट न होय ऐसा असाध्य नाडीव्रण भी दूर होजाताहै । इसपर यदि अपथ्य भी सेवन किया जाय तो भी इस तेलसे दुष्टव्रण और नाडीव्रण अवश्य दूर होजातेहैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

### अथामृतादिगुग्गुलुः ।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुकिमिघ्रानाम् ॥ समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भागः ॥ ९७ ॥ प्रतिवासरमेकैकां गुटिकां खादेदिह परिमाणाम् ॥ जेतुं व्रणवातासृग्गुल्मोदरशोथवातरोगांश्च ॥ ९८ ॥

गिलोय, परवलकी जट, हरड़, बहेडा, आमले, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडग, इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनाकर और सब चूर्णकी बराबर गुग्गुलु टालकर योग्य मात्राकी गोली बनालेवे । इसको 'अमृतादिगुग्गुलु' कहतेहैं । जो इनमेंसे नित्य एक गोली खाय तो इससे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदरके रोग, सूजन और वातके विकार नष्ट होजातेहैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

### अथाम्रिदग्धचिकित्सा ।

प्लुष्टस्याग्निषु तपनं कार्यमुष्णं तथौषधम् ॥ सम्यक् स्वित्ने शरीरे तु स्वित्नं भवति शोभनम् ॥ ९९ ॥ प्रकृत्या सलिलं शीतं स्कन्दयत्यतिशोणितम् ॥ तस्मात्सुखयति ह्युष्णं न तु शीतं कदाचन ॥ १०० ॥

स्कन्दयति शोषयति ॥

शीतामुष्णाश्च दुर्दग्धे क्रियां कुर्यात्ततः पुनः ॥ घृतलेपप्रदेहांश्च शीतानेवास्य कारयेत् ॥ १०१ ॥ सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरोप्लक्षचन्दनगैरिकैः ॥ सामृतैः सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्विषक् ॥ ग्राम्यानूपोदकैर्मांसैः पिष्टैरेनं प्रलेपयेत् ॥ १०२ ॥ अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् ॥ क्रियां कुर्यात्ततः पश्चाच्छालितण्डुलकण्डनैः ॥ १०३ ॥ तिन्दुक्याश्च कपायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम् ॥ १०४ ॥

अग्निसे जलाहुआ प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध और अतिदग्ध ऐसे चार प्रकारका है, स्वाभाविक वर्ण बदलकर अत्यन्त दाह हो और फोड़ा ऊपरको न उठे उसको 'प्लुष्ट' जानना । जो तीव्र फोड़े उठें, आकर्षण अर्थात् खिंचते हैं ऐसी पीड़ा हो, दाह हो, लाल होजाय, पक जाय तथा पानी निकलजानेसे अन्यान्यवेदना हों, और वह फोड़े छाले बहुत देरमें पके, ऐसे लक्षण होयें तो दुर्दग्ध समझना । जो जलेकी जगह ऊपरको न उठा हो, पकेताड़के फलकी समान रगवाला हो, जले स्थानमें अत्यन्त उँचाई और अत्यन्त नीचाई आदि दोष न होय और त्वचामें जलेके लक्षण दीखते होंय उसको सम्यग्दग्ध समझना, जो मांस लटक गया हो, मात्र विधगया हो, गिराओंमें, स्नायुओंमें, सधियोंमें तथा अस्थियोंमें हड्फूटन और ज्वर, दाह, तृषा तथा मूर्च्छा आदि उपद्रव होयें उसको अतिदग्ध समझना । जो अग दग्ध हुआ होय तो उसको अग्निसे तपावे तथा उष्ण औषधिः

प्रयोग करे, क्योंकि अच्छे प्रकार सेक करनेसे रुधिर सिककर पतला होजाताहै अर्थात् उसकी गरमी अच्छे प्रकारसे बाहर निकलकर वायुका गमन भी सबल मार्गसे खुला रहता है, यदि प्लुष्ट दग्धके ऊपर पानी डाला जाय तो पानी स्वाभाविक रीतिसे शीतल होनेके कारण रुधिर को जमादेता है, इससे उसकी गरमी बाहर नहीं निकलती और वायुकी गति भी रुकजाती है, भारी पीडा होतीहै, इस कारण प्लुष्टको गरम उपचारोंसे सुख होताहै, किंतु शीतल उपचारसे कभी सुख नहीं होता । जो दुर्दग्ध होय तो उसपर वैद्य शीतल क्रियाभी करे और गरम क्रियाभी करे परन्तु दुर्दग्धके ऊपर धी चुपडे तो शीतलही चुपडे और प्रलेपादि करे तो शीतलही करे । सम्यग्दग्ध हुआ होय तो वैद्य वगलोचन, पीपल, लालचदन, पीलागेरु और गिलेय इनको पीसकर घीसे चिकना करके लेप करे तथा घोडा आदि ग्राम्य पशुओंका मास, कछुवा इत्यादि जलचर जीवोंका मास और सूअर आदि जलप्राय देशमें रहनेवाले जीवोंका मास, इनको पीसकर लेप करे । अतिदग्ध हुंआ होय तो लटके हुए और फैलेहुए मासको निकालकर दैद्य शीतल क्रिया प्रयोग करे और फिर लाल चावलोंका चूर्ण छिडक देवे । अथवा तेंदूकी छालके चूर्ण को घीमें पीसकर लगावे ॥ ९९-१०४ ॥

### अथ सिक्थकादिघृतम् ।

सिक्थककर्दमजीरकमधुपथ्यासर्वमिश्रितं लेपात् ॥ गव्यं घृतमपहरति विपाकज- नितं व्रणं सद्यः ॥ १०५ ॥

सोम, कीच, जीरा, सहत और हरड इनको एकत्र पीसकर उसमें गायका घी मिलाकर लगानेसे जला हुआ व्रण तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ १०५ ॥

### अथ पटोलादितैलम् ।

सिद्धं कषायकल्काभ्यां पटोलयाः कटुतै- लकम् ॥ दग्धव्रणरुजासावदाहविस्फोट- नाशनम् ॥ १०६ ॥

परवलके काथसे और कल्कसे पकाये हुए सरसोंके तेलको लगानेसे जलेहुए घावको, पीडाको, सावको, दाहको और फोड़ोंको नष्ट करेहै ॥ १०६ ॥

### अथ व्रणग्रन्थिचिकित्सा ।

वातासमसुतं दुष्टं सशोथं ग्रथितं व्रणम् ॥

कुर्यात्सदाहं कण्डूढ्यं व्रणग्रन्थिस्तु स स्मृतः ॥ १०७ ॥ कम्पिल्लकं विडंगानि त्वचं दार्व्यास्तथैव च ॥ पिष्ट्वा तैलं पचेत्तत्तु व्रणग्रन्थिहरं परम् ॥ १०८ ॥

इति व्रणागन्तुव्रणाग्निदग्धनिदानचिकित्साधिकारः ।

वात तथा रुधिर यह दोनों व्रणको सावरहित, दुष्ट-सूजन युक्त, ग्रन्थिसहित, दाह और खुजली सयुक्त करतेहैं, ऐसे व्रणको व्रणग्रन्थि कहतेहैं । कवीला, वायविडंग और दारुहलदीकी छाल इनको पीसकर कल्क बनाकर उस कल्कसे तैलको पकावे इस तेलको लगानेसे व्रणग्रन्थि नष्ट होजातीहै ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

इति व्रणशोथाग्निदग्धाधिकारः सपूर्णः ।

## अथ भग्नाधिकारः ।

### तत्र भग्नेभेदाः ।

भग्नं समासाद् द्विविधं हुताश काण्डे च सन्धावपि तत्र सन्धौ ॥ उत्पिष्टविस्लिष्ट- विवर्तितानि तिर्यग्गतं क्षिप्तमधश्च- भग्नम् ॥ १ ॥

अत्र भावेऽर्थे क्तप्रत्ययस्तेन भग्नं भंगः स चात्र विश्लेषोऽभिप्रेतः । तेन भग्नमत्रास्थि- विश्लेषलक्षणम् । समासात्संक्षेपात् । हुताश हे अग्निवेश ! यतश्चरकेण अग्निवेशस्य हुता- शेति नामान्तरमुक्तम् । काण्डे सन्धिपर्यन्ते एकखण्डे अस्थिसन्धौ द्वयोरस्थनोः सन्धाने तत्र सन्धौ उत्पिष्टादिभेदैः षट्प्रकारकं भग्नं भवति । स्वल्पवक्तव्यत्वेन सन्धिभग्न- विवरणम् । उत्पिष्टेत्यादि । अधः अधोभग्नम् ॥

चरकमें पुनर्वसु मुनिने अपने शिष्य अग्निवेशसे कहाहै कि “हे अग्निवेश ! भग्नरोग सक्षेपसे दो प्रकारकाहै । एक काडभग्न और दूसरा सधिभग्न । सधियोंकी अस्थिके एक भागमें जो भग्न हुआ होव तो वह काडभग्न कहाजाताहै

और दो अस्थियोंकी संधियोंमें जो भग्न होय वह सविभग्न कहाजाताहै ॥

संधिभग्नके विषयमें थोडा कहना है, इस कारण सविभग्नका विवेचन प्रथम करतेहैं । उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यग्गत, क्षिप्त और अधोगत इस प्रकार संधिभग्नके छै भेद हैं ॥ १ ॥

अथ संधिभग्नसामान्यलक्षणम् ।

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्रा रुक् स्पर्शविद्वेष-  
णमेतदुक्तम् ॥ सामान्यतः सन्धिगतस्य  
लिंगमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथोः समन्तात् ॥  
विशेषतो रात्रिभवा रुजा च विश्लिष्टके  
तौ च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥

वर्तनम् परिवर्तनम् । उत्पिष्टसन्धेः  
उत्पिष्टः द्वाभ्याम् अस्थिभ्यां पिष्टः न्वि-  
र्यस्य तस्य समन्तादुभयभागयोः शोथो  
भवति । विश्लिष्टमाह—विश्लिष्ट इत्यादि ता  
उभयतः शोथो रात्रिरुजा च नित्यम् ।  
सदा रुजाधिका भवतीति उत्पिष्टभेदः ॥

फैलानेमें, सकोडनेमें तथा फेरनेमें उग्र पीडा हो और  
स्पर्श करते समय पीडा होय वह संधिभग्नके सामान्य  
लक्षण जानने ।

दो हड्डियोंके परस्पर साथ घिसनेसे संधि दबजातीहै,  
दोनों भागोंमें सूजन आजातीहै और रात्रिमें विशेष पीडा  
होतीहै यह उत्पिष्टके लक्षण जानने ।

दोनों भागोंमें सूजन होय और निरंतर अधिक वेदना  
रहतीहोय, उसको विश्लिष्ट जानना । उत्पिष्टमें रात्रिम  
अधिक पीडा होतीहै और विश्लिष्टमें निरंतर अधिक पीडा  
रहती है, इतना भेद है । विश्लिष्ट अर्थात् संधियोंकी  
अस्थियोंसे अलग होना । संधि अलग नहीं होय, संधिकी  
दोनों अस्थि बॉकी ( टेढ़ी ) होजायँ और, इससे दोनों  
अस्थियोंमें तीव्र पीडा होय, वह विवर्तके लक्षण  
जानने ॥ २ ॥

अथ विवर्तितादिलक्षणम् ।

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते  
तीव्ररुजो भवन्ति ॥ क्षिप्तेऽतिशूलं विषमं  
रुजश्च क्षिप्ते त्वधोरुग्विवदश्च सन्धेः ३ ॥

विवर्तिते सन्धौ अमुक्ते अस्थिद्वये परि-  
वर्तिते पार्श्वरुजः सन्धिस्थितास्थिखण्डद्वय-  
पार्श्वयो रुजः तिर्यग्गते एकस्मिन्नस्थि  
सन्धिस्थानं त्यक्त्वा तिर्यग्गते । क्षिप्ते सक्थू-  
रुसन्धयोः एकस्मिन्नस्थि परस्मादस्थि उप-  
रिगते अस्थौः अतिशूलम् । तत्र विषमं  
कदाचिदधिकं कदाचिन्मूढम् । अधः क्षिप्ते  
सन्धिगते एकस्मिन्नस्थि अधोगते रुजस-  
न्धिविवदश्च ॥

संधियोंकी दो अस्थियोंमें एक अस्थि संधिके स्थान  
को छोडकर आडी होजाय और उससे तीव्र पीडा होय  
यह तिर्यग्गतके लक्षण जानने ।

संधियोंकी दो अस्थियोंमेंसे एक अस्थि दूसरी अस्थिके  
ऊपर चढ़जाय और उससे अस्थियोंमें विषम रीतिका  
शूल हो तथा वेदना होय यह क्षिप्तके लक्षण जानने ।  
किसी समय शूलकी न्यूनता और विषमताभी होतीहै ।

संधियोंकी दो अस्थियोंमेंसे एक अस्थि दूसरी अस्थिसे  
नीचे चली जाय और उसमें वेदना होय तथा संधि अलग  
अलग होजायँ, यह अधोगतके लक्षण जानने ॥ ३ ॥

अथ कांडभग्नद्वादशभेदनिरूपणम् ।

भग्नस्तु काण्डे बहुधा प्रयाति विशेषतो  
नामभिरेव तुल्यम् ॥ ४ ॥

भग्नं काण्डे कांडविषये बहुधा बहुभिः  
प्रकारैः प्रयाति । अत्र बहुविधत्वं द्वादशवि-  
धत्वं बोद्धव्यम् । बहुविधस्य काण्डभग्नस्य  
पृथग् लक्षणं नोक्तम् । किन्तु नामभिरेव  
तुल्यम् । कर्कटकादिनामानुरूपमेव लक्षणं  
बोद्धव्यम् तान्प्रकारानाह—

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविवर्णितं  
पिञ्चितमस्थिछलितम् ॥ काण्डेषु भग्नं  
ह्यतिपातितञ्च मज्जागतं विस्फुटितञ्च  
वक्रम् ॥ ५ ॥ छिन्नं द्विधा द्वादशधापि  
काण्डे सामान्यमग्रे किल तस्य लि-  
गम् ॥ ६ ॥

अतः सन्धिभग्नानन्तरं काण्डे काण्ड-

भग्नं तदाह-कर्कटकः अस्थिविश्लेषपूर्वको  
मध्ये प्रोन्नतः । पार्श्वयोः अवनतः कर्कटतु-  
ल्यरूपत्वात्कर्कटकः । अश्वकर्णः अश्वकर्णव-  
द्विपुलास्थिनिर्गमादश्वकर्णः । विचूर्णितम्  
चूर्णितमस्थि तच्च शब्दस्पर्शाभ्यां बोद्धव्यम् ।  
पिञ्चितन्नियन्त्रितं बहुशोथम् । छलितं वि-  
श्लिष्टमस्थि निःस्रवम् । काण्डेषु भग्नम्  
काण्डभग्नम् । यद्यपि कर्कटकादि सर्वमेव का-  
ण्डभग्नन्तथापि इयं काण्डभग्नसंज्ञा विशिष्टा  
अत्र भग्नं भङ्गस्तुतिस्तेन सर्वथा च्युटितम् ।  
पृथग्भूतं त्वचि स्थितं यत्काण्डभग्नमतिपा-  
तितमशेषेण छित्त्वा पातितमस्थि । मज्जा-  
गतम् अस्थ्यवयवोऽस्थिमध्ये प्रविश्य  
मज्जानां गतम् । विस्फुटितम् स्तोकं विदी-  
र्णम् । वक्रम् स्थानं त्यक्त्वा कुब्जीभूतम् । छिन्नं  
द्विधा एकं विदीर्णं संलग्नम् अपरं विदीर्णं  
द्विधाभूतं द्वादशधा च काण्डेति कर्कटकादिः  
काण्डे काण्डे च भग्नं द्वादशधा इत्यन्वयः ।  
तच्च उक्तमेव ॥

काण्डभग्न बारह प्रकारका होता है और वह उसको  
बारह प्रकारके लक्षण कर्कट आदि नामोंसे जानने, इस  
कारण अलग कहनेकी जरूरत नहीं । कर्कटक, अश्वकर्ण,  
विचूर्णित, पिञ्चित, छलित, काण्डभग्न, अतिपातित, मज्जा-  
गत, विस्फुटित, वक्र, अल्पछिन्न और बहुछिन्न इस प्रकार  
काण्डभग्न बारह प्रकारका है । बारह प्रकारके काण्डभग्नके  
जो सामान्य लक्षण हैं वे पीछेसे कहेंगे ।

अस्थियोंके भाग छूटकर बीचमें ऊँचे और दोनों ओर  
दबकर केकड़ेकी समान होजाय उसको कर्कटक कहते हैं ।

घोड़ेके कानकी समान बड़ी हड्डी बाहर निकल आवे  
उसको अश्वकर्ण कहते हैं ।

अस्थियोंका चूर्ण होजाय और वह शब्दसे अथवा  
स्पर्शसे जाना जाय उसको विचूर्णित कहते हैं ।

अस्थियोंके अवयव परस्पर अलग होकर बहुत मृजनयुक्त  
हों और पिचजाय उसको पिञ्चित कहते हैं ।

अस्थिका कोई भाग गिथिल होकर उखड़ जाय और  
बाहर निकल आवे उसको छलित कहते हैं ।

अस्थि सर्वथा टूटकर अलग हो जाय और चमड़ेमें रहे  
उसको काण्डभग्न कहते हैं यद्यपि कर्कटादि सम्पूर्ण भेद  
काण्डभग्नकेही कहे हैं तथापि उनमें यह मुख्य है ।

जो अस्थि सम्पूर्ण रीतिसे छिदकर गिर जाय उसको  
अतिपातित कहते हैं ।

अस्थियोंके अवयव अस्थियोंके भीतर घुसकर मज्जामें  
पहुँच जाय उसको मज्जागत कहते हैं ।

जो अस्थि कुछेक फट गई होय वह विस्फुटित कही-  
जाती है । जो अस्थि अपने स्थानको छोड़कर कुबड़ी  
होजाय वह वक्र कहीजाती है । जो अस्थि अच्छे प्रकारसे  
फटकर वहाही लगी रहे वह अल्पछिन्न कहीजाती है ।  
जो अस्थि अच्छे प्रकारसे फट अलग अलग टुक टुक  
होजाय वह बहुछिन्न कहीजाती है ॥ ४-६ ॥

### अथ कर्कटककाण्डभग्नसामान्य- लक्षणम् ।

स्रस्तांगता शोथरुजातिवृद्धिस्तथा व्यथा-  
वृद्धिरतीव नित्यम् ॥ सम्पीड्यमाने भवतीह  
शब्दः स्पर्शासहं स्पन्दनतोदशूलाः ॥ ७ ॥  
सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य  
काण्डे खलु चिह्नमेतत् ॥ ८ ॥

स्पर्शासहमिति काण्डभग्नस्य विशेषणम् ।  
स्पन्दनं नाडीनां स्फुरणम् । तोदः शूलेनेव च  
व्यथा । रुजा सामान्यपीडा । सर्वासु अवस्थासु  
शयनादिषु ॥

अगोमें शिथिलता, सूजनकी वृद्धि, वेदना अत्यन्त बढ़-  
जाय, शूलकी समान निरन्तर विशेष पीडा हो, दवानेसे शब्द  
हो, सर्गको नहीं सहसके, नाडियोंका फरकना, सुईचुभोने  
सरीखी पीडा, शूलकी पीडा और सोने बैठने आदि समस्त  
अवस्थाओंमें चैन नहीं पड़े ये सब काण्डभग्नके सामान्य  
लक्षण जानने ॥ ७ ॥ ८ ॥



अथ भग्नस्य कष्टसाध्यता  
अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य  
च ॥ उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण  
सिध्यति ॥ ९ ॥

अनात्मवतः रोगप्रतीकारे यत्नरहितस्य  
वातात्मकस्य वातप्रकृतेः । उपद्रवैः ज्वरा-  
ध्मानमोहमूत्रपुरीषसंगादिभिः ॥

थोडा भोजन करनेवाले, इन्द्रिये जिनकी वज्रमें नहीं हैं,  
वातप्रकृतिवाले, और ज्वर, अफारा, बेहोसी, मूत्र और  
मलका अवरोध आदि उपद्रव होंगे तो भग्नसबि भग्न  
कष्टवाला कठिनतासे आरोग्य होता है ॥ ९ ॥

अथ भग्नासाध्यता ।

भिन्नं कपालं कट्यान्तु सन्विमुक्तं तथा  
च्युतम् ॥ जघनं प्रतिपिष्टञ्च वर्जयेत्तु  
चिकित्सकः ॥ १० ॥

कपालम् जानुनितम्बांसगण्डतालुशंखवं-  
क्षणशिरोऽस्थीनि कपालानि । तथा च्युतम्  
अथः क्षिप्तम् । प्रतिपिष्टम् उत्पिष्टम् ।

घुटनोंकी, नितम्बकी, कन्धेकी, गालकी, तालुकी,  
कनपटीकी, साथलोंकी, सधियोंकी और मस्तककी हड्डी  
टूट गई होय तो वैद्य उसकी चिकित्सा न करे जो कमरमें  
अधोगत नामक सधिभग्न हुआ होय तो और पेडुमें उत्पिष्ट  
नामक सधिभग्न होय तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी  
चाहिये ॥ १० ॥

असंश्लिष्टकपालञ्च ललाटे चूर्णितञ्च तत् ॥  
भग्नं स्तने गुदे पृष्ठे शंखे मूर्द्धनि वर्जयेत् ॥ ११ ॥

असंश्लिष्टकपालमिति भग्नविशेषणम् ।  
स्तने स्तनयोः अन्तरे । मूर्द्धनि चूडास्थाने ।

गोटें, नितम्ब, खंभे, गाल, तालू, कनपटी और मस्तक  
इनकी हड्डी जो दूसरी अस्थियोंसे छूट गई हों तो उनकी  
भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । ललाटमें जो विचूर्णित  
नामक काण्डभग्न होय तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी  
चाहिये । स्तनोंका मध्यभाग, गुदा, पीठ, कनपटी और  
ब्रह्मरन्ध्र इनकी सधियोंमें जो काण्डभग्न हुआ होय तो उसकी  
भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

सम्यक्संहितमप्यस्थि दुर्न्यासादुष्टबन्धनात् ॥  
संक्षोभाद्वाऽपि यद्रच्छेद्विक्रियां तच्च वर्ज-  
येत् ॥ १२ ॥

सम्यक्संहितमपि सम्यक् योजितमपि ।  
अस्थि दुर्न्यासादुःस्थापनात् । सुन्यस्तमपि  
दुष्टबन्धनात् । सुबद्धमपि संक्षोभात् । अभि-  
घातादिना सञ्चलनात् । विक्रियां गच्छेत्  
विकृतं भवति तत् वर्जयेत् ॥

जो अस्थि अच्छे प्रकारसे जुड़ भी गई होय परंतु  
उनको योग्यरीत्यनुसार न रखे तथा योग्यरीतिसे नहीं  
बाँधे, अथवा योग्य रीतिसे जुड़नेपर और बाँधनेपर भी-  
उसमें चोट आदिके लगजानेसे विकृति होजाय तो वह भी  
असाध्य जाननी ॥ १२ ॥

अथास्थिविशेषे भग्नविशेषः ।

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु ॥  
कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि  
च ॥ १३ ॥

तरुणास्थीनि घ्राणकर्णाक्षिगुदेषु कोमला-  
स्थीनि नम्यन्ते वक्रीभवन्ति तेन अत्र वक्र-  
तालक्षणं भग्नम् । नलकानि नलादीनि नाडी-  
वत्सरन्ध्राणि अस्थिपर्वाणि भिद्यन्तेऽस्थ्यन्त-  
रानुप्रवेशाद्विदार्यन्ते । कपालानि जानुनित-  
म्बांसगण्डतालुशंखवंक्षणशिरोऽस्थीनि विभ-  
ज्यन्ते । स्फुटन्ति । च्युद्यन्ति रुचका दन्ताः  
अस्थीनि च तरुणनलककपालरुचकवल-  
यभेदात्पञ्चविधानि । तत्र रुचकानि चेति  
चकाराद्वलयान्यपि च्युद्यन्तीति बोद्धव्यम् ॥  
पाण्योः पार्श्वयुगे पृष्ठे वक्षोजठरपायुषु ॥  
पादयोरपि चास्थीनि वलयानि बभा-  
षिरे ॥ १४ ॥

तरुणास्थि ( नाक ), कान, आँख और गुदा  
इनकी हड्डी नरम होनेके कारण नमजाती हैं, इस

कारण उनमें वक्रनामक कांडभग्न होता है. नलक नामक हड्डी ( नलीकी समान छेदवाली हड्डी ) उसमें दूसरी हड्डीके घुसजानेसे चिरजाती है, कपालनामक अस्थिमें घुटने, नितंब, कन्धे, कपोल, तालू, कनपटी, सांथलकी सधि और मस्तककी हड्डी टूटकर अलग होजाती हैं और रुचकनामक अस्थि ( दातकी हड्डी ) टूटकर चूर चूर होजाती है ।

तरुण, नलक, कपाल, रुचक और वलय इसप्रकार हड्डी पांच प्रकारकी हैं इनमें पहिली चार प्रकारकी अस्थि कही हैं, यद्यपि पांचवें प्रकारकी वलयनामक हड्डीके विषय नहीं कहा है तथापि मूल श्लोकमें ( च ) शब्द है उससे जानलेना चाहिये कि ' वलयनामक हड्डी भी टूट जाती- है ' । दोनों हाथोंमें, दोनों पसलियोंकी, पीठकी, पेटकी, गुदाकी और दोनों पांवाँकी हड्डी वलय कही जाती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ भग्नचिकित्सा ।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतला-  
म्बुना ॥ पंकेनालेपनं कार्यं बन्धनञ्च कुशा-  
न्वितम् ॥ १५ ॥ अवनामितमुन्नह्येदु-  
न्नतं चावपीडयेत् ॥ अश्वेदधःक्षिप्तमधो  
गतं चोपरि वर्तयेत् ॥ १६ ॥ मधूकोदु-  
म्बराश्वत्थकदम्बनिचुलत्वचः ॥ वंशसर्जा-  
र्जुनानाञ्च बंधार्धमुपसंहरेत् ॥ १७ ॥ पट-  
स्योपरि बध्नीयान्न गाढं शिथिलं न च ॥  
सप्तसप्तदिनाच्छीते घर्मे मुञ्चेद्भयहाड्यहात् ॥  
॥ १८ ॥ मासान्ते पञ्चपञ्चाहाद्भये दोष-  
ऽवसेचनम् ॥ आलेपनार्थं मल्लिष्ठामधूकं  
चाम्बुपेषितम् ॥ शतधौतघृतोन्मिश्रं शालि-  
पिष्टञ्च लेपनम् ॥ १९ ॥ सद्योऽभिघात-  
जनिता आगन्तुश्चयथवः प्रशाम्यन्ति ॥  
पिष्टकलवणालेपादम्लीकाफलरसाभ्यां वा  
॥ २० ॥ आम्रातकजटाम्लीकाफलं पत्राणि  
शिशुजम् ॥ २१ ॥ मूलं पौनर्नवं बद्धं मान-  
स्यापि च केम्बुकात् ॥ सर्वं संक्षुद्य तक्त्रेण  
कांजिकेन तथैव च ॥ २२ ॥ पाचयित्वा  
चरेच्छ्रेष्ठं तेन पीडा प्रणश्यति । शोथ-

श्चास्ति च शीघ्रेण सन्धानं याति वै ध्रुव-  
म् ॥ २३ ॥ न्यग्रोधादिकषायन्तु सुशीतं  
परिषेचने ॥ पञ्चमूलीकषायं सक्षीरं  
दद्यात्सवेदने ॥ २४ ॥ सुखोष्णमवचार्य  
वा चुक्रतैलं विजानता ॥ अविदाहिभिर-  
न्नैश्च पिष्टकैः समुपाचरेत् ॥ २५ ॥ ग्ला-  
निर्हि निहिता तस्य सन्धिविश्लेषकारिका ॥  
मांसं मांसरसः क्षीरं सर्पिर्दूषः सतीनजः ॥  
॥ २६ ॥ बृंहणश्चान्नपानञ्च देयं भग्न-  
जानता ॥ गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौष-  
धसाधितम् ॥ २७ ॥ शीतलं लाक्षया  
युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ सघृतेनास्थिसं-  
हारं लाक्षागोधूममर्जुनम् ॥ २८ ॥ सन्धि-  
मुक्तेऽस्थिसम्भगे पिबेत्क्षीरेण वा पुनः ॥  
रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कान्समश्रुता-  
म् ॥ २९ ॥ छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धा-  
नमचिराद्भवेत् ॥ चूर्णं पुरेण संयोज्य  
घृतेनार्जुनलाक्षयोः ॥ ३० ॥ भग्नः सन्धा-  
नमायाति लीढं क्षीरघृताशिना ॥ मूलं  
शृगालविन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु ॥  
॥ ३१ ॥ चूर्णीकृत्य त्रिसप्ताहादस्थिभग्नम-  
पोहति ॥ आभाचूर्णं मधुयुतमस्थिभग्नस्य हं-  
पिबेत् ॥ पीते चास्थि भवेत्सम्यग्बज्रसा-  
रमिमं दृढम् ॥ ३२ ॥ अम्लीकाफलकल्कः  
सौवीरस्तैलमिश्रितः स्वेदात् ॥ भग्ना-  
भिहितरुजाग्नैरथ वौषधसाधितं श्वय-  
थौ ॥ ३३ ॥

भग्नरोगमें प्रथम शीतल जलसे सेचनकरे, कीचका लेपकरे, कुशा बाँधे वा पट्टी बाँधे । जो हड्डी दब जाय उसको ऊपरको ऊठाकर ऊँचाकरे, जो ऊँची होजाय तो उसे दबाकर नीचेको बैठे, दूर हटजाय उसको नजदीक लावे और जो नीचेको होजाय तो ऊपरको चढ़ावे । महु-वा, गुगल, पीपल, कदम्ब, वेंत, बॉस, राल और अर्जुन वृक्षकी छाल इनकी पट्टी बाँधे, बंधनके ऊपर जो बंधन बाँधे उसको सख्त नहीं बाँधे और शिथिल भी नहीं बाँधे ।

शीतकालमें सात सात दिनमें पट्टी खोले, ऊष्णकालमें तीन तीन दिनमें पट्टी खोले और साधारण कालमें पांच पांच दिनमें पट्टी खोले, अथवा जो भग्न होय उसको यथा दोपानुसार पट्टी खोलनेका समय नियत करे ।

मजीठ और मुलेठीको जलमें पीसकर उसका भग्नके ऊपर लेप करे । लाल शालि चावलोको पीसकर उसमें सौवारका धुला घी मिलाकर लेप करे । इसलीके फल तथा छालके स्वरससे, शालिचावल सैवेनोनकी पिष्टी बनाकर लेपकरनेसे अभिघात आदिसे तत्काल उत्पन्नहुए शोथ श्रान्त होते हैं । अम्बाडेकी जड़, इसलीके फल, इसलीके पत्ते, सैजनेकी जड़, पुनर्नवेकी जड़, मानकंद और सुपारीकी जड़ इन सबको खूब कूट पीसकर मट्टे और काँजीमें पकाकर लेप करनेसे पीडा और सूजन दूर होजाती हैं और हड्डियाँ भी तत्काल जुड़जाती हैं ।

न्यग्रोधादिगणका काथ बनाकर अच्छे प्रकारसे शीतल करके भग्नपर सेचनकरे । जो भग्नमें व्यथा होती होय तो पचमूलका काथ बनाकर उसमें दूध डालकर उससे सेचन करे । अथवा चूकेका तेल बनाकर सुहाता सुहाता लेप करे । जो अन्न दाहकारक नहीं हैं, उनकी पुलटिसभी भग्नपर बॉधनी चाहिये ।

सधियोंके भिन्नभिन्न होनेसे रोगीके ग्लानि भी अवश्य होती है इसकारण उस रोगीको अच्छे प्रकारसे विचारकर मांस, मासका रस ( सोरुआ ), दूध, मधुका मूष और घातुओंको पुष्ट करनेवाले ऐसे अन्न पान देवे ।

सधिभग्न और कांडभग्नमें पहलीन गायके दूधमें घी डालकर जीवनीयगणकी औषधियोंके साथ पकाकर शीतल करके फिर लाखका रस डालकर प्रातःकाल पिये ।

हडसधारी, लाख, गेहू और अर्जुनकी छाल इनको पीसकर घी और दूधके साथ मिलाकर पीनेसे सधिभग्न तथा कांडभग्न नष्ट होजाता है ।

लसुन, सहत, लाख, घी और मिश्री इनका कट्क सेवन करनेसे छेदी हुई, भेदी हुई और टूटी हुई हड्डि तत्काल जुड़जाती हैं ।

पृष्ठिपर्णीकी जड़का चूर्ण बनाकर मासके रसके साथ सेवन करे तो इक्कीस दिनमें अस्थिभग्न आगम होजाता है ।

अर्जुन और लाखका चूर्ण बनाकर घी और गुग्गुलुके साथ मिलाकर चाटे, दूध और घी मोजन करे तो टूटा हुआ हाड तत्काल जुड़जाता है ।

ववूरकी फलीका चूर्ण करके सहतके साथ मिलाकर तीनदिनतक पिये तो हाड वज्रकी समान टूट होजाता है ।

इमलीके फलोंका कल्क, सौवीर और तेल इनको एकत्र मिलाकर गरम करके स्वेद देनेसे भग्नकी तथा अभिघातकी पीडा नष्ट होजाती है ॥ १५-३३ ॥

### अथाभागुगुलुः ।

आभाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरेतैः समांशिकैः ॥  
तुल्यं गुग्गुलुना योज्यं भग्नसन्धिप्रसाध-  
नम् ॥ ३४ ॥

ववूर, हरड, बहेडा, आमला, सोठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर और सबकी बराबर गुग्गुलु लेंवे, सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे टूटी हुई हड्डि फिरसे जुड़जाती है ॥ ३४ ॥

### अथ लाक्षाद्यगुग्गुलुः ।

लाक्षास्थिसंहत्ककुभोऽश्वगन्धा चूर्णीकृता  
नागवला पुरश्च ॥ संभग्नमुक्तास्थिरुजं निह-  
न्यादंगानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ ३५ ॥

लाख, हडसधारी, अर्जुनवृक्षकी छाल, असगन्ध और खिरेटी, इनसबका चूर्ण बनाकर गुग्गुलुमें मिलाकर सेवन करनेसे टूटा हुआ तथा हटा हुआ हाड फिरसे जुड़ कर वज्रकी समान होजाता है और पीडा शमन होजाती है ॥ ३५ ॥

### अथ गन्धतैलम् ।

रात्रौ रात्रौ तिलान्कृष्णान्वासयेदस्थिरे  
जले ॥ दिवादिवा शोधयित्वा गवां  
क्षरिण भावयेत् ॥ ३६ ॥ तृतीयं सप्तरा-  
त्रन्तु भावयेन्मधुकांडुना ॥ ततः क्षीरं  
पुनः पीताब्जुष्णान्सूक्ष्मान्विचूर्णयेत् ॥  
ककोल्यादि श्वदंष्ट्रां च मंजिष्ठां सारिवां  
तथा ॥ ३७ ॥ कुष्ठं सर्जरसं मांसीं  
सुरदारु सचन्दनम् ॥ शतपुष्पाश्च संचू-  
र्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ॥ ३८ ॥  
पीडनार्थं तु कर्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं

पयः ॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचये-  
त्पुनः ॥ ३९ ॥ एलामंशुमतीपत्रं जी-  
वन्तीं तुरगं तथा ॥ रोध्रं प्रपौण्डरीकञ्च  
तथा कालानुसारिवाम् ॥ ४० ॥ शैलेयं  
क्षीरशुक्लाभमनन्तां समधूलिकाम् ॥  
पिष्ट्वा शृङ्गाटकञ्चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च  
॥ ४१ ॥ एभिस्तद्विपचेतैलं शास्त्रविन्मृ-  
दुनामिना ॥ एतत्तैलं सदापथ्यं भग्नानां  
सर्वकर्मसु ॥ ४२ ॥ आक्षेपके पक्षघाते  
तालुशोषे तथार्दिते ॥ मन्यास्तम्भे  
शिरोरोगे कर्णशूले शिरोग्रहे ॥ ४३ ॥  
वाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षय-  
ङ्गताः ॥ पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये  
वस्तिषु भोजने ॥ ४४ ॥ ग्रीवास्कन्धो-  
रसां वृद्धिरेतेनैव प्रजायते ॥ मुखञ्च  
पद्मप्रतिमं ससुगन्धि समीरणम् ॥ ४५ ॥  
राजार्हमेतत्कर्तव्यं राज्ञामेव चिकि-  
त्सकैः ॥ तिलचूर्णसमं तत्र मिलितं  
चूर्णमिष्यते ॥ ४६ ॥

सातदिनतक रात्रिके समय बहतेहुए जलमें काले  
तिलोंको भिजोरक्खे, फिर सुखादेवे पश्चात् सात दिनतक  
नित्य गायके दूधकी भावना देवे फिर सातदिनतक नित्य  
मुलैठीके रसकी भावना देवे, फिर उन तिलोंको पीछे  
दूधमें भिजोकर सुखाकर चूर्ण बनावे, पश्चात् काकोल्या-  
दिगण, गोखरू, मजीठ, सारिवा, कूट, राल, बालछड,  
देवदारु, चंदन और सोया इनका तिलके चूर्णकी समान  
चूर्ण बनाकर तिलोंके चूर्णमें मिलादेवे । फिर इस तिलके  
चूर्णको सम्पूर्ण सुगन्धितपदार्थोंसे मिश्रित कियेहुए दूधके  
साथ मिलाकर कोल्हूमें पिलवाकर तेल निकलवावे । फिर  
सकल सुगन्धित पदार्थोंसे दूधको पकाकर उस चौरुने  
दूधसे तेलको पकावे, पश्चात् इलायची, शालिपर्णी,  
तेजपात, जीवक, तगर, लोध, पुडेरिया, पीलाचन्दन,  
सफेद कट्सैरैया, सफेद दूब, मूर्वा, सिन्धुआड़े और ऊपर  
कहीहुई काकोल्यादि औषधि इनका कल्क बनाकर  
मन्दमन्द अग्निसे तेलको दुबारा पकावे तो यह गन्धतैल  
सिद्ध होताहै, यह तेल भग्नके ऊपर सम्पूर्ण क्रियाओमें

सर्वदा पथ्य है । आक्षेपक, पक्षाघात, तालुशोष, अर्दित,  
मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, शिरोग्रह, बधिरता,  
तिमिर और अत्यंत स्त्रीप्रसंग करनेसे उत्पन्न  
क्षयरोग इनमें पीनेसे, मालिस करनेसे, नास लेनेसे,  
पिचकारी लगानेसे और भोजनमें पथ्य है । इस तेलसे  
ग्रीवा, कंधे और छातीकी वृद्धि होतीहै । मुख अत्यंत  
सुगन्धिश्वासवाला तथा कमलकी समान होजाताहै । यह  
तेल राजाओंके योग्य है, इस लिये वैद्योंको राजाके लिये  
बनाना चाहिये ॥ ३६-४६ ॥

अथावस्थानुसारेण भग्नोपशान्तिः ।

पूर्वे वयसि जातं हि भग्नं सुकरमादि-  
शेत् ॥ अल्पदोषस्य जन्तोश्च काले तु  
समशीतले ॥ ४७ ॥ प्रथमे वयसि त्वेवं  
मासात्संधिः स्थिरो भवेत् ॥ मध्यमे द्विगु-  
णात्कालादन्तिमे त्रिगुणात्तथा ॥ ४८ ॥

पहिली अवस्थामें हुआ भग्न साध्य है, अल्प दोषवाले  
मनुष्यको हुआ भग्न साध्य है और गिशिर ऋतुमें हुआ  
भग्नभी साध्य है ॥

पहिली अवस्थामें टूटे हुए हाड एक महीनेमें दृढ  
होजातेहैं, मध्य अवस्थामें टूटाहुवा हाड दो महीनेमें दृढ  
होजाताहै और पिछली अवस्थामें टूटाहुआ हाड तीन  
महीनेमें दृढ होजाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ भग्नस्य विशेषरक्षाः ।

नैति पाकं यथा भग्नं तथा यत्नेन रक्षयेत् ॥  
पक्वा हि या शिरा स्नायुः सा तु कृच्छ्रेण  
सिध्यति ॥ ४९ ॥

जिससे कि भग्न पक न जाय इस प्रकार यत्नपूर्वक  
उसकी रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि भग्न पकजाय तो  
शिराओंको तथा स्नायुओंको खराब करदेताहै और कष्ट-  
साध्य होजाताहै ॥ ४९ ॥

अथ भग्नविशेषोपदेशः ।

पतनादभिघाताद्वा तनुभग्नं यदक्षतम् ॥  
शीतान्सेकान्प्रदेहांश्च भिषक्तस्यावचार-  
येत् ॥ ५० ॥ सत्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं  
सर्पिर्मधूतरैः ॥ प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं  
भग्नवदाचरेत् ॥ ५१ ॥

वातव्याधिविनिर्दिष्टान्नेहांस्तत्रापि यो-  
जयेत् ।

गिर जानेसे अथवा चोट आदिके लगनेसे जो अग  
सृजजाय और घाव न होय तो वैद्य उसपर शीतल सेचन  
और गाढा गाढा शीतल लेप करे । जो भग्न व्रणसहित  
होय तो उस व्रणको घी तथा सहतसे मिश्रित किये हुए  
क्वाथोंसे धोवे, पश्चात् सम्पूर्ण वही सब क्रिया भग्नकी  
समान करे इसपर वातरोगोक्त कहे हुए खेहोंकी योजना  
करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ भग्नापथ्यम् ।

लवणं कटुकक्षारमम्लमायासमैथुनम् ॥  
व्यायामश्च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव  
च ॥ ५२ ॥

जिसके सधि भग्न या कांडभग्न हुआ होय तो उसको  
नमक, चरपरे पदार्थ, खारी पदार्थ, खट्टे पदार्थ, परिश्रम,

मैथुन, कसरत और रूखा अन्न इन सबको त्यागदेना  
चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ भग्नारोग्यलक्षणम् ।

भग्नसन्धिमनाविद्धमहीनांगमनुत्वनम् ॥  
सुखचेष्टाप्रचारश्च सम्यक्सन्धितमादि-  
शेत् ॥ ५३ ॥

इति भग्ननिदानचिकित्साधिकारः ।

जब अगोंको फैलाते पमारते समय कुछ भी दुःख न  
हो, कोई अवयव छोटा न रहजाय, सृजन किंचित् भी न  
रहे और उठते बैठते समय तथा फिरते चलते समय दुःख  
न होय अर्थात् ये सब चेष्टा सुखपूर्वक करने लगे तो  
भग्नको अच्छे प्रकारसे आरोग्य हुआ जानना ॥ ५३ ॥

इति भग्ननिदानचिकित्साधिकारः सम्पूर्णः ।

इति श्रीभावप्रकाशे मध्यमखण्डे शालिग्रामवैद्यवि-  
रचितभाष्यार्टीकायां तृतीयो भागः सम्पूर्णः ।





॥ श्रीवैकटेशाय नमः ॥



❖ अथ भावप्रकाशः । ❖

❖ मध्यमखण्ड-चतुर्थो भागः ४. ❖

❖ भाषाटीकासमेतः ❖

अथ नाडीव्रणाधिकारः ।

तत्र नाडीव्रणस्य सम्प्राप्तिपूर्वकशब्दार्थः ।

यः शोथमाममिति पक्वमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः ॥ आभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥ १ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्धति तेन मता च नाडी ॥ २ ॥

उपेक्षते तस्य शोथस्य सुखं न कारयति यो वा अयमाममिति मत्वा पक्वं व्रणं च उपेक्षते । शोधनैर्न शोधयति । प्रचुरपूयमिति शोथस्य व्रणस्यापि विशेषणम् । असाधुवृत्तः अहिताहारविहारः । स पूयः ततस्तदनन्तरम् । तस्य पूर्वविहितानि स्थानानि सुश्रुतोक्तानि त्वङ्मांसशिरास्त्रायुसन्ध्यस्थिकोष्ठ-

मर्माणि प्रविदार्य सच्छिद्राणि कृत्वा अभ्यन्तरं प्रविशति । तस्य पूयस्य अतिमात्रगमनादभ्यन्तरे दूरप्रवेशाद्गतिरिष्यते । सर्वदा स्राव इष्यते । इति सम्प्राप्तिः । अथ निरुक्तिः । अयं व्रणो नाडीवत्सरन्व्रनलादिनाडीव यद्धेतोर्वहति तेन नाडी मता ॥

जो मूर्ख मनुष्य बहुत राधवाले पके हुए फोड़ेको कच्चा समझकर उसका मुख नहीं करता अथवा बहुत राधवाले पके हुए व्रणको कच्चा जानकर उसको शोधन पदार्थोंसे शुद्ध नहीं करता और अहित आहार विहार करता है उसके वह राध फिर त्वचा, मांस, गिरा, स्नायु, संधि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्मस्थानोंके छिद्रोंमें होकर उनके भीतर घुसजाती है, भीतर बहुत दूरतक घुसजानेके कारण वह राध सदैव बहाकरती है । यह नाडीव्रणकी सम्प्राप्ति जाननी । यह व्रण बोंस आदिकी नलीकी समान राधको बहाता है इसकारण इसको नाडीव्रण कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ नाडीव्रणसंख्या ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमू-  
च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ ३ ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और शल्यज इस प्रकार नाडीव्रण पांच प्रकारका है ॥ ३ ॥

अथ वातजनाडीव्रणलक्षणम् ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सगूला फेना-  
नुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥ ४ ॥

जो नाडीव्रण सूक्ष्म मुखवाला और कठिन मुखवाला हो, शूलयुक्त और उसमेंसे झाग मिला स्राव अधिकहो उसको वातज नाडीव्रण जानना ॥ ४ ॥

अथ पित्तजनाडीव्रणलक्षणम् ।

पित्तातृद्वज्वरकरी परिदाहयुक्ता पीतं  
स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ५ ॥

जो नाडीव्रण तृषा तथा ज्वरसंयुक्त हो, दाहयुक्त और उसमेंसे दिनमें पीले रंगका तथा गरम अधिक स्राव होता हो, उसको पित्तज नाडीव्रण जानना ॥ ५ ॥

अथ कफजनाडीव्रणलक्षणम् ।

ज्ञेया कफाद्बुधना सितपिच्छिलास्रा स्त-  
ब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥ ६ ॥

सितपिच्छिलास्रा असं रक्तं तच्चोपलक्षणं  
पूयादिश्च बोद्धव्यः । सकण्डुररुजा कण्डू-  
प्रधानवेदनायुक्ता ॥

जो नाडीव्रण बहुत घन हो उसमें सफेद और चिकना स्राव होताहो, अकड़ जाय, अत्यन्त खुजली सहित वेदनासे संयुक्त हो और रात्रिमें अधिक क्लेशको प्राप्त होजाय उसको कफजनित जानना ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजनाडीव्रणलक्षणम् ।

दाहज्वरश्चसनमूर्च्छनवक्रशोषा यस्यां  
भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ॥ तामा-  
दिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्धोरां गतिं त्व-  
सुहरामिव कालरात्रिम् ॥ ७ ॥

कालरात्रि यमरात्रिमिव । असुहरां  
मारिकाम् ॥

जो नाडीव्रण दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा और मुखशो-  
षमें संयुक्त हो और इसके सिवाय उपरोक्त तीनों दोषोंके

सम्पूर्ण लक्षणभी हो उस नाडीव्रणको वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ त्रिदोषज जानना । और कालरात्रिकी समान भयकर तथा प्राणोंका नाश करनेवाला जानना ॥ ७ ॥

अथ सशल्यनाडीव्रणलक्षणम् ।

नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु  
शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ सा फेनिलं  
मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति  
सहसा स्रुजश्च नित्यम् ॥ ८ ॥

उदीरितेषु स्थानेषु त्वङ्मांसादिषु कथ-  
ञ्चिन्नष्टम् अदृश्यमानं शल्यम् । किंवि-  
शिष्टम् अनुमार्गम् अत एव अदृश्यमानम् ।  
सा गतिं चिरेण शीघ्रं स्रावं करोति । सा  
शल्यनिमित्ता नाडी । मथितं मथितमिव  
स्रावं करोति स्रावश्च प्रसारणाकुञ्चनादौ श-  
ल्यसञ्चलनेन भवति ॥

जो नहीं निकालजाय और त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु सन्धि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्मस्थानोंमें किसी रीतिसे गुप्त होजाय, या टूटकर रहजाय इस कारण दीखे नहीं ऐस वारीक काटा थोड़े समयमें व्रण करदेताहै और उस व्रण-  
मेंसे गाढ़े तक्रके समान गरम तथा रुधिर संयुक्त स्राव होताहै और निरन्तर पीड़ा रहतीहै इसको शल्य सम्बन्धी नाडीव्रण कहतेहैं । अंगोंको फैलाते सिकोडते आदिके समयमें शल्यके चलायमान होनेसे स्राव होताहै ॥ ८ ॥

अथ नाडीव्रणस्य कष्टसा-

ध्यत्वासाध्यत्वे ।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येदन्त्याश्च-  
तस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ९ ॥

त्रिदोषज नाडीव्रण असाध्य है और अन्य चार प्रकारके नाडीव्रण कष्टसाध्य हैं ॥ ९ ॥

अथ नाडीव्रणचिकित्सा ।

तत्रानिलोत्थामुपनाह्य पूर्वमशेषतः पूय-  
गतिं विदार्य ॥ फलैरपामार्गभवैः पि-  
ष्टैः ससैन्धवैः सम्परिपूर्य बन्धेत् ॥ १० ॥  
प्रक्षालने वापि सदा व्रणस्य योज्यं मह-  
द्यत्खलु पञ्चमूलम् ॥ हिप्सां हरिद्रां

कटुकां वचाश्च गोजिहिकाश्चापि सधिल्व-  
मूलाम् ॥ संहृत्य तैलं विपचेद्व्रणस्य सं-  
शोधनं पूरणरोपणञ्च ॥ ११ ॥

जो नाडीव्रण वातसन्ध्या होय तो उसको प्रथम औष-  
धियोंसे सयुक्त पुलटिस आदिसे बांधे फिर शस्त्रसे विधि-  
पूर्वक राधके स्थानको चीर देवे फिर उस व्रणमें सैधा-  
निमकके साथ चिरचिटेके चावलोंको पीसकर भरदेवे और  
ऊपरसे बांधदेवे, बृहत्पंचमूलका काथ बनाकर उस काथसे  
नित्य व्रणको धोना चाहिये ।

हीस, हलदी, कुटकी, वच, गोभी वेलगिरी इनका  
कल्क बनाकर उस कल्कसे तेलको पकावे, यह तेल व्रण-  
को शुद्ध करदेताहै, व्रणको भरकर सुखा देताहै । यह  
तेल 'हिंसाद्य तैल' नामसे कहा जाताहै, और वातज  
नाडीव्रणपर अत्यन्त उपकारीहै ॥ १० ॥ ११ ॥

पित्तात्मिकां प्रागुपनाह्य धीमानुत्कारि-  
काभिः सपयोधृताभिः ॥ निपात्य शस्त्रं  
तिलनागदन्तीमल्लिष्ठकलैः परिपूरयेच्च  
॥ १२ ॥ प्रक्षालने चापि हरिद्रसोमनिम्बाः  
प्रयोज्याः कुशलेन नित्यम् ॥ श्यामात्रिभ-  
ङ्गीत्रिफलासुसिद्धं हरिद्रया तिल्वकवृक्ष-  
केण ॥ घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्भृतिं  
कोष्ठगतापि वा स्यात् ॥ १३ ॥

जो नाडीव्रण पित्तसम्बन्धी होय तो उसको प्रथम दूध  
तथा घी सहित गेहूँके आटेकी लपड़ी बाँध देवे, पश्चात्  
शस्त्रसे चीरकर उसमें तेल, जमालगोटे और मजीठ  
इनका कल्क भरदेवे ॥

बुद्धिमान् वैद्य इस व्रणको नित्य हलदी, लालचदन  
और नीमकी छाल इनके काथसे धोतारहे ॥

काला निसोत, सफेद निसोत, हरड, बहेडा, आमला,  
हलदी और लोध इनके कल्कसे पकाये हुए घीमें दूध  
डालकर उस घीसे पित्तजनित नाडीव्रणको तृप्तकरे तो  
व्रणका स्त्राव दूर होजाताहै, यह निश्चय है । यह घी  
'श्यामाघृत' नामसे प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ १३ ॥

नाडीं कफोत्थामुपनाह्य पूर्व कुलत्थसिद्धा-  
र्थकसत्तुबिल्वैः ॥ मृदूकृतामेकगतिं विदि-  
त्वा निपातयेच्छस्त्रमशेषकारि ॥ १४ ॥  
दद्याद्व्रणे निम्बतिलाभिदन्तीसुराष्ट्रजान्

सैन्धवसम्प्रयुक्तान् ॥ प्रक्षालने चापि कर-  
ञ्जनिम्बजात्यर्कपीलुस्वरसाः प्रयोज्याः १५

जो नाडीव्रण कफजनित होय तो प्रथम उसके ऊपर  
कुलथी, सरसों, सत्तू और वेलगिरी इनसे सयुक्त पुलटिस  
बाँधे, नरम करके राधकी गतिको शुद्ध जानकर अच्छे  
प्रकारसे चिरादेवे, पश्चात् नीम, तिल, चीता, जमालगोटे  
फटकरी और सैधानिमक इनका चूर्ण करके भरदेवे । इस  
व्रणको नित्य करंज, नीम, चमेली, आक और पीलू इनके  
स्वरसोंसे धोवे ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यतैलम् ।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यम्रियूथिकाजलनीलिका  
खरमञ्जरिबीजेषु तैलं गोमूत्रसाधितम् ॥  
दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १६ ॥

सजी, सैधानिमक, जमालगोटा, चीता, जुही, सिवार,  
और चिरचिटेके बीज इनके कल्कसे गोमूत्रमें पकाये हुए  
तेलको 'स्वर्जिकाद्य तैल' कहतेहैं । इस तेलसे तृप्त करनेसे  
दुष्टव्रण तथा कफसम्बन्धी नाडीव्रण नष्ट होजातेहैं ॥ १६ ॥

अथ सैधवाद्यतैलम् ।

सैन्धवार्कमरिचज्वलनाख्यैर्मार्कवेण रज-  
नीद्वयसिद्धम् ॥ तैलमेतदचिरेण निहन्या-  
द् दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥ १७ ॥

सैधानिमक, आक, मिरच, चीता, भागरा, हलदी और  
दारुहलदी इनसे पकाया हुआ तेल 'सैधवाद्यतैल' कहाता  
है । इस तेलके लगानेसे कफसम्बन्धी तथा वायुसम्बन्धी  
नाडीव्रण बहुत दूरतक पहुँचा होय तोभी नष्ट होजाता-  
है ॥ १७ ॥

नाडीं तु शल्यप्रभवां विदार्य निष्कास्य  
शल्यं प्रविशोध्य मार्गम् ॥ बन्धेद्व्रणं क्षौद्र-  
घृतप्रगाढं निम्बांस्तिलांश्चाप्यवरोपयेच्च १८

जो नाडीव्रण शल्यसम्बन्धी होय तो शस्त्रसे चीरकर  
काँटोको निकालकर व्रणके मार्गको शुद्ध करके पश्चात्  
सहृत्तमे तथा घीमें पीसेहुए नीमके पत्तोंके कल्कका तथा  
तिलके कल्कका उसके ऊपर लेप करदेवे । इससे व्रण  
भरकर सूखजाताहै ॥ १८ ॥

अथ कुम्भीकाद्यतैलम् ।

कुम्भीकखर्जरकपित्थबिल्ववनस्पतीनाश्च  
शलाटुवर्गे कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैल-

मावाप्य सुस्तं सरलं प्रियंगुम् ॥ १९ ॥  
सौगन्धिकं मोचरसाहिपुष्पं लोधाणि  
दत्त्वा खलु धातकीञ्च ॥ एतेन शल्यप्रभवा  
हि नाडी रोहेद्वये वा सुखमाशु चैव ॥ २० ॥

जमालगोटा, खजूर, कूठ, बेलगिरी, और वड इनके  
कच्चे फलोंका काथ बनाकर उसमें नागरमोथा, फूलप्रियंगु,  
देवदार, रोहिसनामक सुगन्धितृण, मोचरस, नागकेसर,  
लोघ और धायके फूल इनका चूर्ण डालकर तेल पकावे ।  
इस 'कुम्भीकाद्य' नामक तेलसे तृप्त करे तो शल्यसम्बन्धी  
नाडीव्रण और अन्यान्य सत्र व्रण नष्ट होजातेहैं ॥ १० ॥ २० ॥

स्तुह्यर्कदुग्धदार्वाणां वर्ति कृत्वा प्रपूरयेत् ॥  
एष सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यात्प्रयोग-  
राट् ॥ २१ ॥ आरग्वधनिशाकालाचूर्णा-  
ज्यक्षौद्रसंयुता ॥ सूत्रवर्तिव्रणे योज्या  
शोधनी गतिनाशिनी ॥ २२ ॥

शूहरका दूध, आकका दूध, और दारुहलदी इनकी  
वत्ती बनाकर व्रणके भीतर रखे तो इस उत्तम प्रयोगसे  
सम्पूर्ण शरीरके नाडीव्रण नष्ट होजातेहैं ।

अमलतास, हलदी और निसेत इनका चूर्ण बनाकर  
घी तथा सहतमें मिलाकर और एक सूतकी वत्ती बनाकर  
उसपर वह घी लगाकर वह वत्ती व्रणमें रखे तो व्रण  
शीघ्र शुद्ध होजाताहै और राधकी गति भी नष्ट होजाती-  
है ॥ २१ ॥ २२ ॥

वर्तिकृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तं नाडीव्रमुक्तं  
लवणोत्तमं वा ॥ दुष्टव्रणे यद्विहितं तु तैलं  
तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ २३ ॥

संधेनिमकको सहतमें पीसकर उससे सूतकी वत्ती  
बनाकर व्रणमें रखनेसे नाडीव्रण नष्ट होजाताहै । दुष्टव्र-  
णके ऊपर जो तेल कहे हैं उनको सेवन करनेसे राधकी  
गति तत्काल नष्ट होजातीहै ॥ २३ ॥

जात्यर्कशम्पाककरञ्जदन्तीसिन्धूत्यसौवर्च-  
लयावशूकैः ॥ वर्तिः कृता हन्त्यचिरेण  
नाडी स्तुक्धीरपिष्टा तु सचित्रकेण ॥ २४ ॥

चमेली, आक, अमलतास, करज, जमालगोटे, भैंसा-  
निमक, कालानिमक, जवाखार, और चीता इनको शूहरके  
पीसकर इनसे सूतकी वत्ती बनाकर रखनेसे नाडी-  
व्रण तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ २४ ॥

विभीतकाम्रास्थिवटप्रवालहरेणुकाशंखिनि-  
बीजमिश्रा ॥ वाराहविट्मूक्षममसो प्रदेया  
नाडीषु तैलेन हि मिश्रयित्वा ॥ २५ ॥

बहेडे, आमकी गुठली, वडके अंकुर, रेणुका, खिनि-  
नीके बीज और बारही कन्द इनको तेलमें पीसकर कल्क  
बनाकर नाडीव्रणके ऊपर लगावे तो नाडीव्रण तत्काल  
नष्ट होजाताहै ॥ २५ ॥

मेषरोममसीतुम्ब्या कटुतैलं विपाचितम् ॥  
नाडीव्रणं चिरोद्भूतं जयेत्तु तूलसंग-  
मात् ॥ २६ ॥

भेडके बालोंकी भरम और कडवी तोत्री इनको  
सरसोंके तेलमें पकाकर उसकी वत्ती बनाकर व्रणमें रख-  
नेसे बहुत दिनोंका भी नासूर जातारहै ॥ २६ ॥

अथ कर्चूरतैलम् ।

कर्चूरकस्य स्वरसे कटुतैलं विपाचयेत् ॥  
सिन्दूरकल्कितं नाडीदुष्टव्रणविसर्पनुत् ॥  
॥ २७ ॥ कर्चूरकरसे तैल पुरसिन्दूरकल्कि-  
तम् ॥ पामां दुष्टव्रणं नाडीं हन्यात्सर्वव्र-  
णान्तकृत् ॥ २८ ॥

कचूरके स्वरसमें सिन्दूरका कल्क डालकर पकाया हुआ  
सरसोंका तेल डालनेसे नाडीव्रण, दुष्टव्रण और विसर्प दूर  
होजाताहै ।

कचूरके स्वरसमें गूगल तथा सिन्दूरका कल्क डालकर  
पकाया हुआ सरसोंका तेल व्रणमें भरे तो खुजली, दुष्टव्रण,  
नाडीव्रण और अन्यान्य व्रण भी नष्ट होजातेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ भल्लातकाद्यतैलम् ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं किङ्-  
गरजनीद्वयचित्रकैश्च ॥ स्यान्मार्कवस्य  
च रसेन निहन्ति तैलं नाडी कफानिलकृ-  
तामपची व्रणांश्च ॥ २९ ॥

भिलावे, आक, कालीमिरच, सैवानिमक, वायविडंग,  
हलदी, दारुहलदी और चीता, इनका कल्क बनाकर  
मागरेके रसमें डालकर पकायाहुआ तैल 'भल्लातकाद्यतैल'  
नामसे कहाजाताहै । इस तेलके लगानेसे कफज नाडीव्रण,  
वातजनित अपची और व्रण नष्ट होजाताहै ॥ २९ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यतैलम् ।

स्वर्जिका सैन्धवं दन्ती नीलीमूलं फलं  
तथा ॥ मूत्रे चतुर्गुणे सिद्धं तैलं नाडी-  
व्रणापहम् ॥ सर्वो व्रणक्रमः कार्यः शोध-  
नारोपणादिकः ॥ ३० ॥

सजीखार, सैधानिमर्क, जमालगोटा, नीलकी जड़ और नीलके फल इनका कल्क डालकर चौगुने गोमूत्रमें पकाया हुआ तेल 'स्वर्जिकाद्य तेल' कहाताहै । इस तेलसे नाडी-व्रण नष्ट होजाताहै । व्रणके प्रकरणमें शोधन और रोपणादि जो चिकित्सा कही है वह सब नाडीव्रणके ऊपर भी करनी चाहिये ॥ ३० ॥

अथ सप्तांगगुग्गुलुः ।

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजि-  
तैः ॥ अक्षप्रमाणां गुटिकां खादेदेकामत-  
न्द्रितः ॥ ३१ ॥ नाडीं दुष्टव्रणं शूलमु-  
दावर्तं भगन्दरम् ॥ गुल्मश्च गुदजान्ह-  
न्यात्पक्षिराट् पन्नगानिव ॥ ३२ ॥

गूगल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर घीमें मिश्रित करके एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे । पथ्यसे रहकर इन गोलियोंमेंसे एक गोली नित्य खाय तो नाडी-व्रण, दुष्टव्रण, शूल, उदावर्त, भगन्दर, गुल्म और सब प्रकारकी बवासीर नष्ट होजातीहै । जिस प्रकार गरुड साँपोको नष्ट कर देताहै उसी प्रकार ये गोली उपरोक्त सपूर्ण रोगोंको नष्ट करदेतीहैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

या द्विव्रणीये विहितास्तु वर्त्यस्ताः सर्व-  
नाडीषु भिषग्विदध्यात् ॥ ३३ ॥

और द्विव्रणमें जो बत्ती कही हैं उन बत्तियोंको वैद्य सर्व नाडीव्रणोंमें उपयोग करे ॥ ३३ ॥

कृशदुर्बलभीरूणां नाडीं मर्माश्रितामपि ॥  
क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदा-  
चन ॥ ३४ ॥ एषण्या गतिमन्विष्य  
क्षारसूत्रानुसारिणीम् ॥ सूचीं निदध्याद-  
त्यन्ते प्रोन्नम्याशु विनिर्हरेत् ॥ ३५ ॥  
सूत्रस्यांतं समानीय गाढं बन्धनमाच-

रेत् ॥ ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्र-  
वेशयेत् ॥ ३६ ॥ क्षाराक्तं मतिमान्वैद्यो  
यावन्न च्छिद्यते गतिः ॥ भगन्दरेष्वेष  
विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ ३७ ॥  
अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधाप-  
येत् ॥ सूचीभिर्यववक्राभिराचितं वा  
समन्ततः ॥ मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने  
चोपचरेद्व्रणम् ॥ ३८ ॥

इति नाडीव्रणरोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

कृश, दुर्बल और डरपोक इनके उत्पन्नहुए नाडी-व्रणको तथा मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए नाडीव्रणको क्षारमें भीजेहुए डोरेसे फोडे, किंतु शस्त्रसे कदापि नहीं चीरे ।

नाडीव्रणकी गतिको एषणीसे साधन करे और कहाँसे सूखा है और कहाँसे हरा है यह जानके विधिपूर्वक क्षार सूत्रसे सुई छेद देवे, राघको निकाल डाले, फिर सूत्रके अतमें गूँठ देकर बाँध देवे, क्षारके बलानुसार फिर दूसरा सूत्र उसमें प्रविष्ट करे, जबतक नाडीव्रणका मार्ग नहीं होय तब तक इसी प्रकार बराबर क्षार सूत्र प्रवेश करे । और यही विधि भगन्दर रोगमें भी करे । अर्बुदादि रोगोंमें उनको जंचा करके उनके मूलमें क्षारसे भीजा हुआ डोरा बाँधे अथवा व्रणको जौकी समान मुखवाली सुईसे चारो और छेदकर उसकी जड़में डोरा बाँधे और व्रणके छेदे जानेपर अन्य उपचार करे ॥ ३४-३८ ॥

इति नाडीव्रणाधिकारः सपूर्णः ।

अथ भगन्दराधिकारः ।

तत्र भगन्दरपूर्वरूपरूपे ।

कटीकपालनिस्तोददाहकंदूरुजादयः ॥ भ-  
वन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥  
॥ १ ॥ गुदस्य द्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः  
पीडिकाऽऽर्तिकृत् ॥ भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः  
स च पञ्चविधो भवेत् ॥ २ ॥

आर्तिकृत् पीडाकृत् । पञ्चविधः वातिकपै-  
त्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकशल्यजभेदैः ॥



अत्र भगन्दर होनेको होताहै तब कमरमे, हड्डियोंमें सुई चुमोने सरीखी पीडा, ढाह, खुजली और व्याधि पूर्वस्वरूप होतेहैं ॥

गुदाकी बाजमें दो अगुलके बीचमें पीडा करनेवाली और फटीहुई जो पिडिका ( फुसी ) उत्पन्न होय उसको भगन्दर कहतेहैं । वानज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और शल्यज इस प्रकार भगन्दर पांच प्रकारकाहै ॥१॥ २ ॥

अथ भगन्दरशब्दार्थः ।

भगं परिसमन्ताच्च गुदं वस्ति तथैव च ॥ भगवदारयेद्यस्मात्तस्मादेष भगन्दरः ॥ ३ ॥

भजन्त्यनेनेति भगो मेहनम् । भजन्त्यस्मिन्निति भगः योनिः । अत्र भगशब्देन द्वयमपि कथ्यते । भगवद्योनिवत् ॥

भोज कहताहै कि “गुदाको और मूत्राशयको चारों ओरमे योनिकी समान फोड़देताहै इस कारण यह भगन्दर कहाजाताहै” ॥ ३ ॥

अथ वातजशतपोनकभगन्दरलक्षणम् । कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडिकां करोति याम् ॥ उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भित्रारुणफेनवाहिनी ॥ तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ४ ॥

दारुणमतिकठिनम् । व्रणैरनेकैः सूक्ष्ममुखैः । शतपोनकं शतपोनकश्चालनी तत्तुल्यम् ॥

कसले पदार्थोंसे तथा सूखे पदार्थोंसे अत्यन्त कुपित हुई वायु गुदाप्रदेशमें फुसीको उत्पन्न करताहै उन फुसियोंकी उपेक्षा करनेसे वह दारुण रीतिसे पकतीहै, व्यथा करतीहै, फूटजानेपर लाल झाग बहतेहैं और उसमें मूत्र, विष्टा, तथा वीर्य निकलताहै इसमें बहुत छोटे छोटे मुखवाले अनेक व्रण होजातेहैं, उनके होनेसे चल्नीकी समान दीखे है इस कारण इसको शतपोनक कहतेहैं । संस्कृतभाषामे ‘शतपोनक’ चालनीका नाम है ॥ ४ ॥

अथ पैत्तिकोऽग्रवीर्यभगन्दरलक्षणम् ।

प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति

रक्तां पिडिकां गुदं गताम् ॥ तदाशुषोकाऽहिमपूतिवाहिनीं भगन्दरं चोष्टशिराधरं वदेत् ॥ ५ ॥

आशुपाको शीघ्रपाकाम् अहिमपूतिवाहिनीं-मुष्णदुर्गन्धवाहिनीं च ॥ तदा भगन्दरमुष्ट-शिराधरं वदेत् ॥ उष्ट्रग्रीवसंज्ञा च पिडिका-वस्थागतगलवक्रतया उष्ट्रग्रीवाकारत्वेन ॥

पित्तको कुपित करनेवाले पदार्थोंसे कोपको प्राप्त हुआ पित्त गुदाकी बाजमें लाल फुसियोंको उत्पन्न करेहै, वे फुसी तत्काल पकजातीहैं और उसमें गरम और दुर्गन्धवाली राध बहतीहै, ये फुसी उष्ट्रग्रीव कहलातीहैं । इन फुसियोंका गला ऊटकी नाडकी समान होताहै, इसीसे ये उष्ट्रग्रीव कहीजातीहैं ॥ ५ ॥

अथ श्लैष्मिकपरिस्रावि-भगन्दरलक्षणम् ।

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः ॥ श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः ॥ ६ ॥

कठिनः पिडिकावस्थायाम् । परिस्रावी निरन्तरस्रावशीलः

कफके भगन्दरकी पिडिका कठिन होय, खुजली चले उसमेंसे गाढ़ा स्रावहो, अल्पपीडा हो, श्वेतवर्ण हो और निरन्तर राध बहतीरहै, उसको कफके उत्पन्न हुआ परिस्रावी भगन्दर जानना ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजन्यशम्बूकावर्त-भगन्दरलक्षणम् ।

बहुवर्णरुजास्रावा पिडिका गोस्तनोपमा ॥ शम्बूकावर्तगतिकः शम्बूकावर्तको मतः ॥ ७ ॥

बहुवर्णरुजास्रावा बहुशब्दो वर्णादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते । गतिः स्रावमार्गः ॥

अनेक प्रकारके वर्णोंवाली, अनेक प्रकारकी पीडावाली, अनेक प्रकारकी स्राववाली, गायके स्तनकी समान फुसी उत्पन्न होतीहै और उसका स्रावमार्ग

शंखके आवर्तकी समान होताहै इस भगन्दरको त्रिदो-  
षज जानना । शंखका नाम शम्बूक है इस लिये यह-  
भगन्दर शम्बूकावर्त कहाजाताहै ॥ ७ ॥

अथ शल्यादिक्षतजन्योन्मार्गि-

भगन्दरलक्षणम् ।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्द्धते ह्युपेक्षणा-  
त्स्युः कृमयो विदार्यते ॥ प्रकुर्वते मार्गम-  
नेकधा मुखैर्व्रणैस्तमुन्मार्गिभगन्दरं वदेत् ८ ॥

क्षतात्कण्टकादिना नखेन कण्डूयनादिना  
वा अभिघातात् । गतिः स्रावः । उन्मार्गि-  
भगन्दरम् एतस्य तिर्यक्कृतमार्गैः पुरीषा-  
दिनिर्गमादुन्मार्गिसंज्ञा ॥

काटे आदिके लगजानेसे और नख आदिसे खुजा-  
नेसे गुदाकी बाजूमें फोडा होजाताहै वह बढ़ताहै और  
फूटताहै, उसकी उपेक्षा करनेसे उसमें कीड़े पडजाते-  
हैं, अनेक व्रण होजातेहैं और व्रण अनेक मुखोंसे ख्यता-  
है, यह भगन्दर उन्मार्गी कहाजाताहै । इन व्रणोंके  
तिरछे मार्गोंसे विष्टाआदि निकलतीहै इस कारण इस भग-  
न्दरको ' उन्मार्गी' कहतेहैं ॥ ८ ॥

अथ भगन्दरकष्टसाध्यासाध्यता ।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भग-  
न्दराः ॥ तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षत-  
जश्च विशेषतः ॥ ९ ॥ वातमूत्रपुरीषा-  
णि शुक्रञ्च कृमयस्तथा ॥ भगन्दरा-  
त्सर्वतस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥ १० ॥

सर्वप्रकारके भगन्दर भयंकर हैं और कष्टसाध्य हैं,  
इनमें त्रिदोषज भगन्दर और शल्यज भगन्दर असाध्य  
हैं । जो भगन्दरमेंसे वायु, मूत्र, विष्टा, वीर्य और कीड़े  
निकलते हो वह रोगी मनुष्य मरजाताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ भगन्दरचिकित्सा ।

अथास्य पिडिकामेव तथा यत्नादुपाचरे-  
त् ॥ शुद्धास्य तिसैकाद्यैर्यथा पाकं न  
गच्छति ॥ ११ ॥ वटपत्रेष्टकाशुण्ठीस-  
गुडूचीपुनर्नवाः ॥ सुपिष्टः पिडिकावस्थे  
लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ १२ ॥ पिडिका-

नामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम् ॥ कर्म  
कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥  
॥ १३ ॥ एषणीपाटनक्षारवाह्निदाहादिकं  
क्रमम् ॥ विधाय व्रणवत्कार्यं यथा-  
दोषं यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ पयःपिष्टै-  
स्तिलारिष्टमधुकैश्च सुशीतलैः ॥ भगन्दरे  
प्रशस्तोऽयं सरक्ते वेदनावति ॥ १५ ॥  
सुमना वटपत्राणि गुडूची विश्वभेषजम् ॥  
ससैन्धवस्तक्रपिष्टो लेपो हन्ति भगन्द-  
रम् ॥ १६ ॥ त्रिवृत्तिला नागदन्ती  
मज्जिष्ठा सह सर्पिषा ॥ उत्सादनं भवे-  
देतत्सैन्धवक्षौद्रसंयुतम् ॥ १७ ॥ खदि-  
राम्बुरतो भूत्वा कषायं त्रैफलं पिबेत् ॥  
महिषाक्षविडंगानां भगन्दरविनाशनम् ॥  
॥ १८ ॥ शम्बूकमांसं भुञ्जीत प्रकारै-  
र्व्यञ्जनादिभिः ॥ अजीर्णवर्जी मासेन  
मुच्यते तु भगन्दरात् ॥ १९ ॥ न्यग्रो-  
धादिर्गणो यस्तु हितः शोधनरोपणः ॥  
तैलं घृतं वातपक्वं भगन्दरविनाशनम् ॥  
॥ २० ॥ तिला ज्योतिष्मती कुष्ठं  
लांगली गिरिकर्णिका ॥ शताह्वात्रिवृता-  
दन्त्यः शोधनाश्च भगन्दरे ॥ २१ ॥  
तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रनिशे बलालोध्रम-  
गारधूमम् ॥ भगन्दरे चाप्युपदं-  
शयोश्च दुष्टव्रणे रोपणशोधनाय ॥ २२ ॥  
स्नुह्यर्कदुग्धदार्वाभिर्वर्ति कृत्वा विच-  
क्षणः ॥ भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्ताः  
प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ एषा सर्वशरीरस्थां  
नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ त्रिफलारससं-  
युक्तं विडालास्थिप्रलेपनम् ॥ २४ ॥  
भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥  
त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणाप-  
हः ॥ २५ ॥ ज्योतिष्मती लांगलकी  
श्यामा दन्ती त्रिवृत्तिलाः ॥ कुष्ठं शताह्वा

गोलोमीवर्गः शोधन इष्यते ॥ २६ ॥  
मधुतैलयुता विडंगसारत्रिफलामागधि-  
काकणाश्च लीढाः ॥ कृमिकुष्ठभगन्दरप्र-  
मेहक्षयनाडीव्रणरोपणा भवन्ति ॥ २७ ॥

भगन्दरकी फुसी उत्पन्न होतेही इसप्रकार यत्न करे कि जिससे फुसी पके नहीं । शोधन, रुधिर निकलवाना और सेचन इत्यादि उपचार करे तो फुसी पकती नहीं है ।

वडके पत्ते, ईंट, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा इनको अच्छे प्रकारसे पीसकर जहातक भगन्दरकी फुसीहो वहांतक लेप करे यह उत्तम है ।

जो भगन्दरकी फुसी न पकी होय तो लघनसे लेकर धिरेचन तक क्रिया करे, फुसीके फूटनेकी जो क्रिया है वे अब कही जातीहैं ।

एपणी नामक शल्लसे धीरे, धार लगावे, तथा दाग-देना आदिक्रिया करे । पश्चात् यथादोषानुसार तथा क्रमानुसार व्रणकी समान क्रिया करे, रुधिरवाले और वेदनावाले भगन्दरपर तिल, नीमके पत्ते और मुलैठी इनको दूधमें पीसकर अत्यंत शीतल करके लेप करे ।

चमेलीके पत्ते, वडके पत्ते, गिलोय और सोंठ तथा सैवानिमक इनको गाढी छालमें पीसकर भगन्दरके ऊपर लेप करे इससे भगन्दर नष्ट होजाताहै ।

निसोत, तिल, जमालगोटे, मजीठ, और सैवानिमक इनको पीसकर घीमें तथा सहतमें मिलाकर भगन्दरके ऊपर लेप करे तो भगन्दर अवश्य नष्ट होजाताहै ।

हरड, वहेडा, आमला, भैसिया गूगल, और वायविडग इनका काय नित्य पिये और जब तृप्ता लगे तब खैर का रस मिला जल पिथे । इससे भगन्दर अवश्य नष्ट होजाताहै ।

शाक तथा भोजनके पदार्थोंमें शल्लके जीवोंका सांस स्वाय और अजीर्ण न होने देवे, तो भगन्दर एक महीनेके भीतर अवश्य नष्ट होजाता है ।

न्यग्रोधादि गण जो कि शोधन ( व्रणको साफ करनेवाला ) और रोपण ( व्रणको भरनेवाला ) है उसके कल्कसे पकाया हुआ तेल या घी भगन्दरका नाश करताहै ।

तिल, मालकांगुनी, कूट, कलिहारी, कोइली, सोया, निसोत, और जमालगोटा इनके कायसे भगन्दर शुद्ध होजाताहै ।

तिल, हरड, दुगुना लोध, नीमके पत्ते, हल्दी, दाहलदी, खिरैटी और घरका बुआसा यह भगन्दर, उपदशके व्रण तथा दुष्टव्रणको भी शुद्धकरे और भरदेवे है ।

भगन्दरको शुद्ध करके विचक्षण वैद्य थूहरका दूध, आकका दूध और दाहलदी इनको पीसकर यत्नपूर्वक भरदेवे । यह प्रयोग सम्पूर्ण शरीरमें स्थित नाडीव्रणको भी नष्ट करदेताहै यह निश्चय है ।

विलावकी हड्डीको हरड, वहेडे और आमलोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे भगन्दर और दुष्टव्रण तत्काल नष्ट होजाता है । निसोत, तेजवल और जमालगोटा इनके कल्कसे भगन्दर तथा नाडीव्रण नष्ट होजाता है ।

मालकांगुनी, कलिहारी, निसोत, जमालगोटे, सुफेद-निसोत, तिल, कूट, सोया और वच यह वर्ग भगन्दर आदिके व्रणोंको शुद्ध करनेवाला है ।

वायविडग, खैरसार, हरड, वहेडा, आमला और दो भाग पीपल, इनका चूर्ण करके सहतमें तथा तेलमें मिला कर चाटे तो कृमि, कोढ़, प्रमेह तथा क्षय नष्ट होजाताहै और भगन्दर तथा नाडीव्रण भरजाताहै ॥ २१-२७ ॥

### अथ निष्यन्दनतैलम् ।

चित्रकाकौं त्रिवृत्पाठे मलयूहयमारकौ ॥  
सुधां वचां लाङ्गलकौं हरितालं सुवर्चि-  
काम् ॥ २८ ॥ ज्योतिष्मतीश्च  
संहृत्य तैलं धीमान्विपाचयेत् ॥ एत-  
न्निष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ॥  
शोधनं रोपणञ्चैव सर्वर्णकरणं तथा ॥ २९ ॥

चीता, आक, निसोत, पाद, कटूमर, सुफेद कनेर, थूहर, वच, कलिहारी, हरिताल, सजी और मालकांगुनी इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल 'निष्यन्दतैल' कहलाताहै । यह तेल—भगन्दरको साफ करताहै, व्रणको भरताहै और उस स्थानको शरीरके वर्णकी समान करताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

### अथ निशाद्यतैलम् ।

निशार्कक्षीरसिन्धूत्थपुराश्चहरवत्सकैः ॥

सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं भगन्दरहरं प-  
रम् ॥ ३० ॥

हलदी, आकका दूध, सैधानमक, गूगल, कनेर और  
इन्द्रजौ इनके कल्कसे पकाये हुए तेलकी मालिस की जाय  
तो भगन्दर अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ३० ॥

अथ करवीरादितैलम् ।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाम्निभिः ॥  
मातुलुङ्गकवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ ३१ ॥

कनेर, हलदी, जमालगोटा, कलिहारी, सैधानमक,  
चीता, विजोरानीबू और इन्द्रजौ इनके कल्कसे पकाया  
हुआ तेल लगानेसे भगन्दर नष्ट होताहै ॥ ३१ ॥

अथ नवकार्षिकगुग्गुलुः ।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता ॥  
गुटिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां  
हिता ॥ ३२ ॥

त्रिफला ३ तोले, गूगल ५ तोले और पीपल १  
तोला इनकी बनाई हुई गोलियोंको भक्षण करे तो  
भगन्दर नष्ट होजाताहै, सृजन, गुल्म और बवासीर को  
दूर करेहै ॥ ३२ ॥

अथ भगन्दरशस्त्रक्रियाकर्तव्यता ।

नाड्यन्तरे व्रणान्कुर्याद्विष्वैशतपो-  
नके ॥ ततस्तेष्ववरुद्धेषु शेषा नाडीरुपा-  
चरेत् ॥ ३३ ॥ व्याधौ तत्र बहुच्छिदे  
भिषजा तु विजानता ॥ अर्द्धलांगलक-  
च्छेदः कार्यो लांगलकोऽपि वा ॥ ३४ ॥  
सर्वतोभद्रको वापि कार्यो गोतीर्थकोऽपि  
वा ॥ द्वाभ्यां समाभ्यां पार्श्वभ्यां छेदो  
लांगलको मतः ॥ ३५ ॥ ह्रस्वमेकतरं यत्तु  
सोऽर्द्धलांगलकः स्मृतः ॥ सेवनीं वर्जयित्वा  
तु चतुर्धा दारिते गुदे ॥ ३६ ॥ सर्वतोभद्रकं  
छेदमाहुश्छेदविदो जनाः ॥ पार्श्वदागतश-  
स्त्रेण छेदो गोतीर्थको मतः ॥ ३७ ॥ सर्वा-  
नास्त्रावमार्गास्तु दहेद्द्वैद्यस्तथाभिना ॥ अथो-  
ष्ण्ण्री वमेषिण्या छित्वा क्षारं निपातयेत् ३८  
पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निरत्र प्रपूजितः ॥

उत्कृत्यास्त्रावमार्गान्तु परिस्त्राविणि बुद्धि-  
मान् ॥ ३९ ॥ क्षारेणास्त्रावितगतिं  
दहेद्दुतवहेन वा । गतिमन्विष्य शस्त्रेण  
छित्वात्खर्जूरपत्रकम् ॥ ४० ॥ चन्द्रार्द्धं  
चन्द्रवर्गश्च सूचीमुखमवाङ्मुखम् ॥  
छित्त्वाभिना दहेत्सम्यगेवं क्षारेण वा  
पुनः ॥ ४१ ॥ येषां तु शस्त्रपतनाद्वेदना-  
प्यतिजायते ॥ तत्राशु तैलेनोष्णेन परिषेकः  
प्रशस्यते ॥ ४२ ॥ आगन्तुजे भिषङ्-  
नाडीं शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः ॥ जम्बूवोष्ठे-  
नाभिवर्णेन तप्तया वा शलाकया ॥ दहेद्य-  
थोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुसमाहितः ॥ ४३ ॥

शतपोनक नामक भगन्दरमें उसकी नालीके भीतर  
शस्त्रसे चीरकर घाव करदेवे और जब वह व्रण सूखकर  
भरजाय तब दूसरी नालियोंका उपचार करे ।

बहुत छिद्रोवाले इस शतपोनक नामक भगन्दरमें वैद्य  
विचारकर अर्द्धलांगलक, लांगलक, सर्वतोभद्रक अथवा  
गोतीर्थक नामक छेदकरे । जिस छेदके दोनों पार्श्व  
( बाजू ) समान रखेजायें उसको लांगलक कहतेहैं ।  
जिस छेदमें एक पार्श्व छोटा रक्खाजाय उसको अर्द्धलांग-  
लक कहतेहैं । सीवनको छोड़कर चारोंओरसे गुदाको  
चीराजाय उस छिद्रको सर्वतोभद्र कहतेहैं । पार्श्वमें शस्त्र  
डालकर जो छिद्र कियाजाय तो उसको गोतीर्थक  
कहतेहैं ।

इस प्रकार वैद्य छेद करके शतपोनकके सम्पूर्ण  
स्त्रावके मार्गोंको अग्निसे दागदेवे, उष्ण्ण्रीवकनामक भगन्दर  
हुआ होय तो राधकी गतिको शोधकर शस्त्रसे चीरकर  
क्षार डाले, सड़े हुए दुर्गन्धित मांसको निकालनेके लिये  
अग्निसे दागदेवे यह उत्तम विधि है ॥ परिस्त्रावी नामक  
भगन्दर हुआ होय तो बुद्धिमान् वैद्य स्त्रावके मार्गको  
चीरकर धारसे अथवा अग्निसे स्त्रावकी गतिको  
दहन करे ॥

शम्बूकावर्त नामक भगन्दरमें स्त्रावके मार्गको शोधन  
करके शस्त्रसे खर्जूरपत्रक, चन्द्रार्द्ध, चन्द्रचक्र, सूचीमुख  
और अवाङ्मुख नामक छेद करके पश्चात् अग्निसे  
अथवा क्षारसे अच्छे प्रकारसे दहन करे ।  
( खर्जूरपत्रक आदि छिद्रोंके लक्षण सुश्रुतादि ग्रंथोंमें  
देखलेने चाहिये ) ।

शस्त्रसे चीरनेसे व्यथा होय तो तत्काल वैद्य गरम तेलसे सेचन करे, ये हितकारी हैं ॥

शल्यसम्बन्धी भगन्दर होय तो बुद्धिमान् वैद्य यत्नपूर्वक उसकी नलीको शस्त्रसे चीरे, तपाये हुए अग्निके वर्णकी समान जम्बूवोष्ठ नामक पत्थरसे अथवा तपाई हुई सलाईसे ग्रास्त्रानुसार दाग देवे ॥ ३३-४३ ॥

अथ व्रणिपथ्यापथ्यम् ।

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरुणि च ॥ संवत्सरं परिहरेदुपरुद्धव्रणो नरः ॥ ४४ ॥

इति भगन्दरनिदानचिकित्साधिकारः ।

जो भगन्दरका व्रण भरकर सूखभी गयाहो तोभी यह मनुष्य एक वर्षतक दड कसरत, मैथुन, युद्ध, घोटे हाथी आदिपर बैठना और भारी अन्नपानका भोजन सब त्याग देवे ॥ ४४ ॥

इति भगन्दराधिकारः सपूर्णः ।

अथ उपदंशाधिकारः ।

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनादत्युपसेवनाद्वा ॥ योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिथे पञ्चोपदंशा विविधापचारैः ॥ १ ॥

हाथकी चोट लगनेसे, नख अथवा दातसे वाच होजानेसे, मैथुन करके लिंगको नही घोनेसे, पशु आदिके साथ प्रसंग करनेसे, रोगसे और तीक्ष्ण केश युक्त दुष्ट योनिवाली नियोंके साथ प्रसंग करनेसे, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज इस प्रकार लिंगमें पाच प्रकारके उपदंश होतेहैं ॥ १ ॥

अथ पञ्चोपदंशानां पृथक्त्वेन लक्षणानि ।

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ॥ पीतैर्वहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तैः पिशितावभासैः ॥ २ ॥ सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्वर्धनैः स्रावयुतैः कफेन ॥ नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलौपदंशम् ॥ ३ ॥

जो उपदंशका व्रण सुई चुभोनेमरीखी वेदनावाला हो, शस्त्रभेदन मरीखी पीड़ावाला हो, स्फुरणयुक्त और कलौंस लिये हो उसको वातजन्य उपदंश जानना ॥

जो फुसी वा चट पीली, बहुत क्लेदयुक्त, दाहयुक्त, लालीलिये और देखनेमें मासकी समान हो उसको पित्तसम्बन्धी जानना ॥

जो व्रण वा चट खजलीयुक्त, सूजनयुक्त, बड़ा सफेद, घन और स्रावयुक्त होय उसको कफजन्य उपदंश जानना ॥

जो फोडा अनेक प्रकारके स्रावयुक्त और अनेक प्रकारकी पीड़ायुक्त होय उसको त्रिदोषजन्य जानना, ये उपदंश असाध्य हैं ॥

जो फोडा काला होय, रुधिर बहुत निकलताहो, पित्तके लक्षणोंयुक्त हो और ज्वर, दाह तथा शोषयुक्त होय तो उसको रुधिरसम्बन्धी उपदंश जानना । यह उपदंश किसी समय वाप्य होजाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथोपदंशासाध्यता ।

प्रशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जनीयम् ॥

जिस उपदंशका मांस गलगया हो कीड़े पडगये हों अथवा उसके मांसको कीड़ोंने खालिया हो और केवल अडकोपही अवशेष रहगये हों उस उपदंश की चिकित्सा नही करनी चाहिये ।

अथोपदंशोपेक्षाफलम् ।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ॥ कालेन शोथक्रिमिदाहपाकैः प्रशीर्णशिथो म्रियते स तेन ॥ ४ ॥

विषयमें आमक्त जो मूर्ख पुरुष उपदंशके उत्पन्न होतेही उसकी चिकित्सा नहीं करताहै उस मनुष्यका कुछ कालमें नुजन, कृमि, दाह और पकनेसे लिंग गलसडकर गिरपडताहै ॥ ४ ॥

अथोपदंशचिकित्सा ।

उपदंशेषु साध्येषु स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥ मेहमध्ये शिरां विध्येत्पातयेद्वा जलौकसः ॥ ५ ॥ हरेदुभयतश्चापि दोषानत्यर्थमूर्च्छितान् ॥ सद्यो निर्हृतदोषस्य



रुक्शोथादुपशाम्यतः ॥ ६ ॥ यदि वा  
 दुर्बलो जन्तुर्न वा प्रातर्विरेचनः ॥  
 निरुहेण हरेत्तस्य दोषानत्यर्थमूर्छितान् ॥  
 पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि  
 सः ॥ ७ ॥ प्रपौण्डरीकयष्ट्याद्वसरला-  
 गुरुदारुभिः ॥ सरास्ताकुष्ठपृथ्वीकैर्वा-  
 तिके लेपसेचने ॥ ८ ॥ निचुलैरण्डवी-  
 जानि यवगोधूमसक्तवः ॥ एतैश्च वातजं  
 स्निग्धैः सुखोष्णैः संप्रलेपयेत् ॥ ९ ॥  
 गैरिकाश्चनमज्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ॥  
 सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं संप्रले-  
 पयेत् ॥ १० ॥ पद्मोत्पलमृणालैश्च  
 ससर्जार्जुनवेतसैः ॥ सर्पिःस्निग्धैः सम-  
 धुकैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ ११ ॥ सेच-  
 येच्च घृतक्षीरशर्करैश्चमधूदकैः ॥ अथवापि  
 सुशीतेन कषायेण वटादिना ॥ १२ ॥  
 शालाजकर्णाश्वकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थि-  
 तम् ॥ सुरापिष्टाभिरुष्णाभिः सतैलाभिः  
 प्रलेपयेत् ॥ १३ ॥

अजकर्णः शालभेदः । अश्वकर्णो गजहडः ॥  
 आरग्वधादिकाथेन परिषेकश्च दापयेत्  
 ॥ १४ ॥ निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशाल-  
 जम्बूवटोदुम्बरवेतसैश्च ॥ प्रक्षालनालेप-  
 कृतानि कुर्याच्चूर्णं सपित्तास्रभवोपदंशे  
 ॥ १५ ॥ त्वचो दारुहरिद्रायाः शंख-  
 नाभिरसाञ्जनम् ॥ लाक्षागोमयनिर्या-  
 सैस्तैलं क्षौद्रं घृतं पयः ॥ १६ ॥  
 एभिस्तु पिष्टैस्तुल्यांशैरुपदंशं प्रलेपयेत् ॥  
 व्रणाश्च तेन शाम्यन्ति श्वयथुर्दाह एव  
 च ॥ १७ ॥ उपदंशद्वये शेषे प्रत्याख्या-  
 याचरेत्क्रियाम् ॥ एतेषामेव या योग्या  
 वीक्ष्य दोषबलावलम् ॥ १८ ॥ शस्त्रेणो-  
 ल्लेखयेत्कापि पाकमागतमाशु वै ॥ तम-  
 पोह्य तिलैः सर्पिःक्षौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत्  
 ॥ १९ ॥ वटप्ररोहार्जुनजम्बुपथ्या लोध्रं

हरिद्रा च हिताः प्रलेपे ॥ तथोपदंशेष्व-  
 वरोहणार्थं चूर्णश्च कार्यं विमलाञ्जनेन  
 ॥ २० ॥ त्रिफलायाः कषायेण भृंगरा-  
 जरसेन वा । व्रणप्रक्षालनं कार्यं-  
 सुपदंशप्रशान्तये ॥ २१ ॥ जयाजपा-  
 श्वमारार्कशम्पाकानां दलैः क्रमात् ॥  
 कृतं प्रक्षालनं काथं मेढूपाके प्रयोज-  
 येत् ॥ २२ ॥ शम्पाकनिम्बान्निफलाकि-  
 रातकाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ॥  
 सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदं-  
 शापहरः प्रयोगः ॥ २३ ॥ नीलोत्प-  
 लानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च ॥  
 उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽयं प्रशस्यते  
 ॥ २४ ॥ बन्धूकदलचूर्णेन दाडिमत्वग्र-  
 जोऽथवा ॥ गुण्डनं वृषणे शस्तं लेपः  
 पूगफलेन वा ॥ २५ ॥ सौराष्ट्री  
 गैरिकं तुथं पुष्पकासीससैन्धवम् ॥  
 लोध्रं रसाञ्जनश्चापि हरितालं मनः-  
 शिला ॥ २६ ॥ हरेणुकैलेऽपि तथा समं  
 संहृत्य चूर्णयेत् ॥ तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुप-  
 दंशेषु पूजितम् ॥ २७ ॥ पुटदग्धं कृतं  
 भस्म हरितालं मनःशिला ॥ उपदंश-  
 विसर्पाणामेतद्धानिकरं परम् ॥ २८ ॥  
 दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मर्सी मधुसैन्ध-  
 वम् ॥ उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति  
 व्रणम् ॥ २९ ॥ तिरीटाञ्जनवज्राक्षको-  
 विरारेभकेसरैः ॥ लेपनं पुरुषव्याधौ  
 जलपिष्टैः प्रशस्यते ॥ ३० ॥ रसाञ्जनं  
 शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् ॥  
 सक्षौद्रं लेपनं योज्यं सर्वांगजगदापहम्  
 ॥ ३१ ॥ आर्गीसम्भवशिखरिजमूलं  
 भद्रश्रियः सुसम्पिष्टम् । मनःशिला  
 च मधुना शमयत्युपदंशमचिरेण ॥ ३२ ॥  
 शतधौतं प्रयत्नेन लिंगोत्थमवचूर्णयेत् ॥  
 रोगं कासीसचूर्णेन पुरुषः सुखमाप्नु-

यात् ॥ ३३ ॥ करवीरस्य मूलेन परि-  
पिष्टेन वारिणा । असाध्यापि व्रजत्यस्तं  
लिङ्गेत्या रुक्प्रलेपनात् ॥ ३४ ॥

उपदंश जो साव्य होय तो उस पुरुषको स्नेहन तथा स्वेदन करके उसके लिङ्गके मध्यमे जो महीन नस है उस को बीघे अथवा उपदंशके ऊपर जोक लगावे ।

वमन तथा विरेचन देकर उस पुरुषके अत्यंत बड़े हुए दोषोंको हरणकरे, तत्कालही दोषोंका हरण किया जाय तो व्यथा तथा सूजन शांत होजातीहै ।

जो उपदंशरोगी अत्यंत निर्बल हो अथवा विरेचनयोग्य न होय तो उसके अत्यंत व्याप्त हुए दोषोंको निरुध्-  
वस्ति लगाकर हरण करे ।

जिसप्रकार होसके उसप्रकार उपदंशको पकने नहीं देवे, क्योंकि पकजानेसे लिङ्गका क्षय होजाताहै ।

जो वायुसंघर्षी उपदंश होय तो प्रपौण्डरीक, ( पुंडेरिया गंधद्रव्य ) मुलैठी, देवदारु, अगर, दारुहलदी, रायसन, कूठ और इलायची इनके कल्कका लेपकरे और इनहीके रससे सेचन करे ।

नीम, अड़के बीज और जौ तथा गेहूँके सत्त, इनको पीसकर घीसे स्निग्ध करके कुछेक गरम करके लेप किया जाय तो वातजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै ।

गेरु, रसौत, मजीठ, मुलैठी, खस, पद्माख, चंदन और उत्पल इनके कल्कका लेप कियाजाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै ।

सफेद कमल, लाल कमल, कमलकी नाल, सालकी छाल, अर्जुनकी छाल, वेत और मुलैठी इनको घीसे स्निग्ध करके लेप कियाजाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै ।

बी, दूध, मिश्री, ईख, सहत और जल इनसे सेचन कियाजाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै । न्यग्रो-  
धादिगणका काथ बनाकर अच्छे प्रकारसे शतिल करके उससे सेचन करनेसे पित्तजन्य उपदंश नष्ट होताहै ।

सालकी छाल, अजकर्ण नामक सालकी छाल, अश्वकर्ण नामक सालकी छाल, और वचकी छाल इनको मदिरामें पीसकर गरम करके तेल डालकर लेप कियाजाय तो कफसंघर्षी उपदंश नष्ट होजाता है ।

आरग्वधादि गणकी औषधियोंका काथ बनाकर उससे सेचन कियाजाय तो कफसंघर्षी उपदंश नष्ट हो-  
ता है ।

नीम, अर्जुन, पीपल वृक्ष, कदम्ब, साल, जामुन, बड़, गूलर और वेत इनकी छालके काथसे घोंनेसे और इनही-  
के कल्कसे लेप कियाजाय तो पित्तजन्य और रुधिरजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै ॥

दारुहलदीकी छाल, शखकी नाभि, रसौत, लाख, गोंद, तेल, घी और दूध इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर उपदंशके ऊपर लेप करनेसे व्रण, सूजन और दाह शांत होजाताहै ।

त्रिदोषज और रुधिरजन्य उपदंश होय तो उसको असाव्य होनेके कारण प्रथमहीसे उसकी चिकित्सा न करने लगे अगर रोगीकी आग्रह होय तो दोषोंका बलाघल विचार जो उसमें घटैसो चिकित्सा करे । जो उपदंश पक-  
गया होय तो समयपर तत्काल शल्यसे उसका उल्लेखन ( भेदन ) करे और इसप्रकार उसको चीरकर घीमें तथ सहतमें पिसेहुए तिलोंका लेपकरे ।

बड़के अकुर, अर्जुनकी छाल, जामुनकी छाल, हरड, लोध और हलदी इनका प्रलेप करनेसे और भरनेके लिये विमला ( सोनामाखी ) अथवा रसौतका चूर्ण भरनेसे उप-  
दंश नष्ट होजाताहै ।

हरड, बहेडा, और आमले इनके काथसे अथवा भाग-  
रेके रससे व्रणोंको घोंनेसे उपदंश शांत होजाताहै ।

अरणीके पत्ते, ओडहुलके पत्ते, कनेरके पत्ते, आकके पत्ते और असलतासके पत्ते इनके, काथसे अनुक्रमसे घोंके तो लिङ्गका दूर होजाताहै ।

अमलतास, नीम, हरड, बहेडा, आमला और चिरायता इनका काथ बनाकर उसने खैरसार तथा विजयसार अथवा गूगल, डालकर अथवा हरड, बहेडा, तथा आमले डालकर पान करनेसे, सर्व प्रकारके उपदंश नष्ट होजातेहैं ।

नीले कमल, रात्रिमें खिलनेवाले कमल, सफेद कमल, और लालकमल इनका चूर्ण करके पीसकर गाढा लेप कर-  
नेसे उपदंश नष्ट होताहै ।

हुपहरियाके पत्तोंका चूर्ण अथवा अनारकी छालका चूर्ण वृणके ऊपर अच्छे प्रकारसे लगावे तो अथवा

सुपारीका कल्क बनाकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट हो-  
जाता है ।

फटकिरी, पीला गेरू, नीलाथोथा, हीराकसीस, सैंधा-  
निमक, लोध, रसोत हरिताल, मैन्शिल, रेणुका और इला-  
यची इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके सहतमें  
मिलाकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट होजाता है ।

पुटपाकविधिसे हरिताल और मैन्शिल इनकी भस्म  
करके इनका लेप करनेसे उपदंश और विसर्प नष्ट हो-  
जाता है ।

हरड, बहेडा और आमले इनकी कढाईमें भस्म  
करके उस भस्मको सहत और सैंधेनिमकमें मिलाकर  
उपदंशके ऊपर लेप करनेसे त्रण तत्काल भरकर सूख  
जाता है ।

लोध, रसोत, तगर, कचनार, और नागकेसर  
इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट हो-  
जाता है ।

रसोत और सिरसकी छाल अथवा रसोत और हरड  
इनका चूर्ण सहतमें मिलाकर लेप करनेसे संपूर्ण अंगोंमें  
प्राप्त हुआ उपदंश नष्ट होजाता है ।

भारंगीकी जड़, चिरचिटेकी जड़, और चन्दन इनको  
अच्छे प्रकारसे पीसकर लेप करनेसे उपदंश तत्काल नष्ट  
होजाता है ।

मैन्शिलको सहतमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश  
तत्काल नष्ट होजाता है ।

उपदंशके घावको सौवार यत्नपूर्वक धोकर उसके  
ऊपर हीराकसीका चूर्ण बुरकानेसे उपदंशकी पीड़ा दूर  
होकर उपदंश नष्ट होजाता है ।

कनेरकी जड़को जलमें पीसकर उसका लेप कर-  
नेसे लिगकी पीड़ा और असाध्य उपदंशभी नष्ट होजा-  
ता है ॥ ५-३४ ॥

### अथ वरादिगुग्गुलुः ।

वरानिम्बार्जुनाश्वत्थखदिरासनवासकैः ॥  
चूर्णितैर्गुग्गुलुसमैर्वटका अक्षसंमिताः  
॥ ३५ ॥ कर्तव्या नाशयन्त्याशु सर्वाल्लि-  
गसमुत्थितान् ॥ उपदंशानसृग्दोषांस्तथा  
दुष्टव्रणानपि ॥ ३६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, नीम, अर्जुन, पीपलवृक्ष, खैर,  
विजयसार और अहसा इन सबका बारीक चूर्ण करके

और सब चूर्णकी बराबर गुग्गुलु मिलाकर एक एक तोले-  
भरकी गोलियाँ बना लेवे ये गोली लिगमें उत्पन्न हुए सर्व-  
प्रकारके उपदंशको, रुधिरके विकारोंको और दुष्टे त्रणों-  
को भी नष्टकर है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

### अथ करंजाद्यधृतम् ।

करञ्जनिम्बासनशालजम्बूवटादिभिः क-  
ल्ककषायसिद्धम् ॥ सर्पिर्निहन्यादुपदंश-  
दोषं सदाहपाककुतिरागयुक्तम् ॥ ३७ ॥

करंज, नीम, विजयसार, शाल, जामुन और वटादि-  
वर्गकी समस्त औषधि इन सब औषधियोंके काथमें इन-  
हीके कल्कसे पकायाहुआ घी दाह, पाक, खाव और  
लालीयुक्त उपदंशको भी नष्ट करे है ॥ ३७ ॥

### अथ भूनिम्बाद्यधृतम् ।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जधान्नीख-  
दिरासनानाम् ॥ सतोयकल्कैर्धृतमाशु पक्वं  
सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ ३८ ॥

चिरायता, नीम, हरड, बहेडा, आमला, परवल,  
करंज, आमले, खैर और विजयसार इनके काथ और  
कल्कसे धृतको पकावे । यह धृत तत्काल सर्वप्रकारके  
उपदंशको नष्ट करे है ॥ ३८ ॥

### अथातिदेशः ।

धृतानि यानि वक्ष्यामि कुष्ठे नाडीव्रणै-  
व्रणे ॥ उपदंशे प्रयोज्यानि सेकाभ्यञ्जन-  
भोजनैः ॥ ३९ ॥

कोठपर, नाडीव्रणपर और त्रणके ऊपर जो जो घी  
कहेगे वे सब धृत उपदंश रोगमें भी सेचन, अभ्यंग  
तथा भोजनमें व्यवहार करने चाहिये, इससे अवश्य उप-  
दंश नष्ट होजाता है ॥ ३९ ॥

### अथागारधूमाद्यतैलम् ।

अगारधूमो रजनी सुराकिट्टं च तैस्त्रि-  
भिः ॥ यथोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजा-  
पहम् ॥ शोधनं रोपणं चैव ह्युपदंशहरं  
परम् ॥ ४० ॥

घरका धुआंसा १ भाग, हलदी दो भाग और सुरा-  
किट्ट ( एक प्रकारकी कौजी ) तीन भाग लेवे, इन सबसे  
तेलको पकावे । यह तेल—खुजली, सूजनकी पीड़ा और

अच्छे प्रकार उपदंशको नष्ट करे हैं । इस तेलसे व्रण शुद्ध होजाताहै और भरकर सूखजाताहै ॥ ४० ॥

अथ गोजिह्वातैलम् ।

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयु-  
तम् ॥ एतत्सर्वोपदंशेषु तैलं रोपणमि-  
ष्यते ॥ ४१ ॥

गोजिह्वा ( गोभी ), वायविडग, मुलैठी और चदना-  
दिक समस्त सुगन्धित पदार्थ इनसे पकाया हुआ तेल  
सर्व प्रकारके उपदंशको भरदेताहै ॥ ४१ ॥

अथ जम्बूवाद्यतैलम् ।

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च ॥  
नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पत्रोत्पलानि  
च ॥ ४२ ॥ एला चातिविषाम्रास्थि  
मधुकश्च प्रियङ्गवः ॥ लाक्षा कालीयकं  
लोध्रं चन्दनं त्रिवृताह्वया ॥ ४३ ॥ एता-  
न्येकीकृतान्येव वस्तुमूत्रेण पेषयेत् ॥ अक्ष-  
मात्रैरिमैर्द्रव्यैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४४ ॥  
सर्वव्रणहरं तैलमेतत्सिद्धं विपाचयेत् ॥  
उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्ति-  
तम् ॥ ४५ ॥

जामुनके पत्ते, धेतके पत्ते, आमलोंके पत्ते, करजके  
पत्ते, सफेद कमल, लाल कमल, इलायची, अतीस,  
आमकी गुठली, मुलैठी, फूलप्रियंगु, लाख, कलम्बक,  
लोव, सफेद चन्दन और निसोत इन प्रत्येक औषधियोंको  
एक एक तोलाभर लेकर सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें  
पोंसकर चौसठ तोलाभर तेलमें पकावे । यह तेल सर्वप्रकारके  
व्रणोंको तथा उपदंशको नष्ट करे हैं ऐसा मुनियोंने  
कहाहै ॥ ४२-४५ ॥

अथ कौशातकीतैलम् ।

यरय लिङ्गस्य मांसं तु शीर्यते मुष्कशे-  
पतः ॥ तित्तकौशातकीलम्बाजीजं नाग-  
रसाधितम् ॥ तैलं हन्त्यविशेषेण व्रणं  
दुष्टमनेकधा ॥ ४६ ॥

कडवी तारेईके बीज, कडवी तोम्ब्रीके बीज और  
खोंट इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अनेक प्रका-  
रके दुष्ट व्रणोंको अच्छे प्रकारसे नष्ट करदेताहै । जो  
लिंगका मांस गल गया हो केवल अण्डकोषही बाकी रह-

गया हो तो भी वह उपदंश इस तेलसे शांत होजाता-  
है ॥ ४६ ॥

अथोपदंशे पथ्यम् ।

सेवेन्नित्यं यवान्नश्च पानीयं कौपमेव च ॥  
अर्शसां च्छिन्नदग्धानां क्रियां चात्र प्रयो-  
जयेत् ॥ ४७ ॥

इत्युपदंशनिदानचिकित्साविकारः ।

उपदंशरोगी नित्य जाँका भोजन और कुएँका जल  
सेवन करे । तथा बवासीर और छिन्न तथा दग्धव्रणमें जो  
चिकित्सा कही है वह सब प्रयोग करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

इति उपदंशाविकारः संपूर्णः ।

अथ लिंगार्शोऽधिकारः ।

तत्र लिंगार्शलक्षणम् ।

अंकुरैरिव संजातैरुपर्युपरि संस्थितैः ॥  
क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा  
॥ १ ॥ कोशस्याभ्यन्तरे सन्धौ पर्वस-  
न्धिगतापि वा ॥ लिंगवर्तिरिति ख्याता  
लिंगार्श इति चापरे ॥ सवेदना पिच्छिला  
च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥ २ ॥

धान्यके अंकुरकी समान एक दूसरेके ऊपर बारीक  
नारीक अनुक्रमसे बट बट कर लिंगमें, सन्धियोंमें अथवा  
लिंगकी सुपारीके नीचे, मुरगेकी कलगीकी समान जो  
उत्पन्न होती है उसको लिंगवर्ति कहते हैं । कितने एक  
वैद्य इस लिंगवर्तिको लिंगार्शभी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ लिंगार्शचिकित्सा ।

क्षारेण प्रदहेच्छित्त्वा लिङ्गवर्तिमशेषतः ॥  
व्रणवच्चाचरेत्सम्यग्लेपचूर्णैरुपद्रवान् ॥  
॥ ३ ॥ स्वर्जिका तुत्यशैलेयमंजनं  
सरसांजनम् ॥ मनःशिलाले च समं चर्णं  
मांसांकुरापहम् ॥ ४ ॥ हरति घृतकु-  
मारीपत्रमावेष्टनेन ग्रथनविधिविशेषां  
शर्मकीलांस्तृतीये ॥ अहनि गुरुतरान-  
प्यंगलब्धप्रतिष्ठान्विधिरिव विपरीतः पौरु-

षस्य प्रकारान् ॥ ५॥ शुभे तु चारटीमूलं  
वृषमूत्रेण पेषयेत् ॥ चर्मकीलान्निहन्त्याशु  
लेपो लिंगसमुद्भवान् ॥ ६ ॥

इति लिगाशोधिकारः ।

इस लिगके अर्शको अच्छे प्रकारसे शस्त्रसे काटकर  
क्षारसे दग्ध करे । और व्रणकी समान ही लेप चूर्ण  
आदि उपचार अच्छे प्रकारसे करे ।

सजी, नीलाथो ग, शिलाजीत, रसौत, अजन(सुरमा),  
मैनशिल और हरिताल इन सबको समान भाग लेकर  
बनाया हुआ चूर्ण लिगार्शको नष्ट करदेताहै ।

जिस प्रकार विपरीत हुआ दैव पुरुषार्थको प्रबलरीतिसे  
नष्ट करदेताहै उसी प्रकार बौधा हुआ धीकारका पत्ता  
अत्यत प्रबल, अगमे जमाहुआ और एक जातिका  
गांठकी समान चर्मकील ( लिगार्श ) को भी तीन दिनमें  
नष्ट करेहै ॥

शुभ दिनमे कटेरीकी जड़को लेकर बैलके मूत्रमे  
पीसकर लेप करनेसे लिगार्श तत्काल नष्ट होजाता-  
है ॥ ३-६ ॥

इति लिगाशोधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ शूकदोषाधिकारः ।

तत्र शूकदोषनिदानम् ।

अक्रमाच्छेफसो - वृद्धिं योऽभिवाञ्छति  
मूढधीः ॥ व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ  
च शूकजाः ॥ १ ॥

अक्रमादनुचितवृद्धिक्रमात् । अनुचिता  
च वृद्धिः भूरिविकारजनकस्य योगेन ।  
शूकजाः शूको जलशूकः सविषो जलज-  
न्तुविशेषः स तु जलमलोद्भवः अल्पदु-  
ण्डुभ इत्यादिकः । तथा शूकप्रधानो लिंग-  
वृद्धिकरो वात्स्यायनाद्युक्तो योगः शूक  
उच्यते यथा-

भल्लातकास्थिजलशूकमथाब्जपत्रमन्त-  
विंदाह्य मतिमान्सह सैन्धवेन ॥ एत-

द्विरूढवृहतोफलतोयपिष्टमालेपितं म-  
हिषविड्मलीकृतंऽग्रे ॥ २ ॥ स्थलं  
महद्वरतुरंगमलिंगतुल्यं शेफः करोत्याभि-  
मतं न हि संशयोऽत्र ॥ ३ ॥

यत्तु जलशूकरहितमश्वगन्धादितैलं तदु-  
चितमेव लिंगवद्धनम् ॥

जो मूर्ख मनुष्य अयोग्य उपायसे लिगको बढ़ानेका यत्न  
करतेहैं उनके शूकदोषसे उत्पन्न हुई अठारह प्रकारकी  
व्याधि उत्पन्न होतीह ॥

जिसमें इस शूक नामक कीड़ेकी भस्मका मुख्य उपयोग  
है ऐसा वात्स्यायन आदि आचार्योंके कहे हुए लिंगको  
बढ़ानेवाले जो उपाय हैं, उनमें शूकके मुख्य होनेसे शूक  
कहेजातेहैं । वात्स्यायन ऋषिने कहा है कि “भिलावे  
की गुठली, शूकनामकजलका कीड़ा और कमलके पत्ते  
इनको वर्तनके भीतर जलाकर भस्मकर लेवे उस  
भस्मको सेंधे निमकमें मिलाकर बड़ीकटेरीके फलके  
रसमें मिलाकर पीस लेवे, फिर लिगको भैसके गोबरसे  
धोकर उसके ऊपर इस भस्मका लेप करे तो लिग  
मन माना और उत्तम घोड़ेकी लिगकी समान होजाताहै  
इसमे संशय नहीं” इत्यादि ।

इससे अत्यन्त हानि होतीहै, परन्तु जिसमे कीड़ेभ-  
स्मका उपयोग नहीं होता ऐसा लिंग बढ़ानेवाले ‘अश्वग-  
न्धादि तैल’ के जो उपाय कहे हैं वह ठीक हैं ॥ १-३ ॥

अथाश्वगन्धादितैलम् ।

अश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वि-  
तम् ॥ चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपा-  
चयेत् ॥ तत्तैलं मेढ्वक्षोजकर्णपालिवि-  
वर्द्धनम् ॥ ४ ॥

असगंध, सतावर, कूठ, बालछड और कटेरीके  
डोडे इनका कल्क डालकर तेलसे चौगुने दूधमें प-  
पकाया हुआ तिलका तेल अश्वगंधादि तेल कहाजाता-  
है । यह तेल-लिंग, स्तन और कानकी पालीको  
बढ़ाताहै ॥ ४ ॥



अथ शूकदोषस्याष्टादशभेदाः ।

तत्र सर्षपिकालक्षणम् ।

गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भगहेतुका ॥  
पिडका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका  
तु सा ॥ ५ ॥

शूकदुर्भगहेतुका शूकदुष्टयोनिनिमित्ता च ।

शूकसे अथवा दुष्टयोनिमें मैथुन करनेसे उत्पन्न हुई  
सफेद सरसोंकी समान जो फुसी उत्पन्न होतीहै वह सर्ष-  
पिका कही जातीहै, कफ तथा वायु इनसे उत्पन्न होती-  
है ॥ ५ ॥

अथाऽष्टीलिकालक्षणम् ।

कठिना विषमैर्भुमैर्वायुनाऽष्टीलिका भवेत् ६ ॥

अष्टीला लौहकारस्य भाण्डविशेषः निहार  
इति लोके । ततः कठिनेत्यष्टीलिका विषमै-  
र्भुमैरिति वक्ष्यमाणशूकविशेषणम् । विषमै-  
र्ह्रस्वदीर्घैः भुमैः वक्रैः ॥

बड़े, छोटे और टेढ़े काटोंवाली और कठिन ऐसी जो  
फुसी होय उसको अष्टीलिका कहतेहैं 'अष्टीलिका' इस  
नामका एक लुहारका औजार होताहै जिसकी देशमें  
निहार अथवा निहाई कहतेहैं उसीके समान यह फुंसी  
कठिन होतीहै, इसकारण इसको अष्टीलिका कहतेहैं, इस  
फुंसीका मुख्य निदान वायु है ॥ ६ ॥

अथ ग्रथितलक्षणम् ।

शूकैर्यत्परितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत्क-  
फात् ॥ ७ ॥

यल्लिङ्गं सदा शूकैः परितं तद्ग्रथितत्वात्  
ग्रथितम् ॥

लिङ्ग जाँकी अनीकी समान काटोंसे निरतर व्याप्त रहे  
उसको ग्रथित कहतेहैं इस ग्रथितका मुख्य निदान कफ  
है ॥ ७ ॥

अथ कुम्भिकालक्षणम् ।

कुम्भिका रक्तपित्तात्स्याजाम्बवास्थिनि-  
भा सिता ॥ ८ ॥

कुम्भिका कुम्भीफलतुल्यत्वात् ॥

जामुनकी गुठलीकी समान जो सफेद फुन्सी उत्पन्न  
होय उसको कुम्भिका कहतेहैं, इस फुन्सीका मुख्य  
निदान रधिर तथा पित्त है । यह फुन्सी कुम्भीफल  
( कायफल ) की समान होतीहै इसलिये इसको कुम्भिका  
कहतेहैं ॥ ८ ॥

अथाऽलजीलक्षणम् ।

अलजी स्यात्तथा याद्वक्प्रमेहपिडका  
तथा ॥ सा च रक्ताऽसिता स्फोटैश्चिता च  
कथिता बुधैः ॥ ९ ॥

एषा रक्तपित्तनिमित्ता ज्ञेया ।

अलजी नामक प्रमेह सम्बन्धी पिडका जो लाल और  
काली फुन्सी होय तथा अन्य फुंसियोंसे व्याप्त होय ऐसी  
इस प्रमेह पिडकाकी समान लिंगपर उत्पन्न होय उसको  
अलजी कहतेहैं । इस फुन्सीका मुख्य रधिर तथा  
पित्त है ॥ ९ ॥

अथ मृदितलक्षणम् ।

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातको-  
पतः ॥ १० ॥

शूकदोषे जाते पीडितं सत् यत् संरब्धं  
सशोथं भवति तल्लिङ्गं मृदितमुच्यते ॥

शूकदोषके उत्पन्न होनेपर लिंगके दबानेसे जो सूजन  
उत्पन्न होय उसको मृदित कहतेहैं ॥ १० ॥

अथ संमूढपिडकालक्षणम् ।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडका  
भवेत् ॥ ११ ॥

शूकदोषे जाते पाणिभ्यां भृशसंमूढे पिशंते  
लिङ्गे । अत्रापि वातकोपत इत्यनुवर्तते ॥

शूक होनेपर दोनों हाथोंसे बहुत मर्दन करनेसे  
लिंगके ऊपर जो पिडका होतीहै उनको संमूढपिडका  
कहतेहैं ॥ ११ ॥

अथावमन्थलक्षणम् ।

दीर्घा बह्वचश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तु  
याः ॥ सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारो-  
महर्षकृत् ॥ १२ ॥

दीर्घा दीर्घाकुराः ॥

लंघी और लघे अंकुरवाली जो फुत्तियें बीचमे फूटी  
हुई, वेदनायुक्त और रोमाचसहित होयें उनको अवमन्थ  
कहतेहैं । ये फुत्ती कफ तथा रुधिरके कोपसे होतीहैं ॥ १२ ॥

अथ पुष्करिकालक्षणम् ।

पिडका पिडकाव्याप्ता पित्तशोणितसं-  
भवा ॥ पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्क-  
रिकेति सा ॥ १३ ॥

पिडकाव्याप्ता पार्श्वतः क्षुद्रपिडकाव्याप्ता  
अत एव पद्मकर्णिकसंस्थाना ॥

जो फुत्ती अन्य फुत्तियोंसे व्याप्त और कमलकर्णिकाकी  
समान आकारवाली उत्पन्न होय उसको पुष्करिका कहते  
हैं । यह फुत्ती पित्तके तथा रुधिरके कोपसे होतीहैं ॥ १३ ॥

अथ स्पर्शहानिलक्षणम् ।

स्पर्शहानिन्तु जनयेच्छोणितं शूकदूषि-  
तम् ॥ १४ ॥

अत्र स्पर्शसहत्वमेव लक्षणम् ॥

जो फुत्ती स्पर्शको सह न सके उसको स्पर्शहानि कह-  
तेहैं, यह फुत्ती शूकदोषसे कुपित हुए रुधिरसे उत्पन्न  
होतीहैं ॥ १४ ॥

अथोत्तमालक्षणम् ।

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च  
या ॥ एषोत्तमाख्या पिडिका शूकाजीर्ण-  
समुद्भवा ॥ १५ ॥

शूकदोषसे उत्पन्न हुई, अजीर्णसे उत्पन्न हुई, मूग तथा  
उडदके समान जो लाल फुत्ती उत्पन्न होतीहैं वह उत्तमा  
कहीजातीहैं । इस फुत्तिका मुख्य निदान रुधिर तथा  
पित्त है ॥ १५ ॥

अथ शतपोनकलक्षणम् ।

छिद्रैरण्मुखैर्लिङ्गं चिरं यस्य समन्ततः ॥  
वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपो-  
नकः ॥ १६ ॥

शतपोनकश्चालनी तत्तुल्यत्वाच्छतपोनकः ॥

लिङ्ग वारीक छिद्रोंकरके चारों ओरसे व्याप्त होकर  
शतपोनक ( चलनी ) की समान होजाय उस रोगको  
शतपोनक कहतेहैं । इसका मुख्य निदान वात तथा  
कफ है ॥ १६ ॥

अथ त्वक्पाकलक्षणम् ।

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाह-  
कृत् ॥ १७ ॥

ज्वर तथा दाहको उत्पन्न करनेवाला लिङ्गके चर्मका  
जो पाक होताहै वह त्वक्पाक कहाजाताहै, इसका मुख्य  
निदान रुधिर तथा पित्त है ॥ १७ ॥

अथ शोणितार्बुदलक्षणम् ।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडकाभिन-  
पीडितम् ॥ लिङ्गं वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं  
तच्छोणितार्बुदम् ॥ १८ ॥

वास्तुरुजः स्फोटपिडकाधिष्ठानवेदनाः ॥

काली फुत्तियोंसे और लाल फुत्तियोंसे लिङ्ग पीडित  
होय और उन फुत्तियोंमें तथा फुत्तियोंके स्थानमे उग्र पीडा  
होय उसको शोणितार्बुद कहतेहैं ॥ १८ ॥

अथ मांसार्बुदलक्षणम् ।

मांसदुष्टं विजानीयादर्बुदं मांससम्भ-  
वम् ॥ १९ ॥

मांसकी दुष्टतासे लिङ्गपर मांसका अर्बुद ( रसौली )  
उत्पन्न होय उसको मांसार्बुद कहतेहैं ॥ १९ ॥

अथ मांसपाकलक्षणम् ।

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च  
वेदनाः ॥ विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदो-  
षकृतं भिषक् ॥ २० ॥

शीर्यन्ते गलन्ति । सर्वाश्च वेदनाः वात-  
पित्तकफजाः ॥

लिङ्गका मांस गलकर गिरजाता हो और सर्वप्रकारकी  
( वात पित्त कफ जनित ) वेदना होती हो उसको वैद्य  
मांसपाक हुआ जाने, यह मांसपाक त्रिदोषके कोपसे  
होताहै ॥ २० ॥

अथ विद्रधिलक्षणम् ।

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दि-  
शेत् ॥ २१ ॥

उक्तं सान्निपातिकविद्रधितुल्यं कथयेत् ॥

प्रमेहसम्बन्धी विद्रधियोमे जो त्रिदोषजन्य विद्रधि  
कही है उसीके लक्षणोंवाली फुसी जो लिगमे उत्पन्न होय  
उसको वैय विद्रधि जाने, यह विद्रधि भी त्रिदोषके प्रको-  
पसे होतीहै ॥ २१ ॥

अथ तिलकालकलक्षणम् ।

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि  
तु ॥ पातितानि पचत्याशु मेढं निरवशे-  
षतः ॥ २२ ॥ कालानि भूत्वा मांसानि  
शीर्यन्ते यस्य देहिनः ॥ सन्निपातसमु-  
त्थांश्च तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ २३ ॥

चित्राणि शुक्लपीतनीलादिनानावर्णानि ।  
सविषाणीति शूकानांसविषत्वेऽपि विशेषार्थमु-  
क्तम् । शीर्यन्ते गलन्ति । कालानीति कृष्णा-  
नि, कृष्णतिलतुल्यत्वात्तिलकालकसंज्ञा ॥

काले रगके अथवा अनेक प्रकारके चित्र विचित्रित  
सफेद पीले नीले आदि रगके शूकनामक विपैले कीड़ेकी  
भस्मसे उत्पन्न होनेके कारण विपैला मांस लिगमेंसे गिर-  
जाय, सर्वप्रकारसे लिगको पका देवे और कालकाला  
होकर गलजाय उसको तिलकालक कहते हैं । इस  
रोगमें मांस काले तिलकी समान होजाताहै, इसकारण  
इसको 'तिलकालक' कहतेहैं । यह रोग त्रिदोषके प्रको-  
पसे होताहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ शूकदोषासाध्यलक्षणम् ।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः  
स्मृतः ॥ विद्रधिश्च न सिध्याति ये च  
स्पृष्टतिलकालकाः ॥ २४ ॥

अटारहप्रकारके उपरोक्त शूक दोषोंमें मांसार्बुद, मांस-  
पाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ॥ २४ ॥

अथ शूकदोषचिकित्सा ।

शूकदोषेषु सर्वेषु विपत्री कारयेत्क्रियाम् ॥  
जलौकाभिर्हरेद्रक्तं रचनं लघु भोजयेत् ॥

॥ २५ ॥ गुग्गुलुं पाययेच्चापि त्रिफला-  
क्वाथसंयुतम् ॥ क्षीरेण लेपसेकांश्च शीते-  
नैव हि कारयेत् ॥ २६ ॥

वैय सर्वप्रकारके शूकदोषोंमें विपनाशक क्रिया करे,  
जौक लगाकर विप निकलवावे, विरेचन देवे, हलका  
भोजन करे, त्रिफलेके क्वाथके साथ गुग्गुलु पिये, शीतल  
दूधका लेप और शीतल दूधसे सेचन करावे ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ दार्वीतैलम् ।

दार्वीसुरसयष्ट्याहैर्गृहधूमनिशायुतैः ॥  
सम्पक्कं तैलमभ्यङ्गान्मेढ्ररोगं हि नाश-  
येत् ॥ २७ ॥

दारुहलदी, तुलसी, सुलैठी, घरका बुआँसा और  
हलदी इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल 'दार्वीतैल' कहा-  
जाताहै । इस तैलका लेप करनेसे लिङ्गके समस्त रोग  
नष्ट होजातेहैं ॥ २७ ॥

अथ रसांजनलेपः ।

रसाञ्जनं साह्वयमेकमेव प्रलेपमात्रेण नये-  
त्प्रशान्तिम् ॥ सप्ततिपूयव्रणशोथकण्डू-  
शूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम् ॥ २८ ॥

साह्वयमिति अनङ्गरोगस्य विशेषणम् ।  
अनङ्गरोगस्य नाम अपि दूरीकरोति इत्यर्थः ॥

इति शूकदोषनिदानचिकित्साधिकारः ।

इकले रसीतकाही लेप करनेसे सर्वप्रकारके लिगसंबन्धी  
रोग नष्ट होजातेहैं कि फिर उनका कदापि नामतक भी  
नहीं रहता तथा दुर्गन्धित राखका निकलना, व्रण, खून,  
खुजली और शूल ये सब नष्ट होजातेहैं ॥ २८ ॥

इति शूकदोषाधिकारः संपूर्णः ।

अथ कुष्ठरोगाधिकारः ।

तत्र कुष्ठस्य निदानं संख्या च ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि  
च ॥ भजतामागतांश्छर्दिवेगांश्चान्या-

नप्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममभिता-  
पश्चाप्यतिभुक्ता निषेविणाम् ॥ शीतोष्ण-  
लंघनाहारान्क्रमं भुक्ता निषेविणाम् ॥ २ ॥  
धर्माश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम् ॥  
अजीर्णाध्यशिनां चापि पञ्चकर्मापचा-  
रिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नदधिमत्स्यादिल-  
वणाम्लनिषेविणाम् ॥ साषमूलकपिष्टा-  
न्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायं  
चाप्यजीर्णैस्ते दिवानिद्रां निषेविणाम् ॥  
विप्रान्गुरुन्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्व-  
ताम् ॥ ५ ॥ वातादयस्त्रयो दोषास्त्व-  
ग्रक्तं मांसमम्बु च ॥ दूषयन्ति सकुष्ठानां  
सप्तको द्रव्यसंग्रहः ॥ अतः कुष्ठानि जाय-  
न्ते सप्त चैकादशैव च ॥ ६ ॥

विरोधीनि अन्नपानानि क्षीरमत्स्यादीनि  
दधिदुग्धादीनि । व्यायाममित्यादि अति-  
भुक्ता व्यायामम्, अग्निसन्तापम् अग्निरूप-  
लक्षणं सूर्यादिसन्तापश्च । निषेविणामिति  
कृदन्तस्य योगे षष्ठीप्राप्ता । द्वितीया तु मुनि-  
वचनात् । एवमग्रेऽपि । शीतोष्णलंघनाहारा-  
नित्यादिषु अपि द्वितीया । अत्र क्रमं विधिम् ।  
धर्मेत्यादि धर्मार्तत्वे सति द्रुतमविश्रम्य  
पाने स्नाने शीताम्बुसेविनाम् । अजीर्णाध्य-  
शिनां भुक्तेऽजीर्णे भुक्तानाम् । पञ्चकर्मा-  
पचारिणां पञ्चकर्माणि वमनविरेकनस्यनि-  
रूहानुवासनानि तेषु कृतेषु अपचारिणाम् ।  
नवान्नदधिमत्स्याद्याहारादि सेविनाम् । व्यवा-  
यमित्यादि । अन्ने अजीर्णे विदग्धादिरूपे  
सति व्यवायं मैथुनं निषेविणाम् । दिवा-  
निद्रां निषेविणामिति भिन्नो हेतुः । धर्षयताम्  
अभिभवताम् । दोषद्रव्यसंग्रहार्थमाह-वाता-  
दय इत्यादिशब्देन । त्रिष्वपि प्रतीतेषु त्रय  
इति पदं सर्वेषु कुष्ठेषु त्रयाणामपि वाता-  
दीनां दुष्टत्वबोधनार्थम् । त्वग्रसः अम्बु-

लसीका । अथ संख्यामाह-अतः कुष्ठानी-  
त्यादि । अतः पूर्वोक्तदोषद्रव्यसमुदायात् ।  
सप्तधैकादशधेति संख्याविच्छेदपाठेन स-  
प्तानां महाकुष्ठत्वमेकादशानां क्षुद्रकुष्ठत्व-  
बोधयति ॥

दूध तथा मछली आदि परस्परविरुद्ध पदार्थोंको  
भक्षण करनेसे, दही तथा दूध आदि परस्पर विरुद्ध खान-  
पानोंके सेवन करनेसे, पतले, चिकने तथा भारी पदार्थोंके  
सेवन करनेसे, आती हुई वमनके वेगको रोकनेसे, अन्यान्य  
मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, बहुत भोजन करके कसरत  
करनेसे, बहुत भोजन करके सूर्यका तथा अग्निका सन्ताप  
सेवन करनेसे, शीत, उष्ण, लघन और आहार इनको  
कुविधिसे सेवन करनेसे, पसीना, श्रम, तथा भयसे पीड़ित  
होनेपर तत्काल शीतल जलमें स्नान करनेसे अथवा शीत-  
लजल पीनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजनपर  
भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, नस्य, निरूह और अनु-  
वासनवाहित इनके बिगड जानेसे, नवीन अन्नके भक्षण  
करनेसे, दहीके सेवनसे, मछली आदिके खानेसे, खारी  
पदार्थोंके सेवन करनेसे, खट्टे पदार्थोंके सेवन करनेसे,  
उडदको सेवन करनेसे मूलीको सेवन करनेसे, पकान्न  
अथवा मिष्ठान्नके सेवन करनेसे, तिलके सेवन करनेसे,  
दूध तथा गुडको विशेष खानेसे, विदग्ध आदिके अजीर्ण  
होनेपर मैथुन करनेसे, दिनमें सोनेसे, ब्राह्मणोंका और  
गुरुजनोंका अपमान करनेसे और पापकर्म करनेसे कोढ़  
उत्पन्न होतेहैं । वात पित्त और कफ यह तीनोंदोष रस,  
रुधिर, मांस, तथा जलको दूषित करके कोढ़को उत्पन्न  
करतेहैं । वात, पित्त, कफ, रस, रुधिर, मांस तथा  
लसीका इन सातोंके बिगडनेसे कोढ़ उत्पन्न होताहै ।  
वात, पित्त और कफ यह तीनों दोष और रस, रुधिर,  
मांस तथा लसीका यह चार दूष्य कोढ़के कारण हैं ।  
सर्व प्रकारके कोढ़ोंमें वातादि तीनोंदोष दुष्ट होते हैं ऐसा  
जानना । ऊपर कहेहुए सातों पदार्थोंके समुदायसे सात  
प्रकारका और ग्यारह प्रकारका कोढ़ उत्पन्न होताहै ।  
'अठारह' ऐसा नहीं कहा क्योंकि सात और ग्यारह  
अलग अलग संख्या कही वह ऊपरसे जाननी । सात बड़े  
कोढ़ और ग्यारह क्षुद्र कोढ़ हैं ॥ १-६ ॥

अथ सप्तमहाकुष्ठनामानि ।

पूर्वत्रिकं तथा सिध्मं ततः काकणकं  
तथा ॥ पुण्डरीकक्षिजिह्वाके महाकुष्ठानि  
सप्त च ॥ ७ ॥

पूर्वत्रिकं कपालौदुम्बरमण्डलाख्यम् ।  
सिध्मशब्दोऽकारान्तो नपुंसकः । ननु कथं  
सिध्मस्य महाकुष्ठेषु गणना ? सुश्रुतेन क्षुद्रकु-  
ष्ठेषु उक्तत्वात् । “धातुप्रविष्टं सिध्मं तु स्या-  
न्महाकुष्ठमेव च ॥” एवंविधस्य सिध्मस्य  
चरकेण महाकुष्ठेषु दर्शितत्वात् । एषां महा-  
कुष्ठत्वञ्च शीघ्रमुत्तरोत्तरधात्ववगाहनात्,  
उत्त्वणदोषजन्यत्वाच्चिकित्साबाहुल्याच्च ॥

कर्पूर, औदुम्बर, मडैल, सिध्म, काकणक, पुण्डरीक  
और ऋक्षजिह्वक यह सात बड़े कोठ हैं ।

शका—सुश्रुतमें सिध्मको क्षुद्र कोठोंमें गिना है फिर  
आपने यहा सिध्मको बड़े कोठोंमें कैसे लिखा है ?

समाधान—जो सिध्म धातुओंमें प्राप्त होगया हो वह  
महाकुष्ठ कहा जाता है । क्योंकि चरककपि ऐसे सिध्मको  
बड़े कोठोंमें गिनता है ।

ऊपर जो सात कोठ बड़े कहे हैं उनका कारण यह  
है कि, उत्तरोत्तर धातुओंमें शीघ्र प्रवेश करतेहैं, उत्त्वण  
दोषसे उत्पन्न होतेहैं और उनकी चिकित्सा भी अनेक  
हैं ॥ ७ ॥

अथैकादश क्षुद्रकुष्ठनामानि ।

एककुष्ठं स्मृतं पर्व गजचर्म ततः स्मृतम् ॥  
ततश्चर्मदलं प्रोक्तं ततश्चापि विचर्चिका  
॥ ८ ॥ विपादिकाभिधा सैव पामा क-  
च्छूस्ततः परम् ॥ दद्रूविस्फोटकिटिभाल-  
सकानि च वेष्टितम् ॥ क्षुद्रकुष्ठानि चैतानि  
कथितानि भिषग्वरैः ॥ ९ ॥

ननु दद्रूरोगस्य कथं क्षुद्रकुष्ठेषु गणना ?  
सुश्रुतेन महाकुष्ठेषु उक्तत्वात् । उच्यते—अ-  
मिता अवगाढमूला दद्रूः सुश्रुतेन महाकुष्ठेषु

उक्ता । असितेतरा अनवगाढमूला दद्रूः क्षुद्र-  
कुष्ठमेव । एवंविधा दद्रूश्चरकेण क्षुद्रकुष्ठेषु  
दर्शितत्वात् ॥

एककुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिका, विपादिका,  
पामा, कच्छू, दद्रू, विस्फोट, किटिभ, अलसक और  
शतार इनको उत्तम वैद्य क्षुद्रकुष्ठ कहतेहैं । विचर्चिका  
नामक कुष्ठ जो पांवमें होय तो वह विपादिका कहा-  
जाताहै, इस कारण क्षुद्र कोठोंकी संख्या यह ग्यारहही  
रहती है ।

शका—सुश्रुत दद्रूको बड़े कोठोंमें मानताहै फिर आपने  
इसको क्षुद्रकोठोंमें कैसे गिना है ?

समाधान—काले दृढ जड़वाले दद्रूको सुश्रुतने बड़े  
कोठोंमें गिनाहै, जो दद्रू कालेके सिवाय दूसरा होय और  
दृढ जड़वाला न होय तो वह क्षुद्र कोठही जानना ।  
चरक भी इसप्रकारके दद्रूको क्षुद्रकुष्ठोंमें मानता-  
है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ कुष्ठानां त्रिदोषजत्वेनैकस्याऽपि  
दोषस्य उत्त्वणतया सप्त-  
धात्वमाह ।

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समा-  
गतैः ॥ सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधि-  
कत्वतः ॥ १० ॥

सर्वेषु अपि त्रिदोषेषु व्यपदेशः कापाला-  
दिसंज्ञास्तेषामष्टादशरूपं यदधिकत्वं ततः  
कुष्ठानि सप्तधा । कैः दोषैः कथम्भूतैः पृथग्द्व-  
न्द्वैः समागतैः संगतैः सम्मिलितैरिति यावत् ।  
अस्य अयमर्थः । किमपि कुष्ठं वातोत्त्वणं  
किमपि पित्तोत्त्वणं किमपि कफोत्त्वणं किम-  
पि वातश्लेष्मोत्त्वणं किमपि पित्तश्लेष्मोत्त्वणम्  
किमपि वातपित्तोत्त्वणं किमपि त्रिदोषो-  
त्त्वणमिति ॥

यद्यपि तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए कपाल आदि नाम  
हैं तथापि वे नाम अठारह होनेके कारण उन उन  
दोषोंकी उत्त्वणताके अनुसार कोठ सात प्रकारके माने  
हैं, जैसे कि कोई कोठ वायुकी उत्त्वणतावाला होता-  
है, कोई कोठ पित्तकी उत्त्वणतावाला होताहै, कोई



कोढ कफकी उत्वणतावाला होताहै, कोई कोढ वात तथा कफकी उत्वणतावाला होताहै, कोई कोढ पित्त तथा कफकी उत्वणतावाला होताहै, कोई कोढ वायुकी तथा पित्तकी उत्वणतावाला होताहै, और कोई कोढ तीनों दोषोंकी उत्वणतावाला होताहै ॥ १० ॥

अथ कुष्ठपूर्वरूपम् ।

अतिश्लक्ष्णः स्वरस्पर्शः स्वेदास्वेदविवर्णता ॥ दाहः कण्डूस्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः क्लमः ॥ ११ ॥ व्रणानामधिकं शूलं शी-  
ब्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥ रुढानामपि रूक्ष-  
त्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ॥ रोमहर्षो-  
ऽसृजः काष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १२ ॥

अतिश्लक्ष्णः अतिमृदुः । अथवा घर्मादि-  
प्रसंगेऽपि स्वेदाभावः । त्वचि स्वापस्पर्शा-  
ज्ञता । शीब्रोत्पत्तिः व्रणानाम्

दूषयन्ति श्लथीकृत्य निश्चलत्वादितस्ततः ॥  
त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दोषाः कुष्ठमुशन्ति  
तत् ॥ १३ ॥

जिस स्थानमे कोढ होनेको हो उस जगह छूनेसे कोमल या चिकना, अत्यंत खरखरा-मालूम होय, पसीना आवे, अथवा धूप आदि पसीनेके कारण होनेपर भी पसीना नहीं आवे, दाह, खुजली, चमड़ेका स्पर्श नहीं मालूम हो, भोकनेसरीखी पीडा, विपैल मक्खीके काटने सरीखे चकत्ते हो, ग्लानि, शूलकी अधिकता, व्रणोंका तत्काल उत्पन्न होना, व्रणोंका बहुत दिनोंतक रहना, व्रणोंके भरनेपर अत्यंत रुखापन हो, अल्पकारणोंसे व्रणोंका कोप हो, रोमांचोंका हो आना और रुधिर काला होजाय, ये कोढके पूर्व लक्षण जानने । दोषोंके स्थिर होनेसे चमड़ेको शिथिल करके चारों ओरसे त्वचाके रंगको बदल देताहै उसको कोढ कहते हैं ॥ ११-१३ ॥

अथ दोषोत्वणतया कुष्ठोत्पत्ति-  
नामानि ।

पातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात् ॥  
मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋक्षाख्यं वातपि-  
त्ततः ॥ १४ ॥ चर्मैककुष्ठकिटिभसिध्मा-  
लसविपादिकाः ॥ वातश्लेष्मोद्भवाः पित्त-  
कफाद्दूशतारुषी ॥ १५ ॥ पुण्डरीकं  
सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥ सर्वैरेवो-  
त्वणैर्दोषैराहुः काकणकं बुधाः ॥ १६ ॥  
विचर्ची च कफादित्यन्वयः । पुण्डरीकं  
सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा पित्तकफादि-  
त्यन्वयः ॥

वातकी उत्वणतासे कपाल कोढ उत्पन्न होताहै, पित्तकी उत्वणतासे औदुम्बर मडल और विचर्चिका कोढ उत्पन्न होताहै, वायु तथा कफकी उत्वणतासे ऋक्षजिह्व कोढ उत्पन्न होताहै, वात तथा कफकी उत्वणतासे गजचर्म, एककुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलसक और विपादिका कोढ उत्पन्न होताहै, पित्तकी तथा कफकी उत्वणतासे दूश, शतारु, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा तथा चर्मदल कोढ उत्पन्न होताहै और तीनों दोषोंकी उत्वणतासे काकणक कोढ उत्पन्न होताहै ॥ १४-१६ ॥

अथ महाकुष्ठेषु प्रथमं कापालकु-  
ष्ठलक्षणम् ।

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ॥  
कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् १७-  
किञ्चित् कृष्णाः किञ्चित् अरुणाः ये कपा-  
लाः स्फुटितमृत्पात्रखण्डाः खपरा इति यावत्  
तद्वर्णं परुषं खरस्पर्शम् । तनु तनुत्वकापालं  
कपालसंज्ञं, विषमं दुश्चिकित्स्यम् ॥

कुछेक काला तथा कुछेक लाल, मट्टीके खीपडेकी समान, रुखा, स्पर्शमें खरदरा, पतली त्वचावाला और अत्यंत व्यथा युक्त जो कोढ उत्पन्न होताहै उसको कपालकुष्ठ कहते हैं । यह कोढ विषम है इसकी चिकित्सा कठिन है ॥ १७ ॥

अथोदुम्बरकुष्ठलक्षणम् ।

उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत् ॥  
रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जर-  
म् ॥ १८ ॥

औदुम्बरफलाकारम् ॥

जो कोठ गूलरके फलकी समान, पीले रोमयुक्त और  
व्याघ्रे, दाहसे, लालीसे और खुजलीसे व्याप्त होय उसको  
औदुम्बर कोठ कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ मंडलकुष्ठलक्षणम् ।

श्वेतरक्तं स्थिरं स्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्ड-  
लम् ॥ कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डल-  
मुच्यते ॥ १९ ॥

श्वेतरक्तं किञ्चिच्छुतं किञ्चिद्रक्तम् । स्थिरं  
चिकित्सां विना अविनाशि । स्यानमार्द्रम् ।  
स्निग्धं सस्वेदम् । उत्सन्नमण्डलम् उद्गतम-  
ण्डलम् । कृच्छ्रं कष्टसाध्यम् । अन्योन्यसं-  
सक्तं परस्परमिलितम् ॥

जो कोठ कुष्ठके सफेद तथा कुष्ठके लाल हो, चिकि-  
त्साके विना नष्ट न हो, गीला हो, पसीने युक्त हो, मण्डलकी  
समान आकारवाला हो और परस्पर मिला हो, उसको  
मण्डल कोठ कहते हैं यह कोठ कष्टसाध्य है ॥ १९ ॥

अथ सिध्मकुष्ठलक्षणम् ।

श्वेतताम्रश्च तनु यद्रजो वृष्टं विमुञ्चति ॥  
प्रायेणोरसि तत्सिध्ममलाचकुसुमोप-  
मम् ॥ २० ॥

श्वेतताम्रं श्वेतं ताम्रम् । तनु त्वक् ।  
प्रायेणोरसि प्रायःशब्दादन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥

जो कोठ सफेदी लिये लाल रंगका हो, पतली त्वचा-  
वाला हो, जिसनेसे या रगड़नेसे उसमेसे बूलकी समान  
छोटे छोटे परमाणु गिरे और तोम्मीके फूलकी समान होय  
उसको सिध्म कहते हैं । यह कोठ विशेष करके छातीमें  
होत है और किसी समय अन्य अंगोंमें भी होता है ॥ २० ॥

अथ काकणकुष्ठलक्षणम् ।

यत्काकणन्तिकावर्णमपाकं तीव्रवेदनम् ॥  
त्रिदोषलिंगं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्य-  
ति ॥ २१ ॥

काकणन्ती गुञ्जा गुञ्जावर्णत्वेन मध्ये  
कृष्णमन्ते रक्तम् । अथवा मध्ये रक्तं अन्ते  
कृष्णम् अपाकः स्वभावात् । त्रिदोषलिंगम्  
सर्वेषां कुष्ठानां त्रिदोषजत्वेऽपि उल्वणदो-  
षत्रयलिंगम् ॥

जो कोठ चौटलीकी समान वर्णवाला अर्थात् त्रीचमें  
काला और अतमें लाल हो, स्वाभाविक रीतिसे नहीं पक-  
नेवाला, तीव्रवेदनायुक्त और त्रिदोषोंकी उल्वणताके  
लक्षणोंवाला हो उसको काकण कहते हैं ॥ २१ ॥

अथ पुण्डरीककुष्ठलक्षणम् ।

तच्छुतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ॥  
सरागश्चैव सोत्सेधं पुण्डरीकं कफोल्व-  
णम् ॥ २२ ॥

पुण्डरीकदलोपमं पुण्डरीकं श्वेतकमलं  
तत्पत्रोपमम् । सरागश्चैव । अत एव श्वेतं  
रक्तपर्यन्तम् अन्ते रक्तम् । सरागमिति अन्त-  
लौहित्याधिक्यबोधनार्थम् । सोत्सेधम् उद्गतम् ॥

जो कोठ सफेद कमलके पत्रकी समान सफेद, अतमें  
अत्यन्त लाल, ऊँचा और कफकी उल्वणतावाला हो उसको  
पुण्डरीक कहते हैं ॥ २२ ॥

अथर्क्षजिह्वककुष्ठलक्षणम् ।

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तःश्यावं सवेदनम् ॥  
यदक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते २३ ॥

रक्तपर्यन्तम् अन्ते रक्तम् । अन्तः श्यावं  
मध्ये धूम्रवर्णम् । ऋक्षजिह्वासंस्थानम् । ऋक्षो  
भल्लूकस्तस्य जिह्वाकृतिः ॥

जो कोठ कटिन, अंतमें लाल, मध्यमें धुयेकी रंगकी  
समान, वेदनायुक्त और रीडकी जीभकी समान वर्णवाला  
हो उसको ऋक्षजिह्वक कहते हैं ॥ २३ ॥

अथैककुष्ठगजचर्मनामकयोः क्षुद्रकु-  
ष्ठयोर्लक्षणम् ।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोप-  
मम् ॥ तदेककुष्ठं चर्मख्यं बहलं गजच-  
र्मवत् ॥ २४ ॥

महावास्तु महास्थानम् । मत्स्यशकलो-  
पमम् । अत्र शकलशब्देन लक्षणया त्वगु-  
च्यते । तेन चक्राकारमभ्रकपत्रसदृशं  
भवति । एककुष्ठमिति क्षुद्रकुष्ठेषु गणितत्वात्  
चर्मख्यं गजचर्मख्यम् बहलं स्थूलम् ।  
गजचर्मवद्रूपं कृष्णं च ॥

जो कोठ पसीनारहित, बड़े घेरदार और मछली की  
त्वचाकी समान हो, चक्राकार हो और अभ्रकके पत्रोंकी  
समान हो उसको एककुष्ठ कहते हैं । यह कोठ क्षुद्र  
कोठोंमें मुख्य होनेसे एककुष्ठ कहा जाता है । जो कोठ  
गाढा और हाथीकी त्वचाकी समान रखा तथा काला हो  
उसको गजचर्म कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ चर्मदलनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।  
रक्तं सशूलं कण्डूमत्सस्फोटं दलयत्यपि ॥  
तच्चर्मदलमाख्यातं स्पर्शस्यासहनश्च  
यत् ॥ २५ ॥

दलयत्यपि विदारयत्यपि चर्मेति शेषः ।  
जो कोठ लाल, शूलयुक्त तथा फोड़ोंसे व्याप्त, स्पर्शको  
नहीं सहसके और चर्मलीको फाड़नेवाला होय उसको  
चर्मदल कहते हैं ॥ २५ ॥

अथ विचर्चिकानामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।  
सकण्डूः पिडका श्यावा बहुस्रावा  
विचर्चिका ॥ २६ ॥

पिडका क्षुद्रपिडका । ननु क्षुद्रकुष्ठानां  
कथमेकादशत्वं विपादिकाया द्वादशत्वसम्भ-  
वात् । उच्यते-विचर्चिकेव पादयोर्भवति  
विपादिका तेन न संख्यातिरेकः । अतः  
एवाह भोजः-

दोषाः प्रदूष्य त्वङ्मयासं पाणिपादसमा-  
श्रिताः ॥ पिडकां जनयन्त्याशु दाहक-  
ण्डसमन्विताम् ॥ दाल्यते त्वक् खरा

रूक्षा पाण्योर्ज्ञेया विचर्चिका ॥ पादे  
विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वाद्विच-  
र्चिका ॥ २७ ॥

दाल्यते विदार्यते । केचिद्विचर्चिकातो  
विपादिकां भिन्नामाहुः ॥

खुजलीयुक्त, कलौस लिये और बहुत लाववाली जो  
छोटी छोटी फुंसी होय उसको विचर्चिका कहते हैं ॥

गिनती करनेसे क्षुद्रकोठ बारहवां होता है फिर आपने  
यहां क्षुद्रकोठ ग्यारहवां क्यों गिना है ॥

पात्रमें उत्पन्न हुई विचर्चिका ही विपादिका कही-  
जाती है इसकारण संख्या नहीं बढ़ती । यहांपर भोज  
कहता है "रूखे होनेपर हाथोंकी खाल फटजाती है, उसको  
विचर्चिका कहते हैं और पावकी जो त्वचा फटजाती है  
वह विपादिका कहीजाती है" ॥

विचर्चिका और विपादिका इनके स्थानोंमें भेद है  
किंतु स्वरूपमें कुछ भेद नहीं है । कितनेक आचार्य तो  
विपादिकाको विचर्चिकासे भिन्न कहते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ विपादिकानामकक्षुद्रकुष्ठ-  
लक्षणम् ।

वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेद-  
नम् ॥ २८ ॥

पाणिपादस्फुटनं पाण्योः पादयोश्च स्फुटनं  
विदारणं येन तत् ॥

हाथ तथा पाव फटजायें तथा तीव्र वेदना होय  
उसको विपादिका कहते हैं ॥ २८ ॥

अथ पामालक्षणम् ।

सूक्ष्मा बह्वयः पिडकाः स्राववन्त्यः  
पामेत्युक्ताः कण्डूमत्यः सदाहाः ॥ २९ ॥

पिडकाः पीडयन्तीति पिडका इति  
क्षिपकादित्वान्निपात्यते ॥

लावयुक्त, भयकर दाहयुक्त, छोटी छोटी और  
खुजलीयुक्त बाहरकी फुंसी होय उसको पामा कहते हैं  
फुंसी पीडा जो करती है इस कारण इनको पिडका कह-  
ते हैं ॥ २९ ॥

अथ कच्छुनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।  
सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः  
कच्छुरग्रा स्फिजोश्च ॥ ३० ॥

सैव पामा । स्फोटैः महद्भिः । स्फिजाः प्रोथयोः ।

जो पामा ही तीव्रदाह युक्त फोड़ेमें व्याप्त होय, हाथोंमें तथा कुलोंमें उत्पन्न होय और उग्र होय उसको कच्छ कहते हैं ॥ ३० ॥

अथ दद्रुनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

सकण्डूरागपिडकं दद्रूमण्डलमुद्गतम् ॥ ३१ ॥

दद्रूमण्डलरूपेण उत्पतितः उद्गतम् उच्छूनम् ॥

खुजलीसहित, लाल फुसियोंयुक्त और उत्पन्न होतेही ऊंचा होजाय, मडलकी समान गोल होय उसको दद्रु कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ विस्फोटनामकक्षुद्रलक्षणम् ।

स्फोटा श्यावारुणाभासा विस्फोटाः

स्युस्तनुत्वचः ॥ ३२ ॥

कलौंस लिये लाल और पतलीत्वचावाले जो फोड़े उत्पन्न होतेहैं उनको विस्फोटक कहतेहैं ॥ ३२ ॥

अथ किटिभकुष्ठलक्षणम् ।

श्यामं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

किणखरस्पर्शम् किणः शुष्कव्रणस्थानं तद्वत्कर्कशस्पर्शम् । परुषं रुक्षम् ।

किटिभकोट काला, सूखाहुआ, व्रणके स्थानकी समान, छूनेमें खरदरा और रुखा होता है ॥ ३३ ॥

अथालसकनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

कण्डूमद्भिः सरानैश्च गण्डैरसलकं चितम् ॥ ३४ ॥

गण्डैः महापिडकाभिः चितं वेष्टितम् ॥

खुजलीयुक्त तथा लालगडोंसे ( बड़ी फुसियोंसे ) व्याप्त जो होय वह अलसक कहाजाताहै ॥ ३४ ॥

अथ शतारुकुष्ठलक्षणम् ।

रक्तश्यावं सदाहार्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ ३५ ॥

लाली लिये कालापन हो, दाहकी पीढायुक्त और बहुत प्रणोंयुक्त होय उसको शतारु कहतेहैं ॥ ३५ ॥

अथ सप्तधातुगतकुष्ठलक्षणम् ।

तत्र रसगतकुष्ठलक्षणम् ।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यञ्च जायते ॥ त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ॥ ३६ ॥

त्वक्च्छब्देन अत्र रस उच्यते । धातुप्रस्तावात् त्वक्स्थत्वाच्च त्वक्स्वापः स्पर्शाज्ञत्वम् । त्वक्स्वाप इत्यादिकं केचिद्रक्तगतस्य लिंगं मन्यन्ते ॥

जो कोट रसमें प्राप्त होय तो अंगोंमें विवर्णता और रूक्षता होतीहै, त्वचाका स्पर्शजान नहीं रहता, रोमान्त्र होआतेहैं और पसीना बहुत आने लगताहै । कितने एक वैद्य तो ऐसा मानतेहैं कि त्वचाके स्पर्शका ज्ञान नहीं रहना रोमांचका खडा होना और पसीनेका बहुत आना यह रोगमें प्राप्तहुए कुष्ठके लक्षण हैं ॥ ३६ ॥

रुधिरगतकुष्ठलक्षणम् ।

कण्डूर्विषूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसम्भवे ॥ ३७ ॥

विषूयकः विशेषेण पूयः ॥

जो कोट रुधिरमें प्राप्त होय तो खुजली ओर राक्ष अविक होतीहै ॥ ३७ ॥

अथ मांसगतकुष्ठलक्षणम् ।

बाहुल्यं वक्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः ॥ तोदः स्फोटः स्थिरत्वञ्च कुष्ठे मांससमाश्रितं ॥ ३८ ॥

बाहुल्यं कुष्ठस्य पुष्टिः । पिडकोद्गमः क्षुद्रपिडकोद्गमः । स्फोटः बृहत्पिडका । स्थिरत्वमसञ्चारित्वम् ॥

जो कोट मांसमें प्राप्त होय तो मांस पुष्ट दीखताहै, मुखमें शोष, शरीरमें कर्कशता, फुडियोंका निकलना, सुई चुभोनेसरीखी पीडा, बड़े २ फोड़ोंका होना और स्थिरता ये लक्षण होतेहैं ॥ ३८ ॥

अथ मेदोगतकुष्ठलक्षणम् ।

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां सम्भेदः क्षतसर्पणम् ॥ मेदःस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ३९ ॥

कौण्यं हस्तनाशः । अङ्गानां सम्भेदः

गर्भगः । क्षतसर्पणं क्षतप्रसरणम् । पूर्वो-  
गानि रक्तमांसगतलिंगानि ।

जो कोढ़ मेदमे प्राप्त होताहै तो वह मनुष्य लूला  
जाताहै, चलनेकी शक्ति नष्ट होजातीहै, अंग  
ग होजाते हैं, घाव फैल जातेहैं, और रुधिरमें तथा  
समे प्राप्त हुए कोढ़ोंके जो लक्षण ऊपर कहे हैं वे सब  
तेहैं ॥ ३९ ॥

अथास्थिमज्जगतकुष्ठलक्षणम् ।

नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु किमिसम्भ-  
वः ॥ स्वरोपधातः पीडा च भवेत्कुष्ठे-  
ऽस्थिमज्जगे ॥ ४० ॥

जो कोढ़, अस्थियोंमें और मज्जामे प्राप्त होताहै  
। नाक बैठजातीहै, आँखें लाल होजातीहै, घावमें  
गोड़े पड़जातेहैं, गला बैठजाताहै और पीडा  
तीहै ॥ ४० ॥

अथ शुक्रगतकुष्ठलक्षणम् ।

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्यादुष्टशोणितशुक्र-  
योः ॥ यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि  
कुष्ठितम् ॥ ४१ ॥

ननु शुद्धशोणितशुक्रयोरेव दम्पत्यो-  
र्भिसम्भवः । दुष्टशोणितशुक्रयोः कथम्  
अपत्योत्पत्तिः यत आह सुश्रुतः-  
कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ॥  
गर्भः सञ्जायते नार्याः स जातो बाल  
उच्यते ॥ ४२ ॥

अथ अन्यच्च । वातादिदुष्टरेतसोऽपत्यो-  
त्पादनेऽसमर्था इति । उच्यते गर्भोऽत्र  
शुद्धो बोद्धव्यः । अशुद्धगर्भोऽपि दुष्टशोणित-  
शुक्रयोरपि भवति । अन्धबधिरादीनां स-  
म्भवात् । शोणितम् आर्तवम् । कुष्ठितं  
कुष्ठं सञ्जातमस्येति तारकादित्वादितच् ।  
शुक्रार्तवगतं कुष्ठमपत्येन व्यज्यते इति  
तात्पर्यम् ।

कुष्ठकी बाहुल्यतासे जिनका रज और वीर्य दूषित हुआ  
होय ऐसे स्त्रीपुरुषोंके समागमसे जो सन्तान होताहै वह  
कोढ़ी होतीहै ॥

शंका-जिनका रज और वीर्य शुद्ध होताहै ऐसी स्त्री-  
पुरुषोंसे गर्भका रहना सम्भव है, जिनका रज और वीर्य  
दूषित होता है उनके सन्तान नहीं होती, सुश्रुतनेभी  
कहा है कि “ कामदेवके वेगसे स्त्री पुरुषोंके संयोग होने-  
पर स्त्रीके शुद्धरजसे और पुरुषके शुद्धवीर्यसे गर्भ उत्पन्न  
होताहै और वह गर्भ जन्मके पश्चात् बालक कहाजाता-  
है । ”

समाधान-सुश्रुतके वचनमें तथा अन्यान्य वचनोंमें  
जो गर्भ कहा है वह शुद्ध गर्भ जानना । अशुद्ध रज  
और अशुद्ध वीर्यसे अशुद्ध गर्भ रहताहै किन्तु गर्भ सम्भव  
न होना ऐसा नहीं होता । क्योंकि बहरे, अन्धे, नकटे  
आदि गर्भकी उत्पत्ति देखी जातीहै । तात्पर्य यह है कि  
“ वीर्यमें तथा रजमें प्राप्तहुआ कुष्ठ सन्तानको कुष्ठी करता-  
है ” ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ कुष्ठे वातादिदोषोत्त्वणताचिह्नम् ।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम् ॥  
पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्त्रावान्वितं म-  
तम् ॥ ४३ ॥ कफात्क्लेदं धनं स्निग्धं  
सकण्डूशैत्यगौरवम् । द्विलिंगं द्वन्द्वजं  
कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ ४४ ॥

खरं कर्कशम् । श्यावारुणं श्यावं वा  
अरुणं वा । प्रकुपितं पूतिकेदबहुलम् । क्लेदम्  
आर्द्रतायुक्तम् । धनं पुष्टम् ॥

वातकी उत्त्वणतावाला कोढ़, खरखरा, श्याम अथवा  
लाल, रूखा और वेदनायुक्त होताहै । पित्तकी उत्त्वणता-  
वाला कोढ़, दुर्गन्धित, अत्यन्त गीला और दाढ़, लाली  
तथा छावसे संयुक्त होताहै । कफकी उत्त्वणतावाला कोढ़  
गीलापनयुक्त, पुष्ट, स्निग्ध, खुजलीसहित, शीतलता लिये  
और भारीपन लिये होता है । जो उपरोक्त लक्षणोंमेंसे दो  
प्रकारके लक्षणोंसे युक्त हो उसको दो दोषोंकी उत्त्वणता-  
वाला जानना । जो तीनप्रकारके लक्षणों युक्त होय  
उस कुष्ठको तीनों दोषोंकी उत्त्वणतावाला जानना  
॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ कुष्ठसाध्यासाध्यता ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकञ्च



यत् ॥ मेदोगं द्वन्द्वजं याप्यं वज्र्यं मज्जा-  
स्थिसंश्रितम् ॥ कृमि तृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं  
यन्निदोषजम् ॥ ४५ ॥

वातश्लेष्माधिकश्च यदेतेन सिध्मैककुष्ठग-  
जचर्मविपादिकाकिटिभालसकानि साध्यानि ।  
मज्जागतं शुक्रगतमपि असाध्यम् । कृमिर्वा-  
ह्योऽपि वज्र्यं इत्यन्वयः ॥

रसमें, रुधिरमें और मांसमें प्राप्त हुआ और वायु तथा  
कफकी उत्पन्नतावाला कोढ़ साध्य है । मेदमें प्राप्त  
हुआ अथवा दो दोषोंकी उत्पन्नतावाला कोढ़ याप्य है ।  
मज्जामें और अस्थियोंमें प्राप्त हुआ, दाह युक्त, मद अग्नि-  
वाला और निदोषकी उत्पन्नतावाला कोढ़ असाध्य है, इस  
कारण वैद्य इसकी चिकित्सा न करे । कृमियोंको उत्पन्न  
करने वाला बाहरका कोढ़ भी असाध्य है । वायु तथा  
कफकी उत्पन्नतावाला कोढ़ भी साध्य है यह जो कहा  
सो ऊपरसेभी सिद्ध होता है कि सिध्म, एककुष्ठ, गज-  
चर्म, विपादिका, किटिभ और अलसक यह वायु तथा  
कफकी उत्पन्नतावाले होनेसे साध्य हैं । मज्जामें प्राप्त हुआ  
और वीर्यमें प्राप्त हुआ भी कोढ़ असाध्य है ॥ ४५ ॥

### अथ कुष्ठारिष्टम् ।

प्रभिन्नं प्रसृतांगश्च रक्तेन च हतस्वरम् ॥  
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठि-  
नम् ॥ ४६ ॥

प्रभिन्नं विदीर्णम् । हतस्वरं वर्धरस्वरम् ।  
पञ्चकर्मगुणातीतमसञ्जातवमनादिपञ्चकर्मगु-  
णम् ॥

फटेहुए अगवाला, टपकता हुआ, लाल नेत्रोंवाला,  
जिसका स्वरभग हो ( आवाज मरगई हो ) और जिसके  
वमन विरेचनादि पञ्चकर्म कुछ भी गुण न करे उसको  
कुष्ठ नष्ट करदेता है ॥ ४६ ॥

अथ कुष्ठनिदानसंभूतस्य श्वित्रस्य  
भेदं किलासमाह ।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं चारुणं  
भवेत् ॥ निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्र-  
वसंश्रयम् ॥ ४७ ॥

कुष्ठैकसम्भवं कुष्ठेन सम्भवो निदान-  
यस्य तत् । अथ श्वित्रस्य भेदमाह-कि-  
लासं चारुणं भवेच्छ्वित्रमेव रक्तमांसाश्रया-  
त्किलासमरुणश्च भवेदित्यर्थः । ननु कुष्ठस्य  
श्वित्रस्य च को भेद इत्यत आह निर्दिष्टम-  
परिस्रावीति । श्वित्रमपरिस्रावि भवति  
कुष्ठन्तु स्रावि । अथ च त्रिधातूद्रवसंश्रय-  
मिति श्वित्रम् । त्रयो धातवो वातपित्त-  
कफास्तेभ्यः पृथग्भूतेभ्य उद्भवो यस्य तत् ।  
अथ त्रयो धातवो रक्तमांसमेदांसि संश्रयो-  
ऽधिष्ठानं यस्य तत् । कुष्ठन्तु सान्निपातिकं  
सर्वधातुगतं भवतीति भेदः ॥

जो निदान कोढ़का कहा है वही निदान श्वित्र कोढ़  
का भी जानना । श्वित्रज रुधिरके आश्रयसे किलास  
कहाजाता है और मांसके आश्रयसे अरुण कहाजाता है  
इसकारण किलास और अरुण भी श्वित्रका भेद है ।  
कोढ़ टपकता है और श्वित्र नहीं टपकता है, कोढ़ वात  
पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है और  
श्वित्र एकदोपसे होता है । कोढ़ रसादि सम्पूर्ण धातुओंमें  
रहता है और श्वित्र रुधिर मांस तथा मेदामें रहता है ।  
इतनाही श्वित्रमें और कोढ़में अन्तर है ॥ ४७ ॥

### अथ दोषभेदेन लक्षणभेदः ।

वाताद्रक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्र-  
वत् ॥ सदाहं रोमविध्वांसि कफाच्छेत्तं  
घनं गुरु ॥ ४८ ॥ सकण्डूक क्रमाद्रक्त-  
मांसमेदःसु चादिशेत् ॥ वर्णनैवेदगुभयं  
कुष्ठं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४९ ॥

अरुणमीषल्लोहितम् । कमलपत्रवदित्य-  
नेन मध्ये श्वेतमन्ते लोहितं बोधयति ।  
घनं पुष्टम् । क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु च  
आदिशेत् । तथा च चरकः-

अरुणं रक्तगेवाते ताम्रं पित्ते पलं गते ।  
श्वेतं श्लेष्माणि मेदःस्थे श्वित्रं कुष्ठं परा-  
परमिति ॥ ५० ॥

उभयं द्विविधमपि श्वित्रं वर्णेन ईदृगेव ।  
अरुणं ताम्रं श्वेतञ्च दोषभेदात् । द्विविधं  
दोषजं व्रणजञ्च । तथा च भोजः—“श्वित्रं  
तु द्विविधं विद्यादोषजं व्रणजं तथा ।” इति ॥

जो वातसे श्वित्र होय तो उसमें रूक्षता तथा कुछेक  
लाली होती है तथा रुधिरसे रहता है । जो पित्तसे उत्पन्न  
हुआ होय तो कमलके पत्रकी समान बीचमें सफेद तथा  
अन्तमें लाल होता है । दाहयुक्त, रोगीको नष्ट करता है  
और मांसमें रहता है । जो कफसे उत्पन्न हुआ होय तो  
सफेद होता है, पुष्ट, भारी, खुजली सहित और भेदमें  
रहता है । श्वित्र दोषसे उत्पन्न होय अथवा व्रणसे उत्पन्न  
हुआ होय तो भी दोषोंके भेदानुसार उसका वर्ण ऊपर-  
हीकी माफिक होता है । वातजनित श्वित्रसे पित्तजश्वित्र  
विशेष भारी होता है और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनित  
श्वित्र विशेष भारी होता है । चरकभी कहता है कि  
“वायुसे उत्पन्न हुआ श्वित्र कुछेक लाल होता है और रुधि-  
रसे रहता है । पित्तसे उत्पन्न हुआ श्वित्र अन्तमें लाल और  
मांसमें रहता है । कफसे उत्पन्न हुआ श्वित्र सफेद होता है  
और भेदमें रहता है । वातजनित श्वित्रसे पित्तजनित श्वित्र  
और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनित श्वित्र विशेष भारी है ।”  
भोज भी कहता है कि “दोषसे उत्पन्न हुआ और व्रणसे  
उत्पन्न हुआ ऐसे श्वित्र दो प्रकारका है” ॥ ४८-५० ॥

अथ श्वित्रस्य साध्यासाध्यता ।

अशुक्लरोमावहलमसृग्युक्तमथो नवम् ॥  
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतो-  
ऽन्यथा ॥ ५१ ॥

अवहलं तनु । अन्यच्च—

गुह्यपाणितलैष्ठिषु जातमप्यचिरन्तनम् ॥  
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धि-  
च्छता ॥ ५२ ॥

गुह्यं मेहनम्भगञ्च । तलमत्र पदतलम् ।  
जातं सुश्रुतेनान्ते जातमिति सामान्यतो  
निर्दिष्टत्वात् । अपि अचिरन्तनम् । नव-  
मपि ॥

जो श्वित्र काले रोमोंका हो, पतला हो, रुधिर युक्त  
हो, तत्कालका नवीन हो और अग्निदग्ध न होय वह  
साध्य है । इसके सिवाय अन्य श्वित्र असाध्य जानना ।  
अन्यत्र भी कहा है कि, जो श्वित्र लिगमें योनिमें हाथके  
पावके तलुओंमें और होठमें उत्पन्न हुआ यदि नवीन भी  
होय तो भी सिद्धिकी इच्छा करनेवाला वैद्य विशेष करके  
उसकी चिकित्सा न करे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ कुष्ठादिरोगाणां संसर्गजत्वम् ।

प्रसङ्गाद्वात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोज-  
नात् ॥ एकशय्यासनाच्चापि वस्त्रमास्या-  
नुलेपनात् ॥ ५३ ॥ कण्डूकुष्ठोपदंशाश्च  
भूतोन्मादव्रणज्वराः ॥ औपसर्गिकरो-  
गाश्च संक्रामन्ति नरान्निरम् ॥ ५४ ॥  
प्रसंगो भैथुनम् ॥

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् ॥  
अतो निन्दितरोगोऽयं कुष्ठं कष्टं प्रकीर्ति-  
तम् ॥ ५५ ॥

एतावता कुष्ठिना कुष्ठं सर्वथा प्रतिकर-  
णीयं न तु उपेक्षणीयम् ॥

भैथुनादिसर्गसे, शरीरके स्पर्शसे, श्वासके मिलनेसे,  
एक शय्यापर सोनेसे, एक साथ भोजन करनेसे, रोगीके  
वस्त्र, रोगीकी धारणकी हुई पुष्पमाला इत्यादि और  
रोगीके लगाये चन्दनादिके अनुलेपन करनेसे, खुजली,  
कोढ़, उपदंश, भूतोन्माद, व्रण, ज्वर और इसके समान  
अन्यान्य रोगभी एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यके शरीरमें  
प्राप्त होते हैं ।

जो मनुष्य कुष्ठ रोगमें मरजाता है फिर उसके दूसरे  
जन्ममेंभी कोढ़ उत्पन्न होता है, अत एव यह कुष्ठ अ-  
त्यन्त निन्दित रोग है, इस कारण यह कष्टरूप कहा जाता-  
है । इसके कहनेका प्रयोजन यह है कि “कुष्ठरोगियोंके  
कोढ़की सर्वथा बहुत कालतक चिकित्सा करनी चाहिये,  
उपेक्षा नहीं करनी चाहिये” ॥ ५३-५५ ॥

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ॥

पित्तोत्तरेषु लेपः सेको रक्तस्य मोचनं  
श्रेष्ठम् ॥ ५६ ॥

वातके उल्वणतावाले कुष्ठमें घृतका उपयोग करे,  
कफकी उल्वणतावाले कुष्ठमें वमन करावे और पित्तकी  
उल्वणतावाले कुष्ठमें लेप करावे, सेचन कराना तथा रुधिर  
निकलवाना ये उत्तम हैं ॥ ५६ ॥

अथ पथ्यादिलेपः ।

पथ्याकरंजसिद्धार्थनिशावल्गुजसैन्धवैः ॥  
विडंगसहितैः पिष्टैर्लेपो मूत्रेण कुष्ठ-  
नुत् ॥ ५७ ॥

अवलगुजः वाकुचीति लोके ॥

हरड, करज, सरसों, हलदी, वावची, सैवानिमक और  
वायविडंग इनकी गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट  
होजाताहै ॥ ५७ ॥

अथ सोमराज्युद्धर्तनम् ।

सोमराजीभवं चूर्णं शृंगवेरसमन्वितम् ॥  
उद्धर्तनमिदं हन्ति कुष्ठमुग्रं कृतास्पदम् ५८ ॥  
सोमराजी वाकुचीति लोके ॥

वाकुचीके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर शरीरपर  
लेप करनेसे उग्र और जमाहुआ कोढ़ भी नष्ट होजाता-  
है ॥ ५८ ॥

अथ पंचनिम्बकावलेहः ।

रसायनं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम् ॥  
मार्कण्डेयप्रभृतिभिर्यत्प्राशुक्तं महर्षिभिः  
॥ ५९ ॥ पुष्पकाले तु पुष्पाणि फल-  
काले फलानि च ॥ संगृह्य पिचुमर्दस्य  
त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ६० ॥ द्विरं-  
शानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् ॥  
त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारूपकरा-  
ग्रयः ॥ ६१ ॥ विडंगसारवाराहीलो-  
हचूर्णं स्मृताः समाः ॥ निशाद्व्यावल्गु-  
जकं व्याधिघातः सशर्करः ॥ ६२ ॥  
कुष्ठमिन्द्रयवा पाठा चूर्णमेषां तु संयु-  
तम् ॥ खदिरासननिम्बानां घनकायेन  
भावयेत् ॥ ६३ ॥ सप्तधा पञ्चनिम्बं तु  
मार्कवस्य रसेन च ॥ त्रिगन्धः शुद्धतनु-

धीमान्योजयेत्तच्छुभे दिने ॥ ६४ ॥  
मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा ॥  
लेह्यमुष्णाम्भसा वापि कोलवृद्ध्या पलं  
भवेत् ॥ जीर्णे तस्मिन्समश्नीयात्त्रिगन्धं  
लघु हितञ्च यत् ॥ ६५ ॥ विचर्चिको-  
दुम्बरपुण्डरीककपालद्वूकिटिभालसादि-  
कम् ॥ शतारुविस्फोटविसर्पमालाः कफ-  
प्रकोपं त्रिविधं किलासम् ॥ ६६ ॥ भग-  
न्दरश्लीपदवातरक्तजडान्धनाडीव्रणशीर्ष-  
रोगान् ॥ सर्वान्प्रमेहान्प्रदरांश्च सर्वा-  
न्दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥ ६७ ॥  
स्थूलोदरः सिंहकृशोदरः स्यात्सुश्लिष्ट-  
सन्धिर्मधुनोपयोगात् ॥ सप्तोपयोगादपि  
ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाश-  
माशु ॥ जीवैश्चिरं व्याधिजराविमुक्तः  
शुभ्रेतरश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥ ६८ ॥

अस्य अयमर्थः । निम्बस्य पुष्पफलत्व-  
क्पत्रमूलानि सर्वाणि समुदितानि द्विगुणानि  
चूर्णितानि भृंगराजस्य रसेन सप्तवारान्भाव-  
येत् । त्रिफलादीनि पाठान्तानि समुदितानि  
एकभागानि चूर्णितानि खदिरासननिम्बका-  
येन भावयेत् ॥ ततः सर्वमेकीकृत्य मध्वादि-  
नाऽवलिह्यात् ॥

ब्रह्माकी कही हुई रसायनको कहताहू कि जिससे  
अनेक रोगोंका नाश होताहै, मार्कण्डेय आदि बड़े बड़े  
ऋषियोंने इसी रसायनको सेवन कियाथा । नीमके फल,  
फूल, छाल और पत्ते प्रत्येक दो दो तोले लेकर वारिक  
चूर्ण बनाकर उस चूर्णको भागरेके रसमें सातवार भावना  
देवे ( फूलके समय फूल ले रखने चाहिये और  
फलके समय फल ले रखने चाहिये ) हरड, बहेडा,  
आमला, सोंठ, भिरच, पीपल, ब्राह्मी, गोखरू, भिलवा,  
चीता, वायविडंगका सार, वाराही कन्द, लोहेका  
चूर्ण, हलदी, दारुहलदी, वापची, अमलतास, मिश्री,  
कुठ, इत्रजी और पाठ ये सब समान भाग  
लेकर चूर्ण बनाकर उस चूर्णको खैर, विजयसार

और नीम इनके गाढे काथकी भावना देवे । पश्चात् मां-  
गरेके रसकी क्रमानुसार सात भावना देवे । फिर इस  
हरड आदिके चूर्णका एक भाग और पूर्वोक्त पचनिम्बका  
चूर्ण दो भाग लेकर इनको एकत्र करके सहतमे अथवा  
पंचतित्त नामक वृतमे, वा खैरमे तथा विजयसारके काथ  
मे अथवा गरम जलके साथ शुभदिनमे चाटे, नित्य नित्य  
अडतालीस अडतालीस रत्ती बढाकर चार तोलेतक इस  
अवलेहको बढाना चाहिये । प्रथम विरेचन आदिसे शरीर  
को शुद्ध करके पश्चात् स्नेहनक्रियासे स्निग्ध करके फिर  
बुद्धिमान् पुरुष इस अवलेहका उपयोग करे । इस अवले-  
हके पचनेपर स्निग्ध, हल्का और हितकारक अन्न भोजन  
करना चाहिये इस अवलेहसे विचर्चिका, औदुम्बर, पुंडरी-  
क, कपाल, ठूठू, क्किटिभ, अलसक आदि, शतारु, वि-  
स्फोटक, विसर्प, गंडमाला, कफका प्रकोप, तीन प्रकारका  
क्वित्र, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जडता, अधता, नाडी-  
त्रण, मस्तककी पीडा, सर्वप्रकारके प्रमेह, सर्वप्रकारके प्रदर  
सर्वप्रकारके जगम और स्थावर विष, ये सब नष्ट होजा-  
तेहैं । इस अवलेहको सहतमे मिलीकर चाटनेसे बडे २  
मोटे पेटवाले मनुष्य भी सिहकी समान पतले पेटवाले हो-  
जातेहैं । और दृढ सवियोवाले होजातेहैं । इस अवलेहको  
सेवन करनेवालेको जो सर्पादि जन्तु कांटे तो वह सर्पादि  
तत्काल मरजातेहैं । इस अवलेहके उपयोग करनेसे  
बहुत कालतक जीतारहताहै । रोग तथा जरा उत्पन्न  
नही होती और चद्रमाकी समान शरीरकी शोभा  
बढतीहै ॥ ५९-६८ ॥

अथ स्वायंभुवगुग्गुलुः ।

शशिलेखा पञ्चपलं तावद्गिरिजस्य गु-  
ग्गुलोस्तु दश ॥ ताप्यस्य पलं त्रितयं द्वे  
लोहस्रावणीकयोश्च पले ॥ ६९ ॥ त्रि-  
फलाकरञ्जपल्लवखदिरंगुडूचीत्रिवृहन्त्यः ॥  
मुस्ताविडङ्गरजनीकुटजत्वङ्गनिम्बवह्नि-  
स्फाकाः ॥ ७० ॥ एतै रचिता वटिकां  
मधुसंमिश्रां गिलेत्प्रातः ॥ गोमूत्रेण च  
कुष्ठं बुदत्यसृग्वातमचिरेण ॥ ७१ ॥  
शिवत्राणि पाण्डुरोगं विषमानुदरप्रमेह-  
गुल्मांश्च ॥ नाशयति बलीपलितं योगः  
स्वायम्भुवो नाम्ना ॥ ७२ ॥

शशिलेखा सोमराजी । गिरिजस्य शि-  
लाजतुनः । ताप्यस्य सुवर्णमाक्षिकस्य ।  
स्रावणीका मुण्डी इति लोके ॥

वापची २० तोले, शिलाजीत ३० तोले, गूगल ४०  
तोले, सोनामाखी १२ तोले, लोहेका चूर्ण २ तोले, गोर-  
खमुडी २ तोले, नागरमोथा २ तोले, वायविडंग २ तोले,  
हरड २ तोले, बहेडा २ तोले, आमले २ तोले, करजके पत्ते  
२ तोले, खैर २ तोले, गिलोय २ तोले, निसोत २ तोले,  
जमालगोटे २ तोले, मोथा २ तोले, हलदी २ तोले, कुडे  
की छाल २ तोले, नीमकी छाल २ तोले, चीता २ तोले,  
और अमलतास २ तोले इन सबको एकत्र पीसकर सह-  
तमे गोलियां बनालेवे । प्रातःकाल गोमूत्रके साथ यह  
गोली खाय तो क्रोध और वातरक्त तत्काल नष्ट होताहै ।  
इस स्वायंभुवनामक गूगलसे बली, पलित, क्वित्र, पांडु,  
उदरके विषम रोग, प्रमेह और गुल्म, भी नष्ट होजा-  
ताहै ॥ ६९-७२ ॥

अथैकविंशतिको गुग्गुलुः ।

चित्रकं त्रिफला व्याषमजाजी कारवी  
वचा ॥ सैन्धवातिविषा कुष्ठं चव्यैला च  
यवासकम् ॥ ७३ ॥ विडङ्गान्यजमोदा  
च मुस्ता चामरदारु च ॥ यावन्त्येतानि  
सर्वाणि तावन्मानन्तु गुग्गुलोः ॥ ७४ ॥  
संकुट्य सर्पिषा सार्द्धं गुटिकां कारये-  
द्भिषक् ॥ प्रातर्भोजनकाले च खादेदमि-  
बलं यथा ॥ ७५ ॥ हन्त्यष्टादश कुष्ठानि  
क्लिमिदुष्टव्रणानि च ॥ ग्रहण्यशौविका-  
रांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥ ७६ ॥ गृध्र-  
सीमथ भग्नश्च गुल्मं चापि नियच्छति ॥  
व्याधीन्कोष्ठगतांश्चापि जयेद्विष्णुरिवा-  
सुरान् ॥ ७७ ॥

चीता, हरड, बहेडा, आमला, सोठ, मिरच, पीपल,  
जीरा, कलौजी, वच, सैन्धानिमक, अतीस, कूट, चव्य,  
इलायची, जवासा, वायविडंग, अजमोद, नागरमोथा और

देवदारु ये सब समान भाग और सबकी बराबर गूगल लेवे सबको एकत्र घीमें खूब कूटकर गोलिया बनालेवे । यह गोली प्रातःकाल भोजनके वख्त अग्निके बलानुसार खाय तो अठारह प्रकारके कोढ़, कृमि, दुष्टग्रण, सग्रहणी, अर्धके विकार, मुखकी पीडा, गलग्रह, गृध्रसी, भग्न और गुल्म ये सब नष्ट होजातेहैं । जिस प्रकार विष्णु अमरको जीततेहैं उसी प्रकार यह गूगल ऊपर कहे रोगोको और कोठेमें प्राप्त हुए रोगोको तत्काल जीतताहै ॥७३-७७॥

अथ कैशोरगुग्गुलुः ।

वातरक्ताधिकारोक्तः पुरः कैशोरकाभि-  
धः ॥ कुष्ठानां वातरक्तानां नाशनं परमौ-  
षधम् ॥ ७८ ॥

वातरक्तके अधिकारमें जो कैशोरक गूगल कहा है उसको भक्षण करनेसे भी कोढ़ और वातरक्त नष्ट होजाताहै ॥७८॥

अथामृतभल्लातकावलेहः ।

भल्लातकप्रस्थयुगं छित्वा द्रोणजले  
क्षिपेत् ॥ प्रस्थद्वयं गुडूच्याश्च क्षुण्णं तत्रा-  
म्भसि क्षिपेत् ॥ ७९ ॥ चतुर्थांशवशेषं  
तु कषायभवतारयेत् ॥ वस्त्रपृते कषाये  
तु वक्ष्यमाणं विनिक्षिपेत् ॥ ८० ॥  
शरावमात्रकं सर्पिर्दुग्धं स्यादाढकं तथा ॥  
सितां प्रस्थमितां दद्यात्प्रस्थार्द्धं माक्षिकं  
क्षिपेत् ॥ ८१ ॥ सर्वाण्येकत्र भाण्डे तु  
पचेन्मृद्वग्निना शनैः ॥ सर्वद्रवे घनीभूते  
पावकादवतारयेत् ॥ ८२ ॥ तत्र क्षे-  
प्याणि चूर्णानि ब्रूमो बिल्वविषामृताः ॥  
वाकुची चाथ दद्रून् पिचुमदों हरी-  
तकी ॥ ८३ ॥ अक्षो धात्री च मंजिष्ठा  
मरिचं नागरं कणा ॥ यवानी सैन्धवं  
मुस्तं त्वंगेला नागकेसरम् ॥ ८४ ॥  
पर्पटं पत्रकं बालमुशीरं चन्दनं तथा ॥  
गोक्षुरस्य च बीजानि कर्कुरो रक्तचन्द-

नम् ॥ ८५ ॥ पृथक्पलार्द्धमानानां  
चूर्णमेषामिह क्षिपेत् ॥ पलमात्रमिदं  
प्रातः समश्रीयाज्जलन हि ॥ ८६ ॥  
नाशयेदवलेहोऽयं पथ्यान्पथ्यानि खादतः ॥  
कुष्ठानि वातरक्तानि सर्वाण्यशींसि से-  
वितः ॥ ८७ ॥ व्यायाममातपं वह्नि-  
मम्लं मांसं दधि स्त्रियम् ॥ तैलाभ्यंगं  
तथाऽध्वानं नरो भल्लातकी त्यजेत् ॥ ८८ ॥

भिलावे १२८ एकसे अठारह तोले लेकर एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, फिर उसमें १२८ तोले गिलोयको कूटकर उसी जलमें डालकर पकावे, जब पकते पकते यह जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब इसको उतार लेवे, इस काथको वस्त्रमें छानकर उसमें ३२ तोले घी २५६ तोले दूध, मिश्री ६४ तोले और सहत ३२ तोले डालकर एक उत्तम पात्रमें मद मद अग्निसे धीरे धीरे पकावे जब यह पकते पकते गाढ़ा होजाय तब अग्निपरसे उतारकर उसमें बेलगिरी, अतीस, गिलोय, वापची, पमार, नीम, हरड, बहेडा, आमला, मजीठ, सोठ, मिरच, पीपल अजवायन, सैधानमक, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, पित्तपापडा, तेजपत्र, सुगंधवाला, खस, चंदन, गोखरूँके बीज, कचूर और लाल चंदन ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर चूर्ण पीसकर भिलावेये तो अमृतभल्लातकावलेह सिद्ध होताहै । इस अवलेहको नित्य प्रातःकाल चार तोले जलके साथ सेवन करे और पथ्य भोजन करे तो कोढ़, वातरक्त और सब प्रकारकी बवासीर नष्ट होजातीहै, इस भिलावेको सेवन करनेवाला मनुष्य कसरत, धूप, अग्नि, खड़े पदार्थ, मांस, दही, मैथुन, तेलकी मालिस और मार्गका चलना त्याग करदेवे ॥ ७९-८८ ॥

अथ महाभल्लातकावलेहः ।

निम्बगोपारुणाः कट्ठा त्रायन्ती त्रिफला  
वनम् ॥ पर्पटावल्लुजानन्तावचाखदिर-  
चन्दनम् ॥ ८९ ॥ पाठाशुण्ठीशटीभार्ङ्गी  
वासाभूनिम्बवत्सकम् ॥ श्यामेन्द्रवारुणी  
मूर्वा विडंगेन्द्रयवानलम् ॥ ९० ॥



हस्तिकर्णामृताद्रेकापटोलरजनीद्वयम् ॥  
 कणारग्वधसप्ताहत्रिवृद्धेनोच्चटाफलम् ॥  
 ॥९१॥ मञ्जिष्ठाङ्गलीरास्त्रानक्तमालपु-  
 नर्नवाः ॥ दन्तीबीजकसारश्च भृङ्गराजं  
 कुरण्टकम् ॥ ९२ ॥ अङ्कोटकश्च शाखोटं  
 द्विपलांशं पृथक्पृथक् ॥ गृहीयात्तानि  
 सर्वाणि जलद्रोणे पचेच्छनैः ॥ ९३ ॥  
 अष्टमांशावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥  
 विधाय वाससा पूतं स्थापयेद्भाजने दृढम् ॥  
 ॥ ९४ ॥ भल्लातकसहस्राणि च्छित्त्वा तु  
 त्र्यर्मेणाम्भसि ॥ पचेदष्टावशेषं तत्कषाय-  
 मवतारयेत् ॥ ९५ ॥ तच्च वस्त्रेण संशोध्य  
 द्वौ कषायौ विमिश्रयेत् ॥ गुडं शतपलं  
 दत्त्वा लेहवत्तत्पचेच्छनैः ॥ ९६ ॥ भल्लातक-  
 सहस्रस्य मज्जान्नं तत्र निक्षिपेत् ॥ त्रिकटु  
 त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥ ९७ ॥  
 सैन्धवं चन्दनं कुष्ठं दीप्यकश्च पलं पृथक् ॥  
 सौगंध्यार्थं क्षिपेत्तत्र चातुर्जातं पलंपलम्  
 ॥ ९८ ॥ महाभल्लातको ह्येष महादेवेन  
 भाषितः ॥ प्राणिनां हितकामेन जये-  
 च्छीघ्रं प्रयोजितः ॥ ९९ ॥ श्वित्रमौदुम्बरं  
 दद्रूमृक्षजिह्वन्तु काकणम् ॥ पुण्डरीकं  
 सचर्मख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥ १०० ॥  
 कण्डूं कापालकं कुष्ठं पामानश्च विपादि-  
 काम् ॥ वातरक्तं षडर्शांसि पाण्डुरोगव्र-  
 णान्क्रिमीन् ॥ १०१ ॥ रक्तपित्तमुदावर्त  
 कासं श्वासं भगन्दरम् ॥ सदाभ्यासेन  
 पलितमामवातं सुदुस्तरम् ॥ १०२ ॥ निर्य-  
 न्त्रणस्तु कथितो विहाराहारमैथुने ॥ कुरुते  
 परमः कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम् ॥  
 ॥ १०३ ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं छिन्ना-  
 तोयं पयोऽथवा ॥ भोजने तु सदा  
 त्याज्यमुष्णमम्लं विशेषतः ॥ १०४ ॥

गोपा श्वेतसारिवा इति लोके । अरुणा  
 अतिविषा । अवल्गुजः सोमराजी बाकुची ।  
 अनन्ता दुरालभा । चन्दनं श्वेतम् । भाङ्गर्या  
 अलाभे कण्टकारीमूलं गृहीयात् । श्यामा  
 कृष्णसारिवा । हस्तिकर्णः हस्तिकन्दः ।  
 सप्ताह्वा छतिम् । रेका बकाइन इति लोके ।  
 वेत्रं कृष्णवेत्रं जलवेतसश्च । उच्चटाफलं  
 श्वेतगुञ्जाफलम् । कुरण्टकः पीतझिण्टी ।  
 अंकोटकः ओल इति लोके । शाखोटं सा-  
 ओडा इति लोके । दीप्यकं यवानी ॥

नीम, सफेद सारिवा, अतीस, वापची, कुटकी,  
 त्रायमान, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पित्तपापडा,  
 धमासा, वच, खैर, सफेद चन्दन, पाद, सोंठ, कचूर,  
 भारंगी ( अगर भारंगी न मिले तो कटेरीकी जड़ लेवे )  
 अड्डसा, चिरायता, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, इन्द्रायन, चुर-  
 नहार, वायविडंग, कुडकी छाल, चीता, हस्तीकंद,  
 गिलोय, बकायन, कडवे परवल, हलदी, दासूहलदी,  
 पीपल, अमलतास, सतौना, निसोत, वेत, सफेदचौट-  
 लीके फल, मज्जठि, गजपीपल, रायसन, करज, पुनर्नवा,  
 जमालगोटा, विजयसार, भागरा, पियावोंसा, अंकोल  
 और सिहोडा ये प्रत्येक पदार्थ अलग अलग आठ आठ  
 तोले लेकर सबको १००० एकहजार २४ चौबीस तोले  
 जलमें धीरे धीरे मंद मंद अग्निसे पकावे, जब पकते  
 पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उसको उता-  
 रकर उत्तम वस्त्रमें छान मजबूत बासनमें भरकर रखदेवे ।  
 फिर १००० एक हजार भिलावोंको छीलकर ३०७२  
 तोले जलमें पकावे जब पकते २ आठवां भाग जल बाकी  
 रहजाय तब उस काथको वस्त्रमें छानकर पहिले काथमें  
 मिला देवे, फिर इस काथमें ४०० चारसौ तोले गुड  
 डालकर धीरे धीरे मंद मंद अग्निसे सीरेकी समान पकावे  
 फिर इसमें १००० एक हजार भिलावोंकी मींग डाले  
 तथा सोंठ, भिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नाग-  
 रमोथा, वायविडंग, चीता, सैधानिमक, चन्दन, कूठ और  
 अजवायन प्रत्येक पदार्थ चारचार तोले पीसकर मिला  
 देवे सुगंधित करनेके लिये दालचीनी, तेजपत्र, इलायची  
 और नागकेसर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डाल देवे

तो ये महामल्लघातकावलेह सिद्ध होता है । यह महादेव-  
जीने पूर्वकालमें प्राणियोंके हितकी इच्छासे कहाथा ।  
इस अवलेहको सेवन करनेसे श्वित्र, औदुम्बर, दाद,  
ऋक्षजिह्व, काकणक, पुंडरीक, चर्मदल, गजचर्म,  
विस्फोट, रक्तमडल, खुजली, कपालकुष्ठ, पामा, विपादिका  
वातरक्त, छे प्रकारकी बवासीर; पांडुरोग, व्रण, कृमि,  
रक्तपित्त, उदावर्त, खौंसी, श्वास, और भगन्दर ये सब  
रोग तत्काल नष्ट होजातेहैं । इस अवलेहका नित्य अभ्यास  
करनेसे सफेदवाल नष्ट होकर काले निकलते हैं और  
दुस्तर आमवात भी नष्ट होजाता है । इस अवलेहको  
सेवन करनेवाले मनुष्यको आहार विहार और मैथुन  
विशेष परहेज रखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है । यह  
अवलेह कांतिको उत्तम करे है और जठराग्निको दीपन  
करता है । इस अवलेहको सेवन करनेके पश्चात् गिले  
यके जलका अथवा दूधका अनुपान करे और भोजनमें  
विशेष करके गरम खटाईका त्यागकर देवे ॥ ८९—१०४

### अथ लघुमंजिष्ठादिकाथः ।

मंजिष्ठा त्रिफला तिका वचा दारुनिशा-  
मयाः ॥ निम्बश्चैषां कृतः काथः सर्वकुष्ठं  
विनाशयेत् ॥ १०५ ॥ वातरक्तं तथा  
कण्डूं पामानं रक्तमण्डलम् ॥ दद्रूं विसर्पं  
विस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥ १०६ ॥

मजीठ, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, वच, देवदारु,  
हलदी, कूठ और नीम इनका काथ बनाकर नित्य पीनेसे  
सर्वप्रकारके कोढ़ नष्ट होजातेहैं । इस काथका अभ्यास  
करनेसे वातरक्त, खुजली, पामा, रक्तमडल, दाद, विसर्प  
और विस्फोटक इन सबका नाश होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

### अथ मध्य मंजिष्ठादिकाथः ।

मंजिष्ठा वाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमर्दकः ॥  
हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शता-  
वरी ॥ १०७ ॥ बला नागबला यष्टी  
मधुकं क्षुरकोऽपि च ॥ पटोलस्य लतो-  
शीरं गुडूची रक्तचन्दनम् ॥ १०८ ॥  
मंजिष्ठादिरयं काथः कुष्ठानां नाशनः

परः ॥ वातरक्तस्य संहर्ता कण्डूमण्डलना-  
शनः ॥ १०९ ॥

मजीठ, वापची, चक्रवड, नीम, हरड, हलदी, आमले,  
अड्डसा, सतावर, खिरैटी, गगेरन, मुलेठी, गोखरू, परव-  
लकी बेल, खस, गिलेय और लालचदन इनका काथ  
बनाकर पीनेसे कोढ़, वातरक्त, खुजली और मडलका नाश  
होजाताहै ॥ १०७—१०९ ॥

### अथ बृहन्मंजिष्ठादिकाथः ।

मंजिष्ठाकुटजामृताधनवचाशुण्ठीहरिद्राद्र-  
यं क्षुद्रारिष्टपटोलतित्तकटुकाभाङ्गीवि-  
डंगाग्निकम् ॥ मूर्वादारुकलिंगभृङ्गसगधा-  
त्रायन्तिपाठावरीगायत्रीत्रिफलाकिरात-  
कमहानिम्बासनारग्वधाः ॥ ११० ॥ श्या-  
मावल्गुजचन्दनं वरुणकं दन्तीकशाखोदकं  
वासा पर्पटसारिवा प्रतिविषाऽनन्ता वि-  
शालाजलम् ॥ मंजिष्ठा प्रथमं कषायमि-  
ति यः संसेवते तस्य तु त्वग्दोषाः सुचिरेण  
यान्ति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश ॥ १११ ॥  
नाशं गच्छति वातरक्तमखिला नश्यन्ति  
रक्तामया वीसर्पस्त्वचि शून्यतानयनजा  
रोगाः प्रशाम्यन्ति च ॥ ११२ ॥

अरिष्टः निम्बः । कलिंगः इन्द्रयवः ।  
भृङ्गः शंगरीया इति । वरी शतावरी । गायत्री  
खदिरः । असनं विजयसारः । श्यामा प्रियंगुः ।  
चन्दनमत्र रक्तं ग्राह्यम् । सारिवा [साइ] ।  
अनन्ता दुरालभा । विशाला इन्द्रवारुणी ।  
जलम् [नेत्रवाला] ॥

मजीठ, कुडकी छाल, गिलेय, नागरमोथा, वच,  
सोठ, हलदी, दारुहलदी, कोटरीका पचांग, नीम, पर-  
वल, कुटकी, भारङ्गी, वायविडग, चित्रक, जुरनहार,  
देवदारु, भांगरा, पीपल, त्रायमान, पाद, सतावर,  
खिर, हरड, बहेडा, आमला, चिरायता, वक्रायन,  
विजयसार, अमलतास, फूलप्रियंगु, वापची,

लाल चन्दन, वरुना, जमालगोटा, सिहोडा, पित्तपापडा, सारिवा, अतीस, धमासों, इन्द्रायन और सुगन्धवाला इनका काथ बनाकर नित्य पीनेसे बहुत पुराने चर्मविकार, अठारह प्रकारके कोढ़, वातरक्त, सम्पूर्ण रुधिरके रोग, विसर्प, त्वचाकी जडता और नेत्रके रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ११०-११२ ॥

### अथ लघुमरिचादितैलम्

मरिचं त्रिवृता मुस्तं हरितालं मनःशिला ॥  
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्द-  
नम् ॥ ११३ ॥ विशाला करवीरश्च क्षीरम-  
र्कसमुद्भवम् ॥ गोमयस्य रसं कुर्यात्प्र-  
त्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ११४ ॥ विषस्या  
र्द्धफलं देयं तैलं प्रस्थमितं कटु ॥ पचे-  
च्चतुर्गुणे नीरे गोमूत्रे द्विगुणे तथा ॥  
॥ ११५ ॥ मरिचाद्यमिदं तैलमभ्य-  
ङ्गात्कुष्ठनाशनम् ॥ एतस्याभ्यंगतः श्वित्रं  
विवर्णं तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ११६ ॥ तैलमे-  
तज्जयेत्कण्डूं पामां सिध्म विचर्चिकाम् ॥  
पुण्डरीकं तथा दद्रूं शून्यतां नित्यसेवि-  
नाम् ॥ ११७ ॥

कालीमिरच, निषोत, नागरमोथा, हरिताल, भैनशिल, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, आकका दूध और गायके गोबरका रस ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेवे, वत्सनाभ विष दो तोले लेवे और सरसोंका तेल ६४ तोलेभर लेवे, इन सबको चौगुने जलमे तथा दुगुने गोमूत्रमें पकावे तो यह 'लघुमरिचाद्य' तैल सिद्ध होताहै । इस तेलकी मालिस करनेसे कोढ़ नष्ट होजाताहै । इस तेलके अभ्यगसे तत्काल श्वित्रकुष्ठका रंग बदलजाताहै । इसको नित्य सेवन करनेसे खुजली, पामा, सिध्म, विचर्चिका, पुण्डरीक, दाद, और शून्यता नष्ट होतीहै ॥ ११३-११७ ॥

### अथ महामरिचाद्यतैलम् ।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्क शकु-  
द्रसः ॥ देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं  
सचन्दनम् ॥ ११८ ॥ विशाला करवी-

रश्च हरितालं मनःशिला ॥ चित्रकं लां-  
गली मुस्तं विडंगं चक्रमर्दकः ॥ ११९ ॥  
शिरीषः कुटजो निम्बः सप्तपर्णोऽमृता  
स्तुही ॥ श्यामाको नक्तमालश्च खदिरो  
बाकुची वचा ॥ १२० ॥ ज्योतिष्मती  
च पलिका विषं द्विपलिकं भवेत् ॥  
आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रश्च चतुर्गु-  
णम् ॥ १२१ ॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे च  
शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ मरिचाद्यमिदं तैलं  
महन्मुनिभिरीरितम् ॥ १२२ ॥ भिषगोतेन  
तैलेन म्रक्षयेत्कौष्ठिकान्ब्रणान् ॥ पामावि-  
चर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च ॥ १२३ ॥  
बलयः पलितं छाया नीलं व्यंगं तथैव  
च ॥ अभ्यंगेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यश्च  
जायते ॥ १२४ ॥ प्रथमे वयसि स्त्रीणां  
यासां नस्यं प्रदीयते ॥ तासामपि जरां  
प्राप्य न स्यातां खलितौ स्तनौ ॥ १२५ ॥  
बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वायुप्रपीडितः ॥  
त्रिभिरभ्यञ्जनैरस्य भवेन्मारुतविक्र-  
मः ॥ १२६ ॥

ज्योतिष्मती मालकांगुनीति लोके ॥

कालीमिरच, निषोत, जमालगोटा, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, कटु, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, हरिताल, भैनशिल, चीता, कलिहारी, नागरमोथा, वायविडग, चकवड, सिरस, इन्द्रजौ, नीम, सतौना, गिलोय, थूहर, श्यामाक, करज, खैर, बाकुची, वच और मालकांगुनी प्रत्येक चार चार तोले लेवे, वत्सनाभ आठ तोले लेवे, सरसोंका तेल दोसौ छप्पन्न २५६ तोले लेवे और गोमूत्र इससे चौगुना लेवे, इन सब पदार्थोंको लोहेके पात्रमें अथवा मट्टीके पात्रमें मन्द मन्द अग्निमें धीरे धीरे पकावे तो यह महामरिचाद्यतैल सिद्ध होताहै । इस मुनियोंके कहेहुए तेलसे वैद्य कोढ़के व्रणोंपर मालिस करावे । इस तेलके अभ्यगसे पामा, विचर्चिका, दाद, काण्डू, और विस्फोटक ये सब नष्ट होतेहैं । तथा शरीरमें बलियोंका पडना, बिना समयही बालोंका सफेद होजाना,

झाया, नीलिका, व्यग ( हार्द ) ये सब नष्ट होकर सुकुमारता उत्पन्न होती है । इस तेलका त्रियोको जो पहिली अवस्थामें नास दिया जाय तो उनके वृद्ध अवस्थामें भी स्तन नहीं गिरते हैं । बैल, घोडा और हाथी जो वायुसे पीडित होंगे तो उनको इस तेलका अभ्यजन किया जाय तो वे पवनके वेगकी समान वेगवाले होजाते हैं ॥ ११८-१२६ ॥

अथ तालकेश्वररसः ।

तालताप्यशिलासूतटंकणाः सिन्धुसंयुताः ॥ गन्धको द्विगुणः सूताच्छङ्खचूर्णञ्च तत्समम् ॥ १२७ ॥ जम्बीराद्विदिनं घृष्टा त्रिशदंशं विषं क्षिपेत् ॥ अस्य माषद्वयं खादेन्महिषीवृतसंयुतम् ॥ १२८ ॥ मध्वाज्यैर्वाकुचीबीजकर्षलिह्यात्ततः परम् ॥ तालकेश्वरनामायं सर्वकुष्ठहरो रसः ॥ १२९ ॥

हरिताल, सोनामाखी, मैनशिल, पारा, सुहागा, सैधानिमफ, पारेसे दूना गन्धक और गन्धककी बराबर शंखका चूर्ण इनको एक दिनतक नीबूके रसमें खरल करके और उसमें तीसभाग वत्सनाभ मिलावे तो यह तालकेश्वर रस सिद्ध होता है । इस रसको भैंसके घीके साथ बारह-रस्ती प्रमाण खाय और इसके ऊपर सहत तथा घीके साथ एक तोला वाकुचीके बीजोंका चूर्ण खाय तो सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होजाते हैं ॥ १२७-१२९ ॥

अथ गलितकुष्ठारिरसः ।

रसो बलिस्ताम्रमयः पुरोऽग्निः शिलाजतु स्याद्विषतिन्दुकश्च ॥ वरा च तुल्यं गगनञ्च सर्वं; करञ्जबीजं सचतुष्टयञ्च ॥ १३० ॥ संमर्द्य सर्वं मधुना वृतेन वृतस्य पात्रे निहितं प्रयत्नात् ॥ कर्पं भजेत्प्रत्यहमस्य पथ्यं शाल्योदनं दुग्धमधुत्रयञ्च ॥ १३१ ॥ विशीर्णकर्णागुलिनासिकोऽपि भवेदनेन स्मरतुल्यमूर्तिः ॥ दारापरित्याग इह प्रदिष्टो जलौदनं तत्र निवद्धमूले ॥ १३२ ॥

पुरो गुग्गुलुः । अग्निश्चित्रकम् । विषतिन्दुकः [कुचिला] । वरा त्रिफला । रसादित्रिफलान्तं सर्वं तुल्यम् । गगनमभ्रकम् । करञ्जबीजञ्च पृथक् चतुर्गुणं रसात् । तत्र कुं वद्धमूले सति जलौदनमेव पथ्यम् ॥

पारा, गधक, तौविकी भस्म, लोहेकी भस्म, गुग्गुचीता, शिलाजीत, कुचिला, हरड, बहेडा और आम यह सब समान भाग लेवे, अभ्रक और करंजके बीज पारेसे चौगुने लेवे इन सब पदार्थोंको एकत्र करके सा और बीमें खरल करके घीके चिकने वासनमें भर रखदेवे तो यह ' गलितकुष्ठारि ' रस सिद्ध होता है । इस रसको नित्य एक तोलाभर खाय और इसके ऊपर ल शालि चावलोका भात, दूध और सहत इन तीनों पथ्योंका पथ्य देवे । जिसके कान, अगुलि और नाक ग गई होंगे वह मनुष्य भी इसके प्रभावसे कामदेव समान शरीरवाला होजाता है । इस रसको सेवन कर वाले मनुष्यको मैथुनका त्याग करना चाहिये । जो कं दृढ जडवाला होगया होय तो इस रसके ऊपर जल तथा भातका पथ्य देवे ॥ १३०-१३२ ॥

अथ सिध्मचिकित्सा ।

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियंगवः सर्धपास्तथा रजनी ॥ एतत्केसरपुष्टं निहन्ति चिरकालजं सिध्म ॥ १३३ ॥

कुष्ठ, मूलीके बीज, फूलप्रियंगू, सरसों, हलदी अं नागकेसर इन छे पदार्थोंका लेप करनेसे बहुत दिनों भी सिध्म नष्ट होजाता है ॥ १३३ ॥

शिखरीरसे न पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्म ॥ क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ १३४ ॥

इस लेपको ' केशरपट्टक ' ऐसा कहते हैं । चि चिट्टेके रससे अथवा हलदीको मिलाकर मूली बीजोंको पीसकर लेप करनेमें सिध्म नष्ट होजाता है ॥ १३४ ॥

दार्वामूलकबीजानि तालकं सुरदारु च ॥ ताम्बूलपत्रं सर्वाणि कार्षिकाणि पृथक्पृथक्

॥ १३५ ॥ शङ्खचूर्णन्तु शाणं स्यात्सर्वा-  
ण्येकत्र वारिणा ॥ प्रलेपयेत्प्रलेपोऽयं  
सिध्मनाशन उत्तमः ॥ १३६ ॥

दारुहलदी, मूलीके बीज, हरिताल, देवदारु और  
नागरवेलके पान ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेवे  
और शंखका चूर्ण चौबीस रत्ती प्रमाण लेवे । इन सबको  
एकत्रित करके जलमें पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट  
होजाताहै । यह प्रलेप सिध्मनाश करनेके लिये उत्तम  
है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

अथ चर्मदलचिकित्सा ।

सलिले चाम्रपेशी तु किञ्चित्सैन्धवसंयुता ॥  
ताम्रपात्रे विनिर्घृष्टा लेपाच्चर्मदलाप-  
हा ॥ १३७ ॥

आम्रपेशी आमचूर इति लोके ।

सलिलेन तु शुष्काणि वृष्ट्वा धात्रीफलानि  
च ॥ कराभ्यां सुखमाप्नोति नरश्चर्मदला-  
न्वितः ॥ १३८ ॥

आमचूरको तात्रेके वासनमें घिसकर उसमें कुछेक  
सैधानिमक डालकर लेप करनेसे चर्मदल नष्ट होजाताहै ।

सुखेहुए आमलोंको जलमें घिसकर लेप करनेसे चर्म-  
दलवाले रोगियोंको सुख प्राप्तहोताहै ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

अथ पामाचिकित्सा ।

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्द्धपलं तथा ॥  
कटुतैलं पचेदाभ्यां सर्वपामाहरं परम् १३९

चार तोले जीरकाद्यतैल और उसमें दो तोले सिंदूर  
सरसोंके तेलमें पकावे । उस तेलको मलनेसे सर्वप्रकारकी  
पामा अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाती है ॥ १३९ ॥

अथादित्यपाकतैलम् ।

मञ्जिष्ठात्रिफलालाक्षालाङ्गलीरात्रिगन्ध-  
कैः ॥ चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं  
परम् ॥ १४० ॥

मजीठ, हरड, बहेडा, आमले, लाख, कलिहारी, हलदी  
और गंधक इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल 'आदित्य-  
पाक' कहाजाताहै इससे पामा अच्छे प्रकारसे नष्ट होजा-  
तीहै ॥ १४० ॥

अथ सधवादिलेपः ।

सैन्धवं चक्रमर्दश्च सर्षपाः पिप्पली तथा ॥  
आरनालेन संपिष्टाः पामाकण्डूहराः  
पराः ॥ १४१ ॥

सैधानमक, चकवड, सरसों और पीपल इनको आर-  
नालनामक काजीमे पीसकर लेप करनेसे छाजन और  
खुजली सब प्रकारकी नष्ट होजाती हैं ॥ १४१ ॥

अथ कच्छूचिकित्सा ।

तत्रार्कतैलम् ।

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् ॥  
नाशयेत्सार्षपं तैलं पामाकच्छूविचर्चि-  
काः ॥ १४२ ॥

हलदीका कल्क डालकर आकके पत्तोंके रसमें पकाया  
हुआ सरसोंका तेल, पामा, कच्छू और विचर्चिकाको नष्ट  
करे है ॥ १४२ ॥

अथ कच्छूराक्षसतैलम् ।

मनः शिलालं कासीसं गन्धाश्म सिन्धु-  
जन्म च ॥ स्वर्णक्षीरी शिलाभेदी शुण्ठी  
कुष्ठश्च मागधी ॥ १४३ ॥ लांगली  
करवीरश्च तद्रूयः क्रिमिहानलः ॥ दन्ती  
निम्बदलं चैभिः पृथक्कर्षमितैर्भिषक् ॥  
॥ १४४ ॥ कल्कीकृत्य पचेत्तैलं कटु  
प्रस्थद्वयोन्मितम् ॥ अर्कसेहुण्डदुग्धेन  
पृथक्पलमितेन च ॥ १४५ ॥ गोमूत्र-  
स्याढकेनापि शनैर्मृदग्निना पचेत् ॥  
अभ्यङ्गेन हरेदेतत्कच्छूदुःसाध्यतामपि ॥  
॥ १४६ ॥ पामानश्च तथा कण्डूं त्वग्व्या-  
धिरुधिरामयान् ॥ कच्छूराक्षसनामेदं  
तैलं हारीतभाषितम् ॥ १४७ ॥

मैनशिल, हरिताल, हीराकसीस, गंधक, सैधानिमक,  
चोक, पाखानभेद, सोठ, कूठ, पीपल, कलिहारी, कनेर,  
चकवड, वायविडग, चीता, जमालगोटा, और नीमके  
पत्तेये प्रत्येक पदार्थ एक २ तोला लेकर इनके कल्कसे १२८



एकसौ अठारस तोले भर सरसोंका तेल पकावे फिर चार तोले आकका दूध, चार तोले थूहरका दूध और दोसौल-  
पन तोले गोमूत्रसे इसको कोमल अग्निमें धीरे धीरे पकावे  
तो यह कच्छूराक्षस नामक तैल सिद्ध होता है, इस  
तेलकी मालिश करनेसे असाध्य कच्छूभी नष्ट होजाती है ।  
हारीतशुनिका कहा हुआ यह तेल पामा, खुजली, चर्मके  
रोग और रुधिरके विकारोंको दूर करे है ॥ १४३-१४७ ॥

अथ कृतमालादिकल्कः ।

कृतमालस्य पत्राणि नक्तमालदलानि च ॥  
द्रोणपुष्पीपलाशानि सर्षपा राजिका  
निशा ॥ १४८ ॥ कुटजो मधुकं मुस्तं  
नागरं रक्तचन्दनम् ॥ धात्री यवानिका  
दारु कल्क एष प्रकल्पितः ॥ १४९ ॥  
उद्धर्तनादयं कल्कः कटुतैलसमन्वितः ॥  
कण्डूं पामां हरत्येव शीतपित्तादिकाग्र-  
दान् ॥ १५० ॥

अमलतासके पत्ते, करजके पत्ते, पमारके पत्ते, सरसों,  
राई, हलदी, इन्द्रजी, मुलठी, नागरमोया, मोठ, लाल  
चंदन, आमले, अजवायन और देवदारु इनका कल्क  
बनाकर सरसोंके तेलमें पकाकर अच्छे प्रकार लगावे तो  
खुजली, पामा और शीतपित्त आदि रोग अवश्य नष्ट  
होजाते हैं ॥ १४८-१५० ॥

अथ दद्रूचिकित्सा ।

कुष्ठं क्रिभिघ्नो दद्रूघ्नो निशासैन्धवसर्षपाः ॥  
अम्लपिष्टः प्रलेपोऽयं दद्रूकुष्ठनिषूदनः  
॥ १५१ ॥ दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः  
काञ्जिकतक्रपिष्टाः ॥ त्रिभिः प्रलेपैरपि  
वद्धमूलां दद्रूश्च कुष्ठश्च विनाशयन्ति १५२ ॥  
कंठेरकः बाबुड तुलसी इति लोके ॥

गण्डिलकारुणं तृणमपि सिद्धार्थ-  
कश्च स्नुहीपत्रम् ॥ त्रयमपि समभागं  
स्यादेपां द्विगुणस्तु दद्रूघ्नः ॥ १५३ ॥ अष्ट-  
गुणे गोतके तानि प्रकृतानि सन्दध्यात् ॥  
दिवसत्रितया दूर्ध्वं सम्यग्निष्पेययेत्तानि ॥

॥ १५४ ॥ वन्योपलेन वृष्टा च दद्रूमा-  
लंपयेत्तेन ॥ सप्ताहाल्लेपोऽयं दद्रूमचिरा-  
दिनाशयति ॥ १५५ ॥

कूठ, वाग्विडग, पमार, हलदी, सैन्धानिमक और  
सरसों इनको नीचूके रसमें पीसकर लगानेसे दाढ़ तथा  
कोढ़ नष्ट होजाता है ।

दूब, हरड, सैन्धानिमक, पमारके बीज और त्रापची  
इनको कांजीमें तथा तक्रमें पीसकर तीन बार लेन कर-  
नेसे दढ़ मूलवाले दाढ़ तथा कोढ़ भी नष्ट होजाता है ।

गडलिक घास, सरसों और थूहरके पत्ते इन सबको  
समान भाग लेवे और इनसे दुगुना चक्रवड लेवे, इन  
सबको अठगुनी छाछमें मिला देवे । फिर तीनदिनके बाद  
इनको अच्छे प्रकार पीसकर प्रथम दाढ़को अग्ने उपलेनसे  
रगड़कर उक्त औषधिका लेपकरे तो तत्काल मातृदिनके  
भीतर दाढ़का नाश होता है ॥ १५१-१५५ ॥

अथ श्वित्रकुष्ठचिकित्सा ।

विभीतकत्वङ्मलपूजतानां कायेन पीतं  
गुडसंयुतेन ॥ अवल्गुजं बीजमपाकरोति  
श्वित्राणि कृच्छ्राण्यपि पुण्डरीकम् ॥ १५६ ॥

मलपूः काकोदुम्बरीका । अवल्गुजं सोम-  
राजी ॥

कुडवमवलगुजबीजं हरितालचतुर्थभाग-  
सम्मिश्रम् ॥ १५७ ॥ मनःशिला तोल-  
कार्द्ध गुञ्जाफलमात्रिमूलश्च ॥ सूत्रेण गवां  
पिष्टं सवर्णताकारकं श्वित्रे ॥ १५८ ॥  
श्वेतं कुष्ठं व्रजत्यस्तं पक्षाघातेनाधिकेन वा ॥  
गिरिकर्ण्यास्तु कृष्णाया मूलेन परिले-  
पितम् ॥ १५९ ॥

गिरिकर्णी नीला अपराजिता ॥

काथः सवाकुचीचूर्णो धात्रीखदिरस्सार-  
योः ॥ शंखेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं संसेवितो  
हरेत् ॥ १६० ॥ मथितेन पित्रेच्छूर्णं का-  
कोदुम्बर्यवलगुजम् ॥ तैलाक्तो वर्मसेवी  
स्यात्तक्राशी श्वित्रहृद्भवेत् ॥ १६१ ॥

मथितं निर्जलं विलोडितं दधि । तत्र  
चतुर्थांशजलयुतं वस्त्रपूतं दधि ॥

बहेडेकी छाल, कटूमरकी जड इनके काथमे गुड डालकर वापचीके कल्कके साथ पिये तो अत्यंत कष्टदायक श्वित्र और पुंडरीक भी नष्ट होजाताहै ।

वापचीके बीज १६ तोले, हरिताल ४ तोले, ६ मासे मैनशिल, चौटली और चीतेकी जड इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्र नष्ट होकर त्वचाका रंग शरीरके वर्णकी समान होजाताहै । काली अपराजिताकी जडका कल्क बनाकर उसका लेप करनेसे आठ दिनमें वा कुछ अधिक दिनोंमें श्वेतकुष्ठ नष्ट होजाताहै ।

आमलौका तथा खैरसारका काथ बनाकर उसमें वापचीका चूर्ण डालकर नित्य पीनेसे श्वित्र, कुद और चंद्रमाकी समान श्वेत कुष्ठ नष्ट होजाताहै । कटूमर तथा वापचीका चूर्ण बनाकर विना पानी मिले दहीमें मिलाकर पीवे, तेलकी मालिसकरके धूपमें बैठा रहे और छालको पीवे तो सफेद कोढ़ नष्ट होजाता है ॥ १५६-१६१ ॥

अथ सोमराजीघृतम् ।

चतुःपलं सोमाराज्याः खदिरस्य पलं  
तथा ॥ पटोलमूल त्रिफला त्रायमाणा  
दुरालभा ॥ १६२ ॥ कल्कार्थं कटुकं  
चापि कार्षिकासूक्ष्मपेषितात् ॥ पलद्वयं  
कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत् ॥ १६३ ॥  
सिद्धं सर्पिरिदं श्वित्रं हन्यादम्भ इवान-  
लम् ॥ अष्टादशानां कुष्ठानां परमं चत-  
दौषधम् ॥ १६४ ॥ सोमराजीघृतं नाम  
निर्मितं ब्रह्मणापुरा ॥ लोकानामुपकाराय  
श्वित्रकुष्ठादिरोगिणाम् ॥ १६५ ॥

इति कुष्ठनिदानाचिकित्साधिकारः ।

वापची १६ तोले, खैरसार ४ तोले, परवलकी जड, हरड, बहेडा, आमला, त्रायमान, धमासा और कुटकी प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर बारीक पीसकर उसमें आठ तोले शुद्ध गुग्गुलु मिला देवे, फिर इस कल्कसे घृतको पकावे तो यह 'सोमराजीघृत' सिद्ध होताहै ।

जिसप्रकार जल अग्निको नष्ट करदेताहै उसीप्रकार यह घी श्वित्रको नष्ट करदेताहै । यह अठारह प्रकारके कोढ़ोंकी उत्तम औषधि है । श्वित्र तथा कुष्ठआदि रोगोंसे पीडित मनुष्योंके हितके लिये ब्रह्माने पूर्वकालमें इस सोमराजी घृतको बनायाथा ॥ १६२-१६५ ॥

इति कुष्ठाधिकारः सपूर्णः ।

अथ शीतपित्तोदरदकोठोत्कोठा-  
धिकारः ।

तत्र शीतपित्तादीनां सन्निकृष्टवि-  
प्रकृष्टनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

शीतमारुतसम्पर्कात्प्रवृद्धौ कफमारुतौ ॥  
पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥  
॥ १ ॥ पिपासारुचिहृल्लासदेहसादाङ्ग-  
गौरवम् ॥ रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य  
लक्षणम् ॥ २ ॥

शीतमारुतसम्पर्कात् पित्तेन स्वहेतुदुष्टेन  
सम्भूय संगम्य बहिः त्वचि अन्तः रुधिरादौ ॥  
विसर्पतः प्रसरतः ॥

शीतल पवनके लगनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए कफ और वायु अपने कारणोंसे दूषित हुए पित्तके साथ मिलकर त्वचा तथा रुधिर आदिमें फैलतेहैं उससे शीतपित्तादि रोग होतेह ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शीतपित्तपूर्वरूपम् ।

पिपासारुचिहृल्लासदेहसादाङ्गगौरवम् ॥  
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्ष-  
णम् ॥ ३ ॥

तृषा, अरुचि, उबकाई, शरीरमें ग्लानि, अगोसे भारीपन, और नेत्रोंमें लाली यह शीतपित्तादिके पूर्व लक्षण है ॥ ३ ॥

अथ शीतपित्तलक्षणम् ।

वरटीदृष्टसंस्थानः शोथः सञ्जायते बहिः ॥  
सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥  
उदरमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे ॥

वाताधिकं शीतपित्तमुदरदस्तु कफा-  
धिकः ॥ ४ ॥

ततैयाके काटनेके समान, खुजलीयुक्त, बहुत पीडायुक्त,  
वमनसहित, ज्वरसयुक्त और दाहसहित जो त्वचामं चक-  
तेसे पड़जातेहैं वह शीतपित्त कहाजाताहै । और उसमें  
वायुकी अत्यंत अधिकता होतीहै ॥ ४ ॥

अथोददलक्षणम् ।

सोत्संगेश्व सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्ड-  
लः ॥ शैशिरः श्लेष्मवहुल उदर इति  
कीर्तितः ॥ ५ ॥

सोत्संगेः मध्यनिमैः । शैशिरः शिशिर-  
नुभवः ॥

बीचमें नीचा, लालीयुक्त, खुजलीवाले जो चकते, शि-  
शिर ऋतुमें होतेहैं वे उदर कहैजातेहैं और उनमें  
कफकी अधिकता होतीहै ॥ ५ ॥

कोठोत्कोठलक्षणम् ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ॥  
मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि  
च ॥ उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्य-  
भिधीयते ॥ ६ ॥

वमन वरावर ठीक खुलकर नहीं होनेमें, पित्त तथा कफ  
चढ़कर और ऊपरको उछलकर आयाहुआ अन्न रुककर  
खुजली और लालीयुक्त जो बहुतसे चकते उत्पन्न होतेहैं  
वह कोठ कहैजातेहैं । एक चकता नष्ट होकर दूसरा  
चकता उत्पन्न होताहै इस कारण यह उत्कोठ और कोठ  
कहाजाताहै ॥ ६ ॥

अथ शीतपित्तादिचिकित्सा ।

शीतपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ॥  
त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्च प्रशस्यते ॥  
॥ ७ ॥ अभ्यंगः कटुतैलेन सेकश्चोष्णेन  
वारिणा ॥ त्रिफलां क्षौद्रसंयुक्तां खादेच्च  
नवकार्पिकाम् ॥ ८ ॥ त्रिफलापुरकृष्णानां  
त्रिपञ्चैकांशयोजिता ॥ गुटिका शीतपि-  
त्ताशोभगन्दरवतां हिता ॥ ९ ॥

सितां त्रिकटुसंयुक्तां गुडमामलकैः सह ॥  
यवानीं खादयेच्चापि सव्योषक्षारसंयु-  
ताम् ॥ १० ॥ आर्द्रकस्य रसः पेयः  
पुराणगुडसंयुतः ॥ शीतपित्तापहः श्रेष्ठो  
वह्निमान्द्यविनाशनः ॥ ११ ॥ सिद्धार्थ-  
रजनीकल्कैः प्रपुत्राटतिलैः सह ॥ कटुतै-  
लेन संमिश्रमेतदुद्धर्तनं हितम् ॥ १२ ॥  
सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्-  
नरः ॥ तस्य नश्यति सप्ताहादुदरदः सर्व-  
देहजः ॥ १३ ॥ घृतं पीत्वा महातिक्तं  
शोणितं मोक्षयेत्तथा ॥ स्निग्धस्विन्नस्य  
संशुद्धिमादौ कोठे समाचरेत् ॥ उत्कोठे  
शुद्धदेहस्य कुष्ठघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ १४ ॥  
निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमि-  
श्राणि नरः प्रयुज्यात् ॥ विस्फोटकण्डू-  
क्रिमिशीतपित्तमुदरदकोठौ च कफश्च  
हनेयात् ॥ १५ ॥

कडवे परवल, नीम और अहसा इनसे वमन करावे  
और हरड, बहेडा, आमला, गूगल तथा पीपल इनसे  
विरेचन देवे, यह शीतपित्तपर हितकारी है । सरसोंके  
तेलकी मालिस करनेसे, गरम जलका सेचन करनेसे,  
सहत्के साथ त्रिफलेको भक्षण करनेसे और नवकार्पिक-  
नामक गूगल खानेसे शीतपित्त नष्ट होताहै ।

त्रिफला ३ भाग, गूगल ५ भाग और पीपल १ भाग,  
इनकी बनावई हुई गोली शीतपित्तवालेको, बवासीरवालेको  
तथा भगन्दर रोगियोंको हितकारी है । यह गोली ' नव-  
कार्पिक गूगल ' इस नामसे कहीजातीहै ।

त्रिकुटेके साथ चीनी खानेमें, गुडके साथ आमलोंको  
खानेसे और सोंठ, भिरच, पीपल तथा जवाखारके साथ  
अजवायनको खानेसे भी शीतपित्त नष्ट होजाताहै ।

अदरकके रसमें पुराना गुड मिलाकर पीनेसे शीतपित्त  
अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाताहै । और मदाग्नि दीपन  
होतीहै ।

सरसों, हलदी, चक्रवड और तिल इनका कल्क  
बनाकर उसमें सरसोंका तेल मिला मालिसकरनेसे शीत-  
पित्त नष्ट होजाताहै ।

जो मनुष्य गुडके साथ अजवायन खाय और पथ्य-भोजन करे तो सम्पूर्ण शरीरमें प्राप्त हुआ उदरद सात दिनमें नष्ट होजाताहै ।

महातिक्तक नामक घृतको पीकर रुविर निकलवानेसे भी उदरद नष्ट होजाता है । कोठ उत्पन्न हुआ होय तो प्रथम स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके विरेचन आदिसे शोधन करे और उत्कोठ हुआ होय तो विरेचनादिसे शुद्ध करके पश्चात् कुष्ठ रोगोकी चिकित्सा करे ।

नीमके पत्ते और आमलोंको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर नित्य खाय तो विसकोटक, खुजली, कृमि, शीत-पित्त, उदरद, कोढ और कफ नष्ट होताहै ॥ ७-१५ ॥

### अथार्द्रकखण्डम् ।

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्याद्गोघृतं कुडवद्भ-  
यम् ॥ गोदुग्धं प्रस्थयुगलं तदर्द्धा शर्करा  
मता ॥ १६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं  
मरिचं विश्वभेषजम् ॥ चित्रकश्च विड-  
ङ्गश्च मुस्तकं नागकेसरम् ॥ १७ ॥  
त्वगेलापत्रकर्चूरं प्रत्येकं पलमात्रकम् ॥  
विधाय पाकं विधिवत्खादेत्तत्पलसंमि-  
तम् ॥ १८ ॥ इदमार्द्रकखण्डं हि प्रात-  
र्भुक्तं व्यपोहति ॥ शीतपित्तमुदरदश्च  
कोठमुत्कोठमेव च ॥ १९ ॥ यक्ष्माणं  
रक्तपित्तश्च कासं श्वासमरोचकम् ॥  
वातगुल्ममुदावर्तं शोथं कण्डूं किमीनपि  
॥ २० ॥ दीपयेदुदरे वह्निं बलं वीर्यश्च  
वर्द्धयेत् ॥ वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्मात्सेव्य-  
मिदं सदा ॥ २१ ॥

इति शीतपित्तोदरदकोठोत्कोठाधिकारः ।

ज्वरख ६४ तोले, गायका घी ३२ तोले, गायका  
दूध १२८ तोले और इससे आबी चीनी लेवे, पीपल,  
पीपलामूल, कालीमिरच, सोठ, चीता, वायविडग, नागर-  
मोथा, नागकेसर, दालचीनी, इलायची, तेजपात और  
कचूर ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर विधिपूर्वक  
पाक बनावे, यह आर्द्रकखण्ड सिद्ध होताहै नित्य प्रातःकाल  
इसमेंसे चार तोले खाय तो इससे शीतपित्त, उदरद,  
कोठ, उत्कोठ, क्षयरोग, रक्तपित्त, खोंसी, श्वास, अरुचि,

वातगुल्म, उदावर्त, सूजन, खुजली और कृमि नष्ट होते-  
हैं । जठराग्नि दीपन होतीहै, बल तथा वीर्यकी वृद्धि  
होतीहै और शरीर पुष्ट होताहै इस कारण इस प्रयोगको  
सदैव सेवन करना चाहिये ॥ १६-२१ ॥

इति शीतपित्तोदरदकोठोत्कोठाधिकारः संपूर्णः ।

## अथ विसर्पाधिकारः ।

### तत्र विसर्पनिदानम् ।

लवणाम्लकटूष्णादिसेवनादोषकोपतः ॥  
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्प-  
णात् ॥ १ ॥

खारी, खट्टे, तीखे और गरम आदि पदार्थोंको सेवन  
करनेसे दोषोंका कोप होकर विसर्प होताहै । यह विसर्प  
सात प्रकारका है और चारों ओर फैलजाताहै इस कारण  
यह विसर्प कहाजाताहै । हरे शाक और शिडाकी आदि  
पदार्थोंसे भी विसर्प होताहै ऐसा चरकाचार्य कहतेहैं ॥ १ ॥

### अथ विसर्पस्य सप्तधात्वम् ।

वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपा-  
तिकः ॥ चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते  
द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ २ ॥

वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक ये चार  
और दो दो दोषोंसे उत्पन्न हुए तीन इस प्रकार विसर्प  
सात प्रकारका जानना ॥ २ ॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफ-  
वातजः ॥ यस्तु कर्दमको घोरः स पित्त-  
कफसम्भवः ॥ ३ ॥

वायुसे तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प आग्नेय कहा-  
जाताहै, कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प ग्रथि कहाजाताहै और  
पित्तसे तथा कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प कर्दमक कहाजाता  
है ॥ ३ ॥

### अथ विसर्पस्य दोषदूष्ये ।

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो  
मलाः ॥ विसर्पाणां समुत्पत्तौ हेतवः  
सप्तधातवः ॥ ४ ॥

त्रयो मलाः वातपित्तकफाः दोषा  
द्रूपका इत्यर्थः । अन्यथा दोषा मला इत्यत्र  
पुनरुक्तिदोषो लघिष्यते ॥

स्निग्ध, लसीका, त्वचा और मांस यह दूषित होतेहैं  
और वे वात, पित्त तथा कफ इन तीनों दोषोंको दूषित  
करतेहैं इस लिये विसर्पकी उत्पत्तिमें ये सात वातु कारण  
रूप हैं ॥ ४ ॥

अथ वातजविसर्पलक्षणम् ।

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ॥  
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्ष-  
वान् ॥ ५ ॥

परीसर्पो विसर्पः । वातज्वरसमव्यथः  
शिरोहृद्वात्रोदरशूलादियुक्तः । भेदः वि-  
दारणेनेव व्यथा । आयामः आकर्षणेनेव  
व्यथा ॥

वातके विसर्पमें वातज्वरकी समान मस्तकमें पीडा,  
हृदयमें गात्रोंमें तथा उदरमें शूल आदि होतेहैं, मृज्जन  
होतीहै, अंग फडकते हैं, सुई चुभोने सरीखी पीडा,  
चीरने सरीखी पीडा, आकर्षण ( खेंचने या चूसने ) की  
समान पीडा, और रोमाच होजातेहैं ॥ ५ ॥

अथ पित्तजविसर्पलक्षणम् ।

पित्ताद्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिलो-  
हितः ॥ ६ ॥

द्रुतगतिः शीघ्रप्रसरणशीलः ॥

पित्तका विमर्ष तत्काल फैलजाताहै, पित्तज्वरके सम्पूर्ण  
लक्षण होतेहैं और अत्यन्त लाल होताहै ॥ ६ ॥

अथ कफजविसर्पलक्षणम् ।

कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमा-  
नरुक् ॥ ७ ॥

कफका विसर्प मृज्जलीयुक्त, स्निग्ध और कफज्वरकी  
समान पीडा होतीहै ॥ ७ ॥

अथ सान्निपातिकविसर्पलक्षणम् ।

सन्निपातसमुत्पन्नश्च सर्वरूपसमन्वितः ॥ ८ ॥

त्रिदोषज विसर्पमें कफ कहे तीनों दोषोंके लक्षण  
होते हैं ॥ ८ ॥

अथ वातपित्तजाम्नेयाख्यविसर्प-  
लक्षणम् ।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिर्मूर्च्छातीसारतृड्-  
भ्रमैः ॥ अस्थिभेदाऽग्निसदनतमकारोच-  
कैर्युतः ॥ ९ ॥ करोति सर्वमङ्गश्च दीप्ता-  
ङ्गारावकीर्णवत् ॥ यंयं देशं विसर्पश्च  
विसर्पति भवेत्ससः ॥ १० ॥ शीता-  
ङ्गाराऽसितो नीलो रक्तो वाशूपचीयते ॥  
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्भुत-  
श्च सः ॥ ११ ॥ मर्मानुसारी वीसर्पः  
स्याद्वातोऽतिबलस्ततः ॥ व्यथेतांगं हरे-  
त्संज्ञां निद्राश्च श्वासमीरयेत् ॥ १२ ॥  
हिध्माश्च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते  
न ना ॥ क्वचिच्छर्मातिग्रस्तो भूमिश-  
य्यासनादिषु ॥ १३ ॥ चेष्टमानस्ततः  
क्लिष्टो मनोदेहप्रमोहवान् ॥ दुष्प्रबोधो-  
ऽभ्रुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १४ ॥

स्फोटैः उपचीयत इति अन्वयः । मर्मा-  
नुसारी उदरहृदयानुसारी । हरेद्विसर्प इति  
अन्वयः । हिध्मां हिक्काम् ईरयेदुपर्युपरि  
प्रेरयेत् । निद्रां मरणरूपाम् । अश्रुते  
प्राप्नोति ॥

वात तथा पित्त इन दोषोंसे विसर्प उत्पन्न हुआ होय  
तो ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतीसार, तृषा, भ्रम, हड्कू-  
टन, अग्निकी मटता, अधकारदर्शन, अरुचि और संपूर्ण  
शरीर दहकते हुए अगारोंकी समान व्याप्त हों, यह विसर्प  
शरीरके जिस-जिस प्रदेशमें फैलताहै वही वही प्रदेश  
नीला वा लाल, अथवा बुझेहुए अगारोंकी समान काला  
होजाताहै और आगसे फूँकनेकी समान फफोले पड़जाते-  
हैं, यह विसर्प शीघ्रगतिवाला है, यह तत्काल उदर और  
हृदयमें गति करताहै इसकारण वायुकी प्रचलतावाला कहा  
जाताहै । यह विसर्प अंगको व्यथित करताहै, सजाको नष्ट  
करदेताहै । निद्राको प्रेरणा करताहै, श्वासके वेगको और  
हिचकीको अधिक बढ़ाताहै, इस अवस्थाको प्राप्तहुआ म-  
नुष्य कहीं भी सुख नहीं पाता, पृथिवीमें, जयनभे, तथा



आसन आदिपर बैठनेमें कहीभी चैन नहीं मिलता, दिन रात तड़फताहै, क्लेशको प्राप्त होताहै, मन् तथा शरीरको क्लेश होनेसे उसके दुर्वोध निद्रा होतीहै, उस दुर्वोध निद्राके होनेसे मृत्यु होतीहै. इसको आग्नेय विसर्प कहतेहै ॥ ९-१४ ॥

अथ वातकफजग्रन्थिविसर्पलक्षणम् ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ॥ रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरा-  
स्त्रायुमांसगम् ॥ १५ ॥ दूषयित्वा तु दीर्घाणां वृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥ ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥ १६ ॥ श्वासकासातिसारास्यशोष-  
हिक्कावभिभ्रमैः ॥ मोहवैवर्ण्यमूर्च्छा-  
ङ्गभङ्गाभिसदनैर्युताम् ॥ इत्ययं ग्रन्थिवी-  
सर्पो वातश्लेष्मप्रकोपजः ॥ १७ ॥

कफेन स्वहेतुदुष्टेन । पवनोऽपि स्वहेतु-  
दुष्टः । तेनायं वातश्लेष्मिकः । तं कफं बहुधा भित्त्वा रक्तं वा दूषयित्वा इति अन्वयः । त्वगादिकमिति रक्तस्य विशेषणम् ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुए कफसे रुकी हुई और अपने कारणोंसे दूषित हुई वायु कफको अनेक प्रकारसे भेद-  
कर बँटेहुए रुधिरवाले मनुष्यके शरीरकी त्वचामें, शिराओंमें, स्नायुओंमें और मांसमें प्राप्त हुए रुधिरको दूषित करके लम्बी, गोल, मोटी, लाल और खरखरी गाँठोंकी पंक्तिको उत्पन्न करेहै, इन गाँठोंके होनेसे तीव्रवेदना, ज्वर, श्वास, खोंसी, अतिसार, शोष, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्च्छा, अँगोंका टूटना और जठराग्निकी मन्दता होतीहै. इन लक्षण और कारणोंसे यह ग्रन्थिवीसर्प वायु तथा कफके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ कहा-  
जाताहै ॥ १५-१७ ॥

अथ कफपित्तजकर्दमविसर्प-  
लक्षणम् ।

कफपित्ताज्ज्वरस्तम्भौ निद्रातन्द्राशिरो-

रुजः ॥ अंगावसादविक्षेपप्रलापारोचक-  
भ्रमाः ॥ १८ ॥ मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्यां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥ आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ॥ १९ ॥ प्राये-  
णामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥ पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ॥ २० ॥ स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोफवान्गुरुः ॥ गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्षिन्नोऽवदीर्यते ॥ २१ ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पृष्टस्नायुशिरागणः ॥ शवगन्धी च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥ २२ ॥

स च सर्पति एकदेशमिति अन्वयः । पिडकैः पीडाकारिभिः अवकीर्णः व्याप्तः । असितः कृष्णः । मेचकः रुक्षकृष्णः । प्राज्योष्मा प्रचुरोष्मा । स्पृष्टः क्षिन्नोऽवदीर्यते, स्पृष्टः सन्नाद्रो भवति विदीर्यते च । पङ्कत्वक् कर्दमवर्णा त्वक् यत्र सः । शीर्ण-  
मांसः गलितमांसः अत एव स्पृष्टस्नायु-  
शिरागणः ॥

कफसे तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाला ज्वर कर्दमक वीसर्प उत्पन्न होताहै तो उसमें ज्वर, जडता, निद्रा, तन्द्रा, मस्तकमें पीडा, अंगोंमें ग्लानि, विक्षेप, ( हाथ पावोंको इधर उधर पटकना ) वक्त्राद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निकी मन्दता, हड्ढूटन, तृषा, इन्द्रियोंमें भारी-  
पन, आमसहित दस्तका आना और मुखादि स्रोतोमं कफ लिपटासा रहताहै । यह विसर्प एक प्रदेशको ग्रहण करताहै । विशेष करके आमाशयमें फैलजाताहै, इसमें विशेष पीडा नहीं होती । अत्यन्त पीली, लाल तथा सफेद, फुसियोंसे व्याप्त हो, स्निग्ध, काला, सखे काले रंगका, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गम्भीर पाकवाला, दूनेसे कालाहोजाय, फट जाय, कीचकी समान त्वचा-  
का रंग हो, मांसको गलाकर गिरा देवे, तथा स्नायु और शिराओंको स्पर्श करे और उसमें मुरदेकी समान वाम आवे उसको कर्दमक विसर्प कहतेहैं ॥ १८-२२ ॥

अथ सान्निपातिकविसर्पलक्षणम् ।

सन्निपातसमुत्थस्तु सर्वरूपसमन्वितः ॥ २३ ॥

सन्निपातसे उत्पन्न हुए विसर्पमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं ॥ २३ ॥

अथ क्षतागंतुनिमित्तकाष्टमवीसर्प-  
लक्षणम् ।

बाह्यहेतोः क्षतात्कुद्धः सरक्तं पित्तमीर-  
यन् ॥ विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलं त्यसदृशै-  
श्चितम् ॥ स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाद्यं  
श्यावशोणितम् ॥ २४ ॥

बाह्यहेतोः शस्त्रप्रहारव्यालदन्तनखाद्या-  
गन्तुहेतोः । श्यावशोणितं कृष्णवर्णरक्तम् ॥

शस्त्र आदिके आघातसे, व्याघ्र सिंह आदि जानवरोंके दांत या नख आदिका लग जाना इत्यादि आगन्तुक कारणोंसे क्षत होकर प्रकोपको प्राप्त हुई वायु रुधिर और पित्तको प्रेरित करके विसर्पको उत्पन्न करेहै, यह विसर्प कुलथीके दानोंकी समान फुसियोंसे व्याप्त होताहै, काले रुधिरयुक्त होता है और सूजन, ज्वर, वेदना तथा दाहसे अत्यन्त पीडित होताहै ॥ २४ ॥

अथ विसर्पोपद्रवाः ।

ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः ॥  
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुप-  
द्रवाः ॥ २५ ॥

ज्वर, अतिसार, वमन, त्वचाका फटना, मांसका फटना, ग्लानि, अरुचि और पकना ये सब विसर्पोंके उपद्रव हैं ॥ २५ ॥

अथ विसर्पस्य साध्यासाध्यता ।

सिद्ध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः  
सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ॥  
पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः  
कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व  
एव ॥ २६ ॥

पित्तात्मकोऽञ्जनवपुः पित्तजः स च कज्ज-  
लवर्णः । सर्व एव साध्या अपि ॥

सान्निपातिक विसर्प और क्षतज विसर्प अपाध्य हैं, पित्ते उत्पन्नहुआ विसर्प जो काले रंगका होय तो असाध्य

है, वातसे उत्पन्न हुआ विसर्प, कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प और विना काले रंगका पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प साध्य है, साध्य विसर्पभी जो मर्मस्थानोंमें उत्पन्न होय तो असाध्य जानने ॥ २६ ॥

अथ विसर्पचिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेचनास्रविमोक्षणैः ॥

उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥

॥ २७ ॥ रास्त्रा नीलोत्पलं दारु चन्दनं

मधुकं वला ॥ घृतक्षीरयुतो लेपो वात-

वीसर्पनाशनः ॥ २८ ॥

चन्दनमत्र रक्तं प्रयोज्यम् ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्दैः सशैवलैः सोत्प-

लकर्दमैश्च ॥ वस्त्रान्तरैः पित्तकृते विसर्पे-

लेपो विधेयः सघृतः सुशीतः ॥ २९ ॥

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ॥

नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविस-

र्पके ॥ ३० ॥

समंगा लज्जालुः ॥

वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्पणे हितम् ॥

वातश्लेष्महरं कर्म ग्रन्थिवीसर्पणे हितम् ॥

॥ ३१ ॥ पित्तश्लेष्मप्रशमनं हितं कर्द-

मसंज्ञके ॥ त्रिदोषजे क्रियां कुर्याद्विसर्पे

त्रितयापहाम् ॥ ३२ ॥ शिरीषयष्टीनत-

चन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः ॥

लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्प-

कुष्ठज्वरशोथहारी ॥ ३३ ॥

नतं तगरम् । चन्दनं रक्तं ग्राह्यम् । इति  
दशांगो लेपः ॥

परिषेकाः प्रलेपाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्क-

लैः ॥ पद्मकोशीरमधुकैश्चन्दनैर्वा विस-

र्पणे ॥ ३४ ॥ भूनिम्बवासाकटु-

कापटोलीफलत्रयीचन्दननिम्बसिद्धः ॥

विसर्पदाहज्वरशोथकण्डूविस्फोटतृष्णाव-

मिहत्कषायः ॥ ३५ ॥ कुष्ठेषु यानि

सर्पाणि त्रिणेषु विविधेषु च ॥

**विसर्पे तानि योज्यानि सेकालेपनभो-  
जनैः ॥ ३६ ॥**

जिनसे दाह उत्पन्न न होय ऐसे विरेचन, वमन तथा लेपन, सेचन और रक्तमोक्षणसे विसर्पका उपचार करना चाहिये, और उपचार करते समय 'यह विसर्प किस दोष से उत्पन्न हुआ है' ऐसा अवश्य ध्यान देना चाहिये ।

रासना, नील कमल, देवदारु, लाल चन्दन, मुलैठी और खिरैटी इनको घी और दूधमें पीसकर लेप करनेसे वातका विसर्प नष्ट होजाताहै ।

कसेरु, सिंघाड़े, पद्माख, गुन्द्रवटेर, सिवार, कमल और कीच इनको पीसकर घीमें मिलाकर वस्त्रमें रखकर शीतल लेप करनेसे पित्तका विसर्प नष्ट होजाताहै ।

हरड, वहेडा, आमला, पद्माख, खस, लज्जावन्ती, कनेर, नरसलकी जड़ और लाल जवासा इनका लेप करनेसे कफका विसर्प नष्ट होताहै ।

आग्नेय नामक विसर्प उत्पन्न होय तो वात तथा पित्तको शमन करना हितकारक है ।

ग्रन्थि नामक विसर्प उत्पन्न हुआ होय तो वायुको तथा कफको शमन करना हितकारी है ।

कर्दमक नामक विसर्प उत्पन्न हुआ होय तो पित्तको तथा कफको शमन करना हितकारी है ।

सांनिपातिक जो विसर्प उत्पन्न होय तो त्रिदोषको शमन करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ।

सिरसकी छाल, मुलैठी, तगर, लालचन्दन, इलायची, वालछड, हलदी, दाहहलदी, कूट और सुगन्धवाला इन दश पदार्थोंको पीसकर, घीमें मिलाकर लेप करनेसे विसर्प, कोढ़, ज्वर और सूजन नष्ट होजातीहै । इसको 'दशांग लेप' कहतेहैं ।

पंचवल्कलोंका अथवा चन्दनका अथवा पद्माख, खस और मुलैठी इनके जलका सेचन करनेसे और गाढा प्रलेप करनेसे विसर्प नष्ट होजाताहै ।

चिरायता, अडूसा, कुटकी, कडवे परबल, हरड, वहेडा, आमले, लाल चन्दन और नीम इनका काय बनाकर पीनेसे विसर्प, दाह, ज्वर, सूजन, खुजली, विस्फोटक, तृषा और वमन ये सब दूर होजातेहैं ।

कुष्ठरोगमें तथा अनेक प्रकारके व्रणोंपर जो जो घी कहेहैं उनका सेचन, लेपन और भोजनमें विसर्प रोगीको उपयोग करावे ॥ २७-३६ ॥

**अथ करंजतैलम् ।**

**करञ्जसप्तच्छदलांगलीकस्तुह्यर्कदुग्धानल-  
भृंगराजैः ॥ तैलं निशामूत्रविषैर्विपकं  
विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ ३७ ॥**

करञ्ज, सतौना, कलिहारी, थूहरका दूध, आकका दूध, चीता, भागरा, हलदी, गोमूत्र और वत्सनाभ इनसे पकाये हुए तेलकी मालिस करनेसे विसर्प, विस्फोट और विचर्चिका नष्ट होजातीहै ॥ ३७ ॥

**कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्तचिकित्सयाप्या-  
शु हरेद्विसर्पान् ॥ सर्वान्विपकान्परिशोध्य  
धीमान्व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ३८ ॥**

इति विसर्पचिकित्सा ।

कुष्ठरोग, स्फोटरोग और मसूरिकारोगमें जो चिकित्सा कहीहै, उसी चिकित्सासे तत्काल विसर्पका हरण करे और बुद्धिमान् वैद्य पके हुए सब विसर्पोंका व्रणकी चिकित्सासे उपचार करे ॥ ३८ ॥

इति विसर्पाधिकारः संपूर्णः ।

**अथ स्नायुरोगाधिकारः ।**

**तत्र स्नायुनिदानं लक्षणं च ।**

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा  
विसर्पवत् ॥ भित्त्वैव तं क्षते तत्र सोष्म-  
मांसं विशोष्य च ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तु-  
निभं सूत्रं तत्पिण्डैस्तक्रशक्तुजैः ॥ शनैः-  
शनैः क्षताद्याति छेदात्तत्कोपमावहेत् ॥  
॥ २ ॥ तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः  
स्थानान्तरे भवेत् ॥ स स्नायुरिति वि-  
ख्यातः क्रियोक्ताऽत्र विसर्पवत् ॥ ३ ॥  
बाह्योर्यदि प्रमादेन च्युट्यते जंघयोरपि ॥  
संकोचं खंजतां चापि छिन्नो नूनं करो-  
त्यसौ ॥ ४ ॥

हाथ, पात्र, आदिगाथाओंमें कोपको-प्राप्त हुआ दोष विसर्पकी समान सूजनको उत्पन्न करेहै, उस सूजनको भेदकर उस क्षतक गरमही मांसको सुखाकर तन्तुकी समान डोरेको उत्पन्न करेहै, उसको स्नायु रोग कहतेहैं और देवभाषामें उसका नाम नहरुवा है ।

इस ढोरेपर तक्रमे पिसे हुए सत्तुओकी लुपडी बांध-  
नेसे धीरे धीरे धत ( घाव ) भेसे बाहर निकलताहै ।  
यह ढोरा जो टूट जाय तो भारी सूजनको उत्पन्न करे  
है । और सपूर्ण निकल जाय तो सूजन गांत होजाती  
है । यह रोग एक स्थानमें गांत होकर फिर दूसरे  
स्थानमें प्रकट होताहै । इस रोगकी चिकित्सा विसर्पकी  
समान करनी चाहिये । जो यह ढोरा मोहसे बाहूमें अथवा  
पांवकी पिण्डलियोंमें टूट जाय तो हाथको ढूँटा और  
पांवको लूला करदेताहै ॥ १-४ ॥

### अथ स्नायुरोगचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथोचितम् ॥  
रामठं शीततोथेन पीतं स्नायुरोगनुत् ॥  
॥ ५ ॥ स्वेदात्स्नायुकमत्युग्रं भेकः कांजि-  
कसाधितः ॥ तद्वद्वूलजं बीजं पिष्टं  
हन्ति प्रलेपनात् ॥ ६ ॥ गव्यं सर्पिस्त्र्यहं  
पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् ॥ पिबेत्स्ना-  
युकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ७ ॥  
मूलं सुपव्या हिमवारिपिष्टं पानादिदं  
तन्तुकरोग्रमुग्रम् ॥ शान्तिं नयेत्सत्रण-  
माशु पुंसां गन्धर्वगन्धेन घृतेन  
पीत्वा ॥ ८ ॥

गन्धर्वगन्धेन गन्धर्वगन्धोऽस्यास्तीति स  
गन्धर्वगन्धः अश्वगन्धः तेन ॥

अतिविषमुस्तकभाङ्गीविश्वौषधपिप्पली-  
विभीतकयः ॥ चूर्णमिदं तन्तुग्रं पुंसा-  
मुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ ९ ॥ शिशुमू-  
लदलैः पिष्टैः कांजिकेन सुसैन्धवैः ॥  
लेपनं स्नायुकव्याधेः शमनं परमं मतम् ॥  
॥ १० ॥ अहिंसमूलकल्केन तोयपिष्टेन  
यत्नतः ॥ लेपसम्बन्धनात्तन्तुर्निःसरेन्नैव  
संशयः ॥ ११ ॥

इति स्नायुकस्य चिकित्सा ।

इस रोगपर स्नेहन, स्वेदन और प्रलेपादि योग्य  
चिकित्सा करनी चाहिये । हींगको पीसकर शीतल जलके  
साथ पीनेसे स्नायुरोग नष्ट होताहै ।

मैंदकको काजीमें पकाकर उसका स्वेद देनेसे स्नायुकी  
उग्र पीडा शांत होतीहै ।

बबूरके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे स्नायुकी पीडा  
गांत होतीहै ।

तीन दिनतक गायका घी पीकर पश्चात् तीन दिन-  
तक निर्गुण्डीका स्वरस पीनेसे अत्यन्त उग्र स्नायुकी पीडा  
भी अवश्य नष्ट होजातीहै ।

कलौजीकी जड़को शीतल जलमें पीसकर पीनेसे स्नायु-  
रोग ( नहरुआ ) अवश्य नष्ट होजाताहै । अथवा असग-  
न्धसे पकाये हुए घृतको पीनेसे त्रणसहित उग्र स्नायुरोग  
नष्ट होताहै ।

अतीस, नागरमोथा, भारगी, सोंठ, पीपल और बहेडा  
इनका चूर्ण करके गरमजलके साथ पीनेमें मनुष्योका  
स्नायुरोग दूर होताहै ।

सैजिनेकी जड़ और पत्ताको सैन्धेनिमकके साथ कांजीमें  
पीसकर लगानेसे स्नायुरोग अवश्य नष्ट होजाताहै ।  
अहिता ( हीस ) की जड़को जलमें पीसकर लेप करनेसे  
स्नायु निकलजाताहै इसमें संशय नहीं ॥ ५-११ ॥

इति स्नायुरोगाधिकारः सपूर्णः ।

### अथ विस्फोटकाधिकारः ।

तत्र विस्फोटकविप्रकृष्टसन्नि-  
कृष्टनिदानम् ।

कटुम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजी-  
र्णाध्यशनात्पैश्च ॥ तथर्तुदोषेण विपर्य-  
येण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥  
त्वचमाश्रित्य ते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य  
च ॥ घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्व-  
रपुरःसरान् ॥ २ ॥

ऋतुदोषेण ऋतुहेतुकशीतोष्णादीनामति-  
योगेन । विपर्ययेण ऋतूचिताहारविहारवै-  
परीत्येन त्वचमाश्रित्य त्वचि विस्फोटान्कुर्व-  
न्ति इत्यर्थः । ज्वरपुरःसराञ्ज्वरपूर्वान् ॥

तीखे ( चरपरे ), खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, दाहकारक,  
रूक्ष, और खारी पदार्थोंसे, अजीर्णसे, भोजनपर  
भोजन करनेसे, वृषका सेवन करनेसे और  
ऋतुओंके फेरफारसे और उन ऋतुओंमें आहार-

विहारकी विपरीततासे कोपको प्राप्त हुए वातादि-  
दोष रुधिर, मांस तथा अस्थियोंको दूषित करके  
ज्वरको उत्पन्न कर त्वचामे सब प्रकारके विस्फोटोको  
उत्पन्न करें हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ विस्फोटसामान्यलक्षणम् ।

अग्निदग्धा इव स्फोटाः सज्वरा रक्तपि-  
त्तजाः ॥ क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा  
इति ते स्मृताः ॥ ३ ॥

रक्तपित्तजाः एतेन सर्वेषु विस्फोटकेषु  
रक्तपित्तयोः प्रधानकारणत्वम् । यथा शूलेषु  
वातस्य तथा वातानुगतिरपि बोद्धव्या ।  
तथा च भोजः—

यदा रक्तश्च पित्तश्च वातेनानुगतं त्वचि ॥  
अग्निदग्धानिभान्स्फोटान्कुरुतः सर्वदेह-  
गान् ॥ ४ ॥

ज्वरयुक्त रुधिर तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ अग्निसे  
जलये हुएकी समान ऐसा फोडा शरीरके किसी एक  
प्रदेशमे अथवा सम्पूर्ण शरीरमे उत्पन्न हो उसको विस्फो-  
टक कहते हैं । जिस प्रकार सर्वप्रकारकी पीडाओंमे  
वायुका प्राधान्य है उसीप्रकार सर्वप्रकारके विस्फोटकोंमे  
रुधिर और पित्तको प्रधानता है, विस्फोटकोंको उत्पन्न  
करनेमे रुधिर तथा पित्तको वायुका सम्बन्ध भी होता है  
ऐसा जानना । क्योंकि भोज कहता है कि “जत्र रुधिर  
तथा पित्त वायुके सम्बन्धी होते हैं तत्र शरीरके एक  
प्रदेशमे अथवा सर्वदेहकी त्वचामे अग्निसे जले हुएकी  
समान फोडोंको उत्पन्न करे हैं” ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वातजविस्फोटलक्षणम् ।

शिरोरुक् शूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम् ॥  
सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्ष-  
णम् ॥ ५ ॥

शूलं तोदरूपम् ॥

मस्तकमे सुई चुभोने सरीखी विशेष पीडा, ज्वर, तृषा,  
स्थियोंका टूटना और कालापन यह वातज विस्फोटके  
लक्षण जानने ॥ ५ ॥

अथ पित्तजविस्फोटकलक्षणम् ।

ज्वरदाहरुजापाकस्त्रावतृष्णासमन्वितम् ॥  
पीतलोहितवर्णश्च पित्तविस्फोटलक्ष-  
णम् ॥ ६ ॥

ज्वर, दाह, वेदना, पकना, स्त्राव, तृषा और पीला  
तथा लालीपन यह पित्तज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ६ ॥

अथ कफजविस्फोटकलक्षणम् ।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डु-  
ताः ॥ यस्मिन्नरुक्चिरात्पाकः स विस्फो-  
टः कफात्मकः ॥ ७ ॥

जाड्यम् जडत्वमंगानाम् ॥

वमन, अरुचि, अगोमें जडता, खुजली, कठिनता,  
पाण्डुवर्ण, पीडारहित, और बहुत समयमें पकना ये कफज  
विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ७ ॥

अथ कफपित्तजविस्फोटकलक्षणम् ।

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैश्च कफपै-  
त्तिकः ॥ ८ ॥

खुजली, दाह, ज्वर और वमन, यह कफ तथा पित्त  
सम्बन्धी विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ८ ॥

अथ वातपित्तजविस्फो-  
टकलक्षणम् ।

वातपित्तकृतो यस्तु तत्र स्यात्तीव्रवेदना ॥ ९ ॥

वायु तथा पित्त इनसे उत्पन्न हुए विस्फोटकमे तीव्र  
वेदना होती है ॥ ९ ॥

अथ वातकफजविस्फोटकलक्षणम् ।

कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिक-  
म् ॥ १० ॥

खुजली, अगोमे जडता और भारीपन इन लक्षणोंसे  
वायु तथा कफ दोनोंका विस्फोटक जानना ॥ १० ॥

अथ त्रिदोषजविस्फोटकलक्षणम् ।

मध्यनिम्नोन्नतान्तश्च कठिनः स्वल्पपाक-  
वान् ॥ दाहरागत्रासमोहच्छर्दिमूर्च्छारु-



जाज्वराः ॥ प्रलापो वेपथुर्मूर्च्छा सोऽसा-  
ध्यश्च त्रिदोषजः ॥ ११ ॥

मोहो विपरीतं ज्ञानम् । मूर्च्छा सर्वथा  
ज्ञानशून्यता ॥

बीचमे नीचा, चारों ओर ऊंचा, कठिन, थोड़े  
पकनेवाला, दाह, लाली, तृषा, मोह, वमन, मूर्च्छा,  
वेदना, ज्वर, वक्वाद कंप और अत्यन्त बेहोशी इनसे  
जानना कि तीनो दोषोंसे उत्पन्न हुआ है, यह विस्फोटक  
असाध्य है ॥ ११ ॥

अथ रुधिरजन्यविस्फोटकलक्षणम् ।  
वेदितव्याश्च रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥  
गुल्माफलसमा रक्ता रक्तेस्त्रावा विदाहिनः ॥  
न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतै-  
रपि ॥ १२ ॥

पैत्तिकेन हेतुना पित्तस्य हेतुना कट्टादिना  
रक्तपित्तस्य तुल्यत्वात् । सिद्धैर्योगशतैरपि ते  
सिद्धिं न समायान्ति ॥

पित्तको कुपित करनेवाले जो कारण हैं उनही कारणोंसे  
रुधिर भी कुपित होता है, इसप्रकार कुपित रुधिरसे उत्पन्न  
हुए विस्फोटक चौटलीकी समान लाल, लाल खाववाले  
और दाह करनेवाले होते हैं । यह विस्फोटक सैंकड़ों सिद्ध  
योगोंसे भी आराम नहीं होते । तीखे आदि जो पदार्थ  
पित्तको कुपित करनेके कारण हैं उनसेही रुधिर भी कुपित  
होना कहा है, उसका कारण यह है कि रुधिर और पित्त  
समान हैं ॥ १२ ॥

अथ विस्फोटकभेदाः ।

एते चाष्टविधा बाह्या आन्तरोऽपि भवेद-  
यम् ॥ तस्मिन्नन्तर्व्यथा तीव्रा ज्वरयुक्ता-  
ऽभिजायते ॥ १३ ॥ यस्मिन्वह्निगते स्वा-  
स्थ्यं न वा तस्य बहिर्गतिः ॥ तत्र वाति-  
कविस्फोटक्रिया कार्या विज्ञानता ॥ १४ ॥

बाहरके विस्फोटक आठ प्रकारके हैं, कि जिनका  
निरूपण ऊपर किया है । जिस प्रकार विस्फोटक  
बाहर होते हैं उसी प्रकार एक भीतर भी होता है ।

और वह नवमा है । भीतरका विस्फोटक होय तो  
भीतर तीव्रपीड़ा होती है, और ज्वरभी होता है । यह

विस्फोटक जो बाहर निकले तो स्वस्थता होती है परन्तु  
समयपर यह विस्फोटक बाहर नहीं निकलता । इस विस्फो-  
टकमे समझकर वैद्य वातसम्बन्धी विस्फोटककी समान  
चिकित्सा करे ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ विस्फोटकोपद्रवाः ।

तृट्श्वासमांससङ्कोचदाहहिकामदज्वराः ॥  
विसर्पमर्मसंरोधास्तेषामुक्ता उपद्रवाः १५ ॥  
मांससंकोचः मांसस्य शठितत्वम् ।  
मर्मसंरोधो मर्मव्यथा । तेषां विस्फोटानाम्  
उपद्रवाणां लक्षणान्तरं केचित्पठन्ति ।  
हिका श्वासोऽरुचिस्तृष्णा सांगमर्दा हृदि  
व्यथा । विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटाना-  
मुपद्रवाः ॥ १६ ॥

तृषा, श्वास, मांसका सङ्कोच, दाह, हिचकी, मद,  
ज्वर, विसर्प, और मर्मोंमें व्यथा ये विस्फोटकके उपद्रव  
जानने ।

कितनेक वैद्य विस्फोटकोंके उपद्रवोंको प्रकारान्तरसे  
कहते हैं । हिचकी, श्वास, अरुचि, तृषा, अगोंका टूटना,  
हृदयमें व्यथा, विसर्प, ज्वर और उबकाई यह विस्फोट-  
कके उपद्रव हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ विस्फोटकस्य साध्यत्वं  
कष्टसाध्यासाध्यता च ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्वि-  
दोषजः ॥ सर्वरूपान्वितो घोरो ह्यसाध्यो  
भूर्युपद्रवः ॥ १७ ॥

एक दोषसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक साध्य है, दो  
दोषोंसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक कष्टसाध्य है, सर्व  
लक्षणोंसे युक्त और अनेक उपद्रवयुक्त विस्फोटक भयकर  
है और असाध्य है ॥ १७ ॥

अथ विस्फोटकचिकित्सा ।

विस्फोटे लघ्नं कार्यं वमनं पथ्यभोज-  
नम् ॥ यथादोषवलं वीक्ष्य युक्तमुक्तं वि-  
रेचनम् ॥ १८ ॥ जीर्णशालियवा मुद्गा

ममूराश्वाढकी तथा ॥ एतान्यन्नानि  
विस्फोटे हितानि मुनयोऽब्रुवन् ॥ १९ ॥  
द्वे पञ्चमूल्यौ रास्ना च दार्व्युशीरं दुरा-  
लभा ॥ गुडूची धान्यकं मुस्तमेषां काथं  
पिवेत्ररः ॥ विस्फोटान्नाशयत्याशु समी-  
रणनिमित्तकान् ॥ २० ॥ द्राक्षाकाशम-  
र्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः ॥ कटुकाला-  
जदुःस्पर्शैः सितायुक्तं तु पैत्तिकम् ॥ २१ ॥  
भूनिम्बसवचावासात्रिफलेन्द्रजवसकैः ॥  
पिन्धुमर्दपटोलाभ्यां कफजे मध्युकशृ-  
तम् ॥ २२ ॥ किराततिक्तकारिष्टयष्ट्या-  
ह्वाम्बुदवासकैः ॥ पटोलपर्पटोशीरत्रिफ-  
लाकौटजान्वितैः ॥ कथितैर्द्वादशांगन्तु  
सर्वविस्फोटनाशनम् ॥ २३ ॥ विस्फोट-  
व्याधिनाशाय तण्डुलाम्बुप्रयोजितैः ॥  
बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कार्यो विजा-  
नता ॥ २४ ॥ छिन्नापटोलभूनिम्बवास-  
कारिष्टपर्पटैः ॥ खदिराब्दयुतैः काथो  
हन्ति विस्फोटकज्वरम् ॥ २५ ॥ चन्दनं  
नागपुष्पञ्च सारिवा तण्डुलीयकम् ॥  
शिरीषवल्कलं जातोलेपः स्याद्दाहनाश-  
नम् ॥ २६ ॥ उत्पलं चन्दनं लोभ्रमुशीरं  
सारिवाद्यम् ॥ जलपिष्टेन लेपेन स्फोट-  
दाहार्तिनाशनम् ॥ २७ ॥ पुत्रजीवस्य  
मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ॥ कालस्फोटं  
विषस्फोटं सद्यो हन्ति सवेदनम् ॥ २८ ॥  
वक्षग्रन्थिं गलग्रन्थिं कर्णग्रन्थिञ्च नाशयेत् ॥  
हन्याच्च स्फोटकं ताम्रं पुत्रजीवो विना-  
शयेत् ॥ २९ ॥

इति विस्फोटस्य चिकित्सा ।

दोषका बलाबल विचार कर लघन, वमन और पथ्य-  
भोजन करावे तथा विरेचन देवे, यह विस्फोटकपर  
हितकारी है ।

पुराने लाल चावल, जौ, मूग, मसूर और अडहर यह  
सब अन्न विस्फोटकरोगीको हितकारी हैं, ऐसा मुनियोंने  
कहा है ।

बृहत्पंचमूल, लघुपंचमूल, रासना, दारुहलदी, खस,  
धमासा, गिलोय, धनियाँ और नागरमोथा इनका काथ  
पीनेसे वातज विस्फोटक नष्ट होताहै ।

दाख, कुम्भेर, खजूर, परवल, नीम, अड्डसा, कुटकी,  
धानकी खीलै और धमासा इनका काथ बनाकर मिश्री  
डालकर पीनेसे पित्तजन्य विस्फोटक नष्ट होताहै ।

चिरायता, वच, अड्डसा, हरड, बहेडा, आमला, इन्द्र-  
जौ, कुडा, नीम और कडवे परवल इनका काथ बनाकर  
सहत डालकर पीनेसे कफजन्य विस्फोटक नष्ट होजाताहै ।

चिरायता, नीम, मुलैठी, नागरमोथा, अड्डसा, कडवे  
परवल, पित्तपापडा, खस, हरड, बहेडा, आमले और  
इन्द्रजौ इन बारह औषधियोंका काथ बनाकर पीनेसे सर्व-  
प्रकारके विस्फोटक नाश होतेहैं । इसको द्वादशांग काथ  
कहतेहैं ।

इन्द्रजौको चावलोके जलमें पीसकर पीनेसे विस्फो-  
टक नष्ट होतेहैं ।

गिलोय, कडवे परवल, चिरायता, अड्डसा, नीम, पित्त-  
पापडा, खैर और नागरमोथा इनका काथ बनाकर पीनेसे  
विस्फोटक ज्वर नष्ट होताहै ।

लालचदन, नागकेसर, सारिवा, चौलाई, सिरसकी  
छाल और चमेली इनका लेप करनेसे विस्फोटकका दाह  
दूर होजाताहै ।

कमल, लालचदन, लोध, खस और दोनों प्रकारकी  
सारिवा इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे विस्फोटककी  
दाहकी पीडा शान्त होजाती है ।

पतिजियाकी मींगकी जलमें पीसकर लेप करनेसे काले  
फोडे, विषैले फोडे, और उनकी वेदना तत्काल शान्त  
होजाती है ।

जियापोतेका लेप करनेसे कोखकी गांठ, गलेकी गांठ,  
कानकी गांठ और लाल फोडे तत्काल नष्ट होजाते-  
हैं ॥ १८-२९ ॥

इति विस्फोटकाधिकारः संपूर्णः ।

अथ फिरंगरोगाधिकारः ।

तत्र फिरंगशब्दनिरुक्तिः ।

फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत् ॥

स्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिव्याधिवि-  
शारदैः ॥ १ ॥

यह रोग फिरग नामक देशमें विशेष करके होताहै,  
इस कारण व्याधियोंको जाननेवाले प्रवीण वैद्य इसको  
फिरग रोग कहतेहैं ॥ १ ॥

अथ फिरंगनिदानम् ।

गन्धरोगः फिरंगोऽयं जायते देहिनां  
ध्रुवम् ॥ फिरंगिणोऽङ्गसंसर्गात्फिरंगिण्याः  
प्रसंगतः ॥ २ ॥ व्याधिरागन्तुजो ह्येष  
दोषाणामत्र संक्रमः ॥ भवेत्तल्लक्षयेदेषां  
लक्षणैर्भिषजांवरः ॥ ३ ॥

फिरंगिण्याः प्रसंगत इति विशेषार्थम् ॥

यह गन्धरोग अर्थात् गंधसे होनेवाला रोग है, यह फि-  
रगी मनुष्योंके संसर्गसे और फिरगदेशकी स्त्रियोंके प्रसंग  
से उत्पन्न होताहै ।

ऐसा होनेसे यह रोग आगन्तुक है और इसमें दोषोंका  
सम्बन्ध पाँछे होता है । उत्तम वैद्य “ कौनसे दोषकी  
वाहुल्यतासे यह रोग हुआ है ” उन दोषोंके लक्षण  
अपनी बुद्धिके अनुसार जाने ।

फिरगी देशकी स्त्रियोंके साथ प्रसंग करनेसे यह रोग  
विशेष करके होताहै इस सूचनानुसार प्रथम वचनसे सम-  
झानेपर भी ठीक रीतिसे कहाहै ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ फिरंगरोगपूर्वरूपम् ।

फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तर-  
स्तथा ॥ बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिंगानि  
च भवे ॥ ४ ॥ तत्र बाह्यः फिरंगः  
स्याद्विस्फोटसदृशोऽल्परुक् ॥ स्फुटितो  
व्रणवद्देहः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ॥  
॥ ५ ॥ सन्धिष्वभ्यन्तरः स स्यादाम-  
वात इव व्यथाम् ॥ शोथश्च जनयेदेष  
कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥ ६ ॥

बाहरका, भीतरका और बाहर तथा भीतर इस प्रकार  
यह रोग तीन प्रकारका है अब इनके लक्षण कहता हूँ ।  
बाहरका फिरग विस्फोटकी समान होताहै, थोड़ी पीडा

होतीहै और व्रणकी समान फूटताहै इस बाहरके फिरग-  
रोगको वैद्य सुखसाध्य कहतेहैं । भीतरका फिरग संधियों-  
में होताहै, आमवातकी समान पीडा करताहै और सूज-  
नको उत्पन्न करताहै । इस भीतरके फिरगको वैद्य कष्ट-  
साध्य कहतेहैं ( तीसरे प्रकारके फिरगमें दोनों प्रकारके  
लक्षण होतेहैं ) ॥ ४-६ ॥

अथ फिरंगस्योपद्रवाः ।

कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मन्द-  
ता ॥ अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरंगोप-  
द्रवा अमी ॥ ७ ॥

कुशता, बलका नाश, नाकका बैठ जाना, अग्निकी  
मदता, अस्थियोंमें शोष, और हड्डियोंका टेढ़ा निरुद्ध हो-  
जाना, यह फिरगके उपद्रव जानने ॥ ७ ॥

अथ फिरंगस्य साध्यत्वं कष्टसाध्या  
साध्यता च ।

बहिर्भवो भवेत्साध्यो नवीनो निरुपद्रवः ॥  
आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमा-  
मयः ॥ ८ ॥ बहिरन्तर्भवो जीर्णो क्षीण-  
स्योपद्रवैर्युतः ॥ व्याप्तो व्याधिरसाध्यो-  
ऽयमित्याहुर्मुनयः पुरा ॥ ९ ॥

बाहरका उत्पन्न हुआ नवीन और उपद्रव रहित  
फिरग साध्य है । भीतरका फिरग कष्टसाध्य है, बाहर  
तथा भीतर इन दोनों प्रकारसे उत्पन्न हुआ, क्षीण शरीर-  
वाले मनुष्योंके उत्पन्न हुआ, पुराना, उपद्रवयुक्त और  
व्याप्त हुआ फिरग रोग असाध्य है, ऐसा प्राचीन ऋषि-  
योंने कहा है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ फिरंगचिकित्सा ।

तत्र कर्पूररसः ।

फिरंगसंज्ञकं रोगं रसः कर्पूरसंज्ञकः ॥  
अवश्यं नाशयेदेतद्वृक्षः पूर्वचिकित्सकाः  
॥ १० ॥ लिख्यते रसकर्पूरप्राशने  
विधिरुत्तमः ॥ अनेन विधिना खादेन्मु-  
खे शोथं न विन्दति ॥ ११ ॥ गोधूम-  
चूर्णं सन्नीय विदध्यात्सूक्ष्मकूपिकाम् ॥  
तन्मध्ये निक्षिपेत्सूतं चतुर्गुणामितं  
भिषक ॥ १२ ॥ ततस्तु गुटिकां

कुर्याद्यथा न दृश्यते बहिः ॥ सूक्ष्मचूर्णे  
लवंगस्य तां वटीमवधूलयेत् ॥ १३ ॥  
दन्तस्पर्शो यथा न स्यात्तथा तामम्भसा  
गिलेत् ॥ ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चाच्छाकाम्ल-  
लवणास्त्यजेत् ॥ श्रममातपजघ्वानं वि-  
शेषात्स्त्रीनिषेवणम् ॥ १४ ॥

रसकपूरको खानेसे फिरंगरोग अवश्य नष्ट होजाताहै,  
ऐसा प्राचीन वैद्योंने कहा है । अब रसकपूर खानेकी  
विधि कहतेहैं कि जिस प्रकार खानेसे मुखमें छाले नहीं  
पड़ते । गेहूँके आटेको पानीमें सानकर उसकी छोटी २  
कुलिये बनालेवे उनमें वैद्य चार २ रत्तीभर रसकपूर  
रखकर गोलियां बनालेवे जिससे कि पारा बाहर न दीखे  
फिर उन गोलियोंको लौंगके बारीक चूर्णमें लुटाकर ऐसी  
शीतिसे पानीके साथ निगलजावे कि जिससे दांत न लगे  
और इसके पश्चात् नागरवेलका पान खाय । रसकपूरको  
खानेवाला मनुष्य शाक, खारीपदार्थ, खट्टे पदार्थ, परिश्रम,  
धूम, मार्ग और मैथुनको त्यागदेवे ॥ १०-१४ ॥

### अथ सप्तशालिवटी ।

पारदष्टङ्गमानः स्यात्खदिरष्टङ्कसंमितः ॥  
आकारकरभश्चापि ग्राह्यष्टङ्कद्वयोन्मितः ॥  
टङ्कत्रयोन्मितं क्षौद्रं खल्वे सर्वं विनि-  
क्षिपेत् ॥ १५ ॥ संमर्द्य तस्य सर्वस्य  
कुर्यात्सप्तवटीभिषक् ॥ स रोगी भक्षयेत्प्रा-  
तरेकैकामम्बुना वटीम् ॥ वर्जयेदम्लल-  
वणं फिरङ्गस्तस्य वश्यति ॥ १६ ॥

पारा २४ रत्ती, कत्था २४ रत्ती, अकरकरा ४८ रत्ती  
और सहत ७२ रत्ती, इन सबको खरलमे डालकर खूब  
पीसकर सात गोलियां बनालेवे, प्रातःकाल एक एक गोली  
जलके साथ खाय और खट्टे तथा खारी पदार्थोंका त्याग-  
कर देवे तो फिरंगरोग नष्ट होजाताहै । यह गोली सप्त-  
शालिवटी इस नामसे कहीजातीहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

### अथ धूमप्रयोगः ।

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावानेव हि गन्ध-

कः ॥ तण्डुलाश्चाक्षमात्राः स्युरेषां कुर्वीत  
कज्जलीम् ॥ १७ ॥ तस्याः सप्तवटीः  
कुर्यात्ताभिर्धूमं प्रयोजयेत् ॥ दिनानि  
सप्त तेन स्यात्किरंगान्तो न संशयः ॥ १८ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला और चावल १ तोला  
इनकी कजली बनाकर सात गोलियें बनालेवे सात दिनतक  
इन गोलियोंका धुआँ पीनेसे फिरंगरोग नष्ट होजाता-  
है ॥ १७ ॥ १८ ॥

पीतपुष्पवलापत्ररसैष्टङ्कमितं रसम् ॥  
हस्ताभ्यां मर्दयेत्तावद्यावत्सूतो न दृश्यते ॥  
ततः संस्वेदयेद्धस्तावेवं वासरसप्तकम् ॥  
॥ १९ ॥ त्यजेत्लवणमम्लञ्च फिरङ्गस्तस्य  
नश्यति ॥ चूर्णयेन्निम्बपत्राणि पथ्यानि-  
म्बाष्टमांशिकाः ॥ धात्री च तावती रात्री  
निम्बषोडशभागिका ॥ २० ॥ शाणमा-  
नमिदं चूर्णमश्नीयादम्भसा सह ॥ फिरंगं  
नाशयत्येव बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥ २१ ॥

चौबीस रत्ती पारेको पीले फूलकी खिरैंटीके पत्तोंके रसमें  
मिलाकर हाथोंसे ऐसा मले कि पारा न दीखे । फिर दोनों  
हाथोंको अग्निसे सेके यह विधि सात दिनतक करे और  
खारी तथा खट्टे पदार्थोंको त्यागदेवे तो फिरंगरोग अवश्य  
नष्ट होजाताहै ।

नीमके पत्तोंका चूर्णकर उसमें आठवेंभाग हरडका चूर्ण  
मिलावे, आठवां भाग आमलोंका चूर्ण मिलावे और सोल-  
हवा भाग हलदीका चूर्ण डाले । इससेसे नित्य चौबीस  
रत्ती चूर्ण जलके साथ खाय तो बाहरका तथा भीतरका  
फिरंगरोग अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ १९-२१ ॥

चोपचीनीभवं चूर्णं शाणमानं समाक्षि-  
कम् ॥ फिरंगव्याधिनाशाय भक्षयेत्लवणं  
त्यजेत् ॥ २२ ॥ लवणं यदि वा त्यक्तं न  
शक्नोति यदा जनः ॥ सैन्धवं स हि  
भुञ्जीत मधुरं परमं हितम् ॥ २३ ॥

चौबीस रत्ती चोपचीनीके चूर्णको सहतमें मिलाकर खावे  
और इसपर निमकका त्याग करदेवे तो फिरंगरोग नष्ट

होजाताहै । जो निमकका त्याग न करसके तो उसके अभावमें सैवानिमक खाय कारण यह है कि सैधानिमक स्वादिष्ट और अत्यन्त हितकारी है ॥ २२ ॥ २३ ॥

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावन्मात्रं तु गन्ध-  
कम् ॥ तावन्मात्रस्तु खदिरस्तेषां कुर्याच्च  
कज्जलीम् ॥ रजनीकैसरचुट्यो जीरयुग्मं  
यवानिका ॥ २४ ॥ चन्दनद्वितयं कृष्णा  
वांसी मांसी च पत्रकम् ॥ अर्द्धकर्षमितं  
सर्वं चूर्णयित्वा च निक्षिपेत् ॥ तत्सर्वं  
मधुसर्पिभ्यां द्विपलाभ्यां पृथक्पृथक् ॥  
॥ २५ ॥ मर्दयेदथ तत्खादेदर्द्धकर्षमितं  
नरः ॥ व्रणः फिरंगरोगोत्थस्तस्यावश्यं  
विनश्यति ॥ २६ ॥ अन्योऽपि चिरजा-  
तोऽपि प्रशाम्यति महाव्रणः ॥ एतद्रक्ष-  
यतः शोथो मुखस्यान्तर्न जायते ॥ २७ ॥  
वर्जयेदत्र लवणमेकविंशतिवासरान् ॥

इति फिरङ्गरोगाधिकारः ।

पारा १ तोला, गन्धक एक तोला और पपरिया कत्या  
एक तोला लेकर कजली बनावे, फिर हल्दी, नागकेसर,  
छोटी इलायची, बड़ी इलायची, जीरा, कालाजीरा,  
अजवायन, चन्दन, लालचन्दन, पीपल, वंगलोचन,  
बालछड और तेजपात इन सबको एकत्र पीसकर आधा-  
तोला चूर्ण उक्त कजलीमें मिलालेवे फिर इन सबको आठ-  
तोले सहतम और आठ तोले घीमें मिलाकर इसमेंसे छे  
मासे नित्य न्याय तो फिरंगरोग अवश्य नष्ट होजाताहै ।  
अन्यान्य व्रण और बहुत दिनोंके पुराने व्रण भी इससे  
अवश्य नष्ट होजातेहैं । इस औषधिके खानेवालेके मुखमें  
सृजन नहीं होती । इस औषधिको इक्कीस दिनतक खाना  
चाहिये ज्वरतक औषधिकरे तबतक निमक नहीं खाना  
चाहिये ॥ २४-२७ ॥

इति फिरंगरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ मसूरिकाधिकारः ।

तत्र मसूरिकाया विप्रकृष्टसन्निकृष्ट-  
निदानं सम्प्राप्तिश्च ।

कटुम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ॥

दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥  
क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषसमुद्भवाः ॥  
जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः ॥  
मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकास्ता मसू-  
रिकाः ॥ २ ॥

क्षारो यवक्षारादिः । विरुद्धाध्यशनाशनैः  
कटुम्लादिविरुद्धान्नाशनैः । अथ च अध्यश-  
नाशनम् अधिकमशनमध्यशनम् । दुष्टनि-  
ष्पावशाकाद्यैः दुष्टं निष्पावशाकम् आद्यश-  
वदान्मध्वालुकादिकैः । प्रदुष्टपवनोदकैः स-  
विषकुसुमादिसंसर्गात् । क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे  
क्रूरग्रहा राहुशनैश्चरादयस्तेषामक्षिणादृष्टैः  
यस्मिन्देसे क्रूरग्रहदृष्टिस्तत्रापि मसूरिकोत्प-  
त्तिरित्यर्थः । मसूराकृतिसंस्थानाः मसूरस्य  
या आकृतिस्तद्वत्संस्थानमाकृतियार्सां ताः ॥

तीखे ( चरपरे ), खट्टे, नमकके तथा जवाखारादि  
खारी और परस्पर विरुद्ध पदार्थ इनको खानेसे, अधिक  
भोजन करनेसे, निष्पाव लोविया, उडद तथा मीठे, खट्टे  
आदि शाकोंको भक्षण करनेसे, विपैले पुष्पादिकके संसर्गसे  
दूषित हुई पवन और जलके योगसे और देशमें राहु तथा  
शनैश्चर आदि क्रूरग्रहोंकी दृष्टि पडनेसे वातादि दोष कुपित  
होकर दूषित हुए रुधिरके साथ मिलकर मसूरकी समान  
आकारवाली फुसिये उत्पन्न होतीहैं उनको मसूरिका कहते-  
हैं ॥ १ ॥ २ ॥

## अथ मसूरिकापूर्वरूपम् ।

तासां पूर्व ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरति-  
भ्रमः ॥ त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्रराग-  
स्तथैव च ॥ ३ ॥

जब मसूरिका होनेको होतीहै तो प्रथम ज्वर आताहै,  
खुजली होतीहै, अंग द्रुटने लगतेहैं, किसी पदार्थ पर  
त्वचि उत्पन्न नहीं होती, भ्रम होताहै, त्वचामें सृजन, वर्ण  
बदल जाताहै और नेत्रोंमें लाली होतीहै ॥ ३ ॥



अथ वातजमसूरिकालक्षणम् ।

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदन्या-  
न्विताः ॥ कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्य-  
निलसम्भवाः ॥ ४ ॥

काली, लाल, रूखी, तीव्र वेदनावाली, कठिन और बहुत समयमें पकनेवाली, ऐसी फुंसी उत्पन्न होयें तो जानना कि वातसे मसूरिका उत्पन्न हुई है ॥ ४ ॥

अथ पित्तजमसूरिकालक्षणम् ।

सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरति-  
भ्रमः ॥ शोषस्ताल्बोष्ठजिह्वानां तृष्णा  
चारुचिसंयुता ॥ ५ ॥ रक्ताः पीताः  
सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः ॥  
भवन्त्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भ-  
वाः ॥ ६ ॥

पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हुई मसूरिकामें सधि, अस्थि और पर्वोंमें भेदन सरीखी पीडा होती है, खाँसी, कंप, किसी पदार्थमें इच्छा नहीं होती, भ्रम, तालु, होठ तथा जीभ सूखजाती है, अरुचिके साथ तृषा बढ़ती है और फुंसी लाल, पीली, सफेद, दाहयुक्त, तीव्र पीडायुक्त और तत्काल पकजाती है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ रुधिरजन्यमसूरिकालक्षणम् ।

विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिस्त-  
था ॥ मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः  
सुदारुणः ॥ रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः  
पित्तलक्षणाः ॥ ७ ॥

रुधिरके कुपित होनेसे जो मसूरिका होती है उसमें अतीसार ( दस्तोका आना ), अंगोका दृटना, दाह, तृषाका लगना तथा अरुचि, मुखमें पाक, आखोंका पकना और अत्यंत दारुण तीव्र ज्वर होता है, यह सब पित्तके प्रकोप सम्बन्धी लक्षण जानने ॥ ७ ॥

अथ कफजमसूरिकालक्षणम् ।

श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा  
मन्दवेदनाः ॥ मसूरिकाः कफोद्भूताश्चि-  
रपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥

कफके प्रकोपसे जो मसूरिका होती है वह सफेद-

चिकनी, अत्यंत मोठी, खुजली, मंदवेदनावाली और बहुत समयमें पकनेवाली ऐसी फुंसी होती है ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजमसूरिकालक्षणम् ।

नीलाश्चिपिटाविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महा-  
रुजः ॥ पूतिस्रावाश्चिरात्पाकाः प्रभूताः  
सर्वदोषजाः ॥ ९ ॥

त्रिदोषसे उत्पन्न हुई मसूरिका नीली, चिपटी, विस्ता-  
रवाली, बीचमें नीची, अत्यंत वेदना युक्त, दुर्गंध,  
स्राववाली और बहुत देरमें पकनेवाली ऐसी फुंसी  
होती है ॥ ९ ॥

अथ सप्तधातुगतमसूरिकाणां पृथक्  
पृथक् लक्षणानि ।

तत्र रसगतमसूरिकालक्षणम् ।

मसूरिकास्त्वचं प्राप्तास्तोयबुद्बुदसन्निभाः ॥  
स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति  
च ॥ १० ॥

त्वचं प्राप्ताः त्वक्छब्देनात्र रस उच्यते  
रसाश्रयत्वात् ॥

रसमें होनेवाली मसूरिका अल्प दोषवाली होती है,  
पानीके बबूलेकी समान और फोडनेसे जलका स्राव  
होता है ॥ १० ॥

अथ रक्तजमसूरिकालक्षणम् ।

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनु-  
त्वचः ॥ साध्या नात्यथदुष्टास्तु भिन्ना  
रक्तं स्रवन्ति च ॥ ११ ॥

साध्या रक्तस्था इत्यर्थः । नात्यर्थदुष्टास्तु  
अत्यर्थं दुष्टशोणिताः पुनर्न साध्याः किन्तु  
कष्टसाध्याः ॥

रुधिरमें रहनेवाली मसूरिका लाल आकारवाली,  
तत्काल पकनेवाली, पतलीत्वचावाली और फोडने पर  
उसमेंसे रुधिर निकलता है, रुधिरमें रहनेवाली मसूरिका  
जो अत्यंत दुष्ट रुधिरवाली न होय तो साध्य है और  
अत्यंत दुष्ट रुधिरवाली होय तो कष्टसाध्य है ॥ ११ ॥

अथ मांसगतमसूरिकालक्षणम् ।

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्त-  
नुत्वचः ॥ गात्रशूलाऽनिशंकण्डूमूर्च्छादा-  
हतृषान्विताः ॥ १२ ॥

मांसम रहनेवाली मसूरिका कठिन, स्निग्ध, बहुत  
समयमें पकनेवाली, पतलीत्वचावाली और गात्रमें शूल,  
निरंतर खुजली, मूर्च्छा, दाह तथा तृषा यह लक्षण होते  
हैं ॥ १२ ॥

अथ मेदोगतमसूरिकालक्षणम् ।

मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदु-  
न्नताः ॥ घोरज्वरपरीताश्चस्थूलाः स्निग्धाः  
सवेदनाः ॥ संमोहाऽरतिसन्तापाः कश्चि-  
दाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १३ ॥

मेदमें होनेवाली मसूरिका मण्डलाकारवाली होतीहैं,  
कोमल, कुछेक ऊंची, मोटी, चिकनी, वेदनायुक्त, भ-  
यकर, ज्वरसे व्याप्त, और बेहोशी, व्याकुलता और सता-  
पसे युक्त होतीहैं, इन मसूरिकाओंसे प्रायः कोईही बचता-  
है ॥ १३ ॥

अथास्थिमज्जागतमसूरिका-  
लक्षणम् ।

क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदु-  
न्नताः ॥ मज्जोत्था भृशसंमोहा वेदनार-  
तिसंयुताः ॥ १४ ॥ भ्रमरेणेव विद्वानि  
कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ॥ छिन्दन्ति मर्म-  
धामानि प्राणानाशु हरन्ति च ॥ १५ ॥

गात्रसमाः गात्रतुल्यवर्णाः । चिपिटाः  
चिपिटाकाराः । मज्जाग्रहणेन अस्थोऽपि  
ग्रहणं तदाधारत्वात् । अत एवाग्रे भ्रमरेणेव  
विद्वानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वत इति । मर्म-  
धामानि मर्मस्थानानि ॥

अस्थि तथा मज्जा रहनेवाली मसूरिका क्षुद्र होती हैं  
गरीबके रंगकी समान वर्णवाली हैं, रूखी, चिपटी, कुछेक  
ऊंची, अत्यंतमोह, वेदना और व्याकुलतासे पीडित होती-  
हैं, मज्जा हड्डियोंका गार हड्डियोंकी रोकनेवाली हैं, जब-  
तक मज्जा हड्डियोंमें रहती है तबतक हड्डियोंकी दृढ़ता-  
है । गारोंमें बिट्टरी खानेकी चाराओरसे होती हैं,

मर्म स्थानोंको छेदनकर देती हैं और प्राणोंको तत्काल  
नष्ट करदेती हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ शुक्रगतमसूरिकालक्षणम् ।

पकाभाः पिडकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चा-  
त्यर्थवेदनाः ॥ स्तैमित्याऽरतिसंमोहदा-  
होन्मादसमन्विताः ॥ १६ ॥ शुक्रजायां  
मसूर्यान्तु लक्षणानि भवन्ति हि ॥ नि-  
र्दिष्टं केवलं चिह्नं जीवनं न तु दृश्यते ॥  
दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोष-  
लक्षणैः ॥ १७ ॥

पकाभाः पकाकारा न तु पकाः ॥  
श्लक्ष्णाः कोमलाः । निर्दिष्टं केवलं चिह्नं  
न तु अस्याश्चिकित्सा युक्ता यतो जीवनं न  
दृश्यते । सप्ताप्येता दोषहेतुं विना न भवन्ति  
दोषमन्तरेण रसादिदुष्टैरसम्भवादत एवोक्तं  
दोषमिश्रा इत्यादिना ॥

वीर्यमें रहनेवाली मसूरिका पकती नहीं, किंतु पक-  
नेकी समान होती है, स्निग्ध, कोमल, अत्यंत वेदनावाली,  
तथा स्तब्धता ( जडता ) हो, बेचैनी, मोह, दाह तथा  
उन्माद होताहै यह वीर्यगत मसूरिका केवल लक्षण जान-  
नेके लिये कही है किंतु इसकी चिकित्सा करनी  
योग्य नहीं है क्योंकि इस मसूरिकाके होनेसे कभी मनुष्य  
बचही नहीं सक्ता ।

दोषके विना रसादिकका दुष्ट होना सम्भव नहीं  
इस कारण ये सातों प्रकारकी मसूरिका दोषोंके विना  
नहीं होती हैं इन सातोंप्रकारकी मसूरिकाओंमें उन उन  
दोषोंके लक्षण ऊपरके दोषोंके सम्बन्धसे जानने १६॥१७

अथ चर्मगतमसूरिकालक्षणम् ।

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्रा प्रलापाऽरतिसं-  
युताः ॥ दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिड-  
काश्चर्मसंस्थिताः ॥ १८ ॥

कंठ रुकजाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और बेचैनी  
होन तो मसूरिका ओंको चर्मजा जाननी । ये चर्मगत  
मसूरिका कष्टसाध्य हैं ॥ १८ ॥

अथ रोमगतमसूरिकालक्षणम् ।

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्त-  
जाः ॥ कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्या  
ज्वरपूर्विकाः ॥ १९ ॥

जिसमें प्रथम ज्वर आवे, रोमांच हो आवे, रोमछिद्रो  
की बराबर ऊंची, लालवर्ण हो, खांसी, और अरुचि स-  
युक्त मसूरिका रोमतक पहुंच जाती हैं, ये मसूरिका कफ  
तथा पित्तसे होती हैं ॥ १९ ॥

अथ मसूरिकायाः सुखसाध्यता ।

त्वग्गता रक्तगाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजा-  
स्तथा ॥ श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या  
मसूरिकाः ॥ एता विनापि क्रियया  
प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ २० ॥

त्वग्गता रसगताः ॥

रसमें प्राप्त हुई, रुधिरमें प्राप्त हुई, पित्तसे उत्पन्न हुई,  
कफसे उत्पन्न हुई और कफ तथा पित्त दोनोंसे उत्पन्न हुई  
मसूरिका सुखसाध्य हैं । प्राणियोंके उत्पन्न हुई ये मसू-  
रिका चिकित्साके विनाभी ग्रांत हो जाती हैं ॥ २० ॥

अथ मसूरिकायाः कष्टसाध्यता ।

वातजा वातपित्तोत्था वातश्लेष्मकृताश्च  
याः ॥ कष्टसाध्या असाध्यास्तु यत्नादेता  
उपाचरेत् ॥ २१ ॥

वातज, वात और पित्त दोनोंसे उत्पन्न हुई और वायु  
तथा कफ इन दोषोंसे उत्पन्न हुई मसूरिका कष्टसाध्य हैं  
इस कारण इनकी चिकित्सा यत्नपूर्वक करनी चाहिये २१

अथ मसूरिकाणामसाध्यता ।

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्या-  
मि लक्षणम् ॥ प्रवालसदृशाः काश्चि-  
त्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः ॥ २२ ॥ लोह-  
जालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः ॥  
आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोष-  
भेदतः ॥ २३ ॥

प्रवालसदृशा इत्यादि-आसां प्रवाल-  
जम्बूफललोहगुटिकातसीफलसदृश्यं वर्ण-

न । अनुक्तवर्णग्रहार्थमाह-आसां बहुविधा  
वर्णा इति ॥

सन्निपातसे ( त्रिदोषसे ) उत्पन्न हुई मसूरिका असाध्य  
हैं, इन मसूरिकाके लक्षण कहता हूं । इस मसूरिकाकी फुसी-  
कोई मूंगेकी समान लाल, कोई जामुनकी समान रंगवाली,  
कोई लोहेकी गोलीकी समान और कोई अलसीके  
फलकी समान रंगवाली होती है इसके सिवाय और भी  
अनेक प्रकारके वर्णवाली होती है ॥ २२ ॥ २३ ॥

कासो हिका प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदा-  
रुणः ॥ प्रलापारतिसूच्छाश्च तृष्णा  
दाहोऽतिघूर्णता ॥ २४ ॥

दाहस्थाने दौर्गन्ध्य इति च पाठः ॥

मुखेन प्रसवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा ॥  
कण्ठे घूर्णुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारु-  
णम् ॥ २५ ॥ मसूरिकाभिभूतस्य यस्यै-  
तानि भिषग्वरैः ॥ लक्षणानीह दृश्यन्ते  
न देयं तस्य भेषजम् ॥ २६ ॥

अतिघूर्णता अतिनिद्रा ॥

प्रलाप, बेचैनी, मूर्च्छा, तृषा, हिचकी, प्रमेह, खांसी,  
तीव्र और दारुण ज्वर, दाह, अत्यंत निद्रा, दुर्गन्धता,  
मुख नाकमेंसे तथा नेत्रोंमेंसे रुधिरका साव, कंठमें घुर-  
घुर शब्दका होना, और दारुण श्वास यह सब लक्षण  
होंगे तो वैद्य उस मसूरिकारोगीको असाध्य समझकर  
औषधि नहीं देवे ॥ २४-२६ ॥

अथ मसूरिकारिष्टम् ।

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निश्व-  
सेत् ॥ स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णा-  
वान्वायुदूषितः ॥ २७ ॥

वायुदूषितः अपतानकादिवातव्याधि-  
दूषितः ॥

मसूरिका रोगसे पीडित जो मनुष्य नाकमेंसे अत्यंत  
श्वास ले, अत्यंत तृषासे पीडित हो और अपतानक  
आदि वातव्याधिवाला होय तो वह रोगी तत्काल मर-  
जाता है ॥ २७ ॥

अथ मसूरिकायां शोथविशेषः ।

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिवन्ध-  
के ॥ तथासफलके वापि दुश्चिकित्स्यः  
सुदारुणः ॥ २८ ॥

दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः दुश्चिकित्स्यः कष्ट-  
साध्यः । दुःशब्दोऽत्र निषेधार्थः तेन असा-  
ध्य इत्येके ॥

काश्चिद्दिनापि यत्नेन सिध्यन्त्याशु मसू-  
रिकाः ॥ दृष्टाः कृच्छ्रतराः काश्चित्का-  
श्चित्सिद्ध्यन्ति वा न वा ॥ काश्चिन्नैव तु  
सिध्यन्ति साध्यमानाः प्रयत्नतः ॥ २९ ॥

मसूरिकाके अतमे हायकी कोहनीके ऊपर, अथवा  
पहुचेपर वा कन्धोंके ऊपर अत्यन्त दारुण मूजन होय तो  
उसको कष्टसाध्य जानना, कितनेक वैद्य इसको असाध्य  
कहते हैं ।

कितनी एक मसूरिका बिनाही चिकित्साके तत्काल  
आराम होजातीहै, कितनी एक मसूरिका अत्यन्त कष्टसाध्य  
भी दीखतीहै, कितनी एक मसूरिका नष्टभी होजातीहै  
अथवा नहीं भी नष्ट होती और कितनी एक मसूरिका  
यत्नपूर्वक चिकित्सा करनेसे भी आरोग्य नहीं होती ॥  
॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ मसूरिकाचिकित्सा ।

मसूरिकायां कुष्ठेषु लेपनादिक्रिया हिता ॥  
पित्तश्लेष्मविंसर्पोक्ता क्रिया चात्र प्रश-  
स्यते ॥ ३० ॥ श्वेतचन्दनकल्कोत्थं  
हिलमोचीर्भवं द्रवम् ॥ पिवेन्मसूरिकार-  
म्भे नैव वा केवलं रसम् ॥ ३१ ॥

हिलमोचिका शाकविशेषः दुरदुरेति लोके ॥  
द्रो पञ्चमूल्यो राज्ञा च धान्युशीरं दुरा-  
लभा ॥ सामृता धान्यकं मुस्तं जयेद्वा-  
तमसूरिकाम् ॥ ३२ ॥ मल्लिष्ठावहुपा-  
ल्लक्षशिरीषोदुम्बरत्वचः ॥ वातजायां मसू-  
र्या स्यात्प्रलेपः सर्वतो हितः ॥ ३३ ॥

बहुपादः ॥

गुडची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः

सह ॥ पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुड-  
संयुतम् ॥ तेन कुप्यति नो वायुः पाकं  
यान्ति मसूरिकाः ॥ ३४ ॥

मोरटम् ऐक्षवं मूलम् ॥

मसूरिकासु भुञ्जीत शालीन्मुद्गमसूरि-  
कान् ॥ रसं मधुरमेवाद्यात्सैन्धवं चाल्प-  
मात्रकम् ॥ पटोलमूलं कथितं मोरटस्व-  
रसं तथा ॥ ३५ ॥

पटोलमूलं कथितमित्यत्र पटोलं कथितं  
चैव वा पाठः ॥

आदावेव मसूर्या तु पित्तजायां प्रयोज-  
येत् ॥ निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलश्चन्द-  
नद्रवम् ॥ ३६ ॥ उशीरं कटुका धात्री  
तथा वासा दुरालभा ॥ एषां पानं शृतं  
शीतमुत्तमं शर्करान्वितम् ॥ ३७ ॥  
मसूर्या पित्तजायान्तु प्रयोक्तव्यं विजा-  
नता ॥ दोहे ज्वरे विसर्पे च व्रणे पित्ता-  
धिकेऽपि च ॥ ३८ ॥ मसूर्यो रक्तजा  
नाशं यान्ति शोणितमोक्षणैः ॥ वासासु-  
स्तकभूनिम्बत्रिफलेन्द्रयवासकम् ॥ ३९ ॥  
पटोलारिष्टकं चापि काथयित्वा समा-  
क्षिकम् ॥ पिवेत्तेन प्रशाम्यन्ति मसूर्यः  
कफसम्भवाः ॥ ४० ॥

इन्द्रः इन्द्रयवः ॥

शिरीषोदुम्बरत्वग्भ्यां खदिरारिष्टजैर्द-  
लैः ॥ कफोत्थासु मसूरीषु लेपः पित्तो-  
त्थितासु च ॥ ४१ ॥ निम्बः पर्पटकः  
पाठा पटोलः कटुरोहिणी ॥ चन्दन द्वे  
उशीरश्च धात्री वासा दुरालभा ॥ ४२ ॥  
एष निम्बादिकः काथः पीतः शर्करया-  
ऽन्वितः ॥ मसूरी सर्वजां हन्ति विसर्पज्व-  
रसंयुताम् ॥ ४३ ॥ उत्थिता प्रविशेद्या  
च तां पुनर्वाह्यतो नयेत् ॥ काश्चनारत्वचः  
काथस्ताप्यचूर्णवचूर्णितः ॥ ४४ ॥  
ताप्यं सुवर्णमाक्षिकम् ॥

धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ॥  
मुखे कण्ठे व्रणे जाते गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥  
अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुका-  
म्बुना ॥ ४५ ॥

गवेधुर्गवेधुका गडगडिया इति लोके ॥  
मधुकं त्रिफला मूर्वा दावी त्वङ्नीलिमु-  
त्पलम् ॥ उशीरलोधमज्जिष्ठाः प्रलेपाश्वयो-  
तने हिताः ॥ ४६ ॥ नश्यन्त्यनेन दृग्जा-  
ता मसूर्यो न भवन्ति च ॥ प्रलेपं चक्षुषोर्द-  
द्याद्दुवारस्य वल्कलैः ॥ ४७ ॥ पञ्चव-  
ल्कलचूणनं क्लेदिनीमवधूलयेत् ॥ भस्म-  
ना केचिदिच्छन्ति केचिद्रोमयरेणुना ॥  
॥ ४८ ॥ सुषवीपन्ननिर्यासं हरिद्राचूर्ण-  
संयुतम् ॥ रोमन्तीज्वरवीसर्पव्रणानां  
शान्तये पिबेत् ॥ ४९ ॥

इति मसूरिकाधिकारः ।

कुष्ठ रोगपर जो लेपन आदि चिकित्सा कही है वही चिकित्सा मसूरिकापर भी हितकारी है ।

कफ और पित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पपर जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा मसूरिकापर भी करनी चाहिये ।

मसूरिकाके उत्पन्न होतेही हिलमोचिका ( एक प्रका-  
रकी नोनिया और हुरहुरनामसे भी प्रसिद्ध है ) के स्वरसमें  
सफेद चन्दनका कल्क डालकर पिये अथवा इकला हिल-  
मोचिकाहीके स्वरसको पीवै ।

लघुपचमूल, बृहत्पचमूल, रासना, आमले, खस,  
धमासा, गिलोय, धनिया और नागरमोथा इनको पीसकर  
पीनेसे वातज, मसूरिका नष्ट होजातीहै ।

मजीठकी छाल, बडकी छाल, पिलखनकी छाल, सिर-  
सकी छाल और गूलरकी छाल इनको एकत्र पीसकर चारों  
ओर लेप करनेसे वातकी मसूरिका नष्ट होजातीहै ।

मसूरिकाके पकनेके समय गिलोय, मुलैठी, दाख,  
ईखकी जड और अनार इनको एकत्र पीसकर गुड डाल-  
कर पीनेसे वायुका प्रकोप नहीं होता और मसूरिका पक-  
जातीहै ।

मसूरिकाउत्पन्न हुई होय तो लाल चावल, मूँग, मसर,  
सधुर रस और कुछेक, सैधानमक इनका भोजन करे ।

पित्तकी मसूरिकामे प्रथम पटोलकी जडका काथ

अथवा पटोलपत्रका काथ ईखकी जडके स्वरसके साथ  
पिये ।

नीम, पित्तपापडा, पाढ, परवल, सफेद चन्दन, लाल  
चन्दन, खस, कुटकी, आमले, अडूसा और धमासा  
इनको एकत्र पीसकर खांड मिलाकर इस शीतल पान-  
कको पीनेसे पित्तकी मसूरिका नष्ट होजातीहै तथा दाह,  
पित्तज्वर, पित्तव्रण और पित्तविसर्प इनपर भी यह हित-  
कारी है ।

रुधिरसे उत्पन्न हुई मसूरिका रुधिर निकलवानेसे नष्ट  
होजातीहै ।

अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, हरड, बहेडा, आमले,  
इन्द्रजौ, जवासा, कडवे परवल और नीम इनका  
काथ बनाकर पीनेसे कफकी मसूरिका शमन होजाती-  
है ।

सिरसकी छाल, गूलरकी छाल, खैरके पत्ते और नीमके  
पत्ते इनका लेप करनेसे कफसम्बन्धी और पित्तसम्बन्धी  
मसूरिका नष्ट होजातीहै ।

नीम, पित्तपापडा, पाढ, कडवे परवल, कुटकी, सफेद  
चन्दन, लाल चन्दन, खस, आमले, अडूसा और लाल  
धमासा इनका काथ बनाकर खांड मिलाकर पीवे तो सर्व  
दोषोंसे उत्पन्न हुई और ज्वर तथा विसर्पवाली मसूरिका  
भी नष्ट होजातीहै ।

जो मसूरिका पहिले बाहर निकलकर फिर भीतर समा-  
जाय तो कचनारकी छालका काथ बनाकर उसमें सोना-  
माखीका चूर्ण डालकर पिये तो मसूरिका फिर बाहर  
निकल आतीहै । मुखमे अथवा गलेमे व्रण हुआ होय तो  
आमले और मुलैठी इनका काथ बनाकर कुछे करावे  
यह हितकारी है ।

गवेधु, धान्य और मुलैठी इनके जलसे नेत्रामे सेचन  
करनेसे मसूरिकासे दूषित हुई आँखें आराम होजाती-  
हैं ।

मुलैठी, बहेडा, आमला, मूर्वा, दाखहलदीकी छाल,  
नीलकमल, खस, लोध और मजीठ, इनका आँखोंपर  
लेप करनेसे अथवा इनको आँखामे लगानेसे मसूरिका  
नष्ट होजातीहै और फिर कभी नहीं होती ।

आँखोंमें मसूरिकाकी पीडा होय तो लिसोडेकी छालको  
पीसकर आँखोंमें गाढ़ा लेप करे ।



मसूरिकामें जो छेद होय तो पचवत्कलका चूर्ण उसके ऊपर छिड़के, कितने एक वैद्य कहतेहैं कि उसके ऊपर राख छिड़के, और कितने एक वैद्य कहतेहैं कि उसके ऊपर सखे गोबरका चूर्ण डालना चाहिये ।

कल्लोजीके पत्तोंका काथ बनाकर उसमें हलदीका, चूर्ण डालकर पिये तो रोमन्तक पहुँची मसूरिका ज्वर विसर्प और त्रण शांत होत होजातेहैं ॥ ३०-४९ ॥

इति मसूरिकाधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ मसूरिकाभेदशीतलाधिकारः ।

तत्र शीतलायाः स्वरूपं भेदः स्तोत्रञ्च ।

देव्या शीतलया क्रान्ता मसूर्यः शीतला वहिः ॥ ज्वरयेयुर्यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥ १ ॥ सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्षमहे ॥ ज्वर-पूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥ २ ॥ सप्ताहान्निःसरत्येव सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत् ॥ ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्वलति स्वयम् ॥ ३ ॥ तासां मध्ये यदा काचित्पाकं गत्वा स्फुटेत्स्वेत् ॥ तत्रावधूलनं कुर्याद्वनगोमयभस्मना ॥ ४ ॥ निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत् ॥ जलञ्च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तत्पचेत् ॥ ५ ॥ स्थापयेत्तं स्थले पृथे रम्ये रहसि शीतले ॥ नाशुचिः संस्पृशेत्तन्तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥ ६ ॥ बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि ॥ केचित्प्रयोजयन्त्येव मतं तेषामथ ब्रूये ॥ ७ ॥

जो मसूरिकामें ही शीतलानामक देवीका आवेश हुआ होय तो वह शीतला कहीजातीहै । जिस प्रकार भौतिक विषमज्वर होताहै उसी प्रकार इस शीतलामें ज्वर होताहै, इस शीतलाके सात भेद हैं कि जिनको आगे कहेंगे । प्रथम ज्वर आकर पश्चात् बड़ी बड़ी फुखी शरीरमें उत्पन्न

होय वह बड़ी शीतला कही जातीहै । यह शीतला प्रथम सात दिनमें निकलतीहै, फिर सात दिनमें भरजातीहै और तीसरे सप्ताहमें सूखजातीहै और अपने आप ब्रू-जातीहै । इनमें कोई शीतला पककर फूटे और खवे तो उसके ऊपर अरुन उपलोकी भस्म को बुरकावे और नीमके पत्तों समेत नीमकी टहनियोंसे मक्खियोंको उडावे । ज्वर होय तो भी शीतल जल पीनेको देवे किंतु गरम जल नहीं देवे, शीतला वाले रोगियोंको पवित्र, रमणीक, एकांत और शीतल स्थानमें रखे इस रोगीको कोई अपवित्र मनुष्य नहीं छुवावे और अपवित्र मनुष्यको उसके पास न जाना चाहिये बहुनसे वैद्य तो शीतलामें औषधि देतेही नहीं और कितनेक अवश्य देतेहै । औषधिको देनेवाले वैद्यके सिद्धांत अनुसार इस शीतलाकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १-७ ॥

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यङ् निम्बाक्षबीजसहितां रजनीं पिबन्ति ॥ तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे पीडाकरा जगति शीतलिका विकाराः ॥ ८ ॥

जगत्में जो मनुष्य नीमके बीज बहेडेके बीज और हलदी इनको शीतल जलमें अच्छे प्रकारसे पीसकर पीताहै उसके शरीरमें पीडाकारक शीतलाका विकार कभी भी नहीं होता ॥ ८ ॥

मोचारसेन सहितं सितचन्दनेन वासारेसेन मधुकं मधुकेन चाथ ॥ आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं ते नाप्नुवन्ति भुवि शीतलिकान्विकारान् ॥ ९ ॥

मोचारसेन कदलीस्तम्भजलेन मधुकेन चाथ अथवा मधुना । आदौ पूर्वरूपे ज्वरागमनमात्रे सुमनास्वरसेन जातीपत्रस्वरसेन ॥

जब शीतलाके पूर्वरूपमें ज्वर आवे तो तत्कालही केलेके अर्कके साथ अथवा सफेद चन्दनके रसके साथ अथवा अड़सके रसके साथ या मुलैटीके रसके साथ अथवा चमेलीके पत्तोंके रसके साथ सहित पिये तो शीतलाके विकार नष्ट होजातेहैं ॥ ९ ॥

शीतलासु क्रिया कार्या शीतला रक्षया  
सह ॥ वध्रीयान्निम्बपत्राणि परितो भव-  
नान्तरे ॥ १० ॥ कदाचिदपि नो कार्य-  
मुच्छिष्टस्य प्रवेशनम् ॥ स्फोटेष्वपि सदा-  
हेषु रक्षारेणूत्करो हितः ॥ तेन ते शोषमा-  
यान्ति प्रपाकं न भजन्ति च ॥ ११ ॥  
रक्षारेणूत्करः शुष्कगोमयभस्मचूर्णप्रक्षेपः ॥  
चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया  
सह ॥ एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्व-  
रनाशनः ॥ १२ ॥

शीतलाके रोगभे सम्पूर्ण शीतल क्रिया करे, मंत्रादिकसे  
भूतादिकको दूर करनेके लिये रक्षा करे, घरके चारो ओर  
नीमके पत्ते बाँधे और उस घरमें कभी भी उच्छिष्ट  
( जूठन ) को नही ले जावे ।

शीतलाकी फुसियोमे दाह होय तो उसमे सूखे गोबर  
की राख हितकारी है । भस्म डालनेसे सब फुंसी सूख  
जातीहैं और पकती भी नहीं हैं ।

लालचन्दन, अड्डसा, नागरमोथा, गिलोय और दाख  
इनका हिम बनाकर पीनेसे शीतलाका ज्वर नष्ट होजाता-  
है ॥ १०-१२ ॥

जपहोमोपहारैश्च दानस्वस्त्ययनार्चनैः ॥  
विप्रगोशम्भुगौरीणां पूजनैस्तां शमं  
नयेत् ॥ १३ ॥ स्तोत्रञ्च शीतलादेव्याः  
पठेच्छीतलिकान्तिके ॥ ब्राह्मणः श्रद्धया  
युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतलाः ॥ १४ ॥

जप, होम, बलिदान, स्वस्तिवाचन, पूजन और  
ब्राह्मण, गाय, सदाशिव तथा जगदन्ना इनका अर्चन कर-  
नेसे शीतला शांत होजातीहै ।

जिस मनुष्यके शीतला निकली होय उसके पास ब्राह्मण  
श्रद्धा पूर्वक नीचे लिखा शीतलाके स्तोत्रको पढ़े, इसके  
पढ़नेसे शीतला शांत होजातीहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ शीतलास्तोत्रम् ।

अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव ऋषिः  
अनष्टप छन्दः ॥ शीतला देवता शीतलो-  
पद्रवशान्त्यथ जपे विनियोगः ॥ १५ ॥

स्कन्द उवाच ।

भगवन्देवदेवेश शीतलायाः स्तवं  
शुभम् ॥ वक्तुर्महस्यशेषेण विस्फोटक-  
भयापहम् ॥ १६ ॥

ईश्वर उवाच ।

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्ब-  
राम् ॥ यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं  
महत् ॥ १७ ॥ शीतले शीतले चेति यो  
ब्रूयाद्दाहपीडितः ॥ विस्फोटकभयं घोरं  
क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ १८ ॥ यस्त्वा-  
मुदकमध्ये तु धृत्वा संपूजयेन्नरः ॥  
विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते  
॥ १९ ॥ शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिग-  
न्धगतस्य च ॥ प्रनष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामा-  
हुर्जीवितौषधम् ॥ २० ॥ नमामि शीतलां  
देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ॥ मार्जनी-  
कलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम् ॥ २१ ॥  
शीतले तनुजान् रोगान् नृणां हरसि दुस्त-  
रान् ॥ विस्फोटकविशीर्णानां त्वमेकाऽमृ-  
तवर्षिणी ॥ २२ ॥ गलगण्डग्रहा रोगा  
ये चान्ये दारुणा नृणाम् ॥ त्वदनुध्यान-  
मात्रेण शीतले यान्ति ते क्षयम् ॥ २३ ॥  
न मन्त्रो नौषधं किञ्चित्पापरोगस्य  
विध्यते ॥ त्वमेका शीतले धात्री नान्यां  
पश्यामि देवताम् ॥ २४ ॥ मृणालतन्तु-  
सदृशीं नाभिहन्मध्यसंस्थिताम् ॥ यस्त्वां  
सञ्चिन्तयेद्देवि तस्य मृत्युर्न जायते ॥ २५ ॥  
अष्टकं शीतला देव्या यः पठेन्मानवः  
सदा ॥ विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न  
जायते ॥ २६ ॥ श्रोतव्यं पठितव्यञ्च  
नरैर्भक्तिसमन्वितैः ॥ उपसर्गविनाशाय  
परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ २७ ॥ शीतला;

ष्टकमेतद्धि न देयं यस्य कस्यचित् ॥  
किन्तु तस्मै प्रदातव्यं भक्तिश्रद्धान्वितो  
हि यः ॥ २८ ॥

इति काशीखण्डे, शीतलाष्टकस्तोत्र सम्पूर्णम् ।

स्वामिकार्त्तिकेय सदाशिवसे पूछतेहैं कि हे महाराज। स-  
न्पूर्ण देवोंके देव विस्फोटकके भयको हरनेवाली शीतलाका  
स्तोत्र मुझको अच्छे प्रकार कहिये ।

सदाशिव कहतेहैं कि—‘ गंधके ऊपर बैठी नम्र शी-  
तला देवीको प्रणाम करताहू, कि जिस शीतला की  
कृपासे विस्फोटकका बटा त्रास दूर होजाताहै, इस प्रकार  
प्रथम शीतलाका व्यान करे, ‘इस श्री शीतलाके स्तोत्र-  
का सदाशिव कर्ता’ अनुष्टुप् छंद और शीतला देवता है ।  
शीतलाके उपद्रवोंको दूर करनेके लिये इस स्तोत्रका जप  
करताहू’ इस प्रकार कह कर पश्चात् स्तुति करे । दाहसे  
पीडित जो मनुष्य है शीतले ! इस प्रकार कहता-  
है उसके उत्पन्न फोडेका तीव्र भय तत्काल नष्ट होजाताहै ।

हे शीतले ! जो मनुष्य तुमको जलमें स्थापनकर तुम्हारा  
पूजन करताहै उसके कुलमें कभी विस्फोटकका भय नहीं  
होता । हे शीतले ! ज्वरसे व्याकुल दुर्गन्धयुक्त और जिसकी  
आँखें नष्ट होगई हैं ऐसे मनुष्यके जीवनरूप तूही एक  
उत्तम औषधि है ऐसा विद्वानोंने कहा है । गद्रेके ऊपर  
बैठी, नम्र, एक हाथमे मार्जनी ( बुहारी ) और दूसरे हाथमें  
कलशको धारण करनेवाली तथा शिरपर सूप ( छाज ) को  
धारण किये हुई शीतला देवीको प्रणाम करताहू । हे  
शीतले ! मनुष्योंके शरीरमें उत्पन्न हुए दुस्तर रोगोंको  
तुमने हरण किया है । विस्फोटकसे अत्यंत दुःखी मनुष्यों-  
पर अमृतकी वर्षा करनेवाली तू एकही है । हे शीतले !  
मनुष्योंके शरीरमें गलगण्ड ( गण्डमाला ) तथा अन्यान्य जो  
दाहण रोग उत्पन्न होतेहैं वे सब तेरे व्यान करने-  
मात्रसे शय होजातेहैं, इस दुष्ट रोगका अन्य कोई  
औषधि और मंत्रादिक नहीं हैं । हे शीतले ! इस  
रोगसे बचानेवाली तू एकही है । तेरे बिना इस रोगसे  
बचानेवाला अन्य कोई देवता भी देखनेमे नहीं आता ।  
हे देवि ! कमलकी नाकके भीतर ततुकी समान नाभि  
तथा हृदयमें स्थित तुझे जो मनुष्य हृदयमें चितवन  
करताहै उसका मरण नहीं होता । जो मनुष्य शीतला  
देवीके इन आठ द्योतकोंका सर्वदा पाठ करताहै उसके  
बगमें कभी विस्फोटकका तीव्र भय उत्पन्न नहीं होता ।

यह शीतलाका स्तोत्र उत्तम और फल्याणकारक है ।  
इसको मनुष्य दुःखको दूर करनेके लिये भक्तिभावसे पाठ  
करे और पठन श्रवणभी करे । यह शीतलाष्टकनामक-  
स्तोत्र जिस तिसको नहीं देना चाहिये कि तु जो भक्तिसे  
और श्रद्धासे युक्त होय उसीको देना चाहिये, यह  
काशीखंडमें कहाहुआ शीतलास्तोत्र पूर्ण हुआ ॥  
॥ १५-२८ ॥

अथ शीतलायां द्वितीयो भेदः ।

वातश्लेष्मसमुद्भूता कोद्रवा कोद्रवा-  
कृतिः ॥ तां कश्चित्प्राह पकेति सा तु  
पाकं न गच्छति ॥ २९ ॥ जलशूकवर्द-  
गानि सा विध्यति विशेषतः ॥ सप्ता-  
हाद्वा दशाहाद्वा शान्तिं याति विनौष-  
धम् ॥ ३० ॥ यदि वा भेषजं दद्यात्ख-  
दिराष्टकनिर्मितम् ॥ कषायं हि तदा  
दद्यात्कोद्रवायाः प्रशान्तये ॥ ३१ ॥  
कोद्रवा कोद्रवा इति लोके ॥

वात और कफसे उत्पन्न हुई और कोदोंकी समान  
आकारवाली जो शीतला होतीहै उसको कोद्रवा कहते  
ह । अनजान मनुष्य इस शीतलाको पकनेवाली कहतेहैं  
किन्तु वास्तवमें यह शीतला पकती नहीं है । यह  
शीतला विशेषकरके जलके शूकनामक कीटकी  
समान अंगोंको वेधन करती है और सातदिनमें  
द्वादशदिनमें औषधिके बिनाही शांत होजातीहै ।  
जो इस कोद्रवानामक शीतला शांत करनेके लिये  
औषधि देनी होय तो खदिराष्टकसे बनायाहुआ काथ  
देना चाहिये ॥ २९-३१ ॥

अथ शीतलायास्तृतीयो भेदः ।

ऊष्मणा तूष्मजारूपा सकण्डूः स्पर्शन-  
प्रिया ॥ नाम्ना पाणिसहाख्याता सप्ता-  
हाच्छुष्यति स्वयम् ॥ ३२ ॥

ऊष्मजारूपा पटूष्मजा राजिकाकृतिः ।  
अर्भोरी इति लोके वदन्ति तद्रूपा । पाणि-  
सहा पनिसहा इति लोके ॥

जो शीतला गरमीके कारण राईके समान आकार-  
वाली खुजलीयुक्त और जिसके ऊपर हाथ आदिका स्पर्श  
प्रिय लगे वह पाणिसहा कहीजातीहै और वह शीतला सात  
दिनमें अपनेआप सूख जातीहै ॥ ३२ ॥

अथ शीतलायाश्चतुर्थो भेदः ।

चतुर्थी सर्षपाकारा पीतसर्षपवर्णिनी ॥  
नाम्ना सर्षपिका ज्ञेयाऽभ्यङ्गमत्र विवर्ज-  
येत् ॥ ३३ ॥

जो शीतला सरसोंकी समान आकारवाली और पीली  
सरसोंकी समान वर्णवाली होय वह सर्षपिका कहीजातीहै  
इस शीतलामें अभ्यङ्गका त्याग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ शीतलायाः पञ्चमो भेदः ।

किञ्चिद्दूष्मनिमित्तेन जायते राजिका-  
कृतिः ॥ एषा भवति बालानां सुखं  
शुष्यति च स्वयम् ॥ ३४ ॥

एषा दुःखकोद्रवा इति लोके ख्याता ॥

जो शीतला कुछेक गरमरूपी कारणोंसे बालकोंके मुख-  
पर राईकी समान आकारवाली होय वह दुःखकोद्रवा  
कहीजातीहै और वह शीतला अपनेआप सूख जातीहै ॥ ३४ ॥

अथ शीतलायाः षष्ठो भेदः ।

कोष्ठवजायते षष्ठी लोहितोन्नतमण्ड-  
ला ॥ ज्वरपूर्वा व्यथायुक्ता ज्वरस्तिष्ठे-  
द्दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥

एषा मगधदेशे हाम इति प्रसिद्धा ॥

प्रथम ज्वर आकर जो शीतला कोठकी समान लाल  
तथा ऊँचे मडलवाली होतीहै और व्यथायुक्त होतीहै वह  
मगधदेशमें 'हाम' इस नामसे कहीजातीहै । इस शीत-  
लाका ज्वर तीन दिनतक रहताहै, इस शीतलाकी फुसी  
मिलजानेसे अनेक फुसी दीखतीहै ॥ ३५ ॥

अथ शीतलायाः सप्तमो भेदः ।

स्फोटानां मेलनादेषा बहुस्फोटाऽपि दृ-  
श्यते ॥ एकस्फोटे च कृष्णा च बोद्धव्या  
चर्मजाभिधा ॥ ३६ ॥

चमरगोटी इति लोके ॥

जो शीतला एक स्फोटकमें काली होय तो चर्मनी कही  
जाती है ॥ ३६ ॥

अथ शीतलायाः साध्यासाध्यता ।

काश्चिद्दिनापि यत्नेन सुखं सिद्ध्यन्ति  
शीतलाः ॥ दृष्टाः कष्टतराः काश्चित्का-  
श्चित्सिद्ध्यन्ति वा न वा ॥ काश्चिन्नैव  
तु सिद्ध्यन्ति यत्नतोऽपि चिकित्सि-  
ताः ॥ ३७ ॥

कितनी एक शीतला चिकित्साके विनाही सहजमें  
मिटजातीहै । कितनी एक शीतला अत्यन्त कष्टसाध्य देखी  
जातीहै । कितनी एक शीतला समयपर आराम होतीहै  
तथा समयपर भी आराम नहीं होती । और कितनेक  
शीतला तो अनेक बड़े २ यत्नोंसे चिकित्सा करनेपर भी  
आराम नहीं होती ॥ ३७ ॥

अथ शीतलासप्तकस्य सामान्य-  
चिकित्सा ।

एताः सप्तापि बोद्धव्याः शीतलादेव्य  
धिष्ठिताः ॥ शीतलोचितमाचारमासु  
सर्वासु वा चरेत् ॥ ३८ ॥

इति शीतलारोगाधिकारः ।

इन सातों प्रकारकी शीतलाओंमें शीतलादेवीका सबध  
होताहै इन सर्वप्रकारकी शीतलाओंमें तत्कालही पूर्वोक्त  
शीतलाकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

इति शीतलाधिकारः सपूर्णः ।

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः ।

तत्र पलितरोगनिदानलक्षणम् ।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरो-  
गतः ॥ पित्तञ्च केशान्पचसि पलितं तेन  
जायते ॥ १ ॥

शरीरोष्मा देहाग्निः । पित्तञ्च भ्राजकार्ख्यं  
तच्च शिरोगतं क्रोधात्कुपितं पित्तं पचति ।  
शोकेन श्रमेण च कुपितो वायुः शरीरोष्माणं  
शिरो नयति । 'एकः प्रकुपितो दोष इतरा-  
वपि कोपयेत्' इति वचनाद्वातपित्ताभ्यां  
क्षेष्मा च कोपितः, स एव केशानां शौ-

कल्पं करोति । एवं त्रयोऽपि दोषाः पलितस्य हेतवः । पलितं केशस्य शुक्लता ॥

क्रोध, शोक तथा परिश्रम आदिसे कोपको प्राप्त हुई वायु शरीरकी गरमीको धिरे लेजाती है और मस्तकमें रहनेवाला भ्राजकनामक पित्त भी क्रोधसे प्रकुपित होता है प्रकुपित हुआ एक दोष दूसरे दोषोंको भी प्रकुपित करता है इस वचनके अनुसार ऊपर कही रीतिसे कुपित हुई वायु और पित्त यह कफको भी कुपित करते हैं और कोपको प्राप्त हुआ कफ बालोंको सफेद करता है इस प्रकार यह तीनों दोष केशोंके सफेदपनेमें निदानभूत होते हैं ॥ १ ॥

अथ पलितचिकित्सा ।

लोहचूर्णस्य कर्षं तु दशार्द्धं चूतमज्जतः ॥  
धात्रीपलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् ॥ २ ॥ पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेन्निशि वासयेत् ॥ लेपोऽयमचिराद्वन्ति पलितं नात्र संशयः ॥ ३ ॥

दशार्द्धं पञ्चकर्पाणि ॥

काश्मर्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकस्यापि मूलं लौहं चूर्णं सभृगं त्रिफलपल्युतं तैलमेभिः पचेद्यः ॥ कृत्वा लोहस्य भाण्डे क्षितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं केशाः काशप्रकाशा अपि मधुपनिभा अस्य योगाद्भवन्ति ॥ ४ ॥ त्रिफला नीलिकापत्रं भृंगराजोऽयसोरजः ॥ अविमूत्रेण सम्पिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम् ॥ ५ ॥

लोहेका चूर्ण १ तोला, आमकी गुटली ५ तोले, आमले २ दो तोले, हरड २ तोले, और बहेडा एक १ तोला इनको एकत्र पीसकर लोहेके बरतनमें रातभर रहने देवे, फिर इसका लेप करनेसे थोड़ी ही समयमें बालोंकी खेतताका नाश होता है ।

कुम्भेरकी जड़, पियावासेके फूल या जड़, केतकीकी जड़, लोहेका चूर्ण, भांगरा और त्रिफला चार तोले इनके बल्कमें तैल को पकाये, उस तैलको लोहेके वासनमें

करके पृथिवीमें एक महीनेतक गाड़ देवे । इस तैलके लगानेसे कासके फूलकी सदृश सफेद बाल भी भौरेकी समान श्याम होजाते हैं ।

हरड, बहेडा, आमले, नीलके पत्ते, भांगरा और लोहेका चूर्ण इनको भेड़के मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे सफेद बाल काले होजाते हैं ॥ २-५ ॥

अथेन्द्रलुप्तसम्प्राप्तिलक्षणानि

रोमकूपानुगं रक्तं पित्तेन सह मूर्च्छितम् ॥  
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ ६ ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः ॥ तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभावयेत् ॥ ७ ॥

रोमोंकी जड़में स्थित रुधिर पित्तके साथ कुपित होकर रोमोंको गिरादेता है पश्चात् रुधिरसहित कफ रोमकूपोंको रोक देता है कि जिससे फिर रोम उत्पन्न नहीं होते । इस रोगको इन्द्रलुप्त, खालित्य और रुज्या कहते हैं, देशमें गज वा ढाक कहते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथेन्द्रलुप्तचिकित्सा ।

तिक्तपटोलीपत्रस्वरसैर्वृष्ट्वा शमं याति ॥  
चिरकालजापि रुज्या नियतं दिवसत्रयेणापि ॥ ८ ॥ गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी ॥ शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ ९ ॥ हस्तिदन्तमपी कृत्वा छागीदुग्धं रसाञ्जनम् ॥ लोमान्येतेन जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ १० ॥ यष्टीन्दीवरमृद्धीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः ॥ इन्द्रलुप्तं शमं याति केशाः स्युश्च घना दृढाः ॥ ११ ॥ जातीकरञ्जवरुणकरवीराग्निपाचितम् ॥ तैलमभ्यञ्जनाद्धन्यादिन्द्रलुप्तं न संशयः ॥ १२ ॥

कड़वे परबलोके पत्तोंका स्वरस निकालकर उसके मसलनेमें बहुत दिनोंका इन्द्रलुप्तरोगभी तीनदिनमें आराम होजाता है ।

गोखरु, तिलके फूल और उनके बराबर वी तथा सहत



इनको एकत्र करके शिरपर लेप करनेसे शिर वालोंसे परिपूर्ण होजाताहै ।

हाथीदौतकी भस्म, बकरीका दूध और रसौत इनका लेप करनेसे हाथकी हथेलीमें भी बाल उपज आते हैं ।

मुलैठी, नीले कमल, दाख, तेल, घी और दूध इनका लेप करनेसे इन्द्रलुप्त रोग अवश्य नष्ट होजाताहै और बाल सघन तथा दृढ होजाते हैं ।

चमेली, करंज, वरना, कनेर और चीता इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगानेसे निश्चय इन्द्रलुप्त नष्ट होजाताहै ॥ ८-१२ ॥

अथ स्नुहीदुग्धादितैलम् ।

स्नुहीपयः पयोर्कस्य लाङ्गली मार्कवो विषम् ॥ अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ १३ ॥ सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धा सम्यगेभिर्विपाचितम् ॥ तैलं भवति नियमात्खालित्यव्याधिनाशनम् ॥ १४ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध, कलिहारी, भागरा, वत्सनाभ, बकरीका मूत्र, गायका मूत्र, चौटली, इन्द्रायन, सरसों और खफेदवच इनके कल्कसे पकायाहुआ तेल इस तेलकी मालिस करनेसे इन्द्रलुप्त रोग ( गंज पाटाक ) अवश्य दूर होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ दारुणकलक्षणम् ।

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते ॥ मारुतश्लेष्मकोपेन विद्यादारुणकन्तु तत् ॥ १५ ॥

दारुणा कर्कशा दारुणकं लोके रुसीति ख्यातम् ॥

वात और कफके प्रकोपसे वालोंकी जमीन खरखरी, खुजलीयुक्त और रुखी होजाती है उसको दारुणक कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ दारुणकचिकित्सा ।

कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ त्रियालबीजमधुकुष्ठभाषैः ससैन्धवैः ॥ १६ ॥ आम्रबीजं तथा पथ्याद्वयं स्यान्मात्रया समम् ॥ दुग्धेन पिष्टं त-

लेपो दारुणं हन्ति दारुणम् ॥ दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपादारुणं हरेत् ॥ १७ ॥

चिरौंजीके बीज, मुलैठी, कूठ, उडद और सैधानिमक इनको एकत्र पीसकर सड़तमे मिलाकर शिरमे गाढा लेप करनेसे दारुणक रोग नष्ट होजाताहै ।

आमकी गुठली और हरड इनको समान भाग लेकर दूधमे पीसकर लेप करनेसे दारुणकरोग दारुण ( उग्र ) भी अवश्य नष्ट होजाताहै ।

खसखसके बीजको दूधमे पीसकर लेप करनेसे दारुणक रोग अवश्य नष्ट होताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ गुंजादितैलम् ।

गुञ्जाफलैः शृतं तैलम्भृङ्गराजरसेन च ॥ कंडूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ १८ ॥

चौटलीके कल्कसे और भागरेके रससे पकाहुआ तेल गुंजादितैल कहाजाताहै । इस तेलसे खुजली, दारुणक, कोट और कपालके सम्पूर्णरोग नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

अथारूपिकालक्षणम् ।

अरूपि बहुवक्राणि बहुक्लेदीनि मूर्द्धनि । कफासृक्क्रिमिकोपेन तानि विद्यादरूपिकाम् ॥ १९ ॥

कफके, रुधिरके और कृमियोंके प्रकोपसे मस्तकमें बहुत मुखवाले और अत्यंत क्लेदयुक्त घण होय उनको अरूपिका कहते हैं ॥ १९ ॥

अथारूपिकाचिकित्सा ।

नीलोत्पलस्य किञ्जल्को धात्रीफलसमन्वितः ॥ यष्टीमधुकयुक्तश्च लेपादन्यादरूपिकाम् ॥ २० ॥

नील कमलकी केसर, आमले और मुलैठी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अरूपिका नष्ट होजाती है २०

अथ त्रिफलाद्यतैलम् ।

त्रिफलायोरजोयष्टीमार्कवोत्पलसारिवाः ॥ सैन्धवं पक्वमेतैस्तु तैलं हन्यादरूपिकाम् ॥ २१ ॥

हरट, वहेटा, आमला, लोहेका चूरा, मुलेठी, कमल, सारिवा और सैधानिमक इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल त्रिफलाद्यतैल कहा जाता है यह तेल अरुणिकाको नष्ट कर देता है ॥ २१ ॥

### अथेरिवेल्लिकालक्षणम् ।

पिडकामुत्तमांगस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ॥ सर्वात्मिकां सर्वालिंगां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ २२ ॥

मस्तकमें गोल, उग्र पीडावाली, तीव्र ज्वरवाली, तीनों दोषोंसे उत्पन्न और त्रिदोषोंके लक्षणों युक्त जो पिडका उत्पन्न होती है वह इरिवेल्लिका कही जाती है ॥ २२ ॥

### अथेरिवेल्लिकाचिकित्सा ।

पैतिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्तिता ॥ तथैव भिषगेताञ्च चिकित्सेदिरिवेल्लिकाम् ॥ २३ ॥

पित्तज विसर्पकी जो चिकित्सा वैद्योंने कही है उसी चिकित्सासे इरिवेल्लिकाको दूर करना चाहिये ॥ २३ ॥

### अथ पनसिकालक्षणम् ।

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडकामुग्रवेदनाम् ॥ स्थिरां पनसिकां तान्तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ २४ ॥

कानके भीतर वायु तथा कफके प्रकोपसे उठी हुई, कठिन और उग्रवेदनावाली जो पिडका होती है उसको पनसिका कहते हैं ॥ २४ ॥

### अथ पनसिकाचिकित्सा ।

भिषक् पनसिकां पूर्वं स्वेदयेदथ लेपयेत् ॥ कल्कैर्मनःशिलाकुष्ठनिशातालकदारुभिः ॥ पेकां विज्ञाय तां भित्त्वा व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २५ ॥

वैद्य प्रथम पनसिकाके ऊपर स्वेद देवे पश्चात् मैनशिल, कुठ, हलदी, हरिताल और देवदारु इनका लेप करे, जब पक जाय तो उसकी व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ २५ ॥

### अथ पाषाणगर्दभलक्षणम् ।

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः ॥ स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ २६ ॥

### स्थिरः कठिनः ॥

वात तथा कफके प्रकोपसे ठोड़ीकी सन्धिमें कठिन मन्द वेदनावाली और स्निग्ध सृजन होय तो उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं ॥ २६ ॥

### अथ पाषाणगर्दभचिकित्सा ।

पाषाणगर्दभं पूर्वं स्वेदयेत्कुशलो भिषक् ॥ ततः पनसिकाप्रोक्तैः कल्कैरुष्णैः प्रलेपयेत् ॥ २७ ॥ वातश्लेष्मिकशोथघ्नैः कल्कैरन्यैश्च लेपयेत् ॥ परिपाकगतं भित्त्वा व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २८ ॥ जलौकोभिर्हृते रक्ते स शाम्यति विनौषधम् ॥ एतत्स्थलेषु बहुषु प्रेक्षितं लिखितं ततः ॥ २९ ॥

प्रवीणवैद्य प्रथम पाषाणगर्दभके ऊपर स्वेद करावे पश्चात् पनसिकाकी चिकित्सामें कहेहुए उष्ण कल्कोंसे प्रलेप करे ।

वात और कफकी सृजनको हरनेवाले अन्यान्य कल्कोंका भी लेप करे ।

पाषाणगर्दभको पका जानकर उसको शस्त्रसे चीरकर व्रणकी समान उपचार करे ।

जौंक लगाकर रुधिर निकलवावे तो औषधिके विनाही पाषाणगर्दभ शांत होजाता है । यह बहुतवार अजमाया हुआ है इस लिये यहाँ लिखा है ॥ २७-२९ ॥

### अथ युवानपिडकालक्षणम् ।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः ॥ युवानपिडका यूनां ज्ञेयास्ता मुखदूषिकाः ॥ ३० ॥

प्रख्याः सदृशाः । एता यूनामेव मुखे भवन्ति स्वभावात् ॥

युवा मनुष्योंके मुखपर सेमलके कोंटोंकी समान कफ, वायु तथा रुधिरसे उत्पन्न होनेवाली जो फुसी होती वे युवानपिडका तथा मुखदूषिका ( मोहासे ) कही जाती हैं । ये फुंसी स्वाभाविक रीतिनुसार युवाओंके मुखपर होती हैं ॥ ३० ॥

## अथ युवानपिडकाचिकित्सा ।

अंगुलस्य चतुर्थांशो मुखलेपो विधीयते ॥  
मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोऽर्द्धांगुलो  
भवेत् ॥ ३१ ॥ स्थितिकालोऽपि तस्योक्तो  
यावत्कल्को न शुष्यति ॥ शुष्कस्तु गुण-  
हीनः स्यात्तथा दूषयति त्वचम् ॥ ३२ ॥

चौथाई अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना कनिष्ठ मात्रा है । तिहाई अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना मध्यम मात्रा है और आधा अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना उत्तम मात्रा है ।

लेपकी हुई औषधि जबतक सूखे नहीं तबतक मुखपर रखना चाहिये, सूखनेके पश्चात् मुखपर नहीं रखना चाहिये । सूखा आ लेप रखनेसे गुणहीन होजाता है और त्वचाको दूषित करदेताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

लोधधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडिकापहः ॥  
तद्वद्वोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपितम् ॥  
॥ ३३ ॥ सिद्धार्थकवचालोधसैन्धवैश्च  
प्रलेपनम् ॥ वमनश्च निहन्त्याशु पिडकां  
यौवनोद्भवाम् ॥ ३४ ॥

लोध, धनिया और वच इनका लेप करनेसे युवा अवस्थाकी मुखकी फुसी ( मोहासे ) नष्ट होजातीहैं ।

गोरोचनके साथ कालीमिरचोका लेप करनेसे तरुण अवस्थाके कारण उत्पन्न हुए मुहासे सब दूर होजातेहैं ।

सरसो, वच, लोध और सैन्धानिमक इनका लेप करनेसे मुखके मुहासे दूर होजातेहैं । वमन करनेसे तरुण अवस्थाके मुखके मुहासे दूर होजातेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

## अथ मुखकान्तिकरो लेपः ।

केवलाः पयसा पिष्टास्तीक्ष्णाः शाल्मलि-  
कण्टकाः ॥ आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मो-  
पमं मुखम् ॥ ३५ ॥

सेमलके तीक्ष्ण कांटोको दूधके साथ पीसकर तीन दिनतक लेप करनेसे मुहासे दूर होकर मुख कमलके समान सुन्दर होजाताहै ॥ ३५ ॥

## अथ व्यंगलक्षणम् ।

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः ॥  
मुखमागत्य सहसा मण्डलं प्रसृजत्यतः ॥  
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तदादि-  
शेत् ॥ ३६ ॥

व्यंगम् झाँई इति लोके ।

क्रोधसे तथा परिश्रमसे प्रकोपको प्राप्त हुई पित्तके साथ वायु मुखमें आकर तत्काल मुखके ऊपर वेदना रहित, बहुत पतली और काली झाँई युक्त मंडल करेहै उसको व्यंग कहतेहैं ॥ ३६ ॥

## अथ नीलिकालक्षणम् ।

कृष्णमेवंगुणं वक्त्रे गात्रे वा नीलिकां  
विदुः ॥ ३७ ॥

एवंगुणम्, नीरुजं तनुकं मण्डलम् ।

मुखके ऊपर अथवा देहके ऊपर वेदनारहित, पतला तथा काला मंडल होताहै, उसको नीलिका कहतेहैं ॥ ३७ ॥

## अथ व्यंगनीलिकयोश्चिकित्सा ।

शिरावेधैः प्रलेपैश्च तथाभ्यंगैरुपाचरेत् ॥  
व्यंगश्च नीलिकां वापि न्यच्छश्च तिलका-  
लकम् ॥ ३८ ॥ वटांकुरा मसूराश्च प्रले-  
पाद्वयङ्गनाशनम् ॥ व्यंगे मञ्जिष्ठया लेपः  
प्रशस्तो मधुयुक्तया ॥ ३९ ॥ अथवा  
लेपनं शस्तं शशस्य रुधिरेण च ॥ व्यंग-  
हृद्गरुणत्वक्स्यादजामूत्रेण पेपिता ॥ ४० ॥  
जातीफलस्य लेपस्तु हरेद्व्यंगश्च नीलि-  
काम् ॥ अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा  
प्रलेपनात् ॥ ४१ ॥ मुखकार्श्यं शमं याति  
चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥ मसूरैः क्षीरस-  
म्पिष्टैर्लिप्तमास्यं घृतान्वितैः ॥ ४२ ॥  
सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलोपमम् ॥  
वटस्य पाण्डुपत्राणि मालतीरक्तचन्द-  
नम् ॥ ४३ ॥ कुष्ठं कालीयकं लोधमेभि-  
लेपं प्रयोजयेत् ॥ युवास्यपिडिकानां तु

व्यंगानां तु विनाशनम् ॥ स्यादेतेन सुख-  
श्चापि वर्जितं नीलिकादिभिः ॥ ४४ ॥  
कालीयकं कदम्बक इति लोके । युवा-  
स्यपिडिका यूनामानने यत्पिडका पृषोदरा-  
दित्वान्नकारलोपः ॥

नसको खोलनेसे, प्रलेप करनेसे, तथा अम्यंगसे  
व्यग्री, नीलिकाकी, न्यच्छकी तथा तिलकालककी  
चिकित्सा करे ।

बडके अंकुर और मसूर इनका प्रलेप करनेसे व्यगका  
नाश होता है ।

मजीठको सहतमें पीसकर लेप करनेसे व्यंग नष्ट  
होता है ।

खरगोशके रधिरका लेप करनेसे व्यंग ( झाई ) नष्ट  
होजाती है ।

वरनाकी छालको बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे  
व्यंग ( झाई ) नष्ट होती है ।

जायफलका लेप करनेसे झाई दूर होजाती है आर  
नीलिका भी दूर होजाती है ।

आकका दूध और हलदी इनको पीसकर प्रलेप करनेसे  
बहुत दिनोंकी मुखकी कृण्णता दूर होजाती है ।

मसूरको दूधमें पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे  
सात दिनमें मुखमण्डल कमलके समान होजाता है ।

बडके पीले पत्ते, मालती, लालचंदन, कूठ, कद-  
म्बक और लोध इनका लेप करनेसे युवा मनुष्योंके मुखके  
मुहासे तथा व्यंगका नाश होता है ।

इस उपायसे मुग्नके दाद वगैरह भी दूर होजाती-  
है ॥ ३८-४४ ॥

अथ कंकमाद्यतैलम् ।

कुंकुमं चन्दनं लोध्रं पतंगं रक्तचन्दनम् ॥  
कालीयकमुशीरश्च मल्लिष्टा मधुयष्टिका  
॥ ४५ ॥ पत्रकं पद्मकं पद्मं कुष्ठं गोरो-  
चना निशा ॥ लाक्षा दारुहरिद्रा च  
गैरिकं नागकेसरम् ॥ ४६ ॥ पलाशकु-  
समश्चापि प्रियंगुश्च वटांकुराः ॥ मालती  
च मधुच्छिष्टं सर्षपाः सुरभिर्वचा ॥ ४७ ॥

चतुर्गुणपयःपिष्टैरेतैरक्षमितैः पृथक् ॥ प-  
चेन्मन्दाग्निना वैद्यस्तैलं प्रस्थद्वयोन्मितम्  
॥ ४८ ॥ वदनाभ्यञ्जनादेतद्व्यंगं नीलि-  
कया सह ॥ तिलकं माषकं न्यच्छं नाश-  
येन्मुखदूषिकाम् ॥ ४९ ॥ पद्मिनीकण्ट-  
कश्चापि हरेज्जतुमणिं तथा ॥ विदध्याद्द-  
दनं पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम् ॥ ५० ॥

पतंगं वकम इति लोके । कालीयकं कदम्ब-  
कम् । सुरभिर्वचा महाभरी इति लोके ॥

केसर, सफेद चंदन, लोध, पतंग, लाल चंदन, कल-  
म्बक, खस, मजीठ, मुलेठी, तेजपात, पद्माख, कमल,  
कूठ, गोरोचन, हलदी, लाख, दारुहलदी, पीलागेरू,  
नागकेसर, ढाकके फूल, फूलप्रियंगू, बडके अंकुर,  
मालती, मोम, सरसों और महाभरी वच, यह प्रत्येक  
पदार्थ एक एक तोला लेकर चौगुने दूधमें पीसकर वैद्य  
इस कल्कसे १२८ एकसी अठाईस तोले तेलको मदमंद  
अग्निसे पकावे इस कुंकुमाद्य तेलको मुखपर अभ्यग करनेसे  
व्यंग, नीलिका, तिल, मशक, न्यच्छ, मुखदू-  
षिका, पद्मिनीकटक और जतुमणि ये सब रोग नष्ट  
होते हैं और मुख पूर्ण चन्द्रमण्डलकी समान सुंदर होजाता-  
है ॥ ४५-५० ॥

अथ वल्मीकलक्षणम् ।

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा  
त्रिभिरेव दोषैः ॥ ग्रन्थिः स वल्मीकवद-  
क्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम्  
॥ ५१ ॥ मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्विर्विष-  
पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ॥ वल्मीकमाहुर्भि-  
षजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशे-  
षात् ॥ ५२ ॥

ग्रीवा कृकाटिका । अंसः स्कन्धः । कक्षा  
बाहुमूलम् । वल्मीकवदित्यनेन प्रचुरशिख-  
रत्वमुच्चत्वमव्रणाढ्यमूलत्वञ्च सूच्यते । नि-  
ष्प्रत्यनीकमुपचारायोग्यम् ॥

ग्रीवा, खवोंमें वा कंधे, कोख, हाथ और पाव इन अंशोंमें सधियोंमें अथवा गलेमें बाँवईकी समान अनेक सिखरोवाली, ऊँची और दृढजडवाली ग्रथि होती है । चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके यह ग्रथि अनुक्रमसे बढ़कर स्नायुक्त व्यथायुक्त और आगेसे ऊँची अनेक मुखोंसे विसर्गकी समान फैल जाती है, इस रोगको वैद्य वल्मीक कहते हैं । यह रोग जो बहुत कालसे उत्पन्न हुआ होय तो विशेष करके इसकी चिकित्सा निष्फल होती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

### अथासाध्यवल्मीकलक्षणम् ।

वल्मीकं नाशयेत्तद्वि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम् ॥ पाणिपादोपरिष्ठात्तु च्छिद्रैर्वहुभिरावृतम् ॥ वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्वर्ज्यं तद्वि विजानता ॥ ५३ ॥

हाथ अथवा पावके ऊपर जो वल्मीक छिद्रोंसे व्याप्त होय और सूजनसे युक्त होय उसकी वैद्य समझकर चिकित्सा करे ॥ ५३ ॥

### अथ वल्मीकचिकित्सा ।

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराम्भिभ्यां प्रसाधयेत् ॥ विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥ ५४ ॥ वल्मीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धमर्मजम् ॥ तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्विषक् ॥ ५५ ॥ कुलत्थकानां मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च ॥ आरेवतस्य मूलैश्च दन्तीमूलैस्तथैव च ॥ ५६ ॥ श्यामामूलैः सपल्लैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च भिषक्तमुपनाहयेत् ॥ ५७ ॥ पक्वं तद्वा विजानीयाद्गतिः सर्वा यथाक्रमम् ॥ अभिज्ञाय गतिं छित्त्वा प्रदिह्यान्मतिमान्भिषक् ॥ ५८ ॥ संशोध्य दुष्टमांसानि क्षारेण प्रतिसारयेत् ॥ व्रणं विशुद्धं विज्ञाय रोपयेन्मतिमान्भिषक् ॥ ५९ ॥

वल्मीकको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे दूर करे । अर्बुदकी चिकित्साकी समान प्रथम शोधन कर पश्चात् भरे । वल्मीक जो अत्यंत वृद्धिको प्राप्त न हुई होय और मर्म स्थलमें न उत्पन्न होय तो वैद्य सगोधन करके पश्चात् उसमेंसे रुधिर निकलवावे ।

कुलथकी जड़, गिलोय, सैधानिमक, अमलतासकी जड़, दतीकी जड़, निसोतकी जड़, मांस और उस इनको मिलाकर वल्मीकपर प्रलेप करे और अत्यंत स्निग्ध पदार्थोंको कुछ कुछ गरम करके उसके ऊपर पट्टी बाँधे । जब वल्मीक पक्काय तब उसको अनुक्रमसे राधकी गतिको विचारकर शस्त्रसे चीरकर बुद्धिमान् वैद्य लेपकर, दूषित मांसको साफ करके पश्चात् क्षार डालकर प्रतिसारण करे, व्रणको साफ समझकर फिर बुद्धिमान् रोपण औषधियोंसे भरे ॥ ५४-५९ ॥

### अथ मनःशिलाघृतैलम् ।

मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ जातीपल्लवतकैश्च निम्बतैलं विपाचयत् ॥ ६० ॥

मैनशिल, हरिताल, भिलावे, छोटी इलायची, अगर, सफेद चंदन, चमेलीके पत्ते और छाछ इनको नीमके तैलसे पकावे तो यह मनःशिलाघृतैल सिद्ध होता है । यह तैल—अनेक छिद्रोंवाले तथा अनेक व्रणोंवाले वल्मीकको नष्ट करे है ॥ ६० ॥

### अथ कक्षागंधमालयोलक्षणम् ।

बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ॥ पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षां तामिति निर्दिशेत् ॥ ६१ ॥ एकान्तु तादृशीं दृष्ट्वा पिडकां स्फोटसन्निभाम् ॥ त्वग्जातां पित्तकोपेन गन्धमालां प्रचक्षते ॥ ६२ ॥ तादृशीं बाह्यादिषु कृष्णां सवेदनाम् ॥

बाहुओंमें, खवोंमें, कोखमें, और पसलियोंमें पित्तके प्रकोपसे वेदनायुक्त जो फोड़े होते हैं उसको कक्षा ( कख-हारी, कखलाई ) कहते हैं ।

ऊपर कही हुई बाहु आदिके स्थानोंकी त्वचामें पित्तके प्रकोपसे काली और वेदनावाली फुंसीकी समान जो एक फुंसी होती है उसको गंधमाला कहते हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥



अथ कक्षागंधमालयोश्चिकित्सा ।

कक्षाश्च गन्धमालाश्च चिकित्सेच्च चिकित्सकः ॥ पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्तया ॥ ६३ ॥

पित्तज विसर्पकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा कक्षा और गंधमालाकी करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

अथाग्निरोहिणीलक्षणम् ।

कक्षाभागेषु विस्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः ॥ अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ ६४ ॥ सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम् ॥ तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम् ॥ ६५ ॥

सप्ताहादिति वातपित्तकफापेक्षया बोद्धव्यम् । घ्नन्तीत्यनुपक्रान्ता उपक्रान्तास्तु साध्या एव । चरकेण अग्निरोहिण्य चिकित्साया उक्तत्वात् ॥

काखमे अत्यत दारुण, भीतर दाह करनेवाली और प्रदीप्त अग्निकी समान जो फोडे होतेहैं उनको अग्निरोहिणी कहतेहैं । जो इनमें वायुकी उत्पन्नता होय तो यह मनुष्यको सातदिनमें मारदेतीहै । पित्तकी उत्पन्नता होय तो दशदिनमें मारदेतीहै और कफकी उत्पन्नता होय तो पन्द्रह दिनमें मारदेतीहै तीनों दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुई यह अग्निरोहिणी असाध्य है ।

यहां ऐसा जानना कि जो इसकी चिकित्सा न की जाय तो अग्निरोहिणी असाध्य होजातीहै किंतु जो चिकित्सा कीजाय तो साध्य है क्योंकि चरकने अग्निरोहिणीकी चिकित्सा कही है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथाग्निरोहिणीचिकित्सा ।

पित्तवीसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम् ॥ रोहिण्यां लघनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरुक्षणम् ॥ शरीरस्य च संशुद्धिं तान्तु वृद्धां परित्यजेत् ॥ ६६ ॥

पित्तजविसर्पोंक्त चिकित्साके अनुसार वैद्य अग्निरोहिणीको भी दूर करे ॥

अग्निरोहिणीको दूर करनेके लिये वैद्य लघन करावे,

रुधिर निकलवावे, और विरेचन आदिसे शरीरको सभोधन करे, परंतु जो अग्निरोहिणी अत्यत वृद्धिको प्राप्त होय तो उसकी चिकित्सा न करे ॥ ६६ ॥

अथ विदारिकालक्षणं निदानं च ।

विदारीकन्दवृद्धतां कक्षावक्षणसन्धिषु ॥ रक्तां विदारिकां विद्यात्सर्वजां सर्वलक्षणाम् ॥ ६७ ॥

अत्र पिडकामिति विशेष्यपदमध्याहारणीयम् ॥

कॉल अथवा वक्षण संधिमें विदारीकदकी समान गोल हुई, लाल, सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न होनेवाली और सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंयुक्त जो फुसी होय तो वह विदारिका कहीजातीहै ॥ ६७ ॥

अथ विदारिकाचिकित्सा ।

विदारिकायां प्रथमं जलौकायोजनं हितम् ॥ पाटनश्च विपकायां ततो व्रणविधिः स्मृतः ॥ ६८ ॥

विदारिकापरप्रथम जौक लगानी उत्तम है, और जो विदारिका पकगई होय तो उसको ब्रणसे चीरना चाहिये और पश्चात् व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ ६८ ॥

अथ चिप्यलक्षणम् ।

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तश्च देहिनाम् ॥ करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥ ६९ ॥

चिप्यं वेडवा इति लोके ॥

वात और पित्त यह मनुष्योंके नखोंके मांसमें रहकर नखका क्षय करदेतेहैं तथा पकादेतेहैं उसको चिप्यरोग कहनेहैं ॥ ६९ ॥

अथ कुनखनिदानलक्षणम् ।

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षः सितः खरः ॥ भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीरं वाभिधानतः ॥ ७० ॥

अभिधानतः नामतः ॥

काष्ठ आदिके आघातसे दुष्ट हुआ नख रूखा, सफेद और खरखरा होजाताहै इसको कुनख अथवा कुलीर कहतेहैं ॥ ७० ॥

अथ चिप्यकुनखचिकित्सा ।

चिप्यं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत् ॥ गतोष्माणमथैनन्तु सेचयेदुष्णवारिणा ॥ ७१ ॥ शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य स्नावयेत्ततः ॥ व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तं विचक्षणः ॥ ७२ ॥ स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वायसेऽभयाम् ॥ घृष्टां तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनःपुनः ॥ ७३ ॥ काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः ॥ अंगुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशाम्यति ॥ ७४ ॥ श्लेष्मविद्रधिकल्केन कुनखं समुपाचरेत् ॥ नखकोटिप्रविष्टेन टंकणेन न शाम्यति ॥ कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च ॥ ७५ ॥

चिप्य हुआ होय तो रुधिर निकलवावे और शोधनभी करना चाहिये इसमेंसे जो गरमी नहीं रही होय तो गरम जलसे सेचन करे ।

विचक्षण वैद्य योग्य रीत्यनुसार उसको शस्त्रसे चरिकर खाव करावे, पश्चात् व्रणकी चिकित्साके अनुसार शोधन रोपण करे ।

लोहके वासनमे हलदीका रस डालकरके उसमें हरड को घिसकर चिप्यपर बारंबार लेप करे ।

कुम्भेरके कोमल सात पत्तोंको अंगुलिपर बांधनेसे चिप्य तत्काल शांत होजाताहै ।

कफज विद्रधिकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा कुनखकी की जावे तो कुनख अवश्य नष्ट होजाताहै ।

कुनखके भीतर सुहागा भरनेमे कुनख अवश्य आराम होजाताहै ॥ ७१-७५ ॥

अथ परिवर्तिका निदानलक्षणम् ।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः ॥ मेढूचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥ ७६ ॥ तदा वातोपसृष्टन्तु तच्चर्म परिवर्तते ॥ सवेदनं सदाहं च पाकश्च व्रजति क्वचित् ॥ ७७ ॥ मणेरधस्तात्को-

पस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते ॥ मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम् ॥ सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमन्विता ॥ ७८ ॥

अस्यां वातजायामपि पित्तानुबन्धो बोद्धव्यो दाहपाकभावात् । कोषः चर्मकोषः । सम्पूर्ण शरीरमे विचरती हुई वायु लिगकी खुजानेसे, दवानेसे तथा चोटके लगनेसे लिगकी त्वचामे आतीहै तब वह वायुसे दूषित त्वचा परिवर्तन कहीजातीहै । वेदनायुक्त, दाहसहित, और किसी समय पकजातीहै । इसप्रकार लिगकी मणिके नीचे वह चमड़ी गांठकी समान लटकतीहै । वायु तथा अभिघात आदि आगन्तुक कारणोंसे उत्पन्न हुआ यह रोग परिवर्तिका कहाजाताहै इस रोगमे कफका भी सङ्घ होय तो त्वचा खुजलीवाली तथा कठिन होतीहै ।

यद्यपि यह रोग वातसे उत्पन्न होय तो इसे दाह और पाक होनेसे पित्तका सम्बन्ध जानना ॥ ७६-७८ ॥

अथ परिवर्तिकाचिकित्सा ।

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नमुपनाहयेत् ॥ त्रिरात्रं पञ्चरात्रञ्च वातघ्नैः शाल्वलादिभिः ॥ ७९ ॥ ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म पाटयेत्पीडयेन्मणिम् ॥ प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहनैः ॥ दद्याद्वातहरान्वस्तीन्स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ॥ ८० ॥

परिवर्तिकाको घी चुपडकर अच्छे प्रकारसे सेक देवे और तीन रात्रितक अथवा पांच रात्रितक वायुको हरनेवाले शाल्वणादि कल्कोंकी पट्टी बांधे, फिर त्वचाको घीसे चुपडकर धीरे धीरे बढाकर लिगकी मणिको दबावे कि जिससे मणि त्वचाके भीतर चली जाय । मणिको त्वचामे प्रवेश कराकर पश्चात् उपनाह स्वेद कर वातनाशक पिचकारी लगावे तथा रोगीको स्निग्ध अन्न भोजनके लिये देवे ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथावपाटिकानिदानलक्षणम् ।

अल्पीयःखां यदा हर्षाद्दलाद्गच्छेत्स्त्रिय नरः ॥ हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्धर्तिते

चलात् ॥ ८१ ॥ मर्दनात्पीडनाद्वापि  
शुक्रवेगाभिघाततः ॥ यस्यावपात्यते चर्म  
तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ८२ ॥ वातेन  
कर्कशा रुक्षा सूक्ष्मा कृष्णा रुगन्विता ॥  
पित्तेन पीता रक्ता वा दाहतृष्णासमन्वि-  
ता ॥ श्लेष्मणा कठिना स्निग्धा कण्डूम-  
त्स्वल्पवेदना ॥ ८३ ॥

अल्पीयः अल्पतरं खं योनिच्छिद्रं यस्याः  
ताम् । अवपाट्यते विदीर्यते ॥

जिस स्त्रीकी योनि का छिद्र बहुत छोटा होय ऐसी  
योनिवाली स्त्रीके साथ कामातुर पुरुष बल सहित मैथुन  
करनेसे, अथवा हस्त मैथुनादि करनेसे, हाथकी चोटके  
लगनेसे जोरसे, त्वचाको उलटनेसे अथवा खुजानेसे वा  
दवानेसे, अथवा वीर्यके वेगके अभिघातसे लिङ्गकी त्वचा  
फटजातीहै, इसको अवपाटिका कहतेहैं । यह अवपाटिका  
जो वायु सम्बन्धवाली होय तो खरखरी, रूखी, सूक्ष्म,  
काली तथा वेदनावाली होतीहै । पित्तके सम्बन्धवाली  
होय तो पीली अथवा लाल और दाहसे तथा तृषासे संयुक्त  
होतीहै और जो कफके सम्बन्धवाली होय तो कठिन,  
स्निग्ध, खुजलीवाली और अल्प पीडा युक्त होती  
है ॥ ८१-८३ ॥

अथावपाटिकाचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम् ८४  
वैद्य स्नेहों तथा स्वेदोंसे अवपाटिकाकी चिकित्सा  
करे ॥ ८४ ॥

अथ निरुद्धप्रकशलक्षणम् ।

वातापसृष्टे मेद्रे तु चर्म संश्रयते मणिम् ॥  
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥  
॥ ८५ ॥ निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारम-  
वेदनम् ॥ मूत्रं प्रवतते जन्तोर्मणिर्विव्रियते  
न च ॥ ८६ ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं  
वानसम्भवम् ॥ ८७ ॥

निरुद्धप्रकाशमित्यस्य स्थाने निरुद्धप्रकश-  
पदमार्पत्वात् ॥

लिङ्गमें वातका प्रकोप होकर चमडी मणिके आगे  
आकर चिपट जातीहै इसप्रकार चमडीसे बड़ी हुई मणि  
मूत्रके प्रवाहको रोक देतीहै इसको निरुद्धप्रकश रोग  
कहतेहैं । इस रोगमें मूत्र मन्द मन्द धारसे तथा वेदना-  
रहित निकलताहै और लिङ्गकी सुपारी खुलती नहीं, यह  
रोग वायुसे होताहै और इसमें वेदना भी होतीहै ।  
व्याकरणके अनुसार 'निरुद्धप्रकाश' ऐसा होना चाहिये  
परन्तु 'निरुद्धप्रकश' यह आर्प है । अत एव 'निरुद्धप्र-  
कश' ही लिखा है ॥ ८५-८७ ॥

अथ निरुद्धप्रकशचिकित्सा ।

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् ॥  
दारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां सम्प्रवेश-  
येत् ॥ ८८ ॥ परिषिञ्चेद्द्वसामज्जां शिशु-  
मारवराहयोः ॥ चक्रतैलं तथा योज्यं  
वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ ८९ ॥ त्र्यहात्स्थ-  
लतरां सम्यङ् नाडी मार्गे प्रवेशयेत् ॥  
स्रोतो विवर्द्धयेदेवं स्निग्धमन्नञ्च भोजयेत् ॥  
भित्त्वा वा सेवनीं मुक्ता सद्यः क्षतवदा-  
चरेत् ॥ ९० ॥

निरुद्धप्रकशमें दोनों ओर मुखवाली धीसे चुपडी हुई  
लोहेकी, वा लकड़ीकी अथवा लालकी बनी नली लिङ्गके  
छिद्रमें प्रवेश करे, पश्चात् उसके ऊपर शिशुमार ( सूस )  
नामक जतुकी तथा सूअरकी चरबीका वा मज्जाका सेचन  
करे और वातनाशक पदार्थोंके साथ चक्रके तेलका भी  
सेचनकरे । तीन तीन दिनके पश्चात् क्रम क्रमसे बढ़ाकर  
बड़ी नली उसमें अच्छे प्रकारसे प्रवेश करे कि जिससे  
मूत्रका मार्ग बढे । इस क्रियाके करते समय गेगीको स्निग्ध  
अम्ल भोजनके लिये देवे ।

सीवनको छोड़कर मन्त्रसे चारे, तत्काल क्षतकी  
समान चिकित्सा करे तो इससे निरुद्धप्रकश नष्ट हो-  
जाताहै ॥ ८८-९० ॥

अथ सन्निरुद्धगुदनिदानलक्षणम् ।

वगसन्धारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः ॥

निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति  
च ॥ ९१ ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण  
पुरीषं तस्य गच्छति ॥ सन्निरुद्धगुदं व्या-  
धिमेतं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥ ९२ ॥

मलादिके वेगोंको रोकनेसे अभिघातको प्राप्त हुई  
गुदामे रहनेवाली वायु गुदाके बडे द्वारको रोककर छोटा  
करदेती है कि जिससे मार्ग सुकडकर विष्टा थोड़ी थोड़ी  
निकलती है । यह सन्निरुद्धगुदनामक व्याधि कहीजाती है  
और यह अत्यत दुस्तर है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथ सन्निरुद्धगुदचिकित्सा ।

सन्निरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैर्हितः ॥  
तथा निरुद्धप्रकशक्रियापि कथिता-  
ऽथवा ॥ ९३ ॥

वातनाशक तैलोंसे सेचनकरे अथवा निरुद्धप्रकशकी  
जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा करनेसे सन्निरुद्ध-  
गुद नष्ट होजाताहै ॥ ९३ ॥

अथ वृषणकच्छूनिदानलक्षणम् ।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थि-  
तः ॥ प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात्कण्डूं जन-  
यते तदा ॥ ९४ ॥ ततः कण्डूयना-  
क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ॥ प्रादुर्बृ-  
षणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ९५ ॥

उत्सादनम् उद्वर्तनं मलः मैलि इति लोके ।  
प्रक्लिद्यते आर्द्रो भवति ॥

स्नान नहीं करनेसे तथा अंगोंको साफ नहीं करनेसे  
अथवा स्नान करते समय जो मनुष्य मैलको उबटन  
आदिसे नहीं साफ करता उसके वृषणोंके ऊपर स्थित  
मैल जब पसीनेके साथ मिलताहै तब खुजलीको उत्पन्न  
करे है उसको बारबार खुजानेसे तत्काल फोड़ा होजाताहै  
और वह स्राववाला होता है । यह रोग कफ तथा रुधि-  
रके प्रकोपसे होताहै ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथ वृषणकच्छूचिकित्सा ।

सर्जाह्नुकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पि-  
तो योगः ॥ उद्वर्तनेन नियतं शमयति  
वृषणस्य कण्डूतिम् ॥ ९६ ॥ भिषग्बृ-

षणकच्छूं तु चिकित्सेत्पामरोगवत् ॥  
अहिपूतननिर्दिष्टक्रियायापि च तां  
हरेत् ॥ ९७ ॥

राल, कूठ, सैधानिमक और सफेद सरसो, इनको  
एकत्र करके वृषणोंके ऊपर मलनेसे वृषणकी खुजली  
अवश्य नष्ट होजाती है ।

वैद्य वृषणकच्छूकी पामाकी समान चिकित्सा करे  
अथवा नीचे अहिपूतन नामक रोगकी जो चिकित्सा कही-  
है वही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथाहिपूतननिदानलक्षणम् ।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ॥  
स्विन्ने वाऽस्नाप्यमानस्य कण्डू रक्तक-  
फोद्भवा ॥ ९८ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं  
स्फोटः स्रावश्च जायते ॥ एकीभूतं व्रणै-  
र्वोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ९९ ॥

मलमूत्रके त्यागके बाद बालककी गुदामे विष्टा लगाए-  
हनेसे, उसको बराबर नहीं धोनेसे गुदामे खाज होजाती है  
और पसीनेके निकलनेपर उसको साफ न करनेसे  
अर्थात् पसीनेको वहीं मरनेदेनेसे रुधिर तथा कफके प्रको-  
पसे खुजली होती है और खुजवानेसे तत्काल फुसी तथा  
स्राव होताहै जिससे कि उत्पन्न हुए व्रण एकत्रित  
होकर भयकर होजाते हैं उसको अहिपूतन कहते हैं  
॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथाहिपूतनचिकित्सा ।

तत्र संशोधनैः पूर्व धात्रीस्तन्यं विशोध-  
येत् ॥ त्रिफलाखदिरकाथैर्व्रणानां क्षालनं  
हितम् ॥ शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपः कार्योऽ-  
हिपूतने ॥ १०० ॥

अहिपूतनके उत्पन्नहोतेही प्रथम संशोधनसे माताके  
दूधको शुद्ध करे । हरड, बहेडा, आमले तथा खैरके  
काथसे व्रणोंको धोवे और शंखका चूर्ण सौवीरनामक  
कांजी और मुलेठी इनका लेप करे ॥ १०० ॥

अथ गुदभ्रंशनिदानलक्षणम् ।

प्रवाहिकातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं  
बहिः ॥ रुक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमा-  
दिशेत् ॥ १०१ ॥

जिसका शरीर रुखा और दुर्बल होय उसकी गुदा दस्त आनेके समय जोर करनेसे तथा अतिसारसे बाहर निकलआती है, उसको गुदभ्रश कहते हैं । उसको काँच निकलना भी कहते हैं ॥ १०१ ॥

**अथ गुदभ्रंशचिकित्सा ।**

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहेनाक्तं प्रवेशयेत् ॥  
प्रविष्टं रोधयेद्यत्नाद्गव्येनाच्छिद्रचर्मणा  
॥ १०२ ॥ पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः  
खादेच्छर्करान्वितम् ॥ एतन्निश्चित्य नि-  
दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ १०३ ॥  
मूपकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपनम् ॥  
सुस्विन्नं मूषिकामांसेनाथवा स्वेदयेद्गु-  
दम् ॥ १०४ ॥ वृक्षाम्लानलचांगेरीवि-  
ल्वपाठायवाग्रजम् ॥ तत्रेण शीलयेत्पायु-  
भ्रंशातोऽनलदोपनम् ॥ १०५ ॥

गुदभ्रश रोगमें गुदाको सेककर घीसे अथवा तेलसे काँचको भीतर प्रवेश करदेवे और प्रवेश करनेके पश्चात् विनाछिद्रवाले वैलके चमड़ेसे उसको यत्नपूर्वक रोकदेवे ।

जो मनुष्य कमलिनीके कोमल पत्तोंको खांडके साथ खाताहै उसकी काँच निकलनी बंद होजाती है ।

काँचके उपर चूहेकी चरबी चुपडनेसे अथवा मूपके मांसका बफारा देनेसे काँच निकलनी बंद होजाती है तितितर्क, चित्रक, चूक, वैलगिरी, पाठ, इन्द्रजौ इनका चूर्ण बनाकर मट्टेके साथ खानेसे गुदभ्रश नष्ट होताहै और अग्नि दीप्त होती है ॥ १०२-१०५ ॥

**अथ मूपकतैलम् ।**

मूपका दशमूलानि गृहीयादुभयं समम् ॥  
तयोः काथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम्  
॥ १०६ ॥ अभ्यंगात्तस्य तैलस्य गुद-  
भ्रंशो विनश्यति ॥ विनश्यति तथानेन  
गुदशूलं भगन्दरम् ॥ १०७ ॥

मृग और दशमूल इनको समान भाग लेकर इनके साथ और कल्कसे तेलको पकावे, इस तेलके लगानेसे गुदभ्रन नष्ट होजाताहै और गुदशूल तथा भगन्दरभी नष्ट होजाताहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

**अथ शूकरदंष्ट्रकलक्षणम् ।**

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रनेदनः ॥  
कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदं-  
ष्ट्रकः ॥ १०८ ॥

**सः गुदभ्रंशः ॥**

जो गुदभ्रश दाहयुक्त, लाल किनारावाला, पकी चमड़ीवाला, तीव्रवेदनायुक्त, खुजलीसहित और ज्वर युक्त होय तो उसको शूकरदंष्ट्र कहते हैं ॥ १०८ ॥

**अथ शूकरदंष्ट्रकचिकित्सा ।**

भृंगराजकमूलस्य रजन्या सहितस्य च ॥  
चूर्णन्तु सहस्रा लेपाद्वाराहद्विजनाश-  
नम् ॥ १०९ ॥

भांगरेकी जड़के चूर्णको हलदीके साथ लेप करनेसे शूकरदंष्ट्र तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ १०९ ॥

राजीवमूलकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा  
प्रातः ॥ शमयति शूकरदंष्ट्रं दंष्ट्रोद्भूतं ज्वरं  
घोरम् ॥ ११० ॥ रजनी मार्कवं मूलं पिष्टं  
शीतेन वारिणा ॥ तल्लेपाद्वान्ति वीसर्पवा-  
राहदशनाह्वयम् ॥ १११ ॥

प्रातःकाल कमलकी जड़के कल्कको गायके घीके साथ पीनेसे शूकरदंष्ट्र और उससे उत्पन्न हुआ घोर ज्वर तत्काल शांत होजाताहै ।

हलदी और भांगरेकी जड़को शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे विसर्प और शूकरदंष्ट्र अवश्य नष्ट होजाता-  
है ॥ ११० ॥ १११ ॥

**अथानुशयीलक्षणम् ।**

गम्भीरामल्पशोथां च सवर्णासुपरि स्थि-  
ताम् ॥ पादस्यानुशयीं तान्तु विद्यादन्तः-  
प्रपाकिनीम् ॥ ११२ ॥

अत्र पिडकामिति विशेष्यपदमध्याहर-  
णीयम् । गम्भीरा अन्तःपाकेन ॥

भीतर पकनेवाली, गंभीर, थोड़ी सज्जनयुक्त और पावके समान रंगवाली जो फुसी पावपर होती है उसको अनुशयी कहते हैं ॥ ११२ ॥

**अथानुशयीचिकित्सा ।**

हरेदनुशयीं वैद्यः क्रियया श्लेष्मवि-  
द्रव्यैः ॥ ११३ ॥



वैद्य कफविद्राधिकी समान अनुशयीकी चिकित्सा  
करे ॥ ११३ ॥

अथालसलक्षणम् ।

क्लिन्नांगुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहसम-  
न्वितौ ॥ दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभा-  
वयेत् ॥ ११४ ॥

अलसं कन्दई इति लोके ॥

सड़ी हुई कीच आदिमे फिरनेसे पावोंकी अगुलियोंके  
बीचमे ह्रैदयुक्त खुजली और दाह तथा गीलापन रहता  
है उसको अलस कहतेहैं देशमे खारुआ कहतेहैं ॥ ११४ ॥

अथालसचिकित्सा ।

पादौ सिक्कारनालेन लेपनं त्वलसे हि-  
तम् ॥ पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचै-  
स्तिलैः ॥ ११५ ॥ क्षुद्रास्वरससिद्धेन  
कटुतैलेन लेपयेत् ॥ ततः कासीसकुनटी-  
तिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥ ११६ ॥

विचूर्णयेदवधूलयेत् ॥

करञ्जबीजं रजनी कासीसं पद्मकं मधु ॥

रोचना हरितालञ्च लेपोऽयमलसे  
हितः ॥ ११७ ॥

आरनालसे पावोंको सेचनकरके लेपकरनेसे खारुवे दूर  
होजाते हैं ।

कड़वे परवल, मैन्शिल, नीम, गोलोचन, काली मिरच,  
तिल और कटेरीका स्वरस इनसे पकाये हुए तेलका अल-  
सके ऊपर लेपन करे, पश्चात् हीराकसीस, मैन्शिल और  
तिल इनका चूर्ण बुरका टेवे । करजके बीज, हलदी, हीरा-  
कसीस, पद्माख, सहत, गोलोचन और हरिताल इनका  
प्रलेप करनेसे अलस अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ११५-११७ ॥

अथ पाददारीलक्षणम् ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरुक्षयोः ॥

पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रि-  
ताम् ॥ ११८ ॥

दारी विवाई ॥

जिसको पृथिवीपर फिरनेका बहुत अभ्यास होय तो उस  
मनुष्यके अत्यंत रुखे हुए पावोंके तलओंमे वायु, वेदना-  
सहित दारीको उत्पन्न कर देताहै इसको देश भाषामें वि-  
वाई कहतेहैं ॥ ११८ ॥

अथ पाददारीचिकित्सा ।

पाददार्यां शिरां प्राज्ञो मोचयेत्तलशोधि-  
नीम् ॥ स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ वा  
लेपयेन्मुहुः ॥ मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः  
क्षारविमिश्रितैः ॥ ११९ ॥

क्षारो यवक्षारः । वसा मज्जा च सामा-  
न्यतः छागादीनाम् । विशेषानभिधानतः ।

उक्तञ्च-

मेदोमज्जावसाज्ञेयाग्राम्यानूपौदकोद्भवा ॥  
स्नेहोऽस्थनः शुचिरेव स्यात्स मज्जा कथि-  
तो बुधैः ॥ १२० ॥

वसा शुद्धमांसभवः स्नेहः ।

सर्जाहसिन्धूद्भवयोश्चूणं घृतमधुप्लुतम् ॥  
निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जने  
॥ १२१ ॥ मधुसिक्थकगैरिकधुतगुडमा-  
हिषाक्षशालनिर्यासैः ॥ गैरिकसहितैर्लेपः  
पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥ १२२ ॥

मधुसिक्थकं मोम इति लोके । प्रथमं  
गैरिकं शिलाजतु, द्वितीयं गैरिकं गेरू इति  
लोकं । शालनिर्यासः राल इतिलोके ।

पांवमें विवाई हुई होय तो वैद्य तलुवेको शुद्ध करनेके  
लिये फस्तको खोलकर रुधिरको निकलवावे ।

पांवोंको स्नेहन तथा स्वेदन करके पश्चात् मोम, वसा, च-  
रबी, मज्जा, घी और जवाखार इनको एकत्र मिलाकर  
वारवार लेप करे तो दारी ( विवाई ) दूर होजातीहै यहां  
चरबी और मज्जा किसकी लेनी चाहिये यह कुछ नहीं लिखा  
इस कारण बकरा आदि जीवोंकी लेनी चाहिये । क्योंकि  
मदनपाल कहताहै कि “मेद, मज्जा तथा चरबी ग्राम्य-  
पशुओंकी जलप्राय प्रदेशके जीवोंकी और जलचर प्राणि-  
योंकी लेनी चाहिये । और हड्डिके भीतरका जो उत्तम  
स्नेह है वह मज्जा कहाजाताहै ।

राल तथा सैधानिमक इनके चूर्णको घीमे तथा सहतमें  
मिलाकर मथै फिर उसमे सरसोंका तेल मिलाकर पावोंमें  
लगानेसे विवाई दूर होजातीहै ।

मोम, शिलाजीत, घी, गुड, भैंसिया गुगल, राल और

है इनको मिलाकर लेप करनेसे पायोका फटना बंद होजाताहै ॥ ११९-१२२ ॥

अथोन्मत्ततैलम् ।

उन्मत्तकस्य बीजेन मानकक्षारवारिणा ॥

विपकं कटुतैलन्तु हन्यादारीं न संशयः १२३

घट्टेके बीज और मानकदकी भस्मके जलसे पकाया हुआ सरसोंका तेल पांवांके फटनेके लिये उत्तम है यह निश्चय है ॥ १२३ ॥

अथ कदरलक्षणम् ।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टका-  
दिभिः ॥ ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते

कदरस्तु सः ॥ १२४ ॥

शर्करा अत्र वालुका । कोलवदुत्सन्नो जायते-  
वत् । उत्सन्नः उद्गतः ॥

पावमें फकर पत्थर रेंता आदिके लगनेसे अथवा काटे आदिके छिद जानेसे पावमें छोटे घेरकी समान ऊंची गांठ उत्पन्न होतीहै उसको कदर कहतेहैं । देशमें ठेक वा टेट कहतेहैं ॥ १२४ ॥

अथ कदरचिकित्सा ।

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ १२५ ॥

कदरको शल्लसे चीरकर गरम तेलका अथवा अग्निको दाग देनेसे कदर नष्ट होजाताहै ॥ १२५ ॥

अथ तिलकालकलक्षणम् ।

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि

च ॥ वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिल-

कालकान् ॥ १२६ ॥

समानि अनुद्गतानि । अयं तिल इति लोके ।

वात, पित्त तथा कफके प्रकोपसे काले, तिलकी समान पीझारहित त्वचासे मिले जो दाग होनेहैं उनको तिलकालक ( तिल ) कहतेहैं ॥ १२६ ॥

अथ मशकलक्षणम् ।

अवेदनं स्थिरञ्चैव यच्च गात्रे प्रदृश्यते ॥

भापवत्कृष्णमुत्सन्नं मलिनं मशकं

दिशेत् ॥ १२७ ॥

स्थिरमचलम् अवेदनं वेदनारहितं मशक इति लोके ॥

शरीरमें उडदकी समान काले तथा ऊंचे, मलिन, वेद-  
नारहित और स्थिर जो दाग होतेहैं उनको मशक कहतेहैं ।  
देशमें मस्ता कहतेहैं ॥ १२७ ॥

अथ श्यावपिण्डिकलक्षणम् ।

वित्वचस्तनवः स्फोटाः सूक्ष्माग्राः

श्यावपिण्डिकाः ॥ भवन्ति कफपित्ताभ्यां

क्षिप्रं नाशं प्रयान्ति च ॥ १२८ ॥

पतली त्वचावाले, सूक्ष्म अग्रभागवाले, शीघ्र नाश होने-  
वाले जो कफवातसे उत्पन्न हुए स्फोट, उनको श्यावपिण्डिक  
कहतेहैं ॥ १२८ ॥

अथ जतुमणिलक्षणम् ।

सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम् ॥

सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिश्च सः

॥ १२९ ॥ कृष्णः स्निग्धो जतुमणिर्ज्ञेयो

वातोत्तरैस्त्रिभिः ॥ अरुजं त्वपरे रक्तं

लक्ष्मेत्याहुर्भिषग्वराः ॥ १३० ॥

समं समवर्णम् । उत्सन्नं किञ्चिदुत्सन्नम् ।

सहजं शरीरेण सह जातम् । एवंविधं यन्म-

ण्डलं स जतुमणिर्लक्ष्यः लक्ष्म चैकेषामिति ।

एकेषामाचार्यणां मते तन्मण्डलं लक्ष्मसं-

ज्ञञ्च । लक्ष्म लघुन इति लोके । अपरैस्तु

जतुमणिलक्ष्मणोर्भेदकं लक्षणमुत्तमम् । कृष्ण

इत्यादिना ॥

शरीरकी समान वर्णवाला, कुछेक ऊंचा शरीरके साथ

उत्पन्नहुआ और कफ तथा रक्तके प्रकोपवाला जो गोल

मण्डल होताहै उसको जतुमणि कहतेहैं, कितने एक

आचार्य जतुमणिको लक्ष्म वा लक्ष्यक हतेहैं देशमें लहसन

या लहसा कहतेहैं ।

कितने एक उत्तम वैद्योंका ऐसा मत भी है कि, वात

पित्त और उत्पन्नतावाले कफसे भी काला और चिकना

जो मण्डल होताहै वह जतुमणि कहाजाताहै और इसी

प्रकार वेदनारहित जो लाल मण्डल होताहै वह लक्ष्म

कहाजाताहै ॥ १२८-१३० ॥

अथ तिलकालकमशकजतुमणि-  
चिकित्सा ।

चर्मकोलं जतुमणिमशकांस्तिलकालकान् ॥

उत्कृष्य शस्त्रेण दहेक्षाराम्निभ्यामशेषतः ॥ १३१ ॥

चर्मकील नामक अर्शको, जतुमणिको, मस्सेको और तिलको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे सम्पूर्ण रीतिसे दागदेवे ॥ १३१ ॥

अथ न्यच्छलक्षणम् ।

मण्डलं महदल्पं वा श्यावं वा यदि वा सितम् ॥ सहजं नीरुजं गात्रे न्यच्छं तदभिधीयते ॥ १३२ ॥

शरीरमें बड़ा अथवा छोटा, काला अथवा सफेद, शरीरके साथ उत्पन्नहुआ और वेदनारहित जो मंडल होता है उसको न्यच्छ कहते हैं ॥ १३२ ॥

अथ न्यच्छचिकित्सा ।

शिरावेधैः प्रलेपैश्च तथाभ्यङ्गैरुपाचरेत् ॥ न्यच्छं लिम्पेत्पयःपिष्टैः कल्कैः क्षीरतरुद्रवैः ॥ १३३ ॥ त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिंशिपा चैभिः ॥ उद्धर्तनं विरचितं न्यच्छव्यंगापहं सिद्धम् ॥ १३४ ॥

स्थविरस्य वृद्धदारस्य ॥

शिराको वेधन करनेसे, प्रलेप करनेसे और अभ्यगसे न्यच्छकी चिकित्सा करे ।

क्षीरवृक्षोंकी छालको दूधमें पीसकर उस कल्कसे न्यच्छके ऊपर लेप करे तो न्यच्छ दूर होजाताहै ।

भांगके पत्ते, विधारेकी जड़ और ससिम इनको पीसकर रगड़कर मलनेसे न्यच्छ तथा व्यंग अवश्य दूर होजाताहै ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकलक्षणम् ।

कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डुमत्पाण्डुमण्डलम् ॥ पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ १३५ ॥

आचितं व्याप्तम् ॥ पद्मिनीकण्टकप्रख्यैः पद्मिनीनालकण्टकसदृशैस्तदाख्यं पद्मिनीकण्टकनामैव ॥

कफ तथा वायुसे उत्पन्नहुई कमलनालके कांटोंकी समान कांटोंसे व्याप्त, खुजलीसहित, गोल और पीला

जो मण्डल होताहै वह 'पद्मिनीकण्टक' कहाजाताहै ॥ १३५ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकचिकित्सा ।

पद्मिनीकण्टके रोगे छर्दयेन्निम्बवारिणा ॥ तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदापयेत् ॥ १३६ ॥

पद्मिनीकण्टक नामक क्षुद्ररोग हुआ होय तो नीमके जलसे वमन करावे नीमके पानीसे पकाहुआ घी सहित डालकर पिये । नीम तथा अमलतासके कल्कसे वारं-वार चुपड़े तो पद्मिनीकण्टक अवश्य दूर होजाताहै ॥ १३६ ॥

अथ निम्बादिघृतम् ।

निम्बारगवधकल्कैर्वा मुहुरुद्धर्तनं हितम् ॥ चतुर्गुणेन निम्बोथपत्रकाथेन गोघृतम् ॥ १३७ ॥ पचेत्ततस्तु निम्बस्य कृतमालस्य पत्रजैः ॥ कल्कैर्भूयः पचेत्सिद्धं तत्पिबेत्पलसम्मितम् ॥ पद्मिनीकण्टकाद्रोगान्मुक्तो भवति नान्यथा ॥ १३८ ॥

चोगुने नीमके पत्तोंके काथसे नीमके घीको पकाकर फिर उसी घीको नीमके पत्ते तथा अमलतासके पत्तोंके कल्कसे पकावे तो यह निम्बादिघृत सिद्ध होताहै । इस घीको चार चार तोले प्रमाण सेवन करनेसे पद्मिनीकण्टक नष्ट होजाताहै यह निश्चय है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

अथाजगल्लिकालक्षणम् ।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्रसन्निभा ॥ कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १३९ ॥

ग्रथिता गुम्फितेव । मुद्रसन्निभा मुद्राकृतिः ॥ बालकोंके मूँगकी आकृतिवाली, स्निग्ध शरीरके वर्णकी माफिक, गुम्फित, वेदनारहित और कफसे तथा वायुसे जो फुसिये होतीहै उनको अजगल्लिका कहतेहैं ॥ १३९ ॥

अथाजगल्लिकाचिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकां सामां जलौकोभिरुपाचरेत् ॥ शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेप-

येन्मुहुः ॥ कठिनां क्षारयोगेन द्रावयेद-  
जगलिकाम् ॥ १४० ॥

जो अजगलिका अपक्व अर्थात् कच्ची होय तो जांक लगाकर उसकी चिकित्सा करे । सीपकी भस्म तथा फट-करीकी खीलें इनको पीसकर बारबार उसके ऊपर लेप करे । जो अजगलिका कठिन होय तो क्षार लगाकर उसको द्रवीभूत करे ॥ १४० ॥

अथ यवप्रख्यालक्षणम् ।

यवाकारा प्रकठिना ग्रथिता मांससंश्र-  
या ॥ पीडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्ये-  
ति सोच्यते ॥ १४१ ॥

यवाकारा मध्ये स्थूला प्रान्ते कृशा ।

कफसे तथा वायुसे जीकी समान आकारवाली, अत्यन्त कठिन गुँथीहुई और मांसके आश्रयवाली जो फुडिया होतीहै वह यवप्रख्या कहीजातीहै । जीकी समान आकारवाली अर्थात् बीचमें मोटी और दोनों ओर पतली ॥ १४१ ॥

अथांत्रालजीलक्षणम् ।

घनामवक्रां पिडिकामुन्नतां परिमण्ड-  
लाम् ॥ अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्या-  
त्कफवातजाम् ॥ १४२ ॥

घनां कठिनाम् । परिमण्डलां वर्तुलाम् ॥

कठिन, समान अर्थात् टेढ़ी नहीं, ऊंची, गोल और थोड़ी राधवाली जो फुसी होतीहै वह अंत्रालजी कहीजातीहै, यह फुसी कफसे तथा वायुसे होतीहै ॥ १४२ ॥

अथ यवप्रख्यांत्रालजीचिकित्सा ।

अन्त्रालजीयवप्रख्ये पूर्व स्वेदैरुपाचरेत् ॥  
मनःशिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः प्रलेपयेत् ॥

पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाध-  
येत् ॥ १४३ ॥

यवप्रख्या और अंत्रालजीको प्रथम स्वेदन देकर पश्चात् भैरिशिल देवदारु और कूठ इनका कल्क लगावे । पक्वनेपर व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ १४३ ॥

अथ विवृतालक्षणम् ।

विवृताख्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्नि-  
भाम् ॥ विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां  
परिमण्डलाम् ॥ १४४ ॥

परिमण्डलाम् परितः शोथवतीम् ॥

फटे हुए मुखवाली, अत्यन्त दाहयुक्त, पक्के गूलरकी समान और चारोंओर सूजनवाली जो फुंसी होती-है वह 'विवृता' कहीजातीहै । यह फुंसी पित्तसे निक-लतीहै ॥ १४४ ॥

अथेन्द्रवृद्धालक्षणम् ।

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पीडिकां पीडिकाचि-  
ताम् ॥ इन्द्रवृद्धान्तु तां विद्याद्वातपित्तो-  
त्थितां भिषक् ॥ १४५ ॥

पद्मकर्णिकवत्-पद्मफलाधारोपमां पीड-  
काचितां किञ्चलकवल्लघुपीडकाचिताम् ॥

बीचमें कमलकर्णिकाकी समान एक फुडिया और उसके चारों ओर बहुतसी छोटी छोटी फुंसी होंयें उसको वैद्य इन्द्रवृद्धा कहतेहैं, यह वात तथा पित्तसे होतीहै ॥ १४५ ॥

अथ गर्दभिकालक्षणम् ।

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सुरक्तं पीडिकाचि-  
तम् ॥ रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्या-  
द्वातपित्तजाम् ॥ १४६ ॥

गोल, ऊचा, अत्यन्त लाल, फुसियोंसे व्याप्त और वेदना करनेवाला जो मंडल होताहै उसको गर्द-भिका कहतेहैं । यह गर्दभिका वायुसे तथा पित्तसे होतीहै ॥ १४६ ॥

अथ जालगर्दभलक्षणम् ।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् ॥  
दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालग-  
र्दभः ॥ १४७ ॥

अपाकवानीषत्पाकवान् पित्तकृतत्वेन स-  
र्वथा पाकाभावस्य अयुक्तत्वात् । अयमभि-  
वात इति ख्यातः ॥

विसर्पकी समान फैलनेवाली, पतली, कम पकने-वाली और दाह तथा ज्वर उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होतीहै वह जालगर्दभ कहीजातीहै । यह रोग पित्तसे उत्पन्न होताहै ॥

वेद्यपि मूलमें 'अपाक' शब्द है तथापि 'कम-पकनेवाली' ऐसा अर्थ किया है इसका कारण यह

है कि, पित्तसे उत्पन्न होनेके कारण सर्वथा नहीं पकना असम्भव है ॥ १४७ ॥

अथ विवृतेन्द्रवृद्धागर्दभिकाजा-  
लगर्दभानां चिकित्सा ।

विवृतामिन्द्रवृद्धाश्च गर्दभीं जालगर्दभम् ॥  
पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्वि-  
षक् ॥ पाके तु रोपयेदाज्यैः पक्वैर्मधुरभे-  
षजैः ॥ १४८ ॥

विवृताको, इन्द्रवृद्धाको, गर्दभिकाको और जाल-  
गर्दभको वैद्य पित्तज विसर्पोंके चिकित्सासे दूर करे । यह  
जो पके तो इनको जीवनीय गणकी मधुर औषधियोंसे  
पकाये हुए घृतसे रोपण करे ॥ १४८ ॥

अथ कच्छपिकालक्षणम् ।

ग्रथिताः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छ-  
पोन्नताः ॥ कफानिलाभ्यां पिडकाः सा  
स्मृता कच्छपी बुधैः ॥ १४९ ॥

कच्छपोन्नता मध्ये प्रोन्नता प्रान्ते नता ।

कछुवेकी समान बीचमें ऊंची और चारों ओर  
नीची पांच वा छह जो दारुण फुडिये होती हैं उनको  
कच्छपिका जानना । यह रोग कफ तथा वायुसे होता-  
है ॥ १४९ ॥

अथ कच्छपिकाचिकित्सा ।

कच्छपीं स्वेदयेत्पूर्वं तत एव प्रलेपयेत् ॥  
कल्कीकृतैर्निशाकुष्ठसितातालकदारुभिः ॥  
तां पक्वां साधयेच्छीघ्रं भिषग्त्रणचिकि-  
त्सया ॥ १५० ॥

कच्छपिकाको प्रथम स्वेदनकर पश्चात् उसके ऊपर  
हलदी, कूठ, मिश्री, हरिताल और देवदारु इनके क-  
ल्का लेप करे, पकनेपर त्रणकी समान चिकित्सा करके  
दूर करे ॥ १५० ॥

अथ शर्करार्बुदलक्षणम् ।

प्राप्य मांसशिरास्त्रायुमेदः श्लेष्मा तथा-  
निलः ॥ ग्रन्थिं करोत्यसौ भिन्नो मधुस-  
र्पिर्वसानिभम् ॥ १५१ ॥ स्रवति स्रावम-  
त्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः ॥ मांसं विशो-  
ष्य ग्रथितां शर्करां जनयत्यतः ॥ १५२ ॥

दुर्गन्धं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ॥  
स्रवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्करा-  
र्बुदम् ॥ १५३ ॥

शर्करा वालुकातुल्या ॥

कफ तथा वायु मांस, शिरा, स्नायु, और मेदमें प्राप्त  
होकर गांठको उत्पन्न करें हैं, यह गांठ फूटकर स्रवतकी  
समान, धीकी समान, तथा चरबीकी समान बहती है ।  
इसमें वृद्धिको प्राप्त हुई वायु मांसको सुखाकर गुंथीसी  
गांठको उत्पन्न करती हैं । यह गांठ उत्पन्न होनेसे छोटी  
नसे दुर्गन्धि अत्यन्त क्लेदयुक्त और अनेक वर्णवाले रुधि-  
रको सहसा बहती हैं इसको शर्करार्बुद कहते हैं यह गांठ  
रेतेकी समान होती है ॥ १५१-१५३ ॥

अथ शर्करार्बुदचिकित्सा ।

मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम् ॥

मेदसम्बन्धी अर्बुदकी जो चिकित्सा कही है उसी  
चिकित्सासे शर्करार्बुदको दूर करे ।

अथ कियदालस्यादिक्षुद्रविका-  
राणां लक्षणम् ।

शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमु-  
च्यते ॥ अस्वास्थ्यं चिन्तयात्यर्थमरतिः  
कथ्यते बुधैः ॥ १५४ ॥

शरीरमें सामर्थ्य होनेपर भी काम काज करनेमें उत्साह  
न होय उसको आलस्य कहते हैं । चिन्तासे जो अस्वस्थता  
होती है उसको अरति कहते हैं ॥ १५४ ॥

उक्लिद्यान्नश्च निर्गच्छेत्प्रसेकः घ्रीवने-  
रितम् ॥ हृदयं पीडयते चास्य तमुत्क्लेशं  
विनिर्दिशेत् ॥ १५५ ॥

मुखमेंसे लारगिरे, थूकके साथ जो भोजन किया अन्न  
चित्तमें ग्लानि होनेके कारण निकले, और हृदयमें पीडा  
होय उसको उत्क्लेश कहते हैं ॥ १५५ ॥

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः ॥  
न चान्नं रोचते यस्मै ग्लानिं तस्य विनि-  
र्दिशेत् ॥ १५६ ॥

मुखमें मधुरता, तन्द्रा, हृदयका वधना, भ्रम और  
अन्नपर अरुचि यह लक्षण होय तो उसको ग्लानि  
जानना ॥ १५६ ॥



शानिरोगः क्षयाद्दुःखादजीर्णाच्च श्रमोद्धवा-  
त ॥ उदानकोपादाहारसुस्थितत्वाच्च यद्भ-  
वेत ॥ पवनस्योर्द्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रच-  
क्षते ॥ १५७ ॥

जो उठे उठे, दुःख, अजीर्ण तथा पश्चिमसे  
गति होती है ।

उदानगुरु प्रकोपसे और आहारके यथावस्थित  
क्षाने पवनकी उंची गति होती है उसको उद्गार  
कहते हैं ॥ १५७ ॥

आद्योपां गुडगुडाशब्दः प्रोक्तो जठरसम्भ-  
वः ॥ तमःस्थस्येव यज्ज्ञानं तत्तमः  
कथ्यते वृथैः ॥ १५८ ॥

इति भुज्जोगाधिकारः ।

गुड गुड शब्द होता है उसको आद्योप  
कहते हैं ।

अन्तर में स्थित होनेवाला जो ज्ञान होता है उसको  
तम कहते हैं ॥ १५८ ॥

इति भुज्जोगाधिकारः संपूर्णः ।

## अथ शिरोरोगाधिकारः ।

तत्र शिरोरोगनिदानं संख्या च ।

शिरोरोगान्मु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रि-  
भिः ॥ मन्निपानेन रक्तेन क्षयेण क्रिभिभि-  
स्तथा ॥ १ ॥ सूर्यावर्तानन्तवातशङ्का-  
द्वावभेदकाः ॥ पञ्चादशविधस्यास्य लक्ष-  
णानि प्रचक्षते ॥ २ ॥

शिरोरोगाः अत्र शिरोरोगजा शूलरूपा  
र्याभिधीयन्ते । वातपित्तकफैस्त्रिभिः । ननु  
वातपित्तकफैर्गन्तुं गित्ववायः । किमर्थं  
त्रिभिर्गति पदम् । उच्यते-मर्षयो शिरो-  
रोगानां मन्निपानजन्यपारनाथम् । वात-  
पित्तकफानां प्रवृत्तारण्यं चोत्तरपान ।  
क्षयेन रग्नादित्येव ॥

वातपित्तकफैर्गन्तुं गित्ववायः । किमर्थं  
त्रिभिर्गति पदम् । उच्यते-मर्षयो शिरो-  
रोगानां मन्निपानजन्यपारनाथम् । वात-  
पित्तकफानां प्रवृत्तारण्यं चोत्तरपान ।  
क्षयेन रग्नादित्येव ॥

और अर्द्धावभेदक इस प्रकार यह शिरोरोग ग्यारह  
११ प्रकारका होता है, इन सबके लक्षण नीचे लिखते-  
हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ वातजशिरोरोगलक्षणम् ।

यस्याऽनिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति ।  
तीव्रा निशि चातिमात्रम् ॥ बन्धोपतापैः  
प्रशमो भवेच्च शिरोऽभितापः स समीर-  
णेन ॥ ३ ॥

भवेदिति शेषः । अनिमित्तमतर्कितविप्र-  
कृष्टनिमित्तम् । निशि चातिमात्रं रात्रौ  
शैत्येन वायोराधिकात् । उपतापः स्वेद-  
नम् । शिरोऽभितापः शिरःपीडा ॥

अकस्मात् दूरके कारणोंसे जो मस्तकमें तीव्र पीडा  
होय, रात्रिमें नीतके कारण वायुकी आधिकासे अधिक  
बट जाय और मस्तकको नाघनेसे तथा सेकनेसे वह  
शांत होजाती होय उसको वातसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग  
जानना ॥ ३ ॥

अथ पित्तजशिरोरोगलक्षणम् ।

यस्योष्णमद्गारचितं यथैव भवेच्छिरो  
दहति चाक्षिनासम् ॥ शीतेन रात्रौ च  
भवेत्क्षयश्च शिरोऽभितापः स तु पित्तको-  
पात् ॥ ४ ॥

दहति इत्यार्पत्वात् ॥

पित्तका शिर तम अक्षरोंकी समान गरम हो, नेत्र  
और नासिकांमं दाह हो और रात्रिमें शीतके कारण  
वेदना शांत होजाय वा उनमें पित्तक शिरोरोग जा-  
नना ॥ ४ ॥

अथ कफजशिरोरोगलक्षणम् ।

शिरो भवत्तस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्ठ-  
व्यमथो हिमश्च ॥ शूनाक्षिनासावदनश्च  
यस्य शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ५ ॥

कफोपदिग्धमन्तःकफलितम् । प्रतिष्ठं  
तत्र शिरः ॥

कफोपदिग्धमन्तःकफलितम् । प्रतिष्ठं  
तत्र शिरः ॥

अथ सन्निपातजशिरोरोगलक्षणम् ।  
शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गा-  
नि समुद्भवन्ति ॥

शिरोरोगमे जो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण दीखते  
होंयें तो उसको त्रिदोषज शिरोरोग जानना ।

अथ रुधिरजन्यशिरोरोगलक्षणम् ।  
रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शसहत्वं  
शिरसो भवेच्च ॥ ६ ॥

पैत्तिकाद्भेदमाह । शिरसः स्पर्शसहत्व-  
मिति ॥

पित्तज शिरोरोगके सब लक्षण दीखते हैं और मस्तक  
किसी पदार्थका स्पर्श नहीं सहन करसके तो उसको  
रुधिरजन्य शिरोरोग जानना । मस्तक किसीका स्पर्श नहीं  
करसके इतना ही पित्तज और रुधिरजनित शिरोरोगमें  
भेद है ॥ ६ ॥

अथ रसादिधातुक्षयजन्यशिरोरोग-  
लक्षणम् ।

वसावलासक्षतसम्भवानां शिरोगतानाम-  
तिसङ्क्षयेण ॥ क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः  
कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ संस्वेदनच्छ-  
र्दनधमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ७ ॥  
क्षतसम्भवं रुधिरम् । कष्टः कष्टसाध्यः ॥  
अङ्गं भ्रमति तुद्येत शिरोविभ्रान्तनेत्रता ॥  
मूर्च्छा गात्रावसादश्च शिरोरोगे क्षया-  
त्मके ॥ ८ ॥

मस्तकमें अत्यन्त तीव्र पीडा हो, वह पीडा सेकनेसे,  
वमन करनेसे, धूमपानसे, नस्य देनेसे और रुधिरको  
निकलवानेसे वृद्धिको प्राप्त होय तो उसको जानना कि,  
शिरमे रहनेवाली चरबी, कफ और अत्यन्त रुधिरके क्षय  
होनेसे यह शिरोरोग हुआ है । यह शिरोरोग कष्ट-  
साध्य है । क्षयज शिरोरोगमे शरीर घूमताहै, मस्तकमें सुई  
चुभोने सरीखी पीडा होतीहै, नेत्रोंकी पुतली बारंवार फिरतीहै,  
मूर्च्छा और अगोमे ग्लानि होतीहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ कृमिजशिरोरोगलक्षणम् ।

निरतुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भक्ष्य-

माणं स्फुरतीव चान्तः ॥ घ्राणाच्च गच्छे-  
द्गुधिरं सपूयं शिरोऽभितापः किमिभिः  
स घोरः ॥ ९ ॥

सम्भक्ष्यमाणम् । किमिभिरिति शेषः ॥  
घ्राणाच्चेति चकारेण किमिनिर्गमोऽपि  
बोध्यते ।

मस्तकमें अत्यन्त तोड़ने सरीखी पीडा हो, कृमिके  
भक्षण करनेके कारण भीतरसे फडकता हो ऐसा मालूम  
हो और नाकमेंसे राध सहित रुधिर निकले, तथा कीड़े  
भी निकले तो उसको जानना कि, यह भयकर शिरोरोग  
कृमियोंसे उत्पन्न हुआ है ॥ ९ ॥

अथ सूर्यावर्तलक्षणम् ।

सूर्योदयं या प्रतिमन्दमन्दमक्षिभ्रुवौ  
रुक् समुपैति गाढम् ॥ विवर्द्धते चांशु-  
मता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥  
॥ १० ॥ शीतेन शान्तिं लभते कदा-  
चिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाद्वा ॥  
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवर्तं त-  
मुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

सूर्योदय इति लक्षीकृत्य आरभ्येति याव-  
त्सूर्यस्य अपवृत्तौ सूर्यस्य अधोगतौ ॥

सूर्यके उदय होनेपर धीरे धीरे आंखें और भौंओमें  
मन्द मन्द पीडा होती आवे, ज्यों ज्यों सूर्य आकाशमें  
आधिक चढताजाय त्यों त्यों यह पीडा अधिक होती जाय,  
जब दो प्रहरके बाद सूर्य पश्चिममें ज्यों ज्यों छिपताजाय त्यों  
त्यों यह पीडा शान्त होतीजाय, किसी समय यह पीडा शीतसे  
शान्त होतीहै और किसीसमय उष्णतासे भी शान्त होती  
है इसको सूर्यावर्त कहतेहैं । यह रोग तीनों दोषोंके-प्रको-  
पसे होताहै और अत्यन्त कष्टसाध्य है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथानंतवातलक्षणम् ।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां सम्पीडय  
गाढं स्वरुजां सुतीव्राम् ॥ कुर्वन्ति यो-  
ऽक्षिण भ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु  
विशेषतस्तु ॥ १२ ॥ गण्डस्य पार्श्वे तु  
करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजान्त्रिका-

यातजातशिरोरोगं ग्रेहस्वेदं विषर्पणम् ॥  
 पानादागोपनादांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥  
 ॥ १९ ॥ कृष्टमेरण्डमूलञ्च नागरं

तक्रपेषितम् ॥ कटूष्णं शिरसः पीडां  
भाले लेपनतो हरेत् ॥ २० ॥ रसः श्वास-  
कुठारो यस्तस्य नस्यविशेषतः ॥  
शिरःशूलं हरत्येव विधेयो नात्र  
संशयः ॥ २१ ॥

जो शिरोरोग वातसे उत्पन्न हुआ होय तो स्नेहन करना, स्वेदन करना तथा मस्तकमें तेल आदि मलना चाहिये और वातनाशक पान, आहार तथा उपनाह स्वेद करे ॥ १९ ॥

कूठ, अंडकी जड़ और सोंठ इनको तक्रमें पीसकर कुछेक गरम करके कपालमें लेप करे तो वातजन्य शिरो-रोग नष्ट होजाताहै ॥ २० ॥

श्वासकुठाररसका नास देनेसे मस्तकका शूल अवश्य नष्ट होजाताहै । इस वातजन्य शिरोरोगपर यह नस्य अवश्य देना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ शिरोवस्तिः ।

आशिरो व्यायतं चर्म षोडशांगुलमुच्छ्रि-  
तम् ॥ तेनावेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषक-  
त्केन लेपयेत् ॥ २२ ॥ निश्चलस्योपवि-  
ष्टस्य तैलैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ धारयेदा-  
रुजः शान्त्यै यामं यामार्द्धमेव वा ॥ २३ ॥  
शिरोवस्तिर्हरत्येष शिरोरोगं मरुद्भ-  
वम् ॥ हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं मूर्द्ध-  
कम्पनम् ॥ २४ ॥ विना भोजनमेवैष  
शिरोवस्तिः प्रयुज्यते ॥ दिनानि पञ्च  
वा सप्त रुचितोऽग्रे ततोऽपि च ॥ २५ ॥  
ततोऽपनीतस्त्रेहस्तु मोचयेद्भस्तिबन्धनम् ॥  
शिरोललाटवदनं ग्रीवांसादीन्विमर्द-  
येत् ॥ २६ ॥ सुखोष्णेनाम्भसा गात्रं  
प्रक्षाल्याऽभ्राति यद्धितम् ॥ आमिषं  
जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपि  
च ॥ २७ ॥ मुद्गमाषान्कुलत्थांश्च खादेद्वा  
निशि केवलान् ॥ कटुकोष्णान्ससर्पिष्का-  
नुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा ॥ २८ ॥ पित्तात्मके

शिरोरोगे शीतानां चन्दनाम्भसा ॥  
कुमुदोत्पलपद्मानां स्पर्शाः सेव्याश्च  
मारुताः ॥ २९ ॥ सर्पिषः शतधौतस्य  
शिरसा धारणं हितम् ॥ रसः श्वासकु-  
ठारोऽल्पः कर्पूरः कुंकुमं नवम् ॥ ३० ॥  
सिता छागीपयः सर्वं चन्दनेनानुघर्ष-  
येत् ॥ तस्य नस्यं भिषग्दद्यात्पित्तजायां  
शिरोरुजि ॥ ३१ ॥ किन्तु मस्तकशूलेषु  
सर्वेष्वेवं हितं मतम् ॥ गुडनागरकल्कस्य  
नस्यं मस्तकशूलनुत् ॥ ३२ ॥ रक्तजे  
पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् ॥ शीतो-  
ष्णयोश्च विन्यस्य विशेषो रक्तमोक्षणम् ॥  
॥ ३३ ॥ कफजे लंघनं स्वेदरूक्षोष्णैः  
पावकात्मकैः ॥ सन्निपातभवे कार्या सन्नि-  
पातहरी क्रिया ॥ पुराणसर्पिषः पानं  
विशेषेण दिशन्ति हि ॥ ३४ ॥

जो मस्तकपर पुरा आजाय ऐसा लम्बा और सोलह अंगुल ऊंचा चमड़ा लेकर उस चमड़ेसे मस्तकको बाँधे और उसके नीचेके जोड़ोंमें उडदका चून जलमें सानकर लगादेवे । फिर रोगीको निश्चल बैठाकर कुछेक गरम तेल मस्तकके ऊपर उस चमड़ेमें भरदेवे । पश्चात् जबतक पीडा शांत न होय तबतक अथवा एक प्रहरतक या चार घडीतक उसको ऐसाही बैठा रहने देवे । यह शिरोवस्ति वातज शिरोरोग, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, नेत्रकी पीडा, कानकी पीडा, अर्दित और मस्तककंपको दूर करेहै । यह वस्ति भोजनकरनेसे पहिले ही रोगीको देनी चाहिये । पाच दिनतक, सात दिनतक और जो अनुकूल होय तो इससे भी अधिक दिनतक यह क्रिया प्रयोग करनी चाहिये । वेदना शांत होनेपर अथवा एक प्रहरके पश्चात् अथवा चार घडीके पश्चात् सब तेलको निकालकर वस्तिके बंधनको अलग कर लेवे और मस्तक, कपाल, मुख, गरदन तथा खवा आदिको खूब मर्दन करे । पश्चात् सुहाते सुहाते गरम जलसे शरीरको धोकर पथ्य अन्न खानेको देवे । जागल पशुओंका मांस और लाल शालि चावल आदि भी इसपर हितकारी हैं । रात्रिमें मूँग, उडद और कुलथी अथवा इकली कुलथीको रांध कर उसमें घी

डालकर तथा तीक्ष्ण पदार्थ ( मिरची आदि ) डालकर गरम गरम खाय और उसके ऊपर गरम दूध पिये ॥

जो शिरोरोग पित्तसे उत्पन्न हुआ होय तो चदनके जलसे शीतल किये पखोंकी पवन, लाल कमल और सफेद कमल इनको धारण करे तथा शीतल हवाका सेवन करे ॥

सांवा ( धुले हुए ) धीको मस्तकपर वारण करनेसे पित्तज शिरोरोग दूर होताहै ॥

कुठेक श्वासकुठारनामक रस, कपूर, नवीन केसर, मिश्री और बकरीका दूध इन सबको सफेद चदनके साथ जलमें बिसकर नास देनेसे पित्तसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग नष्ट होताहै ।

मस्तकके सम्पूर्ण शूलोंमें उपरोक्त प्रयोग हितकारी है ऐसा माना गया है ।

गुडका और सोंठके कटकका नास देनेसे भी मस्तक शूल दूर होजाताहै ।

जो शिरोरोग रुधिरसे हुआ होय तो पित्तज शिरोरोगकी समान सम्पूर्ण भोजन, लेपन और सेचनसे चिकित्सा कर और विशेषकरके रक्तमोक्षण करे ।

जो शिरोरोग कफसे उत्पन्न हुआ होय तो लवण करावे तथा गरमीसे पूर्ण, रुक्ष और उष्ण पदार्थोंसे स्वेदन करे ।

जो शिरोरोग सन्निपातसे उत्पन्न हुआ होय तो सन्निपातको दूर करनेवाली चिकित्सा करे और विशेष करके पुगना धी पिलावे ऐसा वैद्यविद्याके विद्वानोंमें कहा है ॥ २२-३४ ॥

### अथ पडविन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिका  
रान्निकसैन्धवं च ॥ भृंगं विडंगं मधुय-  
ष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य  
तैलम् ॥ ३५ ॥ अजापयस्तैलविमिश्रि-  
तश्च चतुर्गुणं भृंगरसे विपक्रम ॥ पड-  
विन्दवो नासिकया प्रदेयाः सर्वाग्निहन्तुः  
शिरसा विकारान् ॥ ३६ ॥ च्युतांश्च  
केशान्पतितान्श्च केशान्निर्वन्धमूलान्सुदृढी-  
करांति ॥ सुपर्णगृध्रप्रतिमश्च चक्षुः कुर्वन्ति  
वाह्यगन्धिकं वदश्च ॥ ३७ ॥

### जीवन्तिकाश्च हरीतकी शाकविशेषश्च ।

अडकी जड़, तगर, सतावर, जीवन्ती ( जैनी ), रासना, सैवानिमक, भांगरा, वायविडग, मुलैठी, सोंठ, काले तिलोंका तेल और बकरीका दूध इन सबको चौगुने भांगरेके रसमें पकावे तो यह 'पडविन्दु' तैल सिद्ध होताहै इस तेलकी छः बूंद नाकमें डालनेसे सर्व प्रकारके शिरो-रोग नष्ट होजातेहैं । तथा बालोंका गिरना और दांतोंका छिलना दूर होकर बाल और दांत अत्यन्त दृढ होजाते हैं । नेत्र गडकी समान और बलमें गीधकी समान तथा बाहुबली होताहै ॥ ३५-३७ ॥

क्षयजे क्षयनाशाय कर्तव्यो बृंहणो  
विधिः ॥ पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वात-  
त्रैर्मधुरैः शृतम् ॥ ३८ ॥

जो शिरोरोग क्षयसे उत्पन्न हुआ होय तो क्षयको नाश करनेके लिये पुष्टि कारक प्रयोग करे और वायुको नष्ट करनेवाले मधुर पदार्थोंसे पकाये हुए घृतको पिये तथा नासमें देवे ॥ ३८ ॥

किमिजे व्योषनक्ताहशिग्रुबीजैश्च नाच-  
नम् ॥ अजामूत्रयुतं नस्यं कर्तव्यं कुमि-  
नुत्परम् ॥ ३९ ॥

जो शिरोरोग कुमिजन्य होय तो सोंठ, मिरच, पीपल, करज और सैजिनेके बीज इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर नास देवे, इस नस्य देनेसे कुमि अवश्य नष्ट होजाते-हैं ॥ ३९ ॥

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादि भेष-  
जम् ॥

सूर्यावर्त नामक रोग हुआ होय तो नस्य आदि देकर चिकित्सा करे ।

### अथ कुमारीतैलम् ।

कुमार्याः स्वरसप्रस्थे धतूरस्य रसे तथा ॥  
॥ ४० ॥ भृंगराजस्य च रसे प्रस्थद्वय-  
समायुते ॥ चतुःप्रस्थमिते क्षीरे तैलप्रस्थं  
विपाचयेत् ॥ ४१ ॥ कल्कैर्मधुकहीबेर-  
मंजिष्ठाभद्रमुस्तकैः ॥ नखकर्पूरभृंगैला-  
जीवन्तीपद्मकुष्ठकैः ॥ ४२ ॥ मार्कवास-



कतालीससर्जनिर्यासपत्रकैः ॥ विडङ्ग-  
शतपुष्पाश्वगन्धागन्धर्वहस्तकैः ॥ ४३ ॥  
तैले वटनालिकेलाभ्यां कर्षमानौर्विपाचि-  
ते ॥ उत्तार्य वस्त्रपूतं तु शुभे भाण्डे सुधू-  
पिते ॥ ४४ ॥ त्रिरात्रमथ गुप्तश्च धारये-  
द्विधिवद्विषक् ॥ ततस्तु तैलमभ्यगे मूर्ध्नि  
क्षेपे नियोजयेत् ॥ ४५ ॥ शमयेददितं  
गाढमन्यास्तम्भशिरोरोगदान् ॥ तालुनासा-  
क्षिपातन्तु शोषमूर्च्छाहलीमकम् ॥ हनुग्रह-  
गदार्तिं वा बाधिर्यकर्णवेदनम् ॥ ४६ ॥

घीकारका स्वरस ६४ तोले, धतूरेका स्वरस ६४  
तोले, भांगरेका स्वरस १२८ तोले और भांगरेके रससे  
दुगुना दूध, इनमें मुलेठी, सुगन्धवाला, मजीठ, नागर-  
मोथा, नखद्रव्य, कपूर, भागरा, इलायची, हरड, पन्नाख,  
कूठ, कालाभांगरा, अडूसा, तालीसपत्र, राल, तेजरात,  
चायविडग, सोया, असगन्ध, अण्ड, वट और नारियल  
इनका एक एक तोला करके लेकर चौंसठ तोले तेलको  
पकावे, इस-तेलको अग्निसे उतार कर अच्छे प्रकारसे  
वस्त्रसे छानकर उत्तम सुवासित किये हुए पात्रमें भरकर  
विधिपूर्वक वैद्य तीन दिनतक धरतीमें गाड़देवे । इस  
तेलका मालिस करे और शिरमें डाले तो अर्दित, मन्या  
स्तम्भ, शिरोरोग, तालुवेकी सूजन, नासिकाकी सूजन,  
आँखोंकी सूजन, मूर्च्छा, हलीमक, हनुग्रह, बधिरता और  
कानकी पीडा शमन होती है ॥ ४०-४६ ॥

योजयेत्सगुडं सर्पिर्वृतपूपांश्च भक्षयेत् ॥  
नावनं क्षीरसर्पिर्भ्यां पानश्च क्षीरसर्पिषोः  
॥ ४७ ॥ क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनी-  
यैश्च शस्यत ॥ भृंगराजरसश्छागीक्षीरतु-  
ल्याऽर्कतापितः ॥ ४८ ॥ सूर्यावर्त निह-  
न्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट् ॥ अर्द्धाविभेदके  
पूर्वं स्नेहस्वेदौ हि भेषजम् ॥ ४९ ॥ वि-  
रेकः कायशुद्धिश्च धूपः स्निग्धोष्णभोज-  
नम् ॥ विडंगानि तिलान्कृष्णान्समान्पि-  
ष्टान्विलेपयेत् ॥ ५० ॥ नस्यश्चाप्याचरेत्त-

स्मादर्द्धभेदं व्यपोहति ॥ पिबेत्सशर्करं क्षीरं  
नीरं वा नारिकेलजम् ॥ सुशीतं वापि  
पानीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः ॥ ५१ ॥

नस्यतः नासिकया पिबेदिति अन्वयः  
तयोः सूर्यावर्तार्द्धभेदयोः ॥

गुडके साथ घीको खाय, घीके मालपुये खाय, दूधका  
तथा घीका नास देवे, दूध और घी मिलाकर पिये, दूधमें  
पिसेहुए तिलोंसे तथा जीवनीय गणके पदार्थोंसे सेक करे  
तो सूर्यावर्त नष्ट होजाता है ॥

भांगके रसको और बकरीके दूधको समान भाग लेकर  
दोनोंको एकत्र धूपमें गरम करके नास देवे तो सूर्यावर्त  
नष्ट होजाता है, सूर्यावर्तके लिये यह प्रयोग उत्तम है ॥

अर्द्धाविभेदक नामक जो शिरोरोग हुआ होय तो प्रथम  
स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, अन्यप्रकारसे शरीरका सशोधन,  
धूप और स्निग्ध तथा उष्ण भोजन ये उपचार करे ॥

चायविडग और काले तिल इनको समान भाग लेकर  
दूधमें पीसकर लेप करे और इसीका नास देवे तो अर्द्धाविभे-  
दक नष्ट होजाता है ॥

नासिकाके द्वारा मिश्री मिला दूध पिये तो अथवा  
नारियलका जल पिये, शीतल जल पिये अथवा घीको पिये  
तो सूर्यावर्त तथा अर्द्धाविभेदक नष्ट होजाता है ॥ ४७-५१ ॥

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो विधिः ॥  
शिरोवेधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥  
॥ ५२ ॥ आहारश्च प्रदातव्यो वातपित्त-  
विनाशनः ॥ मधुमस्तकसंयावघृतपूपो  
विशेषतः ॥ ५३ ॥

संयावः पक्कान्नविशेषः पेशकिया इति  
लोके । स च मधुमस्तकः मधुनोपलितः । घृत-  
पूपः पूआ इति लोके ।

अनन्तवातनामक रोग उत्पन्न हुआ होय तो सूर्यावर्तकी  
समान चिकित्सा करनी चाहिये । अनन्तवातको शांत कर-  
नेके लिये नसको वेधकर रुधिर निकलगावे और पित्त  
तथा वातनाशक आहार देवे ॥ ५२ ॥

घीसे चुचुहाते तथा सहतसे भरे हुए चूरमा और गीरा  
तथा मालपुये आदि इनका उपयोग करे ॥ ५३ ॥

अथ पथ्यादिकाथः ।

पथ्याक्षधात्रीरजनीगुहूचीभूनिम्बनिम्बैः  
सगुडः कषायः ॥ भूशङ्खकर्णाक्षिशिरोऽर्द्ध-  
शूलं निहन्ति नासानिहितः क्षणेन ॥ ५४ ॥

हरड, बहेडा, आमले, हलदी, गिलेय, चिरायता और नीम इनका काय बनाकर उसमें गुड डालकर उसका नास देंगे तो धनमात्रमें भौं, कनपटी, कान, आँख और मस्तकका अर्द्धशूल ये सब नष्ट होजातेहैं ॥ ५४ ॥

दावीं हरिद्रा मज्जिष्ठा सनिम्बोशीरपद्म-  
कम् ॥ एतत्प्लेपनं कुर्याच्छंखकस्य प्रशा-  
न्तये ॥ ५५ ॥ शीततोयाभिषेकश्च शीतलं  
क्षीरसेवनम् ॥ कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शंखके  
लेपनं हितम् ॥ ५६ ॥

शंखकनामक शिरोरोग होय तो दारुहलदी, हलदी, मजीठ, नीम, खस और पद्माख इनका लेप करे ॥

शीतल जलका सेचन, शीतल दूधका सेवन और क्षीरवालि वट आदि वृक्षांका कल्क लेपन करनेसे शंखक-  
रोग नष्ट होताहै ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अथ सर्वशिरोरोगाणां सामा-  
न्यचिकित्सा ।

प्रष्टोमधुकमापः स्यात्तुर्पाशं तु विषं  
भवेत् ॥ तयोऽचूर्णं सुसूक्ष्मं स्यात्तच्चूर्णं सर्ष-  
पोन्मितम् ॥ ५७ ॥ नासिकाभ्यन्तरे  
न्यस्तं सर्वा शीर्षव्यथां हरेत् ॥ दृष्टप्रयोगो  
योगोऽयमनुभाविभिराहतः ॥ ५८ ॥ आर्द्रं  
यच्छुक्तिकाचूर्णं चूर्णितं नवसादरम् ॥  
तभयं योजितं तस्य गन्धान्नश्यति शीर्ष-  
रुक् ॥ ५९ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः ।

मुँडो छ. रन्ती और मुँलेटीसे चौथाई भाग वत्सनाभ  
इन्का अत्यंत बारीक चूर्ण करके, नाकमें सरसोंकी बरा  
रस चूर्ण से अन्तर्में सर्वप्रकारकी मस्तककी पीडा  
शुद्ध होजाती है, यह प्रयोग बड़े बड़े वैद्याने अनुभव किया  
है और हमने भी परीक्षा करी है ॥

सीपका बारीक चूर्ण और नवसादरका चूर्ण इनको  
एकत्र मिलाकर नास लेनेसे मस्तककी पीडा शांत होती-  
है ॥ ५७-५९ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः संपूर्णः ।

अथ नेत्ररोगाधिकारः ।

तत्र नेत्रप्रमाणम् ।

विद्याद्वयंगुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसम्मि-  
तम् ॥ द्वयङ्गुलं सर्वतः सार्द्धं भिषङ् न-  
यनमण्डलम् ॥ १ ॥

द्वयंगुलबाहुल्यं द्वयंगुलप्रमाणस्थौल्यं  
यस्य तत् । अंगुलीनां स्थौल्यस्य वैषम्या-  
त्पुनराह-सांगुष्ठोदरसम्मितं द्वयंगुलं सर्वतः  
सार्द्धं दैर्घ्येण ॥

नेत्रका मण्डल दो अंगुल मोटा और ढाई अंगुल लम्बा  
है यहा अंगुलका प्रमाण अपने अपने हाथकी अंगुलीके  
प्रमाणसे जानना क्योंकि अपने अपने हाथ की अंगुलीके  
प्रमाणसे नहीं कहनेसे अंतर पडनाहै ॥ १ ॥

अथ नेत्रांगानि ।

पद्मवर्त्मश्चेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि  
तु ॥ अनुपूर्वन्तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या  
यथोत्तरम् ॥ २ ॥

ते पद्मादयो दृष्ट्यन्ताः अनुपूर्वं यथापूर्वं  
मध्याश्चत्वारः कृष्णादयः यथोत्तरमन्त्याः ।

पलक, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण, दृष्टियोंके मंडल ये आनु-  
पूर्वी क्रमसे मध्यमें हैं और चार उत्तरोत्तर क्रमसे अत-  
भागमें हैं ॥ २ ॥

अथ नेत्रमंडलोत्पन्नाष्टसप्ततिः

( ७८ ) रोगाः ।

द्वादश व्याधयो दृष्टौ तत्रैवान्यौ गदा-  
बुभौ ॥ कृष्णमार्गे तु चत्वारो दशैकः  
शुक्लभागजाः ॥ ३ ॥ वर्त्मन्येकोविंश-  
तिश्च पद्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥ नव स-  
न्धिषु सर्वस्मिन्नेत्रे सप्तदशोदिताः ॥ एवं  
नेत्रे समस्ताः स्युरष्टसप्ततिरामयाः ॥ ४ ॥

तत्र दृष्टौ । अन्यौ चरकोक्तौ सुश्रुतोक्त-  
षट्सप्ततिसंख्येभ्योऽधिकौ ॥

दृष्टिमें १२ बारह रोग हैं । सुश्रुतमें १२ रोगोंसे अधिक जो अन्य २ रोग चरकमें कहे हैं वह भी दृष्टिमें होतेहैं, । एव ४ कृष्ण भाग अर्थात् कालेधरेमें चार रोग होतेहैं सफेद भागमें ११ रोग होतेहैं । वर्त्ममें २१ रोग होतेहैं, नेत्रके पक्षमें दो रोग, सधियोंमें ९ रोग और सम्पूर्ण नेत्रमें १७ रोग होतेहैं । इस प्रकार नेत्रमें सब ७८ अठत्तर रोग होतेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ सुश्रुतोक्तषट्सप्तति-  
( ७६ ) रोगाः ।

वातादश तथा पित्तात्कफाच्चैव त्रयोदश ॥  
रक्तात्षोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविं-  
शतिः ॥ बाह्यौ पुनर्द्वौ नयने रोगाः षट्-  
सप्ततिः स्मृताः ॥ ५ ॥

वातसे दश १० रोग होतेहैं, पित्तसे दश १० रोग होतेहैं, कफसे तेरह १३ रोग होतेहैं, रुधिरसे सोलह १६ रोग होतेहैं, तीनों दोषोंसे २५ रोग होतेहैं और नेत्रके बाहर भागमें दो रोग होतेहैं इस प्रकार नेत्रोंमें सब ७६ रोग हैं ॥ ५ ॥

अथ सामान्यरोगाणां नेत्ररोगाणां सन्नि-  
कृष्टविप्रकृष्टनिदानम् ।

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशादहरेक्षणात्स्वप्न-  
विपर्ययाच्च ॥ स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च  
छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ ६ ॥  
शुक्तारनालाम्बुकुलत्थमाषाद्विण्मूत्रवाता-  
गमनिग्रहाच्च ॥ प्रसक्तसंरोदनशोकतापा-  
च्छिरोऽभिघातादतिशीघ्रयानात् ॥ ७ ॥  
तथा ऋतूनाञ्च विपर्ययेण क्लेशाभितापा-  
दतिमैथुनाच्च ॥ बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्ष-  
णाच्च नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः ॥ ८ ॥

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशादातपादिज-  
नितोष्मणा सह बहिर्भूतस्य नयनतेजसो  
जलावगाहेन अभिभवाहरेक्षणात् दूरस्थद्रव्य-  
दर्शनात् । स्वेदात्स्विद्यतेऽनेनेति स्वेदोऽन्या-

दिस्तस्मात् । रजोधूमनिषेवणात्त्रेत्रेण । शोक-  
तापात् शोकजनितात्सन्तापात् । शिरोऽभि-  
घातात् शिरसि प्रहारात् । ऋतूनां विपर्ययेण  
ऋतूक्तचर्याविपरीताचरणेन । क्लेशाभितापात्  
क्लिश्यतेऽनेनेति क्लेशं कामक्रोधादिदुःखं तेना-  
भितापः पीडा ततः । बाष्पग्रहादश्रुवेगवि-  
घातात् ॥

धूम आदिसे अत्यंत संतापित होकर शीतल जलमें प्रवेश करनेसे, दूरके पदार्थोंको देखनेसे, समयपर निद्राको नहीं लेनेसे, अग्नि आदिको सेवन करनेसे, नेत्रोंमें धूल आदिके गिरनेसे, धुँएके लगनेसे, वमनके वेगको रोकनेसे, अत्यंत वमनकरनेसे, शुक्तनामक काँजीको सेवनकरनेसे, आरनालके सेवनसे, खट्टे रसोंके सेवनकरनेसे, कुलथीको सेवनकरनेसे, उडदोको सेवनकरनेसे, मूत्र, विष्टा और अधोवायुके वेगको रोकनेसे, बहुत दिनोंतक रोनेसे, शोकजन्य सतापसे, मस्तकमें चोट आदिके लगनेसे, अत्यंत वेगजाले वाहनपर बैठनेसे, ऋतुचर्यामें कहींहुई विधिको उल्लंघन कर विपरीत आचरण करनेसे, काम और क्रोधादि-जन्य दुःखोंसे उत्पन्न हुई पीडासे, अत्यंत मैथुन करनेसे, आंसुओंके वेगको रोकनेसे और बारीक पदार्थोंको देखनेसे नेत्रोंमें विकार उत्पन्न होतेहैं ॥ ६-८ ॥

अथ नेत्ररोगसम्प्राप्तिः ।

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः ॥  
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदा-  
रुणाः ॥ ९ ॥

नेत्रभागेषु नेत्रस्य दृष्ट्याद्यवयवेषु ।

शिराओंमें रहनेवाले वातादिदोष विगडकर ऊंचे भागोंमें जाकर नेत्रके अवयवोंमें अत्यंत दारुण रोगोंको उत्पन्न करतेहैं ॥ ९ ॥

अथ दृष्टिरोगलक्षणम् ।

मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजाम् ॥  
खद्योतविस्फुलिङ्गाभां सिद्धां तेजोभिर-  
व्ययैः ॥ १० ॥ आवृतां पटलेनाक्षो-

वह्निन विवराकृतिम् ॥ शीतसात्म्यां नृणां  
दृष्टिमाहर्नयनचिन्तकाः ॥ ११ ॥

मसूरदलमात्रां नेत्रगतकृष्णमण्डलमध्य-  
स्थमसूरद्विदलप्रमाणां पञ्चभूतप्रसादजाम्  
प्रसन्नपञ्चभूतात्मिकाम् । खद्योतविस्फुलिङ्गाभां  
निमेषैः कदाचित्खद्योताभां खद्योतवन्निमेषा-  
भां विद्योतमानत्वाद्विस्फुलिङ्गवत् । अव्य-  
यैश्चिरस्थायिभिस्तेजोभिः सिद्धामुत्पन्नाम् ।  
विवराकृति सच्छिद्राम् । अक्ष्णोर्वाह्नेन पट-  
लेन रसरक्ताधारभूतेन आवृताम् ॥

नेत्रके काले डेलके मडलके बीचमे रहनेवाली, मसूरकी  
दालकी समान, स्वच्छ पञ्चभूतोंसे बनी हुई, धणमें पट-  
बीजनेकी समान, धणमें अग्निके प्रकाशकी समान, चिर-  
स्थायी तेजोंसे सिद्ध, छिद्रवाली, सदैव शीत आनुकूल्य-  
वाली, बाहरसे रस रक्तसे मढी हुई है इसको नेत्रध्वज दृष्टि  
कहेते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ नेत्रपटलचतुष्कम् ।

नेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिता-  
श्रितम् ॥ मन्दस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्व-  
स्थिन् चापरम् ॥ पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां  
बाहुल्यमिष्यते ॥ १२ ॥

तत्र तेजो-रक्तम्, जलं रसः । तेन रसर-  
क्ताधारमित्यर्थः । पटलं त्वक् । अपरं चतुर्थं  
दृष्टेः स्वांगुष्ठादरस्थूलस्य नेत्रस्य पञ्चमांश-  
समं तेषां चतुर्णां पटलानां मिलितानां  
बाहुल्यं स्थूल्यमिष्यते ॥

नेत्रमें चर पटल है उनमें सबसे ऊपरका पहिला पटल  
शीत तथा रक्तके आश्रय रहता है । दूसरा पटल मांसके  
आश्रय रहता है । तीसरा पटल भेदके आश्रय रहता है  
चौथा पटल अस्थियोंके आश्रय रहता है । इन चारों  
पटलों को मिलाकर आने वाले अंगुष्ठके मध्यभागकी समान  
बाहुल्य का ही अंशमें जानीगई है ॥ १२ ॥

अथ प्रथमपटलगतदोषस्वभावः ।

प्रथमे पटले यस्य दोषो दृष्टेर्व्यवस्थितः ॥

अव्यक्तानि स्वरूपाणि कदाचिदथ पश्य-  
ति ॥ १३ ॥

प्रथमे पटले पूर्वाभ्यन्तरे न तु बाह्ये ॥

दृष्टेरभ्यन्तरे दोषाः पटले समधिष्ठिताः ॥

एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटलान्तरम् १४ ॥

इति विदेहवचनात् । व्यवस्थितः स्थितः ।

अव्यक्तानि ईषद्व्यक्तानि । अथ कदाचित्प-  
श्यति व्यक्तान्येवेति शेषः दोषाल्पतया ॥

जो पहिले पटलमे दोष स्थित होय तो वह मनुष्य  
रूपोंको कुछ कुछ अन्तरसे देखताहै और जो दोष अल्प  
होय तो किसी समय स्पष्टभी देखताहै ।

यहां जो पहिला पटल कहा है वह सबसे भीतरका  
पटल जानना, बाहरका पटल नहीं समझना क्योंकि नेत्रके  
पटलके भीतरके रहनेवाले दोष अनुक्रमसे ऊपर ऊपरके  
पटलमें प्राप्त होतेहैं यह विदेहका मत है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ द्वितीयपटलगतदोषस्वभावः ।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ॥

मक्षिकामशकान्केशाञ्जालकानीव पश्यति

॥ १५ ॥ मण्डलानि पताकांश्च मरीची-

न्कुण्डलानि च ॥ पारिप्लवांश्च विविधान्व-

र्धमभ्रं तमांसि च ॥ १६ ॥ दूरस्थानि च

रूपाणि मन्यते च समीपतः ॥ समी-

पस्थानि दूरे च दृष्टुर्गोचरविभ्रमात् ॥

यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीछिद्रं न

पश्यति ॥ १७ ॥

विह्वलति रूपं सम्यक् कृत्वा ग्रहीतुं न  
शक्नोति । विह्वलत्वमेव विवृणोति-मक्षिका-  
दीन् जालकानीव लूतारचितजालानीव  
पश्यति । मण्डलादीनि असन्त्यपि सन्तीव  
पश्यति । कुण्डलानि कुण्डलानीव विद्योतमा-  
नानि किञ्चित्पश्यति । पारिप्लवांश्च विविधा-  
न्यतिच्छायादीनां सञ्चाराद्बद्धाधिस्तिर्यग्गता-  
न्नानाविधान्पश्यति । वर्षं वृष्टिम् अभ्रं मेघम् ।  
वर्षादीनि असन्त्यपि सन्तीव पश्यति । गोचर-

भ्रमाद्दोचरोऽत्र रूपम्, तत्र भ्रमः अयथाग्र-  
हणं तस्मात् ॥

जो दोष दूसरे पटलमे स्थित होय तो दृष्टि रूपोको अच्छे प्रकारसे नही देख सकी, तथा मक्खी, मच्छर और केश आदि मकड़ीके जालेकी समान दीखतेहैं, मडल, पातका और किरणों न होय तो भी होनेकी समान देखे और प्रकाशमान वस्तुओंको कुडलकी समान गोल देखे, परछाईं आदिका सचार ऊचा, नीचा तथा टेढे आदि अनेक प्रकारसे देखे, वर्षा, बादल तथा अंधकारके न होने पर भी दीखे, रूपोंका यथार्थ रूप दृष्टिके भ्रमके कारण दूरके पदार्थ धीरे दीखे, और अत्यंत यत्न करनेपर भी सुईके नकुये ( छेद ) को नही देख सके ॥ १५-१७ ॥

अथ तृतीयपटलगतदोषः ।

ऊर्द्धं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते॥  
सुमहान्त्यपि रूपाणि छादितानीव चा-  
म्बरैः ॥ १८ ॥ कर्णनासाक्षिरूपाणि वि-  
कृतानि च पश्यति ॥ यथादोषश्च रज्ये-  
त दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥ १९ ॥ अधःस्थे  
तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरि स्थिते ॥  
पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थानि न  
पश्यति ॥ २० ॥ समन्ततः स्थिते  
दोषे संकुलानीव पश्यति ॥ दृष्टिमध्य-  
स्थिते दोषे महदुःखं च पश्यति ॥ २१ ॥  
दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वा मन्यते  
द्विधा ॥ द्विधा स्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा  
चाऽनवस्थिते ॥ २२ ॥

ऊर्द्धं पश्यति—ऊर्द्धमपि यादृक् पश्यति  
तादृगाह—सुमहान्ति इत्यादि । अम्बरैः  
वस्त्रैः । अधःस्थे तु समीपस्थं न पश्यतीत्य-  
न्वयः । तथा उपरि स्थिते दोषे दूरस्थं न  
पश्यति । समन्ततः उपर्यधःपार्श्वेषु संकु-  
लानि भिन्नान्यपि रूपाणि मिश्रितानीव  
पश्यतिः । अनवस्थिते अनियतावस्थाने बहुधा  
बहूनि पश्येत् ॥

जो दोष तीसरे पटलमे स्थित होय तो ऊँचेको देख-  
सक्ताहै नीचेको नही देखता, ऊँचेको जो पदार्थोंको देख-  
ताहै वह पदार्थ अत्यंत बड़े होयें तो भी वस्त्रसे ढकेकी  
समान दीखतेहैं । कान, नाक, और नेत्र आदि अवयवों  
को विकृत देखे, इनसे रहित शरीरको देखे, जो  
दोष बलवान् होय तो दृष्टिदोषके स्वभावानुसार वर्ण होजा-  
ताहै, जो दोष नीचेके भागमे स्थित होय तो समीपके पदा-  
र्थोंको नही देखसक्ता, और जो दोष ऊपरके भागमे स्थित  
होय तो दूरके पदार्थोंको नहीं देखसक्ता, जो दोष इधर  
उधर बगलमे स्थित होय तो बगलके पदार्थोंको नहीं देख-  
सक्ता । जो दोष चारो ओर स्थित होय तो ऊपर, नीचे  
तथा बगलके पदार्थ अलग २ होयें तो भी मिले हुए  
दीखें । जो दोष दृष्टिके बीचमें स्थित होय तो बड़े पदा-  
र्थोंको छोटा देखताहै; जो दोष दृष्टिमें टेढे स्थित होयें तो  
एक पदार्थके दो पदार्थ देखताहै । जो दोष दृष्टिके दो  
भागोंमे स्थित होय तो एक पदार्थके तीन पदार्थ दीखतेहैं  
और जो दोष अनियमित रीतिसे स्थित होयें तो एक  
पदार्थके अनेक पदार्थ दीखतेहैं ॥ १८-२२ ॥

अथ चतुर्थपटलगतदोषः ।

तिमिराख्यः स यो दोषश्चतुर्थं पटलं  
गतः ॥ रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिंगनाश  
इति क्वचित् ॥ २३ ॥ अस्मिन्नपि तमो-  
भूते नातिरूढे महागदे ॥ चन्द्रादित्यौ  
सनक्षत्रौ अन्तरिक्षे च विद्युतः ॥ २४ ॥  
निर्मलानि च तैजांसि भ्राजिष्णूनीव  
पश्यति ॥ स एव लिंगनाशस्तु नीलिका-  
काचसंज्ञितः ॥ २५ ॥

यो दोषोऽत्र रोगः चतुर्थं पटलं बाह्यं  
पटलं गतः स तिमिराख्यः तिमिरदर्शनेन  
तिमिरमस्यास्तीति तिमिरः अर्शादित्वादच् ।  
तस्य लक्षणमाह रुणद्धि इत्यादि । सर्वतः  
सर्वत्र लिंगनाशे इति क्वचित् । तन्त्रान्तरे  
लिंगनाशसंज्ञः । तस्य निरुक्तिश्च । लिङ्ग्यते  
ज्ञायतेऽनेनेति लिङ्गं दृष्टितेजः तस्य नाशोऽ-



स्मिन्निति लिंगनाशः । अस्मिन्नपि तिमिरेऽपि तमोभूते तमस्तुल्ये । अत्र भूतशब्दस्तु-  
ल्यार्थः । “भूतं प्राण्यतीति समे त्रिषु”  
इत्यमरात् । नातिरूढे अप्रौढे नवे । चन्द्रा-  
दित्यौ नक्षत्राणि च पश्यति अन्तरिक्षे  
अन्तरिक्षस्य प्रकाशसमयत्वेन तमोऽभिभ-  
वात् । तेजांसि अग्न्यादेः भ्राजिष्णूनि  
रत्नसुवर्णादीन्यस्मिन् । प्रौढे चिरजे चन्द्रा-  
दीन्यपि न पश्यतीत्याशयः । नीलिकाका-  
चसंक्षितः नीलिका काचेति नामान्तरा-  
भ्यां युक्तः ॥

जो दोष दृष्टिके चौथे पटलमे स्थित होय तो यह अं-  
धकार दीग्ननेके कारण तिमिर कहाजाताहै और चारों  
ओर दृष्टिको रोकदेताहै, इस रोगको अन्य ग्रंथोंमें ‘लि-  
गनाश, ऐसा कहाहै । अधरेकी समान यह बड़ा भयकर  
रोग नवीन होय तबतक मनुष्य आकाशमे चन्द्रमा, सूर्य,  
नक्षत्र और विजलीको देखताहै क्योंकि आकाशके प्रका-  
शमय होनेसे अंधकारका बल नहीं चलता, अग्नि आदिके  
निर्मल तेजको देखताहै और रत्न तथा सुवर्ण आदि  
प्रकाशित पदार्थको भी देखताहै । यह रोग पुराना हो-  
जाय तो चन्द्र आदि भी नहीं दीग्नते यह तिमिर नामक  
रोग जैसे लिगनाश इस नामसे कहाजाताहै उन्ही प्रकार  
नीलिका और काँच ये नाम भी कहेजातेहैं । लिग अर्थात्  
दृष्टिके तेजको जो नाश करनाहै इस कारण यह लिगनाश  
कहाजाताहै ॥ २३-२५ ॥

अथ दृष्टिरोगनाम संख्या च ।

दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव रोगाः षट्  
लिगनाशा हि भवन्ति तत्र ॥ वातेन  
पित्तेन कफेन सर्वे रक्तात्परिम्लाय्यभि-  
धश्च षट् ॥ २६ ॥

दृष्ट्याश्रया रोगाः षट् षट् द्वादशेत्यर्थः ।  
तत्र लिगनाशाः षट् तान्विवृणोति वातेन  
त्यादि ॥

‘लिगे रोग १२ हैं ( चरकके ऋते अनुसार १४ होते  
) उन १२ में ६ रोग लिगनाश कहेजातेहैं । जैसे

कि, वातज १, पित्तज २, कफजन्य ३, सन्निपातजन्य ४,  
रक्तजन्य ५, और परिम्लायी लिगनाश ६, ॥ २६ ॥

तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन वान्य-  
स्त्वथ धूमदर्शी ॥ यो ह्रस्वजात्यो नकु-  
लान्धसंज्ञो गम्भीरसंज्ञश्च तथैव  
दृष्टिः ॥ २७ ॥

पित्तविदग्धदृष्ट्यादयश्च षट् । एवं दृष्ट्या-  
श्रया द्वादशरोगाः ।

पित्तविदग्धदृष्टि १, कफविदग्धदृष्टि २, धूमदर्शी ३,  
ह्रस्वजात्य ४, नकुलान्ध ५ और गम्भीरक ६, ॥ २७ ॥

तत्रैवान्यौ चरकोक्तगदौ सनिमित्तका-  
ऽनिमित्तकौ । तत्र वातजलिगनाशलक्ष-  
णमाह-

वातेन खलु रूपाणि भ्रमन्तीव च  
पश्यति ॥ आविलान्यरूपाभानि व्यावि-  
द्धानीव मानवः ॥ २८ ॥

आविलानि कलुषाणि। अरूपाभानि अव्य-  
क्तलौहित्ययुक्तानि ॥

वातके लिगनाशमें सम्पूर्ण रूप भ्रमण करते दीखेंहैं,  
मलिन कुछ लाल गदलेसे और विकृत टेढे तिरछे ऐसे  
दीग्नतेहैं ॥ २८ ॥

अथ पित्तजलिगनाशलक्षणम् ।

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्रुणान् ॥  
नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वे नीलश्च पश्य-  
ति ॥ २९ ॥

आदित्यादीनां गुणान् रूपाणि ॥

मर्थ, पटयोजने, इन्द्रधनुष, विजली, इनको मोरसे  
पृष्ठकी समान विचित्र नील और काले रंगके देखने तो जा  
नना कि, पित्तजनित लिगनाश हुआ है ॥ २९ ॥

अथ कफजलिगनाशलक्षणम् ।

कफेन पट्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सिता-

नि च ॥ सलिलप्लावितानीव जालकानीव  
भानवः ॥ ३० ॥

कफके लिगनाशमें पदार्थोंको चिकने, सफेद पानी-  
में डबोकर निकालेहुएकी समान और जालकी  
समान देखै तो जानना कि, कफजन्य लिगनाश हुआ  
है ॥ ३० ॥

अथ सन्निपातजलिगनाशलक्षणम्  
सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च  
पश्यति ॥ बहुधापि द्विधा वापि सर्वा-  
प्येव समन्ततः ॥ हीनाधिकांगान्यथ वा  
ज्योतीष्यपि च पश्यति ॥ ३१

चित्राणि नानावर्णानि । विप्लुतानि  
विपरीतानि वैपरीत्यं विवृणोति बहुधे-  
त्यादि ॥

सन्निपातके लिगनाशमें रूप चारों ओर विपरीत अर्थात्  
अनेक प्रकारके वा दो प्रकारके अथवा सर्व प्रकारके देख-  
नेमें आनें अनेक वर्णवाले दीखें, अथवा अधिक और न्यून  
अंगोंवाले दीखें अथवा तेजोमय दीखें तो जानना कि, सन्नि-  
पातजन्य लिगनाश हुआ है ॥ ३१ ॥

अथ रक्तजन्यलिगनाशलक्षणम् ।

पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि  
च ॥ हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि  
च मानवः ॥ ३२ ॥

जो अनेक प्रकारका अन्धकार देखनेमें आवे और रूप  
लाल, हरे, काले तथा पीले दीखें तो जानना कि, रक्तजन्य  
लिगनाश हुआ है ॥ ३२ ॥

अथ परिम्लायिलिगनाशलक्षणम् ।

रक्तेन मूर्च्छितं पित्त परिम्लायिनमाच-  
रेत् ॥ तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव  
भास्करम् ॥ विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षां-  
स्तेजोभिरेव हि ॥ ३३ ॥

विकीर्यमाणान् व्याप्यमानान् । तेजोभिः  
अग्न्यादिभिरिव ॥

रुधिरसे मूर्च्छित हुआ पित्त परिम्लायी नामक लिगनाश-  
को उत्पन्न करै है जिस लिगनाशसे सम्पूर्ण दिशा पीली ही

दीखतीहैं सूर्य उदय होतासा दीखताहै और वृक्ष पट-  
वीजने तथा अग्निके तेजसे व्याप्त ऐसे दीखतेहैं ॥ ३३ ॥

अथ वातादिजनेत्रवर्णेन लिगनाशस्य  
षड्विधत्वम् ।

वातादिजनिर्नेत्रवर्णैरपि च षड्विधः ॥  
लिगनाशो निगदितो वर्णवातादिजो  
यथा ॥ ३४ ॥ रागोऽरुणो मारुतजः  
प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् ॥  
कफात्सितः शोणितजः सरक्तः समस्त-  
दोषप्रभवो विचित्रः ॥ ३५ ॥

वातादिसे उत्पन्नहुए नेत्रोंके वर्णानुसार भी लिगनाश छः  
प्रकारका होताहै । कौनसे दोषसे नेत्रका कौनसा रंग-  
होताहै सो कहतेहैं । वातसे लिगनाश होय तो नेत्रोंका  
रंग लाल होजाताहै । पित्तजन्य परिम्लायी लिगनाश होय  
तो नेत्रोंका वर्ण नीला होजाताहै । कफजन्य लिगनाश  
होय तो नेत्रोंका रंग सफेद होजाताहै । रुधिरसे लिग-  
नाश होय तो नेत्रोंका रंग लाली लिये होताहै । और  
सन्निपातसे लिगनाश हुआ होय तो नेत्रोंका रंग विचित्र  
होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ वातादिजनेत्रमण्डलरूपम् ।

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा ॥  
पित्ततो मण्डलं नीलं कांस्याभं वा सपी-  
तकम् ॥

श्वेतपीतं वा कथमेतत् ? व्याधिप्रभा-  
वात् ॥

श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शंखकुन्देन्दुपा-  
ण्डुरम् ॥ ३७ ॥

बहुलं स्थूलम् ॥

चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवा-  
म्भसः ॥ मृद्यमाने तु नयने मण्डलं  
तद्विसर्पति ॥ ३८ ॥ मण्डलं तु भवेच्चित्रं  
लिगनाशे त्रिदोषजे ॥ प्रवालपद्मपत्राभं  
मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ३९ ॥

चित्रं वातादिवर्णम् ॥

रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलकाचारुणप्रभम् ॥  
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लानं नीलम-

थापि वा ॥ दोषक्षयात्स्वयं तत्र कदा-  
चित्स्यात्तु दर्शनम् ॥ ४० ॥

रक्तजं पित्तानुगामिरक्तजम् । स्थूलका-  
चारुणप्रभं स्थूलकाचस्य इव अरुणा प्रभा-  
यस्य तत् । एतेन स्थौल्यमरुणत्वं च बोध्यते ।  
दोषक्षयादित्यादि तत्र परिम्लायिनि काला-  
न्तरं दोषक्षयात् । कदाचित्स्वयमेव दर्शनं  
स्यात् ॥

वातसे लिगनाश हुआ होय तो मण्डल लाल, चञ्चल  
तथा कठिन होता है । पित्तसे लिगनाश होय तो मण्डल  
नीला काँचकी समान, अथवा सफेद वा पीला होता है  
( सफेद और पीला होना वह व्याधिके प्रभावसे होता है ) ।  
कफसे लिगनाश होय तो मण्डल मोटा, स्निग्ध, श्वकी  
समान, कुदकी और चद्रमाकी समान सफेद होता है । और  
चञ्चल कमलके पत्रपर पड़ी हुई जलकी बिन्दुकी समान  
होता है । आस्रकी गूँथ मलनेसे यह मण्डल पसर जाता है ।  
ताना दोषोंसे लिगनाश होय तो मण्डल विचित्र अर्थात्  
वातादिजनित सम्पूर्ण वर्णोंवाला होता है । रुधिरसे लिग-  
नाश हुआ होय तो मण्डल प्रवालकी समान और कमलकी  
पत्रकी समान होता है । पित्तसम्बन्धी रुधिरजन्य लिग-  
नाश होय तो मण्डल स्थूल और लाल काँचकी समान स्थूल  
और गूँथ होता है । परिम्लायी लिगनाश होय तो मण्डल  
शानिका प्राप्त हुआ अथवा नीला होता है और  
वातानुगं दोषोंके क्षय होनेसे किसी समय अपनी सद्यः  
उन्नत होजाता है ॥ ३६-४० ॥

अथ लिगनाशेऽनुक्तदाहादि-  
दोषलिंगम् ।

यथारवं दोषलिगानि सर्वेष्वेव भवन्ति  
हि ॥ ४१ ॥

यत्रप्रत्येकं लिगनाशोऽस्ते उन उन दोषोंके अने अने  
लिंग भी प्रत्येक देते हैं ॥ ४१ ॥

अथ पित्तविदग्धदृष्टिलक्षणम् ।

पित्तेन दुष्टेन गतेन दृष्टिं पीता भवेद्यस्य  
नरस्य दृष्टिः ॥ पीतानि रूपाणि च  
तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्ध-  
दृष्टिः ॥ ४२ ॥

पित्तेन गतेन दृष्टिं दृष्ट्वापि प्रथमद्विती-  
यपटलगतेनेति बोद्धव्यम् । तेन व्याधिना ।

तस्मिन्नेव पित्ते दृष्टौ तृतीयपटलं गते  
विशेषरूपमाह ।

प्राप्तं तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्ये-  
न्निशि वीक्षते सः ॥ रात्रौ स शीता-  
नुगृहीतदृष्टिः पित्तालपभावात्सकलानि  
पश्येत् ॥ ४३ ॥

दोषेऽत्र पित्ते ।

दुष्ट हुआ पित्त दृष्टिके पहिले, दूसरे पटलमें प्राप्त होनेसे  
जो मनुष्यकी दृष्टि पीली हुई होय तो वह मनुष्य समस्त  
रूपोंको पीला देखता है । यह रोग पित्तविदग्धदृष्टि कहा-  
जाता है । उसीप्रकार पित्त तीसरे पटलमें प्राप्त होय तो  
वह मनुष्य दिनमें नहीं देखता किंतु रात्रिमें शीतके  
कारण दृष्टिके अनुकूल होनेसे पित्तहीन होकर स-  
म्पूर्ण पदार्थोंको देखसक्ता है, इसप्रकार भी पित्तविदग्ध-  
दृष्टिमें अन्तर्भूत है, इसकारण अलग नहीं गिना जाता  
॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ कफविदग्धदृष्टिलक्षणम् ।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव  
शुक्लानि हि मन्यते तु ॥ ४४ ॥

अत्रापि श्लेष्मणो दृष्टौ प्रथमद्वितीयपट-  
लस्यैतल्लिगं बोद्धव्यम् । स एव श्लेष्मा दृष्टौ  
पटलत्रयं गतो नक्तान्ध्यं करोतीत्याह ।

त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो  
नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य ॥ दिवा स  
सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफा-  
लपभावात् ॥ ४५ ॥

दोषोऽत्र कफस्तस्य उपक्रान्तत्वान्नक्ता-  
न्ध्यस्य श्लेष्मविदग्धदृष्टौ अन्तर्भूतत्वान्न  
पृथग्गणना ॥

दुष्ट हुआ कफ दृष्टिके पहिले दूसरे पटलमें प्राप्त होय  
तो मनुष्य रूपोंको सफेद देखता है, यह रोग कफविदग्ध-  
दृष्टि कहाजाता है ।

येही कफ दृष्टिके तीनों पटलमें प्राप्त होय तो बला-त्कारसे नक्तान्ध्य ( रात्रिमे अंधापन ) करताहै । दिनमे तो दृष्टिके ऊपर सूर्यके अनुग्रह होनेके कारण कफहीन होकर सम्पूर्ण पदार्थ दीखतेहैं, रात्रिमे अंधापन भी कफ-विदग्ध दृष्टिमे अन्तर्भूत होताहै इसकारण इसको अलग नहीं गिना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

### अथ धूमदर्शिलक्षणम् ।

शोकज्वरायासशिरोऽभितापैरभ्याहता  
यस्य नरस्य दृष्टिः ॥ धूमांस्तु यः पश्यति  
सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदि-  
ष्टः ॥ ४६ ॥

शिरोऽभितापः शिरसि घर्मादीनां सन्ता-  
पः । एतस्य पित्तदोषो बोद्धव्यः ॥

शोकसे, ज्वरसे, परिश्रमसे और शिरमे धूप आदिके संतापसे दृष्टिका अभिघात होकर सम्पूर्ण पदार्थ धूमसे व्याप्त दीखतेहै । यह रोग धूमदर्शी कहाजाताहै, यह पित्तकी दुष्टतासे होताहै ॥ ४६ ॥

### अथ ह्रस्वजात्यलक्षणम् ।

यो वासरे पश्यति कष्टतोऽथ रूपं मह-  
च्चापि निरीक्षतेऽल्पम् ॥ रात्रौ पुनर्यः  
प्रकृतानि पश्येत्स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः  
प्रदिष्टः ॥ ४७ ॥

दिनमे थोडा थोडा दीखे तथा बडे बडे पदार्थ भी छोटे दीखे और रात्रिमें सम्पूर्ण रूप जैसेके तैसे दीखे इस रोगको मुनि ह्रस्वजात्य कहतेहै ॥ ४७ ॥

### अथ नकुलांध्यलक्षणम् ।

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना  
नकुलस्य यद्वत् ॥ चित्राणि रूपाणि दिवा च  
पश्येत्स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ॥ ४८ ॥

दृष्टि दोषसे व्याप्त होनेके कारण नौलेकी दृष्टिकी समान चमके और दिनमे रूपोंको विचित्र देखे । इस रोगको नकुलांध्य कहतेहै ॥ ४८ ॥

### अथ गम्भीरिकालक्षणम् ।

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्त-

रतः प्रयाति ॥ रुजावगाढा च तमक्षिरोगं  
गम्भीरिकेति प्रवदन्ति धीराः ॥ ४९ ॥

विरूपा विकृता । श्वसनोपसृष्टा वातो-  
पहता । रुजावगाढा गम्भीरवेदनान्विता ॥

वातसे उपहतदृष्टि विकृत होजाय, संकोचको प्राप्त होय, भीतरको चलीजाय और गम्भीरपीडासे युक्त होय इस रोगको विद्वान् वैद्य गम्भीरिका कहतेहै ॥ ४९ ॥

### अथ सनिमित्तलिंगनाशस्य निदान- लक्षणम् ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह सम्प्रदिष्टौ निमित्ततश्चा-  
प्यनिमित्ततश्च ॥ निमित्ततस्तत्र शिरोऽभि-  
तापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैः सः ॥ ५० ॥

बाह्यौ सुश्रुतोक्तद्वादशसंख्येभ्योऽधिकौ ।  
तत्र तन्निमित्तमाह-शिरोऽभितापः शिरोऽभि-  
तप्यते येन विषकुसुमगन्धवहपवनस्पर्शेन शि-  
रोऽभितापः तस्मादभिष्यन्दनिदर्शनैः रक्ता-  
भिष्यन्दलिंगैरिति गदाधरः । सन्निपाताभि-  
ष्यन्दलिंगैरिति कार्तिकः ॥

सुश्रुतने दृष्टिके जो बारह रोग कहे हैं उनसे आधक अन्य दो रोग चरक आदि मुनियोने कहेहैं । वह एक तो सनिमित्त लिंगनाश और दूसरा अनिमित्त लिंगनाश ।

विषैले फूलोंकी गंधवाली पवनके स्पर्शनरूपनिमित्तसे मस्तकमे अभिताप होकर जो लिंगनाश होताहै वह सनिमित्तक लिंगनाश कहाजाताहै । अभिष्यन्दके लक्षणोसे इस रोगको जानना चाहिये ।

गदाधर वैद्य कहताहै कि “रक्ताभिष्यन्दके लक्षणोसे इस रोगको जानना” और कार्तिक वैद्य कहताहै कि “त्रिदोषजनित अभिष्यन्दके लक्षणोसे इस रोगको जानना चाहिये” ( रक्ताभिष्यन्द आदिके लक्षण आगे कहेंगे ) ॥ ५० ॥

### अथानिमित्तलिंगनाशनिदानलक्षणम् ।

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि  
च भास्करस्य ॥ हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य

यस्य स लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥५१॥  
तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा  
विमला च दृष्टिः ॥ ५२ ॥

अनुपलभ्यमानानां सुरादीनां निमित्तम-  
प्यनिमित्तं मन्यते । विस्पष्टं ज्योतिर्युक्तम् ।  
वैदूर्यवर्णा श्यामा । विमला निर्मला ॥

देव, कृपि, गन्धर्व, वृहत्सर्प अथवा अन्यान्य प्रका-  
शमयपदार्थोंको देखनेसे दृष्टि उपहत होजातीहै यह अनि-  
मित्त लिंगनाश कहाजाताहै । देवादिलोक विशेष करके  
सर्वजनोंको नहीं दीखते इस कारण उनके दर्शनरूप निमि-  
त्तसे उत्पन्न हुए लिंगनाशको अनिमित्त मानाहै ॥ ५१ ॥

अनिमित्त लिंगनाशमें नेत्र तेजवाले दीखतेहैं, दृष्टि  
श्याम और निर्मल होतीहै और उपघातके कारण दृष्टि  
कटजातीहै सकुचजाय अथवा कम होजातीहै ॥ ५२ ॥

अथ कृष्णमंडलगतरोगः ।

यत्सत्रणं शुक्रमथाव्रणञ्च पाकात्ययश्चा-  
प्यजका तथैव ॥ चत्वार एते नयनामया-  
स्तु कृष्णप्रदेशे नियता भवन्ति ॥ ५३ ॥

सत्रणशुक्र, अत्रणशुक्र, पाकात्यय और अजका यह  
चार रोग नेत्रोंके काले मंडलमें रहतेहैं ॥ ५३ ॥

अथ सत्रणशुक्रलक्षणम् ।

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूक्ष्मेव विद्धं  
प्रतिभाति यद्वै ॥ साव सवेदुष्णमतीव  
चापि तत्सत्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ ५४ ॥

निमग्नरूपमिति शुक्रविशेषणम् । सूक्ष्मेव  
विद्धमिति शुक्रस्य वर्तुलत्वं व्यथायुक्तत्वञ्च  
बोधयति । सवेदित्यनेनैव सावो बोधितः  
प्रावपदात्रिरन्तरं सावः ॥

जो कृष्ण नेत्रमें काले भागमें गटाना दीर्घ, सुहृमे  
विकसित मांसमय होय, मोटा तथा व्यथा युक्त होय और  
उसमेंसे निमग्न गरमज्वर रहताहै उसको सत्रणशुक्र  
कहतेहैं ॥ ५४ ॥

अथ सत्रणशुक्रस्य साध्यासाध्यता ।  
दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं  
न च संसवेद्यत् ॥ अवेदनं यत्र च  
युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचि-  
देव ॥ ५५ ॥

न चावगाढमेकत्वगतं न च संसवेदि-  
त्यर्थः । अवेदनमीषद्वेदनम् । न च युग्म-  
शुक्रम अयुग्मशुक्रमेकमित्यर्थः । एवं-  
विधं कदाचित्सिध्यति एतद्विपरीतं न  
सिध्यति ॥

जो सत्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें न होय एक त्वचामे होय,  
स्रवना न होय, वेदनारहित होय और एक होय तो किसी  
समय साध्य होताहै । किन्तु जो सत्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें  
होय, दूसरी त्वचामें, वेदनावाला, स्रावयुक्त और एक  
स्थानमें युग्मरूप ऐसा कभी भी साध्य नहीं होता ॥ ५५ ॥

अथाव्रणशुक्रलक्षणम् ।

स्यन्दात्मकं कृष्णगतन्तु शुक्रं शंखेन्दुकु-  
न्दप्रतिमावभासम् ॥ वैहायसाभ्रप्रतनुप्र-  
काशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ ५६ ॥

स्यन्दात्मकमभिष्यन्दहेतुकं सर्वेषामक्षि-  
रोगाणामभिष्यन्दहेतुकत्वे अस्य नियमबो-  
धनार्थं स्यन्दात्मकमिति । शंखेन्दुकुन्दप्रति-  
मावभासं शंखेन्दुकुन्दसदृशमवभासते ।  
एतेन शुक्रत्वं बोध्यते । वैहायसाभ्रप्रतनु-  
प्रकाशम् आकाशस्थमेषवत्तनु यथा स्यादेवं  
प्रकाशते यत् ॥

जो नेत्रोंके काले भागमें अभिष्यन्दसे उत्पन्नहुआ फूया  
आनागम स्थित भेषकी समान थोडा थोडा प्रकाशमान  
और शय, चन्द्रमा तथा कुट्टके फूटकी समान स्वेन होय  
उसको अत्रणशुक्र कहतेहैं यह फूया अत्यन्त साध्य है ।  
यद्यपि नेत्रके सम्पूर्ण रोग अभिष्यन्दसे होतेहैं  
निर्गम यह फूया तो अभिष्यन्दसेही होताहै ऐसा



नियम जाननेके लिये ' अभिप्यन्दसे हुआ ' यह विशेषण दिया है ॥ ५६ ॥

अथाव्रणशुक्रस्य साध्यत्वेऽप्यवस्था-  
न्तरेण कष्टसाध्यता ।

गम्भीरजातं बहलञ्च शुक्रं चिरोत्थितञ्चा-  
पि वदन्ति कृच्छ्रम् ॥ ५७ ॥  
गम्भीरजातं द्वित्रित्वगतम्, बहलं पुष्टम् ।

जो अव्रणशुक्र गम्भीर अर्थात् दो तीन पटलोमें प्राप्त हुआ होय, पुष्ट होय और बहुत कालसे उत्पन्नहुआ होय तो कष्टसाध्य होता है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥ ५७ ॥

अथाव्रणशुक्रस्याऽसाध्यलक्षणम् ।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतञ्च चलं शिरा-  
सूतमदृष्टिकृच्च ॥ द्वित्रित्वगतं लोहित-  
मन्ततश्च चिरोत्थितञ्चापि विवर्जनी-  
यम् ॥ ५८ ॥

विच्छिन्नमध्यं विशीर्णमांसत्वात्त्रिन्नमध्यं  
शिरासूतं शिरायां जातम् । अदृष्टिकृद्दर्शना-  
भावकृत् । द्वित्रित्वगतं पटलद्वयगतम् । एत-  
द्विच्छिन्नमध्यत्वादिलिंगसहितमसाध्यं न तु  
केवलं गम्भीरजातस्य कष्टसाध्यत्वाभिधाना-  
देवं चिरोत्थितमपि ॥

जो अव्रणशुक्रका मांस गिरजानेसे बीचमें नीचा हो, मांससे वेष्टित अर्थात् ऊंचा हो, चञ्चल हो गिराओमें उत्पन्नहुआ हो, देखने नहीं देवे, दो त्वचा अर्थात् दो पट-  
लोंमें पहुँचा होय । अन्तमें लाल हो और बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो तो यह असाध्य है । इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । केवल दो पटलोमें प्राप्त और, बहुत कालसे उत्पन्न हुआ होय तो कष्टसाध्य है किन्तु दो पटलोमें प्राप्त हुआ और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ भी ऊपरके विशेषणोंवाला होय तो असाध्य है ॥ ५८ ॥

अथाव्रणशुक्रस्यान्यासाध्यलक्षणम् ।

उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन्भ-  
वेन्मुद्गनिभञ्च शुक्रम् ॥ तदप्यसाध्यं

प्रवदन्ति केचिदन्ये तु तत्तित्तिरिपक्षतु-  
ल्यम् ॥ ५९ ॥

मुद्गनिभञ्च शुक्रमाकारेण । तत् नेत्रम् । तित्ति-  
रिपक्षतुल्यं तित्तिरिपक्षवच्छदनम् ॥

जो नेत्रोमेंसे गरम आंसू गिरते होयें फुंसी उत्पन्न हो और अव्रण शुक्र मूँगकी समान आकारवाला होय तो असाध्य है । कितने एक कहते हैं कि " नेत्रके पलक तीतरके पलकी समान होगये होयें तो अव्रणशुक्र असाध्य है " ॥ ५९ ॥

अथ पाकात्ययलक्षणम् ।

श्वेतः समाकामति सर्वतो हि दोषेण  
यस्यासितमण्डले तु ॥ तमक्षिपाका-  
त्ययमक्षिकोपं सर्वात्मकं वर्जयितव्य-  
माहुः ॥ ६० ॥

यः श्वेतः दोषेण कृत इति शेषः । तम-  
क्षिपाकादक्षिपाकात्ययमाहुः । अत्र पाकोऽपि  
स्यादत्त एव सुश्रुतः " शोकाश्रुपाकार्तिर्युते च  
नेत्रे " इति ।

दोषोकरके नेत्रके काले भागमें चारोओर सफेदी फैल जाय तो इस आँखकी पीडाको पाकात्यय कहते हैं, यह पाकान्वय तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुआ होय तो उसको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे । इसमें पाक भी होता है क्योंकि सुश्रुत कहता है कि " शोकाश्रु-  
पाकार्तिर्युते च नेत्रे " ॥ ६० ॥

अथाजकाजातलक्षणम् ।

अजापुरीषप्रमितो रुजावानलोहितो लो-  
हितपिच्छिलाश्रुः ॥ विगृह्य कृष्णं प्रच-  
योऽभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यव-  
स्येत् ॥ ६१ ॥

यः प्रचय उच्छ्रायः स च मेदसो बोद्ध-  
व्यो यत एतस्य उत्पत्तिर्विदेहेन तृतीयपटले  
कथिता । अलोहितः ईषल्लोहितः । विगृह्य

कृष्णमभ्युपैति महत्वेन समस्तं कृष्णभागं  
ग्राहयित्वा आयाति । व्यवस्येज्जानीयात् ॥

बकरीकी मैंगनकी समान, पीडावाली, कुछेक कलौंस  
लिये और लाल तथा चिकने आसुओंवाली, जो ऊंचाई  
अपने मोटेपनसे सम्पूर्ण काले भागमें प्राप्त होती है उसको  
अजकाजात कहते हैं ।

यह ऊंचाई मेदसे होती है ऐसा जानना । क्यों कि  
विदेहने इस ऊंचाईकी उत्पत्ति तीसरे पटलमें कही-  
है ॥ ६१ ॥

अथ नेत्रश्वेतभागोत्पन्नरोगाणां  
नामानि ।

प्रस्तारिशुक्लक्षतजाधिमांसस्नाय्वर्मसंज्ञाः  
खलु पञ्च रोगाः ॥ ६२ ॥ स्याच्छुक्तिका-  
चार्जुनपिष्टकौ च जालं शिराणां पिड-  
काश्च याः स्युः ॥ रोगा बलासग्रथितेन  
सार्द्धमेकादशाक्ष्णोः खलु शुक्लभागे ॥ ६३ ॥

नेत्रोंके श्वेतभागमें प्रस्तार्यर्म, शुद्धर्म, रक्तर्म, अवि-  
मांसर्म, स्नाय्वर्म शुक्ति, अर्जुन, पिष्टक, गिराजाल,  
गिराजपिडका और बलासग्रथित यह ग्यारह ११ रोग  
उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ प्रस्तार्यर्मलक्षणम् ।

प्रस्तार्यर्म तनु स्तीर्ण इयावं रक्तनिभं  
सितम् ॥ ६४ ॥

तनु पतलम्, स्तीर्णं विस्तीर्णम्, इयावं  
रक्तनिभमित्यत्र विकल्पो बोद्धव्यः ॥

नेत्रके श्वेतभागमें पतला, विस्तीर्ण कलौंस लिये अथवा  
लालीलिये जो सफेद चिह्न होय तो उसको प्रस्तार्यर्म  
कहते हैं ॥ ६४ ॥

अथ शुक्लर्मलक्षणम् ।

सुश्वेतं मृदु शुक्लर्म शुक्ले तद्वर्द्धतेऽचि-  
रात् ॥ ६५ ॥

सफेद भागमें बहुत सफेद और कोमल जो चिह्न होय  
तो उसको शुक्लर्म कहते हैं यह शुक्लर्मरूप मांस बहुत  
दिनोंमें बढ़ता है ॥ ६५ ॥

अथ रक्तर्मलक्षणम् ।

पद्माभं मृदु रक्तर्म यन्मांसं चीयते  
सितं ॥ ६६ ॥

पद्माभं वर्णेन रक्तमित्यर्थः । चीयते  
उपचीयते ।

सफेद भागमें लाल तथा कोमल जो मांस बढ़ताजाय  
उसको रक्तर्म कहते हैं ॥ ६६ ॥

अथाधिमांसर्मलक्षणम् ।

पृथु मृद्वधिमांसर्म बहलञ्च यकृन्नि-  
भम् ॥ ६७ ॥

पृथु विस्तीर्णम्, बहलं पुष्टम्, यकृन्नि-  
भम् ईषत्कृष्णलोहितम् ॥

सफेद भागमें विस्तीर्ण, कोमल, गाढा और कुछेक  
कलौंस लिये जो मांस बढ़ता होय तो उसको अधिमां-  
सर्म कहते हैं ॥ ६७ ॥

अथ स्नाय्वर्मलक्षणम् ।

स्थिरं प्रसारि मांसाद्यं शुष्कं स्नाय्वर्म  
पञ्चमम् ॥ ६८ ॥

स्थिरं कठिनम्, शुष्कं सावरहितम् ॥

सफेद भागमें कठिन, फैलनेवाला, और सावरहित  
जो मांस ऊंचा होता है उसको स्नाय्वर्म कहते हैं ॥ ६८ ॥

अथ शुक्तिलक्षणम् ।

इयावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो  
ये शुक्लाभाः सितनिचिताः स शुक्ति-  
संज्ञः ॥ ६९ ॥

इयावा इत्यादिवर्णत्रये विकल्पो बोद्धव्यः ॥

नेत्रके सफेद भागमें काले रंगका और मांसकी समान  
बिन्दु होता है अथवा सीपकी समान होता है उसको  
शुक्ति कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथार्जुनलक्षणम् ।

एको यः शशरुधिरप्रभस्तु बिन्दुः शुक्ल-  
स्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥ ७० ॥

सफेद भागमें खरगोसके रुधिरकी समान एक बिन्दु  
होता है उसको अर्जुन कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ पिष्टकलक्षणम् ।

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् ॥  
पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्नि-  
भम् ॥ ७१ ॥

**पिष्टवत् श्वेतम् ।**

सफेद भागमें कफ तथा वायुके प्रकोपसे चूनकी समान सफेद और मैलसे भरे दर्पणकी समान जो मांस ऊँचा होताहै उसको पिष्टक कहतेहैं ॥ ७१ ॥

**अथ शिराजाललक्षणम् ।**

**जालाभः कठिनशिरोऽरुणः शिराणां सन्तानो भवति शिरादिजालसंज्ञः ॥ ७२ ॥**

सफेद भागसे जालेकी समान कठिन गिराओंसे व्याप्त और लाल गिराओका जो समूह होताहै उसको शिराजाल कहतेहैं ॥ ७२ ॥

**अथ शिराजपिडकालक्षणम् ।**

**शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता यास्ता विद्यादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ७३ ॥**

सफेद भागमें कालेभागके निकट रहनेवाली और शिराओंसे व्याप्त जो सफेद कुंसियें उत्पन्न होतीहैं उनको शिराजपिडका कहतेहैं ॥ ७३ ॥

**अथ बलासग्रथितलक्षणम् ।**

**कांस्याभोऽमृदुरथ वारिविन्दुकल्पो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ७४ ॥**

कांस्याभः श्वेत इत्यर्थः । अमृदुः कठिनः । वारिविन्दुकल्पः एतेन मनाक् उन्नतत्वं बोध्यते । बलाससंज्ञः बलासग्रथितसंज्ञः । कचिदेकदेशेनापि समुदायावगमात् । यथा भीमो भीमसेन इति । अत एव सुश्रुते नाम-संग्रहे बलासग्रथितपदं निर्दिष्टम् ॥

सफेद भागमें कासेकी समान सफेद, कठिन और जलकी बूदकी समान कुछेक ऊँची जो बूद होतीहै उसको बलासग्रथित कहतेहैं ।

यद्यपि मूलश्लोकमें 'बलाससज्ज' ऐसा पद है तथापि उसका 'बलासग्रथित' ऐसा अर्थ किया है उसका कारण यह है कि भीमशब्दसे भीमसेनका ग्रहण करनेकी समान किसी स्थानमें नामके एकदेशसे सम्पूर्ण नामका ग्रहण होताहै । सुश्रुतमें नामोंके संग्रहमें 'बलासग्रथित' येही पद कहाहै ॥ ७४ ॥

**अथैकविंशतिवर्त्मजरोगाः ।**

उत्सङ्गिन्यथकुम्भीका पोथकी वर्त्मशर्करा ॥ तथाशौवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जन-दूषिका ॥ ७५ ॥ बहलं वर्त्म यच्चापि तथा-न्यो वर्त्मबन्धकः ॥ क्लिष्टवर्त्म तथा वर्त्म-कर्दमः श्याववर्त्म च ॥ ७६ ॥ प्रक्लि-न्नवर्त्म चाक्लिन्नवर्त्म वातहतश्च तत् ॥ वर्त्माबुदं निमेषश्च शोणितार्शस्तथैव च ॥ ७७ ॥ लगणो विषवर्त्मापि कुञ्चनं नाम तत्परम् ॥ एकविंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥ ७८ ॥

नेत्रोंके वर्त्म ( पलक ) दो होतेहैं । उनमें उत्सगिनी, कुम्भीका, पोथकी, वर्त्मशर्करा, अशौवर्त्म, शुष्कार्श, अजननाभिका, बहलवर्त्म, वर्त्मबन्धक, क्लिष्टवर्त्म, वर्त्मकर्दम, श्याववर्त्म, प्रक्लिन्नवर्त्म अक्लिन्नवर्त्म, वातहतवर्त्म, वर्त्माबुद, निमेष, शोणितार्श, लगण, विषवर्त्म और कुञ्चन ये इक्कीस रोग होतेहैं ॥ ७५-७८ ॥

**अथोत्सङ्गिनीलक्षणम् ।**

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मसंश्रया ॥ सोत्सङ्गोत्सङ्गपिडिका रक्तजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७९ ॥

अभ्यन्तरमुखी वर्त्मनोऽभ्यन्तरे मुख यस्याः सा । वर्त्मनो बाह्यतस्ताम्रा । सोत्सङ्गा अन्तःपूया । उत्सङ्गपिडिका उत्सङ्गे क्रौडे बह्वयः पिडिका यस्याः सा ॥ स्थूलकण्डूरास्थूला कण्डूरा चेति कर्मधारयः । एषा अधरवर्त्मजा बोद्धव्या । वर्त्मोत्सङ्गेऽधरे जन्तोरिति विदेहवचनात् ॥

नेत्रके कोथेके भीतर मुखवाली, बाहरसे लाल, भीतर से रावयुक्त, अपनेआप अनेक फुडियोयुक्त, स्थूल और खुजलीयुक्त जो फुडियाँ पलकमें रुबिरके प्रकोपसे होतीहैं उसको उत्सगिनी कहतेहैं ।

यह फुडिया नीचेके कोथेमें होतीहै ऐसा जानना,

काष्ण वह है कि, 'मनुष्यके नीचेके कोयेंमें उत्सर्गिनी होतीहै' ऐसा विवेक कहताहै ॥ ७९ ॥

अथ कुम्भीकालक्षणम् ।

वर्तमान्ते पीडिका ध्माता भिद्यन्ते च  
स्रवन्ति च॥ कुम्भीकावीजसदृशाः कुम्भी-  
काः सन्निपातजाः ॥ ८० ॥

कुम्भीकावीजसदृशाः कुम्भीका कठोरदेशे  
दाडिमाकारफला लता तद्बीजतुल्या ॥

पलकके अतंम ऊंची और कुम्भिका नामक लताके  
बीजकी समान जो कुम्भी सन्निपातसे होतीहै और फूटती-  
है तथा फूट फूटकर लवतीहै वह फुसी कुम्भिका कही-  
जातीहै । कुम्भिका नामक लता कठोर देशमें होतीहै  
और उसके फल अनारकी समान होतेहैं ॥ ८० ॥

अथ पोथकीलक्षणम् ।

स्त्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्नि-  
भाः ॥ रुजावत्यश्च पिडिकाः पोथक्य  
इति कीर्तिताः ॥ ८१ ॥

बहनेवाली, खुजलीयुक्त, भारी, लाल सरसोकी समान,  
और पीडायुक्त जो फुसी नेत्रके कोयेंमें होतीहै उसको  
पोथकी कहतेहैं ॥ ८१ ॥

अथ वर्त्मशर्करालक्षणम् ।

पिडिकाभिः सुमूष्माभिर्व्यनाभिरभिसं-  
वृताः॥पीडिका या खरा स्थूला वर्त्मस्था  
वर्त्मशर्करा ॥ ८२ ॥

बहु छोटी छोट्टी सघन फुसियोंके चारों ओर भारी-  
रुई, तीक्ष्ण और मोटी जो फुसी पलकमें होतीहै उसको  
वर्त्मशर्करा कहतेहैं ॥ ८२ ॥

अथाशौवर्त्मलक्षणम् ।

एवार्खीजप्रतिमाः पिडिका मन्दवेदनाः ॥  
श्लेष्माः खराश्च वर्त्मस्थास्तदशौवर्त्म  
कीर्त्यन्ते ॥ ८३ ॥

वेवार्खः कर्कटी । खराः तीक्ष्णाग्राः ॥

पलकमें कर्कटीके बीजकी समान, मंद पीडायुक्त,  
तिक्ष्ण, और तीक्ष्ण अर्खीजकी जो फुसी होतीहै उसको  
अशौवर्त्म कहतेहैं ॥ ८३ ॥

अथ शुष्काशौलक्षणम् । ]

दीर्घाकुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरो-  
द्भवः ॥ व्याधिरेषोऽभिविरुयातः शुष्काशौ  
नाम नामतः ॥ ८४ ॥

पलकके भीतर खरखरे, जकड़ेसे और दारुण जो बड़े  
बड़े अंकुर होतेहैं उसको शुष्काशौ कहतेहैं ॥ ८४ ॥

अथांजननामिकालक्षणम् ।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मस-  
म्भवा ॥ मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया  
सांजननामिका ॥ ८५ ॥

पलकमें दाहवाली, भौंकनेसरीखी पीडा युक्त, लाल,  
कोमल, और मंद वेदनावाली जो वारीक फुसियें होतीहैं  
वे अंजननामिका कही जातीहैं ॥ ८५ ॥

अथ बहलवर्त्मलक्षणम् ।

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः सम-  
न्ततः ॥ सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्-  
हलवर्त्म तत् ॥ ८६ ॥

पलककी समान रंगवाली और कठिन जो फुसी  
वर्त्मके चारों ओर फैल जायँ उसको बहलवर्त्म कहते-  
हैं ॥ ८६ ॥

अथ वर्त्मबंधकलक्षणम् ।

कण्डूरेणात्मतोदेन वर्त्मशोफेव मानवः ॥  
असमं छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्ध-  
कः ॥ ८७ ॥

जलसे परिपूर्ण और खुजलीसहित पलक सूजकर  
नेत्र बराबर नहीं मिचते हाथों उसको वर्त्मबंधक कहते-  
हैं ॥ ८७ ॥

अथ क्लिष्टवर्त्मलक्षणम् ।

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ॥  
अकस्मान्न स्रवेदत्तं क्लिष्टवर्त्मिति तद्वि-  
दुः ॥ ८८ ॥

एतत्कफजुष्टरक्तजम् ॥

नेत्रके दोनों कोयें नरम रहें । उनमें थोड़ी पीडा हो ।  
सर्वदा लाल रहें और अकस्मात् लाल होजायँ उसको  
क्लिष्टवर्त्म कहतेहैं । यह रोग प्रथम कफके सम्बन्धसे  
होकर रक्तसे होताहै ॥ ८८ ॥

अथ वर्त्मकर्मलक्षणम् ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा ॥

तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते - वर्त्मकर्म-  
मम् ॥ ८९ ॥

क्लिन्नत्वम् आर्द्रत्वम् ॥

ऊपर क्लिष्टवर्त्मके जो लक्षण कहे वे लक्षण होंयें तथा फिर पित्तसे सयुक्त रुधिर दाह करताहो और इस कारण पलक भीजजातेहोंयें उस रोगको वर्त्मकर्म कहते हैं ॥ ८९ ॥

अथ श्याववर्त्मलक्षणम् ।

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवे-  
दनम् ॥ सकण्डूकं परिक्लेदि श्याववर्त्मोति  
तन्मतम् ॥ ९० ॥

नेत्रके पलक जो बाहर तथा भीतर काले होंयें, सूजन हो, वेदनायुक्त, खुजलीसहित और भीजे रहे तो उसको श्याववर्त्म कहतेहैं ॥ ९० ॥

अथ प्रक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् ।

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ॥

प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्याक्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ९१

अरुजमीषद्वयम् ॥

कोये कुछेक पीडायुक्त, सूजे हुए और अधिक तर कीचड सहित भीजे होंयें उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते-  
हैं ॥ ९१ ॥

अथाक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् ।

यस्य धौतान्यधौतानि सम्बध्यन्ते पुनः

पुनः ॥ वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्न-  
वर्त्म तत् ॥ ९२ ॥

धोनेसे वा नहीं धोनेसे जो नेत्रके पलक बारबार चिपक कर मिलजायें और पके नहीं अर्थात् कच्चे रहें उसको अक्लिन्नवर्त्म कहतेहैं ॥ ९२ ॥

अथ वाताहतवर्त्मलक्षणम् ।

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न  
मील्यते ॥ एतद्वातहतं विद्यात्सरुजं यदि  
वारुजम् ॥ ९३ ॥

विमुक्तसन्धि स्वस्थानच्युतसन्धि । निश्चे-  
ष्टम् । निमेषोन्मेषादिरहितम् ॥

जिसके पलककी संधि अलग अलग होजायें पलक मिचे और खुले नहीं और वेदनासहित अथवा वेदनारहित तथा सकुचनेवाली इसको वातहतवर्त्म कहतेहैं ॥ ९३ ॥

अथ वर्त्मावृद्धलक्षणम् ।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ॥

आचक्षीतावृद्धमिति सरक्तमवलम्बि च ९४ ॥

विषममवर्तुलं ग्रन्थिभूतं कठिनम् । अवे-  
दनमीषद्वेदनम्, सरक्तमीषलोहितम् । अवल-  
म्बि अवसस्तम् ॥

पलकोंके भीतर विषम अर्थात् गोल नहीं, थोड़ी पीडा-  
वाली कुछेक लाल और शीघ्र बढ़नेवाली कठिन गांठ होय  
उसको वर्त्मावृद्ध कहतेहैं ॥ ९४ ॥

अथ निमेषलक्षणम् ।

निमेषिणीः शिरावायुः प्रविष्टो वर्त्मसं-  
श्रयः ॥ सञ्चालयति वर्त्मानि निमेषः स  
न सिध्यति ॥ ९५ ॥

पलकोंमें रहनेवाली वायु पलकोंको खोलने बढ़ करने  
वाली नसोंमें प्राप्त होकर पलकोंको चलायमान करे उसको  
निमेष कहतेहैं यह रोग असाध्य है ॥ ९५ ॥

अथ शोणिताशौलक्षणम् ।

वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरंकु-  
रः ॥ तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं वाऽपि  
विवर्द्धते ॥ ९६ ॥

पलकोंमें रहनेवाले क्रोमल अकुर बढ़ें उसको शोणितार्श  
कहतेहैं यह रोग रुधिरसे होताहै । इसको जितना जितना  
काटा जाय उतनाही अधिक बढ़ताहै ॥ ९६ ॥

अथ लगणलक्षणम् ।

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवो  
रुजः ॥ सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो  
लगणः स्मृतः ॥ ९७ ॥

नहीं पकनेवाला, कठिन, स्थूल, अल्प पीडायुक्त, खुज-  
लीसहित, चिकनी और बेरकी समान जो गांठ पलकमें  
उत्पन्न होय उसको लगण कहतेहैं ॥ ९७ ॥



अथ विसवर्त्मलक्षणम् ।

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि-  
वर्त्मनोः ॥ प्रस्रवत्यन्तरुदकं विसवद्वि-  
सवर्त्म तत् ॥ ९८ ॥

छिद्राणि अन्तश्छिद्राणि च कुर्युरित्यन्व-  
यः । विसवद्विद्वच्छिद्रत्वात् ॥

तीनों दोष पलकोंमें बाहर सूजनको उत्पन्न करें भीतर  
छिद्रोंको उत्पन्न करें और उनमेंसे कमलकी नालकी समान  
जलका जाव होय उसको विसवर्त्म कहतेहैं ॥ ९८ ॥

अथ कुंचनलक्षणम् ।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला  
यदा ॥ तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम  
तद्विदुः ॥ ९९ ॥

वातादि दोषोंके कारण पलक सकुच जाय और  
उससे देखनेको असमर्थ होजाय उसको कुंचन कहते-  
हैं ॥ ९९ ॥

तत्र पक्ष्माणि अक्षिलोमानि तत्र-  
त्ययो रोगयोर्नामनी आह ।

पक्ष्मकोपः पक्ष्मशातो रोगौ द्वौ पक्ष्मसं-  
श्रयौ ॥ १०० ॥

पक्ष्मकोप और पक्ष्मशात ये दो रोग पलकोंके बालोंमें  
होतेहैं ॥ १०० ॥

अथ पक्ष्मकोपलक्षणम् ।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्याक्षि विशन्ति  
हि ॥ वृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं  
जनयन्ति च ॥ १०१ ॥ असिते  
सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि ॥ प-  
क्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदा-  
रुणः ॥ १०२ ॥

संरम्भं शोधम् ॥

वायुमें चयनमान पक्ष्मोंके बाल नेत्रोंमें प्रवेश  
करतेहैं, प्रवेश करते नेत्रोंको बारंबार घिसने हैं,  
गिरि गिरिदार बालों अपना सफेद भागमें सूजनको  
उत्पन्न करें हैं और उल्टे पलकपर गिरजायें इस

रोगको पक्ष्मकोप कहतेहैं यह रोग अत्यन्त दारुण  
है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तपक्ष्मकोपलक्षणम् ।

यत्पक्ष्मदेहलीमुक्ता वर्त्मनोऽन्तः प्रजा-  
यते ॥ वर्षेत्पक्ष्मासिते श्वेते पक्ष्मकोपः  
स उच्यते ॥ १०३ ॥

जहां बाल उत्पन्न होनेका स्थान है उस स्थानको छोड-  
कर बालोंके भीतर उत्पन्न होय और वह काले तथा सफेद  
भागमें घिसा करे उसको पक्ष्मकोप कहतेहैं, इसको देशमें  
परवाल कहतेहैं । सुश्रुतमें कहा है कि पलकोंके बालोंके  
स्थानमें रहनेवाले दोष तीक्ष्ण अनीवाले खरखरे रोमोंको  
उत्पन्न करें हैं, ये रोम नेत्रोंमें घिसनेसे नेत्र दुखते हैं  
यह रोग पक्ष्मकोप कहा जाताहै । इस रोगवाला मनुष्य  
पवन, घूप और अग्निपर द्वेष करताहै ॥ १०३ ॥

अथ पक्ष्मशातलक्षणम् ।

वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं लोमानि शातयेत् ॥  
कण्डूं दाहञ्च कुरुते पक्ष्मशातं तदा-  
दिशेत् ॥ १०४ ॥  
शातयेत् स्वलयेत् ॥

पक्ष्माशयमें रहनेवाला पित्त पलकके बालोंको गिरा-  
देताहै और खुजली तथा दाहको उत्पन्न करे है यह  
रोग पक्ष्मशात कहाताहै ॥ १०४ ॥

अथ सन्धिजरोगाः ।

पक्ष्मवर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः ॥  
शुक्लकृष्णगतश्चान्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि  
च ॥ मतः कनीनकगतः षष्ठश्चापाङ्गसं-  
श्रितः ॥ १०५ ॥

पहिली सन्धि पलकोंके रोमोंमें और पलकोंमें है, दूसरी  
सन्धि पलकोंमें और सफेद भागमें है, तीसरी सन्धि सफेद  
भागमें और काले भागमें है और दृष्टिमें है, चौथी सन्धि  
काले भागमें और दृष्टिमें है, पांचवीं सन्धि दृष्टिमें है और  
छठी सन्धि नेत्रके अन्तमें है ॥ १०५ ॥

अथ सन्धिजरोगाणां नामानि संख्याच ।  
पृथालसः सोपनाहः सावाश्चत्वार एव

च ॥ पर्वणी कालजी जन्तुग्रन्थिः सन्धौ  
नवामयाः ॥ १०६ ॥

पूयालस, उपनोह, पित्तस्राव, कफस्राव, सन्निपातस्राव, रक्तस्राव, पर्वणी, अलजी और जन्तुग्रन्थी यह नामवाले नौ रोग संधियोंमें होतेहैं ॥ १०६ ॥

अथ पूयालसलक्षणम् ।

पक्वः शोथः सन्धिजः संस्रवेद्यः सान्द्रं  
पूयं पूति पूयालसाख्यः ॥ १०७ ॥

सन्धिजः कनीनकसन्धिजो बोद्धव्यः ।  
“पूयालसन्तु तं विद्यात्सन्धौ कानीनके  
नृणाम्” इति वचनात् ॥

संधियोंमें उत्पन्न और पकीहुई जो सूजन दुर्गन्धित तथा गाढीराध जिसमें बहै उसको पूयालस कहतेहैं । संधियोंमें उत्पन्न हुआ, अर्थात् दृष्टिकी संधियोंमें उत्पन्न हुआ ऐसा जानना, कारण यह है कि ‘मनुष्योंकी दृष्टिकी संधियोंमें पूयालस होताहै’ ऐसा विदेह कहता-है ॥ १०७ ॥

अथोपनाहलक्षणम् ।

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी कण्डूप्रायो  
नीरुजश्चोपनाहः ॥ १०८ ॥

नाल्पः महान् । अपाकी ईषत्पाकी ।  
नीरुजः ईषद्वेदनः । “अरुणं कठिनं ग्रन्थि  
जनयत्यल्पवेदनम्” । इति विदेहवचनात् ।

दृष्टिकी संधिमें बड़ी, कम पकनेवाली, बहुत खुजली-युक्त, कठिन, लाल और अल्प वेदनावाली जो गाठ होय उसको उपनाह कहतेहैं ॥ १०८ ॥

अथ स्रावसम्प्राप्तिः ।

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः  
स्रावाल्लक्षणैः स्वरूपेतान् ॥ तं हि स्रावं  
नेत्रनाडीति चैके तस्या लिंगं कीर्तयिष्ये  
चतुर्द्धा ॥ १०९ ॥

सन्धीनिति बहुवचनेन सर्व एव सन्धयो  
गृह्यन्ते । एके वदन्तीति शेषः । वातिकस्रावो  
न भवति केवलेन वातेन तदसम्भवात् ॥

दोष सम्पूर्ण संधियोंमें जाकर आधुओंके मार्गसे अपने-  
लक्षणोंवाले स्रावोंको उत्पन्न करेंहैं कितने एक आ

चार्य इस स्रावको ‘नेत्रनाडी’ नामसे कहतेहैं । स्राव  
चार प्रकारका होताहै उसके लक्षण कहतेहैं । वायुस-  
म्बन्धीस्राव नहीं होता क्योंकि केवल वायुसे स्राव होना  
सम्भव नहीं ॥ १०९ ॥

अथ पित्तजस्रावलक्षणम् ।

हारिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तस्रावः  
संस्रवेत्सन्धिमध्यात् ॥ ११० ॥

हारिद्राभं पीतरक्तम् । परतः पीतशब्द-  
प्रयोगाज्जलं नेति । वाशब्दो हारिद्राभं पीतं  
वेत्यत्र सम्बध्यते । पित्तस्रावः पित्तात्स्राव  
एवं श्लेष्मस्रावादयः ॥

संधिके बीचमेंसे लाल तथा पीला मिलाहुआ अथवा  
केवल पीला गरम जलका स्राव होताहोय तो उसको  
जानना कि पित्तसम्बन्धी स्राव है ॥ ११० ॥

अथ कफजस्रावलक्षणम् ।

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्म-  
स्रावोऽसौ विकारः प्रदिष्टः ॥ १११ ॥

स्फेद, गाढा तथा चिकना स्राव होता होय तो  
जानना कि कफसम्बन्धी स्राव है ॥ १११ ॥

अथ सान्निपातस्रावलक्षणम् ।

शोथः सन्धौ संस्रवेद्यस्तु पक्वः पूयं स्रावः  
सर्वजः सम्मतः स्यात् ॥

संधियोंमें पकनेवाली सूजन राधको बहातीहोय तो  
उसको जानना कि सन्निपातस्राव है ।

अथ रुधिरजन्यस्रावलक्षणम् ।

रक्तास्रावः शोणिताद्यो विकारो गच्छे-  
दुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥ ११२ ॥

स्राव गरम होय और उसमें विशेष रुधिर गिरता होय  
तो जानना कि रुधिरजन्य स्राव है ॥ ११२ ॥

अथ पर्वण्यलज्योर्लक्षणम् ।

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना रक्ताज्जेया  
पर्वणी वृत्तशोफा ॥ जाता सन्धौ  
कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव व्याहृता  
पूर्वलिंगैः ॥ ११३ ॥

रक्ता सिता स्फोटचिता दारुणा त्वलजी  
भवेत् ॥ ११४ ॥

अलजीमाह-अलजी स्यादित्यादि ।  
तस्मिन्नेव कृष्णशुक्लयोरेव सन्धौ । भेदार्थ-  
माह-पूर्वलिंगैः प्रमेहाधिकारलिखितैः ॥

काले भागकी तथा सफेद भागकी सधियोंमें गोल, मूजन-वाली, लाल, बारीक और दाहयुक्त तथा पकनेवाली फुसी उत्पन्न होय तो जानना कि पर्वणी उत्पन्न हुई है। यह पर्वणी रुधिरके प्रकोपसे होती है।

पहिल प्रमेहाधिकारमें लिखे अनुसार लाल, सफेद  
फुमियोसे व्याप्त और दारुण ऐसी फुसी सधिमै ( काले  
भाग तथा सफेद भागकी सधिमै ) होय तो उसको अलजी  
जानना ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

अथ जंतुग्रंथिलक्षणम् ।

जन्तुग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्ठं कुर्यु-  
र्जन्तवः सन्धिजाताः ॥ नानारूपा वर्त्म-  
शुक्लान्तसन्धौ गच्छन्त्यन्तलोचनं दूष-  
यन्तः ॥ ११५ ॥

वर्त्मनः पद्मणश्च सन्धिजाता इत्यन्वयः ॥

पलकके तथा पलकके रोमोंकी सवियोंमें उत्पन्न हुए, अनेक आकृतितवाने हमि खुजलीको उत्पन्न करे और नेत्रों भिगाह बिगाटकर पलक तथा गफेद भागकी सधियोंमें जाते हैं उसको जनुगण्य कहते हैं ॥ ११५ ॥

अथ समस्तनेत्रज रोगगणना ।

स्यन्दाश्चतुष्का इह सम्प्रदिष्टाश्चत्वार  
एवंह तथाधिमन्थाः ॥ पाकः सशोथः  
स च शोथहीनो हताधिमन्थोऽनिलपर्य-  
यश्च ॥ ११६ ॥ शुष्काधिपाकस्त्विह  
कीर्तितश्च तथान्यतोवात उदीरितश्च ॥  
दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युपिता शिराणामुत्पात-  
हर्षां च समस्तनेत्रे ॥ ११७ ॥ एवं सम-  
स्तनेत्रे स्युरामया दश सप्त च ॥ तेषा-  
मिह प्रयग्वक्ष्ये यथावल्लक्षणान्यपि ११८॥

ना श्रीमध्वर ना श्रीमध्व, यद्योयनाह. अद्योय-  
न १. दानिमोयं, नातेरेयं, शुद्धीप्राप्त, अन्यनोयान,

अम्लव्युषित, शिरोर्षित और शिरोर्हर्ष यह सतरह रोग समस्त नेत्रमे होतेहै, अब इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहताहूँ ॥ ११६-११८ ॥

अथ चत्वार्य्याभिष्यन्दनामानि ।

वातापित्तात्कफादृक्तादभिष्यन्दश्चतुर्वि-  
धः ॥ प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रभयं-  
करः ॥ ११९ ॥

प्राणियोंके वाताभिष्यन्द, पित्ताभिष्यन्द, कफाभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्द इसप्रकार सर्व नेत्रमें पीड़ा करनेवाला चार प्रकारका भयकर अभिष्यन्द रोग होता है ॥ ११९ ॥

अथ वाताभिष्यन्दलक्षणम् ।

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंवर्षपारुष्यशि-  
रोऽभितापाः ॥ विशुष्कभावः शिशि-  
राश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भव-  
न्ति ॥ १२० ॥

संघर्षः करकटीका । शिरोऽभितापः  
शिरसो व्यथा । विशुष्कभावः दूषिकाराहि-  
त्यम् । वाताभिपन्ने वातेन उपद्रुते ॥

तोड़ने भोंकने सरीखी पीड़ा, स्तब्धता (जड़ता), रोमांचका होना, खुजली, नेत्रोंमें रुक्षता, मस्तकमें पीड़ा, चिपकना नहीं और आसुओंका शीतल होना, यह सब लक्षण होयें तो जानना कि नेत्रमें वायुके प्रकोपसे आम्बि-प्यन्ट हुआ है ॥ १२० ॥

अथ पित्ताभिष्यन्दलक्षणम् ।

दाहप्रपाकः शिशिराभिनन्दा धूमायनं  
वाष्पसमुद्भवश्च ॥ उष्णाश्रुता पीतकने-  
त्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२१ ॥

शशिराभिनन्दा शीतलेच्छा । धूमायनं  
नेत्राद्भ्रमोद्गम इव । वाष्पसमुद्भवः अमुस्यावः ।

दाह, पकना, शीतल पदार्थोंकी इच्छा, नेत्रमेंसे धुँयें  
निकलता प्रतीत हो, आसुओंका साव, आंमुआंमें उगना  
और नेत्रका पीलापन यह लक्षण हैं कि तो जानना कि  
पित्ते प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२१ ॥

अथ कफाभिष्यन्दलक्षणम् ।

उष्णाभिनन्दा गुरुताक्षिशोथः कण्डूपदे-  
हावतिशीतता च ॥ स्रावो मुहुः पिच्छि-  
ल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भव-  
न्ति ॥ १२२ ॥

उपदेहः दूषिकया लिप्तता ॥

गरम पदार्थोंकी इच्छा, भारीपन, नेत्रोंमें सूजन,  
खुजली, कीचड़ अधिक आदे और चिपके, अत्यन्त  
शीतलता और बारबार चिकना स्राव, यह लक्षण  
होयें तो जानना कि कफके प्रकोपसे नेत्र दुखने आये  
हैं ॥ १२२ ॥

अथ रक्ताभिष्यन्दलक्षणम् ।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः सम-  
न्तादतिलोहिताश्च ॥ पित्तस्य लिङ्गानि  
च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भव-  
न्ति ॥ १२३ ॥

पित्तलिङ्गानि पित्ताभिष्यन्दलिङ्गानि ॥

आसुओंमें लाली, नेत्रोंमें लाली, चारोंओर नेत्रोंमें  
अत्यन्त लाल रेखा और अन्यभी पित्ताभिष्यन्दके  
लक्षण होयें तो जानना कि रुधिरके प्रकोपसे अभिष्यन्द  
हुआ है ॥ १२३ ॥

अथ चतुर्विधाभिष्यन्दोपेक्षया चत्वा-

रोऽधिमन्थाः ।

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ॥

तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवे-  
दना ॥ १२४ ॥

जो मनुष्य आभिष्यन्द रोगोंपर औषधादिक उप-  
चार नहीं करते उनके यह वृद्धिको प्राप्त होकर नेत्रों-  
में तीव्र पीड़ावाले चार अधिमन्थ होते हैं ( वाता-  
भिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, पित्ताभिष्यन्दजन्य अधि-  
मन्थ, कफाभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, और रक्ताभि-  
ष्यन्दजन्य अधिमन्थ इस प्रकार अधिमन्थ चार  
हैं ) ॥ १२४ ॥

अथाधिमन्थलक्षणम् ।

उत्पात्यत इवात्यर्थं तथा निर्मथ्यतेऽपि  
च ॥ शिरसोऽर्द्धं तु तं विद्यादधिमन्थं  
स्वलक्षणैः ॥ १२५ ॥

स्वलक्षणैः यथोक्तवातादिकृताभिष्यन्द-  
लक्षणैरधिमन्थं विद्यात् । अभिष्यन्देभ्योऽधि-  
मन्थानां भेदार्थमाह-शिरसोऽर्द्धमुत्पादयत  
इव तथा निर्मथ्यतेऽपि चेति । चतुर्ध्वधिम-  
न्थेषु बोद्धव्यम् । शिरसोऽर्द्धवेदना व्याधिप्र-  
भावात् । स च अधिमन्थो यदात्मको यावता  
कालेन मिथ्याचारादृष्टिं हन्ति तमाह—

हन्यादृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्योऽधिम-  
न्थो रक्तजः पञ्चरात्रात् ॥ षड्रात्राद्वा  
वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैतिकः  
सद्य एव ॥ १२६ ॥

अत्र सद्यःशब्देन त्रिरात्रमुच्यते तन्त्रा-  
न्तरे त्रिरात्रवचनात् ॥

जो अधिमन्थ जिस अभिष्यन्दसे उत्पन्नहुआ होय उस  
अधिमन्थमें उसी अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण होनेके  
सिवाय आधा माथा उखाड़ासा मालूम होय तथा अत्यन्त  
मथनेकीसी पीड़ा होतीहै ।

मस्तकके आधे भागको उखाड़ता मालूम होय तथा  
मथता होय ऐसी पीड़ा होनेसे अर्थात् यही अभिष्यन्दसे  
अधिमन्थोंमें अन्तर है । यह अलग वेदनारूप लक्षण  
चारों अधिमन्थोंमें समान हैं । मस्तके अर्द्धभागमें वेदना  
व्याधिके प्रभावसे होतीहै ऐसा जानना ।

जो अधिमन्थ कफाभिष्यन्दसे हुआ होय तो सात  
रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट करदेताहै । रक्ताभिष्य-  
न्दसे हुआ होय तो पांच रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट  
करदेताहै, वाताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ होय तो छः रात्रिके  
भीतर दृष्टिको नष्ट करदेताहै और पित्ताभिष्यन्दसे  
उत्पन्न हुआ होय तो तत्कालही तीन रात्रिके भीतर  
दृष्टिको नष्ट करदेताहै । जो अयोन्य उपचार आदि  
करनेमें आवे तब अधिमन्थ दृष्टिको नष्ट करदेताहै ऐसा  
जानना ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ सशोथपाकाशोथपाकनेत्रयो-  
र्लक्षणम् ।

कण्डूपदेहाभ्युद्यतः पकोदुम्बरसन्निभः ॥  
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशो-  
थकः ॥ १२७ ॥ शोथहीनानि लिङ्गानि  
नेत्रपाके त्वशोथके ॥ १२८ ॥

पक्वोदुम्बरसन्निभः लोहितत्वात् ॥

जो नेत्र खुजली सहित होय, चिपके, आंसुओंसे परिपूर्ण होय, पकेहुए गूलरके फलकी समान लाल होय, मृज्जनयुक्त और पके तो जानना कि सञ्जोथपाक हुआ है ॥ १२७ ॥

उपर कहे सञ्जोथपाकके सम्पूर्ण लक्षण होंय और केवल मृज्जनही नहीं होय तो जानना कि अञ्जोथपाक हुआ है ॥ १२८ ॥

अथ हताधिमन्थलक्षणम् ।

उपेक्षणादक्षि यदाधिमन्थो वाताधिकः शोषयति प्रसह्य ॥ रुजाभिरुग्राभिर-साध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥ १२९ ॥

शोषयति शोषयित्वा नाशयति । अत एवाह विदेहः—“तत्पद्ममिव संशुष्कमवसी-दति लोचनम् ॥” इति ॥

वाताभिप्यन्त्मे उत्पन्नहुआ अधिमन्थ योग्य उप-चारकी उपेक्षा करनेसे जब उग्र वेदनाको उत्पन्न करके आन्त्रको बलात्कारसे सुखाकर नष्ट करदेताहै तब यही अधिमन्थ हताधिमन्थ कहाजाताहै, यह हताधिमन्थ अमाध्य है । यद्यपि मूलमें ‘सुखाताहै’ येही लिखा है तथापि ‘सुखाकर नष्टकर देताहै, ऐसा हमने लिखा है इसका यह कारण है कि “अत्यन्त सुखाये हुए नेत्र अत्यन्त सूखे कमलकी समान नष्ट हो जातेहैं” ऐसा विदेहका मत है ॥ १२९ ॥

अथ वातपर्ययलक्षणम् ।

वारंवारश्च पर्येति भुवौनेत्रे च मारुतः ॥ रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातप-र्ययः ॥ १३० ॥

पर्येति पर्यायेण याति, कदाचिद्भुवौ कदाचिन्नेत्रे ॥

वायु किसी समय भौआंमें, और किसी समय नेत्रोंमें उस प्रकार बारबार फिर और अनेक प्रकारकी तीव्र वेदना होय तो यह वातपर्यय कहाजाताहै ॥ १३० ॥

अथ शुष्काक्षिपाकलक्षणम् ।

यन्मूणितं दारुणरूक्षवर्त्म सन्दह्यते

चाविलदर्शनं यत् ॥ सुदारुणं यत्प्रतिबो-धने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १३१ ॥  
कूणितं संकोचितं मुद्रितमिति यावत् । दारुणरूक्षवर्त्म दारुणं विकृतं रूक्षं च वर्त्म यस्य तत् । इदमक्ष्णोर्विशेषणम् । सन्दह्यते सदाहं भवति । आविलदर्शनम् आविलस्य अनच्छस्य दर्शनं येन तत् । तत्प्रतिबोधने उद्धाट्य सुदारुणमतिशयेन विकृतम् ॥

नेत्रके पलक दारुण तथा कठिन और रखे हो जायें, आख मिची रहे, दाह हो, आंखसे साफ न देख सके और खोलते समय अत्यन्त विकृत दीखे इस रोगको शुष्काक्षि पाक कहतेहैं ॥ १३१ ॥

अथान्यतोवातलक्षणम् ।

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा ॥ कुर्याद्भुजोऽपि भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाह-रन्ति ॥ १३२ ॥

अवटू घाट इति मैथिलादिलोकाः । अन्यतो वा पृष्ठादिदेशश्च आगतः अन्यतो-वातः अन्यत्र स्थितोऽन्यत्र रुजं करोति इत्यन्यतोवातः । विदेहेनाप्युक्तम्—

मन्यानामन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा ॥ करोति भेदं निस्तोदं शंखे वाक्ष्णो-र्भुवस्तथा ॥ तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ १३३ ॥

घाटीमें, कानमें, मस्तकमें, टोडीमें, मन्यानाई और अन्य पीठके वास आदिमें स्थित वायु भौआंमें और नेत्रोंमें घोरवेदनाको उत्पन्न करे उस रोगको अन्य-तोवात कहतेहैं । एक स्थानमें स्थित वायु दूसरे स्थानमें वेदनाको उत्पन्न करे है इस कारण यह अन्य-तोवात फहीजातीहै । विदेह भी कहताहै कि, नाटक मध्यमेंसे अथवा पीठके बांसमेंसे स्थित वास कनपटी नेत्र और भौआंमें भेदने तथा तोटने सरीसै



पीडाको उत्पन्न करेहै इस रोगको नेत्रविषयके जाननेवाले विद्वान् अन्यतोवात कहतेहैं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

**अथाम्लाध्युषितलक्षणम् ।**

इयावं लोहितपर्यन्तं सर्वमक्षिं प्रपच्य-  
ते ॥ सदाहशोथं सस्त्रावमम्लाध्युषितम-  
म्लतः ॥ १३४ ॥

अम्लतः अम्लभोजनात् । तथाच सुश्रुतः  
अम्लेन भुक्तेनेत्यादि ॥

खट्टे रसआदिके खानेसे नेत्र काले, लाल कोनेवाले,  
दाहयुक्त, सूजनसहित और खावयुक्त होतेहैं । यह रोग  
अम्लाध्युषित कहाजाताहै ॥ १३४ ॥

**अथ शिरोत्पातलक्षणम् ।**

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो  
हि भवन्ति ताम्राः ॥ मुहुर्विरज्यन्ति च  
च याः समन्ताद्व्याधिः शिरोत्पात इति  
प्रदिष्टः ॥ १३५ ॥

अक्षिराज्यः अक्षिशिराः विरज्यन्ति वि-  
कृतवर्णा भवन्ति ॥

वेदनारहित अथवा वेदनायुक्त नेत्रकी शिरा लाल हो  
जाय और वह अधिकाधिक बारंबार विकृत वर्णवाली हो-  
जाय इस रोगको शिरोत्पात कहतेहैं ॥ १३५ ॥

**अथ शिराहर्षलक्षणम् ।**

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत  
रोगः स शिराप्रहर्षः ॥ ताम्राक्षिता स्त्राव-  
यति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षि-  
तुश्च ॥ १३६ ॥

मूर्खतासे जो शिरोत्पातकी उपेक्षा कीजाय तो वही  
शिराहर्ष होजाताहै कि जिससे आंखें लाल होजातीहैं,  
अत्यंत स्त्राव होताहै, और आंखोंसे देख नहीं सक्ता ॥ १३६ ॥

**अथ नेत्रसामतालक्षणम् ।**

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागद्वेकसमन्वितम् ॥  
वर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं वि-  
दुः ॥ १३७ ॥

उदीर्णवेदनम् उद्भटवेदनम् । वर्षः करक-

टिका एतल्लक्षणं लंघनादिविधानार्थमञ्जना-  
दिनिषेधार्थं चोक्तम् । तथा च तन्त्रान्तरे-

स्वेदोदितानि चत्वारि लंघनं भोजने  
रसः ॥ स्वादुतिक्तश्च लेपश्च बाष्पस्वेद-  
नमेव च ॥ एतानि नेत्ररोगाणां सामा-  
न्याचरणानि हि ॥ १३८ ॥ अञ्जनं सर्पि-  
षः पानं कषायं गुरुभोजनम् ॥ नेत्ररोगेषु  
सामेषु स्नानञ्च परिवर्जयेत् ॥ १३९ ॥

नेत्रमें अपार वेदना होतीहो; लाली अधिक हो, खुजली  
आतीहो, भौकनेसरीखी पीडा होतीहो, शूल चलताहो,  
और आसू गिरतेहोंथें तो नेत्रको साम अर्थात् आमसहित  
जानना । जबतक नेत्र आमसहित होंथें तबतक लघन  
आदि करनेके लिये तथा अंजन आजना आदिक निषेध  
करनेके लिये यह लक्षण कहेहैं । अन्य ग्रंथमें भी कहाहैं  
कि 'लघन, मधुर भोजन तथा कडवा रस, लेप और  
बाफका सेक यह नेत्ररोगके लिये सामान्य उपचारहैं परन्तु  
जबतक नेत्र आमसहित होय तबतक अंजन, घृतपान,  
काथ, भारीभोजन और स्नान इनका त्याग करदेवे'  
॥ १३७-१३९ ॥

**अथ नेत्रनिरामतालक्षणम् ।**

मन्दवेदनता कण्डूसंरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥  
प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोर्निरामेक्षणलक्षण-  
म् ॥ १४० ॥

**संरंभः शोथः ॥**

वेदनाकी मंदता, खुजलीका कम होना, सूजनका कम  
होना, आंसुओंका कम आना, और वर्णकी निर्मलता यह  
लक्षण होयें तो जानाना कि नेत्र निराम अर्थात् आमर-  
हित है ॥ १४० ॥

**अथ नेत्ररोगचिकित्सा ।**

द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे शिरोगते ते  
बहुधा हि नेत्रे ॥ ताः प्रोक्ष्णोत्सादनलेप-  
नादीन्पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति ॥ १४१ ॥  
प्रोक्ष्णं सेचनमुत्सादनमुद्वर्तनम् ॥  
मलोष्मसंघट्टनपीडनाद्यैस्ता दूषयन्ते

( १०५४ )

नयनानि दुष्टाः ॥ भजेत्सदा दृष्टिहितानि  
तस्मादुपानदभ्यञ्जनधावनानि ॥ १४२ ॥  
मलं धूल्यादि । मलादिभिर्दुष्टास्ताः  
शिरा नयनानि दूषयन्तीत्यन्वयः ॥

पोंवकी दो मोटी नसें मस्तकमें गई हैं और बहुतसी  
नसें नेत्रोंमें पहुँची हैं । इस कारण पांचोंमें सेचन, मर्दन  
और लेपन किया हुआ उन नसोंके द्वारा नेत्रोंमें पहुँचता है ।

मलमें, गरमीसे, सघटनसे तथा दवाने आदिसे दूषित  
हुई नसें नेत्रोंको बिगाड़ देती हैं इस कारण जूतेका पहरना,  
पोंवकी मालिस, और पोंवोंको घोंना यह सर्वदा सेवन  
करना चाहिये, जिससे नेत्रोंका उन्नकार हो ॥ १४१ ॥ १४२

चक्षुष्याः शालयो मुद्रा यवा मांसन्तु  
जाङ्गलम् ॥ पक्षिमांसं विशेषेण वास्तूकं  
तण्डुलीयकम् ॥ १४३ ॥ पटोलकर्को-  
टकफारवेल्लफलानि सर्पिःपरिपाचितानि ॥  
तथैव वार्ताकफलं नवीनमक्ष्णोर्हितः  
स्वादुरथापि तिक्तः ॥ १४४ ॥ कटुम्ल-  
गुरुतीक्ष्णोष्णमापनिष्पावमैथुनम् ॥ मद्य-  
वल्लूरपिण्याकमत्स्यशाकविरूढजम् ॥  
॥ १४५ ॥ विदाहीन्यन्नपानानि न हिता-  
न्यक्षिरोगिणे ॥ सेक आश्च्योतनं पिण्डी  
विडालस्तर्पणं तथा ॥ पुटपाकोऽञ्जनं  
चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १४६ ॥

जालिचावल, मूग, जौ, जागल प्रदेशके पशुओंका मांस,  
पक्षियोंका मांस, विशेष, करके बथुआ, चोलाई, परवल,  
ज्योरे, करेले और नवीन बैंगन इनको धीमें पकाकर  
पानसे नेत्रोंमें रित्तारकर है । मधुर तथा कटुवा रसकी  
नेत्रोंमें दिनकारक है ।

तीने पदार्थ, नष्ट पदार्थ, भारी पदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ,  
गम रसार्थ, उदट, लोभिया, मैथुन, मदिरा, सुखा हुआ  
गाम, पत्र, मद्यकी, जिनमें अक्षुर उत्पन्न होगये हैं ऐसे  
भाज्य, और माह्वारक अन्न पान यह सब नेत्ररोगियोंको  
दित्तारक नहीं ।

नेत्र ( आँखों की नलीके धारें जाननी ), आश्च्योतन  
( नेत्रोंमें पानीसे पानीसे नेत्रोंमें पानी ), मिटी ( छुपड़ी

आदि बाँधना ), विडाल ( लेपादि करना ), तर्पण  
( तृप्तिकरनेके लिये आँखमें दूध आदिको भरना ), पुटपाक  
( पकाया हुआ रस नेत्रोंमें डालना ) और अञ्जन इन  
सब उपचारोंसे नेत्ररोगकी चिकित्सा करती चा-  
हिये ॥ १४३-१४६ ॥

अथ सेकविधिः ।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने  
हितः ॥ मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्च-  
तुरंगुलः ॥ १४७ ॥ स चापि स्नेहनो  
वाते पित्ते रक्ते च रोपणः ॥ लेखनस्तु  
कफे कार्यस्तस्य मात्राभिधीयते ॥ १४८ ॥  
षड्भिर्वाचां शतैः स्नेहे चतुर्भिस्तैस्तु  
रोपणे ॥ तैस्त्रिभिर्लोचने कार्यः सेको  
नेत्रप्रसादने ॥ १४९ ॥ निमेषोन्मेषणं  
पुंसामंगुल्याच्छोटिकाथवा ॥ गुर्वक्षरोच्चा-  
रणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ १५० ॥  
छोटिका चुटकी इति लोके ॥

सेकस्तु दिवसे कार्यों रात्रौ चात्यन्तिके  
गदे ॥ एरण्डदलमूलत्वक्कृतमाजं पयो  
हितम् ॥ सुखोष्णं नेत्रयोः सिक्तं वाता-  
भिष्यन्दनाशनम् ॥ १५१ ॥ पथ्याक्षाम-  
लखाखसवलकलकल्केन सूक्ष्मवस्त्रेण ॥  
कृत्वा पोटलिकां तामहिफेनोत्थद्रवेण  
संयुक्ताम् ॥ १५२ ॥ निदधीत लोचने  
स्यात्सर्वाभिष्यन्दसंक्षयः शीघ्रम् ॥ योगो-  
ऽयमपिभिरुक्तो जगदुपकाराय कारु-  
णिकैः ॥ १५३ ॥ भुक्त्वा पाणितलं  
वृष्ट्वा चतुषोर्यदि दीयते ॥ अचिरेणैव  
तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १५४ ॥  
स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चक्षुष्यमनिलाप-  
हम् ॥ आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिच-  
लावहम् ॥ १५५ ॥ त्रिफलायाः कषायस्तु  
धावनान्नेत्ररोगजित् ॥ कवलान्मुखरोगघ्नः  
पानतः कामलापहः ॥ १५६ ॥

रोगीके नेत्रोंको बंद कराकर उनपर चार अंगुल ऊँचेसे महीन महीन धारें डाले, यह सेक नेत्ररोगियोंके लिये हितकारक है । वातसम्बन्धी रोग होय तो घी आदि स्नेह पदार्थोंकी धारें डाले, यह स्नेहन सेक कहाजाता है । पित्त या रुधिरकी पीडा होय तो हरड आदिके रसकी धारें डाले, यह रोपण सेक कहाजाता है । कफकी पीडा होय तो मलको उखाडनेवाली सोठ आदिके रसकी धारें डाले, यह लेखनसेक कहाजाता है । अब इन सेकोंकी मात्रा कहतेहैं । स्नेहनसेक करना होय तो छैंसो मात्रातक करना चाहिये । रोपण सेक करना होय तो चारसौ मात्रातक करना चाहिये । लेखन सेक करना होय तो तीनसौ मात्रातक करना चाहिये इस प्रकार करनेसे नेत्र स्वच्छ और निर्मल होजातेहैं । मनुष्य जितनी देरमें आँखको मीचकर खोलताहै उतना समय अथवा जितनी देरमें अंगुलीसे चुटकी बेजाईजाती है उतना समय अथवा एक गुरु अक्षर बोलनेमें जितना समय लगताहै उतने समयको एक मात्रा कहतेहैं । सेक दिनमें ही करना चाहिये किन्तु महादुःखदायक रोग होय तो रात्रिमें भी करना चाहिये । अंडके पत्ते, अडकी जड़ और अंडकी छाल इनके कल्कके साथ पकाया हुआ बकरीका दूध मंशोष्ण उक्त समयमें नेत्रोंके भीतर डाले, यह सेक हितकारी है और वाताभिष्यन्दको दूर करेहै । -

हरड, बहेडा, आमला, और पोस्तके डोडे इनका कल्क बनाकर उसमें अफीमका रस डालकर गरीक चक्ककी पोटली बनाकर नेत्रके ऊपर रखे तो सर्व प्रकारके अभिष्यन्द तत्काल नष्ट होजातेहैं । जगदुपकारार्थ दयालु मुनियोंने यह प्रयोग कहा है । भोजन करनेके पश्चात् दोनो गीले हाथोंकी हथेली विसकर नेत्रके ऊपर लगानेसे हाथोंका जल तत्काल तिमिररोगको नाश करताहै ।

काले तिलोंको पीस गिरसे मलकर स्नान करनेसे नेत्र उत्तम होजातेहैं और वायुकी पीडा शमन होजातीहै । नित्य आमलोंको मलकर स्नान करनेसे दृष्टिशक्ति बढ़तीहै ।

त्रिफलेका क्वाथ बनाकर उससे नेत्रोंको धोनेमें नेत्ररोग दूर होजातेहैं । त्रिफलेके कटुकका कवल धारण करनेसे मुखरोग नष्ट होतेहैं और त्रिफलेका क्वाथ पीनेसे कामला नष्ट होजातीहै ॥ १४७-१५६ ॥

### अथाश्चोतनविधिः ।

क्वाथक्षीरद्रवस्नेहविन्दूनां यत्तु पातनम् ॥  
द्व्यंगुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हि  
तत् ॥ १५७ ॥ विन्दवोऽष्टौ लेखनेषु  
रोपणे दश विन्दवः ॥ स्नेहने द्वादश  
प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥ १५८ ॥  
उष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष  
निश्चयः ॥ वाते तित्तं तथा स्निग्धं पित्ते  
मधुरशीतलम् ॥ १५९ ॥ कफे तित्तो-  
ष्णरूक्षं स्यात्क्रमादाश्च्योतनं हितम् ॥  
आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छ-  
तोन्मिता ॥ १६० ॥ ततःपरं लोचनाभ्यां  
भेषजाय त्रयो मताः ॥ आश्च्योतनं न  
कर्तव्यं निशायां केनचित्कचित् ॥ १६१ ॥  
विल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्पेरण्डशिथुभिः ॥  
क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्द-  
नाशनः ॥ त्रिफलाश्च्योतनं नेत्रे सर्वा-  
भिष्यन्दनाशनम् ॥ १६२ ॥

रोगीके नेत्रोंको दो अंगुलिओसे उघाडकर उनमें क्वाथके वा सहतके अथवा दूध घी आदिके विन्दु डाले, इसको आश्चोतन कहतेहैं और यह नेत्रोंको हितकारी है । मलके उखाडनेकी क्रिया करनी होय तो आठ विन्दु डालने चाहिये, रोपण क्रिया करनी होय तो दश विन्दु डालने चाहिये, और स्नेहन क्रिया करनी होय तो बारह विन्दु डालने चाहिये । शीत काल होय तो कुछेक गरम करके बूदे डालनी चाहिये और उष्णकाल होय तो शीतल विन्दु डालने चाहिये यह सर्वत्र निश्चय है ।

वायुकी पीडा होय तो कडवे तथा स्नेहवाले विन्दु हितकारी है । पित्तकी पीडा होय तो मधुर और शीतल विन्दु हितकारी हैं और जो कफकी पीडा होय तो तीक्ष्ण, गरम तथा रुक्ष विन्दु हितकारक है । सब आश्चोतनोंकी मात्रा जितनी देरमें सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण होय उतनी देरतक नमझना । किसी वैद्यको कभी रात्रिके समय

किसीप्रकारके नेत्रके दुखनेपर अश्रुतन कर्म नहीं करना चाहिये ।

त्रैलोक्य पञ्चमूल, कटेरी, अंड और सैंजिना इनका काथ बनाकर सुहाती सुहाती वृद्ध नेत्रोंमें डालनेसे वाताभिष्यन्द नाश होता है ।

त्रिफलेके काथके विन्दु डालनेसे सबप्रकारके अभिष्यन्द दूर होजाते हैं ॥ १५७-१६२ ॥

### अथ पिंडीविधिः ।

उक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी च कोलमात्रया ॥ वस्त्रखण्डेन संवद्धा नेत्रेऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ १६३ ॥ स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्ते सा शीतला मता ॥ रुक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥ १६४ ॥ एरण्डपत्रमूलत्वङ् निर्मिता वातनाशिनी ॥ धात्रीविरचिता पित्ते शिथुपत्रकृता कफे ॥ १६५ ॥ निम्बपत्रकृता पिण्डी पित्तश्लेष्महरी भवेत् ॥ शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा ॥ १६६ ॥ धार्या नेत्रेऽनिलकफे शोथकण्डूव्यथाहरी ॥ त्रिफलापिण्डिका नेत्रे वातपित्तकफापहा ॥ १६७ ॥ पथ्याक्षामलखाखसवल्कलकल्कोऽहिफेनजलयुक्तः ॥ तेन विरचिता पिण्डी शमयति सकलानभिष्यन्दान् ॥ १६८ ॥

योग्य औषधियोंका कल्क बनाकर उसकी कचलकी समान ठिकिया बनाकर नेत्रपर रखकर वस्त्रकी पट्टीसे बाँधे तो अभिष्यन्दका नाश होता है ।

वायुका अभिष्यन्द होय तो त्रिग्व तथा उष्ण औषधियोंकी ठिकिया बाँधनी चाहिये । पित्तकी पीडा होय तो शीतल औषधियोंकी ठिकिया बाँधनी चाहिये और कफकी पीडा होय तो रुक्ष तथा उष्ण औषधियोंकी ठिकिया बाँधनी चाहिये, येग्य विधान विज्ञाने कहा है । अङ्के पत्ते,

अङ्की जड और अङ्की छाल इनकी पिंडी वायुकी पीडाको शमन करेहै । आमलोकी पिंडी पित्तकी पीडाको शमन करेहै । और सैंजिनेके पत्तोंकी ठिकिया कफकी पीडाको शमन करेहै ।

नीमके पत्तोंकी ठिकिया बाँधनेसे पित्त तथा कफका नाश होता है ।

सोंठ तथा नीमके पत्ते इनको पीसकर उसमें कुछेक सैधानिमक डालकर उसकी कुछ कुछ गरम पिंडी बनाकर बाँधे तो वायु तथा कफकी पीडा शमन होती है और मृजन, खुजली तथा अन्य व्यथा इनका भी नाश होता है ।

त्रिफलेकी पिंडी बनाकर नेत्रपर बाँधनेसे वात, पित्त, तथा कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई नेत्रकी पिडा, शमन होती है ।

हरड, बहेडा, आमला और पोस्तके डोंडे इनका कल्क बनाकर उसमें अफीमका रस डालकर पिंडी बाँधनेसे सर्व प्रकारका अभिष्यन्द नष्ट होजाता है ॥ १६३-१६८ ॥

### अथ बिडालकविधिः ।

बिडालको बहिलेंपो नेत्रे पक्षमविवर्जिते ॥ तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखालेपविधानवत् ॥ १६९ ॥ अंगुलस्य चतुर्थांशो मुखलेपः कनिष्ठकः ॥ मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोऽर्द्धांगुलो भवेत् ॥ १७० ॥ स्थितिकालोऽपि तस्योक्तो यावत्कल्को न शुष्यति ॥ शुष्कस्तु गुणहीनः स्यात्तथा दूषयति त्वचम् ॥ १७१ ॥ यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वाताक्षर्यैः समांशकैः ॥ जलपिष्टैर्वहिलेंपः सर्वनेत्रामयापहः ॥ १७२ ॥ ताक्षर्य रसाञ्जनम् ॥

रसाञ्जनेन वा लेपः- पथ्याबिल्वदलैरपि ॥ वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकः ॥ १७३ ॥

पलकके बालोंको बचाकर नेत्रके बाहरके भागपर लेपकरना यह बिडालक कहाजाता है । मुखपर लेप करनेकी जो मात्रा कही है वही मात्रा बिडालककी भी करनी चाहिये । मुखपर लेप करनेकी मात्रा दसप्रकार है अंगुलका चौथाई भाग ऊँचा लेपकरना कनिष्ठमात्रा है

अगुलका तिहाई भाग ऊँचा लेपकरना मध्यम मात्रा है और आधे अगुल ऊँचा लेपकरना उत्तम मात्रा है, जब तक कल्क सूखे नहीं तबतक यह लेप करना चाहिये, सूखने पर लेप गुणहीन होजाताहै और त्वचाको भी खराब करताहै ।

मुलेठी, पीलागुरु, सैधानिमक, दासहलदी और रसौत ह सब समान भाग लेकर जलमे पीसकर इस कल्क को नेत्रके बाहर लेपकरनेसे नेत्रके समस्तरोग नष्ट होताहै ।

रसौत अथवा हरड तथा बेलके पत्ते अथवा वच, लदी तथा सोंठ इनका अथवा सोठ और पीलागुरु इनका लेपकरनेसे नेत्रके रोग नष्ट होजातेहैं १६९-१७३

### अथ तर्पणविधिः ।

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः ॥  
आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ १७४ ॥ समौ दृढावसन्धानौ कर्तव्यौ  
नेत्रकोशयोः ॥ पूरयेद् घृतमण्डेन विली-  
नेन सुखोदकैः ॥ १७५ ॥ सर्पिषा शत-  
धौतेन क्षीरजेन घृतेन वा ॥ निमग्नान्य-  
क्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ १७६ ॥  
पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥  
भिषग्भिरेष कथितः पुराणैस्तर्पणो विधिः  
॥ १७७ ॥ यद्रूक्षं परिशुष्कञ्च नेत्रं कुटि-  
लमाविलम् ॥ शीर्णं पक्ष्मशिरोत्पातकृ-  
च्छोन्मीलनसंयुतम् ॥ १७८ ॥ तिमि-  
रार्जुनशुष्काद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥  
शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं पवनपर्ययैः ॥  
॥ १७९ ॥ तत्रेवं तर्पयेत्सम्यङ् नेत्ररोग-  
विशारदः ॥ तर्पणं धारयेद्दुर्मरोगे वाचां  
शतं बुधः ॥ १८० ॥ स्वस्थे कफे सन्धि-  
रोगे वाचां पञ्चशतानि च ॥ षट्शतानि  
कफे कृष्णरोगे सप्तशतानि हि ॥ १८१ ॥  
दृष्टिगे च शतान्यष्टावधिमन्थे सहस्र-  
कम् ॥ सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि  
तर्पणम् ॥ १८२ ॥ तर्पणेनागतस्नेहं

स्त्रावयित्वाक्षि शोषयेत् ॥ स्विन्नेन यव-  
पिष्टेन स्नेहवीर्यैरितं ततः ॥ १८३ ॥  
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् ॥  
एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं वापि तर्प-  
येत् ॥ १८४ ॥ तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि  
नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् ॥ सुखसुप्तावबोधत्वं  
वैशद्यं दृष्टिपाटवम् ॥ निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ १८५ ॥

क्रियालाघवं नेत्रस्य क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुताम् ॥

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत् ॥  
वर्षतोदयुतं नेत्रमतिर्तर्पितमादिशेत् ॥  
॥ १८६ ॥ आस्त्रावशोफरोगाढ्यमुपदे-  
हसमाकुलम् ॥ रूक्षमस्त्रावि परुषं नेत्रं  
स्याद्धीनतर्पितम् ॥ १८७ ॥ अनयो-  
दोषबाहुल्यात्प्रयत्नेन चिकित्सिते ॥  
रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामनयोः स्यात्प्रति-  
क्रिया ॥ १८८ ॥

अनयोरतितर्पितहीनतर्पितयोः ॥

दुर्दिनान्युष्णशीतेषु चिंतायां सम्भ्रमेषु  
च ॥ अशान्तोपद्रवे वाक्षिण तर्पणं न  
प्रशस्यते ॥ १८९ ॥

सम्भ्रमोऽत्र भयम् ॥

वायु, धूम और धूलरहित घरमे रोगीको चित्त लिटा कर सनेहुए उडडके चूनका दोनो नेत्रोंके चारों ओर दृढ और गोल मडल बनावे फिर रोगीके दोनों नेत्रोंको बंद करके पतला घी अथवा मंड अथवा गरम जल अथवा जलसे सौ बार धुला हुआ घी अथवा दूधमेंसे निकाला हुआ घी जबतक पलकके बाल न झूँवें तबतक भरे, भर जानेके पश्चात् धीरे धीरे नेत्रोंको खोले यह तर्पण विधि प्राचीन वैद्योंने कही है । नेत्र रुखे होगये हों, सुख गये हों, कुटिल होगये हों, गढले होगये हों, पलकके बाल गिर गये हों, शिरोत्पात, आँखें कठिनतासे थोड़ी खुलती हों, तिमिर, अर्जुन, शुक, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, शुष्काक्षिपाक, सूजन और वातविपर्यय हुआ होय, तो नेत्र रोगोंको जाननेवाले वैद्य नेत्रोंको अच्छे प्रकारसे तर्पण



करे । पलकका रोग होय तो सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारणके समयतक नेत्रपर तर्पण करे । स्वस्थतामें, कफमें तथा सधियोंके रोगमें पाचसी गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेके समयतक तर्पणको रहने देवे । पित्तकी पीडा होय तो छै सौ गुन अक्षरोंके उच्चारण करनेके समयतक तर्पण रहने देवे । काले भागमें रोग होय तो सातसी गुरु अक्षरोंके उच्चारण करने पर्यंत तर्पण करे । दृष्टिका रोग होय तो आठ सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेतक तर्पण ग्ने, अधिमध्य होय तो हजार गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेतक और वातसम्बन्धी रोग होय तो भी हजार गुरु अक्षरोंके उच्चारणतक तर्पण रहने देवे । तर्पण करनेके पश्चात् नेत्रोंमें भरी हुई चिकनाईको बाहर करके नेत्रोंको शुद्ध करे और सेके हुए जीके चूनसे आँखोंको साफ करे पश्चात् धीके योगसे वृद्धिको प्राप्त हुए कफको यथायोग्य धूमपान कराकर दूर करे । एकदिन, पाँचदिन अथवा सप्तदिनतक तर्पणकी क्रिया करे । तर्पण बराबर होगया होय तो निद्रा सुष्वसे आनिलगतीहै, सुखसे जागताहै, नेत्रोंमें स्पच्छता, नेत्रोंकी शक्तिका बढना, सुख होताहै, रोगकी शांति होतीहै, और नेत्रोंको खोलने बढ करनेमें हलकायन होताहै ये लक्षण होंयें तो जानना कि, तर्पण अच्छे प्रकारसे होगया । जो तर्पणका अतियोग हो तो नेत्र भारी होतेहैं, गडले रहतेहैं, अत्यन्त चिपकनेवाले वा गीले आगु भर भर आतेहैं, खुजली, कीचड, आतेहैं और जैसे भीतरको घुस जायें तथा सुई चुभोने सरींगी पीडा होतीहै, जो नेत्रोंका तर्पण अच्छे प्रकारसे न हो अर्थात् कम होय तो नेत्रोंमेंसे पानी गिरताहै, सूजन होतीहै, पीडा होतीहै, कीचड, अधिक आतीहै, रुधिरता होतीहै और कठिनता होती है, जो तर्पणका अतियोग अथवा हीनयोग हुआ होय तो विशेष गडबड होतीहै इस कारण दृक्की चिकित्सा करनेमें अधिक विचार करना चाहिये । जो अनियोग हुआ होय तो रुधिर उपचार करने चाहिये और जो हीनयोग होय तो स्निग्ध उपचार करने चाहिये । बाढलेखे आच्छादित दिनमें, अत्यन्त गर्मीके समयमें, अत्यन्त शीतके समयमें, चिता, अम और द्रव्योंके श्रांत होनेसे पहिले नेत्रोंको तर्पण नहीं करना चाहिये ॥ १७४-१८९ ॥

अथ पुटपाकविधिः ।

हे चित्तं त्रिगुणमांसस्य परं द्रव्यपलं

मतम् ॥ द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ १९० ॥ तदेकत्र समालोडय पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकविधानेन तत्पक्त्वा तद्रसं बुधः ॥ १९१ ॥ तर्पणोक्तेन विधिना यथावद्विनियोजयेत् ॥ दृष्टिमध्ये निषेक्तव्यो नित्यमुत्तानशायिनः ॥ १९२ ॥ तेजांस्यनिलमाकाशमातपं भास्करस्य च ॥ नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ १९३ ॥

उत्तम चिकना मांस आठ तोले लेकर उसमें अन्य औषधि चार तोले और द्रवपदार्थ सोलह तोलेभर डालकर सबको एकत्र पीसे, पश्चात् इन सबका एक गोला बनाकर उसको पत्तोंसे अच्छे प्रकार बांधकर पुटपाककी रीतिसे अग्निमें पकावे, फिर उसमेंसे रस निचोडकर उस रसको तर्पणकी रीत्यनुसार सम्पूर्ण रीतिसे नेत्रमें डाले । रोगीको चित्त सुलाकर उसके नेत्रमें वह रस नित्य डाले । नेत्रोंका तर्पण करनेके पश्चात् अथवा पुटपाककी विधि करनेके पश्चात् रोगीको तेजस्वी पदार्थ, पवनका संचार, आकाश और सूर्यकी धून् न दिखावे ॥ १९०-१९३ ॥

अथाञ्जनविधिः ।

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ १९४ ॥ वटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि हि ॥ कुर्याच्छुलाकयाङ्गुल्या हीनानि स्युर्यथोत्तरम् ॥ १९५ ॥ स्नेहनं रोपणं चापि लेखनं तत्रिधा पृथक् ॥ मधुरं स्नेहसम्पन्नमञ्जनं स्वेदनं मतम् ॥ १९६ ॥

तत्रिविधं पृथगिति तद्रटिकारसचूर्णरूपं पृथक् प्रत्येकं त्रिधा स्नेहनं रोपणं लेखनं चेति ॥

कपायतिकरसयुक्सस्नेहं रोपणं स्मृतम् ॥ अञ्जनं क्षारतिकाभ्ररसैर्लेखनमुच्यते ॥ १९७ ॥ हरेणुमात्रां कर्वाति

वटीं तीक्ष्णाञ्जने भिषक् ॥ प्रमाणं मध्यमे  
सार्द्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ १९८ ॥  
रसक्रिया तूतमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता  
मता ॥ मध्यमा द्विविडङ्गा सा हीना  
त्वेकविडङ्गिका ॥ १९९ ॥ शलाकाः  
स्नेहने चूर्णे चतस्रः प्रादुरञ्जने ॥ रोपणे  
तासु तिस्रः स्युस्ते उभे लेखने स्मृते २००  
मुखयोः कुञ्चिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टांगुलो-  
न्मिता ॥ अश्मजा धातुजा वा स्यात्क-  
लायपरिमण्डला ॥ २०१ ॥

अग्रे कलायवत्परिवर्तुला ॥

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने स्मृता ॥  
ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने  
मता ॥ अंगुली तु मृदुत्वेन रोपणे  
कथिता बुधैः ॥ २०२ ॥

दोष पकनेके पश्चात् नेत्रोमे योग्य अंजन आजना चाहिये । जो पदार्थ नेत्रोंमें आंजाजाता है वह 'अजन', कहा जाता है । गोली, रस और चूर्णरूप ऐसे अञ्जनके तीन भेद हैं । अञ्जनको सलाई अथवा अगुलीसे आजना चाहिये । गोलीरूप अजनसे रसरूप अंजन निर्वल है और रसरूप अजनसे चूर्णरूप अंजन निर्वल है । इस प्रत्येक अजनके स्नेहन, रोपण और लेखन इन नामोंसे तीन भेद हैं । क्षार, कड़वे और खट्टे रसवाला जो अजन होय उसको लेखन कहते हैं । कसैला, तथा कड़वे रसवाला और स्नेहयुक्त जो अञ्जन होय उसको रोपण अञ्जन कहते हैं । मधुर रसयुक्त और स्नेहयुक्त जो अञ्जन होह वह स्नेहन अञ्जन कहा जाता है । अञ्जन तीक्ष्ण होय तो उसकी मटरकी समान गोली करनी चाहिये । अञ्जन मध्यम अर्थात् तीक्ष्ण न होय और कोमल भी न होय तो उसकी डेढ १॥ मटरकी बराबर गोली बनानी चाहिये और अञ्जन कोमल होय तो उसकी दो मटरकी बराबर गोली बनानी चाहिये । आंखमें यदि रसांजन अर्थात् रसरूप अञ्जन डालना होय तो तीन वायविडगकी बराबर डालना यह उत्तम है । दो वायविडगकी बराबर डालना यह मध्यम है । और एक वायविडगकी बराबर डालना यह कनिष्ठ है ।

चूर्णरूप अञ्जन जो स्नेहन होय तो उसकी चारसलाई आंखमें लगानी चाहिये । रोपण होय तो उसकी तीन सलाई आंखमें डालनी चाहिये । और जो लेखन होय तो उसकी दो सलाई नेत्रोमे लगानी चाहिये । आंजनेकी सलाई दोनों ओरके मुखोंसे सक्कुची हुई, चिकनी, आठ अंगुल लम्बी और उसके दोनों मुख मटरकी समान गोल और वह पत्थर अथवा धातुकी होनी चाहिये । स्नेहन अञ्जन आंजना होय तो सोने अथवा चादीकी सलाई होनी चाहिये । लेखन अञ्जन आंजना होय तो तौबेकी, लोहेकी, अथवा पत्थरकी सलाई होनी चाहिये और रोपण अञ्जन आंजना होय तो कोमल होनेके कारण उसके आंजनेके लिये अगुलीही ठीक है ॥ १९४-२०२ ॥

अथांजनस्य दृष्टिप्रसादनी

शलाका ।

त्रिफलाभृङ्गगुण्ठीनां रसैः शुद्धश्च सर्पिषा ॥  
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सित्तो नागः प्रता-  
पितः ॥ तच्छलाका हरत्येव सकलान्नेत्र-  
जान्गदान् ॥ २०३ ॥

शुद्धसीसेको वारंवार तपा तपाकर हरड, बहेडा और आमलेके रसमें, सोठके रसमें, घीमें, भागरेके रसमें, गोमूत्रमें, सहतमें और बकरीके दूधमें बुझा बुझाकर नेत्रोंमें लगावे तो नेत्रसम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं । यह सलाई 'दृष्टिप्रसादनी' इस नामसे कहीजाती है ॥ २०३ ॥

अथांजनकरणविधिः ।

कृष्णभागादधः कुर्याद्यावन्नयनमञ्जनम् ॥  
हेमन्ते शिशिरे चापि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते  
॥ २०४ ॥ पूर्वाह्ने वापराह्ने वा ग्रीष्मे  
शरदि चेप्यते ॥ वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे  
वसन्ते तु सदैव हि ॥ २०५ ॥ प्रातः  
सायन्तु तत्कुर्यान्न च कुर्यात्सदैव हि ॥  
श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमध्ये नवज्वरे ॥  
अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रश-  
स्यते ॥ २०६ ॥

काले भागके नीचे आंखके कोनेनक अञ्जन आंजे । हेमन्त ऋतुमें और शिशिर ऋतुमें न-याह्नेके समय अञ्जन

ऑजना चाहिये । ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें पूर्वाह्नके समय अथवा अस्ताह्नके समय अञ्जन ऑजना चाहिये । वर्षा ऋतुमें बादलोंके न होनेपर और बहुत गरमी न होय उक्त समय अञ्जन ऑजना चाहिये और वसन्त ऋतुमें सदैव अञ्जन करना चाहिये अथवा प्रातः और सन्ध्या दोनों समय अञ्जन ऑजना उचित है किन्तु निरन्तर न ऑजे ।

यथाहुजा, बहुत रोया हो, भयभीत, मद्यपान किये हो, नवीन ज्वरवात्या, अजीर्णरोगी, और जिसके मल मूत्रादिके वेगका अवरोध होगया होय उनको अञ्जन लगाना नहीं चाहिये ॥ २०४-२०६ ॥

अथ स्नेहनी वटिका ।

पथ्याक्षधानीवीजानि एकद्वित्रिगुणानि  
च ॥ पिष्ट्वा मधुना वटीं कुर्यादञ्जनं द्विह-  
रेणुकम् ॥ नेत्रसाधं हरत्याशु वातरक्त-  
रुजं तथा ॥ २०७ ॥

हरट, हरडसे दुगुने बहेडे और बहेडेसे तिगुने आमले इन सबको लेकर पानीमें पीसकर गोलिया बनालेवे । इन गोलियोंमेंसे दो मटरकी बराबर नेत्रोंमें आज्ञे तो नेत्रोंका त्वाव और वायु तथा दधिरकी पीडा शान्त होजातीहै ॥ २०७ ॥

अथ रोपणी वटी ।

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालतीनिम्बपल्लवाः ॥  
गोशकुट्टससंयुक्ता वटी नक्तान्धनाशिनी ॥  
एतस्याश्वाञ्जनं मात्रा प्रोक्ता सार्द्धहरे-  
णुका ॥ २०८ ॥

रसीन, हल्दी, दाबहल्दी, मालतीके पत्ते और नीमके पत्ते इनको गायकें गोंधरके रसमें पीसकर गोली बनावे । इनमेंसे छेद मटरकी समान नेत्रोंमें ऑजे । इन गोलियों को ऑजनेमें रात्रिमें नहीं दीगयना अर्थात् रतौधा नष्ट होजा-  
वे ॥ २०८ ॥

अथ लेखनी चन्द्रोदया वटिका ।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनः-  
शिला ॥ पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति  
समांशकम् ॥ २०९ ॥ छागक्षीरेण संपि-  
प्य वटी कुर्याद्यवोन्मिताम् ॥ हरेणुमात्रां

संवृष्य जलेनाञ्जनमाचरेत् ॥ २१० ॥  
तिमिरं मांसवृद्धिश्च काचं पटलमर्बुदम् ॥  
रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वटी चन्द्रोदया  
जयेत् ॥ २११ ॥

जखकी नाभि, बहेडेकी मींग, हरड, मैनाशिल, पीपल, कालीमिरच, कूठ और वच इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर जौकी समान लव्ही गोली बनावे । इन गोलियोंमेंसे एक मटरकी समान जलमें घिसकर नेत्रोंमें ऑजे । यह चन्द्रोदया नामक गोली तिमिर, मांसवृद्धि, काँच, पटल, पलकके भीतरकी गाठ, रतौधा और एक वर्षके फूलेको भी नष्ट करतीहै ॥ २०९-२११ ॥

अथ पुष्पहरावर्तिः ।

पलाशपुष्पस्वरसैर्वहुशः परिभावितम् ॥  
करञ्जबीजं तद्वर्तिर्दृष्टेः पुष्पं विनाश-  
येत् ॥ २१२ ॥

करजके बीजको अनेक बार ढाकके फूलेके रसमें भावना देकर पीसकरके बत्ती बनावे । इस बत्तीको आँखोंमें ऑजनेसे नेत्रोंकी फूली नष्ट हो जातीहै ॥ २१२ ॥

अथ स्नेहनी रसक्रिया ।

कतकस्य फलं वृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत् ॥  
ईषत्कर्पूरसहितं तत्स्यान्नेत्रप्रसादनम् २१३  
निर्मलीके फलको सहतमें घिसकर उसमें कुछेक भीम-  
सेनी कपूर डालकर नेत्रोंमें ऑजे तो नेत्र स्वच्छ निर्मल  
होजातेहै ॥ २१३ ॥

अथ रोपणी रसक्रिया ।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला ॥  
समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचं तथा ॥  
॥ २१४ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं  
प्रक्लिन्नवर्त्मनि ॥ अञ्जनं क्लृदकण्डूघ्नं पक्ष्म-  
णाश्च प्ररोहणम् ॥ २१५ ॥ दुग्धेन  
कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रसाधश्च सर्पिषा ॥ पुष्पं  
तैलेन तिमिरं काञ्चिकेन निशान्ध-  
ताम् ॥ २१६ ॥ पुनर्नवा हरत्याशु  
भास्करस्तिमिरं यथा ॥ बच्चूलदल-  
निष्कायो लेहीभूतस्तदञ्जनात् ॥ नेत्रसाधो  
व्रजच्छोषं मधुयुक्तात्र संशयः ॥ २१७ ॥

रसौत, राल, चमेलीके फूल, मैन्शिल, समुद्रफेन, सै-  
धानिमक, पीला गेरू, और काली मिरच इन सबको समान  
भाग लेकर सहतमे पीसकर नेत्रोमे आज्ञे तो प्रक्लिन्न  
वर्त्मका क्लेद तथा खुजली यह सब नष्ट होजातेहैं और  
पलकके बाल जमआतेहैं ।

पुनर्नवेको तेलमें पीसकर आज्ञेसे तिमिर नष्ट होजाता-  
है । कौजीमें पीसकर आज्ञेसे रतौधा नष्ट होजाताहै ।  
जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको नष्ट करदेताहै उसीप्रकार  
पुनर्नवा (सॉठ-गदहपुरेना ) तिमिर तथा रतौधको नष्ट  
करेहै ।

बबूरके पत्तोंका काथ बनाकर उसको गाढा करलेवे  
फिर उसमे सहत डालकर आज्ञेसे नेत्रोका स्याव शुष्क  
होजाताहै ॥ २१४-२१७ ॥

अथ लेखनी रसक्रिया ।

चटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यकर्पूरजो रजः ॥  
क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति कुसुमं तु द्विमा-  
सिकम् ॥ २१८ ॥ क्षौद्राश्वलालासंवृष्टै-  
र्मरिचैर्नेत्रमञ्जनात् ॥ अतिनिद्रा शमं  
याति तमः सूर्योदयादिव ॥ २१९ ॥

भीमसेनी कपूरको वडके दूधमें पीसकर आज्ञेसे दो  
सहीनेका फूला तत्काल नष्ट होजाताहै ।

सहत और घोडेकी लार इनमे कालीमिरचको पीसकर  
अजन आज्ञेसे जिसप्रकार सूर्योदयसे अधकार नष्ट होजा-  
ताहै उसीप्रकार इससे अत्यत निद्राका आना दूर होजा-  
ताहै ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

अथ स्नेहनं चूर्णम् ।

अभितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेत्त्रिफला-  
रसैः ॥ सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सित्तं  
विचूर्णितम् ॥ २२० ॥ अञ्जयेत्तेन न-  
यने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम् ॥ सर्वानक्षि-  
विकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ॥ २२१ ॥

सफेद सुभेको अग्निसे तपा तपाकर सातवार त्रिफलेके  
रसमे और सातवार स्त्रीके दूधमे बुझावे । फिर इस सुभेका  
चूर्ण करके नित्य नेत्रमे आज्ञे तो नेत्रके सम्पूर्ण विकार  
नष्ट होजातेहैं, यह सुर्मा नेत्रोंको अत्यत हितकारी  
है ॥ २२० ॥ २२१ ॥

अथ रोपणं चूर्णम् ।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य  
वारिणा ॥ गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चू-  
र्णमधोगतम् ॥ २२२ ॥ शुष्कञ्च तज्जलं  
सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत् ॥ विचूर्ण्य भा-  
वयेत्सम्यक्त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ २२३ ॥  
कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत् ॥  
अञ्जयेन्नयने तेन नेत्राखिलगदच्छिदः ॥ २२४ ॥

पत्थरके खरलमें खपरियाको पीसकर जलमे अच्छे प्रका-  
रसे भिजोरकवे फिर उसके जलको नितार करके दूसरे  
पात्रमें कर लेवे और खपरियाके मलको जो बच रहे उसको  
रोकदेवे पश्चात् उस नितरे हुए जलको सुखालेवे तो पप-  
डीकी समान जम जायगी उस पपडीको पीसकर त्रिफलेके  
रसकी तीन भावना देवे और उसमें दशांश भीमसेनी  
कपूर-मिलावे इस चूर्णको नेत्रोमे आज्ञेसे सर्वप्रकारके  
नेत्ररोग नष्ट होजातेहैं ॥ २२२-२२४ ॥

अथ लेखनं चूर्णम् ।

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचशङ्खचन्दनसैन्धवैः ॥  
चूर्णितैरञ्जनं प्रोक्तं पुष्पादीनां निकृन्त-  
नम् ॥ २२५ ॥

सुरगेके अडेका वक्कल, मैन्शिल, काच, चन्दन और  
सधानिमक इनका चूर्ण बनाकर नित्य नेत्रोंमे आज्ञेसे  
फूलाआदि सब नष्ट होजातेहैं ॥ २२५ ॥

अथ मुक्तादिमहांजनम् ।

मुक्ताकर्पूरकाचागुरुमरिचकणासैन्धवं  
चैलवालं शुष्ठीकंकोलकांस्यत्रपुरजनि-  
शिलाशंखनाभ्यभ्रतुत्थम् ॥ दक्षाण्डत्वक्च  
साक्षंक्षतजमथ शिवा क्लीतकं राजवर्त  
जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजकं  
स्यात्तथैव ॥ २२६ ॥ पूतीकनिम्बार्जुन-  
भद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् ॥  
प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं यत्नेन  
पिण्यान्मधुनातिसूक्ष्मम् ॥ २२७ ॥

भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्त-  
मात्रांपचिताश्च तेषाम् ॥ विधीयते शा-  
न्तिरवश्यमेव मुक्तादिनानेन महाञ्ज-  
नेन ॥ २२८ ॥

एलवालमेलवालुकनाम्ना प्रसिद्धम् ।  
कंकोलं सुगन्धद्रव्यं सुगन्धकोकिलेति प्र-  
सिद्धा तदलाभे जातीपुष्पं ग्राह्यम् । तस्या-  
प्यलाभे लवंगम् । कांस्यं तच्च मारितं ग्रा-  
ह्यम् । त्रपु रंगं तच्च मारितं ग्राह्यम् । शिला  
मनःशिला । अभ्रमभ्रकं तच्च मारितं ग्राह्यम् ।  
दक्षाण्डत्वक् दक्षः कुक्कुटः तस्याण्डत्वक् अक्षं  
विभीतकफलम् । क्षतजमत्र कुंकुमम् ।  
शिवा हरीतकी । क्लीतकं यष्टीमधु । राज-  
वर्त रावटी इति लोके । पृतीकः धोराकरञ्ज  
इति लोके । अञ्जनं सुरमा इति लोके ।  
भद्रमुस्तं नागरमुस्तम् । ताम्रं सारश्च मारितं  
ग्राह्यम् । रसगर्भं रसाञ्जनम् ॥

मोती, भीमसेनी कपूर, कचिया निमक, मिर्च, पीपल,  
सवानमरु, एलुआ, कंकोल, मिर्च ( अगर कंकोल मिर्च  
न मिले तो उसके अभावमें चमेलीके फूल लेने चाहिये ),  
कैमिनी भस्म, सीसेकी भस्म, हलदी, मैनाशिल, शखकी  
नाभि, अभ्रश्ची भस्म, शुद्ध नृतिया, सुरगेके अडेका  
वक्कड़, वहेटा, कैलर, हरड, मुलेटी, राजवर्त ( रावटी-  
पत्तर ), चमेलीके फूल, तुलसीके नवीन फूल, सफेदसै-  
जिनेके बीज, दुर्गेपिन करजके बीज, नीम, कोह, नागर  
मोथा, ताम्रकी भस्म, लोहेकी भस्म और रसीत ये प्र-  
त्येक पदार्थ छे छे रसीत लेकर गहनमें बारीक पीसकर  
अन्नमें तो दह मुक्तादिमहाजन, सिद्ध होताहै । इस  
अन्नमें नयन रोग ( अत्यन्त शुद्धिको प्राप्त हुए  
शरीर की ) वाश्य शान होजातेहैं ॥ २२६-२२८ ॥

अथ नयनशोणांजनम् ।

फणा मलवणापणा सहरसाञ्जना सा-  
जना सरिपतिकफः सिता सितपुनर्न-

वासम्भवा ॥ रजन्यरुणचन्दनं मधु च  
तुथपथ्या शिला हरिष्टदलशावरस्फ-  
टिकशङ्खनाभीन्दवः ॥ २२९ ॥ इमानि  
तु विचूर्णयेन्निबिडवाससा शोधयेत्तथा-  
यसि विमर्दयेत्समधु ताम्रखण्डेन तत् ॥  
इदं मुनिभिरीरितं नयनशोणनामाञ्जनं  
करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं व-  
लात् ॥ २३० ॥

लवणं सैन्धवम् । अञ्जनं सुरमा । स-  
रिपतिकफः समुद्रफेनम् । शिला मनः-  
शिला । सावरो लोधः । स्फटिकः [ फट्-  
किरी ] । इन्दुः कर्पूरः । तिमिरे नूतनकुसुमे  
नूतनपटले च ॥

पीपल, सैन्धानिमक, कालीभिरच, रसीत, सुरमा, समुद्र-  
फेन, मिथ्री, सुफेद पुनर्नवा, हलदी, लाल चदन, मुलेटी,  
हरड, मैनाशिल, नीमके पत्ते, लोध, फट्किरी, शखकी  
नाभि और भीमसेनी कपूर इन सबका एकत्र चूर्ण करके  
मोटे कपड़ेमें छानकर सहतमें मिलाकर ताबेके पैसेसे लो-  
हेके वासनमें खूब खरल करे तो यह 'नयनशोणाजन' सिद्ध  
होताहै । मुनियोंका कहाहुआ यह अजन बलात्कारसे नवीन  
तिमिरको, नवीन पटलको और फूलेको नष्ट करदेता-  
है ॥ २२९ ॥ २३० ॥

अथ चन्द्रोदया वटी ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि  
च ॥ विभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभि-  
र्मनःशिला ॥ २३१ ॥ सर्वभेतत्समं  
कृत्वा गव्यक्षीरेण पेपयेत् ॥ नाशयेत्ति-  
मिरं कण्डूपटलान्यर्बुदानि च ॥ २३२ ॥  
अपि त्रिवार्षिकं शुक्रं मासेनैकेन नाश-  
येत् ॥ अधिकानि च मांसानि रात्राव-  
न्धत्वमेव च ॥ २३३ ॥

हरट, वच, कुष्ठ, पीपल, कालीभिरच, वहेटेकी माग,  
शखकी नाभि, और मैनाशिल इन सब पदार्थोंको समान  
भाग लेकर गायके दूधमें बारीक पीसकर इसकी गोली  
बनाये तो यह 'चन्द्रोदया वटी' सिद्ध होताहै । यह गोली  
तीन वर्षके फूलेको भी एक महीनेमें दूर करदेतीहै ।



सर्वप्रकारकी मांसवृद्धिको और रतौधेको भी एक महीनेमें नष्ट करदेती है ॥ २३१-२३३ ॥

अथ चन्द्रप्रभा वर्तिः ।

रजनी निम्बपत्राणि पिप्पली मरि-  
चानि च ॥ विडंगं भद्रमुस्तं च सप्तमी  
त्वभया स्मृता ॥ २३४ ॥ अजामूत्रेण  
संपिष्य छायायां शोषयेद्दटीम् ॥ वारिणा  
तिमिरं हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टकम् ॥ २३५  
मधुना पटलं हन्ति नारीक्षीरेण पुष्पकम् ॥  
एषा चन्द्रप्रभा वर्तिः स्वयं रुद्रेण  
निर्मिता ॥ २३६ ॥

हलदी, नीमके पत्ते, पीपल, काली मिरच, वायविडंग,  
नागरमोथा, और हरड, इनको बकरीके मूत्रमे पीसकर  
वत्ती बनाकर छायामे सुखावे तो यह 'चन्द्रप्रभा' वर्ति  
सिद्ध होती है । साधात् सदाशिवकी बनाई हुई यह चन्द्र-  
प्रभा सहतमें घिसकर लगावे तो पटलको दूर करदेती है  
और स्त्रीके दूधमें घिसकर लगानेसे फूलेको नष्ट करे  
है ॥ २३४-२३६ ॥

अथ कणामरिचयोः प्रयोगः ।

कणा छागशकुन्मध्ये पका तद्रसपेषिता ॥  
अचिराद्वन्ति नक्तान्ध्यं तद्रसक्षौद्रमू-  
षणम् ॥ २३७ ॥

पीपलको बकरीकी मैगनमे पकाकर बकरीके रसमें  
पीसकर आंजै तो थोड़े ही समयमे रतौधा नष्ट होजाता-  
है ।

लाली मिर्चको सहतमें पीसकर आंजनेसे भी थोड़े ही  
समयमें रतौधा दूर होजाताहै ॥ २३७ ॥

अथ त्रिफलाद्यं घृतम् ।

त्रिफलाया रसं प्रस्थं प्रस्थं भृंगरसस्य  
च ॥ वृषस्य च रसं प्रस्थं शतावर्याश्च  
तत्समम् ॥ २३८ ॥ गुडूच्या आमल-  
क्याश्च रसं छागीपयस्तथा ॥ प्रस्थं प्रस्थं  
समाहृत्य सर्वैरेभिर्वृतं पचेत् ॥ २३९ ॥  
कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नील-  
मुत्पलम् ॥ मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी

निदिग्धिका ॥ २४० ॥ तत्साधु सिद्धं  
विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ उर्द्ध्वं  
पानमधः पानं मध्ये पानं च शस्यते ॥  
॥ २४१ ॥ यावन्तो नेत्ररोगाः स्युस्त-  
त्पानादपकर्षति ॥ सुरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते  
वा विस्त्रुते तथा ॥ २४२ ॥ नक्तान्ध्ये  
तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ॥ अभि-  
ष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥  
॥ २४३ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु दोषत्रय-  
कृतेष्वपि ॥ परं हितमिदं प्रोक्तं त्रिफ-  
लाद्यं महाघृतम् ॥ २४४ ॥

भृंगरसः भृंगराजरसः । क्षीरकाकोल्या अ-  
लाभे अश्वगन्धामूलं ग्राह्यम् । मधुपर्णी अत्र  
यष्टीमधु चक्षुष्यत्वात्तदलाभे सामान्यं यष्टी-  
मधु तुल्यगुणत्वात् ॥

त्रिफलेका रस ६४ तोले, भांगरेका रस ६४ तोले, अङ्ग-  
सेका रस ६४ तोले, सतावरका रस ६४ तोले, गिलोयका  
रस ६४ तोले, आमलौका रस ६४ तोले, और बकरीका  
दूध ६४ तोले लेवे । इन सबको एकत्र करके इनमें पीपल,  
मिश्री, दाख, हरड, बहेडा, आमला, नीले कमल, दुग्नी  
मुलेठी, असगंधकी जड़ और कटेरी इनका कल्क डालकर  
घीको पकावे । अच्छे प्रकारसे पकजानेपर इसको उतारकर  
उत्तम वासनमें भरकर रखदेवे । भोजन करनेसे पहिले,  
भोजन करनेके पश्चात् और भोजनके मध्यमें इस घृतको  
पान करे तो सर्वप्रकारके नेत्र रोग दूर होजाते हैं । यह  
त्रिफलाद्य घृत-रुधिरके बढनेपर, रुधिरके दूषित होने पर  
रुधिरके खाव होनेपर, रतौधेपर, तिमिरपर, काँच, नीलिका,  
पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, महादारुण पक्ष्मकोप  
और त्रिदोषसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण नेत्ररोगोंमें भी अत्यन्त  
हितकारी है ॥ २३८-२४४ ॥

अथ द्वितीयं त्रिफलाद्यघृतम् ।

शतमेकं हरितक्या द्विगुणश्च विभीत-  
कम् ॥ चतुर्गुणं त्वामलकं वृषमार्कवयोः  
समम् ॥ २४५ ॥ चतुर्गुणोदकं दत्त्वा  
शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ भागं चतुर्थं  
संरक्ष्य काथं तमवतारयेत् ॥ २४६ ॥  
शर्करा मधुकं द्राक्षा मधुयष्टी निदि-

ग्निका ॥ काकोली क्षीरकाकोली त्रिफला  
नागकेसरम् ॥ २४७ ॥ पिप्पली चन्द-  
नं सुस्तं त्रायमाणा तथोत्पलम् ॥ घृत-  
प्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैः शनैः पचेत् ॥  
॥ २४८ ॥ हन्यात्सतिमिरं काचं न-  
क्तान्धं शुक्रमेव च ॥ तथा स्रावं च  
कण्डूश्च श्वयथुं च कषायताम् ॥ २४९ ॥  
कलुषत्वं च नेत्रस्य बिन्द्वर्मपटलानि च ॥  
बहुनात्र किमुक्तेन सर्वान्नेत्रामयान्ह-  
रेत् ॥ २५० ॥ यस्य चोपहता दृष्टिः  
सूर्याग्निभ्यां प्रपश्यतः ॥ तस्यैतद्भेषजं  
प्रोक्तं मुनिभिः परमं हितम् ॥ २५१ ॥  
मार्जितं दर्पणं यद्वत्परां निर्मलतां ब्रजे-  
त् ॥ तद्वदेतेन पीतेन नेत्रं निर्मलता-  
मियात् ॥ वारिद्रोणद्वयं चात्र वृषमार्कव-  
योस्तुले ॥ २५२ ॥

काकोलीयुगलालामेऽश्वगन्धामूलं द्विगुणं  
ग्राह्यम् ॥

हरट १०० तोले, बहेडे २०० तोले, आमले ४००  
नोले, अट्टमा ४०० तोले और भागरा ४०० तोले, इन  
छन्दो चांगुने जलमें डालकर कोमल अग्निसे मट मट  
पकाये जब पकने पकते चौथाई भाग जल शेष रहे तब  
उस कायको उतारलेवे फिर उसमें सफेद चीनी, दुगुनी  
मुण्ठी, दारु, फटेरी, दुगुनी असगवकी जड़, हरट,  
बहेडा, आमले, नाग केसर, पीपल, लाल चंदन, नागर-  
मोथा, त्रायमाण और लाल कमल इनका कल्क कायमें  
गालकर उस कायमें चौसठ तोले उत्तम घीको चौसठ तोले  
दूधके साथ पकाये, जब पकते पकते केवल घी ही अवशेष  
रहनाय तब उसको उतारलेवे तो यह त्रिफलायुत होना-  
ई । नेत्रके तिमिर, बँच, रतीया, फुला, नाव,  
मण्डी, भ्रान, कषायता, गठलापन, बिंदु, अम्मे और  
पट्टः यह सब इस घीके उपयोगसे नष्ट होजाते हैं । बहुत  
कालोंमें क्या प्रयोग, इस घृतसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होजाते  
हैं । यद्यपि मनुष्य और प्रसिद्धे सन्तुष्ट देवनेत्र जिसकी  
भी उल्लेख होना नही तो इसके विषे यह पुन नवींतिम  
प्रकार है ।

जको पूछनेसे निर्मल होजाताहै उसी प्रकार इस घृतको  
पीनेसे नेत्र अत्यंत निर्मल होजाते हैं ॥ २४५-२५२ ॥

अथ वासकादिकाथः ।

वासाविश्वामृतादार्वा रक्तचन्दनचित्रकैः ॥  
भूनिम्बनिम्बकटुकापटोलत्रिफलाम्बुदैः २५३  
निशाकलिंगकुटजैः काथः सर्वाक्षिरो-  
गहा ॥ वैस्वर्य पीनसं श्वासं कासं नाश-  
यति ध्रुवम् ॥ २५४ ॥

इति नेत्ररोगाधिकारः ।

अट्टसा, सोंठ, गिलोय, दारुहलदी, लाल चंदन,  
चीता, चिरायता, नीम, कुटकी, कडवे परवल, हरड,  
बहेडा, आमले, नागरमोथा, हलदी, पीपल और इन्द्रजी  
इनका काथ बनाकर पीनेसे नेत्रके समस्त रोग, स्वरभग  
पीनस, श्वास और खोंसीका अवश्य नाश होताहै  
॥ २५३ ॥ २५४ ॥

इति नेत्ररोगाधिकारः संपूर्णः ।

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

कर्णशूलः कर्णनादो वाधिर्यं क्ष्वेड एव  
च ॥ कर्णस्रावः कर्णकण्डूः कर्णगूथस्तथैव  
च ॥ १ ॥ प्रतिनाहो जन्तुकर्णो विद्रधि-  
द्विविधस्तथा ॥ कर्णपाकः पूतिकर्ण-  
स्तथैवार्शश्चतुर्विधः ॥ २ ॥ तथाबुद्धं  
सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः ॥  
एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरी-  
रिताः ॥ ३ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, वाधिर्य, क्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्ण-  
कण्डू, कर्णगूथ, प्रतिनाह, कृमिकर्ण, क्षतसे अथवा अभि-  
घातसे हुआ विद्रधि दो प्रकारका है, कर्णपाक, पूतिकर्ण,  
चारप्रकारके कर्णनाद, सातप्रकारके कर्णबुद्ध और चारप्रका-  
रके कर्णशोथ इसप्रकार अष्टादश २८ वानके रोग हैं ॥ १-३

अथ कर्णशूलस्य सम्प्राप्तिर्लक्षणंच ।

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथाचरन्समन्ततः  
शूलमतीव कर्णयोः ॥ करोति दोषैश्च

यथास्वभावतः स कर्णशूलः कथितो  
दुराचरः ॥ ४ ॥

अन्यथा चरन्समन्ततः प्रतिलोमं चरन् ।  
दोषैः पित्तकफरक्तैः । रक्तस्यापि रुजादि-  
कर्तृत्वेन दोषसाम्याद्दोषत्वमत्र, यथास्वम्  
आत्मीयनिदानकुपितैः अथवा यथास्वमिति  
शूलविशेषणम् । दुराचरः दुरूपचारः ॥

कानमे चारो ओर उलटा फिरनेवाला और अपने  
निदानोंसे कुपित हुए पित्त, कफ और रुधिर, इन दोषोंसे  
लिपटा हुआ वायु कानमें उस उस दोषके समधी शूलको  
अत्यन्त उत्पन्न करताहै उसको कर्णशूल कहतेहैं, यह  
कर्णशूल कुच्छसाध्य है ।

रुधिर भी पीडा आदिको उत्पन्न करनेवाला होनेसे  
दोषकी सदृश ही है, इसकारण इसको भी यहा दोषोकी  
पाक्तिमें गिना है ॥ ४ ॥

अथ कर्णशूलस्योपद्रवास्तदसा-  
ध्यता च ।

मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासः श्वासोऽथ वम-  
थुस्तथा ॥ उपद्रवाः कर्णशूले भवन्त्येत  
अरिष्यतः ॥ ५ ॥

कर्णशूलमें जो मूर्च्छा, दाह, ज्वर, खाँसी, श्वास और  
वमन, यह उपद्रव हुए होंगे तो यह रोगीके मरनेके  
चिह्नरूप हैं ॥ ५ ॥

अथ कर्णनादलक्षणम् ।

कर्णश्रोत्रस्थिते वाते शृणोति विविधा-  
न्स्वनान् ॥ भेरीमृदङ्गशंखानां कर्णनादः  
स उच्यते ॥ ६ ॥

भेरीमृदङ्गशंखानामिति उपलक्षणं तन  
भृङ्गादिकृतशब्दानां ग्रहणम् ॥

कुपित हुई वायुको कानकी शब्दवाहिनी नाडीमें  
रहनेसे भेरी, मृदङ्ग, शंख और भ्रमर इत्यादिककी सदृश  
विविध प्रकारके शब्द सुननेमें आतेहैं उसको 'कर्णनाद'  
कहतेहैं ॥ ६ ॥

अथ बाधियलक्षणम् ।

यदा शब्दवहो वायुः स्रोत आवृत्य ति-

ष्ठति ॥ शुद्धः श्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं  
तेन जायते ॥ ७ ॥

कफ सहित अथवा केवल वायु कानकी शब्दवाहिनी  
नाडीको लिपटकर रहे तो इससे बधिरता ( बहरापन )  
होताहै, इसको 'बधिरता' कहतेहैं ॥ ७ ॥

अथ बाधिर्यासाध्यता ।

बाधिर्यं बालवृद्धोत्थं चिरोत्थञ्च विवर्ज-  
येत् ॥ ८ ॥

बालकोका, वृद्धाका और अधिक कालका बहरापन  
असाध्य है, इसकारण वैद्य इसको चिकित्सा नहीं  
करे ॥ ८ ॥

अथ कर्णक्षेडलक्षणम् ।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्व-  
नम् ॥ करोति कर्णयोः क्षेडं कर्णक्षेडः  
स उच्यते ॥ ९ ॥

क्षेडशब्दार्थं व्यनक्ति-वेणुघोषसमं स्व-  
नमिति । यत उक्तम् । क्षेडनं वेणुघोषव-  
दिति । ननु कर्णनादकर्णक्षेडयोः को भेदः ?  
उच्यते कर्णनादः केवलेन वातेन जायते  
तत्र नानाशब्दांश्च शृणोति । कर्णक्षेडस्तु  
पित्तादियुक्तेन वातेन जन्यते तत्र नियमेन  
वेणुघोषमेव शृणोतीति भेदः ॥

पित्तआदिसे संयुक्त हुई वायु कानमें बोंसुरीकी समान  
शब्दको उत्पन्न करैहै उसको क्षेड कहतेहैं ॥

शंका-कर्णनादमें और क्षेडमें क्या अन्तर है ?

उत्तर-कर्णनाद केवल वायुसे होताहै और उसमें भेरी  
आदिके सदृश अनेक शब्द होतेहैं और क्षेड तो पित्त  
आदिसे संयुक्त हुई वायुसे होताहै और उसमें केवल  
बोंसके शब्दकी समान शब्दही होताहै, इतनाही अन्तर  
है ॥ ९ ॥

अथ कर्णस्रावलक्षणम् ।

शिरोऽभिघातादथ वा निमज्जतो जले  
प्रपातादथ वापि विद्रवैः ॥ स्रवेद्धि पूर्यं  
श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्त्राव इति  
प्रकीर्तितः ॥ १० ॥

पूयमित्युपलक्षणम् । जलं रसञ्च स्रवेत्  
श्रवणशब्दः पुंलिङ्गोऽप्यस्ति ॥

शिरमें चोट लगनेसे, वा पानीमें डूबनेसे अथवा विद्रधिमें वायु कुपित होकर कानसे राघको अथवा जलको, वा रसको, निकालेहै उसको, 'कर्णस्त्राव' कहते-  
हैं ॥ १० ॥

अथ कर्णकण्डूलक्षणम् ।

मारुतः कफसंयुक्तां कर्णे कण्डूं करोति  
हि ॥ ११ ॥

कफसे संयुक्त हुआ वायु कानमें खुजलीको उत्पन्न कर-  
ताहै उसको 'कर्णकण्डू' कहतेहैं ॥ ११ ॥

अथ कर्णगूथलक्षणम् ।

पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथ-  
कम् ॥ १२ ॥

कर्णं गूथयते यस्मात्स कर्णगूथो व्याधिः ॥

पित्तं तथा गरमीसे सूखा हुआ कफ कानमें भेलको  
उत्पन्न करेहै उसको कर्णगूथ कहतेहैं ॥ ( कानमें विष्टाकी  
सदृश मलको करताहै इसकारण इस रोगका नाम 'कर्ण-  
गूथ' रखाहै 'गूथ' नाम विष्टाका है ) ॥ १२ ॥

अथ प्रतिनाहलक्षणम् ।

स कर्णगूथो द्रवतां यथा गतो विला-  
यितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ॥ तदा स कर्ण-  
प्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोर्द्ध-  
भेदकृत् ॥ १३ ॥

घ्राणश्च मुखश्च घ्राणमुखम् एकत्वं द्बन्द्वे ।  
शिरसोर्द्धभेदकृत् । अर्द्धावभेदकारुपशिरा-  
रोगकृत् ॥

कानका भेल विद्यत्तर पतला होनेसे नाकमें अथवा  
मुखमें आता है उसको 'प्रतिनाह' कहते हैं । प्रतिनाहसे  
'अर्द्धावभेदक' ( अधाशीशी ) नामक मस्तकरोग  
होता है ॥ १३ ॥

अथ कृमिकर्णकलक्षणम् ।

यदा नृमूर्च्छन्त्यथवा तु जन्तवः सृज-  
न्त्यपत्यान्यथ वापि मलिकाः ॥ तद्यज्ञ-  
नन्वाच्छ्रवणे निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः  
कृमिकर्णको गदः ॥ १४ ॥

तद्यज्ञनन्वाकृमिलक्षणत्वात् । श्रवणे कि-  
मिकर्णको गदो निरुच्यत इत्यन्वयः ॥

जब कानमें जीव पडजातेहैं, अथवा मक्खियें कानमें  
अपने बच्चे रखतीहैं तब कानके भीतर कीडोंके चिह्न  
दीखतेहैं यह रोग कृमिकर्णक कहाताहै ॥ १४ ॥

अथ पतंगादिप्रविष्टकर्णलक्षणम् ।

पतंगाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ॥

अरतिं व्याकुलत्वश्च भृशं कुर्वन्ति वेद-  
नाम् ॥ १५ ॥ कर्णो निस्तुद्यते यस्य तथा

च फर्फरायते ॥ कीटे चरति रुक्तीव्रा

निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १६ ॥

निस्पन्दः निश्चलः ॥

पतंग आदि अथवा कानखजूरे आदि कानमें प्रवे-  
श करके बैचैनीको, व्याकुलताको और अत्यन्त पीडाकं  
उत्पन्न करेहै, इस रोगमें कान पीडित होताहै, कानमें  
नोचनेकीसी पीडा होतीहै । जब कीडा चलताहै तब  
अधिक पीडा होतीहै और स्थिर रहे तो पीडा थोड़ी  
होतीहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ द्विविधकर्णविद्रधिलक्षणम् ।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दा-

पकृतोऽपरः पुनः ॥ स रक्तपीतारुणमसमा-

सवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ १७ ॥

क्षतप्रभवोऽभिघातप्रभवश्च तयोर्द्वयोरप्या-  
गन्तुजत्वादौक्यम् । असं रुधिरमित्यर्थः ॥

कानमें विद्रधि क्षत ( घाव ) से अथवा अभिघात  
( चोट ) से हुई होय अथवा दोपसे हुई होय तो कान-  
में लाल पीला साव होताहै और पीडा, धुएँके निकल-  
नेकी सदृश, दाह तथा अग्निके समीपसे हुए तापकी  
सदृश होतीहै उसको कर्णविद्रधि कहतेहैं ।

विद्रधि-शतसे हुई होय अथवा अभिघातसे हुई होय  
तो भी आगंतुकही है इस कारण उसको एक गिना  
है ॥ १७ ॥

अथ कर्णपाकलक्षणम् ।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविकेदकृद्भवेत् ॥

कोथः पृतिभावः । विकेदः आर्द्रता ।

पित्तके प्रकोपसे कानमें दुर्गन्धता तथा गिलगिलापन  
होता है इसको कर्णपाक कहतेहैं ॥

अथ पूतिकर्णकलक्षणम् ।

कर्णविद्रधिपाकेन कर्णे वा वारिपूरणात्॥  
पूयं स्रवति यः पूतिः स ज्ञेयः पूतिक-  
र्णकः ॥ १८ ॥

अथ कर्णस्रावाद्भेदार्थमाह पूतीति ।  
नियमेन पूतिर्यथा स्यादेवं स्रवति ॥

कानका विद्रधि पकनेसे, अथवा कानमे पानी भरनेसे  
दुर्गन्ध रूप स्रवता है उसको पूतिकर्ण कहते हैं । इस  
रोगमें नियमपूर्वक दुर्गन्धवाला स्रावही होता है इतना  
कर्णस्रावसे अन्तर है ॥ १८ ॥

अथ कर्णशोथकर्णार्बुदकर्णाशो-  
लक्षणम् ।

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तल-  
क्षणैः ॥ १९ ॥

कर्णशोथाश्च चत्वारो वातपित्तकफर-  
क्तजाः एवमर्शोऽपि चतुर्विधम् । अन्येषां  
शोथानामशसां चासम्भवः आधारप्रभावात् ।  
अर्बुदं सप्तविधं वातपित्तकफरक्तमांसमेदः-  
शिराजम् ॥ एते कर्णरोगा अष्टाविंशतिः  
सुश्रुतोक्ताः । इदानीं चरकोक्तं कर्णरोगचतु-  
ष्टयम् वातपित्तकफसन्निपातकृतमाह ॥

वात, पित्त, कफ और रुधिर, इस रीतिसे चार प्रका-  
रकी सूजन होतीहै, इसके लक्षण सूजनके अधिकारमें  
कहे प्रमाण समझना । वात, पित्त, कफ और रुधिरसे हुई  
अर्श, इस भाँति कानका अर्श चार प्रकारका होताहै,  
उनके लक्षण अर्शाधिकारमे कहे अनुसार समझना ।  
कानमे इन चार प्रकारहीका अर्श तथा शोथ होताहै और  
किसी प्रकारका नहीं होता, यह स्थानकाही प्रभाव है ।

वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस मेद और शिरासे  
उत्पन्न हुआ अर्बुद, इस प्रकार कानका सात प्रकारका  
अर्बुद होताहै, इनके लक्षण अर्बुदके अधिकारमें कहे  
अनुसार जानने ।

सुश्रुतमे कहे कानके अष्टाईस रोगोंके लक्षण कह चुकेहैं  
चरकमें कानके चार रोग वात, पित्त, कफ और सन्नि-  
पातसे उत्पन्न हुए, इस प्रकार कानके चार हैं ॥ १९ ॥

अथ वातजकर्णरोगलक्षणम् ।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोथः स्रावस्तनु-  
श्चास्रवणश्च वातात् ॥ २० ॥

कानमे नाद और अत्यन्त पीडा होतीहोय, सूजन  
होय, पतला स्राव होय और श्रवणकरनेकी शक्ति न होय,  
तौ वायुसे हुए कानके रोग जानना ॥ २० ॥

अथ पित्तजकर्णरोगलक्षणम् ।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपूतिपीत-  
स्रवणश्च पित्तात् ॥ २१ ॥

साल रगकी सूजन होय, कान फटताहोय, दाह  
होताहोय और दुर्गन्ध युक्त पीला स्राव होय तौ पित्तसे  
हुए कानके रोग जानना ॥ २१ ॥

अथ कफजकर्णरोगलक्षणम् ।

वैश्रुत्यकंडूस्थिरशोथशुक्लस्निग्धा छुतिः  
स्वल्परुजः कफाच्च ॥ २२ ॥

वैश्रुत्यमन्यथा श्रवणम् ॥

विपरीत सुनना, खुजलीका होना, सूजन स्थिर रहना,  
सफेद तथा स्निग्ध स्राव होना और थोड़ी पीडाका होना,  
यह कफसे हुए कानके रोगके लक्षण जानने ॥ २२ ॥

अथ सन्निपातजकर्णरोगलक्षणम् ।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्रावश्च  
तत्राधिकदोषवर्णः ॥ २३ ॥

ऊपर कहे सब दोषोंके लक्षण दीखते होय और उसमें  
जो दोष अधिक होय उसके वर्णवाला स्राव होताहोय  
तौ सन्निपातसे हुए कानके रोग जानना ।

कर्णपाली भी कानकाही अवयव होनेसे उसके  
विकारोंको भी इसी अधिकारमे योग्य जानकर लिखते  
हैं ॥ २३ ॥

अथ परिपोटकनिदानलक्षणम् ।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसैवातिवर्द्धिते ॥  
कर्णे शोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोट-  
वान् ॥ कृष्णारुणनिभस्तब्धः स वाता-  
त्परिपोटकः ॥ २४ ॥

परिपोटवान्मनाक् विदारुणवान् ॥



अधिक समयतक कानसे कोई भारी वस्तु डालकर ऐंमेरी छोट देवै तो सुकुमारता ( कोमलता ) के कारण उसमें सहसा अत्यन्त सूजन आजाय, पीडा होय, किंचित् फटासा हो जाय, कालापन मिलाहुआ लाल और जकडा हुआसा जो सूजन होय उसको परिपोटक कहतेहैं। यह रोग वाटुसे होताहै ॥ २४ ॥

अथोत्पातलक्षणम् ।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्धर्षणादपि ॥  
शोथः पाल्यां भवेच्छयावो दाहपाकरुजा-  
न्वितः ॥ रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः  
स गदः स्मृतः ॥ २५ ॥

भारी गहना पहननेसे, चोट लगनेसे, अथवा धिसनेसे, कानकी लैरमें कलोंस सहित लाल, दाहवाली, पाक-  
युक्त और पीडायुक्त जो सूजन होतीहै उसको 'उत्पात' कहतेहैं, यह रोग रविर और पित्त इन दोनोंके प्रकोपसे होताहै ॥ २५ ॥

अथोन्मन्थकलक्षणम् ।

कर्णं बलाद्धर्षयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्य-  
ति ॥ कर्णं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवे-  
दनम् ॥ उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः  
कफवातजः ॥ २६ ॥  
अवेदनमीषद्वेदनम् ॥

कानकी बलात्कारसे बढानेपर पालीमें वायुका कोप होताहै और वह वायु कफकी सहायताके कारण स्तब्धता युक्त, अल्पवेदनावाली और खुजली सहित सूजनको उत्पन्न करे है, उसको 'उन्मन्थक' रोग कहते हैं । यह रोग कफ और वायु इन दोनोंके प्रकोपसे होताहै ॥ २६ ॥

अथ दुःखवर्द्धनलक्षणम् ।

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः ॥  
शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखव-  
र्द्धनः ॥ २७ ॥  
संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कर्ण इति शेषः ॥

अत्रोप प्रकाशमें छिटा हुआ कान बढानेमें सुजली-  
युक्त, दाह और पीडावाली सूजन होती है तथा पाक  
भी होताहै, इस रोगको 'दुःखवर्द्धन' कहते हैं । यह रोग  
कफ, वात और पित्त ॥ २७ ॥

अथ परिलेहिलक्षणम् ।

कफासृक्कृमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसा-  
रिणः ॥ कुर्वन्ति पिडिकां पाल्यां कण्डू-  
दाहसमन्विताम् ॥ २८ ॥ कफासृक्कृ-  
मिसम्भूतः स विसर्पन्नितस्ततः ॥ लिह्या-  
त्स शङ्कुलीं पालीं परिलेही च स  
स्मृतः ॥ २९ ॥

स पिडिकात्मकः परिलेहिसंज्ञो गदः लि-  
ह्यान्निर्मासी कुर्यात् ॥

कफ, रधिर और कृमि कुपित होकर, फैलती हुई  
खुजलीवाली और दाहयुक्त सरसोंकी समान फुडियोंके  
उत्पन्न करै है, यह रोग चारोओरको फैलता फैलता कानवे  
छेदको तथा पाली ( कानकी लैर ) को मांसरहितक  
डालताहै । कफ, रधिर और कृमि इनके प्रकोपसे हुआ  
यह रोग 'परिलेही' कहाताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

अर्थ कर्णरोगचिकित्सा ।

कर्णशूले कर्णनादे वाधिये क्ष्वेड एव  
च ॥ चतुर्ध्वपि च रोगे घु सामान्यं भेषजं  
स्मृतम् ॥ ३० ॥ शृंगवेरं सहमधु सैन्धवं  
तैलमेव च ॥ कदुष्णं कर्णयोर्धार्यमेत-  
त्स्याद्वेदनापहम् ॥ ३१ ॥ लशुनार्द्रक-  
शिग्रूणां वारुण्या मूलकस्य च ॥  
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्ण-  
पूरणे ॥ ३२ ॥

वारुणी वरुणः ॥

अर्काङ्कुरानम्लपिष्टान्सतैललवणान्वितान्  
संनिदध्यात्सुधाकाण्डे कारिते मृत्तया  
वृते ॥ ३३ ॥ पुटपाकक्रमात्स्विन्नं पीड-  
येदारसागमात् ॥ सुखोष्णं तद्रसं कर्णे  
प्रक्षिपेच्छूलशान्तये ॥ ३४ ॥ अर्कस्य  
पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखि-  
योगतप्तम् ॥ आपीज्य तस्याम्बु सुखो-  
ष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरते हि शूलम् ॥  
॥ ३५ ॥ तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे  
क्रेदवाहिनि ॥ छागमूत्रं प्रशंसन्ति

कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ३६ ॥ तैलं  
श्वेतार्कमूलेन मन्देऽभौ विधिना कृतम् ॥  
हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात्  
॥ ३७ ॥ हिंस्रसैन्धवशुण्ठीभिस्तैलं सर्षप-  
सम्भवम् ॥ विपक्वं हरतेऽवश्यं कर्णशूलं  
प्रपूरणात् ॥ ३८ ॥ कर्णशूले कर्णनादे  
बाधिर्ये ध्वेड एव च ॥ पूरणं कटुतैलेन  
हितं वातघ्नमौषधम् ॥ ३९ ॥ शिखरिक्षा-  
रजं वारि तत्कृतकल्केन साधितं तैलम् ॥  
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूर-  
णतः ॥ ४० ॥

**शिखरी अपामार्गः ॥**

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और ध्वेड, इन चारों रोगोंपर एकसीही औषधि करनी कही है ॥

सोठ, सहता और सैंधा, इनका कल्क डालकर तेलको पकावे, यह तेल सहता हुआ गरम कानमें डाले तो इससे कानकी पीडा नष्ट होती है ॥

लहसुन, अदरक, सहजना, बरना, मूली और केला, इनका योग्य रीतिसे स्वरस करके सहता हुआ गरम कानमें डाले तो इससे कानकी पीडा नष्ट होजाती है ॥

आकके अंकुरोंको अम्लरसमें पीसकर उसमें तेल तथा सैन्धानिमक मिलावे, पश्चात् थूहरकी मोटी लकड़ीमें छेद करके भीतर इसको भरे, फिर कपरौटीकर पुटपाककी विधि अनुसार उसको पकावे, जबतक रस निकले तबतक निचोड लेवै, यह रस जितना गरम कान सहसके उतना गरम कानमें डाले तो इससे शूलकी शांति होती है ॥

पकनेसे पीले हुए आकके पत्तोंको श्री चुपडकर आग पर सेकै, फिर उसके रसको निचोड लेवै । यह सब सहता सहता कानमें डाले तो कानका शूल नष्ट होता है ॥

कानमें तीव्रशूल होताहो, शब्द करताहो और स्त्राव होताहो तो वकरेके मूत्रमें सैधानिमक डालकर गरम करके किंचित् गरम गरम वह मूत्र कानमें डाले तो उससे कानकी पीडा नष्ट होजाती है ॥

सफेद आककी जडके कल्कसे मंदमद अग्निमें पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो कानका शूल त्रिदोषसे हुआ होय तो भी तत्काल नष्ट होजाता है ॥

हींग, सैधानिमक और सोठ, इनके कल्कसे पकाया-

हुआ सरसोका तेल कानमें डाले तो उससे कानका शूल अवश्य नष्ट होजाता है ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और ध्वेड, इन चारों रोगोंमें सरसोका तेल डाले और वायुनाशक औषधि करै यह परम हितकारी होता है ॥

चिरचिटेकी भस्मके पानीमें चिरचिटेका कल्क डालकर पकायाहुआ तेल कानमें डाले तो इससे बहरापन और कर्णनाद नष्ट होता है ॥ ३०-४० ॥

**अथ बिल्वतैलम् ।**

गवां सूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपा-  
चयेत् ॥ सजलञ्च सद्गन्धञ्च तद्बाधिर्यहरं  
परम् ॥ ४१ ॥

**क्षीरं गवामेव ग्राह्यम् ।**

बेलके फलोंको गायके मूत्रमें पीसकर हुआ पानी तथा दूधमें पकायाहुआ तेल कानमें बहरापन अवश्य नष्ट होजाता है, यह तेल “ बिल्वतैल ” इस नामसे कहाता है ॥ ४१ ॥

कर्णस्त्रावे पूतिकर्णं तथैव कृमिकर्णके ॥  
सामान्यं कर्म कुर्वीत योगान्वैशेषिका-  
नपि ॥ ४२ ॥ स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीज-  
पूररसं क्षिपेत् ॥ कर्णस्त्रावरुजो दाहास्ते  
नश्यन्ति न संशयः ॥ ४३ ॥ आम्रजम्बू-  
प्रवालानि मधुकस्य वटस्य च ॥ एभिस्तु  
साधितं तैलं पूतिकर्णगदं हरेत् ॥ ४४ ॥  
जातीपत्ररसैस्तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥  
पिष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् ॥  
प्रशस्यते चिरोत्थे तत्स्त्रावके पूतिक-  
र्णके ॥ ४५ ॥

कर्णस्त्राव, पूतिकर्ण और कृमिकर्ण इन रोगोंमें ऊपर कही सामान्य क्रियायेंभी करनी और नीचे लिखी विशेष क्रियायेंभी करनी चाहिये ॥

सजीखारके चूर्णसे संयुक्त विजौरे नींबूका रस कानमें डाले तो उससे कानका स्त्राव, पीडा और दाह नष्ट हो-  
जाता इसमें कुछभी सदेह नहीं है ॥

आमके, जामुनके, महुएके और वडके छोटे छोटे पत्तोंका कल्क करके इससे पकायाहुआ तेल कानमें डाले तो पूतिकर्ण नामक रोग नष्ट होता है ॥

चमेलीके पत्तोंके स्वरसमें पकायाहुआ तेल कानमें डाले तो उससे पूतिकर्ण नष्ट होताहै ॥

नीके दूधसे रसोतको पीसकर सहतमें मिलावे, फिर उसको कानमें डाले तो अधिक दिनोंसे बहताहुआ कान और पूतिकर्ण नष्ट होताहै ॥ ४२-४५ ॥

### अथ कुष्ठतैलम् ।

कुष्ठहिंशुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः ॥  
पूतिकर्णापहंतैलं वस्तमूत्रेण साधितम् ४६ ॥

कुष्ठ, हांग, वच, देवदारु, सोया, सेंठ और सैंधा-  
नान, इनका कल्क डालकर बकरेके मूत्रमें पकायाहुआ  
तेल कानमें डाले तो इससे पूतिकर्ण नष्ट होताहै, यह  
कुष्ठदितैल कहाताहै ॥ ४६ ॥

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् ॥  
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति  
॥ ४७ ॥ चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन  
मुष्ट्यंशकेन कटुतैलपलाष्टकन्तु ॥ धतूर-  
पत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं नाडी जयेच्चिर-  
भवामपि कर्णजाताम् ॥ ४८ ॥

मुष्टिः पलम् ॥

कर्णक्रिमिविनाशाय कृमिघ्नी कारयेत्कि-  
याम् ॥ वार्ताकधूमश्च हितः सार्धपः स्नेह  
एव च ॥ ४९ ॥ पूरणं हरितालेन गव्य-  
मूत्रयुतेन च ॥ धूपने कर्णदौर्गन्ध्यं गुरुगुलुः  
श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५० ॥ चिकित्सा कर्ण-  
शोथानां तथा कर्णार्शसामपि ॥ कर्णावु-  
दानां कुर्वीत शोथार्शोर्बुदवज्जिपक्व ॥ ५१ ॥

सीपके नीचोंके मासका कल्क डालकर पकायाहुआ  
गरमोका तेल कानमें डाले तो तत्काल कानका बहना  
नष्ट होताहै ॥

गन्धक, मैनधिय और हल्दी इनके चार तैले चूर्ण-  
का गन्ध डालकर बत्तीस तोले धतूरोंके पत्तोंके स्वरसमें  
तैल तैल व गोमय तैल पकाये, यह तैल कानमें डाले  
तो शोथाना कानका बहना नष्ट होताहै ॥

कृमिकर्ण नामक रोगका नाश करनेके लिये क्रिमियोंको  
नष्ट करनेवाली क्रिया करे ॥

वैगनका धुआँ, सरसोका तेल और गायके मूत्रमें  
पिछीहुई हरतालका रस, ये कृमिकर्ण रोगमें हितकारी  
होतेहैं । कानकी दुर्गन्धमें धूप देनेके लिये गुगल श्रेष्ठ  
गिना जाता है ॥

वैद्य कानकी सूजनकी चिकित्सा सूजनके अधिकारमें  
कहे अनुसार करे, कानके अर्शोंकी चिकित्सा अर्शोंके  
अधिकारमें कहे अनुसार करे और कानके अर्बुदोंकी  
चिकित्सा अर्बुदोंके अधिकारमें कहे अनुसार करे ४७-५१

### अथ कर्णपालीरोगचिकित्सा ।

पालीसंशोषणे कुर्याद्वातकर्णरुजः क्रियाः ॥  
स्वेदयेद्यत्नतस्तां च स्विन्नां संवर्धये-  
त्तिलैः ॥ ५२ ॥ शतावरीवाजिगन्धापय-  
स्यैरण्डबीजकैः ॥ तैलं विपक्वं सक्षीरं  
पालीं संवर्धयेत्सुखम् ॥ ५३ ॥  
पयस्यात्र क्षीरकाकोली ॥

जीवनीयस्य कल्केन तैलं दुग्धेन पाच-  
येत् ॥ चिकित्सेत्तेन तैलेन हतासं परिपो-  
टकम् ॥ ५४ ॥ शीतलेपैर्जलौकोभिरु-  
त्पातं समुपाचरेत् ॥ हलिनीसुरसाभ्यां  
च गोधाकंकवसान्वितम् ॥ ५५ ॥ तैलञ्च  
पक्वमभ्यङ्गादुन्मन्थं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ दुःख  
वर्द्धनकं सिक्त्वा जम्बाम्रविल्वपत्रजैः  
॥ ५६ ॥ काथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णे-  
श्चावधूलयेत् ॥ बहुशो गोमयैस्तप्तैः स्वेदितं  
परिलेहितम् ॥ वनसारैः समालिम्पेद-  
जामूत्रेण कल्कितैः ॥

इति कर्णरोगाधिकारः ।

कानकी पाली नृन्धीजातीहोय तो वातज्रोगोंकी  
जो चिकित्सा कही है सो करे, यत्नपूर्वक पालीको सेके  
और मेक करनेके पश्चात् तिरका कल्क लगाकर उसको  
बढ़ावे ।

सतावर, असगध, क्षीरकाकोली, और अडी, इनके कल्कसे दूधमे पकाया हुआ तेल लगावे तो कानकी पाली सहजमे बढजातीहै, इसको शतावरी तेल कहतेहैं ।

परिपोटक रोग होय तो प्रथम उसमेसे रुधिर निकल-वाकर पीठे दूधमें जीवनीय गणका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल लगावे ।

उपद्रव हुए होंय तो शीतल लेपोंसे और जोक लगा-कर उनकी चिकित्सा करे ।

कलियारीका कल्क, शतावरका कल्क, गोहकी चरबी, और ककपक्षीकी चरबी, इनको डालकर पकाया हुआ तेल चुपडे तो उन्मन्थ अवश्य नष्ट होजाताहै ।

दुःखवर्द्धनक रोग हुआ होय तो जामुनके आमके और बेलके पत्तोंके काथसे उसको सीचकर तेलसे भली भाँति चिकना करे और उसके ऊपर जामुन-आदिके पत्तोंका चूर्णही बुरका देवे ।

परिलेही रोग हुआ होय तो गरम किये हुए गोबरका बारबार सेक करे, फिर बकरीके मूत्रमें पीसे हुए कपूरका लेप करे ॥ ५२-५७ ॥

इति कर्णरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ नासारोगाधिकारः ।

तत्र नासारोगाणां नामानि  
संख्या च ।

आदौ च पीनसः प्रोक्तः पूतिनस्यस्ततः  
परम् ॥ नासापाकोऽत्र गणितः पूयशो-  
णितमेव च ॥ १ ॥ क्षवथुर्भ्रशथुर्दांसिः  
प्रतीनाहः परिस्रवः ॥ नासाशोषः प्रति-  
श्यायाः पञ्च सप्तार्बुदानि च ॥ २ ॥  
चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोथाश्चत्वारि  
तानि च ॥ रक्तपित्तानि नासायां चतुस्त्रि-  
शद्गदाः स्मृताः ॥ ३ ॥

पीनस, पूतिनस्य, नासापाक, पूयशोणित, क्षवथु, भ्र-  
शथु, दीप्त, प्रतीनाह, प्रतिस्रव, नासाशोष, पाँच प्रकारके  
प्रतिश्याय, सात प्रकारके अर्बुद, चार प्रकारके अर्ग, चार  
प्रकारकी सूजन, और चार प्रकारके रक्तपित्त, इस प्रकार  
नाकके रोग चौतीस हैं ॥ १-३ ॥

## अथ पीनसलक्षणम् ।

आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमा-  
याति तु धूप्यते च ॥ न वेत्ति यो गन्ध-  
रसांश्च जन्तजुष्टं व्यवस्येदिह पीनसे-  
न ॥ ४ ॥ तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं  
ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगम् ॥ ५ ॥

आनह्यते श्वासशोषितकफेन बध्यते ।  
अवरुध्यत इति यावत् । प्रक्लेदमार्द्रतां गच्छ-  
तीति यावत् । धूप्यते सन्ताप्यते । गन्धर-  
सान्गन्धान्सुरभीनसुरभीश्च न वेत्ति नासाया  
आनद्धत्वं तत्र हेतुः तथा रसान्मधुरादींश्च न  
वेत्ति नासारोगारम्भकदोषेण रसनाया अपि  
दुष्टिः । व्यवस्येज्जानीयात् । अपीनसपीनसौ  
द्रावपि शब्दौ स्तः अवाप्योस्तं सनद्रादि-  
त्वादिवेति सूत्रेण विकल्पेनाकारलोपात् ।  
तं विकारं पीनसं प्रतिश्यायसमानलिंगं  
वातश्लैष्मिकप्रतिश्यायतुल्यलक्षणम् ॥

श्वाससे सूखे हुए कफसे नाक रुक जाय, रुककर फिर  
गीली होजाय, गरम होजाय, तथा नाक बढ हो जानेके  
कारण सुगन्धि अथवा दुर्गन्धिको नहीं जान सके, तैसेही  
नाकके रोगोंको उत्पन्न करनेवाले दोषोंसे जीभ भी दूषित  
होकर मधुर आदि रसोंको नहीं जान सकै उसको पीनस  
रोग कहतेहैं ।

व्याकरणकी मर्यादाके अनुसार पीनस और अपीनस  
यह दोनों एक रोगकेही नाम हैं ॥ ४ ॥

वायु तथा कफसे उत्पन्न हुए पीनस रोगके अन्य लक्ष-  
ण वात तथा कफसे उत्पन्न हुए प्रतिश्याय नामक रोगकी  
सदृशही होते हैं ॥ ५ ॥

## अथ पूतिनस्यलक्षणम् ।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले सन्दूषितो यस्य  
समीरणस्तु ॥ निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां  
तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ६ ॥

- दोषैः पित्तकफरक्तैः । अत्र रक्तस्यापि  
दोषत्वं दोषसाहचर्यात् । विदग्धैर्दुष्टैः ।  
सन्दूषितः पृतिभावं नीतः । पृतिनस्यं  
नासायां भव नस्यः वायुः पृतिर्नस्यो यत्र  
स पृतिनस्यः तम् ॥

गले तथा तालूकी जड़में दूषित पित्त, कफ और रुधिर,  
उन दोषों करके दूषित हुई दुर्गन्धित वायु मुखमेंसे और  
नाकमेंसे निकलतीहै, उस रोगको पृतिनस्य कहतेहैं ।

दोषोंके साथ रहनेसे रुधिरको भी दोष शब्द दिया है ।  
पृति अर्थात् दुर्गन्धित और नस्य अर्थात् नाककी वायु  
दूसरी अर्थसे इस रोगका नाम “पृतिनस्य” रक्खाहै ॥ ६ ॥

### अथ नासापाकलक्षणम् ।

ब्राणाश्रितं पित्तमरुषि कुर्याद्यस्मिन्वि-  
कारं बलवांश्च पाकः ॥ तं नासिकापाक-  
मिति व्यवस्येद्विक्रेदकोथावथवापि  
यत्र ॥ ७ ॥

विक्रेद आर्द्रता । कोथः पृतिभावः ॥

नाकमें रहनेवाला पित्त व्रणोंको उत्पन्न करे, नाक अ-  
त्यन्त पक्के, नाक गीली रहे, और दुर्गन्धि भी रहे, उस  
रोगको नासापाक कहते हैं ॥ ७ ॥

### अथ पृथशोणितलक्षणम् ।

दोषैर्विदग्धैरथवापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभि-  
हतस्य तैस्तैः ॥ नासा सवेत्पृथमसृग्वि-  
मिश्रं तं पृथरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ८ ॥

दोषोंके शिगडनेसे अथवा ललाटमें उन उन पदार्थोंकी  
चोट लगनेसे रुधिरमिश्रित राख नाकसे गिरतीहै उस रोग-  
को पृथशोणित कहतेहैं ॥ ८ ॥

### अथ क्षवथुलक्षणम् ।

ब्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टो यस्यानिलो  
नासिकया निरेति ॥ कफानुजातो बहु-  
शोऽतिशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं गद-  
जाः ॥ ९ ॥

ब्राणाश्रिते मर्मणि शृंगाटके ॥

नाककी तरुण हड्डी अथवा शृंगाटक नामक मर्मस्थानमें  
दूषित हुई कफसहित वायु अधिक छीकोंके शब्दोंको नाकसे  
निकालतीहै, इस रोगको वैद्य लोग दोषजन्य क्षवथु कह-  
तेहैं ॥ ९ ॥

### अथागन्तुजक्षवथुलक्षणम् ।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्क-  
टूनर्कनिरीक्षणाद्वा ॥ सूत्रादिभिर्वा तरु-  
णास्थिमर्मण्युद्धर्षितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति १० ॥  
तीक्ष्णोपयोगाद्राजिकादिभक्षणात् । अर्क-  
निरीक्षणात्सूर्यदर्शनात् तेन कफाविलयनात् ।  
तरुणास्थिमर्मणि नासात्रणास्थिमर्मणि ।  
तरुणास्थि च मर्मणि शृंगाटके द्वन्द्वैकत्वं वा ।  
अन्यः आगन्तुजः ॥

राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंके उपयोग करनेसे अथवा  
तीक्ष्ण पदार्थोंकी सुगन्धिसे अथवा सूर्यके सामने देखनेसे  
कफ पिघलनेपर अथवा डोरे आदिसे नाकके तरुणास्थि  
नामक मर्म स्थलके घिसनेसे जो छीके आतीहैं उनको  
वैद्य लोग आगन्तुज क्षवथु कहतेहैं ॥ १० ॥

### अथ भ्रंशथुलक्षणम् ।

प्रभ्रश्यते नासिकया तु यस्य सान्द्रो  
विदग्धो लवणः कफस्तु ॥ प्राक्सञ्चितो  
मूर्द्धनि पित्ततप्ते तं भ्रंशथुं व्याधिसुदाह-  
रन्ति ॥ ११ ॥

मस्तकमें पहिलेसेही सञ्चित हुआ, दूषित हुआ, गाढा  
और खारीपनसहित कफ माथा गरम होनेपर नाकसे निक-  
लताहै उस रोगको वैद्य लोग भ्रंशथु कहतेहैं ॥ ११ ॥

### अथ दीप्तिलक्षणम् ।

ब्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसं-  
द्रूम इवेह वायुः ॥ नासा प्रदीप्तेव च  
यस्य जन्तोर्व्याधिन्तु तं दीप्तिसुदाह-  
रन्ति ॥ १२ ॥

प्रदीप्तेव प्रज्वलितेव ॥

नाकमें अत्यन्त दाह होय, बुध्दकी समान वायु



निकलै और अग्निसे जलनेकी समान पीडा मालूम होय उस रोगको वैद्यलोग दीप्ति कहतेहैं ॥ १२ ॥

**अथ प्रतीनाहलक्षणम् ।**

**उच्छ्वासमार्गन्तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥ १३ ॥**

वायुसहित कफ श्वास लेनेके मार्गको रोकदेताहै उस रोगको प्रतीनाह कहतेहैं ॥ १३ ॥

**अथ स्नावलक्षणम् ।**

**घ्राणाद्धनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः सवेत्स्नावमुदाहरेत्तम् ॥ १४ ॥**

नाकमेसे पीले वर्णवाला, सफेद वर्णवाला, गाढा, अथवा पतला दोष खवताहै उस रोगको स्नाव कहतेहैं ॥ १४ ॥

**अथ नासाशोषलक्षणम् ।**

**घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च ॥ कृच्छ्राच्छसित्यूर्द्धमधश्च जन्तुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ १५ ॥**

नाकमे रहनेवाला कफ वायुसे और पित्तसे अत्यंत सूख जानेपर थोडा २ ऊंचा नीचा श्वास लेताहै वह रोग नासापरिशोष कहाताहै ॥ १५ ॥

**अथ प्रतिश्यायस्य सामान्यनिरूपणम् ।**

न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् ॥ अन्यदापि हि कुप्यन्ति हेतुबाहुल्यप्रेरणात् ॥ १६ ॥

हेतुबाहुल्यप्रेरणाद्धेतूनां बाहुल्येन त्वराकरणात् । द्विविधं प्रतिश्यायनिदानम् एकं सद्योजनकं तच्च बलवत्त्वेन चयं नापेक्षत एव । अपरञ्च चयादिक्रमेण जनकं चयादिक्रमोत्पन्नश्च दोषो गरीयान् सकल शरीरसंभावनया बद्धमूलत्वात् । चयादिक्रमो यथा-निदानात्सञ्चयः 'सञ्चयात्प्रकोपः' प्रकोपात्प्रसरः 'प्रसरात्स्थानसंश्रयः' ततो व्यक्तिः ततो भेद इति ॥

प्रतिश्यायके एक सद्योजनक ( तत्काल उत्पन्न करनेवाला ) और दूसरा चयादि क्रमजनक ( सचय आदिके

क्रम करके उत्पन्न करनेवाला ) ऐसे दो प्रकारके निदान हैं । उनमें सद्योजनक निदान प्रबल होनेसे क्रमकी अपेक्षा नहीं करता, कहा है कि " प्राणियोंके वायु आदि दोष केवल सचय पाकर ही कुपित होतेहैं ऐसाही नहीं किंतु जिन दोषोंके हेतुसे एकत्र होजायें तो उन हेतुओंके जोरसे समय प्राप्त हुए बिनाभी कुपित होतेहैं " ।

प्रतिश्यायका जो दूसरा चयादि क्रमजनक निदान है उसमें यह क्रम है कि, निदानसे दोषोंका संचय होताहै, सचयसे प्रकोप होताहै, प्रकोपसे प्रसर ( फैलाव ) होताहै प्रसरसे स्थानसंश्रय ( रोगोंके उन २ ठिकानोंमें आना ) होताहै, स्थानसंश्रयसे व्यक्ति ( रोगोंका दीखना ) होताहै, और व्यक्ति होनेके पश्चात् भेद होताहै ॥ १६ ॥

**अथ प्रतिश्यायस्य सद्योजनक-**

**निदानपूर्विकासम्प्राप्तिः ।**

**सन्धारणार्जीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः ॥ संजागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायकैर्मैथुनवाष्पसैकैः ॥ १७ ॥**  
**संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ १८ ॥**

संधारणं मूत्रपुरीषधारणम् । रजो धूलिः तच्च नासाप्रविष्टं हेतुः । ऋतुवैषम्यम् ऋतुचर्याविपरीताचरणम् । शिरोऽभितापः शिरसोऽभितापो येन धूपादिना सः । अवश्यायस्तुषारः वाष्पसैको रोदनम् । संस्त्यानदोषे शिरसि संहतकफे ॥

मूत्र तथा विष्टाके वेगोंको रोकनेसे, अजीर्णसे नाकमें रजका प्रवेग होनेसे, अत्यन्त बोलनेसे, अतिक्रोधसे, ऋतुचर्यामें कहे नियमोंका उल्लंघन करके विपरीत आचरण करनेसे, धुये आदिसे मस्तक सन्तापित होनेसे, जागरण करनेसे, अत्यन्त निद्रा लेनेसे, अत्यन्त जलके सेवन करनेसे, शीतोपचारके अत्यन्त सेवनसे, तुषारके सेवन करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और अत्यन्त रोनेसे मस्तकमें एक साथ कफ जम जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु प्रतिश्याय को उत्पन्न करेहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

**अथ प्रतिश्यायस्य चयादिक्रमजनक-**

**निदानपूर्विकासम्प्राप्तिः ।**

**चयंगता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक्सम-**

स्ताश्च तथैव शोणितम् ॥ प्रकुप्यमाणा  
विविधैः प्रकोपणैस्ततः प्रतिश्यायकरा  
भवन्ति ॥ १९ ॥

वात, पित्त, कफ वा तीनों दोष अथवा रुधिर मस्तक  
में उच्च होकर वह जब अपने २ कुपित करनेवाले कार-  
णोंसे कुपित होतेहैं तब प्रतिश्यायको उत्पन्न करेंहैं ॥ १९ ॥

अथ प्रतिश्यायपूर्वरूपम् ।

क्षयप्रवृत्तिः शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽङ्ग-  
मर्दः परिहृष्टरोमता ॥ उपद्रवाश्चाप्यपरे  
पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः  
स्मृताः ॥ २० ॥

शिरसोऽभिपूर्णता शिरसो भारेणैव  
व्याप्तिः । अपरे पृथग्विधाः घ्राणधूमायन-  
तालुविदरणनासामुखसावादयो विदेहोक्ता  
बोद्धव्याः ॥

छींकोका अत्यन्त आना, माथेमें बोझका मालूमहोना,  
अंगोंका जकड़ना, अंगोंका दृटना, रोमोंका खडा होना,  
और भी अन्य अनेक प्रकारके उपद्रव, जब प्रतिश्याय  
होनेको होय तो पहिलेमें ही होतेहैं ।

नाकमेंसे धुँयकी सट्टा वायु निकलै, तालू फटजाय  
और नाकमेंसे तथा मुखमेंसे ज्वाब होय इत्यादिक अन्य  
उपद्रव कि जो विदेहने कहे हैं वह यहा जानना ॥ २० ॥

अथ वातजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

आनद्धापिहिता नासा तनुस्त्रावप्रसेकिनी ॥  
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयो-  
स्तथा ॥ भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्याये-  
ऽनिलात्मके ॥ २१ ॥

आनद्धा स्तब्धा । अपिहिता न पिहिता ।  
अत एव तनुस्त्रावप्रसेकिनी ॥

नाक रुकजाय तथा सजट होजाय, नाकसे पनला स्त्राव  
होय, गला तालू तथा होंठ सूखजाय और कनपटीमें पीटा  
होय तथा स्वर नष्ट होजाय तो जानना कि वायुसे हुआ  
प्रतिश्याय है ॥ २१ ॥

अथ पित्तजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

दृग्गः सर्पातकः स्रावो घ्राणात्स्वति-  
वन्ति ॥ कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवे-

दुष्णाभिपीडितः ॥ नासया तु सधूमा-  
ग्निं वमतीव स मानवः ॥ २२ ॥

सर्पातकः ईषत्पीतकः ॥

नाकमेंसे गरम तथा किंचित् पीला स्त्राव होय, शरीर  
दुबला, अत्यन्त पाडुवर्णवाला तथा संतप्त होजाय, तृपा  
बहुत लगे और नाकमेंसे जैसे धुँयवाली अग्नि निकलती  
होय ऐसा मालूम होय तो जानना पित्तसे हुआ प्रतिश्याय  
है ॥ २२ ॥

अथ कफजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

घ्राणात्कफकृते श्वेतः कफः शीतः स्रवे-  
द्बहुः ॥ शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा-  
नरः ॥ गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरति-  
पीडितः ॥ २३ ॥

नाकमेंसे सफेद, शीतल तथा अधिक कफ निकलै,  
शरीरका सफेद वर्ण होजाय, नेत्र सुन्न होजाय, मस्तक भा-  
री होजाय और गलेमें, तालूमें, होंठमें तथा माथेमें खु-  
जलीकी अत्यन्त पीडा होय तो जानना कि कफसे हुआ  
प्रतिश्याय है ॥ २३ ॥

अथ त्रिदोषजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याऽकस्मा-  
न्निवर्तते ॥ सम्पको वाप्यपको वा स च  
सर्वभवः स्मृतः ॥ २४ ॥

अत्र यद्यपि दोषत्रयलिङ्गानि न उक्तानि  
तथापि तानि ज्ञेयानि त्रिदोषजत्वादयम-  
साध्यः । अत एवाह-

नृणां दुष्टः प्रतिश्यायः सर्वजश्च न सि-  
द्ध्यति ॥ २५ ॥

जो प्रतिश्याय उत्पन्न हो होकर पकनेके पश्चात् अथवा  
बिना पकही अकस्मात् वन्द होजाय उस प्रतिश्यायको  
तीनों दोषके कोपसे हुआ जानना ।

इन लक्षणोंमें “ तीनों दोषोंके चिह्न होतेहैं ” ऐसा  
कहा नहीं है तोभी वह निश्चय होतेहैं ऐसा जानना यह प्रति-  
श्याय त्रिदोषजनित होनेसे असाध्य कहा है कि “ मनु-  
ष्योंको दुष्ट प्रतिश्याय हुआ होय और त्रिदोषके कोप होने-  
से होय तो वह असाध्य है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ दुष्टप्रतिश्यायलक्षणम् ।

प्रक्लिद्यते मुहुर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ॥  
पुनरानह्यते वापि पुनर्विव्रियते तथा ॥ २६ ॥  
निःश्वासो वापि दुर्गन्धो नरो गन्धान्न  
वेत्ति च ॥ एवं दुष्टं प्रतिश्यायं जानीया-  
त्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २७ ॥

आनह्यते विबद्धा भवति । विव्रियते अवि-  
बद्धा स्यात् । क्लेशोषविबन्धाविवृतत्वानि  
नैककालं भवन्ति किन्तु यदा यदा यद्यदो-  
षाधिक्यं भवति तदा तदा तत्तदोषकृतः स  
स बोद्धव्य इति न विरोधः । कृच्छ्रसाधनम-  
साध्यञ्च ॥

नाक बारंवार भीगजाय, बारवार बधजाय बारवार  
खुलजाय, श्वास दुर्गन्धित निकलै और दुर्गन्ध सुगन्धका  
ज्ञान नहीं रहै तौ जानना कि दुष्ट प्रतिश्याय हुआ है,  
यह प्रतिश्याय कष्टसाध्य होता है । और असाध्य भी  
होता है । नाकका गीला होना, सूखना और रुकजाना,  
यह एक समयमेंही होय ऐसा नहीं जानना परन्तु जब  
जब जिस जिस दोषकी अधिकता होय तब तब उस उस  
दोषके अनुसार यह होते हैं ऐसा जानना अर्थात् किसी  
प्रकारका विरोध नहीं आता ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ रक्तजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते ॥  
पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापि समन्वितः  
॥ २८ ॥ ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरोधा-  
तप्रपीडितः ॥ दुर्गन्धोच्छ्वासवक्त्रश्च गन्धा-  
नपि न वेत्ति सः ॥ २९ ॥

उरोधातप्रपीडितः उरोधातेनेव प्रपीडितः ॥

जो प्रतिश्याय रुधिरसे हुआ होय तौ रुधिरका स्राव  
होता है, पित्तसे हुए प्रतिश्यायक चिह्न भी दीखते हैं,  
आँखें लाल होजाती हैं, जैसे हृदयमे चोट लगी होय ऐसी  
पीड़ा होती है, मुखसे दुर्गन्धित श्वास निकलता है  
और दुर्गन्ध सुगन्धका ज्ञान भी नहीं रहता-  
है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ चिकित्सामंतरा सर्वप्रतिश्यायाः  
कालान्तरेणासाध्या  
भवन्तीत्याह ।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ॥  
दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भव-  
न्ति च ॥ ३० ॥

चिकित्सासे रहित रहनेवाले मनुष्योंके सब प्रतिश्याय  
कालान्तरमें दुष्टताको प्राप्त होजाते हैं और जब दुष्ट होयें  
तब असाध्य होते हैं ॥ ३० ॥

अथ प्रतिश्यायदुष्टौ कृम्युत्पत्ति-  
स्तल्लक्षणं च ।

मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्त-  
थाणवः ॥ कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं  
तेनात्र लक्षणम् ॥ ३१ ॥

अत्र एषु प्रतिश्यायेषु कफजा एव कृमयो  
भवन्तीति श्वेताः स्निग्धाश्च ॥

प्रतिश्यायोमें कफसे सफेद और स्निग्ध बारीक बारीक  
कीड़े होते हैं इस कारण उन प्रतिश्यायोके लक्षण कफज-  
नित शिरोरोगकी सदृश होते हैं ॥ ३१ ॥

अथ वृद्धप्रतिश्यायान्यरोगोत्पत्तिः ।

बाधिर्यमान्ध्यमग्नत्वं घोरांश्च नयनामयान् ॥  
शोषामिमान्धकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पी-  
नसाः ॥ ३२ ॥

घोरांश्च नयनामयान् इति वचनेऽपि आ-  
न्ध्यग्रहणं पुनर्विशेषार्थं । अग्नत्वं न जिघ्रती  
त्यग्रस्तस्य भावोऽग्रत्वम् ॥

प्रतिश्याय अधिक वृद्धिको प्राप्त होजाय तो बधिरता,  
अधापन, गन्धग्रहण करनेकी अशक्ति, नेत्रोंके भयंकर रोग,  
शोष, अग्निकी मदता और खोंसी, यह विकार उत्पन्न  
होते हैं ।

‘नेत्रोंके भयंकर रोग’ ऐसा कहनेसे अंधताका समा-  
वेग होता है तो भी अंधता पृथक् कही उसका कारण  
यह है कि प्रतिश्यायोसे अंधता विशेष होती है ऐसा बत-  
लाना है ॥ ३२ ॥

अथ नासागतान्यचतुस्त्रिंशद्रोगाः ।

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्वि-  
धम् ॥ चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि  
तद्विदुः ॥ ३३ ॥

अर्बुदानि सप्त वातपित्तश्लेष्मसन्निपातरक्त-  
मांसमेदोजानि । शोथाश्चत्वारो वातपित्तश्ले-  
ष्मसन्निपातजाः । अर्शांसि चत्वारि वातपि-  
त्तश्लेष्मसन्निपातजानि । रक्तपित्तानि चत्वारि  
वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजानि । एतानि यथो-  
क्तलिङ्गानि घ्राणेऽपि भवन्ति ॥

वातार्बुद, पित्तार्बुद, कफार्बुद, सन्निपातार्बुद, रक्तार्बुद,  
मांसार्बुद और मेदार्बुद, इसप्रकार नाकमें अर्बुदरोग  
सात प्रकारके होते हैं । वातशोथ, पित्तशोथ, कफशोथ  
और सन्निपातशोथ, इस रीतिसे नाकमें सृजन चार प्रका-  
रकी होती है । वानार्श, पित्तार्श, कफार्श और सन्निपातार्श,  
इस रीतिसे नाकमें अर्श चार प्रकारकी होती है । वात  
सन्निपात रक्तपित्त, पित्तसन्निपात रक्तपित्त, कफसन्निपात रक्तपित्त  
और सन्निपात सन्निपात रक्तपित्त, इस रीतिसे नाकमें रक्त-  
पित्त चार प्रकारका होता है । अर्बुदोंके लक्षण आगे  
कहे हुए अर्बुदके अधिकारमेंसे, सृजनके लक्षण आगे कहे  
गए अर्बुदके अधिकारमेंसे, अर्शोंके लक्षण आगे कहे अर्शोंके  
अधिकारमेंसे और रक्तपित्तके लक्षण आगे कहे रक्तपित्तके  
अधिकारमेंसे जान लेना ॥ ३३ ॥

अथामपीनसलक्षणम् ।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्त्रावस्तनुस्वरः ॥

क्षामः ष्ठीवति चाभीक्ष्णमामपीनसलक्ष-  
णम् ॥ ३४ ॥

नासास्त्रावः तनुस्वरः क्षाम इत्यन्वयः ॥

नाभमें भारीपन होय, अर्बुद होय, नाकमेंसे पतला  
स्वर होना होय, स्वर विगडगना होय और वार-  
वार भूष गिरता होय तो जानना कि पीनस  
रोग है ॥ ३४ ॥

अथ पक्षपीनसलक्षणम् ।

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेपु नि-  
मज्जति ॥ स्ववर्णविशुद्धिश्च पक्षपीन-  
सलक्षणम् ॥ ३५ ॥

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा आमलिङ्गैः  
शिरोगुरुत्वादिभिर्युक्तः पश्चाद् घनः निवि-  
डः । अथवा खेपु नास्यारन्ध्रेषु निमज्जति  
मुक्तो भवति । वर्णविशुद्धिः श्लेष्मणः प्रकृ-  
तवर्णता ॥

मस्तकके भारीपन इत्यादिके चिह्न कि जो कच्चे पीन-  
सके हैं उनसे युक्त, कफ गाढा होय, अथवा नाकके  
छेदोंमें रुकजाय, शब्द मुखसे शुद्ध निकलै और कफका  
वर्ण स्वामाविक होजाय तो जानना कि पीनस पकगया  
है ॥ ३५ ॥

अथ नासारोगचिकित्सा ।

सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमा-  
त्रेषु ॥ मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जीत नरः  
सुखं लभते ॥ ३६ ॥ कटुफलं पौष्करं  
शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी ॥ एषां चूर्णं  
कषायं वा दद्यादाद्र्कजै रसैः ॥ ३७ ॥  
पीनसे स्वरभेदे च तमके च हलीमके ॥  
सन्निपाते कफे कासे ज्वरे श्वासे च श-  
स्यते ॥ ३८ ॥ कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षा-  
स्वरसकटफलैः ॥ कुष्ठोग्रशिथुजन्तुघ्नैरव-  
पीडः प्रशस्यते ॥ ३९ ॥

पीनसादिषु ॥

सर्व प्रकारके पीनस ( नाकके रोग ) उत्पन्न होतेही  
तत्काल सदा गुडके और दहीके साथ मिरच खावे तो  
मनुष्योंको मुक्तकी प्राप्ति होती है ।

कायफल, पोहकरमूल, काकटार्शगी, सोंठ, मिरच,  
पीपल, जवासा और अजमाइन इनका चूर्ण अथवा इनका  
काथ ( काढा ) अदरकके रसके साथ देवे तो पीनस,  
स्वरभेद, तमकवास, हलीमक, सन्निपात, कफ, खाँसी,  
ज्वर और श्वास यह रोग शान्त होते हैं ।

इन्द्रजौ, हींग, मिरच, लावका स्वरस, कायफल, कुठ,  
वच, सृजना और वायविटग, इनका अवपीठ नस्य  
देवे तो पीनस आदिरोग नष्ट होते हैं ॥ ३६-३९ ॥

अथ व्योषादिवटी ।

व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लवेतस-  
मं ॥ सचव्याजाजितुल्यांशमेलान्वक्त्र-  
पादिकम् ॥ ४० ॥ व्योषादिकमिदं चूर्णं  
पुराणगुडमिश्रितम् ॥ पीनसश्वासका-  
सघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ ४१ ॥

सोठ, मिरच, पीपल, चीता, तालीसपत्र, तितिडीक,  
अमलवेत, चव और जीरा, इनको समान भाग लेवै और  
इलायची, तेजपात, दालचीनी इनको चतुर्थांश लेवै, इन  
सबका चूर्ण कर इनकी पुराने गुडमे गोली बनाकर खावे  
तो इससे पीनस, श्वास तथा खोंसी नष्ट होजातीहै, रुचि  
उत्पन्न होतीहै और स्वर उत्तम होताहै, इन गोलियोंको  
'व्योषादिवटी' नामसे कहतेहैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ व्याघ्रीतैलम् ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिशुसुरसाव्योषसिन्धु-  
जैः ॥ सिद्धं तैलं नसि क्षिप्तं पूतिनासा-  
गदापहम् ॥ ४२ ॥

कटेरीकी जड़, दन्ती, वच, सहजना, तुलसी, सोठ,  
मिरच, पीपल और सैबा, इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका  
नस्य देवै तो पूतिनस्य नष्ट होजाताहै । यह 'व्याघ्रीतैल'  
कहाताहै ॥ ४२ ॥

अथ शिशुतैलम् ।

शिशुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसै-  
न्धवैः ॥ बिल्वपत्रस्सैः सिद्धं तैलं स्यात्पू-  
तिनस्यनुत् ॥ ४३ ॥

निकुम्भो दन्ती । पूतिनस्यनुत्स्यात् ।

सहजनेके बीज, कटेरीके बीज, दन्तीके बीज ( जमा-  
लगोटा ), सोठ, मिरच, पीपल, और सैधानिमक इनके  
कल्कसे बेलके पत्तोंके पकाये हुए तेलका नास्य देवै तो  
इससे पूतिनस्य नष्ट होताहै यह शिशुतैल कहाताहै ॥ ४३ ॥

घृतगुग्गुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः ॥  
धूमं क्षवधुरोगघ्नं श्रुशुभ्रञ्च निर्दिशेत् ॥  
॥ ४४ ॥ शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्क-

कषायवत् ॥ तैलं पक्वमथाज्यं वा नस्या-  
त्क्षवधुराशनम् ॥ ४५ ॥ नस्यं हितं  
निम्बरसाञ्जनाभ्यां दीप्ते शिरःस्वेदनम-  
ल्पशस्तु ॥ नस्ये कृते क्षीरजलावसेका-  
च्छंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूषैः ॥ ४६ ॥  
नासास्त्रावे घ्राणयोश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं  
येऽवपीडाश्च पथ्याः ॥ तीक्ष्णान्धूमान्देव-  
दार्वाभिकाभ्यां मासं त्वाजं पथ्यमत्रादि-  
शन्ति ॥ ४७ ॥ प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं  
वातविवर्जितम् ॥ वस्त्रेण गुरुणा तेन  
शिरसो वेष्टनं हितम् ॥ ४८ ॥ विडङ्गं  
सैन्धवं हिङ्गु गुग्गुलुः समनःशिलः ॥  
वचैतच्चूर्णमाघ्रातं प्रतिश्यायं विनाशयेत् ॥  
घृततैलसमायुक्तं शक्तुधूमं पिबेन्नरः ॥  
॥ ४९ ॥ सधूमः स्यात्प्रतिश्यायकासहि-  
क्काहरः परः ॥ प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्व-  
गन्धसमायुतम् ॥ चातुर्जातकचूर्णं वा  
त्रेयं वा कृष्णजीरकम् ॥ ५० ॥

कृष्णजीरकमत्र कलौञ्जी ॥

पुटपक्वं जयापत्रं तैलसैन्धवसंयुतम् ॥  
प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौष-  
धम् ॥ ५१ ॥

जया विजया भङ्गेति यावत् । शीलितं  
भुक्तम् ॥

पिप्पल्यः शिशुबीजानि विडङ्गमरिचानि  
च ॥ अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनि-  
वारणे ॥ ५२ ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनैः स्वेदै-  
र्नस्यैर्मन्दोष्णभोजनैः ॥ वमनैर्घृतपानैश्च  
तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ ५३ ॥ किमिघ्ना  
ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्वै किमिषु योजयेत् ॥  
तावनानि कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धि-  
मान् ॥ ५४ ॥ रक्तपित्तानि शोथाश्च  
तथार्शस्यर्बुदानि च ॥ नासिकायां स्युरे-



तेषां स्वस्वं कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ ५५ ॥  
गृहधूमकणादारुक्षीरनक्ताहसैन्धवैः ॥  
सिद्धं शिखरिवीजैश्च तैलं नासार्शसां  
हितम् ॥ ५६ ॥

इति नासारोगाधिकारः ।

घी, गूगल तथा मोम मिलाकर इनका प्रयत्नसे धुम-  
पान करे तो धवथ तथा भ्रगथ नष्ट होता है । सोठ, कूठ,  
पीपल, बेल और दाख इनके कलकसे इनकेही काथमें  
पकाये हुए तेलका अथवा घीका नस्य देवे तो इससे  
खवथका नाश होता है ।

नीम और रमांत, इनका नास देवे और मस्तकमें  
थोड़ा सेक करे तो दीप्तिनामक नाकका रोग नष्ट होता है,  
नस्य देनेके पश्चात् दूध और जलका सेचन करे और  
मूँगेके गृपके साथ भोजन करे ।

नासान्नाय हुआ होय तो कही आँपविद्योका चूर्ण  
नलीसे नाकमें डाले, हितकारी अथपीटननस्य देवे, टेबदार  
तथा चीतेका तीक्ष्ण धुआँ पिलावे और बकरेका मास  
खिलावे ।

सम्पूर्ण प्रकारके प्रतिद्वयाद्योमे विना पवनके घरमें रहना  
और मन्तककी गांठे कपड़ेमें बंधा रखना यह हितकारी  
होता है ।

वायविडग, सैवानोन, हीग, गूगल, सैनशिल और  
वच इनका चूर्ण गूधे तो प्रतिग्यायका नाश होता है ।

घीये तथा तेलसे संयुक्त किये मत्तुओंका घुँओं पिये  
तो, प्रतिग्याय, ग्यांगी और हिचकी यह अवश्य नष्ट  
होते हैं ।

तेजपात, इलायची तथा टालचीनी आदि सब सुग-  
न्धित पदार्थोंका उबला रिथे अथवा तेजपात, इलायची,  
टालचीनी और नागजेशर इनका चूर्ण सूँधे अथवा कल्ले  
जीरे जीरेका चूर्ण सूँधे तो प्रतिग्याय नष्ट होता है ।

भागते पत्तोंकी पुटपातसे पकाकर तेलके और सैन्ध-  
वोंके साथ गन्धेका अभ्यास रखे तो सम्पूर्ण प्रकारके  
प्रतिग्याय अवश्य नष्ट होते हैं ।

पीपल, गर्दभके बीज, वायविडग और निरञ्ज इनका  
अर्धतक नस्य देवे तो प्रतिग्याय नष्ट होता है ।

रोदन करनेमें, नस्यमें नष्ट मर्दन करनेमें, नस्य  
देनेमें, विनियोगमें भोजन, तपन वगनमें योग नी

पिलनेसे योग्यता देखकर प्रतिग्यायके ऊपर उपचार करे ।  
प्रतिग्यायमें कीड़े पड़े होय तो बुद्धिमान् वैद्य कृमि-  
नाशक जो २ उपाय, नस्य अथवा औषधि कही हैं उनका  
प्रयोग करे ।

नाकमें रक्तपित्त, मूजन, अर्श अथवा अर्बुद होय तो  
उनके लिये उस उस अधिकारमें जो जो चिकित्सा कही  
है वही वह करे ।

घरके घुँएका घूमासा, पीपल, देवदारु, दूध, करंज,  
सैधानोन और चिरचिटेके बीज, इनसे पकाया हुआ तेल  
नाकके अर्शोंपर हितकारी है ॥ ४४-५६ ॥

इति नासारोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ मुखरोगाधिकारः ।

तत्र मुखस्वरूपम् ।

आंघ्रौ च दन्तमूलानि दन्तजिह्वे च तालु  
च ॥ गलो मुखानि सकलं सप्ताङ्गं मुखमु-  
च्यते ॥ १ ॥

ऊपर नीचेके होठ, दाँतोंके समूह, दाँत, जीभ, तालु  
और गला, यह सात अंग मिलनेसे मुख कहाता है ॥ १ ॥

अथ मुखरोगसंख्या ।

स्युरघ्रावांघ्रयोर्दन्तमूले तु दश षट् तथा ॥  
दन्तेष्वघ्रौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव ता-  
लुनि ॥ २ ॥ कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्तास्त्रयः  
सर्वेषु च स्मृताः ॥ एवं मुखामयाः सर्वे  
सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥ ३ ॥

ओठोंमें आठ रोग, दाँतोंकी जड़में सोलह रोग,  
दाँतोंमें आठ रोग, जीभमें पाँच रोग, तालुमें नौ रोग,  
गलेमें अठारह रोग, और सम्पूर्ण मुखमें तीन रोग, इस  
प्रकार मुखके सम्पूर्ण सदसद ६७ रोग हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ मुखरोगनिदानम् ।

आनूपपिशितक्षारदधिमाषादिसेवनात् ॥  
मुखमव्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफो-  
त्तराः ॥ ४ ॥

अनूपदेशके प्राणियोंका मास सेवन करनेमें,  
क्षारोंके सेवनमें, दहीके सेवनमें और उददआदिके

सेवनसे, प्रकुपित हुए कफादि दोष मुखके रोगोंको उत्पन्न करे हैं ॥ ४ ॥

**अथौष्ठरोगनिदानपूर्वकसंख्या ।**

**पृथग्दोषैः समस्तैश्च रक्तजो मांसज-  
स्तथा ॥ मेदजश्चाभिघातोत्थ एवमष्टौ-  
ष्ठजा गदाः ॥ ५ ॥**

वात, पित्त, कफ, तीनों दोष, रुधिर, मांस, मेदा और अभिघातसे उत्पन्न हुए, इस भाति होठके आठ रोग हैं ॥ ५ ॥

**अथ वातजौष्ठरोगलक्षणम् ।**

**कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ ॥  
दाल्येते परिपादयेते ओष्ठौ मारुतको-  
पतः ॥ ६ ॥**

परुषौ रूक्षौ । दाल्येते विदार्येते । परि-  
पादयेते किञ्चिद्भिदीर्णत्वचौ क्रियेते ॥

दोनों ओष्ठ खरखरे, रूक्ष, स्तब्ध ( जकड़ेसे ) तीव्र वेदनायुक्त चिरेहुए और किञ्चित् फटेहुए चमड़ेवाले होयें तो वायुसे उत्पन्न हुआ ओष्ठरोग जानना ॥ ६ ॥

**अथ पित्तजौष्ठरोगलक्षणम् ।**

**चीयेते पिडिकाभिस्तु सरुजाभिः सम-  
न्ततः ॥ सदाहपाकपिडकौ पीताभासौ  
च पित्ततः ॥ ७ ॥**

**सरुजाभिः पैत्तिकरुगन्विताभिः ॥**

दोनों ओष्ठ चारों ओर पित्तसम्बन्धी पीडा करने-  
वाली फुसियोंसे घिरजायें, वर्ण पीला होजाय और उन  
फुसियोंमें दाह हो तथा वे फुसियें पकें तो पित्तसे हुआ  
ओष्ठरोग जानना ॥ ७ ॥

**अथ कफजौष्ठरोगलक्षणम् ।**

**सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवे-  
दनौ ॥ कण्डूमन्तौ कफाच्छेत्तौ पिच्छ-  
लौ शीतलौ गुरु ॥ ८ ॥**

दोनों ओष्ठ शरीरके चमड़ेकी सट्टश वर्णवाली फुडियो-  
से व्याप्त होजायें अल्प वेदना हो, खुजली सफेदी, चिक-  
नापन होजायें, शीतल तथा भारी-होजायें तो कफसे हुए  
ओष्ठरोग जानने ॥ ८ ॥

**अथ त्रिदोषजौष्ठरोगलक्षणम् ।**

**सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छेत्तौ तथैव च ॥  
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकान्वितौ ॥ ९ ॥**

दोनों ओष्ठ किसी समय काले, किसी समय पीले,  
किसी समय सफेद और अधिक फुडियोसे युक्त होजायें  
यह तीनों दोषोंसे युक्त हुए ओष्ठ, रोगके लक्षण  
जानने ॥ ९ ॥

**अथ रक्तजौष्ठरोगलक्षणम् ।**

**खर्जूरफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ ॥  
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवन्तौ शोणित-  
प्रभौ ॥ १० ॥**

दोनों ओठोंमें खजूरके फलकी सट्टश वर्णवाली फुसि-  
योंसे पीडित, रुधिरके साववाले, और लाल प्रभावाले  
होजायें तो रुधिरसे हुए ओष्ठके रोग जानने ॥ १० ॥

**अथ मांसजौष्ठरोगलक्षणम् ।**

**मांसदुष्टौ गुरु स्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ ॥  
जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो  
मुखात् ॥ ११ ॥**

जन्तवः कृमयः । मूर्च्छन्ति वर्द्धन्ते ।  
मुखादुभयतः सृक्किण्योः ।

दोनों ओष्ठ भारी, मोटे और मांसके पिण्डकी सट्टश  
ऊँचे होजायें और उन दोनों ओठोंमें अथवा ओठोंके  
समीपके मांसमें कीड़े पडजायें तो मांससे हुए ओठके  
रोग जानने ॥ ११ ॥

**अथ मेदजौष्ठरोगलक्षणम् ।**

**सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू ॥  
स्वच्छस्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो  
भृशम् ॥ १२ ॥**

दोनों ओष्ठ घीकी पपड़ीकी समान, खुजलीवाले, कोमल  
और स्वच्छ स्फटिककी सट्टश, सावसे युक्त होयें तो  
मेदसे हुए ओष्ठरोग जानने ॥ १२ ॥

**अथाभिघातजौष्ठरोगलक्षणम् ।**

**क्षतजाभौ विदार्येते पीडयेते चाभिघा-  
ततः ॥ मथितौ च समाख्यातावोष्ठौ क-  
ण्डूसमान्वितौ ॥ १३ ॥**

मथितौ मृदिताविव अत एव क्षतजाभौ  
रुधिराभाविति संगतम् ॥

दोना ओठ चोट लगनेसे मानों चिरसे गये होय इसी कारणसे रुधिरकी समान वर्णवाले होजायँ, पीडा होय, अथवा चिरजायँ और खुजली होय तो जानना कि ओष्ठोंमें चोट लगी है ॥ १३ ॥

### अथौष्ठरोगचिकित्सा ।

गलदन्तमूलदशनच्छदेषु रोगाः कफास्र-  
भूयिष्ठाः ॥ तस्मादेतेष्वसकृद्गुधिरं विस्रा-  
वयेदुष्णम् ॥ १४ ॥ चतुर्विधेन स्नेहेन  
मधूच्छिष्टयुतेन च ॥ वातजेऽभ्यञ्जनं कुर्या-  
न्नाडीस्वेदश्च बुद्धिमान् ॥ १५ ॥

चतुर्विधेन स्नेहेन तैलवृतवसामञ्जारूपेण ॥  
वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य  
पानं रसभोजनञ्च । शीताः प्रदेहाः परि-  
षेचनञ्च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ १६ ॥  
शिरांविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च ॥  
हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥  
॥ १७ ॥ मेदोजे शोधिते सिक्ने स्वेदिते  
कवलो हितः ॥ प्रियंगुत्रिफलालोध्रं  
सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥

गलेमें, दाताकी जड़में और ओष्ठोंमें जो रोग होते हैं उनमें कफ और रुधिरकी प्रधानता होती है, इस कारण इन रोगोंमें बारबार गरम गरम दुष्ट रुधिर निकलवाना चाहिये ।

वायुमें हुए ओष्ठ रोग होय तो चार प्रकारका स्नेह ( तून तेल वसा और मज्जा ) में मोम डालके मालिश करे अथवा नाडी स्वेद करे ।

नित्तमें हुए ओष्ठ रोग होय तो नस छेदकर रुधिर निराने, वमन करावे, विरेचन देवे, तिक्तक नामवाला पिलाने, माषका रस पिलाने, शीतल लेव करे और शीतल सेचन करे ।

कफमें हुए ओष्ठके रोग होय तो रुधिर निकलवानेके पंढे निमोचन ( मन्तकको दोपोंसे चाली करनेका उपाय ) देव, धुआ पिलाने, स्वेदन करे और कुल्ले भी करावे ।

मेदमें हुए ओष्ठके रोग होय तो विरेचन आदिसे शोधन करे, रक्त स्वेदन करावे, कवल देवे, शीतल लगावे और

प्रियंगु, हरड, बहेडा, आमले तथा लोध, इनको सहितमें मिलाकर ओष्ठोंपर प्रतिसारणविधि करे ॥ १४-१८ ॥

### अथ प्रतिसारणविधिः ।

दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः ॥  
शनैर्धर्षणमंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥  
॥ १९ ॥ ओष्ठरोगेष्वशेषेषु दृष्ट्वा दोष-  
मुपाचरेत् ॥ तेषु व्रणत्वं जातेषु व्रणव-  
त्समुपाचरेत् ॥ २० ॥

अगुलीसे चूर्ण, कल्क अथवा अवलेह, लेकर दातोंको जीभको, तथा मुखको धीरे धीरे धिसे इसको 'प्रतिसारण' कहते हैं ओष्ठके सम्पूर्ण प्रकारके रोगोंमें दोषका निश्चय करके उस दोषको नष्ट करे ऐसा प्रतिसारण करावे जो ओष्ठोंके रोग व्रणरूप होजायँ तो उनकी व्रणकी समानही चिकित्सा करे ॥ १९ ॥ २० ॥

### अथ दन्तवेष्वज्जरोगाणां नामानि संख्या च ।

शीतादो गदितः पूर्वं दन्तपुष्पुटकस्तथा ॥  
दन्तवेष्वः सौषिरश्च महासौषिर एव च ॥  
॥ २१ ॥ ततः परिदरः प्रोक्तस्ततस्तूप-  
कुशः स्मृतः ॥ वैदर्भश्च ततः प्रोक्तः  
खल्लिवर्द्धन एव च ॥ २२ ॥ अधिमांस-  
कनामा च दन्तनाड्यश्च पञ्च च ॥  
दन्तविद्रधिरप्यत्र दन्तवेष्वेषु षोडश ॥ २३ ॥

शीताद, दन्तपुष्पुट, दन्तवेष्व, सौषिर, महासौषिर, परिदर, उपकुश, वैदर्भ, खल्लिवर्द्धन, अधिमांसक, पाच प्रकारकी दन्तनाडी और दन्तविद्रोधि, इसप्रकार दानोकी जड़में सोलह रोग होते हैं ॥ २१-२३ ॥

### अथ शीतादलक्षणम् ।

शोणितं दन्तवेष्वेभ्यो यस्याकस्मात्प्रव-  
र्तते ॥ दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि  
मृदूनि च ॥ २४ ॥ दन्तमांसानि शीर्यन्ते  
पचन्ति च परस्परम् ॥ शीतादो नाम स  
व्याधिः कफशोणितसम्भवः ॥ २५ ॥

दन्तवेष्वेभ्यः दन्तवेष्वनमांसेभ्यः । अक-  
स्मादभिघातं विना । शीर्यन्ते पतन्ति । पचन्ति

च परस्परं पाकोष्मणा मांसानि शोणितं पचन्ति ॥

दाँतोंकी जड़मेंसे बिना अभिघात अकस्मात् ही रुधिर निकले, मसूढोंका मांस दुर्गन्धवाला, काला, गिलगिला, तथा कोमल होकर गिरे और पकनेकी गरमीसे रुधिर पकने लगे, उसको ग्रीताद कहतेहैं, यह रोग कफके तथा रुधिरके प्रकोपसे होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ दंतपुष्पुटकलक्षणम् ।

दन्तयोस्त्रिषु वाप्यत्र श्वयथुर्जायते महान् ॥ दन्तपुष्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ २६ ॥

दो दाँतोंमें अथवा तीन दाँतोंमें अधिक सूजन उत्पन्न होय उस रोगको दन्तपुष्पुटक कहतेहैं, यह रोग कफके और रुधिरके प्रकोपसे होताहै ॥ २६ ॥

अथ दन्तवेष्टलक्षणम् ।

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च ॥ दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणित-सम्भवः ॥ २७ ॥

अत्र दन्तमूलानीति कर्तृपदमध्याहरणीयम् ॥

मसूढोंमेंसे रुधिर अथवा राघ ( पीप ) निकले और दाँत हलजायँ, इस रोगको दन्तवेष्ट कहतेहैं । यह रोग रुधिरके विगडनेसे होताहै ॥ २७ ॥

अथ सौषिरलक्षणम् ।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफवातजः ॥ लालास्रावी च कण्डूरः स यः सौषिरो गदः ॥ २८ ॥

मसूढोंमें पीडासहित, लार गिरानेवाला और खुजली-सहित सूजन होय उस रोगको सौषिर कहतेहैं । यह रोग कफके तथा वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ २८ ॥

अथ महासौषिरलक्षणम् ।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ॥ दन्तमांसानि पच्यन्ते सुखञ्च परिवाप्यते ॥ यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ २९ ॥

तालु चाप्यवदीर्यते चकारादन्तवेष्टश्चाप्यवदीर्यते सप्तरात्रान्मारकश्चायम् । यत् आह भोजः—

“महासौषिर इत्येष सप्तरात्रान्निहन्त्यसू-न्” ॥ ३० ॥ इति ।

मसूढोंमें दाँत हिलने लगे, तालू और मसूढे फटने लगे, मसूढे पकजायँ और मुख अत्यन्त पीडित होय इस रोगको महासौषिर कहतेहैं, यह रोग तीनों दोषोंके प्रकोपसे होताहै । यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मार-देताहै क्योंकि, भोज कहताहै कि “यह महासौषिर रोग सात रात्रिमें प्राणोंका नाश करदेताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ परिदरलक्षणम् ।

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्टीवति चाप्यसृक् ॥ पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ ३१ ॥

दाँतोंका मांस बिखर जाय, और थूकमें रुधिर निकले इस रोगको परिदर कहतेहैं यह रोग पित्त, रुधिर और कफके प्रकोपसे होताहै ॥ ३१ ॥

अथोपकुशलक्षणम् ।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च ॥ आघट्टिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम् ॥ ३२ ॥ आध्मायन्ते स्त्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते ॥ यस्मिन्नुप-कुशः स स्यात्पित्तरक्तसमुद्भवः ॥ ३३ ॥

आघट्टिताः वृष्टाः ॥

मसूढोंमें दाह होय और पकजायँ, दाँत हिलने लगे, मन्द वेदनायुक्त रुधिरका स्राव होय और रुधिरके स्राव होनेपर मुख सूज जाय तथा दुर्गन्ध आने लगे इस रोगको उपकुश कहतेहैं, यह रोग पित्त तथा रुधिरके प्रकोपसे होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ वैदर्भलक्षणम् ।

वृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान् ॥ चलन्ति च रदा यस्मिन्स वैदर्भोऽभिघा-तजः ॥ ३४ ॥

संरम्भः शोथः । चलन्ति चेति चकारादे-दनादाहपाकाः ॥

मसूढ़ोंके घिसनेसे अत्यन्त सूजन होय, दात हिलने लगे और वेदना होय तथा पाक और दाह होय इस रोगको वैदर्भ कहतेहैं, यह रोग काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे होताहै ॥ ३४ ॥

अथ खल्लिवर्द्धनलक्षणम् ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः॥

खल्लिवर्द्धनसंज्ञोऽसौ सञ्जाते रुक्प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

सञ्जाते दन्ते ॥

दातके ऊपर अधिक दात जम आवे और उत्पन्न होते समय विशेष पीडा होय, उत्पन्न होनेके पीछे पीडा शांत होजाय उस रोगको खल्लिवर्द्धन कहतेहैं । यह वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ ३५ ॥

अथाधिमांसलक्षणम् ।

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाशोथो महारुजः॥

लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ ३६ ॥

हानव्ये हनुभवे पश्चिमे दन्ते अन्त्यजे ॥

नीचेकी पीछेकी डाढ़में घोर पीडायुक्त त्वावगहित भारी सूजन उत्पन्न होय उस रोगको अधिमांस कहतेहैं यह कफके प्रकोपसे होताहै ॥ ३६ ॥

अथ पंचविधदन्तनाडीलक्षणम् ।

दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ ३७ ॥

यथा नाडीत्रणे वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्ताः पञ्च नाड्यः कथितास्तथा अत्रापीत्यर्थः ॥

जिस प्रकार नाडीत्रणमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और मन्दस उत्पन्न हुई पांच प्रकारकी नाडी कही हैं, ऐसी पांच प्रकारकी नाडी दातोंके मसूढ़ोंमें कही हैं इसप्रकार इनके लक्षण नाडीत्रणानिर्णयमें कहे अनुगारणमें ॥ ३७ ॥

अथ दन्तविद्रविलक्षणम् ।

दन्तमांसमलैः सासैर्वागितः अवयवधुर्महान् ॥ सदाह्रस्वमवेद्भिन्नः पृथासं दन्तविद्रधिः ॥ ३८ ॥

दन्तम समलेर्दन्तवेष्टगतदोषैः सासैः सरक्तैर्हेतुभिः ॥

मसूढ़ोंमें स्थित, वात, पित्त, कफ और रुधिर इन दोषोंके कारण बाहर दाह तथा वेदनायुक्त महासूजन उत्पन्न होती है और उसको छेदनेसे राध तथा रुधिर निकलताहै, इस रोगको दन्तविद्रधि कहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ दन्तवेष्टरोगचिकित्सा ।

शीतादे हतरक्ते न तोये नागरसर्षपान् ॥

निष्काथ्य त्रिफलाञ्चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ॥ ३९ ॥

कासीसलोधकृष्णामनःशिलाप्रियंगुतेजोह्वाः ॥ एषां चूर्णं मधुयुक्छीतादे प्रतिमांसहरम् ॥ ४० ॥

तेजोह्वा तेजवलकल इति लोके ॥

तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे सम्प्रशस्यते ॥ दन्तपुष्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ॥ ४१ ॥

सपञ्चलवणक्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम् ॥ शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्निग्धश्च भोजनम् ॥ ४२ ॥

विस्त्राविते दन्तवेष्टे त्रणन्तु प्रतिसारयेत् ॥ पतङ्गलोधमधुकलाक्षचूर्णैर्मधुप्लुतः ॥ ४३ ॥

प्रतिसारयेदङ्गुल्या वर्षयेत् ॥ पतङ्गश्चोक्त इति लोके ॥

गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ चलदन्तस्थिरकरं कार्यं वकुलचर्वणम् ॥ ४४ ॥

शीतादरोग हुआ होय तो रुधिर निकलवाकर पश्चात् जलमें सोंड, सरसों, हरड़, बहेडा और आमले इनका काय बनाकर उस कायके कुट्टे वारण करे ।

हीरा कम्बूस, लोध, पीपल, मेनशिल, फूलप्रियंगू, और तेजवल इनका चूर्ण बनाकर सदाहमें मिलाकर उपयोग करे तो शीतादसे सदा हुआ मांस दूर होजाताहै ।

जायुको हग्नेवाले तेलका और घीका उपयोग करनेसे शीताद रोग नष्ट होताहै ।



दन्तपुण्डुरोग उत्पन्न होय तो तत्कालही उसमेसे रुधिर निकलवावे ॥

पांचो निमकके साथ जवाखारको सहतमें मिलाकर प्रतिसारण करे, मस्तकको खाली करनेवाला नास देवे और स्निग्ध भोजन करावे यह परम हितकारक है ॥

दन्तवेष्ट हुआ होय तो उसमेसे रुधिर निकाल कर उस त्रणके ऊपर अगुलीसे लोघ, पतंग, मुलैठी, और लाख इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर खूब घिसे ।

बटादि पंचक्षीरी वृक्षोंका काथ बनाकर उसमे सहत, घी तथा मिश्री डालकर उससे कुल्ले करे और मौलसरीकी छालको चर्वण करे तो हिलते हुए दांत स्थिर होजातेहैं ॥ ३९-४४ ॥

अथ मुस्तादिवटिका ।

भद्रमुस्ताभयाव्योषविडंगारिष्टपल्लवैः ॥  
गोमूत्रपिष्टैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्प-  
येत् ॥ ४५ ॥ तां निधाय मुखे सुप्या-  
च्चलदन्तातुरो नरः ॥ नातः परतरं किञ्चि-  
च्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ ४६ ॥

नागरमोथा, हरड, सोठ, मिरच, पीपल, वायविडंग और नीमके पत्ते इनको गोमूत्रमे पीसकर गोली बनाकर छायामें सुखावे । इन गोलियोंको मुखमें रखकर सो जावे तो हिलते हुए दांत स्थिर होजाते हैं । हिलते हुए दांतों-वाले मनुष्यके लिये इस औषधिसे अधिक अन्य औषधि फलदायक नहीं है । यह गोली मुस्तादिवटिका कही जातीहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ सहचराद्यतैलम् ।

तुलाघृतं नीलसहाचरन्तु द्रोणाम्भसा  
संश्रपयेद्यथावत् ॥ ततश्चतुर्भागरसे तु तैलं  
पचेच्छनैरर्द्धपलप्रमाणैः ॥ ४७ ॥ कल्कै-  
रनन्ताखदिरैरिमेदजम्बवाम्रयष्टीमधुकोत्प-  
लानाम् ॥ ततैलमाज्यश्च घृतं मुखेन स्थैर्यं  
द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ ४८ ॥

नीलसहाचरः ( नीलपुष्पकटसरैया ) ।  
अनन्ता दुरालभा तदलाभे यवासो ग्राह्यः ।  
इरिभेदो दुर्गन्धखदिरः ॥

नीले फूलका पियावासा ४०० चारसौ तोले लेकर १०२४ एकहजार चौबीस तोले जलमें पकावे, जब पकते

पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसमे धमासा, खैर, दुर्गाधित खैर, जामुनके पत्ते, आमके पत्ते, मुलैठी और कमल यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर कल्क बना उसमें डालकर उसमे तेल अथवा घीको धीरे धीरे पकावे, जो धमासा न मिले तो जवासा ले लेवे, इस तेलको अथवा घीको मुखमे रखनेसे इससे तत्काल दांत स्थिर होजातेहैं । यह तेल अथवा घी सहचराद्य कहा जाताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सौषिरे हतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः ॥  
सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो  
हिताः ॥ ४९ ॥ क्रियां परिदरे कुर्या-  
च्छीतादोक्तां विचक्षणः ॥ संशोष्योभयतः  
कार्याः शिराश्चोपकुशे तथा ॥ ५० ॥

सौषिर उत्पन्न हुआ होय तो उसमेसे रुधिर निकलवा-  
कर पश्चात् लोघ, नागरमोथा और रसौत इनके चूर्णको सहतमे मिलाकर लेपकरे और बड आदि क्षीरी वृक्षोंके काथका कुल्लाकरे । परिदर हुआ होय तो विचक्षण वैद्य शीतादकी समान चिकित्सा करे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कोष्ठोदुम्बरिकापत्रैर्व्रणं विस्त्रावयेद्भि-  
षक् ॥ लवणैः क्षौद्रयुक्तैश्च सव्योषैः प्रति-  
सारयेत् ॥ ५१ ॥

उपकुश हुआ होय तो प्रथम सशोधन करके पश्चात् दोनों तरफ मुख करे, त्रणोंका कठूमरके पत्तोंसे राध और रुधिर निकलवाकर पांचो निमक, सोठ, काली मिर्च, तथा पीपल इनको सहतमे मिलाकर प्रतिसारण करे ॥ ५१ ॥

शस्त्रेणोद्धृत्य वैदर्भं दन्तमूलानि शोध-  
येत् ॥ ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च  
शीतलाः ॥ ५२ ॥

वैदर्भ हुआ होय तो उसको शस्त्रसे चीरकर मसूढ़ोंको शुद्धकरे, फिर क्षार लगावे और सम्पूर्ण शीतल क्रिया करे ॥ ५२ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत् ॥  
कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजा-  
नता ॥ ५३ ॥

उत्तिवद्धेन हुआ होय तो अधिक दातको उखाड़कर फिर अग्निसे दाग देवे और कृमिदत नामक रोगके लिये जो चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

छित्त्वाधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत् ॥  
वचातेजोवतीपाठास्वार्जिकायावशूकजैः ५४  
तेजोवती तेजोवल्कलः स्वर्णजीवन्ती च ॥  
क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवले चान्न  
कीर्तिताः ॥ ५५ ॥ पटोलनिम्बत्रिफला-  
कपायश्चान्न धावने ॥ नाडीव्रणहरं कर्म  
दन्तनाडीषु कारयेत् ॥ ५६ ॥

अधिमांसक- हुआ होय तो उसको चीरकर वच, तेजमूल, पाठ, सर्जी और जवाग्वार इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर इसका उपयोग करे । पीपलके चूर्णको सहतमें मिलाकर इसका उपयोग करे । पीपलके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसका कवल धारण करे और बौनेके लिये कडवे पगवल, नीम और त्रिफलेका काथ प्रयोग करे ॥ ५४-५६

यदन्तमध्ये जायेत नाडीदन्तं तदुद्धरेत् ॥  
॥ ५७ ॥ क्षिप्त्वा मांसानि शस्त्रेण  
यदि नोपरिजो भवेत् ॥ उद्धृत्य च दहे-  
च्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ ५८ ॥ भिन-  
त्युपेक्षिते दन्ते हनुमस्थिगतिर्ध्रुवम् ॥  
समूलं दशनं तस्मादुद्धरेद्भ्रमस्थि च ॥  
॥ ५९ ॥ उद्धृते तत्तरे दन्ते शोणितं प्रस्र-  
वेदति ॥ रक्ताभिषेकात्पूर्वाक्ता वोरा  
रोगा भवन्ति हि ॥ ६० ॥ काणः सञ्जा-  
यते जन्तुरादितं तस्य जायते ॥ चलम-  
प्युत्तरं दन्तमतो नैवाङ्गैरादिपक् ॥ धावनं  
जातिमदनस्वादुकण्टकखादिरैः ॥ ६१ ॥  
कषायैरिति शेषः ॥

नर प्रमादी दन्तद्विषयोंमें नाडीरोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

यदि दात में अधिक मांस होय तो दातके मध्यको जन्तु के दन्तसे दातको उखाड़ने के लिये ऊपरके दातको न उखाड़े वह प्रयोग करनेसे दातके मध्य में कष्ट है । दातको उखा-

डकर उसके ऊपर क्षार घुसकावे अथवा अग्निसे दाग देवे इस दातके उपेक्षा करनेसे अवश्य ठोड़ीकी हड्डीमें राध निकलने लगती है जिससे वह हड्डी नष्ट होजाती है, इस- कारण दातको जड़ सहित उखाड़ डाले और दूटो हुई हड्डीको भी निकाल डाले । जो ऊपरकी पंक्तिका दांत उखाड़े तो रुधिरका अत्यन्त त्वाव होता है । रुधिरके आति- योगसे पूर्वोक्त भयकर रोग उत्पन्न होते हैं, काणापन और अर्दितरोग होता है अत एव जो ऊपरका दात हिलता भी होय तो भी वैद्य उसको उखाड़े नहीं ॥ ५७-६१ ॥

### अथ जात्यादितैलम् ।

कषायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः ॥  
॥ ६२ ॥ मल्लिष्ठालोध्रखादिरयष्ट्याह्वै-  
श्चापि यत्कृतम् ॥ तैलं यत्साधितं तच्च  
हन्यादन्तगतां गतिम् ॥ ६३ ॥

जात्यादिचतुष्टयस्य कषायेण मल्लिष्ठा-  
दिचतुष्टयस्य च कषायेण तैलमिदं पचेत् ।  
जाती चम्बेली इति लोकं । तस्याः पत्रं  
ग्राह्यम् । मदनो धतूरस्तस्यापि पत्रमत्र  
ग्राह्यम् । कण्टकी ( वडीकटैया ) तस्याः  
मूलं ग्राह्यम् । स्वादुकण्टको गोक्षुरस्तस्य  
पश्चाद्ग्राह्यम् ॥

विद्वध्युक्तं विधि युक्तं विद्वद्भ्यादन्तविद्र-  
धौ ॥ शस्त्रकर्म नरस्तत्र कुशलो नैव  
कारयेत् ॥ ६४ ॥

चम्बेलीके पत्ते, धतूरके पत्ते, कटेरीकी जड़ और गोखु-  
रका पत्रांग इनके काथमें तथा खैर, मजीठ, लोध  
और मुल्लठी इनके काथमें पकाया हुआ तेल ' जात्यादि  
तैल' कहा जाता है, यह तेल दातके नागरको दूर करदेता है ॥

इतविद्रधिरोगमे विद्रधिरोगोक्त चिकित्सा करे, किन्तु  
शस्त्र किया न करे ॥ ६२-६४ ॥

### अथ दन्तरोगाणां नामानि संख्या च ।

ढालनः कथितः पूर्व कृमिदन्तक एव च ॥  
प्रोक्तो भञ्जनको दन्तहर्षो वै दन्तशर्करा  
॥ ६५ ॥ कपालिकात्र कथिता श्यावद-

न्तक एव च ॥ करालसंज्ञ इत्यष्टौ दन्त-  
रोगाः प्रकीर्तिताः ॥ ६६ ॥

दालन, कृमिदन्तक, भजनक, दंतहर्ष, दंतशर्करा, क-  
पालिका, श्यावदन्तक, और कराल इस प्रकार दांतोमे  
आठ रोग होतेहैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ दालनलक्षणम् ।

दीर्यमाणेष्विव रुजा यत्र दन्तेषु जायते ॥  
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमि-  
त्तजः ॥ ६७ ॥

दांत विदीर्णसे होते हैं अर्थात् चिरेसे जातेहैं ऐसी  
पीडा हो, इसको दालन कहतेहैं यह रोग वायुके प्रकोपसे  
होताहै ॥ ६७ ॥

अथ कृमिदन्तलक्षणम् ।

कृष्णच्छिद्रश्चलः स्यावी ससंरम्भो महा-  
रुजः ॥ अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञयो  
कृमिदन्तकः ॥ ६८ ॥

संरम्भः दन्तमूलशोथयुक्तः । तत्रैव स्यावो  
बोद्धव्यः । अनिमित्तरुजः अवघट्टनादिनि-  
मित्तं विनैव महारुजावान् ॥

दांतोंमें काले छिद्र होजाय, खुजली हो, मसूढ़ोंमे सू-  
जन हो, स्याव हो, बहुत पीडा और विनाही कारण वेदना  
होय इस रोगको कृमिदन्त कहतेहैं यह रोग वायुके प्रकोपसे  
होताहै ॥ ६८ ॥

अथ भजनकलक्षणम् ।

वक्रं वक्रं भवेद्यत्र दन्तभङ्गश्च जायते ॥  
कफवातकृतो व्याधिः स भजनकसंज्ञकः ६९

जिसमे मुख टेढा होजाय और दांत टूटकर गिरने लगें,  
उसको भजनक कहतेहैं. यह रोग कफ और वायुके प्रको-  
पसे होताहै ॥ ६९ ॥

अथ दंतहर्षलक्षणम् ।

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्वि-  
जाः ॥ तत्र स्युर्वातपित्ताभ्यां दन्तहर्षः  
स कीर्तितः ॥ ७० ॥

दांत शीत, रूक्ष, प्रबल वायु और खट्टे पदार्थोंके स्पर्श  
को नहीं सहसके इस रोगको दंतहर्ष कहतेहैं यह रोग  
वायु तथा पित्तके प्रकोपसे होताहै ॥ ७० ॥

अथ दंतशर्करालक्षणम् ।

मलो दन्तगतो यस्तु कफश्चानिलशो-  
षितः ॥ शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया  
दन्तशर्करा ॥ ७१ ॥

शर्करा सिकता ॥

दांतोमे रहनेवाला मैल वायुसे सूख जाय और कफ सू-  
खा या कफ रेतकी समान खरखरा होजाय इस रोगको  
दन्तशर्करा कहतेहैं ॥ ७१ ॥

अथ कपालिकालक्षणम् ।

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तेषु समलेषु  
च ॥ कपालिकेति विज्ञेया दन्तच्छिदन्त  
शर्करा ॥ ७२ ॥

कपालानि मृन्मयघटादिखण्डानि ते-  
ष्विव समलेषु दन्तेषु मलसहितदन्तावयवेषु  
दीर्यत्सु सत्सु या दन्तशर्करा सा कपालि-  
केति विज्ञेया सा कपालिका दन्तच्छिदन्त-  
नाशिनी ॥

मैलसहित दांतोके अवयव मट्टीके खपरेकी समान फटने  
लगें और उपरोक्त दंतशर्करा भी होय तो इस रोगको क-  
पालिका कहतेहैं यह कपालिकारोग दांतोको तोड़कर  
नाश करदेताहै ॥ ७२ ॥

अथ श्यावदन्तलक्षणम् ।

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशो-  
षतः ॥ श्यावतां नीलतां वापि गदः स  
श्यावदन्तकः ॥ ७३ ॥

दग्धः दग्ध इव ॥

रुधिरसहित पित्तसे जले हुएकी समान जो दांत सर्वथा  
काले अथवा नीले होजाय तो इस रोगको श्यावदन्तक  
कहतेहैं ॥ ७३ ॥

अथ कराललक्षणम् ।

शनैः शनैः प्रकुरुते यत्र दन्ताश्रितोऽ-  
निलः ॥ करालान्विकटान्दन्तान्स करा-  
लो न सिध्यति ॥ ७४ ॥

करालान् भयानकान् अयं सुश्रुतेनोक्तः  
संग्रहकारेण च ॥

दांतोंमे प्रात हुई वायु धीरे धीरे दांतोको भयानक

और विरुद्धकर देवै तो इस रोगको कराल कहतेहै ॥ ७४ ॥

अथ दंतरोगचिकित्सा ।

तत्र लाक्षाद्यतैलम् ।

तलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थमितं पचे-  
त् ॥ द्रव्यैः पलमितैरतैः कायैश्चापि  
चतुर्गुणैः ॥ ७५ ॥ लोभ्रकट्फलमज्जिष्ठा-  
पद्मकेसरपद्मकैः ॥ चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वै-  
स्तत्तैलं वदने धृतम् ॥ ७६ ॥ दालनं  
दन्तचालं च दन्तमोक्षं कपालिकाम् ॥  
शीतादं प्रतिवक्रश्च विरुचिं विरसास्य-  
ताम् ॥ ७७ ॥ हन्यादाशु गदानेतान्कु-  
र्यादन्तानपि स्थिरान् ॥ लाक्षादिकमिदं  
तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥ ७८ ॥

लायका रस ६४ तोले, दूध ६४ तोले और लोघ,  
कायफल, मजीठ, कमलकी केसर, पद्माख, चदन, लाल  
कमल और मुलैठी इनका चौगुना काथ इनमें येही लोघ  
आदि औषधि प्रत्येकका चार चार तोले कल्क डालकर  
इसमें ६४ तोले तैलको पकावे यह 'लाक्षाद्यतैल', सिद्ध  
होताहै । इस तैलको मुखमें रखनेसे दालन, दांतोंका  
दिलना, दांतोंका गिरना, कपालिका, शीताद, प्रतिवक्र,  
अरुचि और मुखकी विरसता यह रोग तत्काल नष्ट होजाते  
हैं और दातभी स्थिर होजाते हैं । यह लाक्षाद्यतैल दांतोंके  
रोगोंपर बहुत उत्तम गिनाजाताहै ॥ ७५-७८ ॥

जयेद्विस्त्रावणैः स्विन्नमवलं कृमिदन्त-  
कम् ॥ तथावर्षाडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधा-  
रणैः ॥ ७९ ॥ भद्रदावर्यादिवर्षाभूलेपैः  
जिन्धैश्च भोजनैः ॥ कृमिदन्तापहं कोष्णं  
हिंशु दन्तान्तरं स्थितम् ॥ ८० ॥

गिरपनर्तों ग्राम हुण कृमिदन्तागक रोगको स्वेदन  
रूपेण नष्टि निकलवाये । वातनाशक अवनींटोके, स्नेहके  
होनेसे भारण करनेसे, भद्रदाव आदि गणके तथा पुन-  
र्निके प्रयोगों से और निम्न भोजनोंसे दूर करे ।

रोगको दृष्टेक गरम करके दातके बीचमें अर्थात् दा-  
तोंके दन्तमें कृमिदन्त दूर होजाताहै ॥ ७९ ॥ ८० ॥

बृहतीभूमिकदम्बं पञ्चांगुलकण्टकारिका-  
काथः ॥ गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तवेद-  
नाशमनः ॥ ८१ ॥

कटाई, भूमिकदम्ब, सफेदएरड और कटेरी, इनका  
काथ बनाकर उसमें तैल मिलाकर उसके कुल्ले करनेसे  
कृमिदन्तकी पीडा शांत होजातीहै ॥ ८१ ॥

नीलीवायसजंघाकटुतुम्बीमूलमेकैकम् ॥  
सञ्चूर्ण्य दशनविधृतं दशनक्रिमिनाशनं  
प्राहुः ॥ ८२ ॥

नीली, काकजघा अथवा कडवी तोबी इन दोनोंमेंसे  
किसी एककी जड़का चूर्ण बनाकर दातोंमें रखनेसे कृमि-  
दन्तक रोग नष्ट होताहै ॥ ८२ ॥

स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिषस्त्रैवृत-  
स्य च ॥ निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्र-  
मर्दनाः ॥ ८३ ॥

त्रैवृतस्य सर्पिषः त्रिवृतापकस्य सर्पिषः  
कवल इत्यर्थः ॥

स्नेहिकोऽत्र हितो धूमो नस्यं स्नेहिकमेव  
च ॥ ८४ ॥ पेया रसा यवाग्वश्च क्षीर-  
सेन्तानिकाधृतम् ॥ शिरोवस्तिर्हितश्चापि  
क्रमो यश्चानिलापहः ॥ ८५ ॥

अत्र दन्तहर्षे ॥

अच्छिद्यन्दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्विषक् ॥  
लाक्षाचूर्णेर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत्  
॥ ८६ ॥ दन्तहर्षक्रियां चात्र कुर्यान्नि-  
रवशेषतः ॥ कपालिका कृच्छ्रतमा तत्रा-  
प्येषा क्रिया मता ॥ ८७ ॥

एषा क्रिया दन्तहर्षक्रिया ॥

फलान्यम्लानि शीताम्बु रुक्षान्नं दन्तधा-  
वनम् ॥ तथातिकठिनं भोज्यं दन्तरोगी  
न भक्षयेत् ॥ ८८ ॥

यून तैलादि स्नेहोंका सुहाता सुहाता कवल निसोतके  
ककसे पकाये हुए श्रीका कवल और वातनाशक पदार्थोंका  
काथ दन्तहर्ष रोगको दूर करे है ।

दंतहर्ष रोगपर स्नेहिक धूमपान, स्नेहिक नस्य, पेया, रसयुक्त यवागू, दूधकी मलाई, घी. शिरोवस्ति और चातनाशक क्रिया सब हितकारक ।

दंतशर्करा हुआ होय तो वैद्य दातोंकी जड़को नहीं छेदे किंतु दंतशर्कराको शस्त्रसे चीरकर निकाल डाले और फिर सहतमे लाखके चूर्णको मिलाकर प्रतिसारग करे ।

दंतहर्षके लिये जो चिकित्सा कहीं हैं वे सब दंतशर्करापर भी करनी चाहियें । कपालिका नामक दंतरोग यद्यपि अत्यंत कष्टसाध्य है तथापि उसपर दंतहर्षकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

दंतरोगवाले मनुष्योंको खट्टे पदार्थ, शीतल जल, रूखा अन्न, दंतौन और कठिन भक्ष्य नहीं सेवन करना चाहिये ॥ ८३-८८ ॥

अथ जिह्वारोगाणां निदानं नामानि संख्या च ।

वातजः पित्तजश्चापि कफजोऽलाससंज्ञकः ॥ उपजिह्विका च गदा जिह्वायां पञ्च कीर्तिताः ॥ ८९ ॥

वातज, पित्तज, कफज, अलास और उपजिह्विका इस प्रकार जीभके रोग पांच हैं ॥ ८९ ॥

अथ वातजजिह्वारोगलक्षणम् ।

जिह्वानिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥ ९० ॥

स्फुटिता मनाविविदीर्णा । प्रसुप्ता रसानामनभिज्ञतया सुप्तेव । शाकच्छदनप्रकाशा शाको मरुभूमिजद्रुमस्तद्वत्कण्टकाचिता । अयं लोके जली इति ख्यातः ॥

जिह्वा कुछेक फटगई होय, खट्टे मीठे रसोंके ज्ञानको नहीं जान सके, और मरुभूमिमें उत्पन्न होनेवाले सागोंन वृक्षके पत्तेकी समान काटोसे व्याप्त होय तो उसको वातसम्बन्धी जिह्वारोग जानना ॥ ९० ॥

अथ पित्तजजिह्वारोगलक्षणम् ।

पित्तासदाहैरुपचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥ ९१ ॥

दाहसहित, लम्बे और लाल कांटोंसे जीभ व्याप्त होगई होय तो उसको पित्तसे उत्पन्न हुआ जिह्वारोग जानना ९१

अथ कफजजिह्वारोगलक्षणम् ।

कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः ॥ ९२ ॥

बहुला स्थूला । मांसोच्छ्रयैः मांसजकण्टकैः ॥

कफसे जीभ भारी होजाय, मोठी हो, और वह सेमलके काटोंकी समान काटोसे व्याप्त होय तो उसको कफसे उत्पन्न जिह्वारोग जानना ॥ ९२ ॥

अथालासलक्षणम् ।

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ॥ जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ ९३ ॥

प्रगाढः प्रकर्षेण गाढो दारुणः कफरक्तमूर्तिः कफरक्ताभ्यां मूर्तिर्यस्य सः कफरक्तज इत्यर्थः । जिह्वास्तम्भेन वायुरप्यत्र बोद्धव्यः । भृशं पाकेन पित्तञ्च अतस्त्रिदोषजोऽयम् असाध्यत्वश्चास्य ॥

जीभके नीचे कफ और रुधिरके प्रकोपसे जो अत्यंत दारुण सूजन होय उसको अलास कहतेहैं । यह रोग बढ़कर जीभको जकड़ देताहै और इसमें जीभकी जड़ अत्यंत पकजातीहै ।

जिह्वाके स्तम्भन होनेके कारण इस रोगमें वायुका प्रकोप भी होताहै और जिह्वाकी जड़के अत्यंत पकनेसे पित्तका भी प्रकोप होताहै ऐसा सिद्ध होताहै । इस प्रकार यह रोग तीनों दोष और रुधिरके प्रकोपसे होनेके कारण असाध्य है ऐसा जानाजाताहै ॥ ९३ ॥

अथोपजिह्विकालक्षणम् ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः ॥ प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्तः प्रकथ्यतेऽसाधुपजिह्विकेति ॥ ९४ ॥

जिह्वाग्ररूपः जिह्वाग्राकृतिः ॥

कफ और रुधिर इन दोनोंके प्रकोपसे सूजन जीभको ऊंची कर देतीहै, जीभ अनीकी समान होतीहै और



लारके गिरनेसे, खुजली तथा दाह युक्त होती है इस मृज-  
नको उपजिह्वा कहते हैं ॥ ९४ ॥

### अथ जिह्वारोगचिकित्सा ।

जिह्वागतविकारणां शस्तं शोणितमोक्षण-  
म् ॥ गुडूचीपिप्पलीनिम्बकवलः कटुभिः  
सुखः ॥ ९५ ॥ ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं  
प्राक्चिकित्सितम् ॥ कण्ठकेष्वनिलोत्थेषु  
तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ९६ ॥ पित्तजे  
परिवृष्टे तु निःसृते दुष्टशोणिते ॥ प्रति-  
सारणगण्डूषनस्यश्च मधुरे हितम् ॥ ९७ ॥  
कण्ठकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये ॥  
पिप्पल्यादिर्मधुपुतः कार्यस्तु प्रतिसारणे  
॥ ९८ ॥ उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण  
प्रतिसारयेत् ॥ शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चै-  
नामुपाचरेत् ॥ ९९ ॥ व्याघ्रक्षाराभयाव-  
हिनूर्णमेतत्प्रघर्षणम् ॥ उपजिह्वाप्रशा-  
न्त्यर्थमेभिस्तैलश्च पाचयेत् ॥ १०० ॥

जिह्वागत रोगोंमें प्रथम रुधिर निकलावे, और गिलोय,  
नीम और पीपल इनका तीखे पदार्थोंके साथ कवल धारण  
करे यह हितकारक है ।

वातज ओष्ठरोगमें प्रथम जो चिकित्सा कही है वही  
निसिन्हा वातके उत्पन्न जीभके काटोपर करनी चाहिये ।

जो पित्तजन्य जिह्वारोग होय तो उसको घिसकर दूधिन  
रुधिरको निकालकर पश्चात् मधुर प्रतिसारण, मधुर कव-  
ल, और मधुर नला यह सब प्रयोग करे यह हितकारी है ।

जो रुध्रमे जिह्वाके ऊपर काटे हुए होय तो उन का-  
टोरो गहरकर रुधिर निकलवाकर फिर पिप्पल्यादिगणकी  
औषधियोंसे महत्तम उसका प्रतिसारण करे ।

उपजिह्वा होय तो उसको कतगुन धारसे प्रतिसारणकरे  
और निर्गोलिचन गण्डूष तथा तुम्पान इनसे उपचार करे ।

नट, निम्ब, पिप्पल, जाम्बान, एरड, और चीना इस  
पुनः ॥ शिरोविरेक उपरान्त इस नूर्णके तत्त्वसे तैलको पकाकर  
मुते ॥ ९५-१०० ॥

### अथ तालुरोगाणां नामानि संख्या च ।

गलशुण्डी तुण्डिकेर्यभूषः कच्छप एव च ।  
ताल्वर्बुदश्च कथितो मांससंघात एव च  
॥ १०१ ॥ तालुपुष्पुटनामा च तालुशो-  
षस्तथैव च ॥ तालुपाकश्च कथितास्ता-  
लुरोगा अमी नव ॥ १०२ ॥

गलशुण्डी, तुण्डिकेरी, अभ्रप, कच्छप, • ताल्वर्बुद,  
मांससंघात, तालुपुष्पुट, तालुशोष और तालुपाक इसप्र-  
कार तालुवेमें नौ रोग हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

### अथ गलशुण्डीलक्षणम् ।

श्लेष्मासृग्म्यां तालमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः  
शोथो ध्मातवस्तिप्रकाशः ॥ तृष्णाका-  
सश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठ-  
शुण्डीति नाम्ना ॥ १०३ ॥

ध्मातवस्तिप्रकाशः वातश्रितचर्मपुट-  
तुल्यः ॥

कफ और रुधिर दोनोंके प्रकोपसे तालुवेकी जड़मे बड़ी  
हुई, लम्बी, वायुसे भरी हुई मशककी समान और तृषा,  
खोमी तथा श्वासको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होती है  
उसको वैद्य गलशुण्डी कहते हैं ॥ १०३ ॥

### अथ तुण्डिकेरीलक्षणम् ।

शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी श्लेष्मासृ-  
ग्म्यां कीर्तिता तुण्डिकेरी ॥ १०४ ॥  
तुण्डिकेरी वनकार्पासीफलं तत्तुल्या ॥

तालुवेमे कफ और रुधिरके प्रकोपसे स्थूल, तोड़ने  
सरीखी पीडा और दाहसहित और पकनेवाली जो सूजन  
होती है उसको वैद्य तुण्डिकेरी कहते हैं ॥ १०४ ॥

### अथाभ्रूपलक्षणम् ।

शोथः स्तब्धो लोहितः शोणितोथो ज्ञेयो-  
ऽभ्रूपः सञ्चरस्तीव्ररुक्च ॥ १०५ ॥

रुधिरके प्रकोपसे तालुवेमें स्तब्ध ( जड़ ), लाल, ज्व-  
रसहित, और तीव्र पीडायुक्त जो सूजन होती है उसको वैद्य  
अभ्रूप कहते हैं ॥ १०५ ॥

अथ कच्छपलक्षणम् ।

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः

कच्छपः श्लेष्मणः स्यात् ॥ १०६ ॥

कूर्मोत्सन्नः मध्ये प्रोच्चः प्रान्ते नतः ॥

कफके प्रकोपसे तालुवेमे कछुवेकी समान बीचमें ऊंची और चारों ओर नीची और थोड़ी पीड़ावाली जो सूजन तत्काल उत्पन्न होती है उसको वैद्य कच्छप कहते हैं ॥ १०६ ॥

अथ ताल्वर्बुदलक्षणम् ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथ विद्याद्रक्ता-

दर्बुदं पित्तलिङ्गम् ॥ १०७ ॥

पद्माकारं पद्मकर्णिकावत्केसरैरिव प्रार्श्वतो दीर्घैर्मासांकुरैर्वेष्टितम् ॥

तालुवेके बीचमें रुधिरके प्रकोपसे कमलकी केसरकी समान लम्बे मासके अंकुरोंसे वेष्टित और सम्पूर्ण पित्तके लक्षणोयुक्त जो सूजन होती है उसको वैद्य ताल्वर्बुद कहते हैं ॥ १०७ ॥

अथ मांससंघातलक्षणम् ।

दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजश्च ताल्वन्तस्थं

मांससंघातमाहुः ॥ १०८ ॥

कफके प्रकोपसे तालुवेके भीतर पीड़ारहित जो दुष्ट-मांस एकत्रित होजाता है उसको 'मांससंघात' कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथ तालुपुष्पुटलक्षणम्

नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्मा मेदो-

युक्तः पुष्पुटस्तालुदेशे ॥ १०९ ॥

कफके प्रकोपके कारण तालुवेमे पीड़ारहित स्थिर और भेदवाली बेरीके फलकी समान ग्रथि उत्पन्न होती है उसको तालुपुष्पुट कहते हैं ॥ १०९ ॥

अथ तालुशोषलक्षम् ।

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते वापि तालु श्वासो वा-

तात्तालुशोषोऽयमुक्तः ॥ ११० ॥

वायुके प्रकोपसे तालुवेमे अत्यन्त शोष अथवा तालुवा फटने लगे और श्वास भी होय इस रोगको तालुशोष कहते हैं ॥ ११० ॥

अथ तालुपाकलक्षणम् ।

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं

तालुपाकं वदन्ति ॥ १११ ॥

पित्तके प्रकोपसे तालु अत्यन्त भयंकर प्रकारसे पकजाय इस रोगको तालुपाक कहते हैं ॥ १११ ॥

अथ तालुरोगचिकित्सा ।

कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैः सह ॥

सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्डीप्रघर्षणम् ११२

प्लवः केवटी मोथा गुडतजीति लोके ॥

अंगुष्ठांगुलिसन्दंशेनाकृष्य गलशुण्डिका-

म् ॥ छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु सं-

स्थितम् ॥ ११३ ॥

मण्डलाग्रेण शस्त्रविशेषेण ॥

अत्यादानात्स्वेदक्तं ततः सम्मिश्रयते नरः ॥

हीनच्छेदाद्भवेच्छोथो लालास्रावो भ्रम-

स्तथा ॥ ११४ ॥ तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन दृष्ट-

कर्मा विशारदः ॥ गलशुण्डीं तु सञ्छिद्य

कुर्यात्प्राप्तमिमं क्रमम् ॥ ११५ ॥ पिप्प-

ल्यतिविषाकुष्ठवचामरिचनागरैः ॥ क्षौद्र-

युक्तैः सलवणैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ११६ ॥

वचामतिविषापाठारास्त्राकटुकरोहिणीः ॥

निष्काश्य पित्तुमर्दश्च कवलं तत्र कारयेत् ॥

॥ ११७ ॥ तुण्डिकैर्यधूषे कूर्मे सङ्घाते

तालुपुष्पुटे ॥ एष एव विधिः कार्यो विशेष-

ः शस्त्रकर्माणि ॥ ११८ ॥ तालुपाके तु

कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ॥ स्नेहस्वेदौ

तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ११९ ॥

कूठ, कालीमिरच, वच, सैधानिमक, पीपल और पाह तथा केवटीमोथा इनके चूर्णको सहतमे मिलाकर घिसनेसे गलशुण्डी नष्ट होजाती है ।

जो गलशुण्डी जीभपर होय तो अंगूठे और अगुलीरूपी संडासीसे उसको खींचकर मंडलाग्र नामक तलवारकी समान शस्त्रसे काट देवे । जो गलशुण्डीका अति छेदन हो जाय तो रुधिरके अत्यन्त साव होनेसे मनुष्य मरजाता है और कम छेदन होय तो सूजन, लारका गिरना, तथा भ्रम

होता है इसकारण जिसने छेदनेकी बहुतसी क्रिया देखी हों ऐसी प्रवीण वैद्य बहुत सभालकर गलगुण्डीको काटकर पीछे पीपल, अतीस, कूठ, कालीमिरच, वच और खेंठ, इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसमें सैधानिमक डालकर उससे प्रतिसारण करे । तथा वच, अतीस, पाठ, रासना, कुटकी और नीम इनको औटाकर इसका कवल चारण करे ।

तुडिकेरी, अभ्रप, कच्छप, मांससघात और तालुपुण्ड्रनपर भी यह चिकित्सा करे किन्तु इनपर गलक्रिया कुछ बदल करके करे ।

तालुपाक होय तो पित्तको नष्ट करनेवाली चिकित्सा करे ।

तालुशोष होय तो स्नेहन, स्वेदन और वातनाशक अन्यान्य क्रिया भी करे ॥ ११२-११९ ॥

अथ गलरोगाणां नामानि संख्या च ।

रोहिणी पञ्चधा प्रोक्ता कण्ठशालूक एव च ॥ अधिजिह्वश्च वलयो वलासश्चैकवृन्दकः ॥ १२० ॥ ततो वृन्दः शतघ्नी च शिलायुः कण्ठविद्रधिः ॥ गलौघश्च स्वरघ्नश्च मांसतानस्तथैव च ॥ १२१ ॥ विदारी कण्ठदेशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ १२२ ॥

पाच प्रकारकी रोहिणी, कंठशालूक, अधिजिह्व, वलय, चन्पाय, एकवृन्दक, वृन्द, शतघ्नी, शिलायु, कण्ठविद्रधि, गलौघ, स्वरघ्न, मांसतान और विदारी इसप्रकार गलेके रोग अठारह १८ हैं ॥ १२०-१२२ ॥

अथ रोहिण्याः सनिदानप्राप्तिः ।

गलेऽनिलः पित्तकर्फौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसञ्च तथैव शोणितम् ॥ गलोपसंरोधकैरस्तथाङ्कुरैर्निहन्त्यसन्व्याधिरयं च रोहिणी ॥ १२३ ॥

गले अनिलः वृद्धः तथा पित्तकर्फौ मूर्च्छितौ दग्धौ मांसं शोणितं च प्रदूष्य तथा गलोपसंरोधकैरसन्निहन्ति । अयं व्याधिः रोहिणीसंज्ञो ज्ञेयः । सर्वा रोहिण्यन्विदोषजा उत्कर्षात् वातादिव्यपदेशः ॥

गलेमें वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ पित्त, अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ अथवा वृद्धिको प्राप्त हुए तीनों दोष अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ रुधिर मांस तथा रुधिरको दूषित करके गलेको अवरोध करनेवाले अङ्कुरोंसे प्राणोंका नाशकरे है । इस रोगको रोहिणी कहते हैं ॥ १२३ ॥

अथ वातजरोहिणीलक्षणम् ।

जिह्वासमन्ताद्भ्रशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः ॥ सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा ॥ १२४ ॥

जिह्वासमन्ताजिह्वायाः सर्वतः वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा कंपविनामस्तम्भादिभिरतिशयेन युक्ता ॥

जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनावाले और गलेको रोकनेवाले मांसके अङ्कुर होते हैं और उनके साथ वातसम्बन्धी स्तब्धता आदि उपद्रव भी होते हैं । यह वातसे उत्पन्न रोहिणी कहीजाती है ॥ १२४ ॥

अथ पित्तजरोहिणीलक्षणम् ।

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥ १२५ ॥

गलेमें मांसके अङ्कुर तत्काल उत्पन्न होजायें, उनमें तत्काल दाह हो, तत्काल पकजाय और तीव्र ज्वर होजाय इसको पित्तज रोहिणी कहते हैं ॥ १२५ ॥

अथ कफजरोहिणीलक्षणम् ।

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा तु ॥ १२६ ॥

स्रोतोऽत्र कण्ठस्रोतः ॥

गलेकी शिराओंको रोककर गलेमें मांसके अङ्कुर उत्पन्न होते हैं और वह मंद मंद पकते हैं । भारी होते हैं, स्थिर होते हैं, इसको कफजा रोहिणी कहते हैं ॥ १२६ ॥

अथ त्रिदोषजरोहिणीलक्षणम् ।

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रिभवा भवेत्सा ॥ १२७ ॥

गलेमें उपरोक्त तीनो दोषोंके लक्षणोंवाले, गम्भीर पकनेवाले और कठिनतासे आराम होनेवाले ऐसे मांसके अकुर उत्पन्न होंय यह त्रिदोषसे उत्पन्न रोहिणी कही जाती है ॥ १२७ ॥

अथ रक्तजरोहिणीलक्षणम् ।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा साध्या प्र-  
दिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥ १२८ ॥

फुडियोंसे व्याप्त और पित्तके लक्षणोंवाली जो रोहिणी होती है, उसको वैद्य रुधिरजन्य रोहिणी कहते हैं यह रोहिणी साध्य है ॥ १२८ ॥

अथ रोहिणीमरणावधिः ।

सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति व्याहात्कफसमुद्भ-  
वा ॥ पञ्चाहात्पित्तसम्भूतासप्ताहात्पवनो-  
त्थिता ॥ १२९ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न रोहिणी तत्काल मारदेती है, कफसे उत्पन्न रोहिणी तीन दिनमें मार देती है, पित्तजन्य रोहिणी पांच दिनमें मार देती है और वातजन्य रोहिणी सात दिनमें मारदेती है ॥ १२९ ॥

अथ कण्ठशालूकलक्षणम् ।

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थि-  
गले कण्ठकशूकभूतः ॥ खरः स्थिरः  
शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति  
ब्रुवन्ति ॥ १३० ॥

कण्ठकशूकभूतः कण्ठकवत् शूकवच्च वेद-  
नाजनकः ॥

गलेमें काटेकी समान तथा धानकी अनीकी समान वेदना उत्पन्न करनेवाले, खरखरे, कठिन, बेरकी गुठली की समान और शस्त्रकाटय ऐसी जो ग्रंथि होय उनको कण्ठशालूक कहते हैं, यह ग्रंथि कफके प्रकोपसे होती है । यह शस्त्रके चीरनसे साध्य है ॥ १३० ॥

अथाधिजिह्वकलक्षणम् ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरि-  
ष्ठादसृजैव मिश्रात् ॥ ज्ञेयोऽधिजिह्वः  
खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमे-  
नम् ॥ १३१ ॥

असृजा मिश्रादेवेत्यन्वयः ॥

जोभके ऊपर जोभकी अणीकी समान जो सूजन होती है उसको अधिजिह्वक कहते हैं, यह सूजन जो पकजाय तो इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये यह रोग रुधिर मिश्रित कफके प्रकोपसे होता है ॥ १३१ ॥

अथ वलयलक्षणम् ।

वलास एवायतमुन्नतश्च शोथं करोत्यन्न-  
गतिं निवार्य ॥ तं सर्वथैवाप्रतिवार्यमेव  
विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ १३२ ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ कफ अन्नकी गतिको रोककर गलेमें लम्बी तथा ऊँची सूजनको उत्पन्न करे इसको वलय कहते हैं । यह रोग किसी प्रकार भी दूर नहीं होता इस लिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १३२ ॥

अथ वलासलक्षणम् ।

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ  
श्वासरुजोपपन्नम् ॥ मर्मच्छिदं दुस्तरमेन-  
माहुर्वलाससंज्ञं भिषजो विकारम् ॥ १३३ ॥  
मर्मच्छिदं हृदयमर्मणि छेदेनेव वेदना-  
जनकम् ॥

वृद्धिको प्राप्त हुए कफ तथा वायु यह गलेमें श्वास पीडासहित और हृदयके मर्मस्थलमें छेदन करनेवाली ऐसी व्यथाको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होती है इसको वलास कहते हैं, वैद्यलोग कहते हैं कि यह रोग दुस्तर है ॥ १३३ ॥

अथैकवृन्दलक्षणम् ।

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः स-  
कण्ठुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ॥ नाम्नैकवृन्दः  
परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्वलासक्षतजप्र-  
सूतः ॥ १३४ ॥

अन्तः गलमध्ये अपाकी ईषत्पाकी ।  
अमृदुः ईषन्मृदुः ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें गोल, नवी हुई, दाह और खुजली सहित कुछेक पकनेवाली, कुछ कोमल और भारी सूजन उत्पन्न होती है इस रोगको वैद्य एकवृन्द कहते हैं ॥ १३४ ॥

## अथ वृन्दलक्षणम् ।

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्द-  
मुदाहरन्ति ॥ तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपा-  
द्विधात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ १३५ ॥

पित्त और रुधिरके प्रकोपसे अत्यन्त ऊर्ची, गोल,  
अत्यन्त ठाहवाली और तीव्र ज्वरवाली जो सूजन होतीहै  
वैय इसको वृन्द कहतेहैं । इसमें यदि शूल होय तो वात-  
सम्बन्धी जानना ॥ १३५ ॥

## अथ शतघ्नीलक्षणम् ।

वर्तिर्धना कण्ठनिरोधनी तु चितातिमान्नं  
पिशितप्ररोहैः ॥ अनेकरुक्प्राणहरी त्रि-  
दोषाज्ज्ञेया शतघ्नीसदृशी शतघ्नी ॥ १३६ ॥

घना कठिना । अनेकरुक् वातपित्तकफज-  
तोददाहकण्डादियुक्ता शतघ्नीसदृशी लौहक-  
ण्डकसञ्छन्ना शतघ्नी महती शिला तत्तुल्या  
यतः प्राणहरी ॥

वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न होनेवाली व्यथा, दाह  
और खुजली आदि विकारवाली, कठिन, मांसके अङ्गुरोंसे  
अत्यन्त व्याप्त और कठको रोकनेवाली जो बत्ती उत्पन्न  
होतीहै उसका शतघ्नी कहतेहैं । यह बत्ती त्रिदोषके  
प्रकोपसे उत्पन्न होनेके कारण शतघ्नी ( लोहेके कांटोंसे  
ढकीहुई बड़ी भारी शिला ) की समान होतीहै इसकारण  
इसको 'शतघ्नी' कहतेहैं ॥ १३६ ॥

## अथ गलायुलक्षणम् ।

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरो-  
ऽपस्वस्यात्कफरक्तमूर्तिः ॥ संलक्ष्यते  
सक्तमिवाशनश्च स शस्त्रसाध्यस्तु गला-  
युसंज्ञः ॥ १३७ ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें आमलेजी गुठलीकी  
समान, गिर, अप्य वेदनावाली और भोजन किया अन्न  
में न चलाया जायता हुआ ऐसी ग्रन्थि उत्पन्न होय इसको  
शत गलायु कहतेहैं । यह रोग शस्त्र क्रियासे दूर होता-  
है ॥ १३७ ॥

## अथ कंठविद्राधिलक्षणम् ।

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो  
रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः ॥ स सर्व-  
दोषैर्गलविद्राधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु  
सर्वजश्च ॥ १३८ ॥

सम्पूर्ण दोषोंके प्रकुपित होनेसे सर्व प्रकारकी वेदना-  
वाली और सम्पूर्ण गलेमें व्याप्त होकर जो सूजन उत्पन्न  
होतीहै उसको कंठविद्राधि कहतेहैं, यह कंठविद्राधि त्रिदो-  
षजन्य विद्राधिकी समान है ॥ १३८ ॥

## अथ गलौघलक्षणम् ।

शोथो महान्यस्तु गलावरोधी तीव्रज्वरो  
वायुगतेर्निहन्ता ॥ कफेन जातो रुधि-  
रान्वितेन गले गलौघः परिकीर्ति-  
तोऽसौ ॥ १३९ ॥

वायुगतेर्निहन्ता उदानवायुगतिरोधकः ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें अन्न तथा जलको  
रोकनेवाली, उदान वायुकी गतिको हरनेवाली और तीव्र  
ज्वरवाली जो बड़ी सूजन उत्पन्न होतीहै उसको गलौघ  
कहतेहैं ॥ १३९ ॥

## अथ स्वरघ्नलक्षणम् ।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्न-  
स्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ॥ कफोपदुष्टेष्व-  
निलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनास्व-  
रघ्नः ॥ १४० ॥

ताम्यमानः तमः पश्यन् शुष्कविमुक्तक-  
ण्ठः शुष्को विमुक्तोऽस्वाधीनः कण्ठो यस्य  
सः । अस्वाधीनता भक्तं गिलितमशक्यत्वा-  
दनिलायनेषु वायुवर्त्मसु । श्वसनाद्वातात् ॥

वायुके मार्ग कफसे दुष्ट होकर अवकार दीखे, बारबार  
हँफनी आवे, गला सूखजाय तथा अन्नादि निगलनेको अस-  
मर्थ होय और स्वर बिगड़ जाय इस रोगको वायु स्वरघ्न  
कहतेहैं, यह रोग वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ १४० ॥



अथ मांसतानलक्षणम् ।

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोप-  
रोधं कुरुते क्रमेण ॥ स मांसतानः  
कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो वि-  
कारः ॥ १४१ ॥

प्रतानवान् विस्तारवान् । सुकष्टः अतिश-  
यितं कष्टं यत्र सः ॥

गलेमें फैलनेवाली, लटकती और महाकष्ट देनेवाली  
जो सूजन क्रमक्रमसे गलेको रोक देती है, इस रोगको  
मांसतान कहते हैं । यह रोग त्रिदोषजन्य होनेके कारण  
प्राण नाशक है ॥ १४१ ॥

अथ विदारीलक्षणम् ।

सदाहतादं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले  
प्रातिविशीर्णमांसम् ॥ पित्तेन विद्याद्वदने  
विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन  
शेते ॥ १४२ ॥

स पुरुषो येन पार्श्वेण विशेषाद्वाहुल्येन  
शेते तस्मिन्पार्श्वे सा विदारी भवतीत्यर्थः ॥

पित्तके प्रकोपसे गलेमें दाह, तीव्र पीडा, अत्यन्त  
लाल और दुर्गन्धित तथा मांसको फाड़नेवाली जो सूजन  
उत्पन्न होती है उसको विदारी कहते हैं । मनुष्य जिस  
करवटसे अधिक सोताहै उसी पार्श्वमें यह रोग उत्पन्न  
होताहै ॥ १४२ ॥

अथ गलरोगचिकित्सा ।

रोहिणीनान्तु साध्यानां हितं शोणितमो-  
चनम् ॥ वमनं धूमपानञ्च गण्डूषो नस्य-  
कर्म च ॥ १४३ ॥ वातजान्तु हते रक्ते  
लवणैः प्रतिसारयेत् ॥ सुखोष्णान्तेहगण्डू-  
षान्धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ १४४ ॥  
विस्त्राव्य पित्तसम्भूतां सिताक्षौद्रप्रियंगु-  
भिः ॥ वर्षयेत्कवलो द्राक्षापरूपैः कथितो  
हितः ॥ १४५ ॥ आगारधूमकटुकैः क-  
फजां प्रतिसारयेत् ॥ १४६ ॥

आगारधूमः कोल इति लोके । कटुकानि  
शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि ॥

श्वेताविडंगदन्तीषु तैलं सिद्धं ससैन्ध-  
वम् ॥ नस्यकर्मणि दातव्यं कवलञ्च क-  
फोच्छ्रये ॥ १४७ ॥

श्वेता अपराजिता ॥

पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं पित्तसम्भवा-  
म् ॥ विस्त्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डि-  
केरिवत् ॥ १४८ ॥ एककालं यवान्नञ्च  
भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ उपजिह्वकवच्चा-  
पि साधयेदधिजिह्वकम् ॥ १४९ ॥ एक-  
वृन्दं तु विस्त्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ॥  
एकवृन्दमिव प्रायो वृन्दञ्च समुपाचरेत् ॥  
॥ १५० ॥ गलायुश्चापि यो व्याधिस्तञ्च  
शस्त्रेण साधयेत् ॥ अमर्मस्थं सुसम्पक्कं  
छेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ १५१ ॥

जो रोहिणी साध्य है उसमें रुधिर निकलवाना उत्तम  
है । वमन, धूमपान, कुल्ला और नस्यक्रिया, यह रोपण  
रोहिणीके ऊपर करे ।

वायुसे उत्पन्न रोहिणी होय तो रुधिर निकलवाकर  
पश्चात् सैधानिमक् आदि लवणोंसे प्रतिसारण करे और  
सुहाते सुहाते ऐसे उष्ण स्नेहोंके कुल्लोंको वारंवार  
धारण करे ।

पित्तसे उत्पन्न रोहिणी होय तो उसमेंसे रुधिर निक-  
लवाकर खांड, सहत तथा फूलप्रियंगू इनसे प्रतिसारण करे  
और दाख तथा फालसेका कवल धारण करे ।

कफसे उत्पन्न रोहिणी होय तो घरके धुआंसेकी धूल,  
सोठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णसे प्रतिसारण करे ।  
सुफेद अपराजिता, वायविडंग और जमालगोटा इनके  
कल्कसे पकाये हुए तैलमें सैधानमक डालकर इसका नास-  
देवे और सुफेद कोयल, वायविडंग तथा जमालगोटा  
इनका कवल भी धारण करे ।

वैद्य पित्तजन्य रोहिणीको पित्तशामक उपायोंसे शांत  
करे । कंठशालूक होय तो वैद्य उसमेंसे रुधिर निक-  
लवाकर पश्चात् तुड़ीकेरीकी जो चिकित्सा कही है वह

करे और जीका भोजन दिन रातमें एक बार थोडासा मिश्र भोजन करे ।

अग्निजितक होय तो जो चिकित्सा उपजिह्वककी कही है वह सब करे । एकवृन्द होय जो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् शोधन विधि करे ।

वृन्द होय तो एकवृन्दकी समान अत्युत्तम चिकित्सा करे ।

गिलायु होय तो उसको शलसे काटकर दूर करे ।

कटविद्रधि मर्ममें न होय और अच्छे प्रकारसे पक गई होय तो उसका छेदन करे ॥ १४३-१५१ ॥

अथ गलरोगाणां सामान्यचिकित्सा ।

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षैस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्मभिः ॥ चिकित्सकश्चिकित्सान्तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥ १५२ ॥ काथं दद्याच्च

दावीत्वङ्निम्बताक्ष्यकलिंगकम् ॥ हरीतकीकषायो वा हितो साक्षिकसंयुतः ॥

॥ १५३ ॥ कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिंगकाः ॥ गोमूत्रकथिताः पीताः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ १५४ ॥ मृद्वीका कटुका व्योषं दावीत्वक् त्रिफला घनम् ॥

पाठा रसाञ्जनं दूर्वा तेजोह्वेति सुचूर्णितम् ॥ १५५ ॥ क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे महोपधम् ॥ योगाश्चैते त्रयः प्रोक्ता

वातपित्तकफापहाः ॥ १५६ ॥ यवाग्रजं तेजवतीश्च पाठा रसाञ्जनं दारुनिशां सकृण्णाम् ॥ क्षौद्रेण कुर्याद्भुटिकां मुखेन

तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ १५७ ॥

प्रवीण वैद्य गटेक रोगाका रुधिर निकलवाकर और तीव्र नम्र आदि देनेसे चिकित्सा करे ।

दाहहृत्ती, तज, नीम, रसौत और इन्द्रजौ इनका साथ देनेसे अथवा सहित जलकर हरटका काथ पीनेसे रोग नष्ट हो जाते हैं । यह वानज गलरोगोंकी चिकित्सा करे ।

हृत्ती, अरिष्ट, देवदा, पाठ, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका गोमूत्रसे पकाकर मिश्र तो गर्वक समान रोग नष्ट हो जाते हैं । यह विनाय गलरोगोंकी चिकित्सा करे ।

दाख, कुटकी, सोंठ, मिरच, पीपल, दारुहलदी, तज, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पाठ, रसौत, चुरनहार, और तेजवल इनका वारीक चूर्ण करके सहतमे मिलाकर उपयोग करे तो कफजन्य समस्त गलरोग नष्ट हो जाते हैं ।

जवाखार, तेजवल, पाठ, रसौत, दारुहलदी, और पीपल इनकी सहतमे गोली बनाकर मुखमें रखनेसे सर्वप्रकारके गलरोग नष्ट होजाते हैं ॥ १५२-१५७ ॥

अथ समस्तमुखरोगसंख्या ।

पृथग्दोषैस्त्रयो रोगाः समस्तमुखजाः स्मृताः ॥ १५८ ॥

वातज, पित्तज और कफज ऐसे सम्पूर्ण मुखमें तीन प्रकारके रोग होते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वातजमुखरोगलक्षणम् ।

स्फोटैः सतोदैर्बदनं समन्ताद्यत्राचितं सर्वसरः स वातात् ॥ १५९ ॥

व्याधयुक्त छालोसे चारों ओर मुख भरा होय तो उसको वातजन्य सर्वसर रोग जानना ॥ १५९ ॥

अथ पित्तिकमुखरोगलक्षणम् ।

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यत्राचितं चापि स पित्तकोपात् ॥ १६० ॥

दाहयुक्त और पीले रंगके छोटे छोटे छालोसे सम्पूर्ण मुख व्याप्त होय तो उसको पित्तजन्य सर्वसर मुखरोग कहते हैं ॥ १६० ॥

अथ कफजमुखरोगलक्षणम् ।

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यत्राचितं चापि स वै कफेन ॥ १६१ ॥

यत उक्तं सुश्रुतेन-अल्पवेदनैरिति ॥

मदवेदनायुक्त, खुजलीयुक्त और मुखके वर्णवाले छालो से सम्पूर्ण मुख भरजाय तो उसको कफजनित सर्वसर मुखरोग कहते हैं ॥ १६१ ॥

अथासाध्या मुखरोगाः ।

आंष्ट्रप्रकोपे वज्र्यास्तु मांसरक्तत्रिदोपजाः ॥ दन्तवेष्टेषु वज्र्यो तु त्रिलिंगगतिः सौपिरो ॥ १६२ ॥

त्रिलिंगगतिः त्रिदोपजा नाडी ॥

दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनभ-  
ज्जनाः ॥ जिह्वारोगेष्वलासस्तु तालुजे-  
ष्वर्बुदं तथा ॥ १६३ ॥ स्वरघ्नो बलयो  
वृन्दो बलासः स हि दारुणः ॥ गलौघो  
मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ १६४ ॥  
असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा दश नवो-  
त्तराः ॥ तेषु वापि क्रियां वैद्यः प्रत्या-  
ख्याय समाचरेत् ॥ १६५ ॥

ओष्ठके रोगोमे माससे उत्पन्न हुए, रुधिरसे उत्पन्न  
हुए और त्रिदोषज रोग असाध्य है ।

मसूढोंके रोगोंमे त्रिदोषसे उत्पन्न नाडी और सौपिर  
यह दो रोग असाध्य हैं । दतरोगोमे श्यावदतक, दालन  
और भजनक यह तीन रोग असाध्य हैं ।

जीभके रोगोंमे अलास असाध्य है । तालुयके रोगोमे  
ताल्वर्बुद असाध्य है ॥

गलेके रोगोंमें स्वरघ्न, बलय, वृन्द, बलास, विदारी,  
गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और, रोहिणी, यह नौ रोग  
असाध्य हैं । ऊपरके १० मिलायके ये उन्नीस रोग जो  
असाध्य माने हैं इनपर भी वैद्य चिकित्सा करे क्योंकि  
कदाचित् आरोग्य होजाय ॥ १६२-१६५ ॥

अथ सम्पूर्णमुखरोगचिकित्सा ।

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ॥  
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥  
॥ १६६ ॥ पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धका-  
यस्य देहिनः ॥ सर्वः पित्तहरः कार्यो  
विधिर्मधुरशीतलः ॥ १६७ ॥ प्रतिसार-  
णगण्डूषधूमसंशोधनानि च ॥ कफात्मके  
सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ १६८ ॥  
मुखपाके शिरावेधः शिरसश्च विरेचनम् ॥  
मधु मूत्रघृतक्षीरैः शीतैश्च कवलग्रहः ॥  
॥ १६९ ॥ जातीपत्रामृताद्राक्षायसदा-  
र्वोफलत्रिकैः ॥ काथः क्षौद्रयुतः शीतो  
गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ १७० ॥ कार्यश्च  
बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥  
कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतरुयहात् ॥  
॥ १७१ ॥ मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुप-

शाम्यति ॥ पटोलनिम्बजम्बाममाल-  
तीनवपल्लवैः ॥ १७२ ॥ पञ्चपल्लवजः  
श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ पञ्चवल्कलजः  
काथस्त्रिफलासम्भवोऽथ वा ॥ १७३ ॥  
मुखपाके प्रयोक्तव्यः सक्षौद्रो मुखधा-  
वने ॥ स्वरसः कथितो दाव्या घनीभूतो  
रसक्रिया ॥ सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषना-  
डीव्रणापहा ॥ १७४ ॥ सप्तच्छदोशीरप-  
टोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ॥  
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च काथं पिवेत्पा-  
कहरं मुखस्य ॥ १७५ ॥

राजद्रुमः घनवहेरा इति लोके ॥

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव  
च ॥ क्षौद्राढ्यो दग्धवल्कस्य गण्डूषो  
मुखपाकनुत् ॥ १७६ ॥ आस्वादिता  
सकृदपि मुखगन्धं सकलमपनयति ॥  
त्वग्बीजपूरफलजा पवनमपाच्यं वारयति  
॥ १७७ ॥ हरिद्रा निम्बपत्राणि मधुकं  
नीलमुत्पलम् ॥ तैलमेभिर्विपक्तव्यं मुख-  
पाकहरं परम् ॥ १७८ ॥ यष्टीमधु पल-  
मेकं त्रिशन्नीलोत्पलस्य तैलस्य ॥  
प्रस्थं तद्विगुणपयोविधिना पकं तु नस्येन  
॥ १७९ ॥ निशि वदनस्य स्त्रावं क्षपयति  
गात्रस्य दोषसंघातम् ॥ कचघर्षत्वमवश्यं  
क्रमशोऽभ्यङ्गेन जन्तूनाम् ॥ १८० ॥

इति मुखरोगाधिकारः ।

खारी चूर्णोंसे प्रतिसारण करे और वातनाशक पदा-  
योंसे पकाये हुए तैलेका कवल तथा नस्य देवे तो वातजन्य  
सर्वसर नष्ट होजाताहै ।

शरीरको विरेचन आदि सशोधन कर पित्तनाशक  
सम्पूर्ण मधुर तथा शीतल विधि करे तो पित्तजन्य सर्वसर  
दूर होजाताहै । पित्तजन्य सर्वसरमे प्रतिसारण, कवल,  
धूमपान और सशोधन यह सब पित्तनाशक करे ।

कफको हरनेवाली विधि करे और कफनाशक प्रतिसा-  
रण भी करे तो कफजन्य सर्वसर नष्ट होजाताहै ।

नस छेदकर रुधिर निकाले गिरोविरेचन करे और सहत, मूत्र, घी, दूध तथा शीतल अन्य पदार्थोंके भी कयल धारण करे तो मुखपाक दूर होजाताहै ।

जावित्री, गिलेय, दाख, जवासा, हरड, बहेडा, आमले, इन सबका काथ बनावे उस काथको शीतल करके उसमे सहत डालकर पिये तो मुखपाक दूर होजाताहै ।

नित्य अनेकवार जावित्री चाये तो मुखपाक दूर होजाताहै ।

कालाजीरा, कूठ, और इन्द्रजौ इनको चर्बण करे तो मुखपाक, मुखव्रण, मुखका क्लेद और मुखकी दुर्गन्धि भी शमन होजाती है ।

कडवे परवलके, नीमके, जामुनके, आमके, और मालतीके नवीन पत्ते इन पचपह्रवोंका काथ मुख धोनेके लिये बहुत उत्तम है ।

मुखपाक होय तो पचवलकलका थयवा हरड, बहेडा और आमलेके काथमें सहत डालकर उससे मुखको शुद्ध करे ।

दारुहलदीके गाढे स्वरसमें सहत डालकर उसका उपयोग करनेसे मुखरोग, रुधिरविकार और नाडीव्रण यह सब नष्ट होजातेहैं ।

सतवन, खस, कडवे, परवल, हरड, कुटकी, मुलैठी, अमलतास और लाल चदन इनका काथ बनाकर पीनेसे मुखपाक दूर होजाताहै ॥

तिल, नीले कमल, घी, खांड, दूध और सहत इनके कुट्टे करनेसे मुखपाक दूर हो जाताहै, जलनेसे उत्पन्न मुखपाकका यह उत्तम उपाय है ॥

भिर्जारेके फलकी छालको एक बार खानेसे भी मुख का सम्पूर्ण दुर्गन्धि दूर होजातीहै और अपानवायु भी शांत होतीहै ।

हलदी, नीमके पत्ते, मुलैठी और नीले कमल इनसे पकाये हुए तेलके कुट्टे आदि करनेसे भी मुखपाक अवश्य नष्ट होजाताहै ।

मुलैठी ४ चार तोले और नीले कमल २१ इक्कीस तोले इनका कलक डालकर १२८ एक सौ अठ्ठाईस तोले दूधमें तेलको पकाये । इस तेलका नास लेनेसे रात्रिमें उत्पन्न मुखपाक शान्त और शरीरके रोगोंके समूह नष्ट होताहै । इस तेलकी मालिश करनेसे बालोंकी कमजोरी, पित्ता, दृढता और उँवे आदि सब दूर होते हैं ॥ १६६-१८० ॥

इति मुखरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

## अथ विषाधिकारः ।

स्थावरं जंगमश्चैव द्विविधं विषमुच्यते ॥  
दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्र-  
यम् ॥ १ ॥

स्थावर और जंगम इस रीतिसे विष दो प्रकारका है ।  
स्थावर विषके दश आश्रय हैं और जंगम विषके सोलह आश्रय ( स्थान ) हैं ॥ १ ॥

अथ स्थावरविषस्य दश स्थानानि ।

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक् क्षीरं सारमेव  
च ॥ निर्यासो धातवः कन्दः स्थावरस्या-  
श्रया दश ॥ २ ॥

तद्यथा-मूलविषं करवीरादि । पत्रविषं  
विषपत्रिकादि । फलविषं कर्कोटकादि ।  
पुष्पविषं वेत्रादि । त्वक्सारनिर्यासविषाणि  
करम्भादीनि । क्षीरविषं स्नुह्यादि । धातुविषं  
हरितालादि । कन्दविषं वत्सनाभशक्तुकादि ॥

मूल, पत्ते, फल, फूल, छाल, दूध, सार, गोद, धातु और कंद इस प्रकार स्थावर विषके दश स्थान हैं ॥

मूलविष कनेर आदिकी जड़मे रहताहै । पत्रविष विषपत्रिकादिमे रहताहै । फलविष कर्कोटकादि फलोंमें रहताहै । फूलविष घेत आदिके फूलोंमें रहताहै । छाल सार और गोद विष चौंटली आदिकी छालमें रहताहै । दूधविष धूहर आदिके दूधमे, धातुविष हरिताल सोमल आदि धातुओंमें और कंदविष वत्सनाभ शक्त आदिके कंदमें रहताहै ॥ २ ॥

अथ जंगमविषस्य षोडश स्थानानि ।

दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्राश्च नखमूत्रमलानि च ॥  
शुक्रं लालास्पर्शमुखसंदंशं श्वमर्दितम् ॥  
गुदास्थिपित्तशूकानि दश षड् जंगमा-  
श्रयाः ॥ ३ ॥

तद्यथा । दृष्टिनिःश्वासविषाः दिव्याः सर्पाः । दंष्ट्राविषाः भौमसर्पाः । दंष्ट्रानख-  
विषा व्यात्रादयः । मूत्रपुरीषविषाः गृहगो-  
धिकादयः । शुक्रविषा मूषिकादयः । लाला-

विषाः उच्चिद्गुदादयः । लूता लालास्पर्शमूत्र-  
पुरीषार्तवशुक्रमुखसंदंशविषाः । मुखसंदंश  
दंष्ट्रापदितगुदपुरीषविषाः चित्रशीर्षादयः ।  
अस्थिविषाः सर्पादयः । पित्तविषाः शकुल-  
मत्स्यादयः । शूकविषाः भ्रमरादयः । श्व-  
विषा गतासवः कीटसर्पदेहाः ।

दृष्टि, निश्वास, डाढ़, नख, मूत्र, विष्टा, वीर्य, लार,  
मुख, स्पर्श, डसना, अधोवायु, गुदा, अस्थि, पित्त और  
शूक ( मुखकी अनी ) इस प्रकार जगम विषके यह  
सोलह आश्रय है ।

दिव्य सर्पोंकी दृष्टि और निश्वासमें विष रहताहै ।  
पृथ्वीके भयंकर सर्पोंकी दाढ़में विष रहताहै । वाघ,  
सिंह आदि जीवोंकी दाढ़ तथा नखूनोंमें विष रहताहै ।  
छपकली आदि जीवोंके मूत्र और विष्टामें विष रहताहै ।  
चूहे आदिके शुक्रमें विष रहताहै । मकड़ी आदिकी  
लारमें विष रहताहै । चित्रशीर्ष आदिकी लारमें, स्पर्शमें,  
मूत्रमें, विष्टामें, वीर्यमें, मुखमें, दशमें, अधोवायुमें तथा  
गुदामें विष रहताहै । सर्प आदिकी अस्थियोंमें विष  
रहताहै । शकुल आदि मछलिओंके पित्तमें विष रहता-  
है । और भैंरे आदिके मुखके अग्रभागमें विष रहता  
है ॥ ३ ॥

अथ मूलादिविषाणां प्रत्येकशो  
लक्षणम् ।

तत्र मूलविषकार्यम् ।

उद्वेष्टनं मूलविषैर्मोहः प्रलपनं तथा ॥ ४ ॥

मूलविषको भक्षण करनेसे शरीर ऐंठे, बेहोसी और  
प्रलाप होताहै ॥ ४ ॥

अथ पत्रविषकार्यम् ।

जृम्भणं वेपनं श्वासो नृणां पत्रविषैर्भ-  
वेत् ॥ ५ ॥

पत्रविषको भक्षण करनेसे जम्भाई आतीहै, कम्प और  
श्वास होताहै ॥ ५ ॥

अथ फलविषकार्यम् ।

मुष्कशोथः फलविषैर्दाहो द्वेषश्च भोजने ॥ ६ ॥

फलविषको भक्षण करनेसे अंडकोषोमें सूजन, दाह  
और भोजनपर अरुचि होतीहै ॥ ६ ॥

अथ पुष्पविषकार्यम् ।

भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं मूर्च्छनं  
तथा ॥ ७ ॥

फूलके विष खानेसे वमन, अफारा और मूर्च्छा होती-  
है ॥ ७ ॥

अथ त्वक्सारनिर्यासविषकार्यम् ।

त्वक्सारनिर्यासविषैरुपभुक्तैर्भवन्ति हि ॥

आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंश्रयाः ८

छाल, सार और गोदके विषको भक्षण करनेसे मुखमें  
दुर्गंध, मस्तकमें पीडा, शरीरमें रुक्षता और कफका साव  
होताहै ॥ ८ ॥

अथ क्षीरविषकार्यम् ।

फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजि-  
ह्वता ॥ ९ ॥

क्षीरविषको खानेसे मुखमें क्षाग आतेहैं, दस्त होतेहैं  
और जीभ जड़ होजातीहै ॥ ९ ॥

अथ धातुविषकार्यम् ।

हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ॥  
प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दि-  
शेत् ॥ १० ॥

एतानि मूलविषाणि नव कालघातीनि  
कालान्तरमारकाणि ॥

धातु विषको खानेसे हृदयमें पीडा, मूर्च्छा और तालु-  
वमें दाह होताहै । उपरोक्त मूल आदि नौ विषोको  
खानेसे विशेष करके कालांतरमें मृत्यु होतीहै ॥ १० ॥

अथोपर्युक्तनवविषविशेषलक्षणम् ।

तत्र कंदविषविशेषकार्यम् ।

कन्दजान्युग्रवीर्याणि यान्युक्तानि त्रयो-  
दश ॥ सर्वाण्येतानि कुशलैर्ज्ञेयानि दश-  
भिर्गुणैः ॥ ११ ॥

कदसे उत्पन्न तेरह प्रकारका विष जो कि, सुश्रुत आदि  
ग्रंथोंमें कहा है वह उग्रशक्ति सम्पन्न है अर्थात् तत्काल  
प्राणोंको नष्ट करदेताहै ॥ ११ ॥

अथ विषपरीक्षा ।

स्थावरं जंगमं वापि कृत्रिमं चापि यद्वि-



पम ॥ सद्यो निहन्ति तत्सर्वं गुणैश्च दश-  
भियुतम् ॥ १२ ॥

प्रवीण वैद्य सम्पूर्ण विषांकी परीक्षा नीचे लिखे दश-  
गुणोंसे करे । स्वावरविष, जगमविष और कृत्रिम विषों  
जो दशगुणोंसे युक्त हों तो तत्काल मनुष्यको मारदेते  
हैं ॥ १२ ॥

अथ विषस्य दशगुणाः ।

रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवयि  
च ॥ विकाशि विशदश्चैव लघ्वपाकि च  
ते दश ॥ १३ ॥

रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवयी, विकाशी,  
विशद, लघु और अपाकी ये दश गुण विषम रहते-  
हैं ॥ १३ ॥

अथोक्तदशगुणानां कार्यम् ।

तद्रौक्ष्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यात्पित्तं सशो-  
णितम् ॥ तीक्ष्ण्यान्मति मोहयति मर्म-  
वन्धाञ्छिनत्ति हि ॥ १४ ॥ शरीरावय-  
वान्सौक्ष्म्यात्प्रविशेद्विकरोति च ॥ आशु-  
त्वादाशु तत्प्राक्तं व्यवयात्प्रकृतिं  
हेरत् ॥ १५ ॥ विकाशित्वात्क्षपयति  
दोषान्धातून्मलानपि ॥ अतिरिच्यते  
वैशद्यादुश्चिकित्तरयं च लाघवात् ॥ १६ ॥  
दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात्क्लेशयते चि-  
रम् ॥ १७ ॥

तदा विष रूक्ष होनेके कारण वायुको कुपित करेहै ।  
उष्ण होनेके कारण पित्त तथा रविरको प्रकुपित करेहै ।  
तीक्ष्ण होनेके कारण बुद्धिको मोहयुक्त और समाके अव-  
नोशों लांछे । सूक्ष्म होनेके कारण शरीरके अवयवोंमें  
प्रविष्ट होजाताहै । आशु होनेके कारण शरीरमें तत्काल  
शान्तिमें फलकर विदारणको करेहै । व्यवयी होनेके  
कारण प्रकृतिको बदलदेताहै । विकाशी होनेके कारण  
रोगप्रताप, धातुजोश तथा मलको ध्वज करदेताहै ।  
विशद होनेके कारण अन्न दस्तोंको लाताहै । लघु होनेके  
कारण रुजिनिवृत्ति होजाताहै और अपाकी होनेके कारण  
बड़ी कठिनायोंसे बड़े दवासे पचताहै, इन गुणोंके होनेसे  
विष बहुत विनाशक हुता देताहै ॥ १४-१७ ॥

अथ विषलिप्तशस्त्रहतलक्षणम् ।

समः क्षतं पच्यते यग्य जन्तोः स्ववेदक्तं

पच्यते चाप्यभीक्षणम् ॥ कृष्णीभूतं  
क्लिन्नमत्यर्थप्रतिक्षतान्मांसं शीर्यते यस्य  
वापि ॥ १८ ॥ तृष्णातापौ दाहमूर्च्छे  
च यस्य दिग्धं विद्धं तं मनुष्यं व्यव-  
स्येत् ॥ लिंगान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्दत्तः  
स्वेडो वा व्रणे यस्य चापि ॥ १९ ॥

पच्यते चाप्यभीक्षणं पुनः पुनः पाक-  
मेति । तापः बहिः स्थितः । दाहोऽभ्यन्तरे  
कुर्यादित्यत्र क्षतं कर्तृपदं बोद्धव्यम् ।

घाव तत्काल पक्वजाय, घावमेसे रुधिर बहाकरे, वारं-  
वार पके, घावमेसे कालां क्लेदयुक्त तथा अत्यत दुर्गन्धित  
मांस गिरे, तृषा लगे, बाहर सताप हो, भीतर दाह हो  
और मूर्च्छाभी होय तो जानना कि, इस मनुष्यके विषसे  
बुझे हुए शस्त्रका प्रहार हुआ है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ विषदातृलक्षणम् ।

इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः ॥  
जानीयाद्विषदातारमेभिलिंगैश्च बुद्धिमान् ॥  
॥ २० ॥ न ददात्युत्तरं पृष्ठो विवक्षुर्मो-  
हमेति च ॥ अपार्थं बहु सङ्कीर्णं भाषते  
चापि मूढवत् ॥ २१ ॥ अंगुलीः स्फोट-  
येदुर्वी विलिखेत्प्रहसेदपि । वेपथुश्चास्य  
भवति त्रस्तश्चैकैकमीक्षते ॥ २२ ॥  
विवर्णवक्त्रो ध्मानश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्ति  
च ॥ आलभेतासकृद्दीनः करेण च शिरो-  
रुहान् ॥ २३ ॥ निरीयासुरपद्धारैर्वीक्षते  
च पुनःपुनः ॥ वर्तते विपरीतं च विष-  
दाता विचेतनः ॥ २४ ॥

इंगितमभिप्रायसूचकम् आकारम् ।  
मुखवैकृतं मुखवैवर्ण्यादि । एभिलिंगैर्वक्ष्य-  
माणैः । न ददात्युत्तरं पृष्ठः स्वीयसत्कर्मज-  
नितव्यामोहात् । संकीर्णमस्फुटम् । अयज-  
नितपर्वव्यथापनोदाय अंगुलीः स्फोटयेत् ।  
प्रहसेदहेतावपि । ध्मानः दग्धसमानवर्णः ।  
आलभेत्स्पृशेत् । विपरीतं यथा स्यादेवं  
वर्तते ॥

प्रायः राजा और बड़े मनुष्योंको उनके शत्रु सेवक अन्नादिकमें विष मिलाकर देते हैं इसलिये उस विष देने-वालेके लक्षण नीचे लिखते हैं ॥

मनुष्योंके अभिप्रायको जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष वाणी ( बोलना ), चेष्टा ( उठना, बैठना ) और मुखके विकाररूप नीचे लिखे लक्षणोंसे विष देनेवालेको जानलेवें विष देनेवालेसे पूछनेपर वह अपने दुष्ट कर्मकी बेहोशीसे उत्तर न देय और जो मनको रोककर बोले तो बोला न जाय, वा घबड़ा जाय, मूर्खकी समान बहुत व्यर्थ, तथा गिड़गिड़ाकर गडबड वचन बोले, भयसे उत्पन्नहुई सधियोंकी पीड़ाको दूर करनेके लिये अगुलियोंको चटकावे, बिनाही कारण हँसे, पृथिवीको लिखे वा खोदे, कांपे, भयभीत होकर एक एक मनुष्यको देखे, मुँहका रंग बदल जाय वा मुख उतर जाय, जलेके समान रगवाला होजाय, नखोंसे तृण आदिको तोड़े, रककी समान होकर बारंबार वालोंको हाथसे छुवे, दरवाजेको छोड़कर दूसरे मार्गसे जानेकी बारबार चेष्टा करे विपरीत कामोंकी इच्छा करे असानी ( पागल ) सा होकर इधर उधर देखे और सबसे पीठ फेरकर बैठे, विष देनेवालेके यह लक्षण होते हैं ॥ २०-२४ ॥

**अथ जंगमविषस्य सामान्यकार्यम् ।**

निद्रां तंद्रां क्लमं दाहं सम्पाकं लोमहर्ष-  
णम् ॥ शोथं चैवातिसारं च कुरुते जंगमं  
विषम् ॥ २५ ॥

जगम विष निद्रा, तन्द्रा, ग्लानि, दाह, पाक, रोमांचोका होना, सूजन और अतिसारको उत्पन्न करे है ॥ २५ ॥

**अथ जंगमविषस्यातितीक्ष्णत्वेन  
तदाश्रयसर्पलक्षणम् ।**

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलराजि-  
लाः ॥ यथाक्रमं समाख्याता व्यन्तरा  
द्वन्द्वरूपिणः ॥ २६ ॥ फणिनो भोगिनो  
ज्ञेयाः संख्यातास्तेऽत्र विंशतिः ॥ मण्डलै-  
र्विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः ॥

षट् ते मण्डलिनो ज्ञेया ज्वलनार्कविषाः  
स्मृताः ॥ २७ ॥ स्निग्धा विविधवर्णा-  
भिस्तिर्यगूर्द्धश्च राजिभिः ॥ विचित्रा  
इव ये भान्ति राजिलास्ते हि तेषां  
षट् ॥ २८ ॥

एते यथाक्रमं वातपित्तकफात्मानो बो-  
ध्याः । व्यन्तरा द्वे अन्तरे भेदो येषां ते  
व्यन्तराः यथाभोगिनो मण्डलिन्यां जाता  
इत्यादि ॥

मुख्यतासे प्रायः भोगी मडली और राजिल इस प्रकार तीन जातिके सर्प हैं । इनमें भोगीसर्प वातप्रकृतिवाले हैं । मडलीसर्प पित्तकी प्रकृतिवाले हैं और राजिल सर्प कफकी प्रकृतिवाले हैं । और जो एक जातिके सर्पसे दूसरी जातिकी सर्पिणीसे उत्पन्न ( जैसे कि, भोगीजातिके सर्पसे मंडलीजातिकी सर्पिणीमें उत्पन्न ) हुआ होय वह मिश्रित प्रकृतिवाला है । फणवाले सर्पको भोगी कहते हैं और उसके बीस भेद हैं । जो सर्प विविध मंडलोसे चित्रित, मोटे और मदगतिवाले हैं वे मण्डली जातिके सर्प हैं ये सर्प अग्नि तथा सूर्यकी समान अत्यन्त उग्र विषवाले होते हैं उनके छः भेद हैं । जो सर्प स्निग्ध हैं और आदी सीधी नीची ऊँची रेखाओंसे चित्रित दीखते हैं वह राजिल सर्प कहे जाते हैं और उनके छः भेद हैं २६-२८

**अथ भोगिसर्पादिकृतदंशलक्षणम् ।**

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकार-  
कृत् ॥ पीतो मण्डलिनः शोथो मृदुः पित्त-  
विकारवान् ॥ २९ ॥ राजिलोत्थो भवेद्दं-  
शः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः ॥ पाण्डुः  
स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्लेष्मविकार-  
वान् ॥ ३० ॥

भोगी सर्पका डसाहुआ स्थान काला होता है और सम्पूर्ण वायुसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करे है । मडली सर्पका काटा हुआ स्थान पीला सूजनयुक्त होता है, कोमल और पित्तसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करे है । राजिल सर्पका काटा हुआ स्थान स्थिर सूजनसहित चिकना पाण्डु स्निग्ध अत्यन्त गाढ़े रुधिरवाला और सपूर्ण कफज-नित विकारोंवाला होता है ॥ २९-३० ॥

अथ विशिष्टदेशादिदृष्टस्य  
असाध्यत्वम् ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसन्ध्यासु  
चतुष्पथेषु ॥ याम्ये च पित्र्ये परिवर्ज-  
नीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दष्टाः ॥ ३१ ॥  
याम्ये भरण्यां पित्र्ये मघायाम् ।

पीपल वृक्षके नीचे, देवमंदिरमें, स्मशानभूमिमें,  
चौबीमें, चौराहेमें, सव्याकालमें, भरणी नक्षत्रमें और मघा  
नक्षत्रमें सर्पका काटा हुआ असाध्य है, शिरा मर्म स्थानोंमें  
काटा हुआ भी असाध्य है ॥ ३१ ॥

अथ दर्वीकरजातिसर्पाणां विषम् ।

दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति मेघानिलोष्णे  
द्विगुणा भवन्ति ॥ ३२ ॥

उष्णे उष्णसंयोगे ॥

दर्वीकर जातिके सर्पका विष तत्काल मारदेता है और  
वह सर्प सर्पा, पवन और गरमीके संयोगसे दुगुने  
बढ़ते हैं अथवा इनके संयोगसे उनका विष दुगुना बढ़ता  
है ॥ ३२ ॥

अथ दर्वीकरलक्षणम् ।

रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः ॥  
शंखा दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगा-  
मिनः ॥ ३३ ॥

जो सर्प चक्र, हल, साधिया और अकुशके चिह्न युक्त  
हो, फणवाला हो और बहुत शीघ्र चलनेवाला हो उसको  
दर्वीकर कहते हैं ॥ ३३ ॥

अथापरेषु येषु यथाशुधातित्वं संभवति  
तानाह ।

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु  
शुभुक्षितेषु ॥ क्षीणे क्षते मेहिनि कुष्ठजुष्टे  
रुक्षेऽजले गर्भवतीषु चापि ॥ ३४ ॥

शम्भते यस्य न रक्तमरित राज्या  
लताभिश्च न सम्भवन्ति ॥ शीताद्भिरद्भिश्च  
न गोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥  
॥ ३५ ॥ जिह्वं मुखं यस्य च केशशातो

नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः ॥ कृष्णश्च रक्तः  
श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वश्च विवर्ज-  
नीयः ॥ ३६ ॥

केशशातः आकर्षणात् । नासावसादः  
नासायाः नतत्वम् । कण्ठभङ्गः ग्रीवाधारणा-  
शक्तिः । हन्वोः स्थिरत्वं हनुद्वयस्तम्भः ।  
अपरश्च-

वान्तिर्धना यस्य निरेति वक्राद्रक्तं स्रवे-  
दूर्द्धमधश्च यस्य ॥ दंष्ट्रानिपातांश्चतुरश्च  
पश्येद्यस्यापि वैद्यैः परिवर्जनीयः ॥ ३७ ॥

यस्य च नासामुखलिङ्गगुदादिभ्यो रक्तं  
स्रवेत् ॥

उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाप्यथ  
वा विवर्णम् ॥ सारिष्टमत्यर्थमवेगिनश्च  
जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ ३८ ॥

अत्यर्थमुपद्रुतं वा ज्वरातिसारादिभिरति-  
शयेन उपद्रुतम् । हीनस्वरं वक्तुमक्षमम् ।  
विवर्णं कृष्णवर्णम् । सारिष्टं नासाभङ्गादियु-  
क्तम् । अवेगिनं वेगो विषवेगः । लहरि इति  
लोके । तद्रहितम् । स्थावरं जंगमं च विषमेव  
जीर्णत्वादिभिः कारणैर्दूषो विषसंज्ञां लभते ॥

अजीर्णसे पीडित, पित्तसे पीडित, धूसरे व्याकुल,  
बालक, वृद्ध, भूखा, क्षीण, धावयुक्त, प्रमेहरी, कुष्ठ-  
रोगी, रुखा शरीरवाला, निर्वल मनुष्य और गर्भवती स्त्री  
ये विषसे तत्काल मरजाते हैं । यदि विषसे पीडित  
मनुष्यके शरीरमें शस्त्रसे घाव करनेसे रुधिर न निकले,  
चाबुक मारनेसे शरीरमें उछले नहीं और शीतल जल  
बराबर शरीरपर डालनेसे रोमांच न होय तो ऐसे विषरों-  
गीकी चिकित्सा न करे । जिसका मुख टेढ़ा हो गया  
होय, झूनेसे बाल टूट टूट कर गिरे, नाक तिरछी होजाय,  
बंद जाय, नाड अर्थात् गरदन झुकजाय, लटक जाय,  
काटनेकी जगह काली ब्याल सृजन हो और दोनों जावड़े  
स्तम्भ होजाय उसकी भी चिकित्सा न करे । जिसके  
मुखमेंसे गाढी वमन निकलती हो, नाक, मुख, लिङ्ग  
तथा गुदा आदिमेंसे रुधिर निकलता हो और जि-  
ह्वके चार दात लगे होय उसकी भी वैद्य चिकित्सा

न करे । जो मनुष्य उन्मत्त हो, ज्वर अथवा अतीसार आदिसे अत्यंत पीडित होय, बोलनेको असमर्थ हो, शरीरका वर्ण काला पड़गया हो, नाक बैठजाना आदि अरिष्टोसे युक्त हो और जिसके विषकी लहर न उठे उसको भी त्यागदेना चाहिये, अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ऐसे मनुष्य तत्काल ज्वरसे मरजाते हैं । स्थावर और जंगम विष भी जीर्णतादि कारणोंसे दूषीविष कहेजाते हैं ॥ ३४-३८ ॥

अथ दूषीविषलक्षणम् ।

जीर्ण विषघ्नौषधिदूषितं वा दावाग्निवा-  
तातपशोषितं वा ॥ स्वभावतो वा गुण-  
विप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपै-  
ति ॥ ३९ ॥

जीर्णमतिपुराणम् । विषघ्नौषधिदूषितं  
विषघ्नीभिरौषधीभिर्वीर्यहानिकृतम् । स्वभा-  
वतो वा गुणविप्रहीनं स्वभावादेव दशानां  
गुणानां मध्ये एकद्वित्र्यादिगुणहीनम् ।

जो विष अत्यंत पुराना होगया हो, अथवा विषना-  
शक औषधियोंसे हीन वीर्य होगया हो, अथवा दावाग्नि,  
वायु और धूपसे सूखगया हो, अथवा स्वाभाविक दश  
गुणोंमेंसे एक दो तीन चार गुणरहित होगया हो तो उसको  
दूषीविष कहते हैं ॥ ३९ ॥

अथ दूषीविषकार्यम् ।

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं  
वर्षगणानुबन्धि ॥ तेनादितो भिन्नपुरीष-  
वर्णो विगन्धिवैरस्ययुतः पिपासी ॥  
मूच्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमिश्च विचेष्टमा-  
नोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ ४० ॥

न निपातयेन्न मारयेत् । कफान्वितं कफेन  
मन्दीकृतौष्ण्यादिगुणम् । वर्षगणानुबन्धि  
कफेनाग्नेर्मन्द्यादित्वादपाकाच्चिरस्थायि ।  
तथा दूषीविषजदद्गुरोगवतां भिन्नपुरीषवर्णः  
भिन्नपुरीष उद्गतमलः भिन्नविवर्णः ।  
विचेष्टमानः विरुद्धां चेष्टां कुर्वन्मूच्छादी-  
न्याधील्लभते ॥

यह दूषीविष हीनवीर्य होनेके कारण मारता तो नहीं है  
किंतु कफसे उष्णादिगुणोंको मन्दहोनेके कारण और कफसे  
अग्निकी मदता होकर यह विष नहीं पकनेके कारण बहुत  
दिनोंतक शरीरमें रहता है । दूषीविषसे पीडित मनुष्यके  
दस्त पतला आता है, शरीरका रंग बदलजाता है,  
विरुद्धचेष्टा करनेलगता है, चैन नहीं मिलता और  
मूर्छा, भ्रम, वाणीका गद्गदपना और वमन ये व्याधि  
उत्पन्न होती हैं ॥ ४० ॥

अथ स्थानविशेषेण दूषीविष-  
लक्षणविशेषः ।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्काशयस्थे-  
ऽनिलपित्तरोगी ॥ भवेत्समुद्धस्तशिरोऽङ्ग-  
रुट्को विलूनपक्षश्च यथा विहङ्गः ॥ ४१ ॥

समुद्धस्तशिरोऽङ्गरुट्कः समुद्धस्ताः शिरो-  
रुहाः केशाः अङ्गरुहाणि लोमानि यस्य  
सः । एतदपि लिङ्गं पक्काशयस्थे दूषीविषे-  
बोद्धव्यम् ॥

स्थितं रसादिष्वथ तद्यथोक्तान्करोति  
धातुप्रभवान्विकारान् ॥ ४२ ॥

तत्र दूषीविषे । यथोक्तान्सुश्रुते व्याधि-  
समुद्देशीयोक्तान् ॥

दूषीविष आमाशयमें प्राप्त होय तो कफसम्बन्धी और  
वायुसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करता है । पक्काशयमें प्राप्त  
होय तो वात और पित्तसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करे है,  
वाल और रोमोंमें प्राप्त होय तो पखरहित पक्षीकी समान  
कर देता है, दूषीविष रसादि धातुओंमें प्राप्त होयतो सुश्रु-  
तके सूत्रस्थानके व्याधिसमुद्देशीय नामके चौबीसवे अध्या-  
यमें कहे अनुसार धातुसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्नकरे है  
॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ दूषीविषस्य प्रकोपसमयः ।

कोपं तु शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्व  
शृणु तस्य रूपम् ॥ ४३ ॥

यह दूषीविष अत्यंत शीतके समय, अत्यंत पवन चल-  
नेके समय और वादलोंसे घिरे हुए दिनमें तत्काल प्रको-  
पको प्राप्त होता है, अब प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूपको  
कहता हूं सो सुनो ॥ ४३ ॥

अथ प्रकुपितदूषीविषपर्वरूपम् ।

निद्रा गुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च विश्लेषहर्षा-  
वथवाङ्मर्दः ॥ ४४ ॥

विश्लेषः गात्रशैथिल्यम् । हर्षः रोमाञ्चः ॥

निद्रा, शरीरमें भारीपन, जम्भाईओंका आना, अर्गोंमें  
थिथिलता, रोमांचका होना, अर्गोंका द्रुटना यह प्रकु-  
पित दूषीविषके पूर्वरूप है ॥ ४४ ॥

अथ प्रकुपितदूषीविषरूपम् ।

ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्ड-  
लकोष्ठजन्म ॥ मांसक्षयं पाणिपदे प्रशोथं

मूर्च्छा तथा च्छर्दिमथातिसारम् ॥ ४५ ॥

दूषीविषं श्वासतृपाज्वरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं  
जठरस्य चापि ॥ ४६ ॥

अन्ने भुक्ते पूगफलेनेव मदः । अविपाकः  
अन्नस्य ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ दूषीविष अन्न जीमनेपर सुपारीकी  
समान मदको करताहै, अन्नको पचने नहीं देता, और  
अर्चि, शरीरमें चकत्ते और गांठोंको उत्पन्न करेहै, मास-  
क्षय, हाथ पांशोंमें सूजन, मूर्छा, वमन, अतिसार, श्वास,  
तृपा, ज्वर और उदरको बढ़ाताहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ दूषीविषभेदेन विकारभेदाः ।

उन्मादमन्यजनयेत्तथान्यदानाहमन्यत्स-

पयेच्च शुक्रम् ॥ गाद्वयमन्यजनयेच्च कुष्ठं

तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ ४७ ॥

अन्यदूषीविषम् । तांस्तान्विसर्पविस्फो-  
टादीन् ॥

कोई दूषीविष उन्मादको उत्पन्न करेहै, कोई दूषीविष  
मन्यनाहको उत्पन्न करेहै, कोई दूषीविष शीर्षको क्षीणकरे-  
है, कोई दूषीविष वाणीको गदगद करेहै, कोई दूषीविष  
शोथको उत्पन्न करेहै और कोई दूषीविष अनेक प्रका-  
रके विकार तथा विस्फोटनादि उपद्रवोंको उत्पन्न करे-  
है ॥ ४७ ॥

अथ दूषीविषशब्दनिरुक्तिः ।

दूषितं देशकालात्रदिव्यास्वमेरभीक्ष्णशः ॥

यस्मात्सन्दूषयेद्भातूस्तस्माद्दूषीविषं स्मृ-  
तम् ॥ ४८ ॥

देशः आनूपादिः । कालो दुर्दिनादिः ।  
अन्नं कुलत्थतिलमसूरादि । धातुदूषकत्वाद्दू-  
षीविषम् ॥

देश, काल, अन्न और दिनकी निद्रासे बारबार दूषित  
हुआ यह विष धातुओंको दूषित करेहै इस कारण यह  
दूषीविष कहाजाताहै ।

जलप्राय आदि देशोंसे, बादलोंके घिरे हुए दिन आदि  
कालसे और कुलथी तिल तथा मसूर आदि अन्नसे यह  
विष दूषित होताहै ॥ ४८ ॥

अथ दूषीविषस्य साध्यत्वादि ।

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरो-  
त्थितम् ॥ दूषीविषमसाध्यं स्यात्क्षीण-  
स्याहितसेविनः ॥ ४९ ॥

कृत्रिमं विषं द्विविधम् । एकं सविषं दूषी-  
विषसंज्ञम् अपरमविषं तदेव गरसंज्ञम् ।  
तथा, च काश्यपसंहितायाम्—“संयोगजञ्च  
द्विविधं द्वितीयं विषमुच्यते ॥ दूषीविषं तु  
सविषमविषं गरमुच्यते ॥ ” संयोगजं  
कृत्रिमं विषं द्वितीयं स्वाभाविकं तच्च  
द्विविधम् ॥

दूषीविष जितेन्द्रिय अर्थात् पथ्य सेवन करनेवालेको  
तत्काल साध्य होताहै । एक वर्षके पश्चात् याप्य होजाता-  
है और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्यको अ-  
साध्य है ॥ ४९ ॥

दूषीविष और गर इस प्रकार कृत्रिमविष दो प्रकारका  
है । जिसमें विषका सम्बन्ध होय वह दूषीविष कहाजाताहै  
और जिसका निष्पण नीचे लिखतेहैं, जिसमें विषका स-  
म्बन्ध नहीं होता उसको गर कहतेहैं ।

काश्यपसंहितामें कहाहै कि “कृत्रिम विष जो कि संयो-  
गसे होताहै उसके दूषीविष और गर यह दो भेद हैं ।  
विषके सम्बन्धवाला दूषीविष कहाजाताहै और विषके  
सम्बन्धी नहीं होनेपर जो विषका काम करे वह गर कहा-  
जाताहै । ”



अथ कृत्रिमविषलक्षणम् ।

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदं रजो नानाङ्गजा-  
न्मलान् ॥ शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छ-  
न्त्यन्नमिश्रितान् ॥ ५० ॥

स्त्रिये पतिको वशमें करनेके लिये पसीना, रज और अगके अनेक मलोंको भोजनमें मिलाकर पतिओको खि-  
लादेतीहै तथा शत्रुभी इसी प्रकारके पदार्थोंको भोजनमें  
मिलाकर मनुष्योंको खिलादेतेहैं यह पसीना आदि अधम  
पदार्थ गर कहाताहै ॥ ५० ॥

अथ गरकार्यम् ।

तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽरुपाग्निज्वरश्चास्यो-  
पजायते ॥ मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः  
शोथसम्भवः ॥ ५१ ॥

तैः गरैः स्वेदरजःप्रभृतिभिः । ज्वरश्चा-  
स्योपजायत इति अपाकात् । मर्मप्रधमनं  
मर्मव्यथा । क्षयो धातुक्षयः ॥

पसीना तथा रज आदि गरसे पाण्डुता होतीहै, शरीर  
कृश होजाताहै, अग्नि मन्द होजातीहै, ज्वर आताहै,  
मर्मस्थलोंमें पीडा होतीहै, अफारा होताहै, धातुक्षय और  
सूजन होतीहै ॥ ५१ ॥

अथ लूतानामकजन्तोरुत्पत्तिरर्थः  
संख्या च ।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदविन्द-  
वः ॥ तेभ्यो जातास्तथा लूता इति  
ख्यातास्तु षोडश ॥ ५२ ॥

तथा चात्र सुश्रुतः ।

विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिदपिसत्तमम् ॥  
वसिष्ठं कोपयामास गत्वाश्रमपदं किल  
॥ ५३ ॥ कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटा-  
त्स्वेदविन्दवः ॥ अपतन्दर्शनादेव ह्यध-  
स्तात्तीव्रवर्चसः ॥ ५४ ॥ लूने तृणे मह-  
र्षेस्तु धेन्वर्थे सम्भृतेऽपि च ॥ ततो जाता-  
स्त्वमे घोरा नानारूपा महाविषाः ॥  
तासामष्टौ कष्टसाध्या वर्ज्यास्तावत्य एव  
हि ॥ ५५ ॥

तत्र त्रिमण्डलप्रभृतयोऽष्टौ कष्टसाध्याः  
सौवर्णिकप्रभृतयोऽष्टौ असाध्याः ॥

मुनिके पसीनेके छींटे तृणोंके ऊपर गिरे उसमेसे जो  
जीव उत्पन्न हुए वह लूता कहेजातेहैं । लूताकी जाति  
सोलह हैं । 'लू' इस धातुका अर्थ 'काटनेका' है ।  
इसर सुश्रुत लिखताहै कि "राजाओंमें उत्तम विश्वा-  
मित्र किसी समय वसिष्ठके आश्रममें जाकर महामुनि  
वसिष्ठजीको क्रोधित कराते हुए अत्यन्त तेजस्वी यह  
महामुनि वसिष्ठजी विश्वामित्रके दर्शनसेही अत्यन्त कुपित  
हुए तब उनके ललाटमेंसे पसीनेकी बूंद गायके लिये  
काटे हुए तृण रक्खे थे उनपर गिरे, उनमेसे भयंकर  
महा विषैले और अनेक आकृतिवाले लूता नामवाले कृमि  
उत्पन्न हुए हैं इनमें त्रिमण्डल आदि आठ कष्टसाध्य हैं और  
सौवर्णिक आदि आठ असाध्य हैं ॥ ५२-५५ ॥

अथ लूतादंशलक्षणम् ।

ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च ॥  
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदो-  
षजाः ॥ ५६ ॥ पिडिका विविधाकारा  
मण्डलानि महान्ति च ॥ शोथा महान्तो  
मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ ५७ ॥  
सामान्यं सर्वलूतानामेतदंशस्य लक्ष-  
णम् ॥ ५८ ॥

दंशकोथः दंशमध्ये घृतिभावः ॥

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालका-  
वृतम् ॥ दग्धाकृति भृशं पाकक्लेदशोथज्व-  
रान्वितम् ॥ ५९ ॥ दूषीविषाभिर्लूताभि-  
स्तद्वृष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ६० ॥

लूता अर्थात् मकड़ी आदि काटे तो वह काटनेका  
स्थान सड जाताहै, रुधिर बहनेलगाताहै, ज्वर आजाताहै,  
दाह होताहै, अतिसार होताहै, त्रिदोषजनित रोग होतेहैं,  
अनेक प्रकारकी फुंसिये उत्पन्न होतीहैं, बडे बडे चकत्ते  
पडजातेहैं और बडी गम्भीर, कोमल, लाल, चपल  
तथा कलौंसयुक्त सूजन होतीहै, लूताके दगके यह सामान्य  
लक्षणहैं । दगमें जो काला अथवा कुछेक झाईवाला, जाले-  
सहित, जलेकी समान, अत्यन्त पकनेवाला और क्लेद,  
सूजन तथा ज्वर यह लक्षण दीखते होंयें तो जानना कि  
दूषीविषनामक लूताका दंश अर्थात् काटा हुआ है ॥  
॥ ५६-६० ॥

अथासाध्यसौवर्णकाद्यष्टलूतानां  
दंशलक्षणम् ।

शोथः श्वेताः सिता रक्ताः पीताश्च पि-  
डिका ज्वरः ॥ प्राणान्तिकाभिर्जायन्ते  
दाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ६१ ॥

असाध्य लूता काटे तो शोथ, सफेद, लाल तथा  
पीली कुम्भी होतीहैं, ज्वर आजाताहै, प्राणान्त करनेवाली  
टाह, श्वास, हिचकी और गिरमे पीडा होतीहै ॥ ६१ ॥

अथ मूषकविषलक्षणम् ।

आदंशाच्छोणितं पाण्डुमण्डलानि ज्वरो-  
रुचिः ॥ लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषी-  
विपादिते ॥ ६२ ॥

चूहेके काटनेके स्थानका रुखर पीला पडजाता है,  
चकते उठ आते हैं, ज्वर, अरुचि, रोमाच हों आते हैं  
और टाह होता है ॥ ६२ ॥

अथ प्राणहरमूषकविषलक्षणम् ।

मूर्च्छागशोथवैवर्ण्यं क्लेदा मन्दश्रुतिर्ज्वरः ॥  
शिरोगुरुत्वं लालासकृच्छिर्द्विआसाध्यमूष-  
कात् ॥ ६३ ॥

अंगशोथोऽत्र मूषकाकारो वाङ्मय्य इति  
तन्त्रान्तरे ।

असाध्य विषवाले मूषके काटनेसे मूर्छा, अंगोमे सूजन,  
नर्णका बदलजाना, हँस, बकिरता, ज्वर, मस्तकका  
भागमन, लारका गिरना और रुधिरकी वमन यह लक्षण  
होते हैं । अन्यथायमे लिख है कि “चूहेके काटनेसे  
शरीरमे चूहेके आकारवाली सूजन होती है ” ॥ ६३ ॥

अथ कृकलासदंशलक्षणम् ।

शोथस्य कार्यमथवा नानावर्णत्वमेव च ॥  
मोहोऽथ वर्चसो भेदो दष्टम्य कृकला-  
संकेः ॥ ६४ ॥

कृकले काटनेसे काटनेका स्थान काला अथवा  
अनेक प्रकारका पीलापन, मोह होजाताहै और दस्त  
जोता आतेहैं ॥ ६४ ॥

अथ वृश्चिकविषलक्षणम् ।

दहन्यप्रिश्वातो नृ भिनत्तीवाङ्ममाशु च ॥

वृश्चिकस्य विषं याति पश्चादंशोऽवति-  
ष्ठते ॥ ६५ ॥

विच्छूका विष प्रथम आग लगनेकी समान दाह कर-  
ताहै, फिर शीघ्रतासे ऊपरको चढकर मानों अगोंको भेदता हो  
ऐसी व्यथा करताहै पश्चात् कुछ समयमें काटनेके स्थानमे  
आकर स्थिर होजाताहै ॥ ६५ ॥

अथासाध्यवृश्चिकदंशलक्षणम् ।

दष्टोऽसाध्यैस्तु हृद्वाणरसनोपहतो नरः ॥  
मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्य-  
सून् ॥ ६६ ॥

असाध्यैर्वृश्चिकस्तेषामेवानुवृत्तेः । हृदा-  
दिषु उपहतः हृदादिकार्यरहितो भवति  
अत्यर्थं वेदनार्त इत्यन्वयः ॥

असाध्य विषवाला विच्छू काटे तो हृदय, नाक तथा  
जीभ यह अपने २ कार्य करनेमें असमर्थ होजातेह इस  
प्रकार वेदना होतीहै, मांस गलकर गिरजाताहै और इस  
वेदनासे प्राणभी निकलजातेहैं ॥ ६६ ॥

अथ कणभकृमिदंशलक्षणम् ।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि  
वा ॥ लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशी-  
र्यते ॥ ६७ ॥

कणभः कीटविशेषः ॥

कणभ नामक कृमि काटे तो विसर्प, सूजन, शूल,  
ज्वर अथवा वमन होतीहै और काटनेकी जगह गलजाती-  
है ॥ ६७ ॥

अथोच्चिदिङ्गदंशलक्षणम् ।

कृष्णलोमोच्चिदिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो भृशा-  
र्तिमान् ॥ दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्य-  
ज्ञानि मन्यते ॥ ६८ ॥

कृष्णलोमा अधिकतरकृष्णरोमा । उच्चि-  
दिङ्गश्चीटा कीटविशेषः ॥

काले और बड़े रोमवाला उच्चिदिङ्ग अर्थात् चीटा  
वा शीगर काटे तो सम्पूर्ण स्तब्धताके लक्षण होतेहैं ।

बहुत वेदना होती है और जैसे कि समस्त शरीरपर शीतल जल छिड़क दिया हो ऐसा मालूम होता है ॥ ६८ ॥

अथ सविषमण्डूकदंशलक्षणम् ।

एकदंष्ट्रादितः शूनः सरुजः पीतकः सवृट् ॥

सनिद्रश्छर्दिमान्दष्टो मण्डूकैः सविषै-  
र्भवेत् ॥ ६९ ॥

एकदंष्ट्रादितः स्वभावादेकयैव दंष्ट्रया  
दष्टो भवति ॥

विषैला मेंडक काटे तो काटनेके स्थानमें एकही डाढ़ उठ आती है, वेदनायुक्त पीली सूजन होती है, तृषा लगती है, निद्रा आती है और वमन होती है ॥ ६९ ॥

अथ सविषमत्स्यलक्षणम् ।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं  
तथा ॥ ७० ॥

विषैली मछली काटे तो दाह, सूजन और वेदना होती है ॥ ७० ॥

अथ जलौकाविषकार्यम् ।

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु ज-  
लौकसः ॥ ७१ ॥

कुर्युरिति शेषः ॥

विषैली जौंक काटे तो खुजली, सूजन, ज्वर, मूर्च्छा, यह सब लक्षण होते हैं ॥ ७१ ॥

अथ गृहगोधिकाविषलक्षणम् ।

विदाहं श्वयथुं तोदं प्रस्वेदं गृहगो-  
धिकाः ॥ ७२ ॥

कुर्युरिति शेषः ॥

छिपकली काटे तो दाह होता है, सूजन होती है, भौंकने तथा तोड़ने सरीखी पीड़ा होती है और अंगोंमें पसीना आता है ॥ ७२ ॥

अथ शतपदीविषकार्यम् ।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीवि-  
षम् ॥ ७३ ॥

शतपदी गिजाई इति लोके ॥

कानखजूरा काटे तो काटनेकी जगह पसीना आता है, वेदना होती है और दाह होता है ॥ ७३ ॥

अथ मशकविषकार्यम् ।

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवे-  
दनः ॥ ७४ ॥

मच्छर काटे तो खुजली और थोड़ी वेदना युक्त कुछेक सूजन होती है ॥ ७४ ॥

अथासाध्यमशकदंशलक्षणम् ।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्ष-  
तम् ॥ ७५ ॥

असाध्यकीटसदृशम् असाध्यैः कीटैर्लू-  
तादिभिः कृतं यत्क्षतं तत्सदृशवेदनम् ॥

असाध्य विषैले मच्छर काटे तो असाध्य मकोड़े आदि की समान घावमें पीड़ा होती है ॥ ७५ ॥

अथ मक्षिकादंशलक्षणम् ।

सद्यः संसाविणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वि-  
रान्विता ॥ पीडिका मक्षिकादंशे तासा-  
न्तु स्थगिकाऽसुहृत् ॥ ७६ ॥

तासाभित्यादि तासां सुश्रुतोक्तानां षण्णां  
मक्षिकाणां मध्ये स्थगिकानाम्नी शीघ्रं प्राणा-  
न्हरतीत्यर्थः ॥

विषैली मक्खी काटे तो तत्काल साववाली, काली, दाहयुक्त, मूर्च्छासहित और ज्वरवाली फुसियें उत्पन्न होती हैं । सुश्रुतोक्त छै प्रकारकी मक्खियोंमें स्थगिका नामवाली जो मक्खी है वह तत्काल प्राणनाशक है ॥ ७६ ॥

अथ व्याघ्रादिविषकार्यम् ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखैर्दन्तैश्च यत्कृ-  
तम् ॥ शूयते पच्यते तत्तु स्रवति ज्वरय-  
त्यपि ॥ ७७ ॥

चतुष्पाद्भिः व्याघ्रादिभिः । द्विपाद्भिः  
वनमनुष्यादिभिः । शूयते शूनं भवति ॥

चार पांववाले व्याघ्रादिक, अथवा दो पांववाले जगली मनुष्यादिकके नखोंसे और दातोंसे जो घाव होय वह सज्ज-  
जाय, पकजाय, खवे और ज्वरको उत्पन्न करे है ॥ ७७ ॥

अथ विगतविषमनुष्यलक्षणम् ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधानुमन्नाभिकामं

सममूत्रविट्कम् ॥ प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्त-  
चेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ७८ ॥  
प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थदोषम् । शेषं सुगमम् ।  
वातादिक दोष स्वाभाविक स्थितिमें स्थित होजाय,  
घातुयें भी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हैं, अन्न खानेकी  
इच्छा होय, मल मूत्र पहिलेकी समान अच्छे प्रकारसे  
उतरने लगें और वर्ण, इन्द्रिये, चित्त तथा चेष्टा यह  
प्रसन्न अर्थात् निर्मल होजाय तो वैद्य उस मनुष्यको विष-  
रोहित हुआ जाने ॥ ७८ ॥

## अथ विपचिकित्सा ।

तत्र प्रथमं स्थावरविषघ्नोपायाः ।

स्थावरेण विषेणार्तं नरं यत्नेन वाभ-  
येत् ॥ वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य  
चिकित्सितम् ॥ ७९ ॥ विषमत्यर्थमुष्ण-  
ञ्च तीक्ष्णं च कथितं यतः ॥ अतः सव-  
विषेयः परिषेकस्तु शीतलः ॥ ८० ॥  
औष्ण्यात्तीक्ष्ण्याद्विशेषेण विषं पित्तं प्रको-  
पयेत् ॥ वमितं सेचयेत्तस्माच्छीतलेन  
जलेन च ॥ ८१ ॥ पाययेन्मधुसर्पिभ्यां  
विषघ्नं भेषजं द्रुतम् ॥ भाक्तुमम्लं रसं  
दद्याद्वर्षयेन्मरिचानि च ॥ ८२ ॥ यस्य  
यस्य च दोषस्य पश्येल्लिङ्गानि भूरिशः ॥  
तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः  
क्रियाम् ॥ ८३ ॥ शालयः पष्टिकाश्चैव  
कोरदूपाः प्रियंगवः ॥ भोजनार्थं विषा-  
र्तानामूर्द्ध्वाधश्च शोधनम् ॥ ८४ ॥  
प्रियंगुः कंगुः ॥

मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजं चेति शिरी-  
षतः ॥ गवां मूत्रेण सम्पिष्टं लेपाद्विष-  
हरं परम् ॥ दूषीविषार्तं सुस्निग्धमूर्द्ध-  
श्वायश्च शोधनम् ॥ ८५ ॥ पाययेदगदं  
मुन्यमिदं दूषीविषापहम् ॥ पिप्पली  
ध्यामकं मांसी लोधमेला सुवर्चिका ॥  
॥ ८६ ॥ मरिचं बालकश्चैला तथा क-

नकगैरिकम् ॥ क्षौद्रयुक्तः कषायोऽयं दूषी-  
विषमपोहति ॥ ८७ ॥

ध्यामकं रोहिषं तदलाभे उशीरं देयम् ॥  
कनकगैरिकम् अत्यन्तमारक्तं गैरिकं सोना-  
गेरु इति लोके ॥

स्थावर विषसे पीडित मनुष्यको यत्नपूर्वक वमन करा-  
वे, क्योंकि उसके लिये वमनकी समान अन्य औषधि नहीं  
है । विष अत्यन्त उष्ण है और तीक्ष्ण है इस कारण सर्व  
प्रकारके विषोंमें शीतल सेचन करना चाहिये । विष उष्ण-  
ता और तीक्ष्णताके कारण विशेष करके पित्तको कुपित  
करे है इसलिये वमन करानेके पश्चात् शीतल जलसे सेच-  
नकरे । विषको हरनेवाली औषधियोंको घी तथा सहितके  
साथ तत्काल पिलावे । खट्वा रस खानेको देवे । और  
शरीरमें मिर्चोंका चूर्ण मर्दन करे । जिन जिन दोषोंके  
चिह्न अधिक दीखें उन उन दोषोंकी उन उन दोषोंके  
गुणोंसे विपरीत गुणोंवाली औषधियोंसे चिकित्सा करे ।  
विषसे पीडित मनुष्यको भोजनके लिये लाल शालिचावल,  
साठी चावल, कोदा और कगुनी धान्य देवे और वमन  
तथा विरेचनसे सशोधन करे ।

सिरसकी जड़, छाल, पत्ते, फूल और बीज इन पाँचों  
पदार्थोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे विष दूर होजाताहै ।  
पीपल, रोहिसनामक सुगन्धितृण यदि न मिले तो  
इनके बदले खस, बालछड़, लोध, इलायची, सर्जी,  
काली मिर्च, सुगन्धवाला, छोटी इलायची और पीलागेह  
इनका काथ बनाकर उसमें सहित डालकर पिलावे तो  
दूषीविष नष्ट होजाताहै । दूषीविषसे पीडित मनुष्यको  
अच्छे प्रकारसे स्निग्ध करके तथा वमन और विरेचनसे  
शोधित करके पश्चात् इस उत्तम औषधिको पिलावे ७९-८७

## अथ जङ्गमविपचिकित्सा ।

तत्र मृत्युपाशच्छेदि वृतम् ।

अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपत्रं तथोत्पलम् ॥  
नलवेतसमूलानि गरलं सुरसां तथा ॥  
॥ ८८ ॥ सकलिंगां समल्लिष्टामनन्ताश्च  
शतावरीम् ॥ शृंगाटकं समंगां च पद्म-

केसरमित्यपि ॥ कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः  
पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ८९ ॥ सम्यक्प-  
केऽवतीर्णे च शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥  
सर्पिस्तुल्यं भिषक्क्षौद्रं कृतरक्षं निधाप-  
येत् ॥ ९० ॥ विषाणि हन्ति दुर्गाणि ग-  
रदोषकृतानि च ॥ स्पर्शाद्दन्ति विषं सर्वं  
गरैरुपहतां त्वचम् ॥ ९१ ॥ योगजं  
तमकं कण्डूं मांससादं विसंज्ञताम् ॥  
नाशयत्यञ्जनाभ्यंगापानवस्तिषु योजि-  
तम् ॥ ९२ ॥ सर्पकीटाखुल्लतादिदृष्टानां  
विषहृत्परम् ॥ ९३ ॥

मृत्युपाशच्छेदिधृतम् ॥

हरड, गोलोचन, कूठ, आकके पत्ते, कमल, नरस-  
लकी जड, बैतकी जड, वत्सनाभ विष ( मीठा वा सिनि-  
या ) तुलसी, इन्द्रजौ, मजीठ, लाल धमासा, सतावर,  
सिगाडे, लजावती और कमलकी केसर इनका कल्क  
डालकर चौगुने जलमे अथवा दूधमें घीको पकावे जब  
अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उतारकर शीतल करलेवे फिर  
उसमे घीकी बराबर सहत मिलाकर अच्छे प्रकारसे किसी  
उत्तम बासनमें भरके रखदेवे । यह 'मृत्युपाशच्छेदी'  
नामवाला घी विषके विकारोंसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोगोंको  
और विषको -दूर करताहै । अंजनमें, अभ्यंगमें,  
पीनेमें और वस्तिर्कर्ममें प्रयोग करे तो यह घी अपने  
स्पर्शसे सर्व प्रकारके विषोंको दूर करदेताहै । विषसे दूषित  
हुई त्वचाको स्वच्छ करदेताहै और कृत्रिम विष, तमक  
श्वास, खुजली, मांससाद और बेहोसी इन सबको दूर  
करदेताहै । सर्प, कृमि, मूषक और लूता आदिके विषको  
दूर करनेके लिये यह उत्तम औषधि है ॥ ८८-९३ ॥

धतूरस्य शिफा पेया क्षीरेण परिपेषिता ॥  
अंकोटवंशजा चापि श्वविषघ्नी प्रयत्नतः  
॥ ९४ ॥ रजनीयुग्मपत्तंगमञ्जिष्ठानागके-  
सरैः ॥ शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूतां  
विनाशयेत् ॥ ९५ ॥ जीरकस्य कृतः  
कल्को घृतसैन्धवसंयुतः ॥ सुखोष्णो  
मधुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत् ॥ ग-  
न्धमाघ्राय मृदितं सूर्यावर्तदलस्य तु ॥

॥ ९६ ॥ वृश्चिकेन नरो विद्धः क्षणाद्भ-  
वति निर्विषः ॥ ९७ ॥

इति विषाधिकारः ।

धतूरेकी जडको दूधमे यत्नपूर्वक पीसकर पीनेसे कुत्तेका  
विष दूर होताहै । अंकोटकी जडको दूधमे पीसकर पीनेसे  
कुत्तेका विष दूर होताहै । हलदी, दारुहलदी, पतंग,  
मजीठ, और नागकेसर इनको शीतल जलमें पीसकर लेप  
करनेसे तत्काल मकड़ीका विष नष्ट होजाताहै । जीरेका  
कल्क बनाकर उसमें सहत और सैधानमक डालकर कुछेक  
गरम करके सहत मिलाकर लेप करनेसे बिच्छूका विष  
दूर होजाताहै । सूर्यावर्त अर्थात् हुलहुलके पत्तोंको मल-  
कर नाकमें सूँघनेसे बिच्छूका विष क्षणमात्रमें दूर होजाता-  
है ॥ ९४-९७ ॥

इति विषाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

तत्र प्रदररोगस्य विप्रकृष्टनिदानं  
संख्या च ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादति-  
मैथुनाच्च ॥ यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च  
भाराभिघाताच्छयानादिवा च ॥ १ ॥  
तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुष्प्रकारं  
प्रदरं वदन्ति ॥ २ ॥

अत्र वातपित्तयोरादौ श्लेष्मणोऽभिधानं  
श्लेष्मिकेऽतिप्रवृत्तिबोधनार्थम् ॥

विरुद्ध भोजन करनेसे, मद्यको पीनेसे, भोजनपर  
भोजन करनेसे, अजीर्णसे, गर्भके पतित होनेसे, अत्यंत  
मैथुनकरनेसे, हाथी घोड़े आदिपर चढ़कर उनको  
दौडानेसे, अधिक मार्गके चलनेसे, अत्यंत शोक करनेसे,  
अत्यंत कर्षण करनेसे, बहुत बोझको उठानेसे, अभिघा-  
तसे और दिनमें सोनेसे स्त्रियोंके प्रदर नामक रोग उत्पन्न  
होताहै । कफ पित्त वात और त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ प्रदर  
चार प्रकारका होताहै ।

ऊपरके वचनमे वातसे तथा पित्तसे पहिले कफ कहा



है इस कारण इसको जाननेके लिये कि कफसे उत्पन्न प्रदरमें रुधिरकी अत्यन्त प्रवृत्ति होतीहै ॥ १ ॥ २ ॥

अथ प्रदरस्य सामान्यलक्षणम् ।

अमृग्दरं भवेत्सर्वं सांगमर्दं सवेदनम् ॥ ३ ॥

अमृग्दरममृक् दार्यते च्याव्यतेऽनेनेत्य-  
मृग्दरम् । अचप्रत्ययान्तम् । सवेदनं  
सशूलम् ॥

दुष्ट रजका अत्यन्त लाव होय, अग दूटे और शूलकी  
पीडा हो इसको प्रदर कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ कफजप्रदरलक्षणम् ।

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतो-  
यप्रतिमं कफात्तु ॥ ४ ॥

आमम् अपकरसयुक्तम् । सपिच्छाप्रतिमं  
पिच्छा शाल्मल्यादिनिर्यासस्तत्तुल्यं पिच्छि-  
लमित्यर्थः । सपाण्डु सहशब्दोऽन्नेषदर्थः तेने-  
षत्पाण्डु । पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु पुला-  
कस्तुच्छधान्यं तद्धावनतोयतुल्यमित्यर्थः ।  
रुधिरं सवेदित्यर्थः ॥

कफके प्रदरमें आम अर्थात् कच्चे रसवाला सेमल आ-  
दिके गोदकी समान चिकना, कुछेक पाण्डुवर्ण और तुच्छ  
धान्यके बोवनकी समान रुधिर बहता रहताहै ॥ ४ ॥

अथ पित्तजप्रदरलक्षणम् ।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तातियुक्तं भृ-  
शवेगि पित्तात् ॥ ५ ॥

सपीतनीलासितरक्तम् । पीतादिवर्ण-  
युक्तम् । पित्तातियुक्तं दाहादियुक्तम् । भृश-  
वेगि वारंवारं प्रवृत्तियुक्तम् ॥

पित्तजन्य प्रदर पीला, नीला, काला तथा लाल, गरम  
और निरन्तर दाह आदि वेदनासहित रुधिर वारंवार  
बहताहै ॥ ५ ॥

अथ वातजप्रदरलक्षणम् ।

रुक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातात्सतोदं  
पिशितोदकाभम् ॥ ६ ॥

पिशितोदकाभं मांसधावनतोयाभम् ॥

वात जनित प्रदर रुखा, लाल, झागोंसहित, व्यथा-  
युक्त और मांसके धोवनकी समान रुधिर थोडा थोडा  
बहताहै ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजप्रदरलक्षणम् ।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं  
त्रिदोषम् ॥ तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा-  
न तत्र कुर्वीत भिषक्चिकित्साम् ॥ ७ ॥

सक्षौद्रसर्पिः क्षौद्रादिवर्णसहितम् । कुणपं  
शवगन्धि ॥

त्रिदोषजनित प्रदर होय तो सहत, वी, तथा हरिता-  
लकी समान रंगवाला, मज्जाकी समान और शूलकी समान  
गंधवाला रुधिर बहताहै, विद्वान् वैद्य इस प्रदरको असाध्य  
कहतेहैं, इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा न करे ॥ ७ ॥

अथात्यंतरुधिरनिःसरणोपद्रवाः ।

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मद-  
स्तृषा ॥ दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा  
रोगाश्च वातजाः ॥ ८ ॥

वातजा रोगाः आक्षेपकादयः ॥

रुधिर बहुत खबे तो दुर्बलता, श्रम, मूर्च्छा, मद,  
तृषा, दाह, प्रलाप, पाण्डुपन, तन्द्रा और वातजनित आ-  
क्षेपकादि रोग होतेहैं ॥ ८ ॥

अथ प्रदररोगाऽसाध्यलक्षणम् ।

शश्वत्स्रवन्तीमासावं तृष्णादाहज्वरान्वि-  
ताम् ॥ दुर्बलां क्षीणरक्ताश्च तामसाध्यां  
विवर्जयेत् ॥ ९ ॥

जिन स्त्रीके निरन्तर रुधिरका ब्याव होय, तृषा दाह  
तथा ज्वरसे युक्त होय, बहुत दुर्बल और जिसका रुधिर  
क्षीण दौगया होय ऐसी प्रदररोगवाली स्त्रीकी चिकित्सा  
नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसका प्रदररोग असाध्य  
है ॥ ९ ॥

अथ शुद्धार्तवलक्षणम् ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि

च ॥ नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमा-  
दिशेत् ॥ १० ॥

निष्पिच्छदाहार्ति अपिच्छिलमदाहम-  
शूलम् । एतेन विकृतवातादिलक्षणरहित-  
मित्यर्थः । पञ्चरात्रानुबन्धि प्रभूतप्रवृत्त्या  
त्रिरात्रानुबन्धि । ततो मध्यमप्रवृत्त्या पञ्च-  
रात्रानुबन्धि, ततः परं कस्याश्चिन्नेत्स्रवति  
तदा स्वरूपप्रवृत्त्या षोडशदिनानि यावत्तदपि  
शुद्धमेव ॥

ठीक महीनेके दिनोमे चिकना, तंतुरहित, जिसमे दाह  
और शूल न होय ( विकृत कफ, पित्त और वातके  
लक्षणोंके विना ) पांच रात्रितक रहनेवाला, बहुत अधिक  
नहीं और बहुत थोडा भी नहीं ऐसा रजोदर्ग होय तो  
जानना कि रज शुद्ध होगया है । रजके शुद्ध होनेपर प्रद-  
रको नष्ट हुआ जानकर उसकी चिकित्सा न करे ।

रज जो बहुत खवे तो तीन दिनतक खवता है । मध्यम  
शीतिखे खवे तो पांच दिनतक खवताहै और इसके पश्चात्  
किसी किसी स्त्रीके अल्प खाव होनेके कारण सोलह  
दिनतक खवताहै किंतु ऊपर कहे अनुसार शुद्ध होगया  
होय तो उसको शुद्ध समझकर प्रदरको शांत समझना  
चाहिये ॥ १० ॥

अथ प्रदरचिकित्सा ।

दध्ना सौवर्चलं जाजी मधुकं नीलमुत्प-  
लम् ॥ पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दर-  
शान्तये ॥ ११ ॥

चौहारजीरायष्टीमधुनीलकमलपुष्पाण्ये-  
षां प्रत्येकं माषद्वयं सर्वमेकीकृत्य दध्ना  
कर्षचतुष्टयेन पिष्ट्वा तन्त्रयाषाष्टकं मधु क्षिप्त्वा  
पिबेत् ॥

मधुकं कर्षमकंतु कर्षैकाश्च सितां तथा ॥  
तण्डुलोदकसम्पिष्टां लोहिते प्रदरे पिबेत्  
॥ १२ ॥ बला कंकतिकारुया या तस्या  
मूलं सुचूर्णितम् ॥ लोहितप्रदरे खादेच्छ-  
र्करामधुसंयुतम् ॥ १३ ॥ शुचिस्थाने  
व्याघ्रनख्या मूलमुत्तरदिग्भवम् ॥ नीत-

मुत्तरफाल्गुन्यां कटिबद्धं हरेदसृक् ॥ १४ ॥  
व्याघ्रनखी वधनही इति लोके ॥

रसाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं  
तण्डुलतोयपीतम् ॥ असृग्दरं सर्वभवं  
निहन्ति श्वासश्च भार्गी सह नाग-  
रेण ॥ १५ ॥

तण्डुलस्य तण्डुलीयकस्य ॥

अशोकवल्कलकाथशृतं दुग्धं सुशीत-  
लम् ॥ यथावलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दर-  
नाशनम् ॥ १६ ॥

अशोकवल्कलपलं द्वात्रिंशत्पलसंमितेन  
जलेन निष्काथ्य शेषं रक्षेत्पलाष्टकं काथं तेन  
काथेन सह क्षीरं पलाष्टकमितं पचेत्तत्र  
दुग्धावशेषः कर्तव्यः । तन्मध्ये पलचतुष्टय-  
मितं दुग्धं पेयं वह्निबलापेक्षया ॥

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ॥  
एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते  
॥ १७ ॥ क्षौद्रयुक्तं फलरसमौदुम्बरभवं  
पिबेत् ॥ असृग्दरविनाशाय सशर्करपयो-  
ऽन्नभुक् ॥ १८ ॥

अन्नमोदनम् ॥

अलावूफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च ॥  
मधुना मोदकं कृत्वा खादेत्प्रदरशा-  
न्तये ॥ १९ ॥

अथ दार्व्यादिकाथः ।

दार्वारिसाञ्जनकिरातवृषाब्दबिल्वसक्षौद्र-  
चन्दनदिनेशभवप्रसूनैः ॥ काथः कृतो  
मधुयुतो विधिना निपीतो रक्तं सितश्च  
सरुजं प्रदरं निहन्ति ॥ २० ॥ रक्त-  
पित्ताधिकारोक्तं हितं कूष्माण्डखण्ड-  
कम् ॥ २१ ॥

इति प्रदरनिदानचिकित्साधिकारः ।

काला निमक, जीरा, मुलैठी और नील कमल (अमा-  
वमें नीलोफर ) यह प्रत्येक पदार्थ बारह बारह स्त्री

लेकर चार तोले दहीमें पीसकर उसमें आठमासे सहत मिलाकर पिये तो वातजन्य प्रदर घमन होजाताहै ।

सुलैठी एक तोला और मिश्री एक तोला इन दोनोंको चावल्लोंके धोवनमें पीसकर पिये तो प्रदर नष्ट होजाताहै ।

कधीकी जडका चूर्ण करके मिश्री और सहतमें मिलाकर खाय तो प्रदर नष्ट होजाताहै ।

पवित्रस्थानमें स्थित व्याघ्रनखीको उत्तर दिशासे लाकर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें कमरमें बाधनेसे प्रदर नष्ट होजाताहै ।

रसौन और चौलाईकी जडको सहतमें पीसकर चावल्लोंके जलके साथ पिये तो सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न प्रदर अवश्य नष्ट होजाताहै ॥

सोंठ और भारगीको पीसकर चावल्लोंके धोवनके साथ पीनेसे प्रदर और श्वास नष्ट होजाताहै ॥

अशोकवृक्षकी छाल चार तोले लेकर अठगुने जलमें पकावे जब पकते पकते जल ३२ वत्तीस तोले रहै तब उसमें ३३ तेतीस तोले दूध डालकर पकावे पकते पकते जब केवल दूधही बाकी रह जाय तब उस दूधको अच्छे प्रकारसे शीतल करके उसमेंसे सोलह तोले दूध लेकर प्रातःकाल पिये, जो जठरामि बलहीन होय तो थोडा दूध पिये इस प्रकार इस दूधको पीनेमें तीव्र प्रदर शांत होजाता है ।

पृथिवीमेंसे टांगकी जडको उखाटकर चावल्लोंके जलमें पीसकर तीन दिनतक पिये तो स्त्री प्रदरसे मुक्त होजाती है ।

गूलरके फलोंके रसमें सहन मिलाकर पीनेसे और उसपर मिश्री मिला दूध मातका पव्य करे तो प्रदर नष्ट होजाताहै ।

नारंगीके फलका चूर्ण करके उसमें खाट डालकर सहतमें लट्टू बनाकर खाय तो प्रदर शान्त होजाता है ।

दाहलन्डी, रसांत, चिरायता, अट्टसा, नागरमोथा, बेलगिरी, सहत, लालचन्दन और आरुके फूल इनका घाघ बनाकर उसमें सहन डालकर पिये तो वेदनायुक्त गाल तथा सफेद प्रदर नष्ट होजाताहै इसको 'दाह्यादिनाय' कहतेहैं ॥

रसविशेषानाम् जो गडगुमाट नामक अवलेह कहा है उसमें श्वास करनेसे भी प्रदर दूर होजाताहै ॥ ११-२१ ॥

इति प्रदररोगनिदानं सम्पूर्णः ।

## अथ सोमरोगाधिकारः ।

तत्र सोमरोगनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोकाच्चापि श्रमादपि ॥ अतीसारिकयोगाद्वा गरयोगात्तथैव च ॥ १ ॥ आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ॥ तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥

अत्यन्त भैथुन करनेसे, अत्यन्त शोकसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अतीसारके योगसे और विप्रयोगसे स्त्रियोंके सम्पूर्ण शरीरमें स्थित जल क्षुभित होकर स्रवताहै पीछे वह जल स्थानसे अष्ट होकर मूत्रके मार्गसे जाताहै ॥ १ ॥ २ ॥

## अथ सोमरोगलक्षणम् ।

प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः ॥ स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ ३ ॥ वेगं धारयितुं तासां न विदन्ति सुखं कचित् ॥ शिरः शिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥ ४ ॥ मूर्च्छा जम्भा प्रलापश्च त्वग्रक्षा चातिमात्रतः ॥ भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥ ५ ॥ सन्धारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः ॥ ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृताः ॥ ६ ॥

प्रसन्न, निर्मल, शीतल, गंधरहित, स्वच्छ, सफेद और पीडारहित जल अत्यन्त बहताहै, उस जलके वेगको रोकनेसे असमर्थ होकर वह दुर्बल स्त्री निरंतर ब्रेचन रहतीहै । मस्तक शिथिल होजाताहै, मुख और तालुआ सूखने लगताहै, मूर्च्छा होतीहै, जम्भाई आतीहै, प्रलाप होताहै, त्वचा अत्यन्त रुखी होजातीहै और भक्ष्य भोज्य और पीनेके पदार्थोंमें कभी तृप्ति नहीं होती । यह जल शरीरकी वारण करनेवाला होनेसे सोम कहाजाताहै और यह

रोग इस सोम धातुका अथ रूप है इसलिये सोमरोग कहाजाताहै ॥ ३-६ ॥

अथ सोमरोगचिकित्सा ।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु ॥  
शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥  
॥ ७ ॥ माषचूर्णं समधुकं विदारीं मधु-  
शर्कराम् ॥ पयसा पाययेत्प्रातः सोम-  
धारणमुत्तमम् ॥ ८ ॥ स एव सरुजः  
सोमः स्रवेन्मूत्रेण चेन्मुहुः ॥ तत्रैलापत्र-  
चूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम् ॥ ९ ॥  
जलेनामलकीबीजकल्कं समधुशर्करम् ॥  
पिवेद्दिनत्रयेणैष श्वेतप्रदरनाशनम् ॥  
॥ १० ॥ तक्रौदनाहाररता सम्पिवेन्नाग-  
केसरम् ॥ इयहं तत्रेण सम्पिष्टं श्वेतप्रद-  
रशान्तये ॥ ११ ॥

केलेकी पकी फली, आमलोका स्वरस, सहत और मिश्री इन सबको एकत्रित मिलाकर भक्षण करे तो अच्छे प्रकारसे सोमरोग नष्ट होजाताहै ।

उडदका चून, मुलैठी, विदारीकंद, सहत और मिश्री इन सबको एकत्रित मिलाकर प्रातःकाल दूधके साथ पीनेसे सोमरोग नष्ट होजाताहै ।

यही सोमरोग जो पीडासहित और मूत्रके-साथ बारबार निकलता होय तो ताजी मदिरामे इलायची और तेजपातका चूर्ण डालकर पिये ।

आमलोंको जलमे पीसकर उसमे सहत तथा खांड, मिलाकर पीनेसे तीन दिनमें ही यह श्वेत प्रदर नष्ट होजाताहै ।

नागकेसरको तक्रमें पीसकर तीन दिनतक पिये और तक्रमे साथ भात खाय तो यह सफेद प्रदर अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ७-११ ॥

अथ सोमरोगे मूत्रातीसारः ।

सोमरोगे चिरं जाते यदा मूत्रमतिस्त्र-  
वेत् ॥ मूत्रातिसारं तं प्राहुर्बलविध्वंसनं  
परम् ॥ १२ ॥

इति सोमरोगमूत्रातिसाराधिकारः ।

बहुत दिनोंके सोमरोगमे जो मूत्र अत्यंत बहने लगे तो उसको मूत्रातिसार कहतेहैं । यह मूत्रातिसार बलका अत्यंत नाश करताहै ॥ १२ ॥

इति सोमरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ योनिरोगाधिकारः ।

तत्र योनिरोगनिदानम् ।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दुष्टैर्दोषैः प्रदूषि-  
तात् ॥ आर्तवाद्बीजतश्चापि देवाद्वा  
स्युर्भगे गदाः ॥ १ ॥

मिथ्या आहार और मिथ्या विहारसे दुष्ट हुए वातादि दोषोंसे, रजके दोषसे तथा पुरुषके वीर्यसे और समयपर दैवगातिसे भी योनिमें रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥

अथ योनिरोगनामानि ।

उदावर्त्ता तथा बन्ध्या विप्लुता च परि-  
प्लुता ॥ वातला योनिजो रोगो वातदो-  
षेण पञ्चधा ॥ २ ॥ पञ्चधा पित्तरोगेण  
तत्रादौ लोहितक्षरा ॥ प्रस्रंसिनी वामनी  
च पुत्रघ्नी पित्तला तथा ॥ ३ ॥ अत्या-  
नन्दा कर्णिनी च चरणानन्दपूर्विका ॥  
अतिपूर्वापि सा ज्ञेया श्लेष्मला च कफा-  
दिमाः ॥ ४ ॥ षण्डयण्डिनी च महती  
सूचिवक्त्रा त्रिदोषिणी ॥ पञ्चैता योनयः  
प्रोक्ता सर्वदोषप्रकोपतः ॥ ५ ॥

उदावृत्ता योनि, बन्ध्या योनि, विप्लुता योनि, परिप्लुता, और वातला योनि इस प्रकार वायुके दोषसे पांच प्रकारके योनिरोग होतेहैं ।

लोहितक्षरा योनि, प्रस्रंसिनी योनि, वामनी योनि, पुत्रघ्नी योनि, और पित्तला योनि इस प्रकार पित्तके दोषसे पांच प्रकारके योनिरोग होतेहैं ।

अत्यानन्दा योनि, कर्णिनी योनि, आनन्दचरणा योनि, अतिचरणा योनि, और श्लेष्मला योनि इस प्रकार की कफकी दुष्टतासे पांच प्रकारका योनिरोग होताहै ।

पडा योनि, अडिनी योनि, विवृता योनि, सूचिवक्त्रा योनि और त्रिदोषिणी योनि इस प्रकार तीनों दोषोंके प्रको-  
पसे पांच प्रकारके योनिरोग होतेहैं ॥ २-५ ॥

अथोपर्युक्तयोनिरोगलक्षणम् ।

सफेनिलमुदावर्त्तारजः कृच्छ्रेण मुञ्चति ॥  
वन्ध्या निरार्तवा ज्ञेया विप्लुता नित्यवे-  
दना ॥ ६ ॥ परिप्लुतायां भवति ग्राम्य-  
धर्मे रुजा भृशम् ॥ वातला कर्कशा स्त-  
ब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ॥ चतसृष्वपि  
चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ७ ॥

अनिलवेदनास्तोदादयः वातलायां त्वति-  
वातवेदना बोद्धव्याः । वातलेत्यन्वर्थात् ॥

सदाहं क्षरते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षरा ॥  
प्रसंसिनी संसते च क्षोभिता दुष्प्रजा-  
यिनी ॥ ८ ॥

क्षोभिता विमर्दिता । संसते स्वस्थाना-  
च्चयवते । दुष्प्रजायिनी दुष्टप्रजननशीला ॥  
सवातमुद्गिरेद्दीर्यं वामनी रजसा युतम् ॥  
स्थितं हि पातयेद्गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्-  
वात् ॥ ९ ॥

पुत्रशब्दोऽत्रापत्योपलक्षकः ॥

अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता ॥  
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिंगोच्छ्रयो  
भवेत् ॥ १० ॥ अत्यानन्दान् सन्तोषं  
ग्राम्यधर्मेण विन्दति ॥ कर्णिन्यां कर्णिका  
योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ ११ ॥

कर्णिका मांसस्य कर्णिकाकारो ग्रन्थिः ॥  
मैथुनेऽचरणा पूर्व पुरुषादतिरिच्यते ॥  
बहुशश्चातिचरणा पयोर्वीर्यं न तिष्ठति १२ ॥  
अतिरिच्यते रजो मुञ्चतीत्यर्थः । बहुशः  
वारंवारमतिरिच्यते तयोः चरणातिचर-  
णयोः ॥

श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताति-  
शीतला ॥ चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्म-  
ल्लिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ १३ ॥ अनार्तवा-

ऽस्तनी षण्डी खरस्पर्शा च मैथुने ॥  
महामेढ्रगृहीताया बालायास्त्वण्डिनी  
भवेत् ॥ १४ ॥

आस्तनी ईषत् स्तनौ यस्याः सा अत्र  
लक्ष्या । षण्डी महामेढ्रः पुरुषस्तेन गृहीता-  
याः बालायाः सूक्ष्मयोनिच्छिद्रा अण्डिनी  
अण्डवल्लम्बमाना योनिर्भवति ॥

विवृता च महायोनिः सूचीवक्रातिसंभृ-  
ता ॥ सर्वलिंगसमुत्थाना सर्वदोषप्रको-  
पजा । चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिंगो-  
च्छ्रयो भवेत् ॥ १५ ॥

जिस योनिमें अत्यन्त कष्टसे, क्षागसहित रुधिर निकले  
उसको उदावर्त्ता कहते हैं । जो योनि सदैव रजरहित  
होय अर्थात् कदापि रजस्वला न होय उसको वन्ध्या  
कहते हैं ।

जिस योनिमें सर्वदा पीडा रहती होय उसको विप्लुता  
योनि कहते हैं ।

मैथुन करनेसे जिसमें अत्यन्त वेदना होती होय उसको  
परिप्लुता योनि कहते हैं ।

जो योनि कठिन, स्तब्ध होय, और शूल तथा तोडने  
सरीखी पीडासहित होय उसको वातला योनि कहते हैं ।

यद्यपि उपरोक्त वातजनित योनिरोगोंमें तोडनेकी पीडा  
आदि वायुसम्बन्धी वेदना होती है तथापि इस पाचवीं  
प्रकारकी वातला योनिमें तो यह वातजन्य वेदना अत्यन्त  
होती है ऐसा जानना क्योंकि 'वातला' इस नामसे प्रतीत  
होती है ।

जिस योनिमेंसे दाहवाला रुधिर गिरता होय उसको  
लोहितक्षरा कहते हैं ।

जो योनि मर्दन करनेसे अपने स्थानसे हटजाय और  
विकृत संतानको उत्पन्न करे उसको प्रसंसिनी योनि  
कहते हैं ।

जो योनि वायुके साथ रजसहित वीर्यको बाहर निकाल  
देतीहोय उसको वामनी योनि कहते हैं ।

जो योनि स्थित गर्भको रुधिरके ब्यावके कारण गिरा-  
देती हो उसको पुत्रघ्नी कहते हैं ।



जिसमें दाह, पाक तथा ज्वर होय उसको पित्तला कहते हैं ॥

यद्यपि पित्तजन्य उपरोक्त चारों प्रकारकी योनियोंमें दाह तथा पाक वगैरह पित्तजनित वेदना होती है तथापि इस पांचवीं पित्तला योनिमें यह पित्त सम्बन्धी वेदना अधिक होती है ऐसा जानना, क्योंकि 'पित्तला' इस शब्दसे जाना जाता है ॥

जो योनि मैथुनसे सतोषको प्राप्त न होय उसको अत्या-  
नन्दा कहते हैं ॥

जिस योनिमें कफसे तथा रुधिरसे मांसकी डेलीकी समान गांठें हों उसको कर्णिका कहते हैं ॥

जो योनि मैथुनके समय पुरुषसे पहिले ही स्वलित हो जाय उसको आनन्दचरणा योनि कहते हैं, इस योनिमें वीर्य रुकता नहीं है । जो योनि पुरुषसे पहिले कई बार स्वलित होजाय उसको अतिचरणा योनि कहते हैं । इस योनिमें भी वीर्य ठहरता नहीं है ॥

जो योनि अत्यन्त चिकनी, खुजलीसहित और अत्यन्त शीतल होय उसको श्लेष्मला योनि कहते हैं । यद्यपि उपरोक्त कफजनित चारों प्रकारकी योनिओमें चिकनापन आदि कफके चिह्न होते हैं तथापि इस पांचवी प्रकारकी श्लेष्मला योनिमें यह कफसम्बन्धी चिह्न अत्यन्त होते हैं ऐसा जानना क्यों कि 'श्लेष्मला' इस नामसे ऐसा अर्थ निकलता है ।

जो योनि रजरहित रहती हो और मैथुन करते समय खरदरी मालूम होय, उसको पडी कहते हैं । इस योनि-  
वाली स्त्रीके स्तन छोटे होते हैं ॥

जिसकी योनि का छिद्र छोटा होय ऐसी स्त्रीसे मोटे लिंगवाला पुरुष मैथुन करे तो उसकी योनि वृषणकी समान लटक आती है इसको अडिनी योनि कहते हैं ॥

जिस योनि का बहुत बड़ा छिद्र होय उसको विवृता कहते हैं ॥

जो योनि बहुत छोटे छिद्रवाली होय उसको सूची-  
वक्रा कहते हैं ।

जिस योनिमें सम्पूर्ण दोषोंके कोपके कारण सपूर्ण दोषोंके लक्षण हों उसको त्रिदोषिणी योनि कहते हैं ॥

यद्यपि उपरोक्त त्रिदोषजन्य चारों प्रकारकी योनिओंमें रजरहित आदि तीनों दोषोंके चिह्न होते हैं तथापि इस पांचवे प्रकारकी योनिमें यह त्रिदोष सम्बन्धी चिह्न अत्यन्त

होते हैं ऐसा जानना । क्यों कि 'त्रिदोषिणी' इस नामसे ऐसा अर्थ निकलता है ॥ ६-१५ ॥

अथासाध्ययोनिरोगाः ।

पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदो-  
षजाः ॥ १६ ॥

पञ्च षण्डीप्रभृतयः ॥

त्रिदोषजनित पडि आदि पांच योनि असाध्य हैं ॥ १६ ॥

अथ योनिकन्दनिदानम् ।

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्यायामादतिमैथु-  
नात् ॥ क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः  
कुपिता यथा ॥ १७ ॥

यथास्वनिदानं कुपिता वाताद्याः ॥

दिनमें सोनेसे, अत्यन्त क्रोधकरनेसे, अत्यन्त परि-  
श्रम करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और नख तथा दांत  
आदिसे घावके होनेसे अपने २ कारणोंसे प्रकोपको प्राप्त  
हुए वातादिदोष योनिकन्द नामक रोग को उत्पन्न करें  
हैं ॥ १७ ॥

अथ योनिकन्दलक्षणम् ।

पूयशोणितसंकाशं लकुचाकृतिसन्निभम् ॥  
जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः स  
योनिजः ॥ १८ ॥

लकुचाकृतिसन्निभं लकुचाकारम् ।

राधकी समान, रुधिरकी समान, और बडहलकी  
समान योनिमें गांठें उत्पन्न होती हैं इसको योनिकन्द  
कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ वातादिभेदेन योनिकन्दरूपम् ।

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनि-  
र्दिशेत् ॥ दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्ता-  
त्मकं तु तम् ॥ १९ ॥ तिलपुष्पप्रतीकाशं  
कण्डूमन्तं कफात्मकम् ॥ सर्वलिंगसमा-  
युक्तं सन्निपातात्मकं वदेत् ॥ २० ॥

जो योनिकन्द रूखा, विवर्ण और फटासा होय उसको  
वातजनित जानना ॥

जो योनिकन्द दाह, लाली और ज्वरसे युक्त होय तो  
उसको पित्तजनित जानना ॥ १९ ॥

जो योनिचन्द तिलके फूलकी समान और खुजलीसहित होय उसको कफजनित जानना ॥

जो योनिचन्द उपरोक्त रुधिरा आदि सम्पूर्ण लक्षणों-वाला होय उसको सन्निपात जनित जानना ॥ २० ॥

## अथ योनिरोगचिकित्सा ।

तत्रार्तवजनयोगाः ।

आर्तवादर्शने नारी मत्स्यान्सेवेत नित्य-  
शः ॥ काञ्चिकं च तिलान्मापानुदश्विच्च  
तथा दधि ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुबीजदन्ती  
चपलागुडमदनकिण्वयवशूकैः ॥ सासु-  
वर्क्षरैर्वर्तियोगिता कुसुमसज्जननी ॥ २२ ॥

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी । चपला पिप्पली ।  
मदनो मयनफलम् । किण्वं सुराबीजम् ॥

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रं स्वर्जिकोग्रासनं  
त्र्यहम् ॥ शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जन-  
येद् ध्रुवम् ॥ २३ ॥

ज्योतिष्मती कटभी वृक्षविशेषः करही  
इति लोके । अथवा उमिजिनी मालकंगुनी  
इति च । असनम् आसनेति लोकं विजय-  
सार इति च । पयसा दुग्धेन ॥

जो स्त्री रजस्रवा न होतीहोय वह नित्य मलम्रियोंको  
भक्षण करे तथा धात्री, तिल, उदद, उदश्वित्नाम-  
की माल और दशैरा सेवन करे,

उदद नाम भूमि की बीज, जमानगोटा, पीपल, गुड, मै-  
न-  
पत्र, दमरुबीज, और जमानग टहनकी पृष्ठके दूधमें पीस-  
कर दन्ती रसाकर योनिमें रगनेमें मीठे रस उत्पन्न  
होता है ॥

मालकंगुनी पत्र, उदश्वित्नाम दन्त और विजयसार  
इत्यादि रसोंके दूधमें पीसकर पीनेसे रजोदर रोगोत्पत्ति  
॥ २१-२३ ॥

अथ वन्ध्याचिकित्सा ।

बला सिताढ्या मधुकं बला च शृंगं  
वटोत्थं गजकेसरं च ॥ एतन्मधुक्षीरघृतै-  
र्निपीतं वन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते ॥ २४ ॥  
अश्वगन्धाकषायेण सिद्धं दुग्धं घृतान्वि-  
तम् ॥ ऋतुस्नाताङ्गना प्रातः पीत्वा गर्भं  
दधाति हि ॥ २५ ॥ पुण्योद्धृतं लक्ष्म-  
णाया मूलं दुग्धेन कन्यया ॥ पिष्टं पीत्वा  
ऋतुस्नाता गर्भं धत्ते न संशयः ॥ २६ ॥  
कुरण्टमूलं धातक्याः कुसुमानि वटांकुराः ॥  
नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥ २७ ॥  
कुरण्टमूलम् ( पीतपुष्पकदसरैया ) ।

यावला पिबति पार्श्वपिप्पलं जीरकेण  
सहितं हिताशिनी ॥ श्वेतया विशिखपुं-  
खया युतं सा सुतं जनयतीह नान्यथा २८

पार्श्वपिप्पलं गजहड इति लोके । श्वेत-  
पुष्पया शरपंखया सह ॥

पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी ॥  
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः ॥  
॥ २९ ॥ शूकरशिम्बीमूलं मध्यं वा  
दधिफलस्य सपयस्कम् ॥ पीत्वाथो  
भवलिङ्गीबीजं कन्यां न सूते स्त्री ॥ ३० ॥

शूकरशिम्बी ( सुअरासेवी ) । दधिफलं  
कपित्थस्तस्य मज्जा । भवलिङ्गी ( पञ्चगुरिया ) ।

पुत्रकमञ्जरीमूलं विष्णुकान्तेशलिङ्गिनी  
सहिता ॥ एतं गर्भेऽष्टदिनं पीत्वा कन्यां  
न सर्वथा सूते ॥ ३१ ॥

पुत्रकमञ्जरी ( पतजिया ) तस्याः मूलम् ।  
ईशलिङ्गी पञ्चगुरिया इति लोके ॥

निरंजनी, चांद, मुल्लही, कवी, वटके अकुर और नाग-  
केसर इनकी सहायसे दूधमें तथा घीमें पीसकर पीनेसे  
वन्ध्या स्त्री भी अश्वय पुत्रको उत्पन्न करसकीहै ॥

ऋतुस्नाता स्त्री असगधको दूधमे पकाकर घी डालकर प्रातःकाल पिये तो गर्भ रहजाताहै ।

ऋतुस्नाता स्त्री पुण्य नक्षत्रमे उखाडी हुई सफेद कटे-रीकी जड़को कुआरी कन्याके हाथसे दूधमे पिसवाकर पीवेतो निश्चय गर्भ रहजाताहै ।

गिले फूलकी कटसैरयाकी जड़, धायके फूल, बडके अकुर और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर पीनेसे अवश्य गर्भ रहजाताहै ।

जो स्त्री जीरेके साथ तथा सफेद फूलके सरफोकेके साथ पारिसपीपलके डोडेको पीसकर पिये और पथ्यसे भोजन करे तो वह अवश्य पुत्रको जनतीहै ।

जो गर्भवती स्त्री ढाकके एक पत्तेको दूधमे पीसकर पिये तो उसके बलवान् पुत्र उत्पन्न होताहै । कौंछकी जड़को अथवा कैथके गूदेको शिवलिगीके बीजोको दूधमे पीसकर पीनेसे गर्भिणी स्त्री कदापि कन्याको उत्पन्न नहीं करती ।

प्रतिजियाकी जड़को, अथवा विष्णुकाताकी जड़को अथवा शिवलिगीके बीजोको जो स्त्री पिये तो वह कदापि कन्याको उत्पन्न नहीं करे अर्थात् पुत्रोंकी ही उत्पन्न करे-है ॥ २४-३१ ॥

**अथ गर्भनास्थापकयोगः ।**

पिप्पलीविडंगटंकणसमचूर्णं या पिवे त्वयसा ॥ ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः सञ्जायते कापि ॥ ३२ ॥ आरनालपरि-पेषितं त्र्यहं या जपाकुसुममत्ति पुष्पि-णी ॥ सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सन्द-धाति न हि गर्भमंगना ॥ ३३ ॥

जो स्त्री ऋतुके समय पीपल वायविडंग और सुहागा इनको समान भाग लेकर वारीक चूर्ण करके दूधके साथ पिये तो कदापि गर्भ उत्पन्न नहीं होता ।

जो स्त्री ऋतुके समयमे गुडहलके फूलोंको आरनाल नामक काँजीमे पीसकर तीन दिनतक पिये और चार तोलेभर उत्तम पुराने गुडको सेवन करे तो वह कदापि गर्भको धारण नहीं करती ॥ ३२॥३३ ॥

**अथ साध्ययोनिरोगाणां सामान्य-चिकित्सा ।**

तासु योनिषु चाद्यासु स्नेहादिक्रम इष्य-ते ॥ वस्त्यभ्यंगपरीषेकप्रलेपपिचुधार-णम् ॥ ३४ ॥

**वस्तिरत्रोत्तरवस्तिः । पिचुः फाहा इतिलोके ।**

साध्य योनियोंपर स्नेहन आदि चिकित्सा करे, उत्तर-वस्ति देवे, अभ्यंग करे, सेचन करे, प्रलेप करे और योग्यऔषधियोंसे भीजे हुए रुईके फोयेको योनिमे रखे ॥ ३४ ॥

**अथ योनिरोगाणां यथाक्रम-चिकित्सा ।**

नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः । तिलतैलं पचेन्नारी पिचुमस्य विधारयेत् ॥ विप्लुतायां सदा योनिव्यथा तेन प्रशा-म्यति ॥ ३५ ॥

नतं तगरम् । वार्ताकिनी वरहेटा इति लोके ।

वातलां कर्कशां स्तब्धामल्पस्पर्शां तथैव च ॥ कुम्भीस्वेदैरुपचरेदन्तर्वेश्यानि सं-वृते ॥ ३६ ॥ धारयेद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा ॥ पित्तलानां च योगीनां सेवाभ्यंगपिचुक्रियाः ॥ शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ३७ ॥ प्रसंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीर-स्विन्नां प्रवेशयेत् ॥ पिधाय वेशवारेण ततो बन्धं समाचरेत् ॥ शुण्ठीमरिचकृ-ष्णाभिर्धान्यकाजाजिदाडिमैः ॥ ३८ ॥ पिप्पलीमूलसंयुक्तैर्वेशवारः स्मृतो बुधैः ॥ धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिवे-त्सदा ॥ सूर्यकान्ताभवं मूलं पिवेद्वा तण्डुलाम्बुना ॥ ३९ ॥ योन्यां तु पूय-स्त्राविण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितैः ॥ सगो-मूत्रैः सलवणैः पिण्डैः सम्पूरणं हि-तम् ॥ ४० ॥

**शोधनद्रव्याणि निम्बपत्रादीनि ॥**

दुर्गन्धां पिच्छिलां वापि चूर्णैः पञ्चकषा-यजैः ॥

पञ्चकषायाः वचावासापटोलप्रियगुनि-म्बाः । राजवृक्षादिर्यथा घनबहेरा इति लोके ॥ पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसै-

न्यैः ॥ वर्तिस्तुर्या प्रदेशिन्या योनौ  
श्लेष्मविशोधनी ॥ ४१ ॥

तुर्या प्रदेशिन्या दैर्घ्येण परिणोहन च ॥  
कर्णिन्यां वर्तयो देयाः शोधनद्रव्यनि-  
र्मिताः ॥ ४२ ॥ गुडूचीत्रिफलादन्ती-  
कथितोदकधारया ॥ योनिं प्रक्षालयेत्तेन  
तत्र कण्टः प्रशाम्यति ॥ ४३ ॥ सुद्वयूपं  
सखदिरं पथ्यां जातीफलं तथा ॥  
निम्बी पूगश्च संचूर्ण्य वस्त्रपूतं क्षिपे-  
द्रगं ॥ ४४ ॥ योनिर्भवति सङ्कीर्णा न  
सवेच्च जलं ततः ॥ कपिकच्छूभवं मूलं  
काथयेद्विधिना भिषक् ॥ ४५ ॥ योनिः  
सङ्कीर्णतां याति काथेनानेन धावयेत् ॥  
जीरकद्वितयं कृष्णा सुषवी मुरभिवचा ४६  
वासकः सैन्धवश्चापि यवक्षारो यवानि  
का ॥ एषां चूर्णं घृते किञ्चिद्द्रष्ट्वा खण्डेन  
मांदकम् ॥ ४७ ॥ कृत्वा खादेद्यथावह्नि  
योनिरोगाद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ मू-  
षककाथसंसिद्धतिलतैलकृतः पिचुः ॥  
नाशयेद्योनिरोगांस्तान्धृतो योनौ न  
मंशयः ॥ ४९ ॥

नगर, स्टर्श, कुठ, सैन्धानिमक, और देवदार इनके  
तैलसे तिलके तेलका पकाकर उसमें भिजोकर पीया  
योनिमें रगनेसे शिथिला योनिकी व्याधा दूर होजातीहै ।

जो योनि वातया रोग, फटिन होय, स्तब्ध होय और  
शोः रोगवाली होय तो उसको पण्डके घरमें बँटाकर  
कुम्भी में रखे अथवा उस स्त्रीकी योनिमें सदैव तिलके  
तेलका पीना रहे ।

जो स्त्री योनिरोग उत्पन्न हुआ होय तो सेवन,  
प्रत्यक्ष नगरकोरेता रचना, शीतल और भित्तनामक  
रिप्रा को दूध में रगनेके लिये प्रयत्न करनावे ।

जो योनि प्रसव नी होय तो उसपर पुनकी मास्त्रि  
रूपे दूधकी पत्र देकर जोरसे मिटा देवे और फिर  
जो योनि रोगवाली होय तो उसे दूध में रगने पड़ी  
करावे ।

सोठ, मिरच, पीपल, धनियॉ, जीरा, अनार और  
पीपलामूल, इनके चूर्णको पंडित वेगवार कहतेहैं ।

योनिमें दाह होता होय तो नित्य आमलोंके रसमें  
खांड डालकर पिये अथवा कमलिनीकी जड़को चावल्लोंके  
जलमें पीसकर पिये ।

योनिमेंसे राध निकलती होय तो नमिके पत्ते आदि  
शोधन पदार्थोंको सैन्धेनिमकके साथ पीसकर गोली बनाकर  
उन गोलियोंको योनिमें रखे वह हितकारकहै ।

योनि दुर्गंधवाली होय अथवा पिच्छिल होय तो दन्ध,  
अडूसा, कडवेपरवल, फूलप्रियगु और नीम इनके चूर्णको  
योनिमें रखे और अमलतास आदिके काथसे यो-  
निको धोवे ।

पीपल, कालीमिरच, उडद, सोया, कूठ और सैन्धा-  
निमक इनको पीसकर तर्जनी अगुलीके बराबर लम्बी  
और मोटी बत्ती बनाकर योनिमें रखे तो इससे कफजन्य  
योनिकी पीडा गमन होजाती है ।

कर्णिकानामक कफजन्य योनिरोग होय तो योनिमें  
शोधन पदार्थोंसे बनाई हुई बत्ती रखे ।

गिलोय, हरड, बहेडा, आमला और जमालगोटा  
इनके काथकी धारोंसे योनिको धोवे तो योनिकी खुजली  
दूर होजातीहै ।

कत्था, हरड, जायफल, नीमके पत्ते और सुपारी इन-  
का चूर्ण करके मूँगके घृणमें पीसकर वस्त्रमें छानकर सुखा  
लेवे, फिर उसको योनिमें डालनेसे योनि सिकुड जातीहै  
और जलका व्याघ्र बंद होजाताहै ।

कौंडकी जड़का त्रिधिपूर्वक काथ बनाकर उस काथसे  
योनिको धोवे तो योनि सिकुच जाती है ।

जीरा, काला जीरा, पीपल, कलैजी, सुगंधित वच,  
अडूसा, भवानमक, जवाग्वार और अजवायन इनका चूर्ण  
सरके कुठेक गरमकर उनमें खांड मिलाकर लट्ठ बना  
लेवे उन लट्ठदुओंको जठराग्निके बलानुसार खाय तो  
योनिमें रोग यमस्त नष्ट होजातेहैं । चूहेके मासका  
काथ बनाकर उसमें तिलका तेल पकाकर उस तेलका  
पीया योनिमें रखे तो योनिस्मयन्धो रोग नष्ट होजाते-  
हैं ॥ ३५-४९ ॥

अथ त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलां द्रौ सहचरो गुडूचीं सपुनर्नवाम् ॥  
शुकनासां हरिद्रे ढे राक्षां मेदां शता-

वरीम् ॥ ५० ॥ कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं  
पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ तत्सिद्धं पाययेन्नारीं  
योनिरोगप्रशान्तये ॥ ५१ ॥

हरड, बहेडा, आमले, सफेद फूलकी कट्सरैया, पीले  
फूलकी कट्सरैया, गिलोय, पुनर्नवा, श्योनाक, हलदी,  
दारुहलदी, रास्ना और दुगुनी सतावर इनका कल्क डाल  
कर चौसठ तोले घीको चौगुने दूधमें पकावे इस घृतको  
पान करनेसे योनिके सब रोग नष्ट होजातेहैं इसको 'त्रिफ-  
लाघृत' कहतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ सर्वयोनिरोगोपरिफलघृतम् ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला ॥  
मेदे पयस्या काकोल्यौ मूलं चैवाश्वगन्ध-  
जम् ॥ ५२ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे प्रियंगुः  
कटुरोहिणी ॥ उत्पलं कुमुदं द्राक्षा का-  
कोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ५३ ॥ एतेषां  
कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ शता-  
वरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ५४ ॥  
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥  
पुत्राञ्जनयते वीरान्मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान्  
॥ ५५ ॥ या चैवास्थिरगर्भा स्यात्पुत्रं  
वा जनयेन्मृतम् ॥ अल्पायुषं वा जनयेद्या  
च कन्यां प्रसूयते ॥ ५६ ॥ योनिरोगे  
रजोदोषे परिस्त्रावे च शस्यते ॥ प्रजावर्ध-  
नमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ५७ ॥  
नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्ति-  
तम् ॥ अनुक्तं लक्षणामूलं क्षिपंत्यत्र चिकि-  
त्सकाः ॥ ५८ ॥ जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतं  
तत्र प्रयुज्यते ॥ आरण्यगोमयेनैव वह्नि-  
ज्वाला च दीयते ॥ ५९ ॥

मेदामहामेदयोरभावे शतावरी द्विगुणा  
देया । पयस्यात्र क्षीरकाकोली तद्युगलाभावे  
अश्वगन्धा द्विगुणा देया ॥ प्रियंगुस्थाने  
केचिद्विगु पठन्ति । पयस्या काकोलीत्युक्ता

पुनः काकोल्यौ इति काकोलीक्षीरकाकोल्यो-  
र्द्वैगुण्यार्थम् । एतस्य फलघृतस्य पाठो  
नानाविधस्तन्त्रेषु । तत्र हिंगुवचातगरजी-  
वकर्षभका एवाधिकाः । जीवकर्षभकयोर-  
भावे विदारीकन्दो द्विगुणो देयः ॥

मजीठ, मुलैठी, कूठ, हरड, बहेडा, आमला, खाड,  
खिरैटी, दुगुनी सतावर, चौगुनी असगंध, असगंधकी  
जड़, अजमोद, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगू, कुटकी  
कमल, बबूला ( कुमुदिनी ), दाख, काकोली, क्षीरका-  
कोली सफेद और लाल चन्दन यह प्रत्येक पदार्थ एक  
एक तोला लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको चौसठ  
तोलेभर घी, दुगुना सतावरका रस, तथा दुगुना दूध इन  
सबको एकत्र मिलाकर पकावे तो यह फलघृत सिद्ध  
होताहै जो पुरुष इस घृतको पिये तो मैथुन करनेमें प्रबल  
होताहै और वीर, बुद्धिमान् तथा रूपवान् पुत्रोंको उत्पन्न  
करेहै । जिन स्त्रियोंका गर्भ गिरजाताहै अथवा जिनके  
मरीहुई सतान उत्पन्न होतीहै, अथवा जिनके संतान  
होकर मरजातीहै, अथवा जिसके केवल कन्याही उत्पन्न  
होती होय उनको इस घृतके सेवन करनेसे सर्वगुणसम्पन्न  
सुंदर दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होतेहैं ।

योनिस्त्राव, रजोदोष, और अन्यान्य योनिरोगोपर भी  
यह घृत हितकारी है । संतति तथा आयुको बढ़ानेवाला  
और संपूर्ण भूतप्रेतादिकोंको निवारण करनेवाला अश्विनी-  
कुमारोंका कहा हुआ यह 'फलघृत' नामवाला घी है ।  
इस पाठमें सफेद कटेरी की जड़ डालना कही नहीं लिखा  
है तथापि वैद्य लोग डालते हैं ।

जिसका बछड़ा जीता हो तथा जिसके शरीरका रंग-  
एकही होय ऐसी गायका घी लेकर उससे फलघृत बनावे  
और उसके पकानेमें अने उपलोकी आग्नि देवे, ऐसी  
परंपरा है । इस फलघृत बनानेका पाठ ग्रंथोंमें अनेक  
प्रकारका है किंतु उनमें हींग, वच, तगर और दुगुना  
विदारीकद यह औषधि अधिक हैं ॥ ५२-५९ ॥

अथ योनिकंदचिकित्सा ।

गैरिकाम्रास्थिजन्तुमरजन्यञ्जनकटुफलाः ॥



परयेद्योनिमेतेषां चूर्णैः क्षौद्रसमन्वितैः ॥  
॥ ६० ॥ त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण  
च सेवेयत् ॥ प्रमदा योनिकन्देन व्याधि-  
ना परिमुच्यते ॥ ६१ ॥

आमरेकी गुठली, वायविडग, हलदी, रसोत और  
पानकल इनका चूर्ण करके सहतमे मिलाकर योनिमे भरे  
थोरा हरद, बहेडा तथा आमला इनके काथमें सहत  
टानकर उससे सेवन करे तो 'योनिकद' नामक स्त्रियोंका  
रोग नष्ट होजाताहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ गर्भिणीरोगचिकित्सा ।

हीवेरातिविषामुस्तमोचशक्रेऽशृतं जलम् ॥  
दद्याद्भ्रं प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥ १ ॥  
कुक्षिरुगुदरज्यथा ॥

मधुकचन्दनोशीरसारिवापन्नपत्रकैः ॥  
शर्करामधुसंयुक्तैः कषायो गर्भिणीज्वरे ॥  
॥ २ ॥ चन्दनं सारिवालोध्रमृद्धीकाशर्क-  
रान्वितम् ॥ काथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भि-  
णीज्वरशान्तये ॥ ३ ॥ पीतं विश्वमजा-  
र्धरिर्नाशयेद्विषमज्वरम् ॥

गर्भिण्या इतिशेषः ॥

आन्नजम्बूत्वचः काथैर्लेहयेल्लाजसक्तकम् ॥  
अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत्  
॥ ४ ॥ हीवेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्या-  
कवत्सादनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविपाका  
यं पिबेद्गर्भिणी ॥ नानाव्याधिरुजातिसारक-  
गद रक्तस्रुतो वा ज्वरे योगोऽयं मुनिभिः  
पुरा निगदितः सुत्यामयेऽप्युत्तमः ॥ ५ ॥

सुगन्धवाला, अरलू, लालचन्दन, खिरौटी, धनियों,  
गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और  
अतीस इनका काथ बनाकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके अनेक  
प्रकारके रोग, व्यथा, अतीसार रुधिरस्त्राव और गर्भस्त्रा-  
वकी पीडा भी दूर होजातीहै । यह उत्तम प्रयोग प्राचीन  
मुनियोंने कहा है ॥ १-५ ॥

सुगन्धवाला, अरलू, लालचन्दन, खिरौटी, धनियों,  
गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और  
अतीस इनका काथ बनाकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके अनेक  
प्रकारके रोग, व्यथा, अतीसार रुधिरस्त्राव और गर्भस्त्रा-  
वकी पीडा भी दूर होजातीहै । यह उत्तम प्रयोग प्राचीन  
मुनियोंने कहा है ॥ १-५ ॥

सुगन्धवाला, अरलू, लालचन्दन, खिरौटी, धनियों,  
गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और  
अतीस इनका काथ बनाकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके अनेक  
प्रकारके रोग, व्यथा, अतीसार रुधिरस्त्राव और गर्भस्त्रा-  
वकी पीडा भी दूर होजातीहै । यह उत्तम प्रयोग प्राचीन  
मुनियोंने कहा है ॥ १-५ ॥

वकरीके दूधके साथ सोठको पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंका  
विषमज्वर शांत होजाताहै ॥

आम तथा जामुनकी छालका काथ बनाकर उसमें  
जीलोंके सत्तू मिलाकर खाय तो तत्काल ही गर्भिणीका  
ग्रहणीरोग शांत होजाताहै ।

सुगन्धवाला, अरलू, लालचन्दन, खिरौटी, धनियों,  
गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और  
अतीस इनका काथ बनाकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके अनेक  
प्रकारके रोग, व्यथा, अतीसार रुधिरस्त्राव और गर्भस्त्रा-  
वकी पीडा भी दूर होजातीहै । यह उत्तम प्रयोग प्राचीन  
मुनियोंने कहा है ॥ १-५ ॥

अथ गर्भस्त्रावगर्भपातयोर्निदानं

पूर्वरूपं च ।

ग्राम्यधर्माध्वगमनपानायासप्रपीडनैः ॥  
ज्वरोपवासोत्पतनग्रहाराजीर्णधावनैः ॥  
॥ ६ ॥ वमनाच्च विरेकाच्च कुन्थनाद्गर्भ-  
पातनात् ॥ तीक्ष्णधारोष्णकटुकतित्तरूक्ष-  
निषेवणात् ॥ ७ ॥ वेगाभिघाताद्विषमा-  
दासनाच्छयनाद्द्रयात् ॥ गर्भे पतति  
रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ ८ ॥

गर्भपातनाद्गर्भपातनं नियमेन गर्भपातन-  
शीलं द्रव्यम् । अथ गर्भस्य स्त्रावपातयोः  
पूर्वरूपमाह । गर्भे पतति इत्यादि । पतति  
स्त्रावेण पातेन वा पतिष्यति ॥

मैथुन करनेसे, मार्ग चलनेसे, हाथी बोडेकी सवारीपर  
चढ़नेसे, परिश्रम करनेसे, अत्यंत दबनेसे, ज्वरसे, उप-  
वाससे, कूटनेसे या गिरपडनेसे, अजीर्णसे, दीहनेसे, वमन-  
से, विरेचनसे, त्प्रेषसे, गर्भको गिरानेवाले तीक्ष्णादि द्रव्यों-  
को सेवन करनेसे, तीक्ष्ण, धार, उष्ण, तीखे, कटवे तथा  
नरुण पदार्थोंका सेवन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंकी रोक-  
नेसे, विषम आसन पर बैठनेसे, विषम स्थानमें सोनेसे,  
और भयसे गर्भस्त्राव अथवा गर्भपात होताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ गर्भ चरनेको और गिरनेको होता है तो शूलकी  
पीडा तथा रुधिर निकलता है ॥ ८ ॥

अथ स्त्रावपातयोरवधिः ।

आचतुर्थात्ततो मासात्पञ्चवेद्गर्भविद्रवः ॥

ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चम-  
षष्ठयोः ॥ ९ ॥

आचतुर्थात् मासाच्चतुर्थमासपर्यन्तं गर्भस्य  
विद्रवः शोणितरूपः 'गर्भः स्रवति शोणि-  
तम्' इति भोजवचनात् । स्थिरशरीरस्य  
कठिनशरीरस्य ॥

चौथे महीनेतक जो गर्भ रुधिर रूपसे स्रवताहै उसको  
गर्भस्त्राव कहतेहैं । भोजने भी कहा है कि " गर्भ चौथे  
महीनेतक रुधिर रूपसे स्रवताहै " ॥

चौथे महीनेके पश्चात् गर्भका अंग कठिन होजाता-  
है, पांचवे महीनेमें अथवा छठे महीनेमें जो गर्भ गिरताहै  
उसको गर्भपात कहतेहैं ॥ ९ ॥

अथ गर्भपातनिदानं दृष्टान्तश्च ।

गर्भोऽभिघातविषमासनपीडनाद्यैः पक्वं  
द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ १० ॥

यथा वृन्तलभं पक्वं फलमभिघातेनाकाले  
एव पतति तथा गर्भोऽप्यभिघातादिनाऽकाले  
पतति ॥

जिस प्रकार वृक्षकी शाखामें लगा हुआ फल अभिघात  
आदिसे अकालमें भी गिरपडताहै, उसी प्रकार गर्भ  
अभिघातसे, विषम आसनसे और दवाने आदिसे अकाल  
में गिरजाताहै ॥ १० ॥

अथ गर्भस्त्रावचिकित्सा ।

गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः ॥  
तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिशृतं  
पिवेत् ॥ ११ ॥

गर्भिणी स्त्रीके गर्भमेंसे जो बारबार रुधिर स्रवे तो उस  
रुधिरको रोकनेके लिये उस स्त्रीको निम्न लिखित उत्पलादि  
गणकी औषधियोंका काथ पिलावे ॥ ११ ॥

अथोत्पलादिगणः ।

उत्पलं नीलमारक्तं कलारं कुमुदं तथा ॥  
श्वेताम्भोजञ्च मधुकमुत्पलादिरयं गणः  
॥ १२ ॥ संशीलितो हरत्येव दाहं तृष्णां

हृदामयम् ॥ रक्तपित्तञ्च मूच्छाञ्च तथा  
छर्दिमरोचकम् ॥ १३ ॥

नीले कमल, लाल कमल, नीलोफर, सफेद बबुले  
( कुमुद ) और मुलैठी इनको उत्पलादिगण कहतेहैं । इस  
गणका काथ बना कर पीनेसे दाह, तृषा, हृदयकी पीडा,  
रक्तपित्त, मूच्छा, वमन और अरुचि दूर होतीहै ॥ १२ ॥ १३

अथ गर्भपातोपद्रवाः ।

प्रसंसमाने गर्भे स्यादाहः शूलञ्च पार्श्व-  
योः ॥ पृष्ठरुक्प्रदरानाहौ मूत्रसंगश्च  
जायते ॥ १४ ॥

प्रसंसमाने पतति ॥

जब गर्भ पतित होताहै तब दाह, पसलियोमें ,  
पीठमें पीडा, प्रदर, अफारा और मूत्रका अवरोध होता-  
है ॥ १४ ॥

अथ गर्भस्य स्थानान्तरगमनो-  
पद्रवाः ।

स्थानात्स्थानान्तरं तस्मिन्प्रयात्यपि च  
जायते ॥ आमपक्काशयादौ तु क्षोभः  
पूर्वेऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥

पूर्वेऽपि उपद्रवाः पार्श्वशूलादयः ॥

जब गर्भ एक स्थानमेंसे दूसरे स्थानमें जाताहै तब  
आमाशय तथा पक्काशय आदिमें क्षोभ होताहै और उपरोक्त  
गर्भपातके उपद्रव ( पसलियोमें शूल आदि ) होतेहैं ॥ १५ ॥

अथ गर्भपातोपद्रवचिकित्सा ।

स्निग्धशीतक्रियास्तेषु दाहादिषु समाच-  
रेत् ॥ कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुर-  
कस्य च ॥ १६ ॥ शृतं दुग्धं सितायुक्तं  
गर्भिण्याः शूलहृत्परम् ॥ श्वदंष्ट्रामधुक-  
क्षुद्राम्लानैः सिद्धपयः पिवेत् ॥ १७ ॥  
शर्करामधुसंयुक्तं गर्भिणीवेदनापहम् ॥ १८ ॥

अम्लानः पुष्पजातिरयं वाणपुंख इति  
गौडादौ प्रसिद्धः ॥

मृत्कोष्ठागारिकागेहसम्भवा नवमल्लिका ॥  
समंगा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्ज-

नमः ॥ १९ ॥ तथा सर्जरसश्चैतान्यथा-  
लाभं विचूर्णयेत् ॥ तच्चूर्णं मधुना लिह्या-  
द्र्भपातप्रशान्तये ॥ २० ॥

मृत्कोष्ठागारिकागहसम्भवा कोष्ठागा-  
रिका किरदी तन्निर्मितगृहभवा मृत्तिका ।  
समंगा लज्जालूः ॥

कसेरुत्पलशृंगाटकलकं वा पयसा पिबेत् ॥  
पक्वं वचारसोनाभ्यां हिगुसौवर्चलान्वि-  
तम् ॥ आनाहे तु पिबेद्दुग्धं गुर्विणी  
सुखिनी भवेत् ॥ २१ ॥

सौवर्चलं चौहार इति लोके ॥

तृणपञ्चकमूलानां कल्केन विपचेत्पयः ॥  
तत्पयो गर्भिणी पीत्वा मूत्रसंगाद्विमु-  
च्यते ॥ २२ ॥ शालीक्षुकशकाशैः स्या-  
च्छरेण तृणपञ्चकम् ॥ एषां मूलं तृषादा-  
हपित्तासृङ्गमूत्रसंगहत् ॥ २३ ॥

दाह आदि होय तो वैद्य लिख और शीतल क्रिया  
करे । कुमा ( टाम ), कौंस, अढ और गोखुरकी जड़  
उनके कट्टरसे पकाये हुए दूधमें मिश्री डालकर उसको  
पिने से गर्भिणीका श्मट नष्ट होजाताहै ॥ गोखुर, मुलंठी,  
चटैरी और मिश्रीका इनके कट्टरसे दूधको पकाकर पीने-  
से गर्भिणीकी वेदना नान हो जातीहै, भैरिके घरकी  
मट्टी, गौंगमेके फूट, लज्जवती, धायके फूट, पीला गेरु,  
रगोन और रात इनमेंसे जितने पदार्थ मिल्यसकें उतने  
पदार्थोंका दारिक चूर्ण करके गृहभं मिलाकर चाटनेसे  
श्मट नष्ट होजाताहै ।

शर्मेण, श्मट और टिगाटे श्मटा कटक बनाकर दूध  
के साथ पिने से गर्भिणीको सुख उत्पन्न होताहै ।

ये गर्भरोगके जन्म आजार तो गर्भिणीको वच  
पत्त में खुबे कट्टरसे दूध पकाकर उग्मे हांग तथा काला-  
विष मिलाकर पिने से उग्मे सुख उत्पन्न होताहै ।

शर्मेण श्मट, श्मटा जड़, श्मटकी जड़, कौंसकी  
जड़ और मिश्रीकी जड़ इनके कट्टरसे पकाये हुए दूधको  
पिने से गर्भिणीको सुख उत्पन्न होताहै । नद

पचमूल-तृषा, दाह, रक्तपित्त और मूत्रके अवरोधको दूर  
करेहै ॥ १६-२३ ॥

अथ गर्भिण्याः प्रतिमासचिकित्सा ।

मधुकं शाकबीजं च पयसा सुरदारु च ॥  
अश्मन्तकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली  
शतावरी ॥ २४ ॥ वृक्षादनी पयस्या च  
प्रियंगूत्पलसारिवा ॥ अनन्ता सारिवा  
राक्ता पद्मा मधुकमेव च ॥ २५ ॥ बृहत्यौ  
काश्मरी चापि क्षीरिशुंगास्त्वचो घृतम् ॥  
पृष्टिपर्णी वचा शिथु श्वदंष्ट्रा मधुप-  
र्णिका ॥ २६ ॥ शृंगाटकं विषं द्राक्षा  
कसेरु मधुकं सिता ॥ वत्सैते सप्त योगाः  
स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ २७ ॥ यथासं-  
ख्यं प्रयोक्तव्या गर्भसावे पयोयुताः ॥  
एवं गर्भो न पतति गर्भशूलञ्च  
शाम्यति ॥ २८ ॥

शाकबीजं शाको महावृक्षः कर्कशपत्र-  
स्तस्य बीजम् । पयस्या अत्र क्षीरकाकोली  
तदलाभे अश्वगन्धा ग्राह्या । अश्मन्तकः  
कोविदारसदृशोऽम्लपत्रः अम्लोन इति लोके ।  
ताम्रवल्ली रामकान्ता मञ्जिष्ठा इति लोके ।  
प्रियंगुः कंगुः । अनन्ता उत्पलसारिवा ।  
पद्मा पद्मचारिणी भांगीति केचित् । बृहत्यौ  
स्यूलफला स्वल्पफला च । क्षीरिशुंगाः  
क्षीरिणां वटादीनां शुंगाः अविकाशिताः  
प्रवालाः । मधुपर्णिका गम्भारी पयोयुताः  
प्रतिमासम् अर्द्धश्लोकोक्ताः औषधमिलिताः  
कर्षमिताः शीततोयेन संपिष्टाः पलमितेन  
दुग्धेनालोडिताः पातव्या इत्यर्थः ॥

कपित्थबृहतीविल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः ॥  
मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्विषग-  
ष्टम् ॥ २९ ॥

कपित्थादीनां मूलानि मिलितानि  
पलमितानि पलाष्टकमिते क्षीरे द्वात्रिंशज्ज-  
लपलयुक्ते काथयित्वा क्षीरमात्रमवशिष्टं  
पातुं दद्यादित्यर्थः ॥

नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबे-  
त् ॥ ३० ॥

अत्रापि मधुकादीनि मिलित्वा कर्षमि-  
तानि शीततोयेन सम्पिष्टानि पलपरिमितेन  
दुग्धेनालोडितानि पिबेत् ॥

क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्यादशमे  
हितम् ॥ सक्षीरं वा हिता शुण्ठी मधुकं  
सुरदारु च ॥ ३१ ॥

दशमे शुण्ठीपयस्याभ्यां पूर्ववत्कथितं  
पिबेत् ॥ अथवा शुण्ठीमधुकसुरदारुणि शीत-  
लजलपिष्टानि दुग्धेनालोडितानि पिबेत् ॥

क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समंगामूलकं शि-  
वाम् ॥ पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी-  
शूलशान्तये ॥ ३२ ॥

अत्र क्षीरिकायाः फलं दद्यात् । समंगा-  
मूलकं लज्जालूमूलम् ॥

सिता विदारी काकोली क्षीरी चैव  
मृणालिका ॥ गर्भिणी द्वादशे मासि  
पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥ ३३ ॥

काकोल्यभावेऽश्वगन्धामूलं ग्राह्यम् ॥

एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशा-  
म्यति ॥ ३४ ॥

पहिले महीनेमें मुलैठी, सागौनके बीज, असगंध और  
देवदारु इनमेंसे जितने मिलें उतने पदार्थोंका एक तोला  
कल्क दूधमें घोलकर पिलावे ।

दूसरे महीनेमें अश्मतक ( जिसको पश्चिममें आपटा  
कहते हैं और कहीं कहीं अम्ललोना अम्लनोनिया और  
किसी देशमें दीपकवृक्ष भी कहते हैं इसके पत्ते कचना-  
रकी समान होते हैं ), काले तिल, मजीठ और सत्तावर  
इनमेंसे जितने मिलें उतनेका एक तोला कल्क दूधमें  
घोलकर पिलाना चाहिये ।

तीसरे महीने वंदा, फूलप्रियंगू, कंगुनी, और सफेद  
सारिवा इनमेंसे जितनी मिलें उतनी औषधियोंका एक  
तोला दूधमें घोलकर पिलावे ।

चौथे महीनेमें सफेद सारिवा, काली सारिवा, राज्ञा,  
भारंगी और मुलैठी इनमेंसे जितनी मिलें उनका एक तोला  
कल्क दूधमें मिलाकर पिलावे ।

पांचवें महीनेमें कटेरी, फडी कटेरी, कुम्भेर, वडआदि  
पंचक्षीरवृक्षोंकी बहुत छोटी २ कोपल और छाल इनमेंसे  
जितनी मिलसके उतनीका एक तोला कल्क दूधमें घोल-  
कर पिलावे ।

छठे महीनेमें पिठवन, वच, सैजिना, गोखरू, और  
कुम्भेर इनका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलाना  
चाहिये ।

सातवें महीनेमें सिंघाडे कमलकन्द ( भसीडा ), दाख,  
कसेरू, मुलैठी और मिश्री इनमेंसे जितनी मिलें उनका  
एक तोला कल्क दूधमें डालकर पिलावे । इस प्रकार कर-  
नेसे गर्भपात और गर्भस्त्राव नहीं होता और गर्भसम्बन्धी  
शूलभी नष्ट होजाताहै । उपरोक्त औषधियोंको शीतल  
जलमें पीसकर कल्क करना चाहिये और उस कल्कको  
दूधमें मिलाकर पिलाना चाहिये ।

आठवें महीने वैद्य कैथ, कटाई, बेल, परवल, ईख  
और कटेरी इनकी जड़को शीतल जलमें पीसकर इनका  
एक तोलेभर कल्क बत्तीसपल ( चार तोलेका एक  
पल होताहै ) जलमें मिलाकर आठ पल दूधमें डालकर  
उसको पकावे जब पकते पकते केवल दूधमात्र रह जाय  
और सब पानी जल जाय तब वह दूध उस गर्भिणी  
स्त्रीको पिलावे ।

नवमे महीनेमें मुलैठी, सफेद सारिवा, कालीसारिवा,  
असगंध और लाल पत्तोंका जवासा इनको शीतल जलमें  
पीसकर इनका एक तोला कल्क चार तोले दूधमें घोल-  
कर पिला देवे ।

दशवें महीनेमें सोठ और असगंध इनको शीतल जलमें  
पीसकर इनका एक तोला कल्क बत्तीस तोले जलमें मिला-  
कर आठ पल दूधमें डालकर उस दूधको पकावे जब  
पकते पकते केवल दूधही मात्र रहजाय और सब पानी  
जलजाय तब उस दूधको गर्भिणीको पिलावे अथवा सोठ  
मुलैठी और देवदारु इनको शीतल जलमें पीसकर इनका  
एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिये ॥

सुवर्चला सूर्यकान्ता । विशल्या पादला ॥  
 करद्भीभूतगोमूर्द्धा सृतिकाभवनोपरि ॥  
 न्यापितस्तत्क्षणान्नार्याः मुग्धं प्रसवका-  
 रकः ॥ ४५ ॥



करंकीभतः अस्थिमान्नेण स्थितः ।

पोतकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेन च ॥  
योनेरभ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसू-  
यते ॥ ४६ ॥

पोतकी पोई इति लोके ।

कृष्णा वच्चा चापि जलेन पिष्ट्वा सैरण्ड-  
तैला खलु नाभिलेपात् ॥ सुखं प्रसूतिं  
कुरुतेऽग्नानां निष्पीडितानां बहुभिः  
प्रमादैः ॥ ४७ ॥ मातुलंगस्य मूलं तु  
मधुकेन युतं तथा ॥ घृतेन सहितं पीत्वा  
सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४८ ॥ इक्षोरुत्तर-  
मूलं निजतनुमानेन तन्तुना बद्धा ॥  
कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेऽविल-  
म्बेन ॥ ४९ ॥ तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्र-  
माणेन तन्तुना ॥ बद्धा कट्यान्तु नियतं  
सुखं नारी प्रसूयते ॥ ५० ॥

प्रसवके होनेमें विलम्ब होय तो योनिके चारों ओर  
काले साँपकी कैचलीकी धूनी देवे तथा मैनफलकी धूनी  
देवे । वा कलिहारीकी जडको डोरेमें बाँधकर हाथ  
पावोमें बाँधे अथवा हुलहुल या पाढलको धारण करे  
इससे तत्काल प्रसव होजाताहै ॥ जिसमें केवल हड्डी  
चाकी रहगई होय ऐसी मरी गायका सूखा मस्तक लेकर  
गर्भवती स्त्रीके सोनेके घरपर रखे तो तत्कालही सुखसे  
प्रसव होताहै ॥

पोईकी जडका कल्क बनाकर उसमें तिलका तेल  
मिलाकर उस कल्कका योनिमें भीतर लेप करनेसे स्त्रीके  
सुखसे प्रसव होताहै ॥

अनेक प्रकारके कारणोंसे प्रसवमें स्त्रीको बहुत कष्ट  
होय तो पीपल और वच इनको जलमें पीसकर अडीके  
तेलमें मिलाकर उसका नाभिके ऊपर लेप करे, इस  
प्रकार करे तो सुखसे प्रसव होताहै ॥

विजोरेकी जड और मुलैठी इनको पीसकर घीके साथ  
पीनेसे स्त्रियोंको सुखसे प्रसव होताहै । ईखकी उत्तरकी  
ओरकी जडको लेकर स्त्रीके शरीरकी बराबर लम्बे  
डोरेसे कमरमें बांधे तो सुखसे तत्काल प्रसव होताहै ॥

ताडकी उत्तरकी ओरकी जडको लेकर गर्भिणीके  
शरीरकी बराबर डोरेमें बांधनेसे तत्काल सुखपूर्वक प्रसव  
होताहै ॥ ४३-५० ॥

. अथ मूढगर्भस्य निदानसम्प्राप्ति-  
लक्षणानि ।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलञ्च  
योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् ॥ भ्रूणोऽनिलेन  
विगुणेन ततः स गर्भो संख्यामतीत्य  
बहुधा समुपैति योनिम् ॥ ५१ ॥

अस्यायमर्थः । पवनः स्वहेतुभिर्दुष्टः ततो  
मूढः रुद्धगतिः । मूढगर्भं रुद्धगतिं गर्भं यो-  
न्यादिषु शूलं मूत्रसंगञ्च करोति । ततः तेन  
अनिलेन विगुणेन रुद्धगतिना स गर्भः भ्रूणः  
कुटिलीकृतः चतुर्भिः प्रकारैः यातीत्यर्थः ।  
अष्टभिरपरे । तत्संख्यानिरासार्थमाह । संख्या-  
मतीत्य उक्तां संख्यामतिक्रम्य बहुधा बहुभिः  
प्रकारैः योनिं समुपैति ॥

अपने कारणोंसे दुष्ट हुई और कुठितगतिवाली  
मूढवायु गर्भको मूढ अर्थात् टेढ़ी गतिवाला करदेतीहै  
और योनिसे तथा पेटमें शूलको उत्पन्न करेहै तथा मूत्रको  
रोक देताहै । फिर मूढ वायुसे वह गर्भ रुककर चार  
प्रकारसे योनिमें आकर अडजाताहै ऐसा कितने एक  
वैद्य कहतेहैं और कितने एक वैद्य कहतेहैं कि आठ  
प्रकारसे योनिमें आकर अडजाताहै परंतु सिद्धांत यह  
है कि इन संख्याओंका कुछ नियम नहीं है अनेक प्रकारसे  
योनिमें आकर अडजाताहै ॥ ५१ ॥

अथ चतुर्विधमूढगर्भस्य लक्षण-  
नामानि ।

संकीलकः प्रतिखुरः परिधोऽथ बीजस्तेषू-  
र्द्धबाहुचरणैः शिरसा च योनौ ॥ संगी  
च यो भवति कीलकवत्स कीलो दृश्यैः  
खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसंगी ॥ ५२ ॥  
गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो  
योनौ स्थितः सपरिधः परिधेण तुल्यः ५३

संशब्दोऽत्र छन्दोऽनुरोधात्कप्रत्ययोऽपि स्वार्थे तेन कील इति नाम । तस्य लक्षण-  
माह-ऊर्ध्वबाहुचरणैरिति । उत्थितैर्बाहुचर-  
णशिरोभिः योनौ यः संगी भवति स कीलः  
कीलकाख्यो मूढगर्भः । दृश्यैर्वह्निर्गतैः ।  
खुरैः खुरसाधर्म्यात्खुरशब्देनात्र हस्तौ पादौ  
च गृह्येते । तेन हस्तद्वयपादद्वयैर्वह्निर्गतैः  
प्रतिखुरः । स हि कायसंगी हस्तपादेतर-  
कायेन सक्तो भवति । यो गर्भः भुजद्वय-  
शिराः भुजद्वयमध्ये शिरो यस्य एतादृग-  
च्छेत्रिःसंरत् । तच्छेषेण शरीरेण सक्तो  
भवति स बीजकाख्यः । परिधवद्योनौ स  
परिधः ॥

जिसके हाथ, पाव तथा मस्तक योनिमें अटकजाता  
है वह मूढगर्भ कीलकी समान होनाहै इसलिये यह  
कीलक कहा जाताहै ।

जिसके दोनों हाथ और दोनों पाव बाहर निकल आवे  
और बाकी शरीर योनिमें अटक जाय उस मूढगर्भको  
प्रतिखुर कहतेहैं ।

जिसमें दोनों हाथोंके बीचमें होकर शिर बाहर निकल  
आवे और बाकी शरीर योनिमें अटका रहै उस मूढग-  
र्भको बीजक कहतेहैं ।

योनिमें मिनाट वद कर्नेके टटेलेकी समान आटा आकर  
योनिमें अटक जाय उसको परिध कहतेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ मूढगर्भस्याष्टधात्वम् ।

द्वारं निरुद्धय शिरसा जठरेण कश्चित्क-  
श्चिच्छरीरपरिवर्तनकुञ्जकायः ॥ एकेन  
कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति  
कश्चिदवाहमुखोऽन्यः ॥ ५४ ॥ पार्श्व-  
पवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा  
भवति गर्भगतिः प्रसूतो ॥ ५५ ॥

अपमर्थः । कश्चिच्छिरसा योनिद्वारं  
निरुद्धय कश्चिन्कुञ्जकायेन सकुञ्जेन पृष्ठेन  
संगी भवति । कश्चिदेकेन भुजेन योनिस्तेन  
संगी भवति । कश्चिद् भुजद्वयेन

तिर्यग्भूत्वा सक्तो भवति । अन्यः ग्रीवाभंगा-  
दधोभूतेन मुखेन सक्तो भवति । कश्चित्पा-  
श्वेन अपवृत्ता निरुद्धा गतिर्यस्य एवंविधो  
योनिद्वारमेति याति ॥

कोई मूढगर्भ मस्तकसे योनिद्वारको रोकलेताहै ।  
कोई मूढगर्भ पेटसे योनिद्वारको रोकलेताहै । कोई मूढ-  
गर्भ कुवडा होकर पीठसे योनिद्वारको रोकदेताहै ।  
कोई मूढगर्भ योनिमेंसे एक हाथ निकालकर बाकीके सब  
शरीरसे योनिद्वारमें अटकजाताहै । कोई मूढगर्भ दोनों  
हाथोंको बाहर निकालकर बाकी सब शरीरसे अटकजाता-  
है कोई मूढगर्भ आडा हो कर अटकजाताहै । कोई  
गरदनके टूटनेसे तिरछा मुख होकर योनिद्वारको रोक  
लेता है । कोई मूढगर्भ पसलियोंको फिराकर योनिद्वारमें  
अटक जाताहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ सुश्रुतोक्ता अन्येऽष्टप्रकाराः ।

“कश्चिद्वाभ्यां योनिःसक्थिभ्यां योनिमुखं  
प्रतिपद्यते ॥ १ ॥ कश्चिदाभुमैकसक्थि-  
रितरेण सक्थना ॥ २ ॥ कश्चिदाभुमस-  
क्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यग्गतः ॥ ३ ॥  
कश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनि-  
द्वारं पिधायावतिष्ठते ॥ ४ ॥ अन्यः  
पार्श्वपवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना ॥  
॥ ५ ॥ कश्चिदाभुमशिरा बाहुद्वयेन ॥ ६ ॥  
कश्चिदाभुममध्ये हस्तपादशिरोभिः ॥ ७ ॥  
कश्चिदेकेन सक्थना योनिद्वारं प्रतिपद्यते  
अपरेण पायुमिति ॥ ८ ॥”

“कोई मूढगर्भ दोनों सांथलोंसे योनिके मुखमें आताहै ।  
कोई मूढगर्भ एक सांथलसे कुवडा होकर दूसरी  
सांथलसे योनिके मुखमें आताहै । कोई मूढगर्भ सांथल  
तथा शरीरको कुवडा करके कूलोंसे आटा होकर योनिमें  
गुप्तमें आताहै ।

कोई मूढगर्भ अपनी छाती, पगली और पीठ इनमेंसे  
एक अगमे योनिद्वारको दककर अटकजाताहै ।

कोई मूढगर्भ पसलियोंको और मस्तकको करके एक  
हाथसे योनिद्वारको रोकलेताहै ।

कोई मूढगर्भ अपने मस्तकको मोड़कर दोनों हाथोंसे योनिद्वारको रोकदेताहै ।

कोई मूढगर्भ अपनी कमरको टेढ़ी करके हाथसे, पांवसे और मस्तकसे योनिद्वारमे आताहै ।

कोई मूढगर्भ एक सांथलसे योनिद्वारमे प्राप्त होताहै और दूसरी सांथलसे गुदामे प्राप्त होताहै ॥”

### अथासाध्यमूढगर्भिणी ।

अपविद्धशिरा यातु शीताङ्गी निरपन्नपा ॥  
नीलोद्गतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां  
तथा ॥ ५६ ॥

अपविद्धशिराः अवनतशिराः शिरोऽपि  
धारयितुमशक्तेति यावत् । निरपन्नपा लज्जा-  
शून्या । नीलोद्गतशिरा कुक्षौ नीला उद्गता  
शिरा यस्याः सा ॥

जिसका मस्तक गिर गिर जाता होय, शरीर शीतल होगया होय, लज्जारहित होगई होय और जिसके शरीरमें नीले रंगकी नसें उभर आईं होंवें वह स्त्री गर्भको नष्ट करदेती है और गर्भ उस स्त्रीको नष्ट करदेता है ॥ ५६ ॥

### अथान्तर्मृतगर्भलक्षणम् ।

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपा-  
ण्डुता ॥ भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलश्चान्त-  
र्मृते शिशौ ॥ ५७ ॥

गर्भास्पन्दनं गर्भस्याचलत्वम् । आवीनां  
प्रणाश इति प्रसववेदनानामभावः । अथवा  
आवीशब्देन प्रसवलिङ्गानि मूत्रकफप्रसेका-  
दीनि कथ्यन्ते तेषां नाशः । शूलः अन्तर्मृ-  
तस्य शिशोरुच्छूनतया ॥

जो गर्भके भीतर बालक मरगया होय तो वह हलन चलन नहीं होता । प्रसवकी पीड़ा नहीं होती । तथा मूत्र कफका धाना आदि प्रसवके लक्षण नष्ट होजातेहैं । शरीरका रंग स्याही लिये पीला होजाताहै, दुर्गन्धित श्वास और मरे बालकके सूजजानेके कारण शूल होताहै ॥ ५७ ॥

### अथ गर्भमरणकारणम् ।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ॥

गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपी-  
डितः ॥ ५८ ॥

उपतापो दुःखम् । मानस उपतापो बन्धु-  
धनक्षयादिना । आगन्तुरुपतापः प्रहारादिः ॥

माताके प्रहार आदि आगन्तुक कारणोंसे अथवा बन्धु इष्ट घनादि क्षय आदि मानसिक कारणोंसे अथवा रोगोंसे पीडित होनेके कारण गर्भ पेटमेही मरजाताहै ॥ ५८ ॥

अथ गर्भिण्या अन्यासाध्यलक्षणानि ।

योनिसंवरणं संगः कुक्षौ मक्कल एव च ॥

हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युप-

द्रवाः ॥ ५९ ॥ वातलान्यन्नपानानि

ग्राम्यधर्म प्रजागरम् ॥ अत्यर्थं सेवमा-

नायां गर्भिण्यां योनिमार्गगः ॥ ६० ॥

मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृ-

तिम् ॥ कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरन्तर्गतोऽ-

निलः ॥ ६१ ॥ निरुणद्ध्याशयद्वारं

पीडयन्गर्भसंस्थितम् ॥ निरुद्धवचनोच्छ्वा-

सो गर्भश्चाशु विपद्यते ॥ ६२ ॥ उच्छ्वासे

रुद्धहृदयं नाशयत्याशु गर्भिणीम् ॥ योनि-

संवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते ॥ अन्तक-

प्रतिमं घोरं नारभेत चिकित्सितम् ॥ ६३ ॥

योनिसंवरणं व्याधिविशेषः । संगः कुक्षौ  
गर्भस्य लग्नता अप्रवृत्तिरिति यावत् । कुक्षौ  
मक्कलः रक्तमारुतजः शूलविशेषः । यद्यपि  
प्रसूताया मक्कलगूलमुक्तम् । तथापि सुश्रुते ।  
प्रजातायाश्चेति चकारेणाप्रसूताया अपि  
मक्कलगूलं भवति इति बोद्धव्यम् । उपद्रवा  
आक्षेपककासश्वासादयः ॥

योनिसंवरण रोग, गर्भका अटकना, मक्कलगूल, ( रुधिर  
तथा वातसे उत्पन्नहुआ एक प्रकारका शूल ) और मूढ-  
गर्भ तथा अन्यान्य आक्षेपक, खासी, श्वास आदि पद  
गर्भिणीको मारदेतेहैं ।

योनिस्वरण रोगके लिये अन्यग्रथोंमें कहा है कि “गर्भवती स्त्री वातकारक अन्नपात्र, मैथुन और रात्रिमें जागरण इनको अत्यन्त सेवन करे तो उसके प्रकुपित हुई योनिके मार्गमें स्थित वायु ऊर्ध्वगमन करनेवाली होनेसे योनिद्वारको बंद करदेतीहै और फिर भीतर रहनेवाली वायु गर्भगत बालकको पीडित करके गर्भाग्यके द्वारको रोकदेतीहै कि जिससे गर्भ अपने मुखके श्वासके रुक जानेसे तत्काल मरजाताहै । और हृदयके ऊपरसे चलता हुआ वाम गर्भिणीको मारदेताहै इस रोगको योनिस्वरण कहते हैं” ।

यद्यपि ‘प्रसूता स्त्रियोंके मकल्लशूल होताहै’ ऐसा कहा है । तथापि तुश्रुतमें ‘प्रजातायाश्च’ इसमें ‘चकार’ है इससे जानना चाहिये कि ‘जिसके प्रसव न हुआ होय उसके भी ‘मकल्लशूल होताहै’ ॥ ५९-६३ ॥

### अथ मूढगर्भचिकित्सा ।

याभिः संकटकालेऽपि बह्व्यो नार्यः प्रसा-  
विताः ॥ सम्यगुच्यं यशस्तास्तु नार्यः  
कुर्युरिमां क्रियाम् ॥ ६४ ॥ गर्भे जीवति  
मूढे तु गर्भे यत्नेन निर्हरेत् ॥ हस्तेन सर्पि-  
पाक्तेन योनेरन्तर्गतेन सा ॥ ६५ ॥

सा जनयित्री ॥

मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेश-  
येत् ॥ शस्त्रशाम्भार्यविदुषी लघुहस्ता  
भयोज्झिता ॥ ६६ ॥ सचेतनं तु शस्त्रेण  
न कथञ्चन दारयेत् ॥ स दीर्यमाणो  
जननीमात्मानं चापि मारयेत् ॥ ६७ ॥  
नोपक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि यण्डितः ॥  
तदाशु जननी हन्ति प्रभृतान्नं यथा  
पशुम् ॥ ६८ ॥

प्रभृतान्नमतिमात्रमन्नम् ।

यिन्नेन मर गइतमें भी अनेक विनोको प्रसन्न कराया  
होय और इस काममें विदुषी बड़ा फलदा हो, ऐसी  
दाई इस विनोको ले । मृत गर्भ जीता होय तो दाई  
अग्नि में दाई ही गर्भ मारकर योनिमें भीतर डालकर यत्न  
करे । गर्भको मार निपाट लेने ।

जो मूढगर्भ मरगया होय तो शस्त्रविधिको जानने-  
वाली, हलके हाथवाली, और भयरहित ऐसी दाई गर्भि-  
णीकी योनिमें शस्त्र डाले ।

जो गर्भमें जान होय तो उसको किसी प्रकार भी  
शस्त्रसे नहीं काटना चाहिये, क्योंकि जीवित गर्भको काट-  
नेसे वह अपने आप भी मरजाताहै और माताको भी  
मारदेताहै ।

जो गर्भ मरगया होय तो उसको जानकर उसमें कुछ  
भी विलम्ब नहीं करना चाहिये तत्काल शस्त्रसे काट डालना  
चाहिये क्योंकि नहीं काटनेसे मरा हुआ गर्भ तत्काल माताको  
मारदेताहै जिस प्रकार अधिक अन्न पशुकी समान मनु-  
ष्योंको मारदेताहै ॥ ६४-६८ ॥

### अथ गर्भच्छेदनप्रकारः ।

यद्यदङ्गं हि गर्भस्य योनौ सक्तं तु तद्वि-  
षक ॥ सम्यग्विनिर्हरेच्छित्त्वा रक्षेत्रारिं  
प्रयत्नतः ॥ ६९ ॥ एवं निर्हृतशल्यां  
तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ ततोऽभ्यक्तः  
शरीरायां योनौ स्नेहं विधारयेत् ॥  
एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशा-  
म्यति ॥ ७० ॥

गर्भका जो जो अंग योनिमें अटककरा होय उस उस  
अंगको वैद्य अच्छे प्रकारसे काटकर निकाल लेवे और  
यत्नपूर्वक स्त्रीकी रक्षा करे । गर्भके निकालनेके पश्चात्  
उस स्त्रीके शरीरपर गरम जलका सेचन करे और उसके  
पश्चात् शरीरपर मालिस करके योनिमें घी लगावे । इस  
प्रकार करनेसे योनि कोमल और शूल शांत होजाता-  
है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

### अथ प्रसूतायोनिक्षतादिचिकित्सा ।

तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं सुपेषयेत् ॥  
तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनि-  
रक्षता ॥ ७१ ॥ पलाशोदुम्बुरफलं ति-  
लतैलसमन्वितम् ॥ योनौ विलिप्तं मधुना  
गाढीकरणमुत्तमम् ॥ ७२ ॥ प्रसूता  
वनिता वृद्धकुक्षिहासाय सम्पिबेत् ॥  
प्रातर्मथितसंमिश्रं त्रिसप्ताहात्कणज-  
टाम् ॥ ७३ ॥

तोम्ब्रीके पत्ते और लोध इनको समान भाग लेकर अच्छे प्रकारसे पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनि तत्काल घावरहित होजातीहै ।

ढाकके फल और गूलरके फल इनको तिलके तेलमें पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनि अच्छे प्रकारसे दृढ हो जातीहै ।

जिसका प्रसव होनेके पीछे पेट बढगया होय ऐसी स्त्री इक्कीस दिनके पश्चात् प्रातःकाल पीपलामूलके चूर्णको दहीमें घोलकर पिये ॥ ७१-७३ ॥

**अथ प्रसूतायाः प्रसवानन्तरमनिः-**

**सृतापराजोपद्रवाः ।**

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि ॥  
तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्द-  
ताम् ॥ ७४ ॥

अपरा आम्बर इति लोके ।

जिसके प्रसव होनेपर आम्बर अर्थात् जेर न निकले तो वह आम्बरशूल, अकारा और अग्निको मन्द करेहै ॥ ७४ ॥

**अथोदरस्थितापरायाश्चिकित्सा ।**

केशवेष्टितयांगुल्या तस्याः कण्ठं प्रघर्ष-  
येत् ॥ निर्मोककटुकालाबूकृतबन्धनसर्षपैः ॥  
चूर्णितैः कटुतैलाक्तैर्धूपयेदभितो भ-  
गम् ॥ ७५ ॥

निर्मोकः सर्पकंचुकः कृतबन्धनं कोशातकः ॥  
लांगलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि ॥  
॥ ७६ ॥ प्रलिम्पेत्सूतिका योषिदपरा-  
पातनाय वै ॥ हस्तं छिन्ननखं स्निग्धं  
सूतायोनौ शनैः क्षिपेत् ॥ ७७ ॥ अपरां  
तेन हस्तेन जनयित्री विनिर्हरेत् ॥ एवं  
निर्हृतशल्यं तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥  
॥ ७८ ॥ ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ  
स्नेहं निधापयेत् ॥ ७९ ॥

अंगुलीमें वालोको बाँधकर उससे कटुको घिसनेसे आम्बर गिरजाताहै ।

सांपकी कैचली, कडवी तोम्ब्री, कडवी तोरई तथा

सरसो इनको एकत्र पीसकर सरसोंके तेलमें मिलाकर योनिमें चारो ओर धूनी देनेसे आम्बर गिरजाताहै ।

प्रसूता स्त्रीके हाथ और पांवके तलुओंके ऊपर कलिहारीकी जड़के कल्कका लेप करनेसे आम्बर गिरजाताहै ।

चतुर दाई अपने हाथकी अंगुलियोंके नखोंको अच्छे प्रकारसे काटकर हाथको घीसे चिकना करके धीरे धीरे प्रसूता स्त्रीकी योनिमें डालकर आम्बरको निकाल लेवे ।

इस प्रकार आम्बर निकालनेके पश्चात् स्त्रीके ऊपर गरम जलसे सेचन करे और फिर शरीरपर मालिस करके योनिमें घी लगावे, ॥ ७५-७९ ॥

**अथ मक्कलशूलस्य निदानं सम्प्राप्ति-  
लक्षणञ्च ।**

वनिताया प्रसूतायाः वातो रूक्षेण वाद्वि-  
तः ॥ तीक्ष्णोष्णशोषितं रक्तं रुद्धा ग्रन्थि-  
करोति हि ॥ ८० ॥ नाभ्यधः पार्श्व-  
योर्वस्तौ वस्तिमूर्द्धनि चापि वा ॥ ततश्च  
नाभौ वस्तौ च भवेच्छूलं तथोदरे ॥ ८१ ॥  
भवेत्प्रकाशयाध्मानं सूत्रसंगश्च जायते ॥

एतद्विषग्भिरुदितं मक्कलामयलक्षणम् ८२ ॥

प्रसूता स्त्रियोंके रुक्ष कारणोंसे बढीहुई वायु तीक्ष्ण या उष्ण कारणोंसे सुखाये हुए रुधिरको रोककर नाभिके नीचे, पसलियोंमें, मूत्राशयमें अथवा मूत्राशयके ऊपरके भागमें गांठको उत्पन्न करेहै । इस गांठके होनेसे नाभिमें, मूत्राशयमें तथा पेटमें शूल चलताहै, प्रकाशय फूलजाता है और मूत्र रुकजाताहै, वैद्योंने यह मक्कल रोगके लक्षण कहेहैं ॥ ८०-८२ ॥

**अथ मक्कलशूलचिकित्सा ।**

संचूर्णितयवक्षारं पिवेत्कोष्णेन वारिणा ॥  
सर्पिषा वा पिवेन्नारी मक्कलस्य निवृत्तये ॥  
॥ ८३ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं  
गजपिप्पली ॥ नागरं चित्रकं चव्यं रेणु-  
कैलाजमोदिकाम् ॥ ८४ ॥ सर्पपो हिंगु  
भाङ्गी च पाठेन्द्रयवजरिकाः ॥



महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिका विड-  
ङ्गकम् ॥ ८५ ॥ पिप्पल्यादिर्गणो ह्येष  
कफमारुतनाशनः ॥ काथमेषां पिबेन्नारी  
लवणेन समन्वितम् ॥ ८६ ॥ गुल्मशू-  
लज्वरहरं दीपनश्चापपाचनम् ॥ मकल्ल-  
शूलगुल्मघ्नं कफानिलहरं परम् ॥ ८७ ॥  
त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बूरुचूर्णसंयुक्तम् ।  
खादेद्रुडं पुराणं नित्यं मकल्लदलनाय ॥ ८८ ॥

प्रसूता स्त्रीको मकल्ल शूलको शमन करनेके लिये  
जवागारका महीन चूर्ण करके सुहाते हुए गरम जलके  
साथ अथवा घीके साथ पिलावे ।

पीपल, पीपलामूल, काली मिरच, गजपीपल, सोंठ,  
चीता, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग,  
भाग्नी, पाद, इन्द्रजी, जीरा, वकायन, चुरनहार, अतीस,  
कुटकी और वायविटग, यह सब औषधि 'पिप्पल्यादिगण'  
इस नामसे कही जाती है। इनका काथ बनाकर 'सिंघानमक'  
ढालकर पिये । इस काथको पीनेसे गुल्म, शूल, ज्वर,  
मकल्लशूल, तथा कफ और वायु अच्छे प्रकारसे नष्ट  
हो जाता है । अग्नि दीपन होती है और आम पचजाती है ।

सोंठ, मिरच, पीपल, ढालचीनी, तेजपात, इलायची,  
नागकेशर, और धनिया इनका चूर्ण पुराने गुटमं  
मिलाकर उस गुटको नित्य ग्राप तो मकल्ल नष्ट हो  
जाता है ॥ ८९-८८ ॥

### अथ प्रसूताहितकारिणः ।

प्रसूता युक्तमाहारं विहारं च समाचरेत् ॥  
व्यायामं मेथुनं क्रोधं शीतसेवाश्च वर्जयेत्  
॥ ८९ ॥ मिथ्याचारात्सूतिकाया यो  
व्याधिरुपजायते ॥ स कृच्छ्रसाध्याऽसा-  
ध्या वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ९० ॥

प्रसूता स्त्रीको योग्य आहार और योग्य विहार करना  
नाश्ति । और परिश्रम, मेथुन तथा शीतल पदार्थोंका  
सेवन वर्ज्य है । प्रसूता स्त्रीके मिथ्या आहार विश्रान्ति जो  
रोग उत्पन्न होता है वह रोग कष्टसाध्य अथवा असाध्य  
हो जाता है इसीसे प्रसूता स्त्रीको अत्यन्त पथ्य करना  
चाहिये ॥ ८९-९० ॥

### अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजना-  
त् ॥ सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दा-  
रुणाश्च ते ॥ ९१ ॥

मिथ्योपचारादनुचिताचरणात् । प्रवाता-  
दिसेवनात् । संक्लेशात् उत्क्लेश्यन्ते दोषा  
अनेनेति संक्लेशो दोषजनकमात्रं तस्मात् ।  
दारुणाः कष्टसाध्याः ॥

अत्यन्त वातकारक स्थानको सेवन करने आदिसे,  
अयोग्य आचरणसे, जिनसे दोषोंका प्रकोप होय ऐसे  
आचरण करनेसे, विषम भोजनसे और अजीर्णसे प्रसूताके  
जो रोग उत्पन्न होते हैं वे कष्टसाध्य होजाते हैं ॥ ९१ ॥

### अथ सूतिकारोगाः ।

अंगमर्दो ज्वरः कासः पिपासा गुरुगा-  
त्रता ॥ शोथः शूलातिसारौ च सूतिका-  
रोगलक्षणम् ॥ ९२ ॥

एतेऽङ्गमर्दादयः प्रायेण सूतिकाया  
भवन्ति सूतिकारोगत्वेन लक्ष्यन्ते ॥

अर्गोंका टूटना, ज्वर, खाँसी, तृप्ता, गात्रका भारीपन,  
सूजन, शूल और अतिसार यह रोग प्रसूताके विशेष करके  
होते हैं । यह प्रसूता स्त्रीके होते हैं इसलिये सूतिकारोग कहे  
जाते हैं ॥ ९२ ॥

### अथ प्रसूताया ज्वरादिरोगाणां विशेषाभिधानम् ।

ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहवलक्षयाः ॥  
तन्द्राऽरुचिप्रसेकाद्या वातश्लेष्मसमुद्भवाः ॥  
॥ ९३ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षी-  
णामांसवलाश्रिताः ॥ ते सर्वे सूतिकाना-  
म्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ९४ ॥

सूतिकाभवत्वेन सूतिकानाम्ना ते रोगाः  
आश्रयाश्रितयोरभेदोपचारात् । ते चाप्युप-  
द्रवा इति । अत एव ज्वरादयः उक्तानां रो-  
गाणामन्यतमं प्रधानीकृत्योपद्रवाश्च ॥

ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, पेटका अफरना, बलका  
अप्य, तन्द्रा, अरुचि, और मुखमें पानी भर भर आना

इत्यादि रोग प्रसूता स्त्रीके मांस तथा बलकी क्षीणतासे होतेहैं । यह सूतिकारोग कहेजातेहैं और उसीप्रकार कष्टसाध्य होजातेहैं ।

उपरोक्त रोगोमे कोई रोग मुख्यतासे होय तो ज्वरादिक रोग उसके उपद्रवरूप होतेहैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सा ।

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् ॥ दशमूलकृतं काथं कोष्णं दद्याद् वृतान्वितम् ॥ ९५ ॥ अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलकं जलदम् ॥ शृतशीतं मधुयुक्तं शमयत्यचिरेण सूतिकातङ्कम् ॥ ९६ ॥

सूतिकाके रोगको शमन करनेके लिये वातनाशक क्रिया करे । दशमूलका काथ बनाकर कुछ कुछ जत्र गरम होय तत्र उसमें घी डालकर पिये तो सूतिकारोग नष्ट होजाताहै ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

अथ देवदार्वीदिकाथः

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यहरीतकी ॥ ९७ ॥ गजकृष्णा सदुःस्पर्शा गोक्षुरर्धन्वयासकः ॥ बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥ ९८ ॥ समभागान्वितैरैतैः सिन्धुरामठसंयुतम् ॥ काथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ ९९ ॥ शूलकाशज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्तिभिः ॥ युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ १०० ॥ निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ कषायो देवदार्वीदिः सूतायाः परमौषधम् ॥ १०१ ॥

देवदारु, वचा, कूठ, पीपल, सोठ, चिरायता, कायफल, कुटकी, धनियाँ, हरड, गजपीपल, कटेरी, गोखरु, जवासा, कटाई, अतीस, गिलेय, काकडागिगी और कालाजीरा इन सबको समान भाग लेकर अष्टावशेष काथ बनाकर उसमें सैधानमक और भूनी हिंग डालकर प्रसूता

स्त्रीको पिलावे तो शूल, खँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कप, मस्तककी पीडा, प्रलाप, तृषा दाह, तन्द्रा, अतिसार और वमनयुक्त वात तथा कफसे उत्पन्न हुए प्रसूताके रोग नष्ट होजातेहैं । यह देवदार्वीदि काथ प्रसूताके लिये उत्तम औषधि है ॥ ९७-१०१ ॥

अथ पंचजीरकपाकः ।

जीरकं स्थूलजीरश्च शतपुष्पाद्वयं तथा ॥ यवानी चाजमोदा च धान्यकं मेथिकापि च ॥ १०२ ॥ शुण्ठी कृष्णा कणामूलं चित्रकं हपुषापि च ॥ बदरीफलचूर्णश्च कुष्ठं कम्पिल्लकं तथा ॥ १०३ ॥ एतानि पलमात्राणि गुडं पलशतं मतम् ॥ क्षीरप्रस्थद्वयं दद्यात्सर्पिषः कुडवं तथा ॥ १०४ ॥ पञ्चजीरकपाकोऽयं प्रसूतानां प्रशान्तये ॥ युज्यते सूतिकारोगे योनिरोगे ज्वरे क्षये ॥ १०५ ॥ कासे श्वासे पाण्डुरोगे कार्श्ये वातामयेषु च ॥ १०६ ॥

जीरा, कालाजीरा, सोया, सोंफ, अजमोद, अजवायन, धनिया, मेथी, सोठ, पीपल, पीपलामूल, चीता, हाज्वेर, केरका चूर्ण, कूठ और कवीला यह प्रत्येक पदार्थ ४ चार चार ४ तोले लेवे, गुड ४०० चारसौ तोले, इन सबको १२८ एकसौ अठाईस तोले दूध और सोलह तोले भर घीमे पकावे तो यह पंचजीरक पाक सिद्ध होताहै । यह पाक सूतिकारोगमें, ज्वरमें, क्षयमें, खँसीमें, श्वासमें, पाण्डुरोगमें कृशतामें और वातजन्य रोगोमे हितकारी है ॥ १०२-१०६ ॥

अथ सौभाग्यशुंठी ।

आज्यं स्यात्पलयुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डितः पञ्चाशत्पलमत्र चूर्णितमथो प्रक्षिप्यते नागरस् ॥ प्रस्थाद्दं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकान्मिश्रयाः पञ्चपलं पलं क्रिमिरिपोः साजाजिजीरादपि ॥ १०७ ॥ व्योषाम्भोददलोरगेन्द्रसुमनस्त्वग्द्राविडीनां पलं पक्वं नागरखण्डसंज्ञकमिदं तत्सूतिकारोगहत् ॥ तृड्छर्दिज्वरदाहशोषशमनं सश्वासकासापहं ग्रीह-

व्याधिविनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसन्दी-  
पनम् ॥ १०८ ॥

दलं पत्रकम् । उरगेन्द्रसुमनः नागके-  
सरम् । द्राविडी सूक्ष्मैला ॥

आठ तौनेभर घी, १२८ एकसाँ अट्टाईस तोले दूध  
और २०० दोसी तोले खाड इनको एकत्र करके इनमें  
३२ बनीस तोले सोंठना चूर्ण मिलावे फिर इसको गुडकी  
समान विविपर्यक पकावे, इसमें १२ बारह तोले धनिया,  
२० बीस तोले सौंफ, वायविडग ४ चार तोले, सफेद-  
जीरा ४ चार तोले, सोंठ ४ चार तोले, भिरच ४ चार  
तोले, पीपल ४ चार तोले, नागरमोथा ४ चार तोले,  
तेजसत ४ चार तोले, नागकैसर ४ चार तोले, दाल  
चीनी ४ तोले और छोटी इलायची ४ चार तोले  
बालकुर राक करे तो यह सौभाग्यशुटी सिद्ध होती है । इस  
सौभाग्यशुटीको खवन करनेमें—प्रसूता स्त्रियोंके मूतिकारोग,  
वृण, वमन, ज्वर, दाह, शोष, श्वास, खासी, ग्रीहा  
और इभिका नाश होता है और भद हृद् अभि-दीपन  
होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ प्रसूतापथ्यावधिः ।

सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याल्पभो-  
जना ॥ स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मास-  
मतन्द्रिता ॥ १०९ ॥

सर्वतः परिशुद्धा निःसृताशेषदुष्टरुधिरा ।  
अतन्द्रिता पथ्यादौ सावधाना ॥

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टं वा पुनरार्तवे ॥  
सक्तिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्म-  
तम् ॥ ११० ॥ उपद्रवविशुद्धाश्च विज्ञाय  
वर्गणिनाम् ॥ ऊर्ध्वं चतुर्भ्यां मासेभ्यः  
परिहारं विवर्जयेत् ॥ १११ ॥

प्रसूता कर्णार्थं दुष्ट रुधिरनिवृत्त गता हो ऐसी प्रसूता  
की एक महीनेतक निम्न, पत्र और अन्य भोजनकरे,  
निम्न शोष और और मालिश करावे और पथ्य आदिमें  
गन्धवार रहे ।

द्वितीय महीने के पश्चात् अथवा फिर जब तक रजोदर्शन  
हो न पड़े तब तक उक्त स्त्री को "प्रसूता" नाम इस दो महीना  
के लिये रखा जायगा ।

चार महीने वीतजाँय और कोई भी उपद्रव न रहे तब  
प्रसूताको परहेज त्यागना चाहिये ॥ १०९-१११ ॥

अथ स्तनरोगसम्प्राप्तिः ।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ  
स्त्रियाः ॥ रक्तं मांसञ्च संदूष्य स्तनरोगाय  
कल्पते ॥ ११२ ॥

अदुग्धावपि स्तनौ प्रसूताया गर्भिण्याश्च  
स्त्रिया बोद्धव्यौ ॥ अत आह सुश्रुतः—

धमन्यः संवृतद्वाराः कन्यानां स्तनसंश्रि-  
ताः ॥ दोषाविसरणास्तासां न भवन्ति  
रतनामयाः ॥ ११३ ॥

दोषाविसरणाः संवृतद्वारत्वेन दोषाणा-  
मविसरणमसञ्चारो यासु ताः ॥

तासामेव प्रसूतानां गर्भिणीनाश्च ताः  
पुनः ॥ स्वभावादेव विवृता जायन्ते  
संस्ववन्त्यतः ॥ ११४ ॥

दोष दूषयुक्त अथवा दूधरहित स्त्रीके स्तनोंमें प्रात  
होकर रुधिर तथा मांसको दूषित करके स्तनरोगको उत्पन्न  
करते हैं ।

यह रोग कन्याओंके नहीं होता क्योंकि सुश्रुत कहता है  
कि "कन्याओंके स्तनोंकी धमनी रुकी हुई होती है इस  
कारण उनके दोषोंका संचार न होनेसे स्तनरोग नहीं  
होता ।" जिनके प्रसव हुआ हो और गर्भवती स्त्रियोंकी  
धमनी स्वाभाविक रीतिसे खुल जाती है इससे ताव कर-  
ती है ॥ ११२-११४ ॥

अथ स्तनरोगलक्षणम् ।

पञ्चानामपि तेषां तु हित्वा शोणितवि-  
द्रधिम् ॥ लक्षणानि समानानि बाह्यविद्र-  
धिलक्षणैः ॥ ११५ ॥

पञ्चानां वातपित्तकफसन्निपातागन्तुजा-  
नाम् । आगन्तुजस्तरोगोऽभिवातेन शल्येन  
च बोद्धव्यः रक्तजस्यासम्भवात्स्वभावात् ॥

पाँचों प्रकारके स्तनरोगोंके लक्षण रुधिरजन्य विद्र-  
धिमें छोटकर बाहरकी धिर्वाककी समान होते हैं ।

यह ऊपरसे जानाजाताहै कि वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य सन्निपातजन्य और आगन्तुज ऐसे पांच प्रकारके स्तनरोग होतेहैं । अभिघात अथवा शल्यसे जो स्तनरोग होताहै वह आगन्तुज कहाजाताहै । रुधिरके प्रकोपसे स्तनरोग नहीं होता ऐसा स्वभावहीहै ॥ ११५ ॥

अथ स्तनरोगचिकित्सा ।

शोथं स्तनोऽस्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्या-  
द्यद्विद्रवावभिहितं बहुधा विधानम् ॥  
आमे विदाहिनि तथैव च तस्य पाके  
यस्याः स्तनौ सततमेव च निग्रहात्तौ ॥  
॥ ११६ ॥ पित्तघ्नानितु शीतानि द्रव्या-  
ण्यत्र प्रयोजयेत् ॥ जलौकोभिर्हरेद्रक्तं न  
स्तनावुपनाहयेत् ॥ ११७ ॥

उपनाहयेत्स्वेदयेत् ॥

लेपो विशालामूलैः हन्ति पीडां स्तनो-  
त्थिताम् ॥ निशाकनककल्काभ्यां लेपः  
प्रोक्तः स्तनार्तिहा ॥ ११८ ॥

विशाला इन्द्रवारुणी । कनकस्य धतूरस्य  
पत्रं ग्राह्यम् ॥

लेपो निहन्ति मूलं बन्ध्याकर्कोटीभवं  
शीघ्रम् ॥ निर्वाप्य तप्तलोहं सलिले तद्वा  
पिवेत्तत्र ॥ ११९ ॥

इति स्त्रीरोगाधिकारः ।

स्त्रीके स्तनोंमें सूजन उत्पन्न होय तो वैद्य विद्राधि अ-  
धिकारोक्त अनेक प्रकारकी चिकित्सा करे । किंतु स्त-  
नोंमें शेकादि स्वेदन तो कभी नहीं देवे ।

स्तनके रोगोंपर पित्तनाशक शीतल पदार्थोंका प्रयोग  
करे और जोक लगाकर रुधिर निकाले स्तनोंमें स्वेदन  
कभी नहीं देना चाहिये ॥

इन्द्रायनकी जडका लेप करनेसे स्तनरोग नष्ट  
होताहै ॥

हलदी और धतूरेके पत्तों इनका लेप करनेसे स्तनकी  
पीडा नष्ट होजाती है ॥

तपाये हुए लोहेको जलमें बुझाकर उस जलको  
पिलानेसे स्तनरोग नष्ट होताहै ॥

वांझककोडेकी जडका लेप करनेसे भी स्तनकी पीडा  
शमन होजातीहै ॥ ११६-११९ ॥

इति स्त्रीरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ बालरोगाधिकारः ।

तत्र बालानां बालग्रहरक्षोपदेशः ।

बालग्रहा अनाचारात्पीडयन्ति शिशुं  
यतः ॥ तस्मात्तदुपसर्गैर्भ्यो रक्षेद्बालं  
प्रयत्नतः ॥ १ ॥

अनाचार ( मिथ्या आचारादि ) से बालग्रह बालकको  
पीडित करतेहैं । इस कारण बालग्रहोंके उपसर्गसे यत्नपू-  
र्वक बालककी रक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ बालग्रहाणां नामानि ।

स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव  
च ॥ शकुनी रेवती चैव पूतना चान्धपू-  
तना ॥ २ ॥ पूतना शीतपूर्वा च तथैव  
मुखमण्डिका ॥ नवमो नैगमेयश्च प्रोक्ता  
बालग्रहा अमी ॥ ३ ॥

स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्ध-  
पूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका, और नैगमेय इस प्रकार  
बालग्रह नौ हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ बालग्रहोत्पत्तिः ।

नव स्कन्दादयः प्रोक्ता बालानां ये ग्रहा  
अमी ॥ श्रीमन्तो दिव्यवपुषो नारीपुरुष-  
विग्रहाः ॥ ४ ॥ एते स्कन्दस्य रक्षार्थं  
कृत्तिकोमाग्निशूलिभिः ॥ सृष्टाः शरवन-  
स्थस्य रक्षितस्य स्वतेजसा ॥ ५ ॥ स्कन्दः  
सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारिणा ॥  
विभर्ति चापरां संज्ञां कुमार इति  
संग्रहः ॥ ६ ॥

अयं हि कार्तिकेयादन्यः ॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः सोमिना तत्सम-  
द्युतिः ॥ स च स्कन्दसखो नाम्ना विशाख  
इति चोच्यते ॥ ७ ॥ ग्रहाः स्त्रीविग्रहा  
एते नानारूपाः प्रकीर्तिताः ॥ देवानां

कृत्तिकानां ते भागा राजसतामसाः ॥ ८ ॥  
 नैगमेयस्तु पार्वत्या सृष्टो येषां ततो  
 ग्रहः ॥ कुमारः स हि देवस्य गुहस्यात्म-  
 समोऽस्ति वै ॥ ९ ॥ ततो भगवता स्कन्दे  
 सुरसेनापतौ कृते ॥ उपतस्थुर्ग्रहा एते  
 दीप्तशक्तिधरं गुहम् ॥ १० ॥ ऊचुः  
 प्राञ्जलयश्चैनं वृत्तिर्नो दीयतामिति ॥  
 तेषामर्थं ततः स्कन्दः शिवं देवमचोद-  
 यत् ॥ ११ ॥ ततो ग्रहांस्तानुवाच भग-  
 वान्भगनेत्रहत् ॥ तैर्यग्योनिं मानुषं  
 च देवञ्च त्रितयं जगत् ॥ १२ ॥ परस्पर-  
 रोपकारेण वर्तते धार्यते तथा ॥ देवान्न-  
 रान्प्रीणयन्ति तैर्यग्योनींस्तथैव च ॥ १३ ॥  
 यथाकालं प्रवृत्तास्तु ऽष्मवर्षाहिमानिलैः ॥  
 इज्याञ्जलिनमस्कारैर्जपहोमैस्तथैव च ॥  
 १४ ॥ सम्यक्प्रयुक्तैश्च नराः प्रीणय-  
 न्त्यपि देवताः ॥ भागधेयविभक्तश्च  
 शेषं किञ्चित् विद्यते ॥ १५ ॥ तद्युष्माकं  
 शुभा वृत्तिर्वालेष्वेव भविष्यति ॥ १६ ॥

स्कन्द आदि जो ना वालग्रह कहें हैं वह सम्पत्तिवाले  
 और दिव्य शरीरवाले हैं । इनमें कितने एक स्त्रीरूप-  
 वाले हैं और कितने एक पुरुषरूपवाले हैं । ये ग्रह  
 नरग्रहों के नाम रखते हैं और स्वाभाविक तेजसे रक्षित  
 हैं । ये ग्रह कार्तिकेयजी के लिये कृत्तिका, पार्वती,  
 अग्नि और महाशिवने उत्पन्न करे हैं । इनमें स्कन्द नामक  
 दो पहिला वालग्रह हैं उनको साक्षात् महाशिवने अपने  
 भाग उत्पन्न किया है इनका दूसरा नाम कुमार है ।  
 तृतीय स्कन्द और कुमार यह दो नाम कार्तिकेयको भी  
 हैं तैनी यह दो नामवाले वालग्रह कार्तिकेय स्वामीस  
 निरुद्ध हैं ऐसा जानना ।

नर-भगवान् नामक ये वालग्रह हैं उसका अग्निने  
 उत्पन्न किया है । वह वालग्रह अग्निकी समान  
 लोहितवर्ण है और स्कन्दमन्त्र तथा त्रिगोत्रमन्त्र  
 यह भी इनके नाम हैं । मनुष्योंमें लेकर पुत्रभूमिका  
 करने के लिये वालग्रहोंमें से उत्पन्न करने हैं और यथा,

पार्वती तथा कृत्तिका इनके रजोगुणी और तमोगुणी  
 भागरूप हैं । नैगमेय जो वालग्रह है उसको पार्वतीने  
 उत्पन्न किया है, मेढेकी समान मुखवाला है, कार्तिकेयको  
 प्राणोंकी समान प्रिय है ॥

जिस समय महादेवने कार्तिकेयको देवताओंका सेना-  
 पति नियत किया उस समय ये सब वालग्रह प्रदीप्त  
 शक्तिको धारण करनेवाले कार्तिकेय स्वामीके सम्मुख  
 आनकर खड़े हुए, इन सबोंने कार्तिकेय स्वामीको हाथ  
 जोडकर कहा कि 'हमें आजीविका बताओ' इनके  
 वचन सुनकर कार्तिकेय स्वामीने महादेवसे जाकर प्रार्थना  
 की, महात्मा महाशिवने इन सब वालग्रहोंके प्रति कहा  
 कि " इस जगत्में पशु पक्षियोंकी जाति, मनुष्य जाति  
 और देवजाति यह तीन जाति हैं, यह परस्पर किये उप-  
 कारसे वर्तते हैं और उस उपकारसेही रक्षित हैं, देवता  
 यथा समयमें गरमी, वर्षा, शीत और पवनको उत्पन्न  
 करके मनुष्य तथा पशुपक्षियोंको तृप्त करते हैं । मनुष्य  
 यजन, हाथ जोडना, नमस्कार, जप तथा होम इत्यादि  
 क्रिया अच्छे प्रकारसे करके देवताओंको सन्तुष्ट करते हैं ।  
 पशुपक्षी आदि जाति, अपने दूधादिसे तथा मासादिसे  
 मनुष्योंको तथा देवताओंको तृप्त करते हैं । और मनुष्य भी  
 पालन आदिसे पशुपक्षियोंको तृप्त करते हैं । इसप्रकार  
 होनेसे सब यथा यथा भागमें विभक्त होगये हैं, इस कारण  
 कोई अवशेष नहीं रहा इसकारण तुम्हारी आजीविका  
 वालकोंमें होगी " ॥ ४-१६ ॥

अथ वालग्रहाणां ग्रहणकारणम् ।

कुलेषु येषु नैज्यन्ते देवाः पितर एव च ॥  
 ब्राह्मणाः साधवो वापि गुरवोऽतिथय-  
 स्तथा ॥ १७ ॥ निवृत्तशौचाचारेषु तथा  
 कुत्सितवृत्तिषु ॥ निवृत्तभिक्षावल्लिषु भ्रम-  
 कांस्यगृहेषु वा ॥ १८ ॥ ते वै वालांश्च  
 तांस्तान् हि ग्रहा हि सन्त्यशंकितः ॥ तत्र  
 वो विपुला वृत्तिः पूजा चैव भविष्यति ॥  
 १९ ॥ एवं ग्रहाः समुत्पन्ना वालान् हि-  
 सन्ति वा यथा ॥ ग्रहोपमृष्टा वालाः  
 स्पृष्टुश्चिकित्स्यतमास्ततः ॥ २० ॥

महादेवजी वालग्रहोंको कहने लगे कि जिस कुलमें



देवता, पितृ, ब्राह्मण, साधुजन, गुरुजन और अतिथि-  
योका पूजन नहीं होता तथा जो कुल पवित्रतासे और  
आचारसे भ्रष्ट हैं, कुत्सित वृत्तिवाले, किसीको भिक्षा और  
बलिदान नहीं देते होंयें तथा जो फूटे हुए कांसेके वास-  
नमे भोजन करते हैं उनके कुलमें जो बालक होते हैं उन  
बालकोको तुम निःशक होकर पकड़ो, ऐसे करनेसे तुम्हारी  
अच्छे प्रकारसे आजीविका चलेगी और पूजनभी होगा ।

बालग्रह इस प्रकार उत्पन्न हुए हैं और इसी कारण  
बालकोको पीडित करते हैं । इसप्रकार होनेसे जिनको  
बालग्रहोंने ग्रसलिया होय उन बालकोकी चिकित्सा  
करनी बहुत कठिन होजाती है ॥ १७-२० ॥

### अथ सामान्यबालग्रहग्रसितलक्षणम् ।

क्षणादुद्भिजते बालः क्षणात्रस्यति रोदि-  
ति ॥ नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव  
च ॥ २१ ॥ ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खा-  
देत्कूजति जृम्भति ॥ भ्रुवौ क्षिपति दष्टौष्ठः  
फेनं वमति चासकृत् ॥ २२ ॥ क्षामोऽति  
निशि जागर्ति शूनांगो भिन्नविट्स्वरः ॥  
मत्स्यशोणितगन्धश्च न चाश्नाति यथा  
पुरा ॥ २३ ॥ दुर्बलो मलिनांगश्च नष्टसं-  
ज्ञोऽपि जायते ॥ सामान्यग्रहजुष्टस्य लक्षणं  
समुदाहृतम् ॥ २४ ॥

क्षणभरमें बालक व्याकुल होजाय, क्षणभरमे रोने  
लगे, नख तथा दांतोंसे अपने आपको और माताको काटे,  
ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकारी मारे, जम्भाई  
लेय-भौंओंको टेढ़ी करे, होठोंको काटे, बारबार श्वास-  
हित वमन करे, कुश होजाय, रात्रिमें जागे, शरीरमें  
सूजन होजाय, दस्त पतले आने लगे, गला पकजाय, उसके  
देहमेंसे मछलीकी समान तथा रुधिरकी समान दुर्गंध  
आवे, पहिलेकी अपेक्षा भूख कम होजाय, दुर्बल होजाय,  
अग मलिन होजाय और बेहोस होजाय तो यह सम्पूर्ण  
बालग्रह ग्रसितके सामान्य लक्षण हैं ॥ २१-२४ ॥

### अथ विशिष्टग्रहजुष्टबालकानां लक्षणानि ।

सस्तांगः क्षतजसगन्धिकस्तनद्विट् व-

क्रास्यो हतचरणैकपक्षनेत्रः ॥ उद्भिः स-  
सलिलचक्षुरल्परोदी स्कन्दातो भवति च  
गाढमुष्टिवन्धः ॥ २५ ॥ निःसंज्ञो भवति  
पुनर्लभेत संज्ञां संस्तब्धः करचरणैश्च नृत्य-  
तीव ॥ विण्मूत्रे सृजति चिरेण जृम्भ-  
माणः फेनं वा सृजति च तत्सखाभि-  
जुष्टः ॥ २६ ॥

तत्सखाभिजुष्टः स्कन्दापस्मारयुक्तः ॥

सस्तांगो भयचकितो विहंगगन्धिः सास्त्रा-  
वव्रणपरिपीडितः समन्तात् ॥ स्फोटैश्च  
प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति  
शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ २७ ॥ रक्तास्यो  
हरितमलोऽतिपाण्डुदेहः श्यावो वा मुख-  
करपाकवेदनार्तः ॥ गृह्णाति व्यथिततनुश्च  
कर्णनासं रेवत्या भृशमभिपीडितः कुमारः  
॥ २८ ॥ विट्स्वावी स्वपिति न वासरे  
न रात्रौ विट्भिन्नं विसृजति काकतुल्य-  
गन्धः ॥ छर्द्यातो हृषिततनूरुहः कुमारस्तृ-  
णालुर्भवति च पूतनागृहीतः ॥ २९ ॥  
यो द्वेष्टि स्तनमतिसारकासहिकाच्छर्दी-  
भिर्ज्वरसहिताभिरर्द्यमानः ॥ दुर्वर्णः सत-  
तमथापि योऽस्रगन्धिस्तं ब्रूयाद्विषगथ  
गन्धपूतनार्तम् ॥ ३० ॥ आक्रन्दत्यभि-  
चकितं सुवेषमानः संलीनो भवति व्यथा-  
न्त्रकूजयुक्तः ॥ सस्तांगो भृशमतिशीर्यते  
च शीतात्तं ब्रूयाद्विषगथ शीतपूतनार्तम् ॥  
॥ ३१ ॥ म्लानांगः सरुधिरपाणिपादव-  
क्रो बद्धाशी कलुषशिरावृतोदरो यः ॥ स  
ज्ञेयः शिशुरथ वक्रमण्डिकार्तः सोद्वेगो  
भवति च मूत्रतुल्यगन्धिः ॥ ३२ ॥ यं  
फेनं वमति विनम्यते च मध्ये सोद्वेगो  
विहसति चोर्द्धमीक्षमाणः ॥ कूजेच्च प्रत-  
तमथो वसासगन्धिर्निःसंज्ञो भवति स  
नैगमेयजुष्टः ॥ ३३ ॥

जिसको रक्तनामक बालग्रहने पीडित किया हो उस बालककी आँखें नूनजाती हैं, उसके शरीरमेंसे रुधिरकी समान गन्ध आती है, दूधको नहीं पीता, मुख टेढ़ा होजाता है, आँख खराब होकर चंचल तथा एक पलक-बानी होजाती है, बिहल होजाता है, जलसे नेत्र भरे रहते हैं, थोड़ा रोता है, दाँधकी सुटी बहुत जोरसे बाँध लेता है और उसका मल कठिन होजाता है ।

जिसको रक्तदापस्मार ग्रहने प्रसा होय वह बालक देहोम होजाता है, फिर चैतन्य होजाता है, शरीर जकड़-जाता है, दाँधसे तथा पावसे मानो नाचना हो ऐसा प्रतीत होता है, मलमूत्रकी बारबार त्यागता है, बहुत जोरसे जम्माई लेता है अथवा मुखमें आग भरे रहने हैं ।

जिसको शकुनी ग्रहने प्रसा हो वह बालक शिथिल जगोनाला भयमे चकित, पक्षीकी समान गन्धवाला, लाव-वाले ग्रन्थोंसे पीडित, दाह और पके हुए फोड़ोंसे व्याप्त शरीरवाला होता है ।

जिसको रेवतीग्रहने प्रसा हो वह बालक लाल मुखवा-ला, उसकी विष्टका रंग हरा, शरीरका रंग अत्यन्त पीला अथवा काला हो, चर तथा मुखपाककी पीड़ासे पीडित, और शरीरमें व्यथोके होनेसे कानको तथा नाकको मरता है ।

जिसको पूतनाग्रहने प्रसा हो उस बालकके अंग शिथिल होजाते हैं, नाभि और त्रिभुज किसी समय भी दुःखसे नहीं मोता, दन्त पनला आता है, कँचोकी समान गन्ध आती है, वगनकी पीड़ा होती है, रोमांच होजाता है, और शरीरान्त गृह्य होता है ।

ये सात दूधकी नहीं पिये, चर, अतीमार, साँसी, शिथिली तथा तमन इनमें पीडित हो, शरीरका रंग विगड़ जाय, सर्पस उलठा गोरे और उसके शरीरमेंसे रुधिरकी गन्ध तथा आँखें उसकी आँखें अवपूतनाग्रहप्रसित जाने ।

ये सात बालककी मृत्यु, भयनीत शरीर नवजायाय, बालक प्रसाष्टम्य, पेटमें आँखोंका मल होता हो, भयने दूधकी पीड़ा हो और दन्त अत्यन्त पतला होजाता है और दाँधकी पीड़ासे पीडित जाने ।

ये सात बालककी मृत्यु, दाँध, पाँव तथा शरीरकी शिथिली, उद्वेगकी प्राप्त होजाय, बहुत रक्त-मल मूत्रकी बहुत पीड़ासे पीडित जाने ।

शरीरमेंसे मूत्रकी समान गंध निकले उसको वैद्य मुख-मोडिकाग्रहप्रसित जाने ।

जो बालक झगोंकी वमन करे, शरीरके मध्य भागमें नवजाय, उद्वेगकी प्राप्त हो, ऊपरको देखदेखकर हँसे, बहुत गूजे शरीरमें चरकी तथा रुधिरकी समान गंध आवे और वेहोस होजाय उस बालकको वैद्य नैगमेय ग्रहप्र-सित जाने ॥ २५-३३ ॥

### अथ सामान्यग्रहजुष्टचिकित्सा ।

सहामुण्डितिकोदीच्यकाथज्ञानं ग्रहापहम् ।  
सहा माषपर्णी ॥

सप्तच्छदामयनिशाचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥  
सर्पत्वग्लशुनं मूर्वा सर्षपारिष्टपल्लवाः ॥  
॥ ३४ ॥ विडालविडजालोम मेषशृङ्गी  
वर्ची मधु ॥ धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशे-  
पग्रहनाशनः ॥ बालशान्तीष्टकर्माणि  
कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ३५ ॥

मपवन अर्थात् वनउडद, गोरखमुडी और सुगंधवाला इनके कायसे बालकको स्नान करावे और सतवन, कूठ, हलदी तथा चंदन इनका लेप करे तो बालग्रह शमन होने हैं ॥

सौपकी कैंचली, लसुन, चुरनहार, धी, नीमके पत्ते, विलावकी विष्टा, बकरीके रोम, मेढाशिगी, वच और सहत इनकी धूनी देनेसे बालकोंका ज्वर नष्ट होजाता है और सम्पूर्ण बालग्रह शमन होते हैं । बालग्रहोंको निवारण करनेके लिये बालशान्ति करे और पूजनादि करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

### अथाष्टमंगलघृतम् ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि  
च ॥ ३६ ॥ सारिवा सैन्धवं चैव पिप्प-  
ली घृतमष्टमम् ॥ सिद्धं घृतमिदं मध्यं  
पिवेत्प्रातर्दिनेदिने ॥ ३७ ॥ दृढस्मृतिः  
क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ॥ न  
पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मा-  
तरः ॥ न भवन्ति कुमाराणां पिवतामष्ट-  
मंगलम् ॥ ३८ ॥

वच, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, सारिवा, सैधानिमक और पीपल सात पदार्थोंके कल्कसे पकायाहुआ घी अष्टमगल घृत कहाजाताहै । इस घृतको नित्य प्रभातके समय पीने से बालक दृढ, स्मरणशक्तिवाला, अत्यंत तीक्ष्ण बुद्धिको धारण करनेवाला और बहुत विचक्षण होताहै । घृतको पीनेवाले बालकोंके पित्राच, राक्षस, भूत और मातृदोष यह कदापि नहीं होते ॥ ३६-३८ ॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टबालकचिकित्सा ।

तत्र स्कन्दग्रहजुष्टचिकित्सा ।

स्कन्दग्रहोपसृष्टस्य कुमारस्य प्रशान्तये ॥  
वातघ्नद्रुमपत्राणां काथेन परिषेचनम् ॥  
॥ ३९ ॥ देवदारुणि राज्ञायां मधुरेषु  
गणेषु च ॥ सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पातु-  
मस्मै प्रदापयेत् ॥ ४० ॥ सर्षपाः  
सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् ॥  
लघूजाविगवां चापि रोमाण्युद्धूपनं  
भवेत् ॥ ४१ ॥

काकादनी श्वेतगुञ्जा ॥

सोमवल्लीमिन्द्रवृक्षं वन्दकं विल्वजं  
शमीम् ॥ मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितानि  
विधारयेत् ॥ ४२ ॥

सोमवल्ली सोमलता । इन्द्रवृक्षं ककुभवृ-  
क्षम् । मृगादनी इन्द्रवारुणी ॥

रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्तांश्च  
गन्धान्विविधांश्च भक्ष्यान् ॥ घण्टा च  
देवाय बलिं निवेद्य सकुक्कुटं स्कन्दगृहे  
निधाय ॥ ४३ ॥ स्नानं त्रिरात्रं निशि  
चत्वरेषु कुर्यात्परं शालियवैर्निवेद्यम् ॥  
गायत्रिपूताभिरथाद्भिरग्निं प्रज्वालयेदाहु-  
तिभिश्च धीमान् ॥ ४४ ॥ रक्षामतः  
प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम् ॥  
अहन्यहनि कर्तव्या याभिरद्भिरतन्द्रितैः  
॥ ४५ ॥ तपसां तेजसां चैव यशसां

वपुषां तथा ॥ निधानं योऽव्ययो देवः  
स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥ ४६ ॥ ग्रहः  
सेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः ॥ देवसे-  
नारिपुहरः पातु त्वां भगवान्गृहः ॥  
॥ ४७ ॥ देवदेवस्य महतः पावकस्य च  
यः सुतः ॥ गङ्गोमाकृतिकानां च स ते  
शर्म प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥ रक्तमाल्याम्बर-  
धरो रक्तचन्दनभूषितः ॥ रक्तदिव्यवपुर्देवः  
पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः ॥ ४९ ॥

जिसको स्कन्द ग्रहने प्रसा हो उस बालकके शरीरपर शातिके लिये अंडके पत्तोंके काथसे सेचन करे, देवदारु, राज्ञा तथा जीर्नीय गणकी औपधियोंके कल्कसे पकाये हुए घीको दूधके साथ पिये और सरसों, सांपकी कैंचली, वच, सफेद चौटली, घी, ऊटके रोम, बकरीके रोम तथा भेड़के रोम इनकी धूनी देवे ।

सोमवल्ली, कुंडेकी छाल, वेलवृक्षका वंदा, छोकर और इन्द्रायनकी जड़ इनको एक डोरेमें बाँधकर उस डोरेको बालकके गलेमें पहना देवे ।

बालकके हितके लिये लाल फूलोंकी माला, लाल झंडी, लाल चंदन, अनेक प्रकारके भोजनके पदार्थ, घटा और मुरगा यह सब बालकपर उतारकर चौराहेमें रखे और उक्त मुरगेका बलिदान करे । नवीन शालिचावल तथा नवीन जौ इनको पानीमें डालकर उस पानीसे गायत्रीमंत्रको अभिमंत्रित करके रात्रिमें बालकको चौराहेमें तीन रात्रितक स्नान करावे और नवीन शालि चावल तथा नवीन जौ इनकी आहुति अग्निमें देवे ।

अब बालकोंकी रक्षाके लिये कहताहूँ, जिससे पापोंका नाश होताहै । वैद्य आलस्यको छोड़कर नित्य बालकोंके निकट नित्य निम्न लिखित रक्षा पाठ पढ़े ।

जो तपके, तेजके, यशके तथा शरीरकी सामर्थ्योंके भंडारा रूप हैं ऐसे देव कार्तिकेय स्वामी तेरे ऊपर प्रसन्न होयें ।

ग्रहोंके सेनापति, देवताओंके सेनापति, और देवताओंकी सेनाके शत्रुओंको नाश करनेवाले व्यापक और महा समर्थ कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करें ।

जो महादेवके, अग्निके, गंगाके, पार्वतीके और कृत्तिके पुत्र हैं ऐसे कार्तिकेय स्वामी तेरा कल्याण करें ।

लाल फूल तथा वस्त्रोंको धारण करनेवाले, लाल चंदन में गोभिन्त, और लाल दिव्य शरीरवाले कार्तिकेय देवतेरी स्था करें ॥ ३९-४३ ॥

अथ स्कन्दापस्मारग्रहजुष्ट-  
चिकित्सा ।

विल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो  
गणः ॥ परिषेकः प्रयोक्तव्यः स्कन्दाप-  
स्मारशान्तये ॥ ५० ॥

गालोमी श्वेतदूर्वा ॥

सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फज्जो फणि-  
ज्जकः ॥ सौगन्धिकं भूस्तृणको राजिका  
श्वेतवर्वरी ॥ ५१ ॥ कटुफलं खरपुष्पा  
च काशमर्दश्च शल्लकी ॥ विडङ्गमथ  
निर्गुण्डी कर्णिकार उदुम्बरः ॥ ५२ ॥  
बला च काकमाची च तथा च विषमु-  
ष्टिका ॥ कफकिमिहरः ख्यातः सुरसा-  
दिरयं गणः ॥ ५३ ॥

सुरसा कृष्णतुलसी, श्वेतसुरसा श्वेत-  
तुलसी, फज्जा भार्ही, फणिज्जकः मरुवकः ।  
सौगन्धिकं कहारम् । भूस्तृणकः सुगन्ध-  
तृणम् । अनेनैव नाम्ना गौडादौ प्रसिद्धः ।  
खरपुष्पा वर्वरी काशमर्दः कसौटी अनेनैव  
नाम्ना प्रसिद्धः । विषमुष्टिः बका इति लोके ॥

अष्टमृचविषकं च तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥  
॥ ५४ ॥ गोऽजाविमहिषाश्वानां खरोष्ट्र-  
फारणां तथा ॥ मूत्राष्टकमिदं ख्यातं सर्व-  
शान्तेष्टु सम्मतम् ॥ ५५ ॥ क्षीरिवृक्षकपा-  
येण फलान्यादिगणेन च ॥ विषक्तव्यं  
ततः पक्ताश्वातपं पयसा सह ॥ ५६ ॥

शरान्यादिगणेन बल्कीकृतं तैलं  
पक्तव्यम् ॥

काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभक-  
स्तथा ॥ ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा भेदा महामेदा  
गुदूचिका ॥ ५७ ॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी  
पद्मकं वंशलोचना ॥ शृंगी प्रपौण्डरीकश्च  
जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ ५८ ॥ द्राक्षा  
चेति गणो नाम्ना काकोल्यादिरुदीरितः ॥  
स्तन्यकृद्ग्रहणो वृष्यः पित्तरक्तानिलापहः  
॥ ५९ ॥ उत्सादनं वचा हिङ्गुयुक्तमत्र  
प्रकीर्तितम् ॥ गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा-  
हस्तिनखोद्धृतम् ॥ ६० ॥ वृषभस्य च  
रोमाणि योज्यान्पुद्गूपने सदा ॥ अनन्तां  
कुक्कुटीं विम्बीं मर्कटीञ्चापि धारयेत् ॥ ६१ ॥

अनन्ता जवासा । कुक्कुटी शाल्मली ॥

पक्वान्यन्नानि मांसानि प्रसन्ना रुधिरं  
पयः ॥ मुद्गौदनं निवेद्याथ स्कन्दापस्मा-  
रिणे वटे ॥ ६२ ॥

वटे वटतले बलिं निवेद्येत्यन्वयः ॥

चतुष्पथे कारयेच्च स्नानं तेन ततः पठेत् ॥

तेन स्कन्दापस्मारिणा स्नानं कारये-  
दित्यन्वयः ॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः  
सखा ॥ विशाखः स शिशोरस्य शिवा-  
यास्तु शुभाननः ॥ ६३ ॥

स्कन्दापस्मार ग्रहकी शाक्तिके लिये बेलगिरी, सरसा,  
मुफेद दुव, और आगे कहा हुआ सुरसादि गण इनके  
घाथमें सेचन करें ।

काली तुलसी, सफेद तुलसी, पाट, भारगी, मरुवा,  
कहार नामक सुगंधि कुसुम, भूस्तृण नामक सुगंधि तृण,  
गर्द, मुफेद वनतुलसी, कायफल, वनतुलसी, कसौटी, सो-  
न्द, बावविडंग, निर्गुण्डी, कर्णिकार, गुल्हर, गिरिटी, मकोय  
और बकारने इन सब औषधियोंके समुदायको सुरसादि-  
गा कहते हैं । यह सुरसादि गण ऋद्ध तथा वृद्धियोंको नष्ट  
करनेवाले हैं ।

नीचे लिखेहुए आठ मूत्रोसे पकायेहुए तेलकी बाल-  
कके शरीर पर मालिस करनेसे स्कन्दापस्मारग्रहकी शांति  
होतीहै ।

गाय, बकरी, भेड, भैंस, घोडा, गधा, ऊट और हाथी  
इन आठ पशुओके मूत्रको अष्ट मूत्र कहतेहै । सम्पूर्ण  
शास्त्रोमे इन आठ मूत्रोको 'मूत्राष्टक' कहतेहै ।

वटादि क्षीरवृक्षोके काथसे और नीचे लिखे काको-  
ल्यादि गणके कल्कसे घीको पकाकर बालकको दूधके साथ  
पिलावे तो इससे स्कन्दापस्मार ग्रह शमन होजाताहै ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋपभक, ऋद्धि,  
वृद्धि, भेदा, महामेदा, गिलोय, मषवन, सुगवन, पन्नाख,  
वशलोचन, काकडाशिगी, पुंडरीक वृक्ष, जीवन्ती, मुलैठी,  
और दाख यह काकोल्यादि गण कहाजाताहै । यह गण  
स्तनोमे दूधको बढ़ानेवाला है, धातुओंको पुष्ट करनेवाला  
है, मैथुनशक्तिको बढ़ानेवाला है और पित्त रुधिर तथा  
वायुको शमन करनेवाला है ॥

वच और हींग इनके कल्कसे बालकके शरीरपर उब-  
टन करे, यह स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टके लिये हितकारी है ॥

गीधकी विष्टा, उल्लूकी विष्टा, बाल, हाथीके नाखून,  
धी और बैलके रोम इनकी नित्य धूनी देनेसे स्कन्दापस्मा-  
रकी शांति होतीहै ॥

जवासा, सेमल, कन्दूरी और कौंछ अथवा करंज इनको  
धारण करे यह स्कन्दापस्मारके लिये हितकारक है ।

स्कन्दापस्मारकी शांतिके लिये पक्वान्न, मांस, मदिरा,  
रुधिर, दूध और मूँगभात इनका बडके वृक्षके नीचे बलि-  
दान करे ॥

स्कन्दापस्मारग्रहजुष्ट बालकको चोराहेमे स्नान कराकर  
उसके निकट नीचे लिखा मंत्र पढे ।

कार्तिकेय स्वामीका स्कन्दापस्मार जो प्रियमित्र है  
उसको विगाख भी कहतेहैं, वह सुंदर मुखवाला इस  
बालकका कल्याण करो ॥ ५०-६३ ॥

अथ शकुनीग्रहजुष्टचिकित्सा ।

शकुनीग्रहजुष्टस्य कार्यं वैद्येन जानता ॥

वेतसाम्रकपित्थानां काथेन परिषेचनम् ॥

॥ ६४ ॥ हाबेरमधुकोशीरसारिवोत्पल-  
पद्मकैः ॥ लोध्रप्रियंगुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदि-  
हेच्छिशुम् ॥ ६५ ॥

प्रदिहेल्लिम्पेत् । दिह्यादिति सिद्धे दिहे-  
दिति रूपसिद्धिः आर्षत्वात् ॥

स्कन्दग्रहोक्ता धूपाश्च हिता अत्र भवन्ति  
हि ॥ स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि  
पूजितम् ॥ ६६ ॥ शतावरीमृगैर्वारुणा-  
गदन्तीनिदिग्धिकाम् ॥ लक्ष्मणां सहदेवीं  
च बृहतीं चापि धारयेत् ॥ ६७ ॥

मृगैर्वारु बृहती इन्द्रवारुणी । नागदन्ती  
नागहुलीति लोके प्रसिद्धा ॥

तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशि-  
ला ॥ बलिरेषां करञ्जे तु निवेद्यो निय-  
तात्मना ॥ ६८ ॥ निकटे च प्रयोक्तव्यं  
स्नानमस्य यथाविधि ॥ श्वेताशिरीषग-  
न्धाष्टपयोगुग्गुलुसर्षपैः ॥ ६९ ॥ सिद्धम-  
भ्यञ्जने तैलं धारणं पूर्वमेव तु ॥ शकुनी-  
ग्रहशान्त्यर्थं प्रदेहं कारयेद्वितम् ॥ ७० ॥  
कुर्याच्च विविधां पूजां शंकुन्याः कुसुमैः  
शुभैः ॥ निकुम्भोक्तेन विधिना स्नापयंतं  
ततः पठेत् ॥ ७१ ॥

निकुम्भः शिवस्य गणविशेषस्तेनांक्तेन  
विधिना । शिशुरक्षायां देव्याः स्तुतिः ॥

अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता ॥  
अधोमुखी सूक्ष्मतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु  
॥ ७२ ॥ दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गाङ्गी  
भैरवस्वरा ॥ लम्बोदरी शंकुपर्णी शकुनी  
ते प्रसीदतु ॥ ७३ ॥

जो बालक शकुनी ग्रहसे पीडित हो उसके ऊपर विच-  
क्षण वैद्य वेत, आम और कैथ इनके काथसे परिषेचन  
करे । और सुगंधवाला, मुलैठी, खस, सारिवा, कमल,  
पन्नाख, लोध, फूलप्रियंगू, मजीठ और गेरु इनका लेप करे ॥  
स्कन्दनामक बालग्रहकी शांतिके लिये जो धूप कही है



बढ़ और और स्कन्दापस्मारग्रहकी शातिके लिये जो घी कहा है वह भी शकुनीग्रहसे प्रसिद्धके लिये भी उपयोगी है।

सत्तार, इन्द्रायन, नागदान, कटेरी, लक्ष्मणा (अभावमं सफेद कटेरी), सहदेई और कटार्ई इनका धारणकरे।

वैद्य स्थिरचित्त होकर तिल, चावल, फल माला, हरिताल और मन्मथ इनका करजके वृक्षके नीचे बलिदान करे। और उस बलिदानके निकट बालकको यथाविधि न्यान करवे। पहिले ही सफेद दूध, सिरस, अष्टमज, दूध, गुग्गुलु और गरमों इनके कटकसे पकाया हुआ तेल अभ्यगर्ग के लिये तैयार करके रखदेवे। बालकको न्यान करा नके पश्चात् दूध तेलकी मालिस करे जिससे शकुनीग्रहकी शाति हो।

सुन्दर फूलोंसे शकुनीकी अनेक प्रकारसे पूजा करे और उसके पश्चात् निकुम्भनामक सदाशिवके गणके कहे अनुसार बालकको न्यान कराकर उसके निकट नीचे लिखापाठ पढ़े।

अतिरिक्त चित्रगण करनेवाली, सम्पूर्ण अलंकारोंसे सुशोभित और नीचे तथा मधुम मुखवाली शकुनी देवी तं ऊपर प्रसन्न हो।

भयङ्ग दर्शनवाली, बड़े शरीरवाली, पिगलवर्ण, भयङ्कर स्वरवाली, लम्बे पैरवाली और कालके समान कानवाली ऐसी शकुनी देवी तरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ६४-७३ ॥

अथ रेवतीग्रहजुष्टचिकित्सा ।

अश्वगन्धाजशृङ्गी च सारिवाथ पुनर्नवा॥  
सहा विदारी ह्येतासां काथेन परिपेच-  
नम् ॥ ७४ ॥

अजशृङ्गी [ मंदाशृङ्गी ] । सहा [ सेवती ]  
पुष्पजातिः ॥

तेलमभ्यञ्जनं कार्यं कुष्ठं सर्जरसं तथा ॥

पलंकपाण्यं नलदे तथा गौरकदम्बकं ॥ ७५ ॥

गर्जरसः राल इति लोके। पलंकपा गुग्गु-  
लुः । नलदे लामजकम् शशीरवर्पातच्छवि।  
गौरकदम्बकः शारिदकः हरदुआ कदम्ब  
इति लोके ॥

धवाश्वकर्णककुभशल्लकीतिन्दुकेषु च ॥  
काकोल्यादौ गणे चापि सिद्धं सर्पिः पिबे  
च्छिशुः ॥ ७६ ॥

अश्वकर्णः सांकु इति लोके प्रसिद्धः ॥

कुलत्थं शंखचूर्णश्च प्रदेहः साश्वगन्धिकः ॥  
गृध्रालूकपुरीषाणि यवा यवफलो घृत-  
म् ॥ सन्ध्ययोरुभयोः कार्यमेतदुद्धूपनं  
शिशोः ॥ ७७ ॥

यवफलो वंशांकुरः ॥

शुक्लाः सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं  
दधि ॥ बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रय-  
तात्मना ॥ ७८ ॥

गोतीर्थे गोष्ठे ॥

स्नानं धात्रीकुमाराभ्यां सङ्गमे कारयेद्वि-  
षकं ॥ नानाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानु-  
लेपना ॥ ७९ ॥ चलत्कुण्डलिनी श्यामा  
रेवती ते प्रसीदतु ॥ उपासते यां सततं  
देव्यो विविधभूषणाः ॥ ८० ॥ लम्बा  
कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका ॥ रेवती  
शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु ॥ ८१ ॥

असगव, भेदाशिगी, सारिवा, पुनर्नवा, सेवती और  
विदारीकट इनके काथसे सेचन करे।

कूठ, राल, गुग्गुलु लामजकतृण और हलदिया कदव  
इनके कटकसे पकाये हुए तेलका अभ्यगर्ग करे।

घों, अश्वकर्ण ( शाखु ), इन्द्रजां, सालई, तेदू और  
काकोल्यादि गण इनके कटकसे पकाया हुआ घी बाल-  
कको पिलावे। कुलथी, शंखका चूर्ण और असगव इनका  
लेप करे।

गोधकी विष्टा, उल्लूकी विष्टा, जौ, बाँसके अकुर और  
घी इनकी धूनी बालकको दोनों सध्याओंमें देवे।

वैद्य स्थिरचित्त होकर रेवतीका, गायके न्यानमें सफेद  
कूठ, धानकी मीठ, दूध, लाल शालि चावलका भात  
और दही इनका बलिदान देवे।

समुद्रके और नदीके जयवा दी नदियोंके गगनमें  
जैत्र बालकको और उसकी माताको न्यान करवे।  
पीठ पर पाठ पढ़े कि "अनेक शत्रुका धारण

करनेवाली, चित्र विचित्रित पुष्पोकी मालाओंसे सुशोभित, विचित्र लेपनयुक्त, चलकुंडलवाली और श्यामवर्णवाली रेवती देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो । लम्बी, विकाल, अनेक पुत्रोवाली, सुखीनाकवाली और जिसको विविध आभूषणोवाली देवी सर्वदा सेवन करतीहैं ऐसी रेवती देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ७४-८१ ॥

अथ पूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

कपोतवंका श्योनाको वरुणः पारिभद्रकः ॥  
आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां  
परिषेचने ॥ ८२ ॥

कपोतवंका ब्राह्मी । आस्फोता अपराजिता ॥

नवा पयस्या गोलोमी हरितालं मनः-  
शिला ॥ कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे कल्क  
इष्यते ॥ ८३ ॥

नवा पयस्या नूतना क्षीरविदारी । गोलोमी  
श्वेतदूर्वा ॥

हितं घृतं तु गोक्षीर्याः संसिद्धं मधुकेन  
च ॥ कुष्ठतालीसखदिराः स्पन्दनोऽर्जुन  
एव च ॥ ८४ ॥ पनसः ककुभश्चापि  
मज्जानो बदरस्य च ॥ कुक्कुटास्थि घृतं  
चापि धूपनं सह सर्षपैः ॥ ८५ ॥

स्पन्दनः स्पन्दन इत्येवं नाम्ना प्रसिद्धः ॥

काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जाश्च  
धारयेत् ॥ ८६ ॥

काकादनी श्वेतगुञ्जा । चित्रफला बृहदि-  
न्द्रवारुणी ॥

मत्स्यौदनं बलिं दद्यात्कृशरां पललं तथा ॥  
शरावसम्पुटे कृत्वा तस्य शून्ये गृहे  
भिषक् ॥ ८७ ॥ उत्सृष्टान्नाभिषिक्तस्य  
शिशोः स्नपनमिष्यते ॥ कुष्ठतालीसख-  
दिरं चन्दनं स्पन्दनं तथा ॥ ८८ ॥ देव-  
दारु वचा हिंगु कुष्ठं गिरिकदम्बकम् ॥  
एला हरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा ॥  
॥ ८९ ॥ मलिनाम्बरसंवीता मलिना

रुक्षमूर्द्धजा ॥ शून्यागाराश्रया देवी दारकं  
पातु पूतना ॥ ९० ॥

ब्रह्मी, अरलू, बरना, फरहद वा नीम और अपरा-  
जिता ( कोइल ) इनके काथसे बालकोके शरीरपर से-  
चन करे ।

नया अर्थात् ताजा विदारीकद, सफेद दूब, हरिताल,  
मैनशिल, कूट और राल इनसे पकाये हुए तेलका उप-  
योग करे ।

वशलोचन और मुलैठी इनसे पकायाहुआ धी भी  
हितकारक है ।

कूठ, तालीसपत्र, खैर, अरलू, अर्जुन, बडहल,  
इन्द्रजां, बेलगिरी, मुरगेकी इड्डी, घी और सरसो इनकी  
धूनी देवे ।

सफेद चौटली, बडी इन्द्रायन, कन्दूरी और लाल चौ-  
टली इनको शरीरपर धारण करे ।

मछली और भात, तिलकी खिचडी और मास  
इनको मट्टीके प्यालेमें रखकर सूने घरमे पूतनाको  
बलि देवे ।

बालकको छुठनसे मलकर फिर स्नान करावे ।  
कूठ, तालीसपत्र, खैर, चदन, अरलू, देवदारु,  
वच, हींग, कूठ, पहाडी कदम्ब, इलायची और रेणुका  
इनकी धूनी देवे ।

बालकके निकट बैठकर कहे कि मैले वस्त्रोको धा-  
रण करनेवाली, मलिन अगवाली, रुखे बालवाली और  
ऊजड़ घरमे रहनेवाली पूतना देवी इस बालककी रक्षा  
करे ॥ ८२-९० ॥

अथ गंधपूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

तिक्तद्रुमाणां पत्रेषु काथः कार्योंऽभिषे-  
चने ॥ ९१ ॥ निम्बः पटोलः क्षुद्रा च  
गुडूची वासकस्तथा ॥ विसर्पकुष्ठनुत्ख्या-  
तो गणोऽयं पञ्चतिक्तकः ॥ ९२ ॥  
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको मधुको  
मधु ॥ शालिपर्णी बृहत्पौ च घृतार्थं च  
समाहरेत् ॥ सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गान्ने  
चाक्ष्णोश्च शीतलैः ॥ ९३ ॥

सर्वगन्धैः कुंकुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनैः  
सह । अक्षणांस्तु शीतलेः चन्दनकर्पूरैः । न  
तु कस्तूरीकुंकुमागुरुभिस्तेषामुष्णत्वात् ॥  
पुरीषं कौक्कुटं केशाश्चर्म सर्पभवं तथा ॥  
जीर्ण चाभीष्णशो वासो धूपनायोपकल्प-  
येत् ॥ ९४ ॥ कुक्कुटीं मर्कटीं विम्बीम-  
न्तां चापि धारयेत् ॥ मांसमामं तथा  
पक्वं शोणितं च चतुष्पथे ॥ ९५ ॥  
निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशोः स्नपनमिष्यते ॥  
कराला पिगला मुण्डा कापायाम्बरसं-  
वृता ॥ ९६ ॥ देवी वालमिमं प्रीता रक्ष  
त्वं गन्धपूतने ॥ ९७ ॥

बालकके देहपर निक्तवृक्षों ( जो कि नीचे लिखे हैं ) के  
प्राथम्य से स्नान करे ।

नीम, परवल, कटेरी, गिलेय और अड्डसा यह  
पचनित्त गर्ण कहाजाताहै यह विसर्प और कौटको नष्ट  
करे है ।

पीपल, पीपलामूल, चीता, मुठ्ठी, सहत, शालिपर्णी  
( सरिसप्त ), कटेरी, बड़ी कटेरी, इनके कन्कसे वृत्तको  
पनाकर बालकको पिलावे ।

केशर, अगर, कपूर, कस्तूरी और चन्दन इनका शरी-  
रपर लेपन करे ।

और नम्रोके ऊपर चन्दन तथा कपूरका लेपन करे ।  
केशर, कपूरी और अगर यह गरम है इस कारण इनका  
मेकपर लगाने नहीं करे ।

कुरमेली मिठ, बाल, मौसकी माल और पुराना बाल-  
रुद्ध नोनेता यन् इनको वायुकर धूनी देवे ।

मेकल, केशर, कन्दूरी और जवाहा इनको धारण करे ।  
नागरदेह, लस, लस, पन्ना नाम और केशर इनका  
पनाकर करे ।

१०० को १००० पर्यन्त स्नान करे और फिर यह  
१०० को १००० पर्यन्त स्नान करे, फिर १००० को  
१००० पर्यन्त स्नान करे ॥ ९८-१०० ॥

अथ शीतपूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।  
गोमूत्रं चाश्वमूत्रञ्च मुस्तां चामरदारु  
च ॥ कुष्ठञ्च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवधार-  
येत् ॥ ९८ ॥

सर्वगन्धांश्चन्दनादीन् ॥

रोहिणीनिम्बखदिरपलाशककुभत्वचः ॥  
निष्काथ्य तस्मिन्निष्काथे सक्षीरे विपचे-  
द घृतम् ॥ ९९ ॥ गृध्रोळकपुरीषाणि  
वस्तिगन्धामहित्वचम् ॥ निम्बपत्राणि  
च तथा धूपनार्थं समाहरेत् ॥ १०० ॥  
धारयेदपि गुञ्जां च बलां काकादनीं  
तथा ॥ नद्यां मुद्गौदनैश्चापि तर्पयेच्छी-  
तपूतनाम् ॥ १०१ ॥ जलाशयान्ते  
बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥ १०२ ॥

जलाशयान्ते जलाशयतीरे ॥

देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा ॥  
मुद्गौदनाशिनी, देवी सुराशोणितपा-  
यिनी ॥ जलाशयरता नित्यं पातु त्वां  
शीतपूतना ॥ १०३ ॥

गोमूत्र, घांटेका मूत्र, नागरमोथा, देवदारु, कूठ, केसर,  
अगर, कस्तूरी, कपूर और चन्दन इनसे तपाये हुए तेलका  
बालकके शरीरपर मालिश करे ।

कुटकी, नीम, खैर, ढाक और कुडकी छाल इनका  
काथ बनाकर उस काथको दूधमें मिलाकर उसमें घीको  
पकाकर उस घीको बालकको पिलावे ।

गीधकी विष्टा, उल्लूकी विष्टा, तिलवन, सोंपकी कंचली  
और नीमके पत्ते इनकी धूनी देवे ।

चौटली, मिम्टी और सफेद चौटली इनको धारण  
करे ।

नदीमें भूगभातमें शीतपूतनाको तृप्त करे । जलाशयके  
तीरपर बालकको स्नान करावे । शीतपूतनाको मादिग  
और केशर लगावे । पनाकर बालकके निकट या पाठ  
करे ॥ १०३ ॥ भक्तों के मादिग, मादिग और केशरको  
पनाकर करे । जलाशय में रहनेवाली शीतपूतना देवी  
गर्वाती नहीं रहती करे ॥ १०४-१०५ ॥

अथ मुखमंडिकाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

कपित्थं विल्वतर्कारी वासा गन्धर्वह-  
स्तकः ॥ कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्वा-  
लानां परिषेचने ॥ १०४ ॥

तर्कारी गणियार इति लोके । गन्धर्व-  
हस्तकः श्वेत एरण्डः । कुबेराक्षी पाडीर  
इति लोके ॥

स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां तथैव हयगन्धया ॥  
तैलं वसां च संयोज्य पचेदभ्यञ्जनं  
शिशोः ॥ १०५ ॥

भृङ्गवृक्षः भगेरा इति लोके ॥

वचा सर्जरसं कुष्ठं सर्पिश्वोद्धूपने हितम् ॥  
वर्णकं चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा ॥  
॥ १०६ ॥ मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये  
बलिं ततः ॥ पायसं सपुरोडाशं तद्व-  
ल्यर्थमुपाहरेत् ॥ मन्त्रपूताभिरद्भिश्च  
तत्रैव स्नपनं हितम् ॥ १०७ ॥ अलं-  
कृता कामवती सुभगा कामरूपिणी ॥  
गोष्ठमध्यालया या तु पातु त्वां मुखम-  
ण्डिका ॥ १०८ ॥

कैथ, वेलगिरी, अरणी, अड्डसा, सफेद अड और  
पाढल इनके काथसे बालकके शरीरपर सेचन करे ।

भागरेके स्वरससे असगंधके कल्कके साथ तैल और  
चरबीको डालकर पकावे उस तेलका बालकके शरीरपर  
मालिस करे वच, राल, कूठ, और धी इनकी धूनी देवे ।

चंदन, सिग्रफ, फूलोंकी माला, अज्जन, पारा और  
मैनसिल इनको गायके स्थानमें मुखमंडिकाको अर्पण करके  
दूध तथा पुरोडाश इनका बलिदान देवे । पश्चात् “गो  
भायमान, कामनावाली, सुंदर और यथेष्ट रूपोंकी वारण  
करनेवाली तथा गायोंके स्थानमें रहनेवाली मुखमंडिका  
देवी तेरी रक्षा करे” इस मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करके  
उसी स्थानमें बालकको स्नान करावे यह हितकारी है  
॥ १०४-१०८ ॥

अथ नैगमेयग्रहजुष्टचिकित्सा ।

विल्वाम्रिमन्थपूतीकैः कार्यं स्यात्परिषे-  
चनम् ॥ १०९ ॥

पूतीकः घोरकरञ्जः ॥

प्रियंगुसरलानन्ताशतपुष्पाकुटन्नटैः ॥  
पचेत्तैलं स्रगोमूत्रं दधिमस्त्वम्लका-  
ञ्जिकैः ॥ ११० ॥

कुटन्नटं वितुन्नकनाम्नो वृक्षविशेषस्य  
त्वक् गुडतजी इति लोके । मुस्ताकृतिः श्यो-  
नाकं वा ॥

वचां वयस्यां जटिलां गोलोमीश्चापि  
धारयेत् ॥ १११ ॥

वयस्या आमलकी गुडूची वा । जटिला  
जटामांसी । गोलोमी श्वेतवचा ॥

उत्सादनं हितश्चात्र स्कन्दापस्मारनाश-  
नम् ॥ मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि प्रधूप-  
नम् ॥ ११२ ॥ धूमः सुप्तजने कार्यो  
बालस्य हितमिच्छता ॥ तिलतण्डुलकं  
माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि ॥ कौमार-  
भृत्ये मेषाय प्लक्षमूले निवेदयेत् ॥ ११३ ॥

कौमारभृत्ये बालरक्षायां मेषाय नैगमे-  
यग्रहाय ॥

अधस्तात्क्षीरवृक्षस्य स्नपनश्चोपदिश्यते ॥  
अजाननश्चलाक्षिभूः कामरूपी महायशः ।  
बालं पालयिता देवो नैगमेयोऽभिर-  
क्षतु ॥ ११४ ॥

वेलगिरी, अरणी और पूतीकरज इनके काथसे बाल-  
कके शरीरपर सेचन करे ।

फूलप्रियंगू, सरल, देवदारु, सारिवा, सोया, केवटी-  
मोथा, दहीका तोड़, खट्टीकाजी, और गोमूत्र इनसे  
तेलको पकाकर उस तेलकी मालिस करे ।

वच, मुईआमला वा गिलोय, वालछड और सफेद  
वच इनको धारण करे । स्कन्दापस्मारके प्रकरणमें जो  
उवटन कहा है वह उवटन भी हितकारी है ।

वदरकी विष्टा, उत्तलूकी विष्टा और गीधकी विष्टा,  
इनकी धूनी देवे । बालकके हितकी इच्छा करनेवाले  
मनुष्य जब सब मोजाय तब इस धूनीको देवे ।

बालककी रक्षाके लिये पाखरकी जड़में तिलन

हित चावल, फूल और अनेक प्रकार भय पदार्थ उनका वलिदान देवे ।

दूधवाले वृद्धके नीचे बालकको खान करावे और यह मंत्र पढ़े कि “ वक्रेकी समान मुखवाला, यथेष्ट रूपाको धारण करनेवाला, बालककी रक्षा करनेवाला और जिसके नेत्र तथा मौ चचल हैं ऐसा नैगमेय द्रव इस बालककी रक्षा करो ” ॥ १०९-११४ ॥

### अथ बालरोगनिदानलक्षणम् ।

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा ॥  
दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदु-  
ष्यति ॥ ११५ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या  
दुष्टा वातादयस्त्रयः ॥ दूषयन्ति पयस्तेन  
जायन्ते व्याधयः शिशोः ॥ हीवेरं शर्करां  
क्षौद्रं लीढं तृष्णाहरं परम् ॥ ११६ ॥  
वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिवन्वातगदातुरः ॥  
क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्द्विषमूत्रमारुतः  
॥ ११७ ॥ स्वित्रो भिन्नमलो बालः काम-  
लापित्तरोगवान् ॥ तृष्णालुलूप्समर्वाङ्गः  
पित्तदुष्टं पयः पिवन् ॥ श्लेष्मदुष्टं पिव-  
न्क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ॥ ११८ ॥  
निद्रार्दितो जडः शूनो वक्राक्षश्छर्दनः  
शिशुः ॥ ज्वराद्या व्याधयः सर्वे वक्ष्यन्ते  
महतां तु ये ॥ बालानामपि ते तद्वद्बोद्धव्या  
भिषगुत्तमैः ॥ ११९ ॥ बालानामेव ये  
रोगा भवन्ति महतां न च ॥ तालुकण्ड-  
कमुख्यांस्तानवधारय यत्नतः ॥ १२० ॥

भारी, विषम तथा दोषोंको बढ़ानेवाले भोजनोंसे माताके शरीरमें दोष प्रकुपित होतेहैं और उससे दूध दूषित होजाताहै। अयोग्य आहार और अयोग्य विहार करनेवाली स्त्रियोंके शरीरमें दूषित हुए वातादि तीनों दोष दूधको दूषित करतेहैं और दूधके दूषित होनेसे बालकके शरीरमें रोग उत्पन्न होतेहैं। वातसे दूषित दूधको पीनेसे बालक वात सम्बन्धी रोगोंमें पीडित होताहै, स्वरक्षीण, शरीरकृश और विष्ट, मूत्र तथा वायु रुकजातीहै।

पित्तसे दूषित दूधको पीनेसे बालकको पमीना आवे, पतले दन्त हों, कामला रोग हो, पित्तजनित पीडायुक्त हो, तृपातुर और सम्पूर्ण अगोमें गरमी भी होतीहै।

कफसे दूषित दूधको पीनेसे बालक नारको अधिक डाले, कफजनित पीडायुक्त, निद्रासे पीडित, भारी शरीर-ग्वाला, सून्नसहित, टेढ़ी आखोंवाला और वमनको करताहै।

ज्वरादि जो समस्त रोग बड़ोंके होतेहैं उसीप्रकार वह सब रोग बालकोको भी होतेहैं ऐसा उत्तम वैद्योंको जानना चाहिये।

इस प्रकरणमें जो तालुकटकादि रोग बालकोंकेही होतेहैं किंतु बड़ोंके नहीं होते उनका निरूपण करताहूँ उसको सावधान होकर सुन ॥ ११५-१२० ॥

### अथ तालुकण्डकलक्षणम् ।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्ड-  
कम् ॥ तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि  
जायते ॥ १२१ ॥ तालुपातास्तनद्वेषः  
कृच्छ्रात्पानं शकृद्भवम् ॥ तृडक्षिकण्ठास्य-  
रुजा ग्रीवादुर्ध्वरता वमिः ॥ १२२ ॥  
पानं स्तनस्य । शकृद्द्वं द्रवरूपम् ॥

तालुवेकें मांसमें प्रकुपित हुआ कफ तालुकटक नामक रोगको उत्पन्न करताहै। इस रोगसे शिरमें तालुआ नीचेको झुकजाताहै अर्थात् लटक आताहै इस कारण माताके दूधको नहीं पीता, बड़े कष्टसे थोड़ा २ दूधको पीताहै, दन्त पतला होजाताहै, तृपा लगतीहै, आ-खोंमें, गलेमें तथा मुखमें पीडा होतीहै, गरदनको गिराता है और वमन करताहै ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

### अथ महापद्मलक्षणम् ।

वीसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनः शीर्षव-  
स्तिजः ॥ पद्मवर्णो महापद्मरोगो दोषत्र-  
योद्भवः ॥ शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च  
गुदं व्रजेत् ॥ १२३ ॥

पद्मवर्णः लोहितवर्णः तत्र शीर्षजो  
वीसर्पः । शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च  
गुदं व्रजेत् । एवं वस्तिजो गुदं याति



गुदतः हृदयं हृदयाच्छिरो याति इति  
बोद्धव्यम् ॥

बालकके मस्तक तथा मूत्राशयमें नीनो दोषोके प्रको-  
पसे प्राणोंका नाश करनेवाला ऐसा लाल रंगका विसर्प रोग  
उत्पन्न होता है इसको महापद्मक कहते हैं । मस्तकमें  
उत्पन्न हुआ विसर्प कनपटियोमेंसे हृदयमें जाता है और  
हृदयमेंसे गुदामें जाता है उसी प्रकार मूत्राशयमें उत्पन्न  
हुआ विसर्प गुदामें जाता है, गुदामेंसे हृदयमें जाता है और  
हृदयमेंसे मस्तकमें जाता है ऐसा जानना ॥ १२३ ॥

अथ कुकूणकलक्षणम् ।

कुकूणकं क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि ॥  
जायते सरुजं नेत्रं कण्डूरं प्रसवेद्धु ॥  
॥ १२४ ॥ शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटना-  
साप्रवर्षणम् ॥ शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न  
वाक्ष्युन्मीलनक्षमः ॥ १२५ ॥

कुकूणकं कोथुआह इति लोके ॥

दूधके दोषसे बालकोके पलकोंमें कुकूणक रोग होता  
है कि जिससे नेत्र व्यथायुक्त, खुजलीवाले और अत्यंत  
स्त्राववाले होते हैं । इस रोगसे बालक अपने मस्तकको  
आंखोंके भागको तथा नाकको घिसता है, सूर्यकी प्रभाको  
देख नहीं सक्ता और आंखोंको खेल नहीं सक्ता ॥ १२४ ॥  
॥ १२५ ॥

अथ तुण्डिगुदपाकयोर्लक्षणम् ।

वातेनाध्मापिता नाभिः सरुजा तुण्डिरु-  
च्यते ॥ बालस्य गुदपाकाख्यो व्याधिः  
पित्तेन जायते ॥ १२६ ॥

वायुसे नाभि फूल जाती है और उसमें व्यथा होती है  
इसको तुडी कहते हैं ॥

पित्तसे बालककी गुदा पकजाती है इसको गुदपाक  
कहते हैं ॥ १२६ ॥

अथाहिपूतनलक्षणम् ।

शकृन्मूत्रसमायुक्ते धौतेऽपाने शिशोर्भ-  
वेत् ॥ स्विन्ने वा स्नाप्यमानस्य कण्डू रक्त-  
कफोद्धवा ॥ १२७ ॥ कण्डूयनात्ततः  
क्षिप्तं स्फोटाः स्त्रावश्च जायते ॥ एकीभूतं

व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ १२८ ॥  
स्विन्ने स्वेदिते ।

विष्ठासे तथा मूत्रसे लिप्त बालककी गुदाको नहीं धोनेसे  
अथवा बालकके आये हुए पसीनेको नहीं पोंछनेसे अर्थात्  
वह वही जमजाता है तो रुधिर तथा कफके प्रकोपसे खुजली  
उत्पन्न होती है और खुजानेसे तत्काल फोड़े तथा स्त्राव  
होजाता है इस प्रकार होकर जो घोर व्रण होता है उसको  
अहिपूतन कहते हैं ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

अथाजगल्लिकालक्षणम् ।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गस-  
न्निभा ॥ कफवातोत्थिता ज्ञेया बालाना-  
मजगल्लिका ॥ १२९ ॥

ग्रथिता गुम्फितेव । मुद्गसन्निभा मुद्गाकृतिः ।

बालकोके शरीरमें चिकनी, शरीरके समान वर्णवाली,  
गुथीसी, पीडारहित और मूँगकी समान आकारवाली फुंसी  
कफ तथा वायुके प्रकोपसे होती है उसको अजगल्लिका  
कहते हैं ॥ १२९ ॥

अथ परिगर्भिकलक्षणम् ।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः  
पिवन्नपि ॥ कासामिसादवमथुतन्द्राका-  
श्यारुचिभ्रमैः ॥ १३० ॥ युज्यते कोष्ठ-  
वृद्ध्या च तमाहुः परिगर्भिकम् ॥ रोगं  
परिभवाख्यं च तत्र युज्यते दीपनम् ॥ १३१ ॥

पिवन्नपीत्यपिशब्दादपिवन्नपि । परिग-  
र्भिकः अहीडीति लोके । परिभवाख्यं परि-  
भवेति नामान्तरम् ॥

बालक गर्भवती माताका दूध पिये अथवा नहीं पिये  
तो भी उसके विशेष करके खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा,  
कृशता, अरुचि, भ्रम और कोठेकी वृद्धि अर्थात् पेटका  
बढ़ना होता है इस रोगको परिगर्भिक और परिभव कहते-  
हैं । यह रोग उत्पन्न हुआ होय तो अग्निको दीपन करने-  
वाले उपायोंकी योजना करे ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अथ दन्तोद्भेदकरोगाः ।

दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं  
स्मृतम् ॥ विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छ-

दिशिरोरुजाम् ॥ १३२ ॥ अभिष्यन्दस्य  
पोथक्या विसर्पस्य च जायते ॥ १३३ ॥  
कारणमित्यन्वयः । पोथक्या वर्त्मरोग-  
वेशेषस्य ॥

बालकके दात निकलनेका समय मपूर्ण गेगोंका कारण  
रूप कहाजाताहै और विशेषकरके ज्वर, दन्तोंका होना,  
खासी, वमन, मस्तककी पीडा, आलोंका दुग्गना, पोथकी  
नामक पलकोंका रोग और विसर्प इनका कारणभूत हो-  
ताहै ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

अथ बालरोगचिकित्सा ।

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु ॥  
तदेव कार्यं बालानां किन्तु दाहादिकं  
विना ॥ १३४ ॥

दाहादिकं विना अग्निदाहादि क्षरिवमन-  
विरेचनशिराव्यथादिकं विना । महाकष्टं  
चोत्पन्नं वमनविरेकाद्यपि दद्यात् । उक्तञ्च-  
विरेकवस्तिवमनानृते कुर्याच्च नात्यया-  
दिति ॥ १३५ ॥

अत्ययाद्विनाशकरकष्टादृते विना ॥

त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च-  
ते ॥ अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा तत्र कनी-  
यसी ॥ १३६ ॥ विडंगफलमात्रं तु जात-  
मात्रस्य भेषजम् ॥ अनेनैव प्रमाणेन  
मासिमासि प्रवर्द्धयेत् ॥ १३७ ॥

विडंगपरिमितं भेषजं चूर्णीकृत्य किंवा  
कल्कीकृत्य अथवा अवलेहीकृत्य दद्यादित्य-  
र्थः । तन्त्रान्तरे तु अन्यथाभिहितम् ॥

प्रथमे मासि बालाय देया भैषज्यरक्तिका।  
अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसितावृतैः ॥  
॥ १३८ ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संव-  
त्सरो भवेत् ॥ तदूर्द्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्या-  
वत्पांडश वत्सराः ॥ १३९ ॥

एकैकां रक्तिकां तदूर्द्ध्वं वर्षोपरिमाषवृद्धिः।  
प्रतिवर्षं पञ्चगुल्यात्मकस्य माषस्य वृद्धिर्भ-  
वति । गुल्याः पञ्चाद्यमाषक इति अमरसिंहः ॥

ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्धर्षाणि सप्ततिः॥  
ततो बालकवन्मात्रा हासनीया शनैः  
शनैः ॥ १४० ॥  
ततः षोडशवत्सरोपरि ॥

चूर्णकल्कावलेहानामियं मात्रा प्रकीर्ति-  
ता ॥ कषायस्य पुनः सेव विज्ञातव्या च-  
तुर्गुणा ॥ १४१ ॥ क्षीरपस्य शिशोर्देय-  
औषधं क्षीरसर्पिषा ॥ धात्र्यास्तु केवलं  
देयं न क्षीरेणापि सर्पिषा ॥ १४२ ॥  
क्षीरान्नादस्य पूर्ववत्क्षीरसर्पिषा ॥

येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यन्तेऽगदंक-  
राः ॥ तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत्तु शि-  
शुं स्तनौ ॥ १४३ ॥

बड़े मनुष्योंके लिये जो ज्वरादि रोगोंमें प्रथम औषधि  
कही है वही औषधि बालकोंके लिये भी देवे । परन्तु  
दाग, क्षारकर्म, वमन, विरेचन और फस्त खोलना आदि  
नहीं करे, यदि बालकको विशेष कष्ट उत्पन्न होय तो  
वमन तथा विरेचन आदिभी देवे क्योंकि सुश्रुत कहताहै  
कि “प्राणनाशक सकटके उत्पन्न हुए विना बालकोंको  
विरेचन वस्ति और वमन यह किया नहीं करे” ।

बालकाके दोष और दूष्य तथा ज्वरादिरोगभी बड़े  
मनुष्योंकी समान होतेहैं इस कारण बालकोंकोभी प्रत्येक  
रोगमें प्रत्येक रोगाधिकारमें कहीहुई औषधि देवे, किंतु  
मात्रा कनिष्ठ अर्थात् थोड़ी देवे ।

बालकोंको कनिष्ठ देनेके लिये विश्वामित्र कहतेहैं कि  
“बालकके जन्मसे एक महीनेतक वायविडंगकी बराबर  
औषधि देवे और फिर महीनेके महीने इसीप्रकार बढ़ाता  
जाय” अभिप्राय यहहै कि पहिले महीनेमें वायविडंगकी  
बराबर औषधि लेकर चूर्ण बनाकर अथवा कल्क बनाकर  
वा अवलेह बनाकर देवे और दूसरे महीनेमें दो वायविड-  
गकी बराबर औषधि देवे । इसप्रकार महीने महीने  
बढ़ाता जाय ।

अन्य ग्रंथोंमें अन्य प्रकारसे लिखा है कि “बाल-

कको पहिले महीनेमे एक रक्तीभर औषधि देवे और यह औषधि सहत, माताका दूध तथा घी इनमें मिलाकर अटनीकी समान चटावे । फिर महीनेके महीने एक एक रक्ती बढ़ाता जाय, इस प्रकार एक वर्षतक करे । पहिले वर्षके पूरे होनेपर सोलह वर्षकी अवस्था पर्यंत प्रत्येक वर्षमे पांच पांच रक्ती बढ़ाता जाय सोलह वर्षके पूरे होनेपर सत्तर वर्षतक मात्रा स्थिर होजाती है ।

सत्तर वर्षके पश्चात् बालकोंकी समान मात्राको धीरे धीरे घटाता जाय, एक रक्तीभर आदि जो मात्रा कही है वह चूर्ण, कल्क और अवलेहकी जाननी । काथकी मात्रा इससे चौगुनी देवे । जो बालक माताके दूधको पीताहै उसको दूधके साथ अथवा घीमें मिलाकर औषधि देवे । बालककी माताको औषधि देनी होय तो दूध और घीके साथ नही देवे जैसी कही हो उसी प्रकार देवे । जो बालक दूध पीता हो और अन्नको भी खाता होय उसकोभी दूध तथा घीके साथ औषधि देवे ।

सुश्रुत बालकको प्रकारान्तरसे औषधि देना कहताहै कि “ जो जो रोगोंके लिये जो जो औषधि कही हैं उन उन रोगोंमे उन उन औषधियोंके कल्कसे माताके स्तनोंको लेपन करके बालकको पिलावे ” ॥ १३४-१४३ ॥

### अथाऽनभिभाषिबालस्यान्तर्गत- रोगज्ञानोपायः ।

अंगप्रत्यंगदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते ॥

मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने न रोदिति ॥ १४४ ॥ निर्मालिताक्षो मूर्द्धस्थे रोगे नोद्धारयेच्छिरः ॥ वस्तिस्थे-  
मूत्रसङ्घातः क्षुधा तृडपि गच्छति ॥

॥ १४५ ॥ विण्मूत्रसंगवैकल्याच्छर्द्याध्मानान्त्रकूजनैः ॥ कोष्ठे व्याधीन्विजानीयात्सर्वत्रस्थांश्च रोदनैः ॥ १४६ ॥

बालकको जो अंगके या प्रत्यंगके प्रदेशमे वेदनाहोती होय तो उस प्रदेशको बालक बारंवार हाथसे छूता है और अन्य कोई मनुष्य भी उस प्रदेशको स्पर्श करे तो बालक रोता नहीं है, बालकके मस्तकमें पीडा होय तो बालक आंखोंको मीची रखताहै और मस्तकको स्थिर नहीं रखता

अर्थात् गरदनको गिराये रखताहै, बालकके मूत्रागयमे पीडा होय तो बालक मूत्रके अवरोधसे पीडित होताहै । और उसमे भूख ग्यास नष्ट होजातीहै । जो बालकके मूत्र और मलका अवरोध होय, विह्वलता होय, अफारा आजाय और आते बोले तो इनसे जानना कि बालकके कोठेमें रोग है । जो बालक सदैव रोवै तो जानना कि इसके सब शरीरमे रोग है ॥ १४४-१४६ ॥

अथ बालकस्य ज्वरादिरोगचिकित्सा ।

सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं नैव निवार्यते ॥  
मात्रया लंघयेद्वात्रीं शिशोरेतद्विलंघ-  
नम् ॥ १४७ ॥

मात्रया लंघयेल्लघु भोजयेत् ॥

बालकको समस्त पदार्थोंसे वर्जित करे, कितु माताके दूधसे कदापि वर्जित नहीं करे, बालकको लघन कराने होय तो उसकी माताको हल्का भोजन करावे येही बालकके लघन हैं ॥ १४७ ॥

अथ सर्वज्वरेषु भद्रमुस्ता-  
दिकाथः ।

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः ॥  
काथः कोष्णः शिशोरेषु निःशेषज्वरना-  
शनः ॥ १४८ ॥

भद्रमोथा, हरड, नीम, कडवे परवल और मुलैठी इनका काथ बनाकर कुछ कुछ गरम करके पियै तो सर्वप्रकारके ज्वर नष्ट होजातेहैं ॥ १४८ ॥

अथ ज्वरातिसारे चतुर्भद्रावलेहः ।

घनकृष्णारुणाशृंगीचूर्ण क्षौद्रेण संयु-  
तम् ॥ शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासं श्वासं  
वमिं हरेत् ॥ १४९ ॥

अरुणा अतिविषा ॥

नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकडागिगी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका ज्वरातीसार नष्ट होताहै और खोंसी, श्वास तथा वमन दूर हो जातीहै ॥ १४९ ॥

अथातिसारे बिल्वादिकाथः ।

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं  
सलोध्रं गजपिप्पली च ॥ क्वाथावलेहौ  
मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसा-  
रितेषु ॥ १५० ॥

जलम् [वाला] ॥

बेलगिरी, धायके फूल, सुगंधवाला, लोध और गजगी-  
पल इनका काथ बनाकर सहित मिलाकर पिये और इन्ही  
औषधियोंके चूर्णको सहितमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका  
अतीसार दूर होजाताहै ॥ १५० ॥

अथ दुर्धरातिसारे समंगादिकाथः ।  
समंगाधातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं जलम् ॥  
दुर्धरेऽपि शिशोर्द्वयमतीसारे समाक्षि-  
कम् ॥ १५१ ॥

समंगा लज्जालुमूलम् ॥

लज्जावतीकी जड़, धायके फूल, लोध और सारिवा  
इनका काथ बनाकर उसमें सहित डालकर पिये तो बाल-  
कोंका दुर्धर अतीसार भी दूर होजाताहै ॥ १५१ ॥

अथामातीसारे विडंगादिचूर्णम् ।  
विडंगान्यजमोदा च पिप्पलीतण्डुलानि  
च ॥ एषामालोड्य चूर्णानि सुखं तप्तेन  
वारिणा ॥ आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं  
पाययेद्विषक् ॥ १५२ ॥

बालकोंको आमातिसार होय तो वैद्य वायविडंग, अज-  
मोद और पीपलके दाने इनका चूर्ण करके मद्दोष्ण जलके  
साथ पिलावे ॥ १५२ ॥

अथ रक्तातीसारे मोचा-  
रसादियवागूः ।

मोचारसः समंगा च धातकी पद्मके-  
सरम् ॥ पिष्टैरैतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसार-  
नाशिनी ॥ १५३ ॥

मोचारसः लज्जालुमूलम्, धातकीपुष्पम्,  
कमलकेसरमेतेषां तोलकैकम् गृह्णीयात् ।  
तण्डुलाः सपादतोलकाः ११, जलमेकादश  
तोलकम् ११ । सर्वमेकीकृत्य यवागूः  
साधनीया ॥

मोचरस, लज्जावतीकी जड़, और कमलकी केसर यह  
तब मिलाकर मवा तोले लेवे, चावल सवा तोले लेवे,  
और ग्यारह तोले पानीमें इन सबको एकत्रित करके  
यवागू बनाकर बालकोंको देवे तो रक्तातीसार नष्ट होजा-  
ताहै ॥ १५३ ॥

अथातीसारे नागरादिकाथः ।

नगरातिविषामुस्तवालकेन्द्रयवैः शृतम् ॥  
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाश-  
नम् ॥ १५४ ॥

सोण, अतीस, नागरमोथा, सुगंधवाला और इन्द्रजी  
इनका काथ बनाकर प्रातःकाल पिये तो बालकोंके सब  
प्रकारके अतीसार दूर होते हैं ॥ १५४ ॥

अथ प्रवाहिकायां लजादिचूर्णम् ।  
लाजासयष्टीमधुका शर्करा क्षौद्रमेव च ॥  
तण्डुलोदकयोगेन क्षिप्रं हन्ति प्रवाहि-  
काम् ॥ १५५ ॥

धानकी खीलें, मुलेठी, खाड़ और सहित इनको एकत्र  
करके चावलके जलके साथ पीनेसे बालकोंकी प्रवाहिका  
दूर होती है ॥ १५५ ॥

अथ ग्रहण्यादिरोगेरजन्यादिचूर्णम् ।

रजनी सरलोदारु बृहती गजपिप्पली ॥  
पृष्ठिपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकस-  
र्पिषा ॥ १५६ ॥ दीपनी ग्रहणीं  
हन्ति मारुतार्ति सकामलाम् ॥ ज्व-  
रातीसारपाण्डुघ्नी बालानां सर्वरोग-  
नुत् ॥ १५७ ॥

हलदी देवदारु, टाकहलदी, कटेरी, गजपीपल  
गदहपुरेना और सौंफ इनका चूर्ण बनाकर सहित  
तथा घीक साथ चाटे तो बालकोंकी ग्रहणी, वायुकी

पीडा, कामला, ज्वर, अतीसार और पांडुरोग नष्ट हो-  
जाता है और जठराग्नि दीपन होती है ॥ १५६॥१५७॥

अथ कासघ्नो मुस्तकादिस्वरसः ।

पौष्करातिविषाषासाकणाशृंगीरसं लिहे-  
त् ॥ मधुना मुच्यते बालः कासैः पञ्च-  
भिरुत्थितैः ॥ १५८ ॥

पुहकरमूल, अतीस, अड्डसा, पीपल और काकडागिगी  
इनका स्वरस बनाकर उसमें सहस्र डालकर चाटे तो बाल-  
कोंकी पांचोंप्रकारकी खाँसी दूर होजाती है ॥ १५८ ॥

अथ बालकानां पुराणकासोपरि  
केसरावलेहिका ।

व्याघ्रीसुमनसंजातकेसरैरवलेहिका ॥  
मधुना चिरसंजाताञ्छिशोः कासा-  
न्व्यपोहति ॥ १५९ ॥

कटेरीके फूलोंके स्वरसमें केसरकी पीसकर सहत मिला-  
कर चाटे तो बालकोंकी बहुत पुरानी खाँसी दूर होजा-  
ती है ॥ १५९ ॥

अथ कासश्वासे धान्यादिपानम् ।

धान्यं च शर्करायुक्तं तण्डुलोदकसंयु-  
तम् ॥ पानमेतत्पदातव्यं कासश्वासापहं  
शिशोः ॥ १६० ॥

धानियां और खाड़ इनको पीसकर चावलोंके जलके साथ  
पीनेसे बालकोंकी खासी और श्वास दूर होजाते हैं ॥ १६० ॥

अथ द्राक्षादिचूर्णम् ।

द्राक्षावासाभयाकृष्णाचूर्णं क्षौद्रेण सर्पिपा॥  
लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासश्च तमकं  
तथा ॥ १६१ ॥

तमकं श्वासभेदम् ॥

दाख, अड्डसा, हरड और पीपल इनका चूर्ण करके  
सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका श्वास, खासी तथा  
तमकश्वास भी दूर होजाता है ॥ १६१ ॥

अथ हिक्कावमिघ्नः कटुकरोहिण्यवलेहः ।  
तूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत् ॥  
हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चापि चिरो-  
त्थिताम् ॥ १६२ ॥

कुटकीका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटे तो  
बालकोंकी हिचकी तथा बहुत पुरानी वमन भी दूर  
होजाती है ॥ १६२ ॥

अथ दुग्धवमिघ्नोऽवलेहः ।

आम्रास्थिलाजसिन्धूर्थं संक्षौद्रं छर्दि-  
नुद्भवेत् ॥ छर्द्या पीतं तु मेध्यन्तु स्तन्येन  
मधुसर्पिषा ॥ द्विवार्ताकीफलरसं पञ्च-  
कोलञ्च लेहयेत् ॥ १६३ ॥

द्विवार्ताकी बृहतीद्वयम् । पञ्चकोलम् ।  
पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनाग-  
रमिति ॥

आमकी गुठली, धानकी खील, और सैधानमक इनका  
चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी दूधकी  
वमन दूर होजाती है ।

कटेरीके फलोका स्वरस, बड़ी कटेरीके फलोका स्व-  
रस, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनको  
एकत्र मिलाकर चाटे तो बालकोंका दूधका डालना बन्द  
होजाता है ॥ १६३ ॥

अथाध्माने वातशूलं च सैन्धवा-  
द्यवलेहः ।

वृतेन सिन्धुविश्वैलाहिगुभाङ्गीरजो लिहन् ॥  
आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा  
शिशुः ॥ १६४ ॥

सैधानिमक, सोंठ, इलायची, हींग और भारगी, इनका  
चूर्ण बनाकर धीके साथ अथवा जलके साथ मिलाकर खाय  
तो पेटका अफरना और वातशूल नष्ट होता है ॥ १६४ ॥

अथ मूत्राघातघ्नः कणाद्यवलेहः ।

कणोषणासिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः ॥  
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह  
उत्तमः ॥ १६५ ॥



पीपल, सोठ, मिश्री, सहत, छोटी इलायची और सैधानिमक, इनको एकत्र पीसकर अवलेह बनाकर चटावे तो बालकोंका मूत्राघात दूर होता है ॥ १६५ ॥

अथ काश्यहरो योगः ।

यदा तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान् ॥ विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम् ॥ खादयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम् ॥ १६६ ॥

जो बालक अच्छा भोजन करनेपर और जठराग्निके दीपन होनेपर भी दुर्बल होता जाय उसको विदारीकन्द गेहूँ और जौ इनका चूर्ण घीमें मिलाकर खवावे और ऊपरसे सहत तथा मिश्रीके साथ दूध पिलावे ॥ १६६ ॥

अथ शोथघ्नो लेपः ।

मुस्तं कूष्माण्डवीजानि भद्रदारुकलिंग-  
कान् ॥ पिष्ट्वा तोयेन संलिप्तं लेपोऽयं  
शोथहच्छिशोः ॥ १६७ ॥

नागरमोया, पेटेके बीज, देवदारु और इन्द्रजौ इनको जलमें पीसकर नये तो बालकोंकी सूजन दूर होती है ॥ १६७ ॥

अथ क्षतविसर्पविस्फोटज्वरहरकाथः ।

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राकथितं पिबेत् ॥  
क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये  
शिशुः ॥ १६८ ॥

कठवे परवल, हरड, बहेडा, आमले, नीम और हलदी, इनका काथ पीनेसे क्षत, विसर्प, विस्फोट तथा ज्वरकी शांति होती है ॥ १६८ ॥

अथ सिध्मपामाविचर्चिकाघ्नो लेपः ।

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः ॥  
लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविच-  
र्चिकाः ॥ १६९ ॥

बरके धूँयेकी बूस, हलदी, कूठ, राई और इन्द्रजौ इनको तक्रमें पीसकर लेप करे तो सिध्म, पामा तथा विचर्चिकानामक कोढ़ दूर होता है ॥ १६९ ॥

अथ मुखस्त्रावहरः काथः ।

सारिवातिललोघ्राणां कपायो मधुकस्य

च ॥ संस्त्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं  
शिशोः सदा ॥ १७० ॥

सारिवा, तिल, लोव और मुलैटी इनके काथसे नित्य मुखको साफ करनेमें मुखका नाव दूर होता है ॥ १७० ॥

अथ मुखपाकहरः प्रलेपः ।

अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रेर्मुखपाके प्रलेपनम् ॥

पीपलवृक्षकी छाल और पत्तोंका पीसकर सहतमें मिलाकर मुखमें लेप करनेसे मुखपाक दूर होता है ।

अथ बालानां रोदने चूर्णम् ।

पिप्पलीत्रिफलचूर्णं घृतक्षौद्रपरिप्लुतम् ॥  
बालो रंदिति यस्तस्मै लीढं दद्यात्सु-  
खावहम् ॥ १७१ ॥

पीपल, हरड, बहेडा और आमला - इनका चूर्ण घी तथा सहतमें मिलाकर चटावे तो बालकका रोना बंद होता है ॥ १७१ ॥

अथ तालुकण्टकघ्नः कल्कः ।

हरीतकी वचा कुष्ठं कल्कं माक्षिकसं-  
युतम् ॥ पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते  
तालुकण्टकात् ॥ १७२ ॥

हरड वच और कूठ इनके कल्कको सहतमें मिलाकर चावलोके जलके साथ पिलावे तो बालकका तालुकण्ट-करोग नष्ट होता है ॥ १७२ ॥

अथ कुकूणकहरो लेपः ।

फलत्रिकं लोघपुनर्नवे च सशृंगवेरं बृह-  
तीद्वयं च ॥ आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं  
कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति ॥ १७३ ॥

हरड, बहेडा, आमला, लोघ, सोठ, अदरक, कटेरी और कटाई इनको जलमें पीसकर कुछकुछ गरम करके इसका लेप करनेसे कुकूणक रोग नष्ट होता है ॥ १७३ ॥

अथ नाभिशीथघ्नः स्वेदः ।

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन शोष्म-

णा ॥ स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनो-  
पशाम्यति ॥ १७४ ॥

मट्टीके पिडको अभिमे तपाकर दूधमे बुझाकर मुहाता  
मुहाता सेके तो नाभिकी सूजन दूर होतीहै ॥ १७४ ॥

अथ नाभिपाकघ्नतैलमवधूलनं च ।

नाभिपाके निशालोधप्रियंगुमधुकैः शृत-  
म् ॥ तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिश्चाप्यव-  
धूलनम् ॥ १७५ ॥ त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां  
वापि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥ १७६ ॥

नाभि पकजाय तो हल्दी, लोध, फूलप्रियंगु और  
मुलैठी इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका नाभिपर मालिश  
करे और इनकाही चूर्ण बुरकावे ।

अथवा बटादि पचक्षीरी वृक्षोका चूर्ण करके नाभिपर  
बुरकावे अथवा चन्दनका चूर्ण नाभिपर बुरकावे और  
बकरीकी भैंगनको जलाकर उसकी राखको नाभिके ऊपर  
लगावे तो नाभिपाक दूर होजाताहै ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

अथ गुदपाकघ्नो योगः ।

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नां कारयेत्कि-  
याम् ॥ रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयो-  
हितम् ॥ शंखयष्ट्यञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां  
गुदपाकनुत् ॥ १७७ ॥

अञ्जनं रसाञ्जनम् ॥

बालकोंकी गुदा पकती होय तो पित्तनाशक चिकित्सा  
करनी चाहिये । विशेष करके रसौतको पिलावे और रसौ-  
तका लेप करै तो गुदपाक आराम होताहै । शंख, रसौत  
और मुलैठी इनका चूर्णभी बालकोंकी गुदपाकको दूर  
करेहै ॥ १७७ ॥

अथाहिपूतने लेपः ।

शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपो देयोऽहिपू-  
तने ॥ १७८ ॥

शंख, सफेद सुरमा, और मुलैठी इनका लेप करनेसे  
आहिपूतन रोग दूर होताहै ॥ १७८ ॥

अथ परिगर्भिकोपायः ।

परिगर्भिकरोगे तु पूज्यते वह्निदीपनम् ॥

बालकके परिगर्भिकरोग हुआ होय तो जटराग्निको  
दीपन करनेवाली औषधि देवे ।

अथ बालानां दन्तनिःसरणोपायः ।

दन्तपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् ॥  
धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥  
॥ १७९ ॥ दन्तोत्थानभवा रोगाः पीड-  
यन्ति न दालकम् ॥ जाते दन्ते हि शाम्य-  
न्ति यतस्तद्धेतुका गदाः ॥ १८० ॥

घायके फूल और पीपल इनके चूर्णको सहतमे मिला-  
कर इससे बालकके मूसढोंको घिसे, अथवा सहतके साथ  
आमलोंके रससे मसूढोंको घिसे । दात निकलनेके समयके  
रोग बालकको विशेष पीडित नहीं करतेहै कारण यह है  
कि वह दांतोंके निकलनेके पश्चात् सब रोग अपने आप  
शांत होजातेहैं ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ बालानां शक्तिवर्द्धकप्रयोगाः ।

सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा ॥  
मत्स्याक्षकं शंखपुष्पी मधु सर्पिः सकाञ्च-  
नम् ॥ १८१ ॥ अर्कपुष्पी मधु घृतं  
चूर्णितं कतकं वचा ॥ सहेमचूर्णं कैटर्यं  
श्वेता दूर्वा घृतं मधु ॥ चत्वारोऽभिहिताः  
प्राशा अर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ कुमाराणां  
वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः ॥ १८२ ॥

सौवर्णं चूर्णं चतुर्ष्वपि योगेषु मारितसु-  
वर्णचूर्णम् । मत्स्याक्षकः ब्राह्मी इति लोके,  
वकम इत्येके । अर्कपुष्पी अर्कसदृशपुष्पी  
लता । कैटर्यं कट्फलम् । दूर्वा श्वेतदूर्वा ।  
संवत्सरं यावदेते योगाः प्रयोज्याः, द्वादश-  
वर्षाणीति केचित् ॥

सोनेकी भस्मका वारीक चूर्ण, कुठ, सहत, घी और  
वचका चूर्ण इनको एकत्र करके खिलानेसे बालकोंके  
शरीरमे सामर्थ्य, बुद्धि, बल तथा पुष्टि बढ़तीहै ॥

सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, ब्रह्मी, गखाहुली, सहत और वी इनको एकत्र करके खाय तो बालकके शरीरकी सामर्थ्य, बुद्धि, बल और पुष्टि प्राप्त होती है ॥

सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कृठ, सहत वी और वच इनको एकत्र करके खाय तो बालकोंके शरीरकी सामर्थ्य बुद्धि बल और पुष्टि उत्पन्न होती है ।

सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कायफल, सफेद दूध, वी और सहत इनको एकत्र करके खाय, तो बालकोंका शरीरकी सामर्थ्य, बुद्धि बल तथा पुष्टि प्राप्त होती है । यह प्रयोग एक वर्ष पर्यंत बालकको देना चाहिये और कितने एक वैद्य कहते हैं कि बारह वर्षतक देना चाहिये ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसे समे तैलं मस्तुन्यथ चतुर्गुणे ॥  
रास्त्राचन्दनकुष्ठाद्वावाजिगन्धानिशायुतैः  
॥ १८३ ॥ शताह्वादारुयष्ट्याहमूर्वाति-

त्ताहरेणुभिः ॥ संसिद्धं ज्वररक्षोघ्नं बल-  
वर्णकरं शिशोः ॥ १८४ ॥

इति बालरोगाधिकारः ।

इति भावप्रकाशे ज्वरादिव्याधिनिदानचिकित्सा-  
प्रकरण समाप्तम् ।

इति मध्यखण्डं समाप्तम् ।

तिलका तेल और लाखका रस बराबर लेवे, चांगुणा दहीका तोड़ लेवे, इन सबको एकत्र मिलाकर इनमें रासना, चंदन, कृठ, असगंध, हल्दी, सोया, देवदारु, मुलैटी, चुरनहार, कुटकी और रेणुका इनका कल्क डालकर तेलको सिद्ध करे । यह तेल बालकोंके ज्वरको तथा भूतादिव्याधाको दूर करे है, बलको उत्पन्न करता है और शरीरके वर्णको उत्तम करता है ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

इति बालरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

इति श्रीलटकनतनयभावमिश्रविरचिते भावप्रकाशे शा-  
लिग्रामवैद्यकृतभाषाटीकाया मध्यमखण्ड समाप्तम् ।

समाप्तमिदं मध्यमखण्डम् ।



॥ श्रीवेङ्कटेशाय नमः ॥



अथ भावप्रकाशः ।

भाषाटीकासमेतः

उत्तरखण्डम् ।

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

यद्वयं पुरुषं कुर्याद्वाजीव सुरतक्षमम् ॥  
तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां-  
वरैः ॥ १ ॥

जो पदार्थ पुरुषको मैथुनकरनेमें घोड़ेकी समान  
समर्थ करे उसको वैद्योमे उत्तम मुनि वाजीकरण  
कहतेहैं ॥ १ ॥

अथ क्लीबस्य लक्षणसंख्या-  
निदानानि ।

क्लीबः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमु-  
च्यते ॥ तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य  
कथ्यते ॥ २ ॥ तैस्तैर्भावैरहद्यैस्तु रिरं-  
सोर्मनसि क्षते ॥ ध्वजः पतत्यतो नृणां  
क्लैब्यं समुपजायते ॥ द्वेष्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च  
क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ॥ ३ ॥

तैस्तैर्भावैः भयशोकक्रोधादिभिः । अहद्यैः  
हृदयाहितैः दुःखकरत्वाक्षते पीडिते अस्व-

स्थीकृते इति यावत् । ध्वजः शिश्रः ।  
तथाच—“ध्वजं चिह्ने पताकायां मेहने  
शौण्डिकेऽपि च” इति विश्वप्रकाशः । पतति  
नतून्नमति । संप्रयोगो मैथुनम् ॥

कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ॥  
पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात्प्रजा-  
यते ॥ ४ ॥

कटुकादिना अतिमात्रेण प्रवृद्धेन पित्तेन  
शुक्रस्य दग्धत्वात्क्लैब्यं भवति पित्तजमिति  
द्वितीयम् ॥

अति व्यवायशीलो यो न च वाजीक्रि-  
यारतः ॥ ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्ष-  
यहेतुकः ॥ ५ ॥

शुक्रक्षयेण तृतीयम् ॥

महतामेढरोगेण चतुर्थी क्लीबता भवेत् ॥  
वीर्यवाहिशिराच्छेदान्मेहनानुव्रतिर्भवेत् ॥  
॥ ६ ॥ बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद्बल-

चर्यतः ॥ षष्ठं क्लैव्यं स्मृतं तच्च शुक्रस्त-  
म्भनिमित्तकम् ॥ ७ ॥

बलिनः पुष्टस्य । क्षुब्धमनसः कामात्सं-  
चलितमनसः ब्रह्मचर्यमभैथुनं तस्मान्निरा-  
धाच्छुक्रस्य क्लैव्यं भवति ॥

जन्मप्रभृति यत्क्लैव्यं सहजं तद्धि सप्त-  
मम् ॥ ८ ॥

जो पुरुष मथुन करनेमें असमर्थ हो उसको क्लैव्य कहते हैं और उस क्लैव्यके वर्मको क्लैव्य कहते हैं । वह क्लैव्यता सात प्रकारकी है । अब सात प्रकारकी क्लैव्यताका निदान कहता हूँ ॥ २ ॥

मैथुन करनेवाले पुरुषका मन भय, शोक तथा क्रो-  
धादि दुःखदायक विकारोंसे अस्वस्थ होकर अथवा  
जिसपर अरुचि होय ऐसी स्त्रीके साथ प्रसंग होनेसे  
गिघ्न गिरजाता अर्थात् गिरजाताई इसको मानसिक  
क्लैव्य कहते हैं ॥ ३ ॥

तखि, खट्टे, गरम और खारी पदार्थोंको अत्यंत  
सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए पित्तके कारण वीर्यका  
क्षय होनेसे जो क्लैव्यता होती है उसको पित्तज क्लैव्य  
कहते हैं ॥ ४ ॥

जो मनुष्य अत्यंत मैथुन करता होय और वाजी-  
करण पदार्थोंको सेवन नहीं करे उस पुरुषका लिङ्ग  
ऊपरको नहीं उठता, इसको वीर्यक्षयजन्य क्लैव्यता  
कहते हैं ॥ ५ ॥

गिघ्नमें किसी प्रकारके भयकर रोगके होनेसे जो  
क्लैव्यता होती है उसको रोगजन्य क्लैव्यता कहते-  
हैं ॥ ६ ॥

वीर्यवाहिनी नसोंके छेदनसे लिङ्ग उठनेको असमर्थ  
हो जाता है वह गिराच्छेदजन्य क्लैव्य कहा जाता है ॥ ७ ॥

शरीरके पुष्ट होनेपर जिसका मन कामदेवसे क्षोभित  
होकर वह पुरुष ब्रह्मचर्यको वारण करे और उसका  
वीर्यके रुकनेसे जो क्लैव्यता होती है उसको शुक्रस्तम्भ-  
जन्य क्लैव्यता कहते हैं ॥

जो जन्मसे ही क्लैव्य होय वह सहज क्लैव्य कहा-  
जाता है ॥ ८ ॥

अथासाध्यक्लैव्यलक्षणम् ।

असाध्यं सहजं क्लैव्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भ-  
वेत् ॥ ९ ॥

यन्मर्मच्छेदाद्वीर्यवाहिशिराच्छेदात् ॥

इन सात प्रकारके नपुंसकोंमें सहज क्लैव्य तथा शिरा-  
च्छेदजन्य क्लैव्य यह असाध्य हैं ॥ ९ ॥

अथ क्लैव्यचिकित्सायां सामा-  
न्यविधिः ।

क्लैव्यानामिह साध्यानां कार्यों हेतुविप-  
र्ययः ॥ मुख्यं चिकित्सितं यस्मान्निदान-  
परिवर्जनम् ॥ १० ॥

जो क्लैव्य साध्य हैं उसको दूर करनेके लिये निम्न का  
रणोंसे वह उत्पन्न हुआ है उन कारणोंको त्याग देवे,  
क्योंकि उन कारणोंका त्याग करनाही मुख्य चिकित्सा  
है ॥ १० ॥

अथ क्लैव्यचिकित्सा ।

नरो वाजीकरान्योगान्सम्यक्छुद्धो निरा-  
मयः ॥ सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु  
षोडशात् ॥ ११ ॥ न च वै षोडपादर्वा-  
क्सप्तत्याः परतो न च ॥ आयुष्कामो  
नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ १२ ॥  
क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रोगाश्चातीव दुर्जयाः ॥  
अकालमरणंश्च स्याद्भजतः स्त्रियम-  
न्यथा ॥ १३ ॥ विलासिनामर्थवतां  
रूपयौवनशालिनाम् ॥ नराणां बहुभा-  
र्याणां विधिर्वाजीकरो हितः ॥ स्थवि-  
राणां रिरंसूनां स्त्रीणां बाल्मभ्यमिच्छ-  
ताम् ॥ १४ ॥ योषित्संगाल्लीणानां  
क्लीवानामल्परेतसाम् ॥ हिता वाजीकरा  
योगाः प्रीणयन्ति बलप्रदाः ॥ एतेऽति-  
पुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥ १५ ॥

रोगरहित पुरुषको वमन विरेचनादिसे अच्छे प्रकार  
शुद्ध करके सोलह वर्षकी अवस्थासे सत्तर वर्षपर्यंत वाजि-  
करणको सेवन करावे, जिसको अपने जीवनकी इच्छा  
होय वह पुरुष सोलह वर्षकी अवस्था पहिले और  
सत्तर वर्षकी अवस्थाके पश्चात् स्त्री प्रसंग न करे ।

अयोग्य प्रकारसे स्त्रीको सेवन करनेवाले पुरुषके क्षय,  
वृद्धि और उपदंशादि असाध्य रोग उत्पन्न होते हैं और  
अकाल मृत्यु भी होती है । स्त्रीप्रसंग करनेकी विधि,



रात्रिचर्याके प्रकरणमे विस्तारसे कही है सो उसमे देखलेना ।

विलास करनेवाला, धनवान, रूप और यौवन सम्पन्न और जिनके अनेक स्त्रियें है ऐसे पुरुषोको वाजीकरणविधि हितकारक है । तथा जो पुरुष वृद्ध होनेपर भी रमण करनेकी इच्छा करतेहैं, स्त्रियोके अतिप्रेमकी इच्छावाले स्त्रियोके प्रसंगसे क्षीण हुए, साध्य नपुंसक और अल्प-वीर्यवाले पुरुषोंको वाजीकरणकी विधि हितकारक, बल-दायक और पुष्टिकारक है । पुष्ट शरीरवाले मनुष्योको भी देशकालआदिपर ध्यान देकर वाजीकरणका सेवन करना चाहिये ॥ ११-१५ ॥

अथ वाजीकरणवस्तूनि ।

भोजनानि विचित्राणि पानानि विवि-  
धानि च ॥ गीतं श्रोत्राभिरामाश्च वाचः  
स्पर्शसुखास्तथा ॥ १६ ॥ कामिनी  
सान्द्रतिलका कामिनी नवयौवना ॥  
गीतं श्रोत्रमनोज्ञाश्च ताम्बूलं मदिरा  
स्रजः ॥ १७ ॥ गन्धा मनोज्ञा  
रूपाणि चित्राण्युपवनानि च ॥ मन-  
सश्चाप्रतीयातो वाजीकुर्वन्ति मान-  
वम् ॥ १८ ॥ माक्षीकधातुमधुपारद-  
लोहचूर्णं पथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि  
लिह्यात् ॥ एकाग्रविंशतिदिनानि रुग-  
र्दितोऽपि साशीतिकोऽपि रमयेत्प्रमदां  
युवेव ॥ १९ ॥ सत्त्वं गुडूच्या गगनं  
सलोममेलासितामागधिकासमेतम् ॥  
एतत्समेतं मधुनावलीढं रामाशतं सेव-  
यतीव षण्डः ॥ २० ॥ गवां विरूढव-  
त्सानां सिद्धं पयसि पायसम् ॥ गोधूम-  
चूर्णञ्च तथा सितामधुघृतान्वितम् ॥ २१ ॥  
भुक्त्वा हृष्यति जीर्णोऽपि दशदारान्वज-  
त्यपि ॥ २२ ॥

अनेक प्रकारके विचित्र भोजन, विविध प्रकारके पी-  
नेके पदार्थ, कानको जो प्रिय लगे ऐसे सुंदर वचन, त्व-  
चाको प्रिय ऐसे वस्त्र भूषणादि स्पर्श, चंदमाकी चादनी-  
सहित रात्रि, नवयौवना स्त्री, कान और मनको प्रिय ऐसा

गायन आदि नागरवेलके पान, मदिरा, माला, सुगंधि-  
सुंदर स्वरूप, चित्रविचित्र पुष्पोद्यान और जिनमे मनमें  
चोट न लगे ऐसे कर्म क्लीबताको दूर करके वोडेकी समान  
रमण करनेकी शक्तिको उत्पन्न करेहैं ।

सोनामाखी, सहत, पारा, लोहेका चूर्ण, हरड, शिला-  
जीत, वायविडंग और घी इन सबको मिलाकर चाटे तो  
पुरुष रोगसे ग्रसित होनेपर और अस्सी वर्षके वृद्ध होनेपर  
भी जवानकी समान स्त्रीसे रमण करताहै ।

गिलेयका सत्त्व, अभ्रककी भस्म, हरितालकी भस्म  
इलायची, खाँड और पीपल इनको सहतमें मिलाकर चाटे  
तो नपुंसक भी सौ स्त्रियोसे रमताहै ।

पुष्ट बलडेवाली गायके दूधमे गेहूँका सत्त्व वा चूर्ण ले-  
कर भूने फिर उसमें जल, उत्तम मिश्री वा खाँड सहत  
और घी मिलाकर सेवन करे तो वृद्ध मनुष्य भी दश  
स्त्रियोंसे गमन कर सक्ताहै ॥ १६-२२ ॥

दध्नाऽर्द्धाठकमीषदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्र-  
द्युतेः प्रस्थं क्षौद्रपलं पलञ्च हविषः शुण्ठ्या-  
श्च मांषाष्टकम् ॥ तदन्माषचतुष्टयं मरि-  
चतः कर्षं लवङ्गं तथा धृत्वा शुक्लपटे  
शनैः करतलेनोत्थाप्य विस्त्रावयेत् ॥ २३ ॥  
मृद्राण्डे मृगनाभिचन्दनरसाभृष्टेऽगुरु-  
द्धूपिते कर्पूरेण सुगन्धितं तदखिलं  
संलोल्य संस्थापयेत् ॥ स्वस्वार्थं मकरे-  
श्वरेण रचिता हेषा रसाला स्वयं  
भोक्तुर्मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव  
नित्य प्रिया ॥ २४ ॥

कुछेक खटाई लिये मीठा दही एकसौ अठाईस  
तोले चन्द्रमाकी समान श्वेत, और उज्ज्वल खाँड ६४  
चौसठ तोले, सहत ४ चार तोले, घी ४ चार तोले  
सोठ ४० चालीस रत्ती, काली मिर्च २० बीस रत्ती,  
और लौंग १ एक तोला लेवे । इन सबको एकत्र  
मिलाकर सफेद कपडेमें डालकर धीरे धीरे हाथसे फेरकर  
कस्तूरी तथा चंदनके रससे सुवासित किये और अगरमे  
धूपितकिये मट्टीके वासनमें करके, फिर उसको कपूरमे  
सुवासित करे तो यह रसाला ( श्रीखण्ड ) सिद्ध होताहै ।  
यह रसाला स्वयं कामदेवने अपने लिये बनाया था । यह  
कामदेवको प्रदीप्त करनेवाला, सुख देनेवाला और कामि-  
नीकी समान सदैव प्रिय लगताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ रतिवर्द्धनयोगाः ।

गाक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी ॥  
मुसली वानरीबीजं यष्टी नागबला  
बला ॥ २५ ॥ एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं  
गव्येनाज्येन भर्जितम् ॥ सितया मोदकं  
कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥ २६ ॥  
चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम् ॥  
सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदभिवलं यथा  
॥ २७ ॥ वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य  
रचितो यतः ॥ तस्माद्बहुषु योगेषु योगो-  
ऽयं प्रवरो मतः ॥ २८ ॥

गोखरु, तालमखाना, असगध, सतावर, मुसली, कौष्ठके बीज, मुलेठी, गगेरन और खिरेठी इनके चूर्णको अठगुने दूधमें पकावे और फिर सब औषधियोंके बराबर गायका घी लेवे, उस घीमें औषधिको अच्छे प्रकार भूनकर औषधि डाले और औषधिसे दुगुनी सफेद घृता मिलाकर उसके लट्ठ बनालेवे इन लट्ठोंको सेवन करनेसे यह अत्यन्त वाजीकरण गुणोंको करताहै, यह प्रयोग अनेक वाजीकरण योगोंको संग्रह करके मैने बनाया है इस कारण अनेक योगोंसे उत्तम है ॥ २५-२८ ॥

अथ मदनमंजरी वटी ।

चत्वारो व्योमभागास्तदनु निगदितं भा-  
गयुग्मश्च वंगम्भागैकं शम्भुबीजं त्रित-  
यमपि मृतं तत्समा सिद्धमूला ॥ चातु-  
र्जातं सजातीफलभरिचकणानागरं देव-  
पुष्पं जातीपत्रश्च भागद्वितयमपि पृथ-  
क्सर्वमेकत्र चूर्ण्यम् ॥ २९ ॥ सर्वा-  
र्द्धांशं सिता स्याद्धृतमधुसहितं मोदकी-  
कृत्य चैतत्खादेदग्नि समीक्ष्य प्रसभ-  
मभिनवानन्दसंवर्द्धनाय ॥ योगो वाजी-  
कराख्योऽयमिह निगदितो भैरवानन्द-  
नाम्ना निःशेषव्याधिहन्ता दलितबहुबधू-  
हामकन्दर्पदर्पः ॥ ३० ॥

४ चार भाग अन्नरुकी भस्म, २ दो भाग वगकी भस्म, पारेकी भस्म एक भाग और इन तीनोंकी बराबर भाग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, जाय-

फल, कालीमिर्च, पीपल, सोट, लोंग और : प्रत्येक दो दो तोले लेकर चूर्ण बनावे और सब दुगुनी चीनी डाले, फिर इसमें सहत और घी लट्ठ बनाकर जठराग्निके बलानुसार लट्ठोंको सेव इन लट्ठोंको सेवन करनेसे तत्कालही कामदेवकी प्रबल आनन्दकी प्राप्ति होतीहै । जगत्में भैरवानन्दयं कहा हुआ यह वाजीकरण योग सम्पूर्ण व्याधियोंक करनेवाला है और बड़ी बड़ी प्रबल स्त्रियोंके काम अभिमानको भंजन करदेताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ वस्तांडकच्छपांडे ।

पिप्पलीलवणोपेतं वस्ताण्डं घृतसाधितं  
कच्छपस्याथवा खादेत्तत्तु वाजीव  
भृशम् ॥ ३१ ॥

वकरके अटकोपोंको अथवा कछुवके अटोंको भूनकर उसमें पीपल तथा संधानमकका चूर्ण डाला खाय तो पुरुष घोड़ेकी समान मैथुन करनेमें समर्थ है ॥ ३१ ॥

अथ स्त्रीरतिवर्द्धनपृगपाकः ।

पूगं दक्षिणदेशजं दशपलोन्मानं भृ-  
कर्तयेत्तत्स्विन्नं जलयोगतो मृदुतरं सं-  
कुटय चूर्णाकृतम् ॥ तच्चूर्णं पटशोधितं  
वसुगुणे गोशुद्धदुग्धे पचेद्व्याज्याञ्जलिस-  
युतेऽतिनिविडे दद्यात्तुलाद्धां सिताम् ।  
॥ ३२ ॥ पक्वं तज्ज्वलनात्क्षितिं प्रति  
नयेत्तस्मिन्पुनः प्रक्षिपेद्यत्तत्तदुदाहरा-  
मि बहुला दृष्टादरात्संहिताः ॥ एला ना-  
गबला बला सचपला जातीफला लिङ्गिकां  
जातीपत्रसुपत्रपत्रकयुतं तच्च त्वचा सं-  
युतम् ॥ ३३ ॥ विश्वावीरणवारिवारिदवरा  
वांशी वरी वानरी द्राक्षा सेक्षुरगोक्षुराश्च  
महती खर्जूरिका क्षीरिका ॥ धान्याकं  
सकसेरुकं समधुकं शृङ्गाटकं जीरकं पृ-  
थ्वीकाथ यवानिका वरटिका मांसी मि-  
सी मेथिका ॥ ३४ ॥ कन्देष्वन्न विदारि-  
काथ मुशली गन्धर्वगन्धा तथा कर्चूरं  
करिकेशरं समरिचं चारस्य बीजं नवम् ॥

बीजं शाल्मलिसम्भवं करिकणाबीजञ्च  
राजीवजं श्वेतं चन्दनमत्र रक्तमपि च  
श्रीसंज्ञपुष्पैः समम् ॥ ३५ ॥ सर्वश्चेति  
पृथक्पृथक्पलमितं संचूर्ण्य तत्र क्षिपे-  
त्सूतं वंगभुजंगलोहगगनं सम्मारितं स्वे-  
च्छया ॥ कस्तूरीघनसारचूर्णमपि च प्राप्तं  
यथा प्रक्षिपेत्पश्चादस्य तु मोदकान्विरचये-  
द्विल्वप्रमाणानथ ॥ ३६ ॥ तान्भुक्ताति  
सदा यथानलबलं भुञ्जीत नाम्लं रसम्पू-  
र्वस्मिन्नशिते गते परिणतिं प्राग्भोजना-  
द्भक्षयेत् ॥ नित्यं स्त्रीरतिवल्लभाख्यक-  
मिमं पूगस्य पाकं भजेत्स स्याद्दीर्यवि-  
वृद्धिवृद्धमदनो वाजीव शक्तो रतौ ॥ ३७ ॥  
दीप्ताभिर्बलवान्बली विरहितो हृष्टः स  
पुष्टः सदा वृद्धो योऽपि युवेव सोऽपि  
रुचिरः पूर्णेन्दुवत्सुन्दरः ॥ ३८ ॥

वसुगुणेऽष्टगुणे अञ्जलिरर्द्धशरावः । तुलाद्धं  
पश्चाशत्पलानि यतः—“द्विःपश्चाशत्पलानाम-  
भिदधति तुलां संहिताः सुश्रुताद्याः”  
नागबला ( गुलशकरी ) । बला ( वरि-  
आरा ) तस्याः मूलम् । जातीपत्रकञ्जाइ-  
पत्री इतिलोके । विश्वा शुण्ठीति लोके ।  
वीरणमुशीरं ग्राह्यम् । वारि सुगन्धवाला  
इतिलोके । वारिदः मुस्तकः । वरा त्रिफला ।  
वांशी वंशलोचना । वरी शतावरी । वानरी  
कपिकच्छुः । इक्षुरः कोकिलाक्षस्तस्य बीजं  
ग्राह्यम् । गोक्षुरस्य च बीजम् । महती महा-  
खर्जूरिका । क्षीरिका क्षीरी । पृथ्वीका  
कलौञ्जीति लोके । वराटिका “शालूकमेषां  
कन्दः स्याद्बीजकोशो वराटिका” मांसी  
जटामांसी । मिसिः शतपुष्पा । गन्धर्वगन्धा  
अश्वगन्धा तस्या मूलम् । श्रीसंज्ञं लवंगः ।  
घनसारः कर्पूरः । बिल्वमानात् पलप्र-  
माणात् ॥

चालीस तोलेभर दक्षिण देशकी उत्तम सुपारी लेकर  
उनको बारीक कतरकरें टुकड़े करलेवे उनको जलमें भि-  
जोदेवे जब यह अत्यंत नरम होजायें तब उनको कूटकर  
बारीक चूर्ण करलेवे फिर उस चूर्णको वस्त्रमें छानलेवे,  
पश्चात् इस चूर्णसे आठगुने गायके शुद्ध दूधमें सोलह  
तोलेभर गायका घी डालकर उसमें इस चूर्णको पकावे  
जब पकते पकते गाढा होजाय तब उसमें २०० दोसौ  
तोलेभर उत्तम सफेद बूरा मिलादेवे, जब अच्छे प्रकारसे  
पकजाय तब उसको चूलेसे नीचे उतारकर उसमें इलाय-  
ची, गगेरन, खिरेटी, पीपल, जायफल, लौंग, जावित्री,  
तेजपात, तालीसपत्र, दालचीनी, सोंठ, खस, सुगंधवाला,  
नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला, वगलोचन,  
सतावर, कौछके बीज, दाख, तालमखाना, गोखुरूके  
बीज, बडीखजूर, तवाखीर, धनियाँ, कसेरू, सिगाड़े,  
मुलैठी, जीरा, कलौंजी, अजवायन, कमलगट्टेकी गिरी,  
वालछड, सौंफ, मेथी, विदारीकद, काली मुसली, अस-  
गन्धकी जड, कचूर, नागकेशर, मिरच, नवीन चिरौंजी,  
सेमलके बीज, गजपीपल, कमलगट्टा, चदन, लालचन्दन  
और लौंग इन प्रत्येक पदार्थका चार चार तोले चूर्ण  
डाले, उसीप्रकार अच्छी विधिसे पारकी भस्म, वगकी  
भस्म, सीसेकी भस्म, लोहेकी भस्म, और अच्छे प्रकारसे  
मारा हुआ अभ्रक इनको भी इच्छानुसार डालदेवे, और  
जो कस्तूरी और भीमसेनी कपूर मिलजाय तो यह दोनों  
वस्तु भी डाल देवे । पीछे इसके चार चार तोलेके लड्डू  
बनावे । इन लड्डूओको बड़े आनन्दके साथ अग्निका  
बलावल विचारकर खाय । पहिले किया हुआ भोजन जब  
पच जाय तब भोजन करनेसे पहिले यह लड्डू खाय । इन  
लड्डूओको सेवन करनेवालेको खटाई नहीं खानी चाहिये ।  
यह स्त्रीरतिवल्लभ नामवाला पूगपाक (सुपारीपाक) नित्य से-  
वनकिया जाय तो वीर्यकी वृद्धि होकर कामदेवकी वृद्धि होती-  
है । मैथुनकर्ममें घोड़ेकी समान समर्थ होताहै । जठराग्नि  
दीपन होतीहै, बलकी वृद्धि होतीहै, शरीरमें बलि नहीं  
पडती, हृष्ट पुष्ट होताहै, जो पुरुष वृद्ध होय वह भी  
इसके प्रतापसे युवाकी समान बलवान् और पूर्णमासिके  
चन्द्रमाकी समान सुन्दर होताहै ॥ ३२-३८ ॥

अथ कामेश्वरमोदकः ।

एतस्मिन्सति वल्लभे यदि पुनः सम्प-  
क्सुरा शाणिका धतूरस्य च बीजमर्क-  
करभः पोथोऽन्विशोषस्तथा ॥ सन्माजू-

फलकं तथा खसफलन्त्वकार्षिका निक्षि-  
पेच्चूर्णाद्धा विजया तदा स हि भवेत्का-  
मेश्वरो मोदकः ॥ ३९ ॥

इस पृगपाकमें जो खुरासानी, अजवायन, धतूरेके  
बीज, अकरकरा, वालछड, समुद्रशोष, माजूफल, और  
पोस्तके डोटे इन पदार्थोंका चूर्ण एक एक तोला और  
सब चूर्णसे आधी भाग मिलादी जाय तो यह कामेश्वर  
मोदक तैयार होताहै ॥ ३९ ॥

अथ महाखण्डकूष्माण्डावलेहः ।

रक्तपित्ताधिकारोक्तः खण्डकूष्माण्डको  
महान् ॥ रक्तपित्तादिरोगघ्नो महावाजी-  
करः स्मृतः ॥ ४० ॥

रक्तपित्ताधिकारमें जो महाखण्डकूष्माण्ड नामका अव-  
लेह कहा है वह अवलेह रक्तपित्तादि रोगोंको हरनेवाला  
और अत्यन्त वाजीकरण है ॥ ४० ॥

अथाम्रपाकः ।

पक्वाम्रस्य रसद्रोणे सितामाढकसम्मि-  
ताम् ॥ घृतं प्रस्थमितं दद्यान्नागरस्य  
पलायकम् ॥ ४१ ॥ मरिचं कुडवोन्मानं  
पिप्पली द्विपलोन्मिता ॥ सलिलस्याढकं  
दृष्ट्वा सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ४२ ॥ विप-  
चेन्मृन्मये पात्रे दारुद्वयां प्रचालयेत् ॥  
चूर्णान्येषां क्षिपेत्तत्र घनीभूतेऽवतारिते ॥  
॥ ४३ ॥ धान्याकं जीरकं पथ्यां चित्रकं  
मुस्तकत्वचम् ॥ बृहज्जीरकमप्यत्र ग्रन्थिकं  
नागकेशरम् ॥ ४४ ॥ एलावीजं लवंगञ्च  
पृथग्जार्तां पलम्पलम् ॥ सिद्धे शीते  
प्रदद्याच्च मधुनः कुडवद्वयम् ॥ ४५ ॥  
भक्षयेद्भोजनादवाक्पलमात्रमिदं नरः ॥  
अथवा नियतं नात्र मात्रां खादेद्यथान-  
लम् ॥ ४६ ॥ मानवः सेवनादस्य वाजीव  
सुरते भवेत् ॥ समर्थो बलवान्पुष्टो नित्यं  
स स्यान्निरामयः ॥ ४७ ॥ ग्रहणी नाश-  
येदेव क्षयं श्वासमरोचकम् ॥ अम्ल-

पित्तं महाग्वासं रक्तपित्तञ्च पाण्डु-  
ताम् ॥ ४८ ॥

उत्तम पक्वहुए आगोंके १०२४ एक हजार चौबीस  
तोले रसमें २५६ दोसी छपन तोले खाट, ६४ चौ-  
सठ तोले घी, ३२ बत्तीस तोले मोट, १६ सोलह तोले  
कालीमिरच, ८ तोले पीपल और २५६ दोसी छपन  
तोले जल उलकर सबको एकत्रित करके मट्टीके वा-  
सनमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे और पकाते समय  
लकड़ीकी करछीसे चलाता जाय गाढा होनेपर उस-  
को नीचे उतार उसमें धनिया, जीरा, हरद, लीता,  
नागरमोथा, टालचीनी, कलौजी, पीपलामूल, नागकेशर,  
इलायचीके दाने, लौंग और जायफल, इन प्रत्येक पदार्थ-  
का चार चार तोले चूर्ण टालदेवे । जब यह शीतल  
होजाय तब इसमें ३२ बत्तीस तोले सहत टालदेवे तो  
यह आम्रपाक सिद्ध होताहै । इसमेंमे एक तोला लेकर  
भोजन करनेसे पहिले खाय अथवा मात्राके नियमको छो-  
डकर जठराग्निके बलानुसार खाय । इस पाकको सेवन कर-  
नेसे मनुष्य मैथुन करनेमें घोटकी समान सामर्थ्ययुक्त होते-  
हैं, बलवान्, पुष्ट और सदैव रोगरहित होतेहैं । यह पाक  
ग्रहणी, क्षय, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, महाश्वास, रक्त-  
पित्त और पाण्डुताको नष्ट करेहै ॥ ४१-४८ ॥

अथ चन्दनादि तैलम् ।

शमयति गोक्षुरचूर्णं छागक्षीरेण साधितं  
समधु ॥ भुक्तं क्षपयति जाड्यं यज्जनितं  
कुप्रयोगेण ॥ ४९ ॥ द्रव्याणि चन्दना-  
देस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ पतंगमथ  
कालीयागुरुकृष्णागुरुणि च ॥ देवद्रुस-  
रलं पद्मं पञ्चके तृणिकेऽपि च ॥ ५० ॥  
कर्पूरो मृगनाभिश्च लता कस्तूरिकापि  
च ॥ सिङ्गकः कुङ्कुमं नव्यं जातीफलक-  
मेव च ॥ ५१ ॥ जातीपत्रं लवंगञ्च  
सूक्ष्मैला महती च सा ॥ कंकौलफलकं  
स्पृक्का पत्रकं नागकेशरम् ॥ ५२ ॥  
वालकञ्च तथोशीरं मांसीं दारुसिताऽपि  
वा ॥ कृतकर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्त-  
कम् ॥ रेणुका च प्रियंगुश्च श्रीवासी

गुग्गुलुस्तथा ॥ ५३ ॥ लाक्षा नखश्च  
 रालश्च धातकीकुसुमं तथा ॥ ग्रन्थिपर्णश्च  
 मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ५४ ॥  
 एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः  
 पचेत् ॥ अनेनाभ्यक्तगान्त्रस्तु वृद्धोऽशी-  
 तिसमोऽपि सः ॥ ५५ ॥ युवा भवति  
 शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥ वन्ध्या-  
 पि लभते गर्भं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥  
 अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम्  
 ॥ ५६ ॥ चन्दनादि महातैलं रक्तपित्तं  
 क्षयं ज्वरम् ॥ दाहं प्रस्वेददौर्गन्ध्यं कुष्ठं  
 कण्डूं विनाशयेत् ॥ ५७ ॥

पतंगं वकम् इति लोके । कालीयकं  
 कलम्बकटु इति लोके । लता कस्तूरिका मुष्क-  
 दाना इति लोके । कंकोलफलस्य अलाभे  
 जातीपुष्पं ग्राह्यं तदलाभे लवंगं ग्राह्यम् ।  
 दारुसिता [ दारुचीनी ] । शैलेयं छरेति लोके  
 श्रीवासः गुग्गुलुः । ग्रन्थिपर्णी [ गठिवन ]  
 अशीतिसमः अशीतिवार्षिकः ॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पतंग, दारुहलदी, अगर,  
 काली अगर, देवदारु, धूसरल, कमल, पारिस पीपलका  
 पञ्चांग, कपूर, कस्तूरी, वेदमुस्क, शिलारस, नवीन केसर,  
 जायफल, लौंग, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, जावित्री,  
 कंकोल ( कंकोल न मिले तो जावित्री और जावित्री भी  
 न मिले तो लौंग लेनी चाहिये ) दालचीनी, तेजपात, नाग-  
 केशर, खस, सुगंधवाला, वालछड, तज, बगलोचन, भूरि  
 छरीला, नागरमोथा, रेणुकाके बीज, फूलप्रियंगु, लोवान,  
 गूगल, लाख, नख, मर्जीठ, तगर, मोम, राल, धायके  
 फूल, और गठिवन यह प्रत्येक पदार्थ २४ चौबीस २४  
 चौबीस रत्ती लेकर कल्क बनाकर तेलमें डालकर धीरे  
 धीरे पकावे, इस तेलकी शरीरमें मालिस किया जाय तो  
 ८० वर्षका बुढ़ा पुरुष भी युवाकी समान वीर्यवान्  
 और स्त्रियोको अत्यन्त प्रिय होता है । इस तेलका मालिस  
 करनेसे ब्या स्त्रियोंके भी गर्भ रहता है । अपुत्रिणीके  
 पुत्रकी प्राप्ति होती है और सौ वर्षकी आयु होती है । यह  
 चन्दनादि महातैल-रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, पसीना,  
 दुर्गंध, कोढ़ और खुजलीको दूर करदेता है ॥ ४९-५७ ॥

अथ मधुपकहरीतकी ।

दशमूलकणावह्निः कपित्थश्च विभीतकम् ॥  
 कट्फलं मरिचं विश्वमूलं पिप्पलिसैन्ध-  
 वम् ॥ ५८ ॥ रक्तरोहीतकं दन्ती द्राक्षा-  
 जाजिनिशाद्वयम् ॥ धात्रीजन्तुप्रशिख-  
 रिशृंगीदारुपुनर्नवाः ॥ ५९ ॥ धान्याकं दे-  
 वकुसुमं राजवृक्षस्त्रिकण्टकम् ॥ वृद्धदारु  
 कुबेराक्षी मूलं वीरणिकाभवम् ॥ ६० ॥  
 एतेषां पलयुग्मन्तु भेषजानां पृथक्पृथक् ॥  
 आढकश्चापि पथ्यायास्तोये पश्चाढके  
 पचेत् ॥ ६१ ॥ स्वित्ना पथ्या भवेद्याव-  
 त्पश्चान्मधु विनिक्षिपेत् ॥ गुरुपदेशाद्वि-  
 धिवन्निदिनश्च ततः परम् ॥ ६२ ॥ पुनः  
 क्षिपेत्पश्चदिनं तथा च दशवासरम् ॥ सं-  
 सिद्धा चाभया पश्चाद् घृतभाण्डे निधाप-  
 येत् ॥ ६३ ॥ विमले सुदृढे क्षौद्रपरिपूर्णं प्रय-  
 त्ततः ॥ पश्चात्पूर्वोक्तभाण्डे तु क्षिपेद्बुद्धिप-  
 रायणः ॥ एषा हरीतकी चैव धन्वंतरि-  
 कृता शुभा ॥ ६४ ॥ भक्षयेद्यो नरो नित्यं  
 रोगा नश्यन्ति सर्वशः ॥ श्वासं कासं क्षयं  
 पाण्डुं हिकां छर्दिमदभ्रमान् ॥ ६५ ॥  
 मुखरोगं तथा तृष्णामरुचिं वह्निमन्दताम् ॥  
 यकृत्प्लीहोदराणाञ्च वातरक्तं सुदारुणम्  
 ॥ ६६ ॥ शिरोऽक्षिकर्णजां पीडां तथा  
 बद्धगुदोदरम् ॥ ग्रहणीं दुर्विकाराश्च शोषं  
 दोषत्रयोद्भवम् ॥ मधुपकेति विख्याता  
 हन्ति रोगाननेकशः ॥ ६७ ॥

दशमूल, पीपल, चीता, कैथ, बहेडा, कायफल, मिरच,  
 सोठ, पीपलामूल, सैधानिमक, लालरोहिडा, जमालगोटा,  
 दाख, जीरा, हलदी, दारुहलदी, आमले, वायविडग,  
 चिरचिटा, काकडागिगी, देवदारु, पुनर्नवा, धनिर्वा, लौंग  
 अमलतास, गोखरु, विधारा, सागरगोटा, और खम यह  
 प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले और उत्तम हरड दोसी  
 छप्पन तोले लेवे, सबको पाच आढक जलमें पकावे, जब  
 पकते पकते नरम होजाय तब उसमेंसे हरडोंको निकाल-  
 कर उनकी गुठली निकालकर अलग रख देवे और काटे



को छानकर उसमें वह हरड डालकर पकावे जब पकते २ गाढा होजाय तब शीतल होनेपर गुरुवचनानुसार सहत मिलावे, फिर तीन दिन पश्चात् पांच दिन पश्चात् और फिर दश दिन पश्चात् सहत डाले । इस प्रकारकी सिद्ध हुई हरडोंको निर्मल, दृढ और सहतमे भरे बीके चिकने वासनमें यत्नपूर्वक रखे फिर उस वासनमेंसे निकालकर बुद्धिमान् वैद्य दूसरे वासनमें भरकर रख देवे तो यह मधुपर्क हरितकी सिद्ध होतीहै । जो मनुष्य इस धन्वन्तरिकी कहीहुई हरडका नित्य सेवन करताहै उसके सम्पूर्ण रोग नष्ट होजातेहैं । वास, खाँसी, क्षय, पाडु, हिचकी, वमन, मद, भ्रम, मुखरोग, तृषा, अरुचि, मदाग्नि, ग्रीहा, यकृत, उदरके रोग, महादारुण वातरक्त, मस्तककी पीडा, नेत्रकी पीडा, कानकी पीडा, वद्धगुद, दुष्ट विकारावाली ग्रहणी, त्रिदोषजनित सूजन और अन्यान्यभी बहुतसे रोग इस हरडके सेवन करनेसे नष्ट होजातेहैं ॥ ५८-६७ ॥

### अथ वानरीवटिका ।

बीजानि कपिकच्छाः कुडवगितानि  
स्वेदयेच्छनकैः ॥ प्रस्ये गोभवदुग्धे ताव-  
द्यावद्रवेद्गाढम् ॥ ६८ ॥ त्वग्रहितानि  
च कृत्वा सूक्ष्मं सम्पेषयेत्तानि ॥ पिष्टि-  
कया लघुवटिकाः कृत्वा गव्ये पचेदाज्ये  
॥ ६९ ॥ द्विगुणितशर्करापाता वटिकाः  
सम्पकया लेप्याः ॥ वटिका माक्षिकमध्ये  
मज्जनयोग्ये विरलाः स्थाप्याः ॥ ७० ॥  
पञ्चदशकमितास्तास्तु प्रातः सायञ्च भक्ष-  
येत् ॥ अनेन शीघ्रद्रावी यो यश्च स्यात्पति-  
तध्वजः ॥ ७१ ॥ सोऽपि प्राप्नोति सुरते  
सामर्थ्यमति वाजिवत् ॥ नानेन सदृशं  
किञ्चिद्व्यं वाजीकरं परम् ॥ ७२ ॥

### वानरी वटिका ॥

• सोलह तोले कौड़के बीजोंको चौंसठ तोले गायके दूधमें पकावे जब पकते २ दूध गाढा होजाय तब उतार लेवे, फिर इन बीजोंको छीलकर वारीक मैदेकी छोटी २ बड़ी बनाकर गायके बीमें पकावे, फिर उनसे दुगुनी खाडकी चासनीमें उन बडियोंको छोड़ देवे, फिर उनको तलकर उसमें निकालकर जितने सहतमें वह दूधजाय उतने सहतमें भरकर रखदेवे । इनमेंसे पांच टक प्रातः

काल और सन्ध्याके समय भक्षण करे तो जिनका वीर्य तत्काल स्खलित होजाताहै और जिसका लिंग खड़ा नहीं होता वह पुरुष भी मैथुनके समय घोंडेकी समान गामार्थ्यको प्राप्त होताहै, इस वानरीवटिकाकी समान अन्य कोई भी वाजीकरण पदार्थ नहींहै ॥ ६८-७२ ॥

### अथाकारकरभादिवटी ।

आकारकरभः शुण्ठी लवंगं कुंकुमं कणा ॥  
जातीफलं जातिपुष्पं चन्दनं कार्ष्णिकं  
पृथक् ॥ ७३ ॥ चूर्णयेदहिफेनन्तु तत्र  
दद्यात्पलोन्मितम् ॥ सर्वभेकीकृतं भार्य-  
मात्रं क्षौद्रेण भक्षयेत् ॥ ७४ ॥ शुक्रस्तम्भ-  
करं पुंसामिदमानन्दकारकम् ॥ नारीणां  
प्रीतिजननं संवेत निशि कामुकः ॥ ७५ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः ।

अकरकरा, सोढ, लैंग, केमर, पीपल, जयफल, जावित्री और सफेद चन्दन यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर उसका चूर्ण करके उसमें चार तोले अफीम मिलावे, फिर इसकी पाच २ रस्तीकी गोलियां बनावे । नित्य एक गोली सहतके साथ खाय तो पुरुषका वीर्य स्तम्भ होताहै, मैथुनमें अत्यन्त आनन्द होताहै और स्त्रियों विशेष प्रसन्न होतीहैं । कामी पुरुषोंको यह गोलियां खानी चाहियें ॥ ७३-७५ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः सपूर्णः ।

### अथ रसायनाधिकारः ।

तत्र रसायनलक्षणम् ।

यज्ज्वरव्याधिविध्वंसि वयःस्तम्भकरं  
तथा ॥ चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद-  
सायनम् ॥ ७६ ॥

जो आपधि ज्वर और व्याधिको नष्ट करनेवाली, अवस्थाको स्थगन करनेवाली, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक और मैथुनकशक्तिको बढानेवाली हो उस आपधिको रसायन कहतेहैं ॥ ७६ ॥

अथ रसायनफल विधिश्च ।

दीर्घमायुः स्मृति मेधामारोग्यं तरुणं  
वयः ॥ देहेन्द्रियबलं कान्ति नरो विन्दे-  
द्रसायनात् ॥ ७७ ॥ नाविशुद्धशरीरस्य

युक्तो रासायनो विधिः ॥ न भाति  
वाससि म्लिष्टे रंगयोग इवा-  
हितः ॥ ७८ ॥

रसायनको सेवन करनेसे दीर्घायु होतेहै उनको स्मरण  
शक्ति अत्यंत तीव्र होजातीहै । तथा मेधा, आरोग्यता,  
तरुणता, देह और इन्द्रियोका बल और सुंदर कांति बढा-  
तीहै । विरेचनादिसे शरीरको बिना शुद्ध किये रसायनका  
उपयोग करना योग्य नहीं है । जैसे कि अच्छे प्रकारसे  
चढायाहुआ रंगभी मैले वस्त्रको शोभित नहीं करता ॥  
॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ रसायनप्रयोगाः ।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो हि-  
तम् ॥ त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं  
स्थापयेद्वयः ॥ ७९ ॥ मण्डूकपर्ण्याः  
स्वरसः प्रभाते प्रयोज्य यष्टीमधुकस्य  
चूर्णम् ॥ रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्पः  
कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः ॥  
॥ ८० ॥ आयुष्प्रदान्यामयनाशनानि  
बलामिवर्णस्वरवर्द्धनानि ॥ मेध्यानि चैता-  
नि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शंख-  
पुष्पी ॥ ८१ ॥

मण्डूकपर्णी ब्राह्मी । तदलाभे मस्तिष्ठा  
ग्राह्या । तस्या अपि रसायनत्वात् ॥

माक्षिकेण तुगाक्षीरी पिप्पल्या लवणेन  
च ॥ त्रिफला सितया वापि युक्ता सिद्धं  
रसायनम् ॥ ८२ ॥ सिन्धूत्यशर्कराशु-  
ण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् ॥ वर्षादिष्वभया  
प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ८३ ॥ पुन-  
र्नवस्यार्द्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पय-  
सार्द्धमासम् ॥ मासद्वयं तत्रिगुणं समं  
वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥  
॥ ८४ ॥ ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने-  
दिने भृंगरजःसमुत्थम् ॥ क्षीराशिनस्ते  
बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवनमासु-  
वन्ति ॥ ८५ ॥ शतावरी मुण्डितिका

गुडूची सहस्तिकर्णा सहतालमूली ॥  
एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन किं  
वा मधुनावलिह्यात् ॥ ८६ ॥ जरारुजा-  
मृत्युवियुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्यबलादि-  
युक्तः ॥ विभाति देवप्रतिमः स नित्यं  
प्रभामयो भूरिविवृद्धबुद्धिः ॥ ८७ ॥  
पीत्वाश्वगन्धां पयसार्द्धमासं घृतेन  
तैलेन सुखाम्बुना वा ॥ वीर्यस्य पुष्टिं  
वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बु-  
वृष्टिः ॥ ८८ ॥

एक भाग शीतल जल, एक भाग दूध, एक भाग  
सहत और दो भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन कर-  
नेसे अथवा तीन भाग शीतल जल, तीन भाग दूध, तीन  
भाग सहत और तीन भाग घी इनको भोजनसे पहिले  
सेवन करनेसे अवस्था स्थापन होतीहै ।

प्रातःकाल ब्रह्मीका रस, गिलोयका स्वरस और शंखा-  
हुलीकी जड तथा पत्तोंका कल्क और मुलैठीका चूर्ण  
सेवन करनेसे यह उत्तम रसायनके गुणोंको करे है इसमे  
कहे हुए ब्रह्मी आदि चार पदार्थ तो आयुको बढानेवाले,  
रोगोंका नाश करनेवाले, बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले और  
बलको, अग्निको, वर्णको तथा स्वरकी वृद्धि करनेवाले  
होनेसे रसायन है । इनमें भी शंखाहुली विशेष करके  
बुद्धिको देनेवाली है, जो ब्राह्मी न मिले तो उसके अभा-  
वमे मजीठ लेना चाहिये, क्योंकि मजीठभी रसायन है ॥

सहत पीपल और सैधानमकके साथ वशलोचनको  
सेवन करना रसायनहै और खांडके साथ त्रिफलेको सेवन  
करना सिद्ध रसायनहै ।

रसायनके गुणोंकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको वर्षा-  
ऋतुमें सैधेनिमकके साथ, शरदृतुमें खांडके साथ, हेमन्त-  
ऋतुमें सोंठके साथ, शिशिरऋतुमें पीपलके साथ, वसन्त-  
ऋतुमें सहतके साथ और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ हरडको  
सेवन करना चाहिये इसप्रकार हरडको सेवन करनेसे रसा-  
यनके गुणोंको करेहै । जो मनुष्य एक पक्षतक, अथवा  
तीन महीनेतक, नौ महीनेतक अथवा एक वर्षतक तात्का-  
लिक उखाड़े हुए पुनर्नवको पीसकर उसके दो तोले कल्कको  
दूधके साथ पीवे वह वृद्ध मनुष्यभी जवान होजाताहै ।

जो मनुष्य एक महीने तक नित्य भागरेके रसको  
पिये और दूधके साथ भोजन करे तो अत्यन्त बल और  
वीर्ययुक्त होताहै और १०० सां वर्षतक जीताहै ।

सतावर, गोरखमुडी, गिलोय, हस्तिकर्ण, पलास, और काली मुसली इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके सहतमें अथवा घीमें मिलाकर चाटे तो मनुष्य जरा रोग और अकालमृत्यु रहित अतुल वीर्य बल सम्पन्न देवताकी समान, तेजस्वी और अत्यन्त तीव्र बुद्धिमत्पन्न होकर सदैव शोभाको प्राप्त होता है ।

एक पक्षतक घीके साथ, तेलके साथ, अथवा सुहाते २ गरम जलके साथ असगन्धको पिये तो जिस प्रकार जलकी वृष्टि धान्यांको पुष्ट करती है उसी प्रकार असगन्ध वीर्य तथा शरीरके बलको वृद्धि करता है ॥ ७९-८८ ॥

अथ लोहगुग्गुलुः ।

अयःपलं गुग्गुलुमत्र योज्यं पलत्रयं व्यो-  
षपलानि पञ्च ॥ पक्वानि चाष्टौ त्रिफला-  
रजश्च कर्षलिह्न्यात्यमरत्वमेव ॥ ८९ ॥

लोहेका चूर्ण ४ चार तोले, गुग्गुलु १२ बारह तोले, त्रिकुटा २० बीस तोलेभर और त्रिफलेका चूर्ण ३२ बीस तोले इन सबको एकत्र करके इसमेंसे नित्य एक तोला चाटे तो ज्वरादि रोग दूर होकर अमरता प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥

अथ रसायनविशेषफलम् ।

न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते रसायनं यो  
विविधं निषेवते ॥ गतिं स देवर्षिनिषेवितां  
शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाक्षयम् ॥ ९० ॥

इति रसायनाधिकारः ।

जो मनुष्य अनेक प्रकारके रसायनको सेवन करता है वह केवल दीर्घायुको नहीं भोगता किन्तु देवर्षियोंकी

शुभ गतिको प्राप्त होता है और अविनाशी ब्रह्मरूप पद मोक्षको भी प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

इति रसायनाधिकारः सम्पूर्णः ।

यावद्योमनि विम्बमम्बरमणेरिन्दाश्च  
विद्योतते यावत्सप्तपयोधयः सगिरय-  
स्तिष्ठन्ति पृष्ठं भुवः ॥ यावच्चावनिमण्डलं  
फणिपतेरास्ते फणामण्डले तावत्सद्भिपजः  
पठन्तु परितो भावप्रकाशं शुभम् ॥ ९१ ॥  
ग्रन्थस्यास्याध्यापकानाञ्जनानां मध्ये  
नणामादरं कुर्वतां च ॥ श्रीसामेशादि-  
त्यविप्रप्रसादादायुर्दीर्घं सौख्यमास्तां  
सदैव ॥ ९२ ॥

इति भावप्रकाशस्योत्तरखण्डेऽष्टमं प्रकरण समाप्तम् ।

जयतक सूर्य और चन्द्रमा आकाशमें स्थित हैं, जय-  
तक पृथ्वीपर सातों समुद्र तथा धरणिपर धराधर प्रतिष्ठित  
हैं और जयतक भूमण्डल फणिन्द्रके फणपर विद्यमान है  
तबतक देशदेशान्तरोंके बड़ेबड़े विचक्षण वैद्य मेरे इस  
भावप्रकाश शुभदायक ग्रन्थको पढ़ें ॥ ९१ ॥

इस भावप्रकाश ग्रन्थके पढ़ने पढ़ानेवाले और आदर  
सत्कार करनेवाले पुरुष विश्वनाथ महादेव सूर्य देवता और  
ब्राह्मणोंके प्रसादसे सर्वदा दीर्घायु होकर अचल सुखको  
प्राप्त हों ॥ ९२ ॥

इति श्रीभावमिश्रकृतभावप्रकाशनामग्रन्थे, उत्तरखण्डे

मुद्रादावादनगरनिवास्यायुर्वेदोद्धारककविकुल-

कलानिबिमाश्रुर्वैद्यवगोद्भवशालिग्राम-

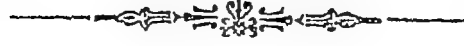
वैद्यविरचितवैद्यसजीविनीनाम

भाषाटीका सम्पूर्णा ।

समाप्तमिदमुत्तरखण्डम् ।



# क्रयपुस्तकें ( वैद्यक-ग्रन्थाः ) ।



नाम,	की० सं० आ०
अष्टाङ्गहृदय—( वाग्भट ) मूल मोटा अक्षर वाग्भटविरचित. ... २-८	
अष्टाङ्गहृदय—( वाग्भट ) वाग्भटविरचित तथा पं० रविदत्तकृत भाषाटीकासहित और पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र सशोधित । जिसमें—सूत्रस्थान, शरीरस्थान, निदान- स्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, उत्तर- स्थान, इत्यादिमें संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति, निदान, लक्षण और द्वाय, चूर्ण, रस, घी, तैल आदिसे अच्छी प्रकार चिकित्सा वर्णित है. ... ८-०	
अमृतसागर—हिन्दीभाषामें—बिना गुरु छोटे नगरोंमें दवाखाना करसके हैं । इसमें सर्व रोगोंका वर्णन और यत्न लिखेगये हैं । ग्लेज कागज. ... २-४	
” तथा रफ कागज ... २-०	
अर्कप्रकाश—( रावणकृत ) भाषाटीकासमेत । इसमें—नानाप्रकारके यन्त्रोंसे औषधियोंका अर्क खींचना और गुणवर्णन भलीप्रकार कियागया है. ग्लेज कागज. ... १-०	
” तथा रफ कागज ... ०-१४	
अनुपानदर्पण—भाषाटीकासमेत । इसमें—रस घालु बनानेकी क्रिया और अनुपान देना तथा रोगोंपर औषधोंमें क्या २ अनुपान देना यह सब वर्णित है. ... ०-१२	
अनुभूतयोगावली—चिकित्साग्रन्थ । इसमें अनुभव कीहुई हरेक रोगकी उत्तम उत्तम औषधियां वर्णित हैं ... ०-७	
अजीर्णतिमिरभास्कर—भाषामें—चौने क्या- खूब रामप्रसादकृत. ... ०-६	
अजीर्णमञ्जरी—भाषाटीकासहित । इसमें किन २ चीजोंका अजीर्ण किन २ चीजोंके	

नाम,	की० सं० आ०
सेवनसे दूर होता है इत्यादि विषय भली- प्रकार लिखे हैं ... ०-४	
आयुर्वेदसुपेणसहिता—भाषाटीकासहित । इसमें—सामान्य औषधीवर्ग, धान्यवर्ग, पयवर्ग इत्यादिकाका गुण-दोष वर्णित है. ०-१४	
आयुर्वेदचिन्तामणि—भाषाटीकासहित । पं० बलदेवप्रसादमिश्र सगृहीत. ... १-१२	
आरोग्यशिक्षा—पं० मुरलीधरशर्मा राजवैद्य- सकालत ( भाषामें ) ... ०-५	
आदिशास्त्र—भाषाटीकासमेत । इस ग्रन्थमें कन्या और पुरुषका लक्षण कौन २ प्रका- रसे विवाह करना और रोगोंकी दवा आ- दिका वर्णन भलीप्रकार है ... ०-१०	
इलाजुल गुरवा—नूतन मथुराका छपा है. ... १-४	
औषधीक्रिया—मराठी भाषाटीकासमेत । “आर्यभट्टपुस्तकावली” मेंसे यह स्वत- न्त्र निकाला गया है । आर्यवैद्यकी पद्ध- तिसे औषधोंको किसरीतिसे तैयार करना तथा कौनसे रोगपर किस दवाका उपयोग करना इत्यादि इस पुस्तकद्वारा सहजमें मालुम होसकता है । मराठीभाषा जाननेवा- लोंको परमोपयोगी है. ... ०-४	
अंजननिर्दान—भाषाटीकासमेत । इसमें—सुग- मतासे रोगोंका निदान लिखा है. ... ०-७	
कल्पपञ्चकप्रयोग—भाषाटीकासमेत । इस ग्रन्थमें चोपचीनीकल्प, रुद्रवन्तीकल्प, रागदमनीयकल्प, शिवलिङ्गीकल्प, तथा पलाशकल्पात्मक भी हैं. ... ०-३	
करिकल्पलता—छन्दोबद्ध—हिन्दीभाषामें । केशवसिंहजी तअल्लुकेदार रचित । इसमें— हाथियोंके शुभाशुभ लक्षण व उनके रोग- नाशार्थ अनेक औषधिविधान चित्रोंसमेत वर्णित है. ... १-०	

नाम,	की०६०आ०	नाम,	की०६०आ०
कामकुतूहल-भापाटीकासमेत । इसमें-शरीरकी क्षीणतादिमें अपूर्व दवाइयोंका संग्रह है.	०-४	चरकसंहिता-ठकसाल निवासी वैद्यपञ्चानन	
कासरत्न-योगेश्वर नित्यनाथप्रणीत और विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भापाटीकासमेत । इस ग्रन्थमें कामशास्त्रादि विषय और रोगोंकी आपधि तथा वाजीकरण औषधी अनुभूतई और वशकिरणादि प्रयोगभी हैं. ... ..	१-१२	५० रामप्रसाद वैद्योपाध्यायकृत प्रसादनी भापाटीकासहित । चरकके आठौंस्थान एकसेएक अपूर्व होनेपर भी "चिकित्सा-स्थान" तो अद्वितीय है । उसमें नीरोग मनुष्यके लिये वे सहजप्रयोग लिखे हैं कि, वह कभी बीमारही न हो और रोगी चिकित्सा करनेपर तत्काल नीरोग हो ।	
कालज्ञान-भापाटीकासमेत । इस ग्रन्थका संपूर्ण अभ्यास करनेसे भूत, भविष्य, वर्तमानका ज्ञान होता है. ... ..	०-३	वैद्यमात्रको यह ग्रन्थ अवश्य समझ करना चाहिये । पहलेसे अवकीवार बहुत बड़ा हो गया है जिसकी सुन्दर सुनहरी दो जिल्द बंधी हैं ... ..	१-०
क्याख्वाडिविया-( जराहीयोग ) चौबे क्याख्वाडजीकी बनाई हुई हमेशा पास रखने योग्य है । देखनेसे मालूम होसकेगा.	०-४	चिकित्सांजन-भापाटीकासमेत । इसमें ज्वर, खांसी, कुष्ठ, भगंदरादि कठिन रोगोंकी बहुत उत्तम चिकित्सा वर्णित है ... ..	०-६
कुमारतन्त्र-रावणकृत मूल तथा भापाटीकासमेत । इसमें-बालकोंकी दवाइयोंका अपूर्व वर्णन है. ... ..	०-८	चिकित्साधातुसार-हिन्दीभाषामें धातु फ्रँकनेके उत्तमोत्तम प्रयोग लिखे हैं. ... ..	०-४
कूटमुद्गर-सटीक-संस्कृत. ... ..	०-३	जराहीप्रकाश-चारोंभाग । जराहोंके उपकारार्थ जराहीखवधी संस्कृत, उर्दू तथा	
कूटमुद्गर-भापाटीकासमेत ... ..	०-३	डाक्टरी आदि अनेक ग्रन्थोंके आधारसे विभूषित. .... ..	१-८
गुणोक्तो पिटारी-काशीनिवासी स्वामी परमानन्दने बड़े परिश्रमसे हिन्दीभाषामें बनाई है । इसमें-अनेक प्रकारकी धातुओंके फ्रँकने व सेवन करने व सिन्दूरालेके बनाने तथा साबुन, पारा, गन्धक और सिंगरफ वंगरहके बर्तनोंके बनानेके परमोपयोगी नानाप्रकारके तरीके भी लिखगये हैं. .... ..	०-१२	ज्वरतिमिरनाशक-भापाटीका-सर्वप्रकारके दवाइयोंका संग्रह है. ... ..	१-०
गौरीकांचलिकातन्त्र-भापाटीकासमेत । इसमें-तन्त्र, मन्त्र, और दवाइयोंका संग्रह परमोपयोगी लिखागया है. .... ..	०-६	डाक्टरीचिकित्सासार--भाषामें-संक्षिप्त डाक्टरी निघण्ट. .... ..	०-१
चक्षुरक्षक-इसमें-नेत्रसवधी दवाइयोंका खजाना है. .... ..	०-१॥	डाक्टरीचिकित्सांर्णव-बड़ा-हिन्दीभाषामें प्रत्येक रोगोका डाक्टरी मतसे और साथ साथ देशी वैद्यक मतसे नाम, लक्षण, रोगनिदान, और उपाय आदि लिखेगये हैं ।	
चर्याचन्द्रोदय-भापाटीकासमेत । इसमें-व्यंजन बनानेकी क्रिया लिखी है. .... ..	१-८	सारांश-डाक्टरी सीखनेके लिये यह पुस्तक परमोपयोगी है.... ..	१-८
चक्रदत्त-भापाटीका सहित । इसमें और चिकित्साओंके अलावा तैल साधनादि प्रकार बहुत अच्छा लिखा है ... ..	३-०	तिव्वअकवर-इकीम अकवर अलीखॉ लिखित तथा देशीप्रसादकृत हिन्दीभाषामें अनुवादित । इसमें-छब्बीस अध्यायोंमें शिरसे पैरतक स्त्री, पुरुष, लडके आदिका सम्पूर्ण रोगोंका उत्पत्ति, निदान, कारण, स्वरूप, लक्षण और यूनानीमतसे एक २	



नाम.	की०रु०आ०
रोगोंपर सैकड़ों औषधोंका उपचार ( चिकित्सा ) वर्णित है । यह अपूर्व ग्रन्थ वैद्यमात्रको उपयोगी है. .... ७-०	
त्रशती-पं० वैद्यवल्लभभट्टविरचित सस्कृत-टीका-तथा भाषाटीकासहित । इसमें सब रोगोंमें प्रधान, ज्वर और सन्निपातकी उत्तम २ अनेक प्रकारकी चिकित्सा लिखी हैं, और वैद्यक ग्रन्थ होनेपरभी ग्रन्थकर्त्ता शार्ङ्गधरने इसमें अपनी कविताशक्तिको पूर्ण परिचय दिया है । दोनों टीकाएँ एकसे एक बढ़कर सरलतः व प्रमाणोंसे विभूषित हैं ..... १-०	
व्यगुणशतक-भाषाटीकासमेत । इसमें- औषधिद्रव्योंका गुणदोष वर्णन भलीप्रकार लिखा गया है. .... ०-६	
व्यगुण-बड़ा । श्रीयुत प० ज्वालाप्रसाद-मिश्रकृत भाषाटीकासहित .... ०-१४	
ग्रन्थान्तरिवैद्यक-लाला शालग्राम वैश्यकृत भाषाटीकासमेत । जिसमें समस्त रोगोंका निदान, कारण, लक्षण और चिकित्सक औषधि संग्रहकर लिखा है .... ५-०	
गुणसकामृतार्णव-भाषाटीकासमेत । इसमें नपुंसकोंको नानाप्रकारके तैल, लेप, घृत, वाजीकरण, औषधि सर्वोत्तम लिखी गई है. .... ०-१४	
गोडीदर्पण-भाषाटीकासमेत । इसमें-नाडी देखनेके प्रकार लिखे हैं. .... ०-६	
गोडीविज्ञान-भाषाटीकासमेत. .... ०-२	
गोडीज्ञानतरंगिणी-अत्युत्तम भाषाटीकासहित .... ०-१४	
गुचिकित्सा-अर्थात् "वृषकल्पद्रुम" छन्द-बद्ध भाषा । इसमें-बैल, गऊ और भैंसके शुभाशुभ लक्षण, यन्त्र, चिकित्सा, पहिचान, चित्रसहित वर्णित है. .... १-०	
गुह्यापथ्य-भाषाटीकासहित । पं० केसवप्रसादमिश्रसंगृहीत । जिसमें संपूर्ण रोगोंपर पथ्यापथ्य करना और अपथ्यादिकका निषेध, इत्यादि वर्णित हैं । भिषगुगणोंको अवश्य लेना उचित है. .... ०-१२	

नाम.	की०रु०आ०
पाकप्रदीप-वाजीकरण भाषाटीकासमेत । नामहीसे गुण जान लेना .... ०-७	
पाकरत्नाकर-वैद्यक विषयमें यह छोटासा ग्रन्थ बहुतही उत्तम है. .... ०-६	
बालबोधपाकावली-पाकरस वर्णन अच्छी प्रकार किया गया है. .... ०-२	
बालतन्त्र-कल्याण वैद्यरचित मूल और नन्दकुमारकृत भाषाटीकासह इसमें-षोडशवन्ध्या, साधारणवन्ध्या, औषध, पुरुष-धीर्यवृद्धि, गर्भाधान, रुद्रस्नान, मासगृहीत-बालरक्षा, दिन-मास-वर्षगृहीत-बालरक्षा, साधारण बालग्रहरक्षा, ज्वरहरणोपाय, साधारण रोगचिकित्सा, नानारोगोंके अनुभवीप्रयोग, इत्यादि वर्णित हैं. .... १-०	
पूँटीप्रचारवैद्यक-श्रीयुत महंत सुखरामदासजी संगृहीत .... १-०	
वृहन्निघण्टुरत्नाकर-मूल प० दत्तराम चौबेकृत सकलित और भाषाटीकासमेत । इसमें-शारीराध्याय, यन्त्राध्याय, शस्त्रविचारणाध्याय, योगसूत्राध्याय, अश्विघ-शस्त्रकर्माध्याय, तथा दूसरा भाग-क्षारपाकविधि, अग्निक्रम, दोषघातमल वृद्धि, दोषवर्णन, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा नाडीदर्पणादिवर्णन भली भाँति किया गया है। प्रथम भाग. .... ३-०	
वृहन्निघण्टुरत्नाकर-द्वितीय भाग. .... ३-८	
वृहन्निघण्टुरत्नाकर-तृतीय भाग । ( विविध रोगोंकी चिकित्साका संग्रह ) .... ३-८	
वृहन्निघण्टुरत्नाकर-चौथा भाग । ( चिकित्साखण्ड ) .... २-८	
वृहन्निघण्टुरत्नाकर-पञ्चम भाग ( रोगोंका कर्मविपाक ) .... ५-८	
वृहन्निघण्टुरत्नाकर-षष्ठभाग ( रोगोंका चिकित्साभाग ) .... ४-८	
वृहन्निघण्टुरत्नाकर-सप्तम अष्टम भाग । लाला शालग्राम संकलित अर्थात् "शालग्रामनिघण्टुभूषण" अनेक देशदेशान्तरीय सस्कृत, हिन्दी, बँगला, मराठी,	



